HISTORY OF THE INDIAN STATES.

लेखक—

सुखसम्पत्तिराय भण्डारी

प्रकाशक—

राज्य-मण्डल बुक-पब्लिशिंग-हाउस,

इन्दौर सिटी।

प्रथम संस्करण } मई १९२७ मूल्य { साधारण संस्करण ६५)
राज-संस्करण ५०)

भूमिका

कुछ वर्षों के पूर्व मुझसे अपने एक सम्मानित मित्र ने यह अनुरोध किया था कि मैं भारतीय राज्यों के इतिहास पर एक अन्वेषणात्मक और विस्तृत ग्रन्थ लिखूँ। मुझ उनकी यह राय ठीक मालूम हुई और मैंने दो एक दिन ही में उक्त प्रकार का ग्रन्थ लिखने का निश्चय कर लिया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतवर्ष का कोई ⅓ हिस्सा देशी राजाओं के अधिकार में है और इनमें से कई के पूर्वजों ने जितना अलौकिक वीरत्व और अपूर्व स्वार्थत्याग दिखलाया है उस पर निःसन्देह अभिमान किया जा सकता है। उन्होंने कई महान् कार्य किये। आज भी इतिहास उनका गौरव-गान कर रहा है। अगर हम यह कहें तो विशेष अतिशयोक्ति न होगी कि भारतवर्ष का पूर्वकालीन इतिहास इन्हीं नरेशों के गौरवशाली पूर्वजों के कार्यों का कथानक है। मैंने इस दुष्कर कार्य को हाथ में उठाया और इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाले बहुत से ग्रन्थ मँगवाये तथा उनके आधार से बहुत कुछ लिख भी डाला। इसी बीच में मैं देवास के वयोवृद्ध और लोक-प्रिय मिनिस्टर दीवान बहादुर सरदार पण्डित नारायणप्रसादजी से मिला और उन्हें अपना लिखा हुआ इतिहास का अंश पढ़ सुनाया। उन्होंने मेरे साथ पूर्ण सहानुभूति प्रकट की और श्रीमान् देवास नरेश से मेरा परिचय करा दिया। श्रीमान् देवास नरेश इतिहास के केवल प्रेमी ही नहीं हैं, वरन् वे इतिहास के अच्छे जानकार भी हैं। वे मुझसे बड़ी ही सहृदयता से मिले और मेरे कार्य के साथ उन्होंने पूर्ण सहानुभूति प्रकट की। इतना ही नहीं, मुझे इस काम के लिये देवास दरबार ने १५००) की सहायता भी प्रदान की। इसके थोड़े ही दिनों बाद इन्दौर के एक्स-महाराजा साहब श्रीमंत तुकोजी-राव होलकर को मैंने एक निवेदन-पत्र के द्वारा अपने ग्रन्थ की योजना भेजी। मैं श्रीमंत ही की रियासत का बहुत दिन से निवासी हूँ। अतएव श्रीमंत ने मुझे खूब प्रोत्साहन दिया और मेरे निवेदन-पत्र को केबिनेट के पास भेज दिया। यहाँ मुझे यह बात मुक्तकंठ से स्वीकार करनी चाहिये कि केबिनेट में स्वर्गीय मि० नृसिंहराव भूतपूर्व प्राइम मिनिस्टर, रायबहादुर सिरेमलजी बापना तत्कालीन डेप्युटी प्राइम मिनिस्टर *

---

* आजकल आप प्राइम मिनिस्टर और केबिनेट के प्रेसिडेन्ट हैं।

और रायबहादुर सरदार किबे साहब ने इस ग्रन्थ की आवश्यकता समझकर मुझे १५०००) रुपया प्रोत्साहन के रूप में देने का निश्चय किया। उक्त तीनों सज्जनों की मेरे साथ बड़ी सहानुभूति रही। श्रीमान् बापना साहब और किबे साहब ने तो अपने परिचित कुछ नरेशों को परिचय-पत्र देने की भी कृपा की। हाँ, यहाँ अवश्य ही इतनी बात कृतज्ञता के साथ स्वीकार करनी पड़ेगी कि भूतपूर्व महाराजा श्रीमंत तुकोजीराव होल-कर की इस कार्य के प्रति सहानुभूति होना ही इस सहायता-प्राप्ति का कारण है।

मध्यभारत के ए० जी० जी० माननीय मि० ग्लेन्सी के बहुमूल्य प्रोत्साहन को भी मैं कृतज्ञ हृदय से स्वीकार करता हूँ। वे अंग्रेज़ होते हुए भी उन्होंने मेरे हिन्दी इति-हास में खूब दिलचस्पी ली। उन्होंने कई बार इस इतिहास को सुना और बड़ी ही प्रसन्नता प्रकट की। मैंने देखा कि भारत की पूर्वकालीन सभ्यता और गौरव की बातें वे बड़ी प्रसन्नता से सुनते थे। उन्हें भारतीय इतिहास की अच्छी जानकारी है। सुविख्यात इतिहासवेत्ता प्रो० यदुनाथ सरकार से उनकी घनिष्ट मैत्री है। मुझे आशा से अधिक मि० ग्लेन्सी से प्रोत्साहन मिला। उन्होंने मेरा योग्य और उचित उत्साह बढ़ाने में कोई कसर उठा न रखी। उनके प्रोत्साहन को मैं कृतज्ञ हृदय से स्मरण रक्खूँगा। इसी प्रकार राजपूताने के भूतपूर्व ए० जी० जी० सर राबर्ट हॉलण्ड और कप्तनल पेटर्सन का भी मैं बड़ा कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने राजपूताने में ऐतिहासिक सामग्री इकट्ठा करने में मेरे लिये बड़ा सुभीता कर दिया।

हिन्दी के सुविख्यात लेखक श्रीयुत् जगन्नाथदास जी अधिकारी ने मेरे ग्रन्थ की रूपरेषा श्रीमान् भरतपुर नरेश सर कशनसिंह जी साहब पर प्रकट की और मुझसे श्रीमान् भरतपुर नरेश बड़े ही अच्छे ढंग से मिले। उनकी सरलता, सहृदयता और ज्ञानप्रेम की छाप मेरे हृदय पर पड़ी। उन्होंने मेरे साथ आशा से अधिक सहानुभूति दिखलाई।

जयपुर के सहृदय और विद्वान् सीनियर मिनिस्टर सर गोपीनाथ जी पुरोहित ने मेरे इस प्रयत्न पर बड़ी प्रसन्नता और सहानुभूति प्रकट की। वयोवृद्ध पुरोहितजी हिन्दी के पुराने सेवक हैं। हिन्दी में आपने कई ग्रन्थ लिखे हैं। आप जैसे विद्वान् सज्जन से मुझे जितनी आशा थी उससे भी अधिक उत्साह मिला। श्रीमान् पुरोहितजी ने हर तरह से मेरा उत्साह बढ़ाया। इसी प्रकार चोमू के ठाकुर साहब देवीसिंह जी तथा उनके विद्वान् पुत्र सामोद रावजी साहब संग्रामसिंहजी ने ग्रन्थारम्भ के समय ही से मेरे साथ पूरी २ सहानुभूति रखी और इस ग्रन्थ को पूर्णता पर पहुँचाने के लिये

पूरा २ प्रोत्साहन दिया। जोबनेर के ठाकुर साहब श्रीनरेन्द्रसिंहजी ने मेरे कार्य में जो दिलचस्पी दिखलाई उसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ। दतिया के दीवान खाँ बहादुर काजीसाहब तथा ओरछा के दीवान साहब ने, मुसलमान होते हुए भी इस हिन्दी इतिहास की आवश्यकता समझकर, मेरा उत्साह बढ़ाने का यत्न किया। अब मैं उन सज्जनों की ओर सङ्केत करता हूँ जो इस ग्रन्थ-निर्माण में मेरे विशेष सहायक हुए हैं। सब से पहले मैं सुविख्यात पुरातत्वविद् रायबहादुर पं० गौरीशंकरजी ओझा के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। ओझाजी इतिहास के अद्वितीय विद्वान् हैं। वे अन्तर्राष्ट्रीय कीर्त्ति के महानुभाव हैं। उनका सारा जीवन इतिहास की खोज में बीता है। बड़े बड़े पाश्चात्य विद्वान् उनकी एतिहासिक अन्वेषणाओं के कायल हैं। श्रीमान् ओझाजी जैसे अद्वितीय विद्वान् हैं, वैसे ही उदार और सहृदय भी हैं। उनका ज्ञान-द्वार हमेशा खुला रहता है। उन्होंने मुझे निष्कपट रूप से मैंने जो माँगा वही दिया। उनके प्रेम और सहानुभूति को मैं कभी नहीं भूल सकता। इसी प्रकार जोधपुर के इतिहास विभाग के उत्साही और विद्वान् सुप्रिन्टेन्डेन्ट श्रीयुत् विश्वेश्वरनाथ जी रेऊ की बहुमूल्य सहायता को भी मैं नहीं भूल सकता। उन्होंने मुझे जोधपुर म्यूजियम की बहुत सी ऐतिहासिक तस्वीरों के फोटो लेने की इज़ाज़त दी। उन्होंने एक मित्र की तरह हर प्रकार से मेरी सहायता की। उन्होंने मेरे साथ जैसा उदार व्यवहार किया, उसे मैं स्मरण रक्खूंगा। इसी प्रकार श्रीयुत् जगदीश नारायणजी गहलोत ने जोधपुर में चित्रादि प्राप्त करने में मेरे लिये जो कष्ट उठाये, उसके लिये भी मैं कृतज्ञ हूँ। मुझे इस ग्रन्थ के लिखने में सैकड़ों अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी और गुजराती ग्रन्थों से सहायता मिली है। अतएव: उनके लेखकों को धन्यवाद देता हूँ। इस ग्रन्थ का प्रूफ-संशोधन अस्वास्थ्य के कारण मैं न कर सका, इससे इसमें कई खटकने योग्य त्रुटियाँ रह गई हैं। वे दूसरी आवृत्ति में सुधार दी जायँगी। पाठक उनके लिये क्षमा करें।

धारराज्य के तथा प्राचीन परमारों के इतिहास की सम्पूर्ण सामग्री सुविख्यात वयोवृद्ध इतिहासकार गुरुवर्य्य श्रीयुत् काशीनाथ कृष्ण लेले महोदय से प्राप्त हुई है, जिसे मैं यहाँ कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करता हूँ।

ता० ११-४-२६. } एस. आर. भण्डारी

जिस समय मुग़ल साम्राज्य का सितारा अस्ताचल की ओर जा रहा था, उस समय महाराष्ट्र में एक नई शक्ति का उदय हो रहा था, जिसकी ज्योति से सारे हिन्दु भारत का हृदय जाज्वल्यमान हो उठा था। बड़ौदे के गायकवाड़ इस शक्ति के एक प्रकाशमान रत्न थे। मरहठा साम्राज्य में खण्डेराव दाभाड़े नामक एक अत्यन्त वीर और प्रतिभाशाली महानुभाव हो गये हैं; इन्होंने मुगलों के साथ अनेक युद्ध कर आपने वीरत्व का अद्भुत प्रकाश किया था। आपके इन्हीं पराक्रमों के कारण सतारा के राजा ने आपको सेनापति के उत्तरदायित्व-पूर्ण पद पर अधिष्ठित किया था। यह घटना ई० सन् १७१६ की है जब कि आप सातारा में रहते थे। दामाजी गायकवाड़ आपकी अधीनता में एक उच्च पद पर अधिष्ठित थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि दामाजी बड़े वीर और प्रतिभाशाली महानुभाव थे। आपने अनेक युद्धों में अपूर्व वीरत्व का प्रकाश कर ख्यादि लाभ की थी। आप अपने वीरत्वपूर्ण कार्य्यों के कारण शमशेर बहादुर की उच्च उपाधि से विभूषित किये गये थे।

ई० सन् १७५१ में वीरवर दामाजी का स्वर्गवास हो गया और आप के बाद आपके भतीजे पिलाजी गायकवाड़ उत्तराधिकारी हुए। आप ही बड़ौदे के आधुनि के राजवंशक जन्मदाता हैं। सेनापति महोदय ने गुजरात से खिराज वसूल करने का काम आपके कंधों पर लिया। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि सेनापति को खिराज-वसूली का अधिकार सातारा के राजा की ओर से प्राप्त हुआ था। वीरवर पिलाजी ने सोनगढ़ में अपना खास मुकाम रखा था और वे यहाँ ई० सन् १७६६ तक रहे; इसके बाद पट्टन

गुजरात प्रान्त की राजधानी हुई। पिलाजी के साथ २ कान्ताजी कदम और उदाजीराव पँवार नामक दो मराठे सरदारों को उक्त गुजरात प्रान्त में खिराज वसूली का काम दिया गया था। कुछ समय तक ये तीनों वीर महाराष्ट्र नेता मिल जुल कर काम करते रहे और उन्होंने सूरत के २८ जिलों पर जिसे अट्ठाविशी कहते हैं खिराज लगाई। ई० सन् १७२३ में वीरवर पिलाजी ने सूरत पर कूँच किया और वहाँ के शासक को शिकस्त दी। उस समय से पिलाजी अव्याहत रूप से खिराज वसूली करने लगे। इसी बीच में आपका और उपरोक्त दो मराठे सरदारों का मत-भेद हो गया और तब से यह व्यवस्था हुई कि मही के दक्षिण के जिलों में पिलाजी खिराज वसूल करें और उत्तर में कान्ता जी कदम। यहाँ यह न भूलना चाहिये कि उस समय पिलाजी को बड़ोदा, नादोद, चम्पानेर, बरौच और सूरत के जिलों से खिराज वसूल करने का अधिकार प्राप्त हुआ था।

पेशवा बाजीराव और सेनापति के बीच हमेशा से अनबन चली आती थी। हम ऊपर कह चुके हैं, कि पिलाजी सेनापति पक्ष में थे। ई० सन् १७२७ में पेशवा ने गुजरात के नव-नियुक्त मुगल वाइसराय सर बुलन्द खाँ से गुजरात में चौथ और सरदेशमुखी प्राप्त करने का इस शर्त पर अधिकार प्राप्त कर लिया कि वे उसे पिलाजी के खिलाफ सहायता करें। उसी साल पिलाजी ने बड़ौदा और डभोई पर अधिकार कर लिया। ई० सन् १७३० में सर बुलन्द खाँ वापस बुला लिया गया और उसके स्थान पर जोधपुर के महाराजा अभयसिंह जी गुजरात के वाइसराय के पद पर अधिष्ठित हुए। बाजीराव ने राजा अभयसिंह जी से मेल जोल कर सेनापति को गुजरात से निकालने का विचार किया और उसका परिणाम यह हुआ कि ई० सन् १७३१ में डभोई के पास भीलपुर नामक स्थान पर युद्ध हुआ। उसमें सेनापति की हार हुई और वे मार डाले गये। उस समय बाजीराव ने अन्य मराठा सरदारों को कुचलना अपनी सभ्यता के और संस्कृति के खिलाफ समझा, और इससे उन्होंने सेनापति के नाबालिग पुत्र यशवन्तराव दाभाड़े को अपने

पिता के पद पर नियुक्त कर दिया और पिलाजी को उनका डेप्यूटी बना दिया। उस समय पिलाजी बड़े शक्तिशाली हो गये और उन्हें सेनापति की तरह बहुत से साधन उपलब्ध हो गये; पर दुःख है कि वीरवर पिलाजी इस पद को अधिक दिन तक न भोग सके। ई० सन् १७३२ में महाराजा अभय-सिंह जी के आदमियों द्वारा डाकोर मुकाम पर वे मार डाले गये।

पिलाजी के बाद उनके पुत्र दामाजी उत्तराधिकारी हुए। पिलाजी की मृत्यु के कारण उसी समय राज्य में जो अव्यवस्था और गड़बड़ फैल गई थी उसका फायदा उठाकर राजा अभयसिंह जी ने बड़ौदे पर अधिकार कर लिया। दामाजी डभोई लौट आये। यहाँ से उन्होंने अपने दुश्मन से बदला लेना चाहा और उन्होंने अहमदाबाद पर चढ़ाई कर दी। इन्हें कुछ सफलता मिली, और इसका यह परिणाम हुआ कि बड़ौदे पर फिर से आपकी विजय-पताका उड़ने लगी। उस समय से बड़ौदा अव्याहत रूप से बड़ौदा सरकार की अधीनता में ही चला आरहा है। दामाजी की शक्ति उसी समय से दिन दूनी और रात चौगुनी बढ़ने लगी; और राजा अभयसिंह जी ई० सन् १७३७ में गुजरात छोड़ने को बाध्य हुए। राजा अभयसिंह जी के स्थान पर मोमीन खाँ गुजरात का वाइसराय नियुक्त हुआ। मोमीन खाँ दामाजी की शक्ति से परिचित था, और उसे यह भी मालूम था कि दामा जी से लोहा लेना टेढ़ी खीर है। अत-एव उसने अपनी स्थिति कायम रखने के लिये उनसे मित्रता कर ली और उन्हें उक्त प्रान्त की आधी आमदनी प्रदान कर दी।

जब स्वर्गीय सेनापति के पुत्र बाल सेनापति योग्य उम्र पर पहुँचे तब भी उनमें शासन करने की क्षमता दिखलाई नहीं दी। ई० सन् १७४७ में स्वर्गीय सेनापति की विधवा का भी देहान्त हो गया। अएतव गुजरात में दामाजी राव ही सतारा राज के प्रतिनिधि के सम्माननीय पद पर नियुक्त किये गये।

ई० सन् १७४२ म मोमीन खाँ इस ससार से कूच कर गया। उसके लड़के फिदाउद्दीन ने अपने बाप की नीति को भूल कर दामाजी का विरोध

करना शुरू किया। वह दामाजी के सेनापति रंगोजी से भिड़ पड़ा और उसने उन्हें हरा दिया। उस समय दामाजी मालवे की महाराष्ट्र-विजय में अपना हाथ बटा रहे थे। ज्यों ही उन्हें इस घटना का समाचार पहुँचा त्योंही वे गुजरात लौट गये, और उन्होंने फिदाउद्दीन पर हमला कर उसे बुरी तरह शिकस्त दी। इतना ही नहीं उन्होंने उसे गुजरात से निकाल भी दिया। उस समय से आप गुजरात के एकाधिकारी स्वामी हो गये।

ई० सन् १७४९ में सतारा के राजा शाहू का देहान्त हो गया; और महाराष्ट्र साम्राज्य की वास्तविक शक्ति पेशवा के हाथ में चली गई। पेशवा की इस राज्य हड़प करने की नीति के खिलाफ दामाजी शुरू ही से थे और इसीलिये ई० सन् १७५१ में राजाराम की विधवा रानी ताराबाई ने उन्हें निमन्त्रित कर उनसे ब्राह्मणों के पंजे से मराठा साम्राज्य की रक्षा करने का अनुरोध किया। उन्होंने इस अनुरोध को स्वीकार कर लिया, और १५ हजार फौज के साथ उन्होंने पेशवा पर चढ़ाई कर दी। निम्ब मुकाम पर विरोधी सेना से उनका मुकाबला हुआ और उन्होंने उसे पूरी तरह से हरा दिया। पर दुर्भाग्य से यह विजय स्थायी न हो सकी। शीघ्र ही ऐसे चिन्ह प्रगट होने लगे कि पेशवा की फौज पिलाजी की फौज को घेर कर उसका नाश न कर देगी। इससे पीलाजी पेशवा से सुलह करने में बाध्य हुए; और उन्हें पेशवा को गुजरात का आधा मुल्क देना पड़ा। इसके दो वर्ष बाद दामाजी ने पेशवा की फौज की सहायता से अहमदाबाद पर घेरा डाल कर उस पर अधिकार कर लिया। उस समय मुग़ल साम्राज्य का एक प्रकार से अन्त हो चुका था। परिणाम-स्वरूप गुजरात को पेशवा और गायकवाड़ ने आपस में बाँट लिया।

इतिहास में उलट फेर कर देने वाले, पानीपत के घनघोर संग्राम में दामाजी ने बड़े वीरत्व का परिचय दिया था। पर उस समय भाग्य देवता मराठों के अनुकूल न थे। महाराष्ट्र सेनापति भाऊ साहेब की ग़लती से कहिये या कुछ अन्य कारणों से कहिये; इस युद्ध में मराठों की हार हुई

और उनकी फौजों का भयंकर नुकसान हुआ। महाराष्ट्र सेना के बड़े २ नायक मारे गये। उस समय दामाजी गायकवाड़ गुजरात लौटने में समर्थ हुए। लौटते ही आपने कमामुद्दीन से काड़ी परगना विजय कर लिया। उसी समय आपने सोनगढ़ से बदल कर पाटन को अपनी राजधानी बना लिया। ई० सन् १७६८ में दामाजी राव का स्वर्गवास हो गया। दामाजी के छः पुत्र थे, इनमें गद्दी के हक के लिये झगड़ा होने लगा। दामाजी के प्रथम पुत्र सयाजी राव व द्वितीय पुत्र गोविन्दराव थे। दोनों ही गद्दी के अधिकार के लिये उत्सुक थे। दोनों में इस अधिकार के सम्बन्ध में किसी प्रकार का समझौता न होने के कारण पेशवा पर इसके निर्णय का भार रखा गया। पेशवा ने एक बड़ी रकम लेकर के गोविन्दराव के पक्ष में अपना फैसला दिया। जब यह बात दामाजी के तीसरे पुत्र फतहराव को मालूम हुई तो वे पूना के महाराष्ट्र दरबार में उप-स्थित हुए और उन्होंने पेशवा की उक्त आज्ञा को रद्द करवा दिया। इससे सयाजीराव (सेना खास खेल) के रूप में घोषित किये गये; और फतेहसिंह उनका डेप्यूटी मुकर्रर किया गया। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि सयाजी राव कमजोर तबियत के होने से राजकार्य्य करने में अक्षम थे।

फतेहसिंह राव ने यह सोच कर कि कहीं भाइयों के आपसी झगड़े और अव्यवस्थित स्थिति का फायदा उठाकर पूना के पेशवा सरकार गुजरात पर अपना पूरा अधिकार न कर ले; उन्होंने अँग्रेजों से मित्रता करने का विचार किया। पर उन्होंने फतेहसिंह के सुलह के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। इससे गद्दी के हकदारों में बराबर ८ वर्ष तक झगड़ा चलता रहा। अन्त में ई० सन् १७७८ में फतेहसिंह राव सफलीभूत हुए, और वे "सेना खास खेल" की उपाधि से विभूषित किये गये। गोविन्दराव को २ लाख रुपया वार्षिक आमदनी की जागीर दे दी गई। सयाजीराव भी उस समय जिन्दे थे।

ई० सन् १७७९ में जब अंग्रेज और पूना की पेशवा-सरकार में युद्ध छिड़ा तब फतेहसिंहराव ने अंग्रेजों का पक्ष ग्रहण किया। ई० सन् १७८० में

जो संधि हुई उसमें यह तय हुआ कि गायकवाड़ पेशवा से स्वतन्त्र समझे जावें और वे गुजरात का हिस्सा अपने लिये रखें, और उस मुल्क पर जिस पर पहले पेशवा का अधिकार था अंग्रेज अपना अधिकार कर लें। पर इसके बाद सलबाई की जो सन्धि हुई उससे उक्त संधि रद्द हो गई। ई० सन् १७८९ की दिसम्बर मास में फतेहसिंहराव का स्वर्गवास हो गया और गोविन्दराव के प्रतिवाद करने पर भी उनके छोटे भाई मानाजीराव ने राज्य का संचालन अपने हाथ में ले लिया। सिंधिया ने गोविंदराव के पक्ष का समर्थन किया; पर यह झगडा मानाजी की मृत्यु तक अर्थात् ई० सन् १७९३ तक बराबर चलता रहा।

इसके बाद गोविन्दराव को राज्याधिकार प्राप्त हुए और वे 'सेना खास खेल' शमशेर बहादुर की उपाधि से विभूषित किये गये। पर इसके बदले में उन्हें पेशवा को एक भारी नजर देनी पड़ी। महाराज गोविन्दराव के शासन में उनके पुत्र कुंभोजी और भतीजे मल्हारराव ने बलवे का झगडा उठाया पर वे शान्त कर दिये गये।

गोविन्दराव महाराज के राज्य-काल में पेशवा की ओर से शेलूकर नामक व्यक्ति गुजरात का कर वसूल करने के कार्य्य पर नियुक्त था। इसने गायकवाड़ सरकार के गाँवों से भी कर वसूल करना शुरू कर दिया; और अहमदाबाद में जो गायकवाड़ सरकार की हवेली थी उस पर अपना अधिकार कर लिया। इस कारण गायकवाड़ सरकार और उसके बीच अनबन हो गई। अन्त में गायकवाड़ सरकार और शेलूकर के बीच एक लड़ाई हुई जिसमें शेलूकर हार गया।

ई० सन् १८०० में महाराज गोविन्दराव का देहान्त हो गया और आपके बाद आपके पुत्र अनन्दराव गद्दी पर बैठे। ये बड़े ही कमजोर तबीयत के आदमी थे। अतएव स्वर्गीय महाराजा के दासीपुत्र कंभोजी ने इनके खिलाफ बलवे का झंडा उठाया; आनन्दराव और कुंभोजी दोनों ने ब्रिटिश गवर्नमेन्ट से सहायता माँगी। खूब सोच विचार कर ब्रिटिश

सरकार ने आनन्दराव को सहायता देना स्वीकार किया। ई० सन १८०२ के जुलाई मास में अंग्रेज सरकार और महाराज गायकवाड़ के बीच एक सन्धि हुई जिसमें बड़ौदे का बहुत सा मुल्क अंग्रेज सरकार के हाथ चला गया।

हम ऊपर कह चुके हैं कि आनन्दराव बड़े कमजोर-दिल के शासक थे। अतएव ई० सन १८०२ से १८१८ तक एक कमीशन के द्वारा राज्य-कार्य संचालित किया गया। इस कमीशन के अध्यक्ष रेसिडेन्ट थे। कमीशन ने बहुत से उत्पाती अरबों को राज्य से बाहर निकाल दिया। ये अरब किराये के टट्टू थे। जो उन्हें पैसा देता उन्हीं के पक्ष में लड़ने को मौजूद हो जाते थे। इन्हीं अरबों की सहायता से कन्नोजी ने एक समय अनन्दराव को कैद कर लिया था। जब इन अरबों से कहा गया कि ये बड़ौदा छोड़ कर चले जायँ तो उन्होंने जाने से इन्कार किया और कहा कि हमें जब तक चढ़ी हुई तनख्वाह न मिलेगी तब तक हम नहीं जा सकते। इनकी तमाम तनख्वाह चुका दी गई और ये बड़ौदा छोड़ने के लिये मजबूर किये गये। इसके अतिरिक्त महाराजा आनन्दराव के शासन में कोई महत्वपूर्ण घटना न हुई, जिसका यहाँ उल्लेख किया जा सके। हाँ, इतना कह देना आवश्यक होगा कि मराठा और पिंडारियों के खिलाफ युद्धों में इस राज्य ने भारत सरकार को सहायता दी।

महाराजा अनन्दराव के पश्चात महाराजा सयाजीराव (प्रथम) बड़ौदा की गद्दी पर आसीन हुए। आपने ई० सन १८२० से १८४७ तक राज्य किया। आपके शासन में आपके और भारत सरकार के बीच दिल-सफाई न रही। आपके पश्चात् महाराजा गणपतराव गद्दीनशीन हुए। आपके समय में इस राज्य का कारोबार भारत-सरकार की विशेष निगरानी में रहा। आपके पश्चात आपके भाई महाराजा खण्डेराव ई० सन् १८५६ में गायकवाड़ की मसनद पर बैठे। आप एक सुयोग्य शासक थे। अपने शासन-काल में आपने कई सुधार किये। सिपाही-विद्रोह के समय भी आपने भारत-सरकार को खासी मदद दी।

आप बड़े हृष्ट-पुष्ट और शिकार के शौकीन थे। आपको कुश्ती का बड़ा शौक था। आपकी शासन-पटुता से खुश होकर अंग्रेज सरकार ने आपको ई० सन् १८६२ में दत्तक लेने की सनद प्रदान की थी। आपने १४ वर्ष तक बड़ी योग्यता के साथ अपने राज्य का शासन किया। ई० सन् १८७० में आपकी मृत्यु हो गई। आपको कोई पुत्र न था, किन्तु उस समय आपकी रानी जमनाबाई गर्भवती थीं। अतएव आपके कनिष्ठ भ्राता महाराजा मल्हार-राव इस शर्त पर आपके उत्तराधिकारी बनाये गये कि यदि जमनाबाई के गर्भ से पुत्र उत्पन्न हुआ तो वही गद्दी का हक़दार होगा। अन्ततः जमनाबाई के गर्भ से एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम ताराबाई रखा गया। इससे महाराजा मल्हारराव इस राज्य की गद्दी के उत्तराधिकारी घोषित किये गये।

महाराजा मल्हारराव बड़ी नादान प्रकृति के नरेश थे। कहा जाता है कि ई० सन् १८६३ में इन्होंने अपने भ्राता महाराजा खण्डेराव पर भी विष-प्रयोग करने का प्रयत्न किया था। इसी आरोप के कारण आप कुछ दिनों तक नज़रकैद भी रहे थे। शासन की बागडोर हाथों में आते ही इन्होंने मनमाने कार्य्य शुरू कर दिये। इतना ही नहीं, इन्होंने अपने राज्य के लोगों की बहू-बेटियों पर भी कुदृष्टि डालना शुरू कर दिया। इनके केवल पाँच ही वर्ष के शासन से प्रजा में बेचैनी फैल गई। इनके कुशासन से वह बहुत घबरा उठी। उसने इनके खिलाफ़ सैकड़ों अर्जियाँ भारत-सरकार के पास भेजना शुरू कर दीं। अन्त में भारत-सरकार की ओर से एक कमीशन द्वारा इनके कार्यों की जाँच की गई और उन्हें १८ मास में अपना शासन सुधारने का अवसर दिया गया। इस चेतावनी का महाराजा पर कुछ भी असर न हुआ। इसी समय इन्होंने 'लक्ष्मीबाई' नामक एक स्त्री के साथ अपना विवाह-संबंध स्थापित कर लिया। विवाह के ५ ही मास पश्चात् इस स्त्री के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जिसके लिये महाराजा ने शानदार उत्सव मनाया। यहाँ यह कह देना उचित मालूम होता है कि इनमें और बड़ौदा के तत्कालीन रेसिडेंट में आपस में न बनती थी। इन्होंने कुछ ही दिन पहले उनके खिलाफ़ एक खरीता

भी भेजा था। इस उत्सव में सम्मिलित होने के लिये महाराजा ने रेसिडेन्ट साहब को निमन्त्रित किया, किन्तु वे न आये। उस समय रेसिडेन्ट के पद पर कर्नल फेर थे।

इसके पश्चात् महाराजा पर रेसिडेन्ट पर विष-प्रयोग करने का आरोप रखा गया। रेसिडेन्ट ने इस घटना की सूचना भारत-सरकार को भी दे दी। इस सनसनी फैलानेवाले-समाचार से चारों ओर खलबली मच गई और भारत-सरकार ने इसकी जाँच करने के लिये एक कमीशन नियुक्त किया। इस कमीशन में ६ सदस्य नियुक्त किये गये, जिनमें ३ अँग्रेज और ३ हिंदुस्तानी थे। हिंदुस्तानी सदस्यों में महाराजा जयाजीराव सिंधिया, जयपुर के महाराजा सवाई रामसिंहजी और रावराजा सर दिनकरराव जी थे। यद्यपि महाराजा-मल्हार-राव एक प्रजाप्रिय नरेश न थे, तथापि जनता और हिन्दुस्तान के अन्य सम्भ्रान्त व्यक्तियों ने उनके प्रति पूरी हमदर्दी प्रकट की। कमीशन के सामने इनकी खुली तौर पर जाँच हुई। बाईस दिन तक इनका केस चला। इसमें महाराजा की ओर से इंगलैण्ड के सुप्रसिद्ध बैरिस्टर सारजन्ट बेलेन्टाइन आये थे। इन्होंने महाराजा का खूब बचाव किया। बम्बई के सालिसिटरों और अन्य दूसरे वकीलों ने भी मि० बेलेन्टाइन की सहायता की। ई० स० १८७५ की २३ वीं फरवरी को बड़ौदा रेसिडेन्सी के एक विशाल-भवन में यह जाँच शुरू हुई। जाँच के कार्य्य में सर दिनकरराव जी ने बड़ी कार्य्य-दक्षता दिखलाई। महाराजा जयाजीराव सिंधिया और सवाई रामसिंह जी ने भी बड़ी दिलचस्पी के साथ कार्य्य किया। जाँच पूरी हो जाने पर हरएक सदस्य ने अपनी राय भारत-सरकार को लिख भेजी। इसमें तीन यूरोपियन सदस्यों ने महाराजा को गुनहगार ठहराया, किन्तु बाकी के तीन प्रभावशाली देशी-राज्य-सदस्यों ने उन्हें निर्दोषी माना। जब यह मामला भारत के तत्का-लीन वाइसराय लॉर्ड नॉर्थब्रूक के पास पहुँचा तब वे भिन्न २ रायों को देख बड़े असमंजस में पड़ गये। वे इस कमीशन की जाँच के अधार पर महा-राजा के ऊपर किसी तरह का आरोप न रख सके। आखिर में उन्होंने 'कुशा-

सन' का आरोप लगाकर महाराजा मल्हारराव को पदच्युत कर देने के लिये इंग्लैण्ड की सरकार को लिख भेजा। तदनुसार स्वीकृति मिल जाने पर महाराजा मल्हारराव इस राज्य की गद्दी से अलग कर दिये गये।

इसके पश्चात् राज्य के उत्तराधिकारी चुनने का प्रयत्न शुरू हुआ और स्वर्गीय नरेश महाराजा खण्डेराव जी की विधवा रानी जमनाबाई को पुत्र गोद लेने का अधिकार दिया गया। योग्य पुत्र की खोज होने लगी। आखिर में बड़ौदा राज्यवंश के पूर्व पुरुष पिलाजी के तीसरे पुत्र प्रतापराव के खानदान के काशीराव के पुत्र गोपालराव इस महान पद के लिए चुने गये। यही भाग्यशाली गोपालराव हमारे वर्तमान महाराजा श्री सर सयाजीराव गायकवाड़ हैं। जब इनकी गोदनशीनी का मुहूर्त निश्चित हुआ था, उस समय इनकी अवस्था केवल १२ वर्ष की थी। आप ई० स० १८७५ में राज्य सिंहासन पर बिराजे। आपकी नाबालिग अवस्था में सुप्रख्यात् राजनीतिज्ञ सर टी० माधवराव राज्यसूत्र का सञ्चालन करते थे। इस समय आप बड़ौदे के दीवान थे।

श्रीमान् सयाजीराव को प्रथम श्रेणी की शिक्षा दी गई। राज्य-शासन की भी आपको ऊँची तालीम दी गई। ई० स० १८८१ में श्रीमान् को भारत सरकार ने बम्बई के तत्कालीन गवर्नर सर जेम्स फर्ग्यूसन के द्वारा पूर्ण राज्याधिकार प्रदान किये। ईस्वी सन् १८७७ की १ जनवरी को महारानी विक्टोरिया के भारतवर्ष की सम्राज्ञी पद धारण करने के उपलक्ष्य में दिल्ली में जो दरबार हुआ था, उसमें श्रीमान् भी पधारे थे। इस समय आपको "फर्जन्द-ए-खास दौलत इंग्लिशिया" की उपाधि मिली।

ईसवी सन् १८८० में तंजौर की राज्यकन्या के साथ आपका शुभ विवाह हुआ। इनसे आपको एक कन्या और एक पुत्र युवराज फतहसिंह राव का जन्म हुआ। दुःख है कि इन होनहार युवराज फतहसिंहराव का ईस्वी सन् १९०९ में देहान्त हो गया। इस समय आप बिलकुल युवावस्था में थे। आप बड़े होनहार थे। स्वर्गीय राजकुमार फतेहसिंहराव अपने पीछे दो कन्या और एक पुत्र जिनका नाम श्रीमन्त महाराजकुमार प्रतापसिंहराव है,

छोड़ गये। कहने की आवश्यकता नहीं कि यही महाराज कुमार श्रीमन्त प्रताप सिंहराव बड़ौदे के भावी राज्याधिकारी हैं।

पहली महारानी साहबा का स्वर्गवास हो जाने के कारण ईस्वी सन् १८८६ में श्रीमन्त महाराजा सयाजीराव ने देवास की घाटे कुटुम्ब की कन्या चिमनाबाई के साथ अपना दूसरा विवाह किया। आपके सब से बड़े पुत्र जयसिंहराव शिक्षा-प्राप्ति के लिये इँगलैण्ड भेजे गये। वहाँ आप शिक्षा-सम्बन्धी कई उपाधियाँ प्राप्त कर स्वदेश पधारे। श्रीमान् के दूसरे पुत्र महाराज कुमार शिवाजीराव ने भी ऑक्सफर्ड विश्व-विद्यालय में शिक्षा प्राप्त की और वहाँ अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया। पर क्रूर काल ने आपको इस संसार में अधिक दिनों तक नहीं रहने दिया। ईस्वी सन् १९१९ में आप इन्फ्लूएन्जा की बीमारी से स्वर्गवासी हो गये। श्रीमान् के सब से छोटे पुत्र महाराज कुमार धैर्य्यशीलराव ने भी इंग्लैण्ड में शिक्षा प्राप्त की और इस वक्त आप भारतीय सेना में एक ऊँचे पद पर हैं। श्रीमान् की कन्या श्री इन्दिरा राजा कूच-विहार के महाराजा से ब्याही गई थीं। दुःख की बात है कि आपके पति का असमय ही में स्वर्गवास हो गया।

श्रीमान् महाराजा साहब ने अपनी महारानी साहबा के साथ ई० सन् १८८७ में पहले पहल युरोप की यात्रा की। इटली, स्विट्ज़र्लेण्ड, फ्रान्स, आदि की कई मास तक सैर कर आप इंलेण्ड पधारे। वहाँ आप विन्डसर केसल में श्रीमती सम्राज्ञी विक्टोरिया के मेहमान रहे। श्रीमती आपकी मुलाक़ात से बहुत प्रसन्न हुई और वहीं आपको जी० सी० एस० आई० की उपाधि मिली। इसके बाद राज्य-कारोबार में विशेष संलग्न रहने के कारण श्रीमान् का स्वास्थ्य बिगड़ गया और ईस्वी सन १८८८ में स्वास्थ्य-प्राप्ति के लिये श्रीमान् को सुन्दर स्विट्ज़र्लैंड की दूसरी यात्रा करनी पड़ी। इससे आपके स्वास्थ्य में मार्के की उन्नति हुई। ईसवी सन १८९२, १८९५, १९०० और १९०५ में श्रीमान् ने फिर विलायत की यात्राएँ की। इन यात्राओं में भी श्रीमती महारानी साहबा श्रीमान् के साथ थीं। ई० सन् १८९२ की यात्रा में

श्रीमती सम्राज्ञी विक्टोरिया ने उक्त महारानी साहबा को "इम्पीरियल आर्डर ऑफ दी क्रौन ऑफ इन्डिया" की उपाधि से विभूषित किया।

ईसवी सन् १९१० में अस्वास्थ्य के कारण फिर महाराजा साहब को विलायत की यात्रा की आवश्यकता प्रतीत हुई और ३० मार्च को आप श्रीमती महारानी साहबा और राजकुमारी इन्दिराराजा सहित विलायत के लिये रवाना हो गये। अबकी बार आपने कई एशियाई मुल्कों की भी सैर की। कोलम्बो, पीनांग, हाँगकाँग, केन्टन, शंघाई, नगासाकी, कोबे, याकोहामा, क्योटो, टोकियो आदि स्थानों में सरकार के उच्च अधिकारियों ने श्रीमान् का स्वागत किया। इसी सफर में श्रीमान् अमेरिका के सेनफ्रांसिस्को नगर पधारे। अमेरिका के कई दर्शनीय स्थानों को देखते हुए श्रीमान् न्यूयार्क तशरीफ ले गये और वहाँ से लण्डन के लिये रवाना हो गये। लण्डन के सॉलबरो हाउस में श्रीमान् का सम्राट् और सम्राज्ञी ने स्वागत किया। इस वक्त आप ब्रिटिश साम्राज्य के कई सुप्रख्यात मुत्सद्दियों से भी मिले, पर अस्वास्थ्य के कारण इस वक्त श्रीमान् ने शान्त जीवन व्यतीत करना ही उचित समझा।

इसके दूसरे ही वर्ष श्रीमान् सयाजीराव फिर विलायत पधारे और वहाँ आप वर्तमान भारत-सम्राट् के राज्याभिषेक के उत्सव में शामिल हुए। यह घटना सन् १९११ की है। इस साल आप दिल्ली दरबार में पधारने के लिए भारतवर्ष को रवाना हो गये। सन् १९१३ और १९१४ में अस्वास्थ्य के कारण श्रीमान् को फिर विलायत की यात्रा करना पड़ी।

बार बार की विलायत की इन यात्राओं में श्रीमान् ने बड़ी सूक्ष्मता से वहाँ की राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक स्थिति का अध्ययन किया। वहाँ की विविध संस्थाओं पर श्रीमान् ने बड़ी गम्भीरता से विचार किया। आपने इन यात्राओं में इस बात को भी ध्यान में रखा कि यहाँ के कौन २ से उन्नतिप्रद तत्वों का अपने राज्य में उसके विकास के लिए उपयोग किया जावे।

ईस्वी सन् १९०९ में भारत के तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड मिन्टो

बड़ौदा पधारे, जिनका श्रीमान् बड़ौदा-नरेश ने अच्छा स्वागत किया। ईस्वी सन् १९१९ में लार्ड चेम्सफर्ड भी बड़ोदा पधारे थे। आपका भी बड़ी धूमधाम से स्वागत हुआ था।

ईसवी सन् १९२३ में श्रीमान् फिर विलायत पधारे। अबकी बार भी आपने फ्रान्स, स्विट्जर्लेण्ड आदि कई देशों की सैर की थी। इस समय आपको पुत्र-वियोग की कठिन यन्त्रणा सहनी पड़ी !! श्रीमान् जब विलायत से लौट कर बम्बई उतरे, तब हिन्दू सभा ने आपको अभिनन्दन-पत्र भेंट किया जिसका श्रीमान् ने समुचित उत्तर दिया था।

बड़ौदा राज्य का विस्तार ८१८२ मील है। ईसवी सन् १९११ में बड़ौदा की लोकसंख्या २०३२७९८ थी। इनमें १६९६१४६ हिन्दू और १६० १३७ मुसलमान ४३४९२ जैन, ७९५५ पारसी ७२९३ ईसाई और ११-५४११ अन्य मतावलम्बी थे।

बड़ौदा रियासत में सब से बड़े आफिसर दीवान कहलाते हैं। महाराजा बड़ौदा दीवानों के चुनाव में बड़े विचार से काम लेते हैं। आपकी हमेशा यह अभिलाषा रहती है कि अच्छे से अच्छा और योग्य से योग्य दीवान मिले। आप ऐसा दीवान चुनते हैं जो तन-मन से प्रजा के विकास का अभिलाषी हो। इस चुनाव में आपको जाति-पाँति का कुछ ख़याल नहीं रहता है, केवल योग्यता या कारगुजारी का। यही कारण है कि सर माधवराव, सर रमेश चन्द्रदत्त, मि० वी० पी० माधवराव जैसे विख्यात् पुरुष बड़ौदा राज्य के दीवान रह चुके हैं।

दीवान को सहायता करने के लिये जाइन्ट रेव्हेन्यू मीनिस्टर, डेप्युटी मिनिस्टर रहते हैं। इन्हें चीफ़ मिनिस्टर के थोड़े बहुत अधिकार रहते हैं। बड़ौदा राज्य में लेजिस्लेटिव्ह कौन्सिल है। इसमें राज्य के लिए नियम और कानून बनाये जाते हैं। दीवान साहब इस कौन्सिल के अध्यक्ष रहते हैं। इसमें चार एक्स ऑफिशियो सदस्य, छः सरकारी नामजद सदस्य, पाँच गैर-सरकारी नामजद सदस्य और १० लोकनियुक्त प्रतिनिधि रहते हैं।

यहाँ के सब से ऊँचे न्यायालय को वरिष्ठ कोर्ट या हाइकोर्ट कहते हैं। इसके अलावा यहाँ निम्न श्रेणी के और भी न्यायालय हैं। यथा ५ डिस्ट्रिक्ट जज' कोर्ट, ४ डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट कोर्ट, ३४ साधारण मजिस्ट्रेट के कोर्ट, २६ रेव्हेन्यू मजिस्ट्रेट के कोर्ट और ३ ग्राम-मुन्सफ के कोर्ट और ९० ग्राम्य पंचायतों के कोर्ट हैं। इन ग्राम्य पंचायतों के कोर्ट को नियमितरूप से दीवानी और फौजदारी के अधिकार भी हैं।

इस रियासत में ९३ तोपें १५०० सवार और ३१८२ पैदल फौज के जवान हैं। अनियमित फौज (Irregular Troops) में २००० घोड़े और १८०६ पैदल सिपाही हैं। यह रियासत लगभग १४०००० रुपये सैनिक खर्च के लिये व्यय करती है। पुलिस में १०२४ अफसर और ३९३८ साधारण कान्स्टेबल हैं, इनमें १९९ सवार भी हैं।

श्रीमान् बड़ौदा नरेश ने शासन के प्रत्येक विभाग को बड़ी ही उत्तमता से संगठित कर रक्खा है। वहाँ की सुव्यवस्था देखने योग्य है। प्रत्येक विभाग के कार्य का समय २ पर खुद महाराजा साहब निरीक्षण करते हैं। आपने कई विभागों में अनुकरणीय सुधार किये हैं। आपने लेण्ड रेव्हेन्यू सर्व्हे की नींव वैज्ञानिक ढाँचे पर (Scientific) डाली है। आपने जमीन का नया बन्दोबस्त (New Settlement) करवा कर जमीन की दर-बारी (tenure) नियमित कर दी है। पहले अलग अलग जमीन का अलग २ जमा था। आपने यह पद्धति बदल कर जमीन के गुणानुसार उसकी दर एक-सा कायम कर दी है। कर वसूल करने की पद्धति में भी बहुत सुधार कर दिया है। इससे सब किसानों को समान सुविधाएं प्राप्त होगईं। किसानों पर जो पहले कई प्रकार की लागतें लगती थीं वे सब आपने बन्द कर दी हैं। जमीन कर भी आपने पहले से कम कर दिया है। निकास का महसूल (Transit duties) भी आपने उठा दिया है। सायर महसूल भी पहले की अपेक्षा कम है। गाँव के लोगों के व्यापार धन्धे आदि पर जो कई प्रकार के सरकारी कर लगते थे उन्हें उठाकर इनकम टेक्स की नियमित पद्धति शुरू कर दी है।

खेती की तरक्की पर भी श्रीमान् का विशेष ध्यान रहा है आप इस बात का प्रयत्न कर रहे हैं कि किसान लोग वैज्ञानिक ढङ्ग जे खेती करने लगें और अपनी उपज बढावें। इसके लिये आपने अपने राज्य में कई प्रयोग-क्षेत्र (Experimental farms) खोल रखे हैं। इनमें खेती सम्बन्धी अनेक-प्रयोगों की आजमाइश होती है। किसानों को वैज्ञानिक खेती की पद्धतियाँ बतलाई जाती हैं। अच्छे से अच्छा बीज उन्हें दिया जाता है। किसानों को खेती के नये औजारों का उपयोग बतलाया जाता है, जिससे वे कम परिश्रम और कम मजदूरी में ज्यादा से ज्यादा उपज कर सकें। चार कृषि-विद्या-विशारद (Graduates of Agriculture) इस कार्य्य के लिये नियुक्त किये गये हैं कि वे गाँव गाँव में दौरा कर व्यावहारिक रूप से किसानों को खेती के नये से नये तरीके बतलावें। ये लोग वैज्ञानिक खेती और सहकारिता पर किसानों के सामने व्याख्यान भी देते हैं और उन्हें उनके तत्व समझाते हैं। किसानों को मेजिक लेन्टर्न की तस्वीरों के द्वारा उन कीड़ों की लीलाओं को समझाते हैं जो खेती को बरबाद करते हैं। पशुओं के इलाज के लिये कई मध्यवर्ती केन्द्र-स्थलों में राज्य की ओर से पशु-औषधालय खुले हुए हैं। इनमें पशुओं की बीमारी का ज्ञान रखने वाले योग्य सर्जन रखे जाते हैं। ईसवी सन् १९१८—१९ में इन पशु-औषधालयों में ५८१० पशुओं की चिकित्सा हुई।

ईस्वी सन् १९१८ में श्रीमान् ने लोगों की आर्थिक स्थिति जाँचने के लिए तथा उनके आर्थिक अभ्युदय के समुचित उपायों को सुझाने के लिये सुयोग्य अनुभवी सज्जनों की एक कमेटी मुकर्रर की थी। इस कमेटी के सामने यह सवाल भी उपस्थित था कि रियासत में अच्छे से अच्छा ऊनी माल भी तय्यार हो सकता है या नहीं। इसके लिये यह जाँच होने लगी कि राज्य में कहाँ कहाँ कितनी और किसी श्रेणीकी ऊन पैदा होती है? इसके अलावा बड़ौदे में कौन २ से साम्पतिक द्रव्य (Economical products) पैदा होते हैं। और उनका राज्य की आर्थिक उन्नति में किस प्रकार उपयोग किया जारा सकता है, इस बात की जाँच करना भी इस कमेटी का

उद्देश्य था। रियासत में कौन २ से उद्योग धन्धों के लिये अनुकूल क्षेत्र उपस्थित हैं और वे किस प्रकार सफलतापूर्वक चलाये जा सकते हैं आदि बातों पर विचार करना भी इसी का काम था। इसने खोज करने के बाद कई हितकारी बातों को प्रकट किया। जाँच से मालूम हुआ कि इस रियासत में "मेग्नेशियम सॉल्टस" सफलतापूर्वक तयार किये जा सकते हैं और भी इसी प्रकार की कई बातें प्रकट की गईं।

इस समय बड़ौदा में कई रूई की मिलें, रासायनिक तथा रँगने के उद्योग धन्धे, मंगलोर टाइप के केवलू बनाने के कारखाने, खिलौने बनाने के कारखाने आदि कई कार्य्य बड़ी सफलता के साथ चल रहे हैं।

रियासत की ओर से कई अनुभवी सज्जन इसलिए नियुक्त किये गये हैं कि वे जनता को आजकल के कातने बुनने के तथा दूसरे उद्योग धन्धों के नवीन सुधरे हुए यन्त्रों का उपयोग समझावें। नवीन सुधरे हुए यंत्रों के प्रचार से राज्य की औद्योगिक उन्नति में बड़ी सहायता पहुँची है। विविध उद्योग धन्धों की विविध शाखाओं में वहाँ अच्छी उन्नति हो रही है।

जो लोग किसी प्रकार के नये उद्योग धन्धे खोलना चाहते हैं, उन्हें राज्य की ओर से अच्छा उत्तेजन मिलता है। उन्हें रियासत के (Experts) से मुफ्त सलाह भी मिल जाती है। कहने का अर्थ यह है कि जिन २ बातों से लोगों की औद्योगिक और आर्थिक उन्नति हो, इन्हें करने में राज्य कभी आगा पीछा नहीं सोचता है।

कृषि की उन्नति के लिए किसानों को सुभीते से कम व्याज पर कर्ज मिलने के लिए राज्य ने कई सहकारी समितियाँ खोल रखी हैं। ईसवी सन् १९१८ में इस प्रकार की सहकारी समितियों की संख्या जिनका रजिस्ट्रेशन बड़ौदे में हुआ था ४१७ थीं। इसके अतिरिक्त वहाँ दो सेन्ट्रल बेन्क, बेकिंग यूनियन्स, ३६९ एग्रिकलचरल क्रेडिट सोसायटियाँ, ८ एग्रिकलचरल नॉन-क्रेडिट सोसाइटियाँ हैं।

अपनी प्रिय प्रजा में शिक्षा-प्रचार करने के लिए एवं उसके अन्तःकरण

को सुसंस्कृत बनाने के लिये महाराजा बड़ौदा ने जो कुछ किया है वह प्रत्येक भारतीय नरेश के लिए अनुकरणीय है। ईस्वी सन् १८९३ में श्रीमान् ने पहले पहल प्रयोग के लिए अपने राज्य के एक तालुके में शिक्षा अनिवार्य्य कर दी। इसके बाद ईसवी सन् १९०६ में श्रीमान् ने अपने सारे राज्य में शिक्षा अनिवार्य्य कर दी। इस समय अगर कोई माता पिता अपने पुत्र या पुत्रियों को नियमित रूप से निश्चित अवस्था तक स्कूल भेजने में आनाकानी करता है तो वह राज्य नियमानुसार दण्ड का भागी होता है।

ईसवी सन् १९१८ की शासन-रिपोर्ट से पता चलता है कि उस साल वहाँ २८६२ शिक्षा सम्बन्धी संस्थाएँ थीं और इनमें २०२०३४ विद्यार्थी शिक्षा लाभ कर रहे थे। सन् १९१७ में विद्यार्थियों की संख्या इससे भी अधिक थी। सन् १९१८ में यह संख्या कम होने का कारण एन्फ्लूएन्जा की बीमारी थी। बड़ौदा राज्य में अंग्रेजी शिक्षा के लिये एक कॉलेज, १५ हाईस्कूल, एक कन्या हाईस्कूल ३७ एग्लोवर्नाक्यूलर स्कूल्स, ९ हायर स्टेन्डर्ड क्लासेस, एक प्रिन्सेस स्कूल और दो विशेष संस्थाएँ (special institutions) हैं। देशी भाषा की शिक्षा के लिए पाँच ट्रेनिंग कालेज, २३१६ स्कूल्स लड़कों के लिये और ३८९ स्कूल्स लड़कियों के लिए हैं। वहाँ एक कला-भवन है जिसमें बड़ौदा राज्य के तथा भारत के अन्य प्रान्तों के कई विद्यार्थी उद्योग धन्धों की तथा कई प्रकार के हुनरों की शिक्षा पाते हैं। इन सब के अतिरिक्त वहाँ ८५ ऐसी संस्थाएँ हैं जिनका सम्बन्ध विविध प्रकार की शिक्षाओं से है।

बड़ौदा कॉलेज में एक प्रिन्सिपल, १६ प्रोफेसर, तीन व्याख्याता और लगभग एक दर्जन अन्य अध्यापक हैं। कॉलेज में एक विशाल पुस्तकालय भी है जिसमें लगभग १०००० ग्रन्थ हैं। वहीं एक (Observatory) भी है।

सारी रियासत में २९८३ सरकारी प्राइमरी स्कूल, २३ सरकार द्वारा सहायता-प्राप्त और ३० अन्य प्राइमरी स्कूल्स हैं। वहाँ एक सरकारी अनाथालय भी है। अनाथों की शिक्षा का भी प्रबन्ध है। उन्हें उद्योग-धन्धों की शिक्षा दी जाती है। इन शिक्षा-संस्थाओं के लिए रियासत का लगभग १२०००००

रुपया प्रतिसाल खर्च होता है। केवल अंग्रेजी शिक्षा के लिए ४००००० रुपया व्यय होता है। सब मिला कर शिक्षा के लिए यह रियासत प्रतिसाल २३०००००) खर्च करती है। हम समझते हैं कि एक दो रियासतों को छोड़ कर भारत की कोई रियासत शिक्षा के लिए इतना रुपया खर्च नहीं करती है। श्रीमान् बड़ौदा नरेश का यह अत्युच्च आदर्श अवश्य ही अनुकरणीय है।

जिस कला-भवन का हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं उसकी नाव ई० सन् १८९० में डाली गई थी। इसमें विविध प्रकार के कला-कौशल्य, मेकेनिकल इञ्जिनियरिङ्ग, व्यावहारिक रसायन-शास्त्र और विविध प्रकार की व्यापारिक और औद्योगिक शिक्षाएँ दी जाती हैं। बड़ौदे में एक सुन्दर अजायबघर भी है।

ई० सन् १९१०-११ में बड़ौदे में श्रीमान् ने शिक्षा-विभाग के अन्तर्गत एक पुस्तकालय विभाग भी खोला है। सबसे बड़ा पुस्तकालय खास बड़ौदा नगर में है। यह बड़ौदा सेन्ट्रल लायब्रेरी के नाम से मशहूर है। इसमें कोई ६४००० छपे हुए ग्रन्थ व ७००० संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। इसमें लगभग २२२ समाचार तथा मासिक-पत्र आते हैं। वहाँ स्त्रियों के लिये भी एक पुस्तकालय है, इसमें कोई १५०० ग्रन्थ हैं। ये ग्रन्थ विशेष रूप से गुजराती भाषा में हैं। इसमें कई देशी भाषाओं के पत्र तथा पत्रिकाएँ भी आती हैं। इसके अतिरिक्त बड़ौदा राज्य के ग्रामों में कोई ५३६ पुस्तकालय हैं। इन सब में मिला कर कोई २४३८४२ ग्रन्थ हैं। इसके अतिरिक्त वहाँ चलते फिरते पुस्तकालयों (travelling Library) की पद्धति भी निकाली है। इस प्रकार के १८० पुस्तकालय ग्राम ग्राम में घूमते रहते हैं। इनमें सब मिलाकर कोई १५२७५ ग्रन्थ हैं।

श्रीमान् बड़ौदा नरेश का ध्यान प्राचीन पंचायत की स्थापना की ओर भी विशेषरूप से आकर्षित हुआ है। आपके प्रयत्न से वहाँ स्थान २ पर ग्राम्य पंचायतें स्थापित हो गई हैं। इनमें आपने चुनाव की पद्धति (Elective System) भी जारी कर दी हैं। उन्हें शासन-सम्बन्धी कई अधिकार

(administrative powers) भी प्रदान किये हैं। ग्राम की सड़कें, कुएँ, धर्मशालाएँ, देव-स्थान, आदि की देख-रेख का काम भी इन पंचायतों के जिम्मे रक्खा गया है। इन पंचायतों को दीवानी मामलों को फैसल करने में ग्राम्य सिविल जज्ज को सहायता देनी पड़ती है। कई ग्राम्य पंचायतों को दीवानी फौजदारी के भी अधिकार हैं।

ई० सन् १९०४ में तालुका और डिस्ट्रिक बोर्डों की भी स्थापना की गई है। सड़कें, तालाब, कुएँ, नहरें बनवाने का तथा धर्मशालायें, डिस्पेन्सरियाँ और बाजारों की देख-रेख करने का काम इनके जिम्मे किया गया है। शहर की सफाई और प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबन्ध भी यही करते हैं। अकाल के समय लोगों को सहायता पहुँचाना भी इनका कर्तव्य है।

हर एक कस्बे में म्युनिसिपेलेटि है। इनमें से बहुत सी म्युनिसिपेलेटियाँ प्रायः स्वतन्त्र हैं और वे अपना शासन आप करती हैं।

इस राज्य में सब मिला कर कोई ६१ अस्पताल और डिस्पेन्सरियाँ हैं। इन पर राज्य लगभग ४५२००० रुपये खर्च करता है।

श्रीमान निजाम-उल-मुल्क नवाब मीर सर उस्मान अली खाँ बहादुर फ़तहजंग
जी० सी० एस० आई०, जी० बी० ई०, निजाम हैदराबाद।

रतवर्ष में हैदराबाद सब से बड़ी रियासत है। पर यह उतनी प्राचीन नहीं है, जितनी भारतवर्ष की कई अन्य रियासतें हैं। जिस विस्तृत स्थान में इस समय हैदराबाद का राज्य है, अत्यन्त प्राचीनकाल में वहाँ द्रविड़ राजाओं का राज्य था। पर इस सम्बन्ध में अब तक ठीक २ ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिले हैं। ईसवी सन् पूर्व २७२ से २३१ वर्ष में इस प्रान्त पर सम्राट् अशोक का अखण्ड शासन था। इसके बाद यहाँ एक के बाद एक तीन हिन्दू राज्यवंशों ने राज्य किया। तेरहवीं सदी के अन्त में अलाउद्दीन खिलीजी की अधीनता में मुसलमानों ने इस प्रान्त पर हमले शुरू किये। वे लगातार दक्षिण के हिन्दू राजाओं से लड़ते रहे। आखिर में सम्राट् औरङ्गजेब ने अपनी ताकत के जौहर दिखलाए और उसने दक्षिण हिन्दुस्तान का बहुत सा हिस्सा फतह कर लिया। दक्षिण में आसफ खाँ नामक अपने बहादुर सिपहसालार को "निजाम-उल-मुल्क" का खिताब देकर दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आसफ खाँ जंग के मैदान में जैसे बहादुर थे, वैसे ही बुद्धिमान और दूरदर्शी राजनीतिज्ञ भी थे।

सम्राट् औरङ्गजेब की मृत्यु के बाद जब मुगल साम्राज्य अन्तिम साँसें गिन रहा था; जब वह मृत्यु की शय्या पर पड़े २ आखिरी दम ले रहा था, उस समय उस स्थिति का फायदा उठाकर आसफ खाँ ने अपने स्वातन्त्र्य की घोषणा कर दी। इस समय दिल्ली की हुकुमत बहुत कमजोर पड़ गई थी। उधर दिल्ली के बादशाह ने खानदेश के सूबेदार को हुक्म दिया कि, वह आसफ खाँ पर फौजी चढ़ाई कर दे। ऐसा ही हुआ। उलटे मुँह की खानी पड़ी। लड़ाई में आसफ खाँ की जीत हुई। बस उनकी स्थिति और भी मजबूत

हो गई। आसफ खाँ ने हैदराबाद को अपने राज्य की राजधानी बनाई। उन्होंने अपने निज का राज्य कायम कर दिया। वर्तमान हैदराबाद निजाम उन्हीं आसफ खाँ के वंशज हैं।

ईसवी सन् १७४८ में आसफ खाँ की मृत्यु हो गई। इनकी मृत्यु के बाद इनके दूसरे पुत्र नासिरजंग और भतीजे मुजफ्फरजंग में राज्य-गद्दी के लिये झगड़ा चला। दोनों में लड़ाई ठनना चाहती थी। विद्रोह मचना चाहता था। पर इसी समय हिन्दुस्थान में एक दूसरी परिस्थिति उत्पन्न हो रही थी। भारतवर्ष के आधिपत्य के लिये अँग्रेज और फ्रेंच परस्पर लड़ रहे थे। इन्होंने अपने २ मतलब के लिये इनमें से एक २ का पक्ष लिया। अंग्रेजों ने आसफ खाँ के दूसरे पुत्र नासिरजंग के पक्ष का अवलम्बन किया।

मुजफ्फरजंग की फौज में बदनामी छा जाने से उन्होंने अपने आपको अपने चाचा नासरिजंग के हाथ में आत्म-समर्पण कर दिया। नासिरजंग ने मुजफ्फरजंग को कैद कर अँधेरी कोठड़ी में बन्द कर दिया। नसिरजंग भी इसी समय के लगभग फ्रेंच सेना के पठान सिपाहियों के हाथ मारे गये। बस इस वक्त मुजफ्फर जंग की तकदीर चमकी। वे जेल से छोड़ दिये गये और गद्दी पर बैठा दिये गये। इस समय हैदराबाद में फ्रेंचों की तूती बोलने लगी। पर मुजफ्फरजंग का राज्य भी अल्पस्थायी रहा। वे भी नासिरजंग की तरह तलवार की घाट उतार दिये गये।

इसके बाद फ्रेंचों ने निजाम-उल-मुल्क आसफ खाँ के तीसरे पुत्र सलाबतजंग को हैदराबाद का निजाम घोषित कर दिया। पर आसफ खाँ का सब से बड़ा पुत्र गजीउद्दीन अपना दिल्ली का पद त्याग कर एक बड़ी फौज के साथ सलाबतजंग को राज्यच्युत करने के लिये हैदराबाद पर चढ़ आया। इस समय मराठों ने भी इनको खूब मदद की। पर इनके भाग्य में हैदराबाद की राज-गद्दी नहीं लिखी थी। अकस्मात् इनकी मृत्यु हो गई। इससे इस बखेड़े का यहीं खात्मा हो गया।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि, जब से सलाबतजंग हैदराबाद

की मसनद पर बैठे तब से वहाँ फ्रेंचों का खूब दौर-दौरा था। वहाँ जो कुछ वे चाहते थे वही होता था। पर क्लाइव की तेज गतिविधि ने फ्रेंचों का ध्यान उन प्रान्तों की ओर विशेष रूप से खींचा, जो उन्होंने पहले फतह किये थे।

अंग्रेजों ने दिल्ली के बादशाह से कुछ प्रान्तों में तथा पश्चिमीय समुद्र किनारे के बन्दरों पर व्यापार करने का अधिकार प्राप्त कर लिया था। पर ईसवी सन् १७६१ में निजाम सलाबतजंग के वारिस अली खाँ ने इसका विरोध किया। उन्होंने अंग्रेजों की गतिविधि को रोकने के लिये एक बड़ी फौज भी तैयार की। आखिर ब्रिटिश और निजाम में आपसी समझौता हो गया। अंग्रेजों का उपरोक्त जिलों पर अधिकार कायम रक्खा गया। पर साथ ही यह शर्त भी तय हुई कि, ब्रिटिश निजाम को ६००००० प्रति साल दें और जब २ निजाम को आवश्यकता पड़े, तब तब वे उन्हें फौज की मदद भी दें। जिन जिलों का ऊपर उल्लेख हुआ है, वे "नार्दर्न सरकार" के नाम से मशहूर हैं।

ईसवी सन् १७८० के लगभग कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं, जिन्होंने हैदराबाद के भविष्य पर बड़ा प्रभाव डाला। उन घटनाओं का संक्षिप्त सारांश इस प्रकार है —"मैसूर के सुलतान हैदरअली की मृत्यु हो जाने पर उनका पुत्र टिपूसुल्तान गद्दी-नशीन हुआ। इसने आसपास के उन मुल्क पर जिन पर अँग्रेजों ने अधिकार कर रक्खा था तथा हैदराबाद राज्य के प्रान्तों पर हमले करने शुरू कर दिये। इससे टिपू के खिलाफ अंग्रेज और हैदराबाद के निजाम मिल गये। दोनों ने टिपू को अपना दुश्मन मान कर उस पर संयुक्त आक्रमण (Combined attack) करने का निश्चय किया। पर टिपू के पास भी बहुत बड़ी सेना थी, इसके अतिरिक्त वह रण-कुशल भी था। अतः एव बहुत दिन तक वह ज्यों त्यों मुकाबला करता रहा। पर चारों ओर उसके दुश्मन थे। एक ओर तो मराठे उसके नाकों दम कर रहे थे। दूसरी ओर अंग्रेज और हैदराबाद के निजाम उसकी छाती पर मूँग दल रहे थे। अन्त में ईसवी सन् १७९८ में टिपू सुल्तान अंग्रेजों से हार गया और वह लड़ता

हुआ एक बहादुर सिपाही की तरह युद्ध में मारा गया। इस समय विजेताओं के हाथ जो मुल्क लगा, उसमें २४०००००) प्रति साल आमदनी का मुल्क हैदराबाद निजाम के हिस्से में आया। लॉर्ड वेलेस्ली, जो उक्त युद्ध में ब्रिटिश फौजों का सञ्चालन कर रहे थे, लिखते हैं—"It would have been impossible to conquer the dominions of Tippu had it not been for the active support and co-operation of Nigamali. अर्थात् अगर निजामअली की सहायता और सहयोग न मिलता तो टिपू सुल्तान का मुल्क जीतना असम्भव होता।

इसके बाद ईसवी सन् १८०० में निजाम और ब्रिटिश सरकार के बीच एक सुलह हुई। इसमें यह तय हुआ कि, निजाम अंग्रेज सरकार के लिये अपने खर्च से ८००० पैदल और १०००० घुड़सवारों की सहायक फौज रखें और उसका सारा खर्चा निजाम दे। इसके अतिरिक्त बिना अंग्रेज सरकार की अनुमति के निजाम किसी के साथ युद्ध की घोषणा न करें। इसके साथ अंग्रेज सरकार ने निजाम और उनके दुश्मनों के बीच के झगड़े तय कर देने का वचन दिया।

पाठक जानते हैं कि टिपू का बहुत सा मुल्क निजाम साहब के हिस्से में आया था। पर यह उनके हाथ में न रहने पाया। ब्रिटिश कूटनीति ने (British Diplomacy) ने उसे उनके हाथ से ले लिया। निजाम पर अतिरिक्त फौजी खर्च का भार लाद कर उनसे वह मुल्क ले लिया गया जो टीपू से उन्हें प्राप्त हुआ था। इस तरह सहज ही में कोई २४०००० आमदनी का मुल्क निजाम के हाथों से चला गया।

इसके तीन वर्ष बाद निजाम ने बरार के राजा के खिलाफ अंग्रेजों की मदद की। इसके बदले में उक्त राजा से जीते हुए मुल्क का एक हिस्सा निजाम को भी मिला।

इस प्रकार कई प्रकार के चढ़ाव उतार तथा परिवर्तन देख कर हैदराबाद के तत्कालीन निजाम अली का ई० सन् १८०३ में देहान्त हो गया। आपके

बाद सिकन्दर खाँ गद्दी पर बैठे। इन्होंने अपनी प्रजा के हित की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। इन्होंने राज्य का सारा कारोबार अपने दीवान वजीर मीर-आलम और अपने जामाता मुनीर-उल-मुल्क को सौंप दिया था। इन लोगों ने भी निजाम की तरह ऐशो आराम की जिन्दगी बसर करना ही ठीक समझा। राज्य कारोबार बिगड़ने लगा। प्रजा तंग होने लगी। आखिर ब्रिटिश सरकार ने हस्तक्षेप किया। उसने राज्य-शासन का सूत्र चलाने के लिए कायस्थ जाति के चन्दूलाल नामक एक अनुभवी मनुष्य को मुकर्रर किया। इसके समय में गरीब रिआया और भी तंग होने लगी। उस पर अत्याचार होने लगे। इस बात को अंग्रेज सरकार के एक ऊँचे अधिकारी ने भी अपनी रिपोर्ट में स्वीकार किया है। चन्दूलाल बड़ा शक्तिशाली हो गया। वह अपने सामने किसी को कुछ न समझने लगा। निजाम के दो लड़कों ने इसे निकलवाने के लिये षड्यन्त्र किया, पर वे सफल न हो सके। उलटे वे कैद कर राज्य कैदी (State Prisoners) के रूप में रखे गये। जिस आदमी को वे अधिकारच्युत करना चाहते थे, वे ही उसकी दया के भिखारी बन गये। इसे कहते हैं—"कर्मणो विचित्रा गतिः।"

ई० सन् १८२९ में नीजाम सिकन्दर का देहान्त हो गया। उनके बाद उनके सबसे बड़े पुत्र नासिरुद्दौला मसनद पर बैठे। इस वक्त चन्दूलाल ही हैदराबाद के प्रधान मन्त्री थे। उन्होंने कर वसूली का काम अपने ही आदमियों के सुपुर्द रखा था। इससे खजाने में हानि पहुँचने लगी। थोड़े ही समय के बाद चन्दूलाल की मृत्यु हो गई। चन्दूलाल का नाम आज भी हैदराबाद में मशहूर है। कहा जाता है कि उन्होंने एक प्रकार हैदराबाद पर राज्य किया। आज भी वहाँ "चन्दूलाल का हैदराबाद" की कहावत मशहूर है। यद्यपि चन्दूलाल के शासन में कई दोष थे, उनकी कई बातें निन्दास्पद थीं, पर उन्होंने कुछ ऐसी बुद्धिमत्ता के काम भी किये थे जिन्हें उनके बाद आने-वाले मन्त्रियों ने प्रशंसा की दृष्टि से देखा है।

ई० सन् १८५३ में हैदराबाद के जिम्मे अंग्रेज सरकार ने एक बड़ी

रकम पावना निकाली और इसके बदले में निजाम सरकार को बरार प्रान्त अंग्रेज सरकार के पास गिरवी रखना पड़ा। इस सम्बन्ध में अधिक प्रकाश वर्तमान निजाम महोदय के उस पत्र में मिलेगा, जो अभी उन्होंने प्रकाशित किया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि बरार के चले जाने से निजाम को हार्दिक दुःख और असाधारण मानसिक कष्ट हुआ।

ई० सन् १८५३ में हैदराबाद के दिन कुछ फिरे और सालारजंग नामक एक अत्यन्त अनुभवी और योग्य सज्जन वहाँ के दीवान बनाये गये। सर सालारजंग ने राज्य के भिन्न २ शासन-विभागों को सुसङ्गठित किया। इन्होंने राज्य का इतना अच्छा इन्तजाम किया कि पहले की गड़बड़ और अशान्ति बहुत कुछ मिट गई। चारों ओर अशान्ति और अव्यवस्था के बदले शान्ति और व्यवस्था का साम्राज्य हो गया। उन्होंने पुलिस-विभाग को इतना सुधारा कि वहाँ जो चोरियाँ और डकैतियाँ नित्य की घटनायें हो गई थीं, वे बहुत कुछ मिट गईं। रिश्वतखोरी भी पहले की अपेक्षा कम हो गई। उन्होंने बड़ी मजबूती के साथ चोर और डाकू कौमों को हैदराबाद रियासत में बसने से रोका। आपके सुशासन की वजह से राज्य की आमदनी भी बढ़ी। लोगों की सुख-समृद्धि में भी बहुत उन्नति हुई। ये सब बातें देख कर निजाम साहब ने आपके अधिकार भी बहुत कुछ बढ़ा दिये। इसी समय हैदराबाद के तत्कालीन निजाम नासीरुद्दौला का देहान्त हो गया और उनके पुत्र आसफुद्दौला मसनद पर बैठे। इनके मसनद पर बैठते ही सन् १८५७ का प्रख्यात सिपाही-विद्रोह की आग ने सारे भारतवर्ष में सनसनी पैदा कर दी। ब्रिटिश राज्य की जड़ हिलने लगी। ऐसे कठिन और विपत्ति के समय में निजाम महोदय ब्रिटिश सरकार के मित्र बने रहे। उन्होंने इस समय अपनी फौजों द्वारा ब्रिटिश सरकार की पूरी २ सहायता की। इस पर प्रसन्न होकर ब्रिटिश सर-कार ने निजाम के साथ एक नयी सन्धि की। इसमें नालडंग और रायपुर का दुआब प्रान्त, जिसकी आमदनी लगभग २०००००० है, निजाम महोदय को

वापस लौटा दिया गया। इसके अतिरिक्त उन्हें ५०००००० का कर्ज भी माफ कर दिया गया। हाँ, बरार प्रान्त लौटाने की इस समय भी उदारता न दिखलाई गई। उसे ब्रिटिश सरकार ने बतौर ट्रस्ट के रखा !! जब विद्रोहाग्नि शान्त हो गई, तब तत्कालीन बड़े लाट लॉर्ड केनिंग ने तत्कालीन निजाम और उनके सुयोग्य दीवान सर सालारजंग को उस महान् सहायता के बदले में, जो उन्होंने इस भीषण विपत्ति के समय ब्रिटिश सरकार को दी थी, हार्दिक धन्यवाद दिया और उनके बड़े उपकार माने। इतना ही नहीं, लॉर्ड केनिंग ने भारत सरकार की ओर से निजाम को १०००००) भेंट किये तथा उच्च उपाधियों द्वारा उनका और सर सालारजंग का सम्मान किया। सर सालारजंग को भी ब्रिटिश सरकार की ओर से ३००००) का पुरस्कार मिला।

अब फिर सर सालारजंग को राज्यशासन सुधारने के सुअवसर प्राप्त हुए। और उन्होंने शासन के भिन्न २ विभागों को सुधारना शुरू किया उनके इस प्रशंनीय कार्य्य में धनवान मुसलमानों द्वारा बड़ी २ बाधाएं उपस्थित की गईं। एक वक्त उनकी जान लेने का भी प्रयत्न किया गया, पर निष्फल हुआ। उन्होंने हैदराबाद के शासन को बहुत कुछ ऊँची श्रेणी पर पहुँचा दिया।

ईसवी सन् १८६९ में निजाम आसफुद्दौला साहब की भी मृत्यु हो गई। आपके बाद हैदराबाद के भूतपूर्व निजाम प्रिन्स महबूब अलीखाँ बहादुर हैदराबाद की मसनद पर बैठे। इस समय आपकी अवस्था केवल तीन वर्ष की थी। अतएव भारत सरकार ने हैदराबाद के शासन का सारा भार सर सालारजंग पर रखा। आपकी सहायता के लिये "कौन्सिल ऑफ रिजेन्सी" भी रक्खी गई।

निजाम महोदय की शिक्षा के लिये अच्छा प्रबन्ध किय गया। आपको शिक्षा देने के लिये योग्य अनुभवी और सच्चचरित्र शिक्षक रखे गये। श्रीमान् ने फारसी, अर्बी और हिन्दुस्तानी भाषा में अच्छी पारदर्शिता प्राप्त कर ली। आपने अँग्रेजी भाषा पर भी अच्छा अधिकार जमा लिया।

यहाँ फिर यह बात कह देना आवश्यक है कि हैदराबाद के शासन-कार्य्य में सर सालारगंज ने जिस अपूर्व योग्यता, असाधारण राजनीतिज्ञता, अलौकिक बुद्धिमत्ता का परिचय दिया उसे देखकर बड़े २ अंग्रेज राजनीतिज्ञ दाँतों अंगुली दबाते हैं। एक सुप्रख्यात् अंग्रेज राजनीतिज्ञ ने तो यहाँ तक कह दिया कि, संसार में अब तक सर सालारजंग और सर० टी० माधवराव जैसे राजनीतिज्ञ पैदा नहीं हुए। निजाम महोदय ने भी आपका आप के योग्यतानुरूप ही सत्कार और सम्मान रक्खा।

ईसवी सन् १८७५ में श्रीमान् निजाम महोदय तत्कालीन प्रिन्स आफ् वेल्स (पीछे जाकर एडवर्ड सप्तम) से मिलने के लिये बम्बई में निमन्त्रित किये गये। पर इस समय अस्वस्थता के कारण श्रीमान् निजाम महोदय बम्बई न जा सके। आपने अपने प्रतिनिधि के रूप में सर सालारजंग को बम्बई भेजा। प्रिंस आफ वेल्स ने वहाँ आपका बड़ा सत्कार किया। इतना ही नहीं, बड़े सम्मान के साथ आपको कुछ बहुमूल्य जवाहरात भी भेंट किये।

ईसवी सन १८७६ में हैदराबाद से सम्बन्ध रखने वाली कुछ महत्व-पूर्ण बातों के सम्बंध में इण्डिया ऑफिस के अधिकारियों के साथ बात चीत करने के लिये सर सालारजंग विलायत गये। वहाँ आपका बड़ा सम्मान हुआ। खुद महारानी विक्टोरिया ने बड़े सम्मान के साथ बंकिंगहेम पैलेस में भोजन करने के लिये आपको निमंत्रित किया।

ईसवी सन् १८८६ में आप विलायत से स्वदेश के लिये लौटे और ईसवी सन १८७७ के पहली जनवरी को महारानी विक्टोरिया के भारतवर्ष की सम्राज्ञी का पद धारण करने के उपलक्ष्य में दिल्ली में जो दरबार हुआ था, उसमें निजाम महाशय के साथ पधारे।

ईसवी सन् १८८४ की ५ फरवरी में श्रीमान् निजाम महोदय को राज्य के पूर्ण धिकार प्राप्त हुए। आपने बड़ी योग्यता से शासन किया। आप बड़े लोकप्रिय शासक थे। मुसलमान होते हुए भी आप पक्षपातशून्य थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक दृष्टि से देखते थे। आपका स्वभाव बड़ा

दयालु था। आप गरीबों की बड़ी सहायता किया करते थे। आप शासन का काम खुद देखते थे। आज भी हैदराबाद की प्रजा बड़े प्रेम से आपको स्मरण करती है।

ईसवी सन् १९११ के अगस्त मास में इन लोकप्रिय निजाम महोदय को अकस्मात् लकवा मार गया और उसी से आप इहलोक छोड़ने में विवश हुए। आपके स्वर्गवास के समाचार से सारे राज्य में शोक छा गया !! श्रीमान् सम्राट् और अन्य ब्रिटिश अधिकारियों ने आपके कुटुम्बियों के पास समवेदना और शोक-सूचक तार भेजे।

आपके बाद वर्तमान निजाम नवाब उस्मान अली खाँ बहादुर मसनद पर बैठे। आपका जन्म ई० स० १८८६ में हुआ था। आपका बचपन प्रायः महलों ही में व्यतीत हुआ। पर जब आपने युवावस्था में पैर रखा, तब आपकी शिक्षा का भार मि. ब्रायन ईगरटन (Brien Egerton) नामक एक उच्च-कुलोत्पन्न अंग्रेज के हाथ सौंपा गया। निजाम महोदय ने अंग्रेजी की अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। नवाब इमाद-उल-मुल्क नामक एक विद्वान मुसलमान सज्जन से अपने फारसी, अरबी और हिन्दुस्थानी भाषाओं में भी अच्छी पारदर्शिता प्राप्त कर ली। कहने की आवश्यकता नहीं कि आपके आस पास अधिकतर मुसलमान सज्जन ही रहने के कारण आप में आवश्यकता से अधिक इस्लाम धर्म्म की कट्टरता आ गई है।

ई० स० १९०६ में आपका विवाह नवाब जहाँगीर जंग की पुत्री के साथ हुआ। आपके तीन शाहजादे और एक शाहजादी हैं। इनमें नवाब मीर हिमायत खाँ बहादुर युवराज हैं।

ई० स० १९१२ में स्वर्गीय सर सालारजंग के पौत्र नवाब सालार जंग को आपने अपना प्रधान मंत्री नियुक्त किया। पर आपसे आपकी न बनी। इसलिए सालारजंग को एक वर्ष के बाद ही इस्तीफा देना पड़ा। ई० स० १९१३ के अक्टोबर मास में श्रीमान लॉर्ड हार्डिंज फिर हैदराबाद पधारे, जिनका नज़ाम साहब ने बड़ा सत्कार किया।

निजाम महोदय, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, इस्लाम धर्म्म के कट्टर पक्षपाती हैं। दुख के साथ कहना पड़ता है कि अपने आपने स्वर्गीय पिता की तरह हिन्दुओं को नहीं अपनाया। गुलबर्गा के दंगे में मुसलमानों के द्वारा हिन्दुओं पर जो जुल्म हुए उसमें आपके हाथ से हिन्दुओं को न्याय नहीं मिला। निरस्त्र और निर्दोष हिंदुओं पर भयंकर से भयंकर हमला करने वाले मुसलमान लोग बेदाग छोड़ दिये गये। हिंदुओं की अधिक संख्या होते हुए भी वहाँ की सरकारी नौकरियों में उनकी नाम-मात्र की संख्या है। कहने की आवश्यकता नहीं कि वर्तमान निजाम महोदय की इस नीति पर राज्य के हिंदुओं में घोर असंतोष छा गया था। ब्रिटिश भारत में इसके लिये सभाएँ हुईं जिनका हाल समाचारपत्रों के पाठकों को विदित ही है। इस नीति के कारण राज्य में बड़ी अव्यवस्था हो गई थी और ब्रिटिश सरकार को हस्तक्षेप भी करना पड़ा। फिलहाल हैदराबाद में जो नई व्यवस्था हुई है वह इसी हस्तक्षेप का परिणाम प्रतीत होती है।

ई० स० १९२६ में निज़ाम महोदय ने बरार का प्रश्न बड़े जोर से उठाया और इस सम्बन्ध में उन्होंने समाचारपत्रों में अपना एक लम्बा चौड़ा वक्तव्य प्रकाशित किया। तत्कालीन व्हाइसराय लॉर्ड रीडिंग ने इसका कड़ा उत्तर दिया, जो समाचारपत्रों में यथासमय प्रकाशित हो चुका है।

हैदराबाद और उद्योग-धंधे

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि, प्राचीन काल से अपने अद्भुत कला-कौशल्य के लिये इस प्रान्त की कीर्ति ठेठ मिश्र, ग्रीस और इरान तक फैली हुई थी। इस प्रान्त में सोने औत चांदी के काम किये हुए बढ़िया वस्त्र बढ़िया मलमलें, मुलायम रेशम, आदि कई काम बनते थे। इनकी सुन्दरता से तत्कालीन संसार मोहित था। यद्यपि कालचक्र के परिवर्तन से इस वक्त वहाँ इतनी बढ़िया चीजें तैयार नही होती हैं, पर फिर भी समयानुसार यहाँ उद्योग धन्धों और कलाकौशल्य की सन्तोषकारक उन्नति हो रही है। इस वक्त

हैदराबाद राज्य में रूई की कोई ८० जरीनिंग फेक्टरियाँ हैं। तीन बड़े २ कपड़ों के तथा ६२ आटे के मिल हैं। इसके अतिरिक्त ३३ चांवल निकालने के मिल, एक सिल्क के केवलु बनाने की तथा एक बर्फ की फेक्टरी है। यहाँ एक आयर्न फाउन्डरी भी है। वहाँ वाटरपम्पिंग स्टेशन भी है। वहाँ सोने और चांदी के बढ़िया तार तैयार होते हैं। कसीदे का काम भी वहाँ गजब का होता है। पिताम्बर की कीमत ५००) सौ रुपये तक रहती है। और भी यहाँ कई प्रकार के बढ़िया कम होते हैं।

हैदराबाद राज्य के उद्योग धन्धों को उत्तेजन देने के सदुद्देश से श्रीमान् निजाम ने ई० सन् १९१७ में वहाँ तैयार होनेवाली वस्तुओं की एक प्रदर्शनी की थी। इसी समय हैदराबाद के कई अनुभवी सज्जनों ने इस विषय पर कई पुस्तिकाएँ प्रकाशित की थीं कि वहाँ कौन कौन से उद्योग धन्धों के साधन हैं और वे किस प्रकार सफलतापूर्वक चल सकते हैं। इसी समय यह बात भी प्रकाश में आई थी कि, सारा भारतवर्ष जितना तिलहन विदेशों को भेजता है उसका ⅓ हिस्सा केवल हैदराबाद से जाता है।

हैदराबाद से प्रतिसाल ७,००,००,०००) रुपयों की रुई बाहर जाती है। इतना होते हुए भी वह एक साल में २,२३,३८,०००) रुपयों का रुई का तैयार और पक्का माल भी बाहर भेजता है। यहाँ से प्रतिसाल लाखों रुपयों की ऊन भी यूरोप को भेजी जाती है। अगर इसी ऊन का यहीं पक्का माल तैयार किया जावे तो रियासत को बहुत बड़ा फायदा हो सकता है।

ईस्वी सन् १९१६-१७ में हैदराबाद में १९३१०,०००) रुपयों के माल का कारोबार हुआ। वहाँ उद्योग-धन्धों और व्यापार का एक खास महकमा भी है। वहाँ के औद्योगिक और व्यापारिक विकास के लिये प्रयत्न करना उसका प्रधान कार्य्य है। उद्योग धन्धों की उन्नति रेल्वे के प्रचार पर भी बहुत कुछ निर्भर है, अतएव निजाम साहब अपने राज्य में रेल्वे को भी बढ़ा रहे हैं। ईस्वी सन् १९२० में वहाँ की रेल्वे का विस्तार ९६० मील था। वहाँ बड़ी लाईन भी है। स्टेट को रेल्वे से अच्छा मुनाफा होता है।

हैदराबाद में कई सार्वजनिक पुस्तकालय भी हैं। वहाँ के सबसे प्रधान पुस्तकालय का नाम "असाफिया स्टेट लायब्ररी" है। इसमें कोई २३६६३ ग्रन्थ हैं। इनमें १५९२७ अर्बी, फ़ारसी और उर्दू भाषा के हैं। शेष अंग्रेजी तथा अन्य युरोपीय भाषा के हैं।

हैदराबाद राज्य में कोई १०३ अस्पताल हैं। इनमें ८८ राज्य की ओर से हैं। विक्टोरिया जानाना अस्पताल की नींव ईस्वी सन् १९०६ में प्रिन्स ऑफ वेल्स (वर्तमान सम्राट् जॉर्ज) ने डाली थी। वहाँ एक मेडिकल स्कूल और यूनानी हिकमत स्कूल भी है। ईस्वी सन् १९१६--१७ में इनमें कोई ९८२३२६ रोगियों की चिकित्सा की गई।

हैदराबाद में पुरातत्त्व की दृष्टि से कई महत्त्व-पूर्ण स्थान हैं। औरंगाबाद जिले की एलोर और अजन्त की गुफाएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। एलोर की गुफाओं में पत्थर की नक्काशी जो काम हैं वह तो एकदम ही अपूर्व है। यह औरङ्गाबाद से कोई १४ मील की दूरी पर है। ये गुफाएँ हिन्दू, बौद्ध और जैन-धर्म से सम्बन्ध रखती हैं। बौद्धों से सम्बन्ध रखनेवाली १२, हिन्दुओं से तथा जैनियों से सम्बन्ध रखने वाली क्रम से १७ और ५ हैं। इसमें जो खास इमारत है उसे कैलाश कहते हैं। अजन्त की गुफाएँ खास अजन्त नाम के गाँव में हैं। यह जलगाँव से ३८ मील के अन्तर पर है। इनमें ४२ बौद्ध-मठ भी हैं। इनमें भी बौद्ध-काल की कारीगिरी का अच्छा नमूना मिलता है।

श्रीमती महारानी साहिबा ट्रावनकोर।

ट्रावनकोर राज्य का इतिहास
HISTORY OF THE TRAVANCOR STATE.

रतवर्ष की अति प्रगतीशील रियासतों में ट्रावनकोर का आसन बहुत ऊँचा है । अपनी प्रजा का मानसिक, बौद्धिक और आर्थिक विकास करने में इस राज्य ने प्रशंसनीय कार्य्य किया है । हम भारतवासियों को ट्रावनकोर के प्रगतिशील शासन के लिये योग्य अभिमान हो सकता है । यह राज्य सब दृष्टि से बड़ा भाग्यशाली है । राजाओं के महलों से लगा कर गरीबों के झोपड़ों तक में ज्ञान का प्रकाश आलोकित हो रहा है । राज्य-शासन में प्रजा का हाथ होने से वहाँ का शासन सभ्य होने का उचित दावा कर सकता है । प्रकृति देवी की भी इस राज्य पर पूर्ण कृपा है । वर्षा यहाँ समय पर होता है । इस से यहाँ क्वचित ही अकाल पड़ते हैं । सुमनोहर सरिताओं और चित्ताकर्षक झरनों से यह राज्य परिपूर्ण है । यहाँ के नैसर्गिक सौंदर्य को देखकर भारत के भूतपूर्व वाइसराय लॉर्ड कर्जन महोदय ने कहा थ "प्रकृति देवी ने इस देवभूमि को अपने सम्पूर्ण श्रृंगार से अलंकृत किया है । यहाँ सब ऋतुएं बड़ी आनंददायक प्रतीत होती हैं ।"

ट्रावनकोर का प्राचीन इतिहास अभी बहुत कुछ अंधकार में है । दंतकथाओं से प्रतीत होता है कि महर्षि परशुराम पूर्व्वी समुद्रतट से भानु नामक एक राजकुमार को राज्य करने के लिये यहाँ लाये थे । यह बात कहाँ तक सत्य है इस पर अधिक ऐतिहासिक अनुसंधान की आवश्यकता है । पर यह निश्चित है कि अति प्राचीन काल से इस राज्य पर सतत रूप से हिंदू राजाओं का राज्य रहता आया है । कहा जाता है कि परशुराम के बाद इस राज्य पर कई वर्षों तक ब्राह्मणों का राज्य रहा था । पीछे जाकर इन ब्राह्मणों में फूट पड़ गई और कैया परम से कैया येयूमल नामक पुरुष राज्य करने के लिये

बुलाया गया। इस मनुष्य के बाद कोई पच्चीस राजाओं ने ईस्वी सन २१६ से ४२७ तक राज्य किया। इस वंश में कुल शेखर पेयूमल नामक अति प्रख्यात् राजा हो गये। ये साधु कुल शेखर के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। ये वैष्णव-धर्मानुयायी थे। इन्होंने बड़ी शान्ति और गौरव के साथ राज्य किया। ट्रावनकोर के इतिहास में इनका नाम सूर्य्य की तरह प्रकाशित है। इनके समय में ट्रावनकोर का वैभव बहुत फैला हुआ था।

पेयूमल वंश का अन्तिम राजा चर्म्मन हुआ। उसने अपने राज्य को अपने संबंधियों में बाँट दिया। बस फिर क्या था? राज्य की शक्ति कमजोर हो गई और आसपास के बलशाली शत्रुओं की निगाह उस पर फिरी। यह राज्य चोल राज्य वंश के प्रतापी झंडे के नीचे आ गया। इसके बाद यह पांड्य लोगों के हाथों में चला गया। पर ये लोग भी यहाँ शान्ति से राज्य न कर सके। स्थानीय जमीदारों ने बलवे का झंडा उठाया और इससे यह राज्य मदुरा के नायक राजाओं के मातहत हो गया। अठारहवीं सदी के मध्य में आधुनिक ट्रावनकोर राज्य के जन्मदाता महाराजा मार्तण्ड वर्मा ने यहाँ अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर अपने आपको राज्य का स्वामी घोषित किया। आपने राज्य को पद्मनाथ स्वामी को अर्पण किया। आपको अपने राज्य-कार्य में आपके प्रधान सचिव अय्यन दालवा नामक सज्जन से बड़ी सहायता मिलती थी। ईस्वी सन् १७५१ में महाराजा मार्तन्ड का शरीरान्त हो गया और महाराजा रामवर्म्मा सिंहासनारूढ़ हुए। आपने इतिहास प्रसिद्ध ट्रावनकोरलाइन्स बनवाईं। आपके समय में मैसूर के सुल्तान हैदर अली ने इस रियासत पर हमला कर उसे लेने का प्रयत्न किया, पर डच लोगों की सहायता से महाराजा ने उसके सारे मनोरथ विफल कर दिये। इसके बाद सुल्तान टीपू ने भी इस राज्य पर अपना विजय-झंडा उड़ाना चाहा, पर वह भी सफलीभूत न हो सका। ई० स० १६८४ से इस राज्य के साथ अंग्रेजों का संबंध आरम्भ हुआ था। इसी साल राज्य के अन्तर्गत अर्जेगों मुकाम पर ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपनी एक फेक्टरी स्थापित की थी। ई० स० १७९५ में ईस्ट इंडिया

श्रीमान् महाराजा साहब ट्राव्हनकोर।

कम्पनी और महाराजा ट्रावनकोर के बीच में एक सन्धि हुई। इसमें उक्त कम्पनी ने तमाम विदेशीय आक्रमणों से राज्य की रक्षा करने की शर्त स्वीकार की।

महाराजा रामवर्म्मा के बाद महाराजा बलराम वर्म्मा गद्दीनशीन हुए। ये बड़े ही कमजोर शासक थे। इससे राज्य कई प्रकार के षड्यंत्रों का अड्डा बन गया। इसी समय कुछ लोगों ने राज्य में बलवे का झंडा उठाया, पर वे लोग दबा दिये गये। ई० स० १८०५ में ब्रिटिश सरकार के साथ इस राज्य की दूसरी संधि हुई। इसमें यह निश्चिय हुआ कि यह राज्य ब्रिटिश सरकार को आठ लाख रुपये खिराज दे।

महाराजा बलराम के बाद रानी लक्ष्मीबाई सिंहासन पर अधिष्ठित हुईं। आपके समय में रेसिडेंट कर्नल मनरो राज्य के सब कुछ थे। ई० स० १८१५ में रानी लक्ष्मीबाई का देहान्त हो गया और महाराजा रामवर्म्मा (द्वितीय) सिंहासन पर बैठे। इस समय आप नाबालिग थे, अतएव स्वर्गीय रानी की बहिन पार्वतीबाई राज्य की ऐजन्ट नियुक्त हुईं। ई० स० १८२९ में महाराजा रामवर्म्मा ने अपने हाथ में शासन-सूत्र लिया। आपने बड़ी ही सफलता के साथ राज्यकार्य्य किया। आपके समय में प्रजा बड़ी सुखी थी। आपने कई प्रकार के शासन-सुधार किये। दुःख है कि ये लोकप्रिय महाराजा अधिक दिन तक संसार में न रह सके। ई० स० १८६२ में आपका देहान्त हो गया। और राजा मार्तण्ड वर्म्मा (द्वितीय) गद्दीनशीन हुए। आपके समय में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। आपके बाद ई० स० १८६२ में आपके भतीजे रामवर्म्मा (तृतीय) ट्रावनकोर के राजा हुए। आपको तत्कालीन वाइसराय अर्ल केनिंग ने सनद प्रदान कर दत्तक लेने का अधिकार दिया। ई० स० १८८० में आपका देहान्त हो गया और ई० स० १८८५ में महाराजा रामवर्म्मा (चतुर्थ) सिंहासन पर बैठे। ई० स० १८५७ की २५ वीं सितंबर को आपका जन्म हुआ था। आपकी प्रारंभिक शिक्षा का भार सुपरिचित मिस्टर रघुनाथराव को दिया गया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यही मिस्टर

में आठ कॉलेज हैं। यहाँ विज्ञान, हुनर, कला, संगीतशास्त्र और कानून की शिक्षा का भी अच्छा प्रबन्ध है। यहाँ स्त्रियों के लिये भी एक कॉलेज है। संस्कृत की उच्च शिक्षा का यहाँ जैसा उत्तम प्रबन्ध है वैसा किसी भी देशी राज्य में नहीं है।

ट्रावनकोर राज्य ने अपने प्रजाजनों में शिक्षा-प्रचार करने का जैसा प्रशंसनीय प्रयत्न किया है, वह देशी राज्यों के इतिहास में एकदम ही अपूर्व है। अपनी गरीब प्रजा का धन विलासिता और फजूल कार्य्यों में बेरहमी से खर्च करने वाले धर्मच्युत राजाओं को—स्वर्गीय महाराजा ट्रावनकोर का आदर्श ग्रहण कर प्रजा कल्याण में प्रवृत्त होना चाहिए।

स्वर्गीय महाराजा ट्रावनकोर ने प्रजा की कठिन कमाई के धन को अधिकतर प्रजा ही की भलाई में व्यय करने का जो आदर्श दिखलाया है वह परम अनुकरणीय है और अगर हमारे अन्य भारतीय राजा महाराजा प्रजा द्वारा प्राप्त किये हुए धन को प्रजा ही के विकास में व्यय करेंगे, तो सभ्य संसार के सामने समुज्वल मुँह से वे खड़े रह सकेंगे। नहीं तो, उनका भविष्य कितना अन्धकारमय व शोचनीय होगा इसकी कल्पना करने से भी हृदय को दुःख होता है।
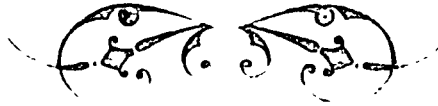
काश्मीर-राज्य का इतिहास

HISTORY OF THE KASHMIR STATE

हिज हाइनेस महाराज साहिब (G. C. S. I, G. C. I. E.) काश्मीर ।

काश्मीर प्रकृति-देवी का लीला-निकेतन है। प्रकृति ने अपनी सारी शक्ति के साथ इस स्थान को सुन्दर बनाने का यत्न किया है। यह स्थान स्वर्गीय सौन्दर्य से विभूषित है। प्रकृति-देवी ने अपना सारा शृंगार सजकर इस देश को अपनी लीला-भूमि बना रक्खा है। सचमुच काश्मीर इस मृत्यु-लोक में स्वर्ग है।

सौभाग्य से काश्मीर का प्राचीन इतिहास उतना अंधकार में नहीं है, जितना कि भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों का। महाकवि कल्हण ने "राजतरँगिणी" लिखकर वहाँ के इतिहास पर अच्छा प्रकाश डाला है। काश्मीर के इतिहास पर यह ग्रन्थ प्रमाणभूत माना जाता है। डा० स्टेन महोदय ने बड़े परिश्रम और योग्यता के साथ इसका अंग्रेजी अनुवाद किया है। अनेक इतिहास-वेत्ताओं ने इसी ग्रन्थ से प्रकाश ग्रहण किया है। इस ग्रन्थ रत्न की भूमिका में कल्हण ने अपने पूर्वगामी सुव्रत, क्षेमेन्द्र, नीलमुनि* पद्म मिहिर व हेलराज आदि इतिहास-वेत्ताओं का उल्लेख किया है। कल्हण ने अपने ग्रन्थ में ई० स० ११४८ तक का वृत्तान्त दिया है। इसके बाद श्रीधर कवि ने ई० स० १४८६ तक के इतिहास पर प्रकाश डालने का यत्न किया है। प्राज्ञ भट्ट ने अपने "राजवल्लि पट्टक" नामक ग्रन्थ में ई० स० १५८८ तक का वृत्तान्त प्रकाशित किया है। इसके बाद का इतिहास फारसी और अंग्रेजी ग्रन्थों में मिलता है। 'राजतरंगिणी' में कहा है:—

---

*नीलमुनि का नील पुराण प्रकाशित हो चुका है। वह लाहोर के पुस्तक प्रकाशक मोतीलाल, बनारसीदास के यहाँ मिलता है।

"कल्पारंभ से लगाकर छः मन्वंतरों के युग तक हिमालय की तट-भूमि जल-मग्न थी। शंकर की प्रिया, पार्वती उस जल में नौका नयन कर मनोरंजन किया करती थी। उसे यह स्थान अति प्रिय था। उसने इसका नाम सती-सरोवर रखा था। इस सरोवर में जलोद्भव नामक राक्षस राज्य करता था। वह बड़ा प्रजा-पीड़क था। अतएव प्रजापति काश्यप ने उक्त राक्षस का वध कर काश्मीर देश का निर्माण किया। फिर यहाँ लोक बस्ती होने लगी और कई छोटे २ राज्यों की स्थापना होने लगी।"

अति प्राचीन-काल में इस पवित्र और निसर्ग रमणीय प्रदेश पर गानर्द नामक राजा राज करता था। इस राजा के वंशजों ने कुछ शताब्दियों तक वहाँ राज्य किया। काश्मीर में उस समय केवल नाग लोगों की बस्ती थी। ये सूर्य की पूजा करते थे। यहाँ ब्राह्मण धर्म का प्रचार था। इसके बाद ई० स० पूर्व २४५ में सम्राट् अशोक ने बौद्ध भिक्षुक भेजकर भगवान् बुद्धदेव के धर्म का प्रचार करवाया।

सम्राट् अशोक और काश्मीर

सम्राट् अशोक के राज्य-काल ही से काश्मीर के प्रामाणिक इतिहास का आरम्भ होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि सम्राट् अशोक का विजयी झण्डा काश्मीर पर भी फहराता था। यहाँ अशोक ने कई बौद्धमठ बनवाये थे जिनके अवशेष आज भी विद्यमान हैं। यह वर्णन ईसा के २५० वर्ष पूर्व का है। इस समय उत्तर-भारत में बौद्धधर्म का बड़ा जोर था और पंजाब के ग्रीक राज्यों की भी उसके साथ सहानुभूति थी। सम्राट् अशोक ने बौद्धधर्म को राजधर्म का स्वरूप दे दिया था और उसके प्रचार में उन्होंने अपनी सारी शक्ति लगा दी थी। जब काश्मीर उनके साम्राज्य में मिला लिया गया तो वहाँ भी कई बौद्धमठ तथा मन्दिर बनवाये गये। श्रीनगर शहर सम्राट् अशोक ही ने बसाया था। सम्राट् अशोक ब्राह्मणधर्म के बन्धनों को तोड़ चुके थे अतएव उन्होंने मिश्र और यूनान के साथ मित्रता का सम्बन्ध स्थापित

कर वहां के बहुत से पत्थर का काम करने वाले कारीगरों को अपने यहां बुला लिया था।

यद्यपि इस समय काश्मीर से बौद्धधर्म का लोप होगया है और न सम्राट् अशोक का बसाया हुआ शहर ही आज विद्यमान है तथापि उसके अवशेष ही इस बात की स्पष्ट घोषणा करते हैं कि किसी समय एक बड़े पराक्रमी सम्राट् ने इस प्रान्त पर राज्य किया था।

महाराजा कनिष्क

काश्मीर के दूसरे प्रतापी नरेश महाराजा कनिष्क हुए। आपका राज्य-काल ई० स० ४० के लग भग का है। इसी समय चीन में बौद्ध-धर्म के प्रचार का आरम्भ हुआ था। महाराजा कनिष्क तुर्की खानदान के थे। आप बौध-धर्म के बड़े पोषक थे। आपके राज्य-काल में काश्मीर में तीसरी बौद्ध महासभा हुई थी। इसी समय से बौद्ध-धर्म महायान और हीनयान नामक दो भागों में विभाजित हुआ। आपके समय काश्मीर में नागार्जुन नामक एक महापुरुष हुऐ जिन्होंने अपने तपोबल से बोधि-सत्व की उपाधि प्राप्त की थी। इस समय काश्मीर में बौद्धधर्म का बड़ा जोर था। पर जिस ब्राह्मण-धर्म के खिलाफ़ यह उठा था उसका प्रभाव फिर बढ़ता चला और धीरे २ बौद्ध-धर्म का अन्त हो गया। ई० स० ६३१ में सुप्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसंग काश्मीर में आया था। उस समय वहाँ की बौद्ध-धर्म की हालत को देखकर उसने कहा था कि "इस राज्य के निवासी धर्म के पाबन्द नहीं हैं।"

कार्कोटक-वंश

भारतीय इतिहास के मध्य युग में—सातवीं सदी में—काश्मीर प्रदेश पर कार्कोटक वंश की राज्यसत्ता थी। ई० स० ६०२ में गोनर्दीय राजवंश के बालादित्य नामक राजा निपुत्रिक मर गये। इन्होंने अपने अन्त समय में दुर्लभवर्धन नामक अपने दामाद को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। अतएव बालादित्य की मृत्यु के बाद ई० स० ६०२ में दुर्लभवर्धन राज-सिंहासन पर बैठे। इनका वंश कार्कोटक-वंश के नाम से सुविख्यात हुआ। दुर्लभवर्धन बड़े राजनीतिज्ञ और दूरदर्शी थे। इन्होंने ३८ वर्ष तक निष्कंटक रूप से राज्य किया। इनके वंश में कई बड़े पराक्रमी, कर्तृत्ववान, और जोरदार राजा हुए। उनकी संख्या कुल मिलाकर १७ थी। उन्होंने ई० स० ६०२ से लगाकर ८५६ तक अर्थात् कोई २५४ वर्ष तक काश्मीर में एकाधिपत्य रूप से राज्य किया।

३६ वर्ष तक राज्य करने के बाद महाराजा दुर्लभवर्धन का ई० स० ६३७ में देहावसान हुआ। उनके बाद उनके पुत्र दुर्लभक राज्य-सिंहासन पर बिराजे। इन्होंने अपना नाम 'प्रतापादित्य' रखा। राजतरंगिणी में लिखा है कि उन्होंने लगातार ५० वर्ष तक राज्य किया पर यह बात ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य मालूम नहीं होती। प्रतापादित्य बड़े पुण्यशाली हुए। कल्हण ने अपनी राजतरंगिणी में इनकी न्याय-प्रियता और प्रजा-हित-तत्परता की बड़ी प्रशंसा की है। महाराजा प्रतापादित्य ने रोहित–देश के ब्राह्मणों के लिये 'नोणमठ' नामक एक मठ स्थापित किया। उन्होंने त्रिभुवन स्वामी का मन्दिर बनवाया। उनकी धर्मपत्नि प्रकाशदेवी ने प्रकाश-विहार नामक एक बिहार स्थापित किया। वह जाति की वैश्य थी। राव बहादुर वैद्य महोदय अनुमान करते हैं कि, यह प्रकाश-बिहार बौद्ध–बिहार होना चाहिये। क्योंकि उस समय वैश्य लोग या तो बौद्ध-धर्मानुयायी थे या जैन धर्मावलम्बी। महाराजा प्रतापादित्य के

गुरु मिहिरदत्त नामक एक ब्राह्मण थे। उनकी प्रेरणा से 'गम्भीर-स्वामी' नामक एक विष्णु-मन्दिर बनवाया गया। उस समय क्या राजा, क्या रानियाँ, क्या मंत्री सबको अपने २ इष्ट देवताओं के मन्दिर बनवाने का बड़ा शौक था। महाराजा प्रतापादित्य, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, धर्मशीलता और न्यायपरता के साक्षात अवतार थे। वे बड़े प्रजा-प्रिय थे।

महाराजा प्रतापादित्य के तीन पुत्र थे। इनके नाम क्रमशः चन्द्रापीड़ तारापीड़ और मुक्तापीड़ हैं। चंद्रापीड़ बड़ी अवस्था में राज्य-सिंहासन पर बैठ। इन्होंने केवल आठ वर्ष तक राज्य किया। ये अपने पिता की तरह सद्-गुणी थे। कल्हण ने लिखा है कि इनके छोटे भाई तारापीड़ ने इन्हें मूठ डलवा कर मरवा दिया। चन्द्रापीड़ के बाद उनका छोटा भाई हत्यारा तारापीड़ गद्दी पर बैठा। इसने केवल चार वर्ष और २४ दिन तक राज्य किया। यह बड़ा दुष्ट और जुल्मी था।

महाराजा ललितादित्य

तारापीड़ के बाद उसके छोटे बन्धु मुक्तापीड़ ललितादित्य नाम धारण कर गद्दी पर विराजे। ये महानप्रतापी नृपति हुए। इनके गौरव से काश्मीर का इतिहास ज्वाज्वल्यमान हो रहा है।

महाराजा ललितादित्य ने दिग्विजय के लिये बड़ी धूमधाम के साथ यात्रा की थी। कल्हण ने अपनी 'राजतरंगिणी' में इस दिग्विजय का बड़ा सरस और मार्मिक वर्णन किया है। कुछ इतिहास-वेत्ताओं की राय है कि यह वर्णन केवल काल्पनिक है। पर तत्कालीन सिन्ध के इतिहास—चचनामा में भी इस दिग्विजय का कुछ उल्लेख है। अतएव हमारी राय में इसे केवल काल्पनिक मानना भ्रम है। चचनामा में लिखा है:—

"काश्मीर के महाराज बड़े प्रतापी हैं। हिन्दुस्थान के कई बड़े २ महाराजा उनके चरण में सिर झुकाते हैं। उनका राज्य न केवल भारतवर्ष में ही वरन बाहर मेकरान, और तुराण देशों में भी फैला हुआ है। बड़े २ सरदार और उमराव उनकी आज्ञा पालन करने में अपना सौभाग्य समझते हैं। उनके पास १००० हाथी हैं। वे खुद एक सफेद हाथी पर सवार होते हैं। उनके सामने खडे होने की किसी की हिम्मत नहीं होती।" राव बहादुर चिन्तामण राव वैद्य महाशय का कथन है कि ललितादित्य की दिग्विजय एक ऐतिहासिक घटना है। यह विजय समुद्रगुप्त और हर्ष की दिग्विजय के मुकाबले की है।

ललितादित्य का दिग्विजय।

महाराजा ललितादित्य ने कलिंग, कर्नाटक, कांवेरी प्रदेश, कोंकण, सौराष्ट्र, और अवन्ति आदि देशों के बड़े २ राजाओं पर विजय प्राप्त कर उन्हें अपने आधीन बनाया था। चर्चनामा से मालूम होता है कि सिंध के तत्कालीन राजा ने भी ललितादित्य का आधिपत्य स्वीकार किया था। इस प्रकार पूर्व, दक्षिण और पश्चिम के राजाओं पर विजय प्राप्त कर महाराजा ललितादित्य वापस घर लौटे थे। इसके पश्चात् आप उत्तरीय प्रदेश, तिब्बत तुर्कस्थान आदि देशों पर विजय करने का विचार करने लगे। कुछ समय बाद तिब्बत तो सहज ही में उनके हाथ आ गया। तुर्कस्थान के महाराजा मुमुनी (मुमेनखाँ) ने उनका बड़े जोर के साथ मुकाबला किया। पर अन्त में ललितादित्य की विशाल-शक्ति के आगे लाचार हो घुटने टेकने पड़े। मुमेनखाँ तीन बार परास्त हुआ। भारतवर्ष के इतिहास में यह प्रथम ही अवसर था कि एक भारतीय राजा ने तुराण जैसे कट्टर लोगों पर विजय प्राप्त की थी। यह दिग्विजय ऐतिहासिक घटना है। कल्हण ने इस दिग्विजय का वर्णन करते हुए वहाँ के तत्कालीन राजा मुम्मुनिराज का भी उल्लेख किया है। इनके सिवा और भी प्रदेशों पर महाराजा ललितादित्य ने अपनी विजय ध्वजा फहराई थी।

महाराजा ललितादित्य और उनके कार्य

महाराजा ललितादित्य ने जिस प्रकार अनेक देशों को विजय कर उन पर विजय-पताका फहराई थी, उसका उल्लेख हम ऊपर कर ही चुके हैं। अब हम उनके कार्यों का वर्णन करते हैं।

उपरोक्त वर्णित दिग्विजय में महाराजा ललितादित्य के हाथों अटूट सम्पत्ति लगी थी। इससे उन्होंने बड़े २ मन्दिर और देवालय बनवाये। उन्होंने 'भूतेश' नामक एक शिव का मन्दिर बनवाया, जिसमें ११ करोड़ रुपये खर्च किये। इसी प्रकार उन्होंने एक विशाल मार्तंड (सूर्य) का मन्दिर बनवाया जो अब तक प्रसिद्ध है। इन्होंने चक्रपूर की वितस्ता नदी पर एक पुल तैय्यार करवाया। श्रीनगर के पास परिहासपुर नामक एक नगर बसाया और वहां 'परिहास-केशव' नामक विष्णु का मन्दिर बनवाया। इस मन्दिर में गरुड़, विष्णु, बराह की बड़ी २ रत्न जड़ित स्वर्ण प्रतिमाएं प्रतिष्ठित कीं। इन सब उपरोक्त बातों का वर्णन कवि कल्हण ने अपनी 'राज तरंगिणी' नामक पुस्तक में किया है। इतने बड़े २ कीमती मन्दिर बनवाने से तथा उनमें असंख्य द्रव्य रखने से वे किस प्रकार मुसलमानों के हमलों के कारणीभूत हुए, यह बात यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं। इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा हुआ है।

परोपकारी कार्य

महाराजा ललितादित्य ने न केवल बड़े २ मन्दिर और बिहार ही बनवाये वरन् उन्होंने अपने राज्य में स्थान २ पर भूखों के लिये 'अन्नक्षेत्र' और प्यासों के लिये प्याऊ-गृह भी स्थापित किये। तुर्कस्थान में जहाँ कितने ही कोसों तक जल के दर्शन तक न होते थे वहाँ कई स्थानों पर कुए खुदवा कर, तालाब बनवाकर अपनी भूत-दया का प्रदर्शन किया। ये कुए या तालाब अपनी टूटी-फूटी अवस्था में अब भी पाये जाते हैं। तत्कालीन क्लेश-मय

कलयुग में ललितादित्य सत्ययुगीन राजा थे तथा तत्कालीन काश्मीर के लिये वे अभिमान करने योग्य व्यक्ति थे। उन्हें चीन के तत्कालीन सम्राट ने अपना एक प्रतिनिधी मण्डल भेजकर राजा की उपाधि से विभूषित किया था। भारतवर्ष में ये चक्रवर्ती कहलाते थे। इन महा पराक्रमी नृपति का ई० स० ७३६ में शरीरान्त हुआ।

कुवलया पीड़

परम पराक्रमी ललितादित्य के पश्चात् उनके पुत्र कुवलयापीड़ राज्य-सिंहासन पर बिराजे। ये बड़े कमजोर थे। अपने पराक्रमी पिता का एक भी गुण इनमें नहीं था। एक समय इनके एक प्रधान ने इनकी आज्ञा न मानी इससे इन्हें इतना रंज हुआ कि सारी रात नींद न आई। दूसरे दिन सुबह चित्त में संसार से विरक्ति छागई और राज-पाट छोड़कर इन्होंने अरण्यवास स्वीकार किया। इन्होंने केवल १ साल १५ दिन तक राज्य किया।

वज्रादित्य

कुवलयापीड़ के बाद उनके भाई वज्रादित्य काश्मीर के राज्य-सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। ये बड़े विषय-लंपट थे। इसी से इन्हें सात वर्ष के बाद अपने प्राणों से हाथ धोना पड़े।

इनके बाद इनके जेष्ठ पुत्र संग्रामपीड़ सिंहासन पर बिराजे। ये भी सात वर्ष राज्य करने के पश्चात् काल के कलेवर हुए। इनके पश्चात् इनके भाई जयापीड़ सिंहासन पर बिराजे।

८। महाराजा जयापीड़

महाराजा ललितादित्य के समय में ही जयापीड़ ने अपने उत्कृष्ट गुणों का परिचय दिया था। इस पर एक समय ललितादित्य ने जयापीड़ के महान् पराक्रमी होने की भविष्य-वाणी कही थी। दर असल पीछे जाकर जयापीड़ बड़े पराक्रमी, वीर्यवान और विद्वान निकले।

जयापीड़ की दिग्विजय यात्रा

सिंहासन पर अधिष्ठित होते ही वीर्यशाली भारतीय राजाओं की तरह जयापीड़ ने भी दिग्विजय के लिये कमर कसी। पहले की तरह, इस समय भी कन्नौज के राजाओं को परास्त कर वे प्रयाग तक आये। यहां उन्होंने ब्राह्मणों को बड़े २ दान दिये। जयापीड़ की इच्छा और भी आगे बढ़ने की थी, पर उसकी सेना ने थक जाने के कारण आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। इससे जयापीड़ निराश न हुए। वे अकेले ही बंगाल की ओर चले गये। वहाँ उन्होंने एक जबरदस्त सिंह को मारकर वहां के राजा जयंत का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। जयन्त इनसे इतना प्रसन्न हुआ कि उसने अपनी एक सुन्दरी कन्या का विवाह इनके साथ कर दिया। इसके बाद कुछ राजाओं पर विजय प्राप्त कर वे काश्मीर लौट आये रास्ते में उन्होंने कन्नौज का बहुमूल्य सिंहासन हस्तगत किया और उसे काश्मीर ले गये। जयापीड़ की अनुपस्थिति में जज्ज नामक एक मनुष्य ने काश्मीर का राज्य हड़प लिया था। जयापीड़ ने उसे परास्त कर अपना राज्य वापस ले लिया। इस प्रकार अपने महाराजा को पाकर प्रजा को अपार हर्ष हुआ।

विद्या-प्रेम

जयापीड़ बड़े विद्या-प्रेमी थे। विद्वानों के वे बड़े आश्रयदाता थे। रण-मैदान की तरह शास्त्रार्थ में भी वे बडे २ पंडितों से टक्कर लेते थे। और उन पर विजय प्राप्त करते थे। उन्होंने अष्टाध्यायी का पातंजली मुनि कृत महा भाष्य पढ़ाने के लिये सुविख्यात् पण्डित क्षीर-स्वामी को अध्यापक नियुक्त किया था। उनके दरबार के पण्डितों के अध्यक्ष उद्भटालंकार नामक साहित्य ग्रंथ के कर्ता पण्डित उद्भट थे। कल्हण का कथन है कि इन पण्डितराज को वे एक लाख दिनार वेतन देते थे। इनके अतिरिक्त मनोरथ, शंखदत्त, चटक, वामन, दामोदर गुप्त आदि बड़े २ विख्यात पण्डित इनके दरबार की शोभा बढ़ाते थे। उस समय भारतवर्ष में जहाँ २ अच्छे विद्वान मिलते थे, महाराज जयापीड़ उनको लाने के लिये प्रयत्नशील रहते थे। इससे काश्मीर विद्वद्भूमि कही जाने लगी थी। दूसरे प्रान्तों में विद्वानों का मानों अकाल पड़ गया था (समग्रही तथा राजा सोन्विष्य निखिलान्बुधान्। विद्वद्दुर्भिक्षम् भवद्य-थान्य नृप मण्डले) इनके समय में काश्मीर विद्या और संस्कृति की दृष्टि से अत्यंत गौरव-मय हो गया था।

जयापीड़ विद्या-वृद्धि के लिये जिस प्रकार सयत्न थे, उसी प्रकार उनमें अन्य राजाओं को अपने वश करने की लालसा भी बड़ी जबरदस्त थी। वे माण्डलिक राजाओं की सहायता से अन्य राजाओं पर चढ़ाई करते रहते थे। इनके सहायकों में तुराण देश के पूर्व कथित राजा मुम्मुनी का नाम देखकर आश्चर्य होता है। उन्होंने नेपाल पर भी चढ़ाई की यहाँ उनकी पराजय हुई। वहाँ के अरमुंडी नामक राजा ने उन्हें कैद कर लिया। उनके एक बुद्धिमान् मंत्री ने अपनी जान की कोई पर्वाह न कर बड़ी युक्ति से उन्हें बन्धन-मुक्त कर अपनी नई सेना के पास पहुँचा दिया। इसके बाद उक्त सेना की सहायता से जड़ापीड़, नेपालाधिपति को परास्त कर काश्मीर लौटे। वहाँ

खूब विजयोत्सव मनाया गया। ई० स० ८८२ में इन पराक्रमी नरेश का शरीरान्त हुआ।

जयापीड़ के बाद उनके पुत्र ललितापीड़ सिंहासनारूढ़ हुए। उन्होंने अपने पिता की प्राप्त की हुई सम्पत्ति को ऐशो-आराम में उड़ाया। इनके बाद इनके बन्धु संग्रामपीड़ राज्यासन पर बैठे। सात वर्ष राज्य कर ये भी काल-कलेवर हुए। इनके बाद ललितापीड़ के चिप्पट जयापीड़ नामक अल्पवयी पुत्र गद्दी पर बैठे। ये बडे ही कमजोर थे। इन्हीं के समय से कार्कोटक राज्यवंश अस्त होता चला। अन्त में धीरे २ इस वंश की सत्ता उत्पल घराने में गई।

उत्पल राजवंश

ई० स० ८८५ में उत्पल-वंश के अवन्तिवर्मा काश्मीर के राज्य-सिंहासन पर आरूढ़ हुए। ये बड़े न्यायी और कर्तृत्ववान थे। इनके विशुद्ध न्याय की कुछ कथाएँ कल्हण ने अपनी 'राजतरंगिणी' में दी हैं। इन्होंने अपने राज्य में अनेक प्रजा-हित के काम किये। खेती की उन्नति के लिये जगह २ नहरों का प्रबंध किया। इस प्रबंध से बहुत सी पड़त जमीन आबाद हो गई। कल्हण का कथन है कि पहले सुकाल के समय में भी एक खरडी चावल की कीमत २०० दीनार होती थी। अब इस नवीन व्यवस्था के कारण उसी की कीमत ३६ दिनार होती है। इससे प्रजा बड़ी सुखी हुई। चहुँ ओर सुख और शांति की लहरे चलने लगीं।

अवन्तिवर्मा बड़े धार्मिक थे। इन्होंने अनेक शिव और विष्णु के मन्दिर बनवाये। महाराज अवन्तिवर्मा महा वैष्णव थे। वे अहिंसा के कट्टर प्रति-पालक थे। इन्होंने अपने राज्य भर में हिंसा को बंद करवा दी थी। कल्हण ने लिखा है कि, दस वर्ष तक काश्मीर में एक भी प्राणी का प्राण-वध न किया गया। इनके राज्य में सब प्राणी निर्भयता से विचरण करते थे। वह एक स्वर्गीय शासन था। इनके समय में भट्ट, कल्लट आदि कई सिद्ध पुरुषों का उदय हुआ। जिस प्रकार महाराज अवन्तिवर्मा की समग्र आयु धर्माचरण में गई, वैसे ही इनका अन्त भी इसी स्थिति में हुआ। श्रीमद्‌भगवतगीता का अध्ययन करते २ ई० स० ८८४ में इनका स्वर्गवास हो गया। इन्होंने २९ वर्ष तक राज्य किया था।

शंकरवर्मा

महाराजा अवन्तिवर्मा के बाद उनके पुत्र शंकरवर्मा राज्यासन पर बैठे। ये बड़े बहादुर थे। इन्होंने कई राजाओं पर विजय प्राप्त की थी। इनकी सेना महा विशाल थी। कल्हण ने लिखा है कि इनके पास ९ लाख पैदल सेना और ३०० हाथी थे। इस सैना की सहायता से इन्होंने तत्का-लीन गुर्जराधीश पर विजय प्राप्त की थी। इसके बाद इन्होंने कन्नौज के भोज द्वारा पदच्युत किये गये थक्कीय वंशजों को उनका पूर्व पद दिलवाया था। कल्हण का कथन है कि "हिमालय और विद्याद्रि के बीच जिस प्रकार आर्य देश शोभा पा रहा है। उसी प्रकार एक ओर दरद और दूसरी ओर तुरुष्क के बीच अजेय होकर शंकरवर्मा का प्रताप प्रकाशित हो रहा है। शंकरवर्मा ने शाहीराजा लल्लिय को परास्त किया। इन्होंने काबुल पर भी अपना विजयी झंडा फहराया था।

शंकरवर्मा वीर तो थे, पर धर्म-वृत्ति का इनमें लेश भी न था। इन्होंने पण्डितों को भी आश्रय नहीं दिया। इससे कई पंडितों ने दूसरा व्यवसाय स्वीकार किया था। ई० स० ९०२ में शंकरवर्मा को तीर लगजाने के कारण देहान्त होगया। इनके साथ इनकी तीन रानियां, दो परिचारक और एक प्रधान ने अग्नि में जलकर अपने प्राण दिये थे।

शंकरवर्मा के बाद

शंकरवर्मा के बाद उनके अल्पायु पुत्र गोपालवर्मा काश्मीर के राजा हुए पर इनका अति शीघ्र ही देहान्त हो गया। इनके बाद इनके संकट नामक भाई राज-गद्दी पर विराजे। पर ये भी संसार से बहुत जल्दी ही कूच कर गये। अतएव शंकरवर्मा की सुगंधा नामक विधवा रानी ने अपने तंत्री नामक सैनिकों की सहायता से अपनी निजी जिम्मेदारी पर राज्य चलाना शुरु किया। जिस प्रकार कान्स्टेंटिनोपल में जानिसरी लोगों का, रोमन-राज्य में प्रिटोरियन सेना का, बगदाद में तुर्की सैनिकों का, इंगलैंड में क्रामवेल का सैनिक-शासन रहा था ठीक उसी प्रकार इस समय काश्मीर में तंत्री सेना-नायक का शासन था। इसने उक्त वंश के एक दस वार्षिक लड़के को गद्दी पर बिठाया और प्रजा से धन लूटना शुरू किया। इससे लोगों को असह्यदय कष्ट हुआ। चारों ओर हाहाकार मच गया। ई० स० ९१८ में काश्मीर में भयंकर अकाल पड़ा। पर दुष्ट मंत्री ने इस भयंकर समय में भी बड़ी ही कठोरता से राज्य-कर वसूल करना शुरू किया। लोगों की तकलीफें इतनी बढ़ गई कि उन्हें अपने बाल-बच्चों तक को बेचकर राज्य-कर चुकाना पड़ा। राजतरंगिणी में लिखा है:—"तुञ्जिन और चन्द्रापीड़ जैसे भाग्यशाली राजाओं ने बड़े यत्न से जिस प्रजा का पालन किया था, उसका इस दुष्ट मंत्री ने

सत्यानाश कर डाला ।" इसी समय इस मंत्री ने चक्रवर्मा नामक एक दूसरे राजा को गद्दी पर बिठाया। यह कुछ करामाती था। इसने समय पाकर डामर लोगों की सहायता से उक्त मंत्री के विरुद्ध शस्त्र उठाकर उसका काम तमाम कर दिया। दुःख है कि चक्रवर्मा ने पीछे जाकर अपने प्रधान सहायक डामर लोगों पर अत्याचार करना शुरू किया। वह अपना जीवन दुर्व्यसनों में व्यतीत करने लगा। इसके बाद गद्दी पर बैठनेवाले पार्थ राजा ने भी उसी का अनुसरण किया। जब चक्रवर्मा का शरीरान्त हुआ था तब डामर लोगों ने राज्य को लूट लिया था। इसके बाद पार्थ राजा ने कायस्थों को उठाकर प्रजा पर अमानुषिक अत्याचार किया। यह ई० स० ९३९ में मर गया। इसी समय के करीब तंत्री लोगों के एक सरदार कमलवर्धन ने श्रीनगर पर घेरा डालकर डामर लोगों को परास्त किया। इस समय पार्थ राजा की विधवा रानी अपने छोटे बालक को लेकर एक सुरक्षित स्थान पर गुप्तरूप से रहने लगी।
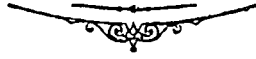
महाराजा यशस्कर

इसके बाद राजा यशस्कर हुए। 'राजतरंगिणी' से मालूम होता है कि इन्हें ब्राह्मणों ने चुना था। ये बड़े तेजस्वी, प्रतिभासंपन्न, विवेकी और कार्य्य-कुशल थे। इन्होंने बड़ी ही योग्यता और उत्साह के साथ राज-सूत्र का संचालन किया। कल्हण ने अपनी 'राजतरंगिणी' में इनके यश का वर्णन करते हुए लिखा है "महाराजा यशस्कर के राज्य में लोग बड़े सुखी और समृद्धिशाली थे। वे अपने घरों के द्वारों को खुले रख निष्कंटक रूप से सुख की नींद सोते थे। चोरों का इतना प्रतिबंध किया गया था कि यात्री

मजे से सोना फेकते-उछालते—हुए यात्रा कर सकते थे। देहात के लोग अपनी कृषि के काम में मस्त थे। मुकद्दमे बाजी इतनी कम होती थी कि देहाती किसानों को राज-दरबार में जाने का प्रसंग ही न आता था। भिषक, गुरु, मंत्री, पुरोहित, दूत, न्यायाधिकारी, लेखक आदि सभी पढ़े लिखे एवम विद्वान् होते थे। इनमें से कोई भी अपण्डित नहीं होते थे।" कहने का मतलब यह है कि महाराजा यशस्कर का शासन बड़ा ही दिव्य और आदर्श था पर दुःख है कि ये सुयोग्य नृपति केवल ९ वर्ष राज्य कर स्वर्गसुख का आनंद लेने के लिये इस असार संसार को छोड़ विदा हुए।

महाराजा संग्रामदेव

महाराजा यशस्कर के बाद उनके अल्पायु पुत्र संग्रामदेव राज्यासीन हुए। इस समय राज्य में अव्यवस्था, अत्याचार और दुर्व्यसनों का साम्राज्य सा छागया था। प्राप्त सु-अवसर से लाभ उठाकर एकांग सामन्त, कायस्थ और तंत्री लोगों की सहायता से पर्वगुप्त नामक मनुष्य ने राज-सिंहासन हथिया लिया। पर कुछ ही दिन राज्य कर वह भी इस दुनियाँ से कूच बोल गया। इसके बाद इसका पुत्र क्षेमगुप्त राजा हुआ। इसने सिंहराज नामक लोहाराधिपती की प्रसिद्ध कन्या दिद्दा से विवाह किया। यह दिद्दा काबुल के भीमपाल नामक शाही राजा की दौहित्री थी। ई० स० ९५८ में क्षेमगुप्त के मर जाने पर इसने कई दिन तक राज्य किया। यह बड़ी विलासी स्त्री थी। इसका तुंग नामक एक खश जाति के प्रधान से प्रेम संबंध था। इसने अपने भाई के पुत्र संग्रामसिंह को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। संग्रामसिंह लोहारवंश का था। इसी समय से काश्मीर की राजसत्ता लोहारवंश के हाथ में आई। उपरोक्त कुविख्यात् रानी दिद्दा अनेक प्रजा-पीड़क कार्य करके ई० स० १००३ में मृत्यु मुख में गिरी। इसने ४५ वर्ष तक राज्य किया।

लोहार राजवंश के समय में 'राजतरंगिणी' के सुविख्यात कर्ता महाकवि 'कल्हण' हो गये थे। उन्होंने इस राज्यवंश का वर्णन सविस्तार रूप से किया है। हम उसी का सारांश यहाँ देते हैं। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं कि, लोहार-वंश के प्रथम राजा संग्रामदेव हुए। इनके समय में राज्य का सितारा अच्छा प्रकाशित हुआ। इनके समय में मुसलमान भारतवर्ष को फतह करने के लिये जोर-शोर से प्रयत्न करने लग गये थे। इस समय काबुल की गद्दी पर त्रिलोचनपाल नामक राजा राज्य करता था। इस पर मुसलमानों ने चढ़ाई की। त्रिलोचनपाल ने संग्रामदेव से सहायता माँगी। उसने अपने एक तुंग नामक प्रधान को सेना सहित सहायतार्थ भेजा। कल्हण ने अपनी 'राजतरंगिणी' में त्रिलोचनपाल और मुसलमानों के युद्ध का बड़ा सरस वर्णन किया है। इसके बाद वह कहता है:—"शंकरवर्मा के समय काबुल के उत्कर्ष का हम वर्णन कर चुके हैं। पर अब वह शाहीराज कहाँ हैं? उसके वैभवशाली नृपति और उनके अपूर्व शान-शौकत की बातें मन में आते ही यह खयाल होने लगता है कि वास्तव में इनका अस्तित्व था या यह केवल स्वप्न था।" कुछ भी हो तुर्कों ने त्रिलोचनपाल को परास्त कर दिया। वह भागकर काश्मीर आया। कहने की आवश्यकता नहीं कि काबुल मुसलमानों के हाथ में पड़ गया। तुंग भी मुसलमानों से हारकर काश्मीर आ गया। कल्हण कहता है "तुंग ने अपने कृत्य से मुसलमानों के लिये भारतवर्ष में आने का मार्ग खोल दिया। यही भारतवर्ष के नाश का आदि कारण हुआ। संग्रामदेव को तुंग से बड़ी नफरत हो गई थी। उसके खिलाफ़ दरबार में भी बड़ा असंतोष फैला हुआ था। इसी से भरे दरबार में उसका खून हो गया। उसके पक्षवालों को भी प्राणों से हाथ धोना पड़ा। संग्राम २४ वर्ष राज्य कर मृत्यु को प्राप्त हुए।

संग्राम के बाद उनका पुत्र हरिराज राजा हुआ। यह भी अपने पिता की तरह योग्य था। पर दैव-दुर्योग से शीघ्र ही यह भी स्वर्गवासी हुआ।

महाराजा अनन्तदेव

हरिराज के बाद उनके पुत्र अनन्तदेव राज्यारूढ़ हुए। काबुल के पदच्युत राजा त्रिलोचनपाल के पुत्र रुद्रपाल, दिद्दपाल, क्षेमपाल, और अनंगपाल, अनन्तदेव के साथी थे। संग्राम ने इनका अच्छा वेतन कर दिया था। पर ये लोग बड़े फ़ज़ूल खर्ची थे। ये हमेशा द्रव्य की आवश्यकता में रहते थे। इसलिये लाचार होकर इन्हें प्रजा को सता २ कर चूसना पड़ता था। इतना होने पर भी कल्हण के कथनानुसार वे बड़े पराक्रमी थे। तुर्कों और अनन्तदेव के बीच जो युद्ध हुए थे, उनमें इन्होंने अनन्तदेव की बड़ी सहायता की थी। पर हिन्दुस्थान के लोगों की नित्य की आदत के अनुसार काश्मीर दरबार के एक असंतुष्ट सरदार ने अनन्तदेव का नाश करने के लिये तुर्कों को निमंत्रित किया। इस समय सात तुर्क-सरदार, डामरलोग, दरद का राजा, और काश्मीर का उक्त असन्तुष्ट सरदार ब्रह्मराज ने मिलकर अनन्तदेव के खिलाफ़ एक भयंकर षडयंत्र की सृष्टि की। सब ने मिलकर इनको जमींदस्त करना चाहा। पर अनन्तदेव भी कुछ कम न थे। उन्होंने भी अपने शत्रुओं से जी खोलकर युद्ध किया। इस युद्ध में दरद का राजा मारा गया। कल्हण कहता है कि सातो म्लेछ सरदारों में कुछ तो मृत्यु-मुख में चले गये और कुछ कैद कर लिये गये। कहने का मतलब यह है कि तुर्कों की सेना को पूरी तौर से औंधे मुख की खानी पड़ी।

अनन्तदेव की रानी सूर्यमती जालंधर के राजा की कन्या थी। राजा और रानी दोनों ही धर्मात्मा थे। इन्होंने कई पुण्य-कार्य किये। इसी समय मालवे के भोज राजा ने अपने नाम को चिर-स्मरणीय रखने के लिये वहाँ एक

बड़ा कुण्ड बनवाया। इससे यह प्रतीत होता है कि उक्त दोनों बड़े राजाओं में बड़ा स्नेह संबंध था।

सूर्यमती देवी बड़ी बुद्धिमती और विदुषी थी। वह राज्य-कार-भार में अपने पति को सहायता किया करती थी। दुःख है कि इस सुखी और बुद्धिमान दम्पत्ति को आगे चलकर बडे २ दुःख उठाना पडे। इसका कारण यह था कि अनन्तदेव ने अपनी वृद्धावस्था में कलश नामक अपने पुत्र को राज्य-सिंहासन देकर वान-प्रस्थाश्रम ग्रहण किया। कलश बड़ा दुर्व्यसनी निकला। इसके दुराचरणों से दुखी होकर एक दिन अनन्तदेव ने इसे खूब फटकारा। इस पर कलश शिक्षा-ग्रहण करने के बजाय उल्टा नाराज हुआ। वह अपने माता-पिता के प्राण लेने की चिन्ता करने लगा। एक वक्त इसने अपने पिता के आश्रम में आग लगा दी। इस समय वृद्ध राजा रानी बड़ी चिन्ता में पड़ गये। वे बड़ी मुश्किल से अपनी जान बचा सके। वे देश छोड़कर बाहर जाने लगे, पर प्रजा ने बडे आग्रह के साथ में उन्हें देश न छोड़ने दिया। उन्होंने अपने पौत्र हर्ष को अपने पास बुला लिया। हर्ष अपने पिता को छोड़कर बड़ी खुशी से अपने पितामह के पास रहने लगा। पर निष्ठुर कलश ने अपने पिता को दुःख देना न छोड़ा अन्त में तंग आकर अनन्तदेव ने आत्म-हत्या कर डाली। कलश इस समय अपनी माता के साथ सान्त्वना प्रगट करने के लिये उसके पास तक न गया। सूर्यमती एक पतिव्रता स्त्री की तरह अपने पति के शव के साथ सती हुई। कलश भी ई० स० १०७३ में इस संसार से चल बसा।

राजा हर्ष

काश्मीर के अन्तिम हिन्दू राजाओं में हर्ष का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आप बड़े साहसी, खिलाड़ी और सब कलाओं में प्रवीण थे। संगीत-कला के साथ तो आपका विशेष प्रेम था। आपमें एक विशेषता यह थी कि जहाँ आप कठोर थे वहाँ दयावान् भी थे, जहाँ आप उदार थे वहाँ कंजूसी भी आप में थी, जहाँ आप अपने मन की मानी करने के लिये मशहूर थे वहाँ दूसरों की सिखावट में भी झट आ जाते थे और जहाँ आप बडे चालाक कहे जाते थे वहाँ कुछ बुद्धि से भी कम तअल्लुक रखते थे। इस प्रकार आपके अन्दर इन परस्पर विरोधी तत्वों का बड़ा हीं सुन्दर सम्मिश्रण था। आपका दरबार बड़ा सुसज्जित रहता था और विद्वानों तथा कवियों के आप कद्रदान थे। काश्मीर के दक्षिण में जो पार्वत्य-प्रदेश है उस पर भी आपका अधिकार था। दुर्भाग्य से आप के विरुद्ध कई षड्यन्त्र रचे जाने लगे जिन्हें दबाने के लिये आपको निर्दयतापूर्ण उपायों को काम में लाना पड़ा। यहाँ तक कि आपने अपने निर्दोष सौतेले भाई, भतीजों और कुछ अन्य सम्बन्धियों को भी मरवा डाला था। आप सेना-विभाग में बहुत बड़ी रकम खर्च करत थे और विलास सामग्री से भी आपका बड़ा प्रेम था। इसी कारण आगे चलकर आप के खजाने में रुपयों की कमी आगई। इस कमी को पूरी करने के लिये आपने जिन उपायों का अवलम्बन किया वे बड़े खराब थे। उनसे प्रजा में असन्तोष फैल गया। ये उपाय और कुछ नहीं मन्दिरों की सम्पत्ति पर हाथ साफ़ करना और प्रजा पर अनुचित कर लगाने के थे। इन्हीं दिनों काश्मीर में प्लेग चला जिसके कारण डकैतियाँ होने लगीं। इधर एक भयङ्कर बाढ़ भी आ गई जिसके फल स्वरूप अकाल पड़ गया। बस फिर क्या था, जो असन्तोष अब तक चिनगारी के रूप में था वह अब धधक उठा। राजा हर्ष के विरुद्ध बलवा खड़ा हो गया। राजा रणभूमि में काम

आये। उनका सिर काट कर जला दिया गया और उनकी नग्न देह की वह दशा हुई कि जो एक भीख मांगने वाले की देह की भी नहीं होती है। आखिरकार एक लकड़ी के व्यापारी का हृदय उसकी यह दशा देख कर पसीजा। उसने उस देह का अन्तिम संस्कार किया।
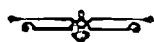
राजा विकुल

हर्ष के बाद त्रिकुल काश्मीर की राज्यगद्दी पर बैठे पर उनकी भी वही दशा हुई जो कि उस गद्दी पर बैठने वालों की अक्सर होती आई थी। उनका छोटा भाई उनके विरुद्ध बलवा करने पर आमादा हुआ। सच पूछा जाय तो इस समय राज्य के वास्तविक भाग्य-विधाता वहां के जागीरदार लोग बने हुए थे और इन्हीं जमींदारों ने राजा को भी गद्दी पर बिठाया था। राजा ने इन जमींदारों के दबाव से मुक्त होने की बड़ी कोशिशें कीं। उन्होंने उनके खास २ नेताओं को मरवा डाला और कइयों को देश निकाला दे दिया। जो बाकी बच रहे उनके अस्त्रशस्त्र जबरन छीन लिये गये। उन्होंने अधिकारी वर्ग को भी तंग करना शुरू किया। पर प्रजा के लिये उनके हृदय में स्थान था। वे अपने प्रजाजनों का यथोचित सम्मान करते थे। थोड़े में हम यह कह सकते हैं कि राजा विकुल एक उदार, योग्य और पराक्रमी नरेश थे। हम ऊपर कह आये हैं कि इनकी भी वही दशा हुई जो कि इनके पूर्वकालीन राजाओं की हुई थी। एक रात को जब कि आप अपने कुछ साथियों सहित अन्तःपुर की ओर जा रहे थे, शहर के कोतवाल ने अपने भाई और बहुत से सहायकों समेत आप पर हमला कर दिया। राजा ने वीरता पूर्वक शत्रु का सामना किया पर अन्त में वे शत्रु के हाथों मारे गये। यह घटना ई० स० ११११ की है।

राजा विकुल के बाद

राजा विकुल का उत्तराधिकारी केवल कुछ ही घन्टों के लिये राज्य कर पाया था कि उसका सौतेला भाई गद्दी का मालिक बन गया। यह भी केवल ४ महीने राज्य कर सका। इसे इसके भाई ने कैद कर लिया और वह स्वयं राज्य-गद्दी पर बैठ गया। इस राजा ने ८ वर्ष राज्य किया। इसका राज्य जागीरदारों द्वारा किये गये बलवों और गृहकलह की एक शृंखला मात्र थो। बलवों को शान्त करने के लिये इसने अपने मंत्री को उसके तीन पुत्रों सहित फांसी पर लटका दिया था। जागीरदारों ने बतौर जमानत (Hostage) के कुछ आदमी राजा के पास रखे थे। उन्हें भी उन्होंने मरवा डाले। बात यहाँ तक जा पहुँची कि उनके खिलाफ़ खुल्लम-खुल्ला बलवा हो गया। राजा श्रीनगर छोड़कर पंच नामक स्थान में चले गये। गद्दी को खाली देख एक दूसरा ही आदमी उसका वारिस बन बैठा। इसने भी एक वर्ष तक राज्य किया। इस समय राज्य में चारों ओर बलवाइयों की तूती बोलने लग गई थी। प्रजा चारों ओर से पिसी जा रही थी, व्यापार बिलकुल बन्द हो गया था और रुपयों की चारों ओर कमी आ गई थी। जागीरदारों में भी इस समय फूट पड़ गई थी। राज्य की ऐसी दशा देख राजा पंच से वापस लौट आये और उन्होंने गद्दी पर फिर से अधिकार कर लिया। ५ वर्ष तक इन्होंने फिर राज्य किया पर अन्त में ये भी शत्रुओं के हाथ के शिकार हुए, दुश्मनों ने इन्हें मार डाला।

अब राजा जयसिंह काश्मीर के राज्यासन पर आरूढ़ हुए। ऐसी अशान्ति और अराजकता के समय में भी आपने २१ वर्ष तक राज्य किया। अपने सम्पूर्ण राज्य-काल तक आप विद्रोहियों का दमन करने के व्यर्थ प्रयत्न करते रहे।

राजा जयसिंहजी के बाद काश्मीर की गद्दी पर कोई ऐसा पराक्रमी राजा नहीं हुआ जिसने चिरकाल तक शान्ति-पूर्वक राज्य किया हो। कभी जागीरदार

बलवा करते तो कभी फौज सिर उठाती, कभी मंत्री राज्य को हड़प जाते तो कभी राजा के रिश्तेदार सिंहासन प्राप्ति के लिये षड्यन्त्र रचते। हाँ, यदि बीच में कोई पराक्रमी राजा पैदा हो जाता था तो वह कुछ समय के लिये सबको शान्त कर देता था, पर स्थायी शान्ति कोई भी स्थापित नहीं कर सका था। लगातार २०० वर्षों तक यही बेढङ्गी रफ्तार जारी रही यहाँ तक कि अन्त में काश्मीर का राज्य मुसलमानों के हाथ चला गया।

मुसलमानी शासन में काश्मीर

जिस समय काश्मीर-राज्य में इस प्रकार की अराजकता फैली हुई थी, उस समय उसके आसपास के प्रदेशों में मुसलमानी धर्म का प्रचार जोरों के साथ बढ़ रहा था। काश्मीर राज्य भी उसकी क्रूर दृष्टि से नहीं बचा। ई० स० १३३९ में शाहमीर नामक एक मुसलमान ने काश्मीर के अन्तिम हिन्दू राजा की विधवा रानी को गद्दी से हटाकर उस पर अपना अधिकार कर लिया। आरम्भ ही से काश्मीर राज्य पर मध्य एशिया अथवा भारतवर्ष की ओर से आक्रमण होते आये थे अतएव वह विदेशी शासन का आदि हो गया था और इसलिये शाहमीर को वहाँ के शासन-सूत्र में अधिक फेर-फार करने की आवश्यकता न हुई। शाहमीर ने काश्मीर का शासन-सूत्र पहले की तरह ब्राह्मणवर्ग के हाथों ही में रहने दिया।

शाहमीर के बाद कई मुसलमान नरेश काश्मीर की गद्दी पर बैठे पर वे सबके सब अत्यन्त अयोग्य और कमज़ोर निकले। हाँ, ई० स० १४२० में जो राजा गद्दी पर बैठा वह अवश्य राजा कहलाने के योग्य था। उसका नाम था झैनुल अबुलदीन (Zain-ul-Abul-din)। वह दयालु और उदार प्रकृति का रईस था। किसानों का तो वह दोस्त था। उसने कई नहर और पुल बनवाए। वह बड़ा खिलाड़ी था और ब्राह्मणों पर बड़ी कृपा रखता था। ब्राह्मणों से जो Poll-tax लिया जाता था वह उसने माफ कर दिया था। इतना ही नहीं, उसने कई ब्राह्मणों को जागीरें भी प्रदान की थीं। मुसलमान

होते हुए भी उसने कई हिन्दू-मन्दिरों का जीर्णोद्धार करवाया था और हिन्दुओं की विद्या को उत्तेजन दिया था। उसने विदेशों से कई प्रकार की कारीगरी की उत्तम २ वस्तुएँ मंगवाकर एकत्रित की थीं। उसके दरबार में कवियों, गानेवालों और खेल-तमाशा करनेवालों की भीड़ लगी रहती थी।

जैनुल अबुलदीन के बाद फिर वही सिलसिला जारी हो गया—कमजोर और अयोग्य राजा एक के बाद एक गद्दी पर बिठाये जाने लगे।

इसी बीच ई० स० १५३२ में मिरजा हैदर नामक एक मुगल सरदार ने काश्मीर पर आक्रमण किया। आक्रमण सफल हुआ और मिर्जा हैदर काश्मीर की गद्दी का मालिक बन गया। कुछ वर्ष राज्य करने के उपरान्त इसका देहान्त हो गया और कुछ समय के लिये काश्मीर फिर अराजकता और अशान्ति का क्रीड़ास्थल बन गया। यह अशान्ति तब तक ज्यों की त्यों बनी रही जब तक कि सम्राट् अकबर ने काश्मीर को मुगल सल्तनत में नहीं मिला लिया।

मुगल साम्राज्य में काश्मीर

ई० स० १५८६ में सम्राट् अकबर ने काश्मीर पर विजय प्राप्त की। अब काश्मीर मुगलों के झण्डे के नीचे आ गया। स्वयं सम्राट् अकबर तीन बार काश्मीर गये थे। वहां उन्होंने हरि पर्वत नामक एक किला बनवाया था।

अकबर के बाद जहाँगीर राज्य-सिंहासन पर बैठे। इनका तो काश्मीर पर बड़ा ही प्रेम था। काश्मीर का शालिमार बगीचा और निशात-बाग जहांगीर द्वारा ही बनवाये गये थे।

मुगलों का शासन साधारणतया सुसभ्य था और जो कानून-कायदे उस समय उपयोग में लाये जाते थे वे भी बड़े उत्तम थे। औरंगजेब के शासन-काल में सुप्रसिद्ध प्रवासी बर्नियर काश्मीर में आया था। उसने वहाँ के उस समय के लोगों का जो वर्णन किया है उससे मालूम होता है कि काश्मीर की प्रजा उस समय सुखी और समृद्धिशाली थी। उसने लिखा है कि "काश्मीर

निवासी हिन्दुस्थानियों से बहुत अधिक बुद्धिमान् और निपुण हैं। वे कविता बनाने की शक्ति और अन्य कलाओं के ज्ञान में परशियन लोगों को भी मात करते हैं और बड़े फुर्तीले तथा मेहनती भी हैं। आगे चलकर उसने वहाँ के शालों की भी प्रशंसा की है। काश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन करते हुए उसने कहा है कि यह (काश्मीर) भारतवर्ष का नन्दन कानन है। सारा देश एक खुशनुमा बगीचे के समान मालूम होता है जिसमें स्थान २ पर तरह २ के फूल, अंगूर की बेलें और गेहूँ तथा चांवल के खेत बड़े भले मालूम होते हैं।"

मुगल सम्राटों की ओर से काश्मीर में जो सूबेदार नियुक्त किये जाते थे उनमें से बहुत से बड़े सभ्य रहते थे। वे इस बात की कोशिश करते रहते थे कि जिससे प्रजा आराम में रहे। पर ज्यों २ मुगल साम्राज्य ढीला होता गया त्यों २ ये सूबेदार भी अधिकाधिक स्वतन्त्र होते गये। हिन्दू सताये जाने लगे, अधिकारी गण आपस में झगड़ने लगे और काश्मीर में पुनः अव्यवस्था ने अपना अड्डा जमा लिया। अन्त में वह समय आ गया जब कि काश्मीर को अफ़गानों के अमानुषिक शासन के नीचे आना पड़ा। अफ़गानों का शासन काश्मीर के लिये ईश्वर का अभिशाप था। वहाँ जितने अफ़गान सूबेदार नियुक्त किये गये वे सबके सब स्वार्थी और पेटू थे। वे प्रजा का रक्त चूसने में तनिक भी नहीं हिचकिचाते थे। कहा जाता है कि अफ़गानों के लिये एक आदमी का सिर काट लेना एक फूल तोड़ने के कार्य से अधिक महत्व नहीं रखता था। ये लोग हिन्दुओं को बोरों में भर २ कर तालाब में फिकवा दिया करते थे। इसके अतिरिक्त हिन्दुओं पर धार्मिक कर लगा दिया गया था। इन कई कारणों की वजह से सैकड़ों हिन्दू काश्मीर छोड़ कर भाग गये थे।

जुल्म यहाँ तक बढ़ा कि काश्मीर निवासियों को पंजाब के प्रतापी महाराजा रणजीत सिंहजी का आश्रय लेना पड़ा। रणजीत सिंहजी ने काश्मीर पर अधिकार करने का प्रयत्न शुरू कर दिया। आरम्भ में तो उन्हें असफलता मिली, पर ई० स० १८१८ में उनका मनोरथ सफल हुआ। इस वर्ष जम्मू-

नरेश गुलाबसिंहजी की सहायता से उन्होंने काश्मीर पर अधिकार कर लिया। काश्मीर एक बार फिर हिन्दू शासन में आ गया पर इस समय तक वहाँ की ९/१० जन संख्या मुसलमान धर्म ग्रहण कर चुकी थी।

यद्यपि सिक्ख जाति अफगानों के समान दया-माया हीन न थी तथापि वह कठोर अवश्य थी। ई० स० १८२४ में मूरक्रॉफ्ट नामक एक अँग्रेज ने काश्मीर का भ्रमण किया था। अपने इस भ्रमण का वृत्तान्त लिखते हुए वे कहते हैं कि "काश्मीर के लोगों की दशा बड़ी शोचनीय हो रही है। सिक्ख सरकार ने उनपर भारी २ कर लगा रखे हैं और अधिकारीगण भी उन्हें खूब तङ्ग किया करते हैं। राज्य की उपजाऊ भूमि का १/६ वाँ हिस्सा भी इस समय जोता बोया नहीं जाता है और वहाँ के निवासी एक बहुत बड़ी तादाद में हिन्दुस्तान की ओर जा रहे हैं।' आगे चलकर वे फिर कहते हैं कि "किसानों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। पहले सरकार को जमीन की पैदावार का १/२ भाग दिया जाता था पर अब भाग ३/४ तक पहुँच गया है। प्रत्येक साल पर २६ रु० सैकड़ा के हिसाब से महसूल लगा दिया गया है। कोतवाल को अपनी नियुक्ति के लिये ३० हजार रुपये प्रति वर्ष के हिसाब से सरकारी खजाने में जमा करने पड़ते हैं। यह रकम जमा करने पर वह मनमाने अत्याचार प्रजा पर कर सकता है। सिक्ख लोग काश्मीर निवासियों को पशुओं से अधिक नहीं समझते हैं। यदि कोई सिक्ख किसी काश्मीरी को मार डालता है तो उसके दण्ड स्वरूप उसे केवल १६) अथवा अधिक से अधिक २०) रु० जमा कर देने पड़ते हैं। यदि मरा हुआ आदमी हिन्दू हुआ तो उक्त दण्ड के रुपयों में से उसके कुटुम्ब को ४) रु० और यदि वह मुसलमान हुआ तो २) रु० दे दिये जाते हैं।"

व्हिग्ने (Vigne) नामक एक अन्य यूरोपियन प्रवासी ने भी काश्मीर का ऐसा ही हृदय-द्रावक वर्णन किया है। यह प्रवासी ई० स० १८३५ में काश्मीर गया था।

ई० स० १८४१ महाराणा रणजीतसिंहजी का देहान्त हो गया।

इसी समय काश्मीर स्थित सिक्ख सैनिकों ने बलवा किया और वहाँ के सूबेदार को मार डाला। यह समाचार जब जम्मू-नरेश गुलाबसिंहजी ने सुना तो उन्होंने तुरन्त ५००० सैनिकों की एक टुकड़ी रणजीतसिंहजी के उत्तराधिकारी की ओर से काश्मीर का बलवा शान्त करने के लिये भेजी। अंग्रेज इस समय सतलज नदी के दक्षिण तक के प्रदेश पर अपना अधिकार कर चुके थे और अब वे काबुल पर विजय प्राप्त करने का व्यर्थ प्रयत्न करने में लगे हुए थे। गुलाबसिंहजी की सेना ने काश्मीर पहुँचकर बलवे को शान्त किया और अपना सूबेदार वहाँ नियुक्त कर दिया। इसी समय से काश्मीर जम्मू के सिक्ख राज्यवंश के हाथ में आ गया। हाँ, ई० स० १८४६ तक लाहोर का भी उस पर अधिकार था, पर केवल नाममात्र के लिये।

काश्मीर के वर्तमान महाराजा साहब इन्हीं श्रीमान् जम्मू-नरेश गुलाबसिंहजी के वंशज हैं। अतएव जम्मू-राजवंश का यहाँ कुछ परिचय देना अनुचित न होगा। महाराजा गुलाबसिंहजी डोगरा राजपूत थे (पंजाब और काश्मीर के बीच का प्रदेश डोगरा कहलाता है और यहाँ रहने के कारण गुलाबसिंहजी के पूर्वज डोगरा कहलाये)। आपके पूर्वज पहले अवध और राजपूताने में रहते थे। वहाँ से धीरे २ पंजाब की ओर बढ़े और अन्त में डोगरा प्रदेश के मीरपुर नामक ग्राम में रहने लग गये। यहाँ से यह वंश तीन शाखाओं में विभाजित हो गया। एक शाखा ने चम्बा को, एक ने काँगड़ा को और एक ने जिसमें कि स्वयं गुलाबसिंहजी उत्पन्न हुए जम्मू को अपना निवास-स्थान बनाया। अठारहवीं सदी के मध्य में जम्मूवाली शाखा में ध्रुवदेव हुए। ये बड़े पराक्रमी थे। इनके पुत्र ने ई० स० १७७५ में जम्मू में एक राजमहल बनवाया था। इसके ३ वर्ष बाद अर्थात् ई० स० १७७८ में रणजीतसिंह की सेना ने जम्मू पर आक्रमण किया। इस समय महाराजा गुलाबसिंहजी ने ऐसा पराक्रम दिखलाया कि जिससे रणजीतसिंह के हृदय में उनके लिये स्थान हो गया। गुलाबसिंहजी ने रणजीतसिंह के यहाँ नौकरी कर ली। धीरे २ दोनों के बीच का प्रेम बढ़ता ही गया, यहाँ तक कि जब जम्मू राज्य पर

सिक्खों का अधिकार हो गया तब रणजीतसिंह ने वह राज्य गुलाबसिंहजी को दे डाला और साथ ही उन्हें राजा का सम्मानसूचक खिताब भी दे दिया। गुलाबसिंहजी के एक भाई महाराजा रणजीतसिंहजी के दीवान थे, वे पंच प्रान्त के राजा बना दिये गये और तीसरे भाई को रामनगर का राज्य मिला।

राज्य मिलने के समय से १५ वर्ष के अन्दर २ तीनों भाइयों ने मिलकर आसपास के तमाम छोटे मोटे सरदारों पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। सरदार जोरावरसिंह की अधीनता में कुछ सेना बदख और बलूचिस्तान भेजकर ये प्रान्त भी हस्तगत कर लिये गये। इतना ही नहीं, सिक्ख सेना ने तिब्बत पर भी आक्रमण किया था पर दुर्भाग्य से जोरावरसिंह वहाँ मारे गये और उनकी सेना तहस नहस हो गई।

इस प्रकार यद्यपि रणजीतसिंह की मृत्यु के समय गुलाबसिंहजी सिक्ख साम्राज्य के अन्तर्गत एक सामान्य रईस गिने जाते थे तथापि जम्मू और उसके आसपास की रियासतों तथा बदख और बलूचिस्तान पर उनका अबाधित अधिकार हो गया था और काश्मीर भी एक प्रकार से उन्हीं के राज्य में था। व्हिग्ने नामक एक अंग्रेज प्रवासी का कथन है कि "राजा गुलाबसिंहजी तेज मिजाज के रईस थे और कुछ अंशों में जुल्मी भी थे, पर उस आराजकता के समय में राजाओं को ऐसा होना भी पड़ता था।" आगे चलकर उक्त यात्री यह भी कहता है कि "वे धार्मिक मामलों में बड़े उदार और सहिष्णु थे। इतना होते हुए भी मनुष्य उनसे भय खाते थे।" कुछ भी हो हम तो यह कहेंगे कि उनमें अटूट साहस और अपूर्व शक्ति थी और उन्होंने योग्यता-पूर्वक राज्य को चलाया।

रणजीतसिंहजी की मृत्यु के बाद कुछ समय के लिये ऐसा मालूम होने लगा था कि गुलाबसिंहजी का सितारा अब बहुत दिनों तक तेज नहीं रह सकेगा। अपने भाई की मृत्यु कर डालने के कारण लाहोर के दरबार में उनका कुछ भी वजन नहीं रह गया था। वे बड़ी तेजी के साथ पतन की ओर जाते हुए मालूम होते थे। पर एकाएक उनके भाग्य ने पलटा खाया। वे न केवल

अपने पराक्रम द्वारा विजित किये गये प्रदेशों ही के मालिक बने रहे वरन् काश्मीर भी उनके हाथ लग गया। हाँ काश्मीर के लिये उन्होंने ७॥ लाख स्टर्लिंग एक मुश्त दिये थे और साथ ही साथ १ घोड़ा, ७ बकरियाँ और ६ शाल-जोड़ी प्रतिवर्ष देना भी उन्होंने स्वीकार किया था।

यह सब फैसला अंग्रेज सरकार की मार्फत हुआ था। बात यह हुई थी कि रणजीतसिंहजी की मृत्यु के बाद पंजाब में अशान्ति फैल गई थी। राज्य का उत्तराधिकारी असंयम के कारण असमय में ही काल का ग्रास बन गया था। यह दशा देख रणजीतसिंहजी के पुत्र शेरसिंह ने लाहोर पर आक्रमण कर दिया और राज्याधिकार अपने हाथ में ले लिया। इस समय पंजाब का शासन सैनिक समितियों द्वारा सञ्चालित किया जाता था। इसी बीच गुलाबसिंहजी के भाई ध्यानसिंहजी ने शेरसिंह का खून कर डाला पर ध्यानसिंहजी भी अजितसिंह नामक एक सिक्ख सरदार द्वारा मार डाले गये। अजितसिंह भी बहुत दिनों तक राज्य नहीं कर सके। उन्हें भी सिक्ख सैनिकों ने मार डाला। अब महाराजा दिलीपसिंहजी राज्यसिंहासन पर बिठाये गये। आपकी आयु इस समय ५ वर्ष की थी। इस समय सेना का जोर और भी बढ़ गया। सारा राज्य प्रबन्ध सैनिक-समिति के इशारे पर चलाया जाने लगा। ध्यानसिंहजी के पुत्र हीरासिंहजी इस समय दीवान के पद पर थे, पर उनकी एक भी नहीं चलती थी। उन्होंने सेना की टुकड़ियों को इधर उधर भेज देना चाहा पर सेना ने राजधानी छोड़ने से इन्कार कर दिया। उल्टे हीरासिंहजी को राजधानी छोड़कर भाग जाना पड़ा, पर वे भागने भी न पाये। रास्ते ही में पकड़ कर मार डाले गये। उनका सिर काट कर लाहोर लाया गया था।

हीरासिंहजी की मृत्यु हो जाने पर शासन की बागडोर बालक राजकुमार दिलीपसिंहजी के मामा और लालसिंह नामक एक ब्राह्मण के हाथों में चली गई। इन लोगों ने सेना को खुश रखने के लिये उनकी तनख्वाह बढ़ा दी और इसलिये कि वह कोई और उपद्रव न कर बैठें, उसे जम्मू के राजा

गुलाबसिंहजी के विरुद्ध भड़का दिया। गुलाबसिंहजी लाहोर लाये गये। यहाँ एक करोड़ रुपया जमा करने पर आप बन्धनमुक्त हो सके। अब सेना मुल्तान भेज दी गई। इसी बीच रणजीतसिंहजी के एक दूसरे पुत्र ने गद्दी के लिये बलवा किया पर दिलीपसिंहजी के काका ने उसे मार डाला। ये काका भी कुछ ही समय में दुश्मनों के हाथ से मारे गये। अब राजमाता ने अपने सेना-नायक तेजसिंह और दीवान लालसिंह की सहायता से राजसूत्र अपने हाथ में ले लिया। इस समय सेना की शक्ति इतनी बढ़ गई थी कि उसका निकम्मा बैठे रहना राज्य के लिये हानिकर प्रतीत होने लगा। अतएव यह निश्चय किया गया कि अंग्रेजी राज्यपर आक्रमण किया जाय। ई० स० १८४५ के नवम्बर मास में ६००० सिक्ख सेना ने सतलज नदी पार की। सेना के पास ७५० तोपें भी थीं। १६ वीं दिसम्बर के दिन यह सेना फिरोजपुर के के पास जा पहुँची। यह किला अंग्रेजों के अधिकार में था अतएव इसकी रक्षा के लिये १०००० अंग्रेजी सैनिक भी वहाँ मौजूद थे। १८ वीं दिसम्बर के दिन मुदकी नामक स्थान पर सिक्ख और अंग्रेजी सेना का मुकाबला हो गया। भीषण युद्ध हुआ पर विजय अनिश्चित रही। इसी मास की २१ तारीख के दिन फिरोजशाह में फिर युद्ध हुआ। सिक्ख सेना ने ऐसा जम कर मुकाबिला किया कि अंग्रेजी सेना के छक्के छूट गये। स्वयं गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिञ्ज ने सेना-सञ्चालन का कार्य किया। इसमें उनके ५ शरीर-रक्षक काम आये और ४ घायल हुए। पर इस युद्ध से भी कोई स्थायी निर्णय नहीं हुआ। २८ जनवरी को अलीवाल नामक स्थान पर फिर एक संग्राम हुआ। कहा जाता है कि अबकी बार सिक्ख सेना के पैर उखड़ गये—सिक्ख सरकार को अब विजय की आशा नहीं रही। लालसिंह मंत्री के पद से च्युत कर दिया गया और जम्मू-नरेश राजा गुलाब सिंहजी गवर्नर-जनरल के साथ सलाह मशविरा करने के लिये बुलाये गये।

बस यहीं से गुलाबसिंहजी का सौभाग्य-सूर्य चमका। गुलाबसिंहजी ने अंग्रेजों के पास सन्धि का पैगाम भेजा पर अभी तक सिक्ख सेना ने परा-

जय स्वीकार नहीं की थी। सोब्राऊँ नामक स्थान पर वह अंग्रेजी सेना के साथ फिर भिड़न्त कर बैठी। अबकी बार वह पूर्ण रूप से पराजित हुई। अंग्रेजी सेना ने लाहोर पर अधिकार कर लिया। ९ मार्च को सिक्ख और अंग्रेज सरकार के बीच लाहोर ही में एक सुलहनामा हुआ। इस सुलहनामे के अनुसार सिक्खों ने काश्मीर, हजारा और साथ ही व्यास और सिन्धु नदी के बीच का समस्त पर्वतीय प्रान्त अंग्रेज सरकार को दे डाला। इस सन्धि में महाराजा गुलाबसिंहजी का प्रधान हाथ था, अतएव उन्हें भी इससे काफी फायदा हो गया। वे एक स्वतन्त्र शासक बना दिये गये और महाराजा खड़ग सिंहजी के समय में उनके अधिकार में जितना मुल्क था उतना ही कायम रखा गया।

इस सुलहनामे के एक सप्ताह बाद राजा गुलाबसिंहजी और बृटिश सरकार के बीच एक और सुलहनामा हुआ। इस सुलहनामे के अनुसार राजा गुलाबसिंहजी पुश्त दर पुश्त के लिये सिन्धु नदी के पूर्व और रावी नदी के पश्चिम के तमाम मुल्क जिनमें चम्बा और लाहोल भी शामिल है, स्वामी बना दिये गये। राजा गुलाबसिंहजी ने इसके बदले में बृटिश सरकार को ७५ लाख रुपया एक मुश्त तथा एक घोड़ा १२ बकरियाँ और ३ शाल-जोड़ियाँ प्रति वर्ष देना स्वीकार किया। साथ ही तय हुआ कि अपने निकटवर्ती पहाड़ी प्रदेशों में जरूरत आ पड़ने पर गुलाबसिंहजी अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ अंग्रेजों की सहायता करेंगे और बृटिश सरकार भी बाहरी आक्रमणकारियों से उनकी रक्षा करेगी।

इस प्रकार काश्मीर राज्य महाराजा गुलाबसिंहजी के हाथ में आया, पर वे सरलता के साथ काश्मीर पर अधिकार नहीं कर सके। सिक्ख-सरकार की ओर से जो सूबेदार काश्मीर में नियुक्त किया गया था उसने वहाँ से अपना अधिकार हटा लेने से इन्कार कर दिया। इतना ही नहीं, उसने अपनी अधीनस्थ छोटी मोटी रियासतों की सहायता से गुलाबसिंहजी की सेना पर आक्रमण कर दिया। गुलाबसिंहजी ने इस बात की सूचना बृटिश

सरकार के पास भेजी और सहायता के लिये लिखा। सूचना के अनुसार ब्रिटिश सेना जम्मू आ पहुँची। स्वयं सर हेनरी लॉरेन्स गुलाबसिंहजी को श्रीनगर ले गये। ई० स० १८४६ के अन्त तक वहाँ का शासन गुलाबसिंहजी को दिलवा कर वे वापस लौट आये।

जिस समय महाराजा गुलाबसिंहजी ने काश्मीर का शासन-सूत्र अपने हाथों में लिया, उन्हें वहाँ की हालत बहुत बिगड़ी हुई मिली। इस समय किसानों से उनकी पैदावार का [illegible] और कभी कभी [illegible] हिस्सा लगान के रूप में से लिया जाता था जो कि वर्तमान लगान की दर से करीब तिगुना होता है। इस पर भी मजा यह कि सब की सब रकम सरकारी खजाने में जमा नहीं होती थी—इसका एक बहुत बड़ा हिस्सा स्वार्थी और पेटू अधिकारियों की जेबों ले जाता था। लगान वसूल करने के नियम ही ऐसे बने हुए थे कि जो अधिकारियों को घूंस खाने के लिये उत्तेजित करें। यदि महाराजा गुलाबसिंहजी अधिक समय तक जीवित रहते तो शायद इन शासन सम्बन्धी कुरीतियों को मिटाने की चेष्टा करते, पर ई० स० १८५७ में उनका स्वर्गवास हो गया। उनके पुत्र रणवीरसिंहजी अब राज्य के उत्तराधिकारी हुए। इसी समय प्रसिद्ध भारतीय-विद्रोह हुआ जिसमें महाराजा रणवीरसिंहजी ने भारत सरकार को बहुमूल्य सहायताएँ पहुँचाई। इन सहायताओं से प्रसन्न होकर भारत सरकार ने आपको दत्तक लेने का अधिकार प्रदान कर दिया। पर दुर्दैव से ई० स० १८८५ में आप सदा के लिये इस संसार से चल बसे।

महाराजा रणवीरसिंहजी बड़े सीधे सादे, लोक-प्रिय और साधु-प्रकृति के रईस थे। आपने राज्य में बहुत से सुधार भी किये थे। आप प्रतिदिन खुले दरबार में बैठ कर अपने गरीब से गरीब प्रजा-जन की बात भी बड़े ध्यान से सुनते थे। दुर्भाग्य यही था कि आपके पास अधिकारी वर्ग की कमी थी। सदियों से जहाँ का शासन बिगड़ा हुआ आ रहा था उसे व्यवस्थित करने के लिये बड़े योग्य अधिकारियों की आवश्यकता थी। यह वह कार्य था जिसे मामूली श्रेणी के अधिकारी नहीं कर सकते थे। इतना होते हुए भी उस समय वहाँ

खाद्य-सामग्री बड़ी सस्ती थी। एक रुपये में ४० सेर से लेकर ५० सेर तक चावल, ६ सेर गोश्त और ३० सेर दूध मिल सकता था। शहतूत, सेब तथा अन्य फल इतनी अधिक तादाद में पैदा होते थे कि वे झाड़ों के नीचे पड़े २ सड़ जाते पर कोई उठानेवाला नहीं मिलता था। अपराध बहुत कम होते थे और शराब की बिक्री भी कम होती थी। श्रीमान् महाराजा साहब ने ५०००० रु० शिक्षा-प्रचार में और ५०००० रु० सड़कों की दुरुस्ती में खर्च किये थे। लगान की दर में भी कुछ रद्दो-बदल किया गया था। इतना सब कुछ होते हुए भी काश्मीर की दशा अभी पूर्णरूप से सुधरी नहीं थी। बहुत सी बातें ऐसी थीं जिनमें अभी भी सुधार की बड़ी आवश्यकता रह गई थी।

ई० स० १८७७ में काश्मीर में अति वृष्टि होने के कारण महा भयङ्कर अकाल पड़ा। जिसके कारण वहाँ की $\frac{1}{3}$ जन-संख्या का संहार हो गया। गाँव के गाँव उजड़ गये और श्रीनगर शहर की आबादी आधी रह गई।

इस भयङ्कर नर संहार को देखकर महाराजा साहब का दिल दहल उठा। उन्होंने तुरन्त इस दशा को सुधारने के यत्न किये। लगान की दर में कमी कर दी गई और व्यापार की सुगमता के लिये बहुत सी नई सड़कें इधर-उधर बनवा दी गई।

इस भयङ्कर दुर्भिक्ष के ५ वर्ष बाद महाराजा रणबीरसिंहजी ने अपनी इहलोक यात्रा समाप्त की।
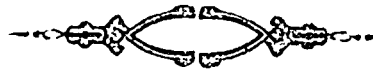
महाराजा सर प्रतापसिंह

महाराजा रणबीरसिंहजी की मृत्यु के पश्चात उनके ज्येष्ठ पुत्र महाराजा प्रतापसिंहजी राज्य-गदी पर बैठे। आपका जन्म ई० स० १८५० में हुआ था। बचपन में आप अपने पितामह के बड़े प्रेमपात्र थे। वयस्क होने पर आपने संस्कृत भाषा का अध्ययन करना शुरू किया। इसके अतिरिक्त आपने अंग्रेजी, कानून और औषधि-शास्त्र का भी अभ्यास किया। विद्याध्ययन पूर्ण हो जाने पर आपने शासन के प्रत्येक विभाग का अनुभव प्राप्त किया। आप रेव्हेन्यू, ज्युडिशियल और मिलिटरी विभागों के नीचे से लगाकर ऊंचे से ऊंचे पद के कार्य्य से वाकिफ़ हो गये। जिस समय आप इस राज्य की गद्दी पर आसीन हुए उस समय आपकी उम्र ३५ वर्ष की थी।

शासन-सूत्र धारण करने के पश्चात् आपने अपनी शासन-प्रणाली में सुधार करने शुरू कर दिये। पहले आपने अपने राज्य के अल्प-वेतन-भोगी क्लर्कों की सुध ली। इन क्लर्कों को पहले त्रैमासिक या षाण्मासिक वेतन दिया जाता था। इससे इन्हें अत्यन्त कष्ट उठाने पड़ते थे। आपने यह प्रथा बिलकुल बन्द करदी और हर मास की पहली तारीख को तनखा देने का हुक्म दिया। इतना ही नहीं, आपने उनकी तनखाहों में वृद्धि भी की। इसके पश्चात् आपने जमा-खर्च की पद्धति में सुधार किया। आपने अपने राज्य से अनेक कर उठा दिये। बहुतसी चीजों पर लिया जाने वाला महसूल भी आपने माफ कर दिया। आपने बेगार की प्रथा भी बिलकुल बन्द कर दी थी। आपके राज्यारूढ़ होने से पहले प्रजा से शिक्षा आदि की व्यवस्था के लिये जो कर लिया जाता था, वह भी आपने माफ कर दिया था। इसके पश्चात् आपने मिलिटरी विभाग में भी सुधार किया और स्यालकोट से जम्बू तक रेल्वे लाइन खुलवाई।

यहाँ यह कह देना अनावश्यक न होगा कि आप उपरोक्त सुधारों को पूरी तौर पर अमल में भी न ला सके थे कि आपको राज्य-शासन से ५ वर्ष के लिये अवसर ग्रहण करना पड़ा। शासन-सूत्र धारण करने के समय

ही से आपके और भारत सरकार के बीच दिल-सफाई न थी। अतएव आपको ५ वर्ष के लिये राज-कारोबार से हाथ खींचना पड़ा। इसके पश्चात् भारत सरकार ने शासन-कार्य्य सँभालने के लिये एक कौंसिल नियुक्त की। इस कौंसिल के अध्यक्ष-पद पर कुछ दिनों तक तो आपके कनिष्ठ भ्राता राजा अमरसिंहजी ने कार्य्य किया। किन्तु ई० स० १८९३—९४ से फिर आप इस कौंसिल के अध्यक्ष की हैसियत से राज्य-शासन करने लगे। ई० स० १८९२ में आपको जी० सी० एस० आइ० की तथा ई० स० १८९६ में मेजर जनरल की उपाधियाँ प्राप्त हुईं। ई० स० १९०५ के आक्टोबर मास तक शासनकार्य्य इसी कौंसिल के द्वारा संचालित हुआ। इसके पश्चात् वह तोड़ दी गई और फिर से आपने सम्पूर्ण शासन-कार्य्य अपने हाथों में लिया।

जब तिराह और अमोर की घाटी में युद्ध करने के लिये अंग्रेज सरकार की सेना पहुँची थी, तब आपने भी अपनी सेना को उसकी मदद करने के लिये भेजा था। आपकी सेना ने इस समय अपनी वीरता का अच्छा परिचय दिया था। इसके पश्चात् आपने श्रीनगर में बिजली की रोशनी का प्रबंध किया और जम्मू से श्रीनगर तक रेल्वे लाइन खोलने की स्कीम तयार करवाई। आपने श्रीनगर-म्युनिसिपालिटी में भी समुचित सुधार किया।

आपके शासन में इस राज्य में प्रजाहितैषी संस्थाओं की संख्या बहुत बढ़ गई। आप के समय में श्रीनगर में दो हाईस्कूल, एक कला-भवन, एक नॉर्मल स्कूल आदि थे। इसके अतिरिक्त राज्य में ७ एँग्लो वर्नाक्यूलर स्कूल, १२ मिडिल स्कूल और १५० प्राइमरी स्कूल थे। इतना ही नहीं राज्य के खास शहर श्री नगर में तीन कन्या-पाठशालाएँ भी थीं और अनेक प्रायवेट स्कूल भी थे। इन प्रायवेट स्कूलों को सरकार की ओर से भी मदद मिलती थी। इन सब पाठशालाओं में १२००० से अधिक विद्यार्थी शिक्षा-लाभ करते थे। इसी प्रकार श्रीमान् ने औषधि-विभाग में भी अच्छा सुधार किया था और श्रीनगर में एक कुष्ठाश्रम भी खोला था।

यहाँ यह कहना आवश्यक न होगा कि काश्मीर के सदृश प्रकृति-देवी

के सुन्दर कानन में उत्तम फलों की उपज बहुतायत से होती है। यह राज्य अति प्राचीन काल से रेशम के कारखाने और शाल के लिये प्रसिद्ध है। इस कारण यहाँ के व्यापार की हालत अच्छी है। सड़कों के अभाव के कारण इस व्यापार की उन्नति में प्रोत्साहन न मिलता था। अतएव आपने इस अभाव की पूर्ति के लिये कई उपायों की योजना की। ऊपर कही हुई रेल्वे लाइन की स्कीम तयार करवाने के अतिरिक्त आपने १५ लाख रुपये खर्च करके अपने राज्य में लम्बी-चौड़ी सड़कें बनवाई।

ई० स० १९१० में आपके शासन के १५ वर्ष पूरे हो गये। अतएव आपकी प्रजा ने बड़ा उत्सव मनाया। इसके पश्चात् ई० स० १९११ के देहली-दरबार के समय आप जी० सी० आइ० ई० की उपाधि से विभूषित हुए थे। ई० स० १९१२ की १२ वीं जनवरी को आपने जम्मू में एक दरबार कर जम्मू और काश्मीर की म्युनिसिपालिटियों में निर्वाचन-प्रथा प्रचलित की थी। इसके अतिरिक्त आरोग्यता के लिये विशेष उपायों की योजना करने के लिये आपने ५ लाख रुपयों की रकम प्रदान की थी। इस समय आपने अपने राज्य के कृषकों को भी विशेष हक्क प्रदान किये थे।

आपको ऐतिहासिक बातों में बड़ी दिलचस्पी थी। अपने राज्य के अन्तर्गत आपने पुरातात्विक इमारतें और स्तभों की अच्छी मरम्मत करवाई थी।

आपको अपने शासन में अपने दोनों कनिष्ठ भ्राताओं की बड़ी सहायता मिलती थी। आपके दोनों भ्राताओं का नाम राजा सर रामसिंहजी और राजा सर अमरसिंहजी था। आपके कोई पुत्र न था। सिर्फ राजा अमरसिंह जी के एक पुत्र थे जिनका नाम महाराजा हरिसिंह जी है। ये ही आजकल काश्मीर के नरेश हैं।

महाराजा हरिसिंह जी

महाराजा प्रतापसिंह जी के स्वर्गवास के पश्चात् उनके भतीजे महाराजा हरिसिंह जी काश्मीर के सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। आपने अजमेर

हिज हाईनेस महाराजा साहिब मैसूर G. C. S. I.

भारतवर्ष के देशी राज्यों में मैसूर का राज्य अत्यन्त प्रगतिशील समझा जाता है। यहाँ के सुशिक्षित और प्रजा-प्रिय नरेश की कृपा से मैसूर का शासन आदर्श और दिव्य हो गया है। वह यूरोप के किसी सभ्य देश के शासन से टक्कर ले सकता है। प्रजा के अन्तःकरण को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित करने के लिये—शासन-कार्य में उसे योग्य अधिकार देकर उसमें नागरिकत्व और मनुष्यत्व के भावों का संचार करने के लिये विविध प्रकार के उद्योग धंधों का विकास कर प्रजा की आर्थिक दशा सुधारने के लिये मैसूर रियासत ने जो दिव्य कार्य किये हैं वे भारतीय राजाओं के लिये आदर्शरूप हैं। मैसूर ने अपने आदर्श-शासन से संसार को यह दिखला दिया है कि भारतवासी उपयुक्त अवसर मिलने पर उत्तम से उत्तम शासन-पद्धति का अविष्कार एवं विकास कर सकते हैं। मैसूर राज्य एक इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। इस पर भारतवासी योग्य अभिमान कर सकते हैं। अब हम मैसूर के इतिहास एवं उसकी शासन-पद्धति पर कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं।

मैसूर का प्राचीन इतिहास अत्यन्त गौरवशाली और मनोरंजक है। जिस भूमि पर आजकल मैसूर राज्य स्थित है, उसका वर्णन रामायण और महाभारत में भी कई जगह आया है। ऐतिहासिक युग में मैसूर का प्राचीन इतिहास मौर्य्य साम्राज्य से शुरू होता है। प्राचीन जैन ग्रंथों से और विविध शिला-लेखों से यह प्रतीत होता है कि भारतीत ऐतिहासिक युग के सर्व प्रथम महा-प्रतापी सम्राट् चन्द्रगुप्त की अंतिम अवस्था मैसूर प्रान्त में स्थित श्रवण बेल-

गोला में व्यतीत हुई थी। श्रवण बेलगोला के शिलालेखों में महाराजा चन्द्र॰ गुप्त और उनके जैन गुरू भद्रबाहू स्वामी का बहुत कुज उल्लेख है। सुप्रख्यात् बौद्ध सूत्र महावंश से पता चलता है कि संसार में भगवान बुद्धदेव का दया और अहिंसा का दिव्य संदेश फैलानेवाले अमर-कीर्ति सम्राट् अशोक ने अपने कुछ धर्म-प्रचारकों को बौद्ध-धर्म फैलाने के लिये महीशमण्डल (मैसूर) भेजा थे। सम्राट् अशोक के शिलालेखों से यह प्रतीत होता है कि ईसवी सन् के पूर्व की तीसरी सदी में इस प्रान्त का अधिकांश प्रतापी मौर्य साम्राज्य के अन्त र्गत था। इसके पश्चात् ईसवी सन् के पूर्व की दूसरी सदी से लगाकर ईसवी सन् की तीसरी सदी के प्रारंभिक काल तक इस प्रान्त पर आंध्र था शत-वाहन राज्य की विजय-ध्वजा उड़ रही थी।

तीसरी सदी के मध्य और अन्तिम काल में इस प्रांत पर भिन्न भिन्न तीन राज-वंशों के राज्य थे। इसके उत्तरीय पश्चिमीय हिस्से पर कदंब राज्य-वंश राज्य करता था। और पूर्वीय और उत्तरी हिस्से पर क्रम से पल्लव और गंगा राज्य वंश का झन्डा फहराता था। कदंब वंश स्वदेशी था। उसकी राजधानी बाणावसी थी, जो इस वक्त मैसूर की सीमा से कुछ ही दूर है। सातवीं सदी के प्रारंभिक काल में इस राज्य-वंश का अन्त हो गया और इसके स्थान पर महा प्रतापी चालुक्य राज्य-वंश का सितारा चमकने लगा। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह राज्य वंश भारत के अत्यन्त गौरव-शाली राज्य वंशों में से है और भारतवर्ष के इतिहास में इसका विशेष स्थान है। प्रायः सारे दक्षिण भारत पर इसकी विजय-ध्वजा उड़ती थी। इसने तीसरी सदी से लगाकर बारहवीं सदी तक अपना अस्तित्व कायम रक्खा। हाँ, इस अर्से में इन्हें अपने पड़ोसी राजा पल्लवों के साथ कई युद्ध करने पड़े थे। इनमें कभी इनकी विजय होती थी तो कभी पल्लवों की। आठवीं सदी में इनका सितारा फीका पड़ गया और दक्षिण हिन्दुस्तान में राष्ट्रकूटों के प्रबल पराक्रम की विजय दुंदुभी बजने लगी। न केवल दक्षिण हिन्दुस्तान में वरन् ठेंठ चीन की सीमा तक राष्ट्रकूट

साम्राज्य का झण्डा उड़ने लगा। नौवीं सदी के कई अरब प्रवासियों ने राष्ट्रकूटों के प्रबल प्रताप और उनके गौरवशाली उल्लेख किये हैं। हमने जोधपुर के इतिहास में इस विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। ईसवी सन् ७७२ में चालुक्य वंश ने अपना खोया हुआ राज्य फिर से प्राप्त किया। इस समय उनका गौरव और प्रताप फिर से चमकने लगा। इन्होंने नये युग में प्रवेश कर अपने महान् कार्यों से भारतवर्ष के इतिहास को प्रकाशमान किया। इस समय से लगाकर दो सौ वर्षों तक इनका प्रताप ज्यों का त्यों बना रहा। पल्लव लोग, जो इस समय मैसूर के पूर्वीय और उत्तरीय हिस्से के स्वामी थे, क्रमशः अपनी शक्ति बढ़ा रहे थे। उनकी राजधानी कंजीवरम् थी। शिलालेखों से प्रतीत हुआ है कि नौवीं और दसवीं सदी में कोलर, बंगलोर, चितलदुग और तमकूर जिलों पर इनका प्रभुत्व था। प्रतापी गंगा-वंश ईसवी सन् के आरंभिक काल से दसवीं सदी तक मैसूर के एक बड़े हिस्से पर राज्य कर रहा था। गंगा राज्य-वंश जैन धर्मानुयायी था। उसकी राजधानी तलकाद थी। आठवीं सदी में इस राज्य-वंश में श्री पुरुष और नौवीं सदी में सत्यवाक्य नामक महा प्रतापशाली नृपति हुए। इनके समय राज्य उन्नति और समृद्धि के उच्चासन पर विराजमान था। इस समय इस प्रतापशाली राज्य वंश की गति-विधि बड़ी तेजी के साथ चहुँ ओर शुरू हुई और इस राज्य वंश के एक राजा ने बढ़ते बढ़ते ठेठ दक्षिण में पंड्या वंश के नृपति वर्गुण पर विजय प्राप्त की। पर इस विजय का फल चिरस्थायी न रहा। क्योंकि इसके कुछ ही समय बाद राष्ट्रकूटों ने इन पर विजय प्राप्त कर इन्हें अपने आधीन कर लिया। गंगा वंशीय राजा सत्यवाक्य ही ने श्रवणबेलगोला की सुविशाल जैन मूर्ति की स्थापना की थी।

ग्यारहवीं सदी में मैसूर प्रान्त में चोल नामक अति शक्तिशाली राजवंश का उदय हुआ। इस वंश में बड़े प्रतापशाली राजा हुए। चोल वंश अति प्राचीन राज-वंश था। सम्राट् अशोक के समय से इसके अस्तित्व का पता लगता है। ये तामिल देश के निवासी थे, पर दसवीं सदी तक इनकी

विशेष ख्याति नहीं हुई। इस वंश में राजु राजा (ईसवी सन् ९८४ से १०१६ तक) और उनके पौत्र राजेन्द्र चोल हुए। ये दोनों बड़े पराक्रमी हुए। इन्होंने १००४ में गंगा वंशीय राजा को परास्त कर मैसूर प्रान्त के सारे दक्षिणी प्रान्त पर अधिकार कर लिया। इन्होंने अपने राज्य वंश का खूब विस्तार किया और एक समय सारे दक्षिणी हिन्दुस्तान पर इनकी विजय-ध्वजा उड़ने लगी। पर इनकी सत्ता अधिक दिन तक कायम न रही। इन्हें मैसूर प्रान्त के उत्तर पश्चिम में स्थित चालुक्य वंश से हमेशा लड़ना पड़ता था। इसका परिणाम यह हुआ कि इस समय कई छोटे राज्यों का उदय हुआ, जिनमें से कुछ ने चोल वंश का पक्ष ग्रहण किया और कुछ ने चालुक्य वंश की बाजू ली।

इन छोटे २ राज्यों में होईसलास नामक एक स्वदेशी वंश (Indig-enous) का उदय हुआ। ग्यारहवीं सदी में इस वंश का सितारा खूब चमका। ये लोग मूलतः मंजराबाद प्रदेश के निवासी थे और द्वारसमुद्र इनकी राजधानी थी। पहले ये चालुक्यों के सामन्त थे। इनमें ईसवी ११०४ में विष्णुवर्धन नामक एक प्रतापी राजा हुआ। उसने इस राज्य-वंश को खूब चमकाया। उसने अपने राज्य की नींव मजबूत पाये पर रक्खी। इसने चोलों पर विजय प्राप्त कर गंगावदी और नोलंबावदी पर अधिकार कर लिया। सारा मैसूर प्रान्त उसके विजयी झण्डे के नीचे आ गया। इतना ही नहीं सलेम, कोइम्बटोर, बेलारी और धारवार जिले भी उसके विशाल राज्य में शामिल हो गये। विष्णुवर्धन के समय में रामानुजाचार्य्य हुए, जिन्होंने वशिष्टाद्वैत मत चलाया। विष्णुवर्धन के पौत्र बीरबल्लाल ने अपने राज्य का प्रताप और भी बढ़ाया और उसके समय में इस प्रतापी राज्य वंश का झण्डा उत्तर में कृष्णा नदी तक फहराने लगा। उसके वंशज भी प्रतापी निकले और उन्होंने दक्षिण में त्रिचनापल्ली तक अपने राज्य का विस्तार किया। पर उदय के बाद अस्त और अस्त के बाद उदय होने का नैसर्गिक नियम इस प्रतापी राज्य-वंश पर भी लगा और चौदहवीं सदी के आरंभ में होइसला राज्य पर मुसलमानों

के हमले हुए और इस राज्य-वंश का अन्त हो गया। यह राज्य-वंश बड़ा प्रतापी था और बेलुर आदि के सुविशाल और भव्य मन्दिर इस राज्य वंश के प्रताप का आज भी दिग्दर्शन करवा रहे हैं।

इसके पश्चात् मैसूर राज्य का संबन्ध विजय नगर के साम्राज्य से हुआ। विजय नगर का साम्राज्य कितना शक्तिशाली हो गया था, इस पर विशेष लिखने की यहाँ आवश्यकता नहीं। एक तरह से सारे दक्षिण हिन्दुस्तान पर इसका प्रतापी झण्डा उड़ने लगा था। प्रारंभ ही में जो देश इस साम्राज्य के विजयी झण्डे के नीचे आये उनमें मैसूर भी एक था। यद्यपि दक्षिण हिन्दुस्तान पर विजय नगर साम्राज्य का झण्डा उड़ रहा था, पर वहां कई छोटे छोटे राज्य थे। जो उक्त साम्राज्य के आधीन थे और उसे खिराज देते थे। इनमें से कुछ राज्यों ने विजय नगर साम्राज्य के अन्त हो जाने के पहले ही स्वातंत्र्य की घोषणा कर दी थी। मैसूर के उत्तर काल का इतिहास इसी प्रकार के एक राज्य से सम्बन्ध रखता है।

मैसूर का वर्तमान राज्य-वंश

मैसूर का वर्तमान राज-वंश यदुवंशीय क्षत्रिय है। विजयनगर साम्राज्य के प्रारंभिक काल में इस वंश के दो पुरुष दक्षिण में आये मैसूर से दक्षिण पूर्व की ओर कुछ मील की दूरी पर हडीनाड़ नामक ग्राम में इन्होंने अपना राज्य स्थापित किया। किस्मत ने इनका साथ दिया और सोलहवीं सदी में मैसूर के आस पास के प्रदेशों पर इनका झण्डा उड़ने लगा। विजय-नगर साम्राज्य की गिरती हुई अवस्था ने इनसे उत्थान को बड़ी सहायता पहुँचाई। तालीकोट के युद्ध के बाद तो इन्होंने उक्त साम्राज्य को खिराज देना भी बन्द कर दिया। ईसवी सन् १५७८ में राजा उड़ियार मैसूर के राज्य-सिंहासन पर विराजे। आपका प्रताप भी खूब चमका। ईसवी सन् १६१० में आपने श्रीरंगपट्टम पर अधिकार कर लिया और दूर दूर तक अपना विजयी झण्डा उड़ाया। इनके समय में मैसूर महत्वशाली राज्य गिना

१८ वीं सदी में मैसूर

इसके बाद ही उक्त मैसूर राज्य के गिरने के दिन आ गये। अठारहवीं सदी उक्त राज्यवंश के लिये बड़ी अशुभकर निकली। भारतीय इतिहास के पाठक जानते हैं कि अठारहवीं सदी में क्रान्तिकारी युग प्रवृत्त हो रहा था। कर्नाटक में मुसलमानी ताकत जोर पकड़ रही थी। महाराष्ट्र लोग चारों ओर महाराष्ट्र साम्राज्य की पताका फहराने में लगे हुए थे। मुगल साम्राज्य पतनावस्था की ओर अभिमुख हो रहा था। मुगल सम्राट् का एक सरदार निजाम उल-मुल्क दक्षिण में आकर अपना नया राज्य स्थापित करने की धुन में था। उन्होंने यहाँ आकर तत्कालीन भावनगर (वर्तमान हैदराबाद) में निवास किया और अपनी कर्तबगारी से गोलकुन्डा के विनाश पाये हुए राज्य के आवशेष पर अपनी प्रबल सत्ता कायम की। कहने का मतलब यह है कि उस समय दक्षिण में राज्यसत्ता के लिये लालचियों में बड़ा ही प्रबल और खूनी संघर्ष हो रहा था। इसमें अंग्रेजों और फ्रेंचों ने भी हिस्सा लिया था। ऐसे संघर्ष-मय समय में अपनी राज्यसत्ता कायम रखने के लिये बड़े प्रबल आत्मा की आवश्यकता थी। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि ऐसे कठिन समय में मैसूर की राज्यसत्ता बड़े ही कमजोर हाथ में थी। मैसूर के तत्कालीन महाराजा कृष्ण राजा उडियार उन सब गुणों से विहीन थे, जो एक राज्यकर्ता को सफल बनाने में सहायक होते हैं। इससे उनके कलालेवंश के दो मंत्रियों ने, जिन्हें उन्होंने राज्य का सर्वाधिकारी बनाया था, राज्य की अधिकांश सत्ता अपने हाथ में ले ली। राजा नाम मात्र के रह गये।

मैसूर में नयी शक्ति का उदय

इसी समय हैदरअली के रूप में मैसूर में एक नयी शक्ति का उदय हुआ। मैसूर राज्य के पुराने कागज़-पत्रों से मालूम होता है कि हैदरअली का अशरफ़ खाँ नामक एक पूर्वज अर्बस्तान से अपनी स्त्री बच्चों को लेकर हिंदुस्तान

में आया था। उसने बीजापुर राज्य में नौकरी कर ली। उसका एक वंशज कोलार गया और वहीं वह मर गया। उसके तीन लड़के थे। इनमें से सबसे बड़े लड़के ने सिरा के नवाब के यहाँ एक फौजी अफसर के पद पर नौकरी कर ली। हैदर का पिता आपने दोनों लड़कों पर बहुत कर्ज छोड़ कर मरा था। हैदर का चाचा अपने भतीजे को लेकर एक बड़े अधिकारी के मार्फत तत्कालीन मैसूर नरेश की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने महाराजा से प्रार्थना की कि अगर हुजूर हमारा कर्ज चुका देगें तो हम आजन्म प्रमाणिकता-पूर्वक हुजूर की बन्दगी करेगें। महाराजा ने यह प्रार्थना स्वीकार कर ली। उन्हें दस हजार मैसूरी रुपये (Pagodas) प्रदान कर दिये, जिनसे उन्होंने अपना कर्ज चुका दिया।

ईसवी सन् १७४९ में पूर्वोक्त सर्वाधिकारी ने देवनहाली पर जो घेरा डाला था, उसमें हैदर ने अपना पराक्रम दिखला दिया था। और भी युद्धों में इसने अपने विशेषत्व का परिचय दिया था। इस समय में हैदरअली ने हस्तगत किये हुए अकबरी मोहरों से लादे हुवे तेरह ऊंट महाराजा को नजर किये। महाराजा ने इनमें से तीन ऊंट वापस हैदर को प्रदान कर दिये। इस के अतिरिक्त एक समय बराबर तनखा न मिलने से मैसूर की फौज बागी हो गई थी। हैदर इसे फिर ठीक रास्ते पर ले आया और उसने शांति स्थापित की। इससे खुश होकर महाराजा ने इसे डिन्डीगल का फौजदार नियुक्त किया और उसे बहादुर और नवाब की पदवियों से विभूषित किया। इसके बाद दक्षिण हिन्दुस्थान में जो अव्यवस्था और गड़बड़ हुई, उसमें हैदर को चमकने का खूब अवसर मिला। वह अपनी कर्तबगारी, धूर्तता और बहादुरी से मैसूर का कर्ता धर्ता बन गया। उसने मैसूर पर होनेवाले मराठों के कई आक्रमणों को विफल किया। उसने मैसूर की राज्य की सीमा को बहुत बढ़ाया। इस वक्त वही मैसूर का वास्तविक शासक था। महाराजा केवल नाम के शासक रह गये थे। सब काम हैदर के हाथ में था। राज-गद्दी पर बैठें रहना, यही मात्र नामधारी महाराजा का काम रह गया था।

हैदर और बृटिश सरकार

हैदरअली को बृटिश सरकार के साथ भी युद्ध करना पड़ा था। ईसवी सन् १७६९ में और इसके बाद ईसवी सन् १७८१-८२ में हैदर और बृटिश का युद्धक्षेत्र पर मुकाबला हुआ था। इससे दूसरे युद्ध में अर्थात् ईसवी सन् १७८२ में युद्ध संचालन का कार्य करते हुए चितुर मुकाम पर उसका शरीरान्त हो गया।

टीपू

हैदरअली के बाद टीपू उसका उत्तराधिकारी हुआ। बुद्धिमत्ता, राजनीतिज्ञता और दूरदर्शिता में टीपू अपने पिता हैदर से बहुत नीचे दर्जे पर था किन्तु धर्मान्धता, असहिष्णुता आदि दुर्गुणों में वह हैदर से कहीं चढ़ बढ़ कर था। इससे वह अतिशीघ्र लोगों में अप्रिय हो गया। टीपू ने अधिकार-सूत्र को हाथ में लेते ही मैसूर राजा के रहे सहे नाम मात्र के अधिकार भी छीन लिये। हैदर उक्त राज्य-वंश के लिये जो दिखावटी सम्मान प्रगट करता था, वह भी टीपू ने बन्द कर दिया। इतना ही नहीं उसने उक्त राज्य-वंश पर अनेक प्रकार के अत्याचार भी करने शुरू किये। इससे मैसूर की विधवा राज माता ने टीपू के खिलाफ अंग्रेजों के साथ गुप्त रीति से लिखापढ़ी भी शुरू कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि उनकी ईसवी सन् १७८२ में अंग्रेजों के साथ सन्धि हो गई। ईसवी सन् १७९६ में जब मैसूर के महाराजा चामराज उडियार का स्वर्गवास हुआ तो टीपू ने उनके पुत्र का राज्यारोहण कार्य्य रोक दिया। इस पर बड़ा असन्तोष फैला। टीपू के अत्याचारों से लोग बड़े तङ्ग आ गये थे। अंग्रेजों और मराठों से भी उसकी सख्त दुश्मनी हो गई थी। ई० स० १७९९ में बृटिश, मराठे और निज़ाम ने मिलकर श्रीरंगपट्टम पर हमला किया। टीपू बड़ी बहादुरी से लड़ता हुआ इस युद्ध में मारा गया।

महाराजा कृष्णराज उडियार

हम ऊपर कह चुके हैं कि टीपू ने मैसूर के राज्यपरिवार के साथ बड़ा ही निर्दय व्यवहार किया था। उसने मृत राजा के पुत्र-कृष्णराज उडियार को जो उस समय लगभग दो वर्ष के थे, महल से निकाल कर महल लूट लिया था। इतना ही नहीं, इन बालराजा की माता तथा उनके सगे सम्बन्धियों के वस्त्राभूषण तक उसने छीन लिये थे। इसी समय से ये लोग मैसूर के पास एक झोपड़े में रहने लगे थे। ई० स० १७९९ में जब श्रीरंगपट्टम अंग्रेजों के हाथ आया, तब भी ये झोंपड़े ही में रहते थे।

इसके बाद मैसूर के इतिहास ने नया ही रंग पकड़ा। तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड वेलेस्ली ने विजय में प्राप्त किये हुए मुल्क को अपने तथा निज़ाम के बीच बाँट कर शेष ४९ लाख रुपया वार्षिक आमदनी के मुल्क पर स्वर्गीय राजा के पुत्र उपरोक्त महाराजा कृष्णराज उडियार को उत्तराधिकारी बना दिया। सर बेरी क्लोज श्रीरंगपट्टम के रेसिडेन्ट नियुक्त हुए। इसके अतिरिक्त वहाँ के फ़ौजी अधिकार कर्नल ऑर्थर वेलेस्ली को दिये गये। शासन-सूत्र-सञ्चालन का भार टीपू के दूरदर्शी प्रधान पुरणिया पर रखा गया। १९ वीं सदी के उदय के साथ साथ मैसूर में शान्ति का साम्राज्य हुआ। इसी समय से खास मैसूर नगर को राजधानी का सन्मान प्राप्त हुआ। ई० स० १८०० में वहां का राज्य-प्रासाद फिर से बनवाया गया। पुरणिया ने १२ वर्ष तक प्रधान मन्त्री का काम किया। उसने मैसूर दरबार की ओर से अंग्रेजों को मराठों के खिलाफ़ कई युद्धों में बड़ी सहायता पहुँचाई। उसने राज्य की आमदनी भी बढ़ाई। ई० स० १८११ में इसके शासन का अन्त हुआ और महाराजा को राज्याधिकार प्राप्त हुए। कहा जाता है कि इस समय

राज्य का खज़ाना लबालब भरा हुआ था। पर इन राजा साहब के समय में राज्य में बड़ी गड़बड़ फैल गई। एक प्रान्त में शासन की अव्यवस्था के कारण बलवा तक हो गया। इससे बृटिश सरकार ने राज्य का शासन-भार अस्थायी रूप से अपने हाथ में ले लिया और इसके कार्य्य-सञ्चालन के लिये दो कमिश्नरों का एक बोर्ड स्थापित किया। इसी समय सरकार ने इस नीति की घोषणा कर दी कि यथासम्भव शासन-सञ्चालन में देश के रीति रिवाजों का अवश्य खयाल रखा जायगा। कुछ दिनों के बाद संयुक्त कमिश्नरों की पद्धति असुविधाजनक प्रतीत हुई और इससे ई० स० १८३४ के अप्रैल मास में अकेले कर्नल मॉरिसन पर मैसूर के शासन-सूत्र-सञ्चालन का भार रखा गया। आप इसी साल भारत सरकार की कौन्सिल के सदस्य होकर कलकत्ते चले गये और आपके स्थान पर कर्नल मार्क क्युबन की नियुक्ति हुई। यहाँ यह स्मरण रखना आवश्यक है कि इनके सिवा मैसूर में बृटिश सरकार की ओर से रेसिडेन्ट भी रहता था। ई० स० १८४३ तक वहां रेसिडेन्ट की जगह बराबर बनी रही। उसी साल यह जगह तोड़ दी गई।

कमिश्नर को पहले पहल माल और फौजदारी के सब अधिकार प्राप्त थे। पर कुछ अर्से के बाद दीवानी, फौजदारी के मामलों में फैसला करने के लिये एक अलग ज्युडिशियल कमिश्नर की नियुक्ति हुई। शासन सम्बन्धी कुछ और भी परिवर्तन किये गये। इस समय शासन सम्बन्धी कई दोष दूर किये गये। राज्य की आमदनी भी बढ़ाई गई। अंग्रेजी और देशी शिक्षा के प्रचार में भी सहायता पहुँचाई गई।

इस बीच में मैसूर के महाराजा ने भारतसरकार से रियासत का कारोबार वापस उन्हें सौंपने के लिये अनुरोध किया। एक भारतव्यापी घटना ने इसके लिये अनुकूल अवसर उपस्थित कर दिया। पाठक जानते हैं कि इसवी सन् १८५७ में सारे भारतवर्ष में विद्रोह की प्रचण्ड ज्वाला भभक उठी थी। अंग्रेजी राज्य खतरे में जा गिरा था। ऐसे कठिन समय में तत्कालीन मैसूर नरेश ने भारतसरकार की बड़ी सहायता की। मैसूर के कमिश्नर

सर मार्क क्युबॉन ने भारतसरकार को एक पत्र लिखकर उस बहुमूल्य सहायता की बड़ी प्रशंसा की थी, जो महाराजा ने ऐसे विकट समय में भारत सरकार को दी थी। तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड केनिंग ने एक खलीता भेजकर महाराजा ने दी हुई अपूर्व सहायता के मुक्तकण्ठ से स्वीकार करते हुए भारत सरकार की ओर से उन्हें हार्दिक धन्यवाद दिया था।

ई० स० १८६१ में सर मार्क क्युबॉन ने अवसर ग्रहण किया। आपके स्थान पर मेजर ब्राउनिंग नामक एक सज्जन की नियुक्ति हुई। इसी समय पहले पहल मैसूर राज में बंगलोर और मैसूर नगरों में म्युनिसिपलिटी की स्थापना हुई।

ईसवी सन् १८६५ में तत्कालीन मसूर नरेश ने निःसन्तान होने के कारण अपने निकट सम्बन्धी के एक लड़के को दत्तक लिया। इनका नाम चाम राजेन्द्र ओडियार रखा गया। इसके एक साल बाद ७४ वर्ष की अवस्था में तत्कालीन मैसूर नरेश का शरीरान्त हो गया।

महाराजा चाम राजेंद्र

महाराजा कृष्ण राजा के पश्चात् चाम राजेन्द्र गद्दीनशीन हुए। आपकी शिक्षा का प्रबन्ध बृटिश ऑफिसरों की निगरानी में किया गया। ई० स० १८७७ में श्रीमती विक्टोरिया के सम्राज्ञी पद धारण करने के उपलक्ष्य में दिल्ली में जो दरबार हुआ था उसमें वाइसराय का निमन्त्रण पाने पर आप भी शरीक हुए थे।

ई० स० १८७५ में वर्षा की कमी के कारण मैसूर में भीषण अकाल पड़ा था। इस समय मैसूर की भूखी प्रजा के लिये अन्नदान की सुयोग्य

व्यवस्था की गई थी। कहा जाता है कि इस समय इस कार्य्य में मैसूर राज्य पर कोई अस्सी लाख का कर्ज हो गया था। इस समय आर्थिक अभाव के कारण राज्य के प्रत्येक विभाग में बहुत कुछ कमी (retrenchment) की गई थी।

ई० स० १८८१ की २५ वीं मार्च मैसूर राज्य निवासियों के लिये बड़े ही आनन्द और वर्ष का दिन था। इस दिन उनके प्रिय महाराजा को मैसूर राज्य का शासन-भार वापस सौंपा गया था। सारी प्रजा में अपूर्व आनन्द छा गया था। राज्य भर में अभूतपूर्व समारोह हुआ था। श्रीमान् महाराजा साहब ने इसी समय मि० सी० रंगाचार्लू सी० आइ० ई० को दीवान बनाने की घोषणा की थी। इसी समय आपने दीवान की अध्यक्षता में एक कौंसिल बनाने की स्वीकृति भी दी थी। इस कौंसिल में दो अवसर-प्राप्त अति अनुभवी राज्याधिकारी भी रखे गये थे। शासन-सुधार में प्रजा को उन्नति की घुड़दौड़ में आगे बढ़ाने में तथा कानून आदि बनाने में सलाह देना इस कौंसिल का प्रधान उद्देश्य रखा गया था।

मैसूर में प्रतिनिधि सभा

महाराजा ने अधिकार प्राप्त करते ही मैसूर के शासन को एक सभ्य और उन्नत शासन बनाने का दृढ़ संकल्प किया था। कौंसिल के अतिरिक्त आपने प्रजा के चुने हुए प्रतिनिधियों की एक सभा सङ्गठित की। कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतवर्ष में यह पहली ही प्रतिनिधि सभा थी। यह प्रतिनिधि सभा स्थापित कर आपने शासन-सूत्र-सञ्चालन में लोगों का सहयोग प्राप्त करने का मार्ग खोल दिया। आपने यह दिखला दिया कि सरकार और प्रजा के हित एक हैं। अगर भारतवर्ष की प्रतिनिधि संस्थाओं का इतिहास लिखा जायगा तो उसमें मैसूर राज्य का नाम बड़े गौरव के साथ स्वर्णाक्षरों में लिखा जाना चाहिये, क्योंकि उसीने सबसे पहले इस महान् तत्व को स्वीकार कर संसार को यह दिखला दिया कि भारतवर्ष में प्रतिनिधि

संस्थाएँ किस प्रकार अपूर्व सफलता प्राप्त कर सकती हैं। इस प्रतिनिधि सभा की प्रथम बैठक ई० स० १८८१ के दशहरे के शुभ मुहूर्त में हुई। इसी समय से प्रति दशहरे के दिन बराबर इसके अधिवेशन हो रहे हैं। ऐसे अवसर पर मैसूर के विद्वान् दीवानों के जो व्याख्यान होते हैं, उनमें उन्नतिशील नीति का पद पद पर दिग्दर्शन होता है। प्रजा के प्रतिनिधिगण अनेक प्रजा-हितकारी प्रश्नों को इसके सामने रखते हैं और उन पर बड़ा ही मनोरंजक वादानुवाद होता है। बजट पर भी बहस करने का अधिकार प्रजा को दिया है। मैसूर की प्रजा प्रतिनिधि सभा एक ऐसी संस्था है, जिसके लिये प्रत्येक भारतवासी योग्य अभिमान कर सकता है।

महाराजा चाम राजेन्द्र उडियार के समय राज्य प्रगतिपथ पर खूब आगे बढ़ा। भारतीय राज्यमण्डल में वह सूर्य्य सा चमकने लगा। उसकी आर्थिक अवस्था भी प्रशंसनीय रूप से बढ़ी। यहां यह बात स्मरण रखना चाहिये कि राज्य की आमदनी गरीब प्रजा का रक्त चूस कर या उस पर नये नये कर बैठाकर या पुराने करों में वृद्धि कर नहीं बढ़ाई गई। राज्य की औद्योगिक सम्भावनाओं (Industrial possibilities) का विकास कर तथा औद्योगिक और कृषि के विकास के लिये अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न कर राज्य की आर्थिक स्थिति का सुधार किया गया। नयी रेल्वे लाइनें निकाली गईं। आबपाशी का खूब प्रचार किया। कई प्रकार के औद्योगिक कारखाने खोले गये। हर एक शासन विभाग में यथासम्भव खर्च की कमी की गई। इस प्रकार विभिन्न उपजाऊ पद्धतियों से राज्य की आर्थिक उन्नति करने की सुव्यवस्था की गई।

मैसूर में सोने की खान है। उसमें से सोना निकालने के उद्योग को सुसङ्गठित किया गया। इससे भी खूब आमदनी बढ़ी। महाराजा के दस वर्ष के शासन में अर्थात् ई० स० १९८१ से १८९१ तक मैसूर की जनसंख्या भी प्रति सैकड़ा १८ बढ़ गई। यह भी राज्य की सुख समृद्धि का एक प्रत्यक्ष प्रमाण था।

श्रीमान् प्रजाप्रिय महाराजा चाम राजेन्द्र उडियार १४ वर्ष राज्य कर ई० स० १८९४ के दिसम्बर मास में कलकत्ते में स्वर्गवासी हुए। आप ही आधुनिक मैसूर के निर्माता थे। आपके शासन में मैसूर को उल्लेखनीय गौरव और सम्मान प्राप्त हुआ। युरोप के सभ्य देशों के मुकाबले में उसका शासन गिना जाने लगा।

महाराजा कृष्णराजा उडियार (द्वितीय)

श्रीमान् महाराजा चामराजेन्द्र उडियार के स्वर्गवासी होने पर उनके बड़े पुत्र महाराजा श्री कृष्णराजा उडियार राज्य-सिंहासन पर बिराजे। उस समय आप नाबालिग होने से कौन्सिल ऑफ रिजेन्सी मुकर्रर की गई। आपकी विदुषी माता रिजेन्ट नियुक्त की गईं। रिजेन्सी कौन्सिल ने सात वर्ष तक मैसूर के राज्यशासन का योग्यतापूर्वक सञ्चालन किया। इसने भी मैसूर की औद्योगिक और शिक्षा सम्बन्धी उन्नति के लिये प्रशंसनीय प्रयत्न किया। चाम राजेन्द्र वाटर वर्कस बंगलोर, मैसूर नगर का वाणी विलास वाटर वर्क्स, कावेरी पॉवर वर्क्स (जिसके द्वारा बिजली उत्पन्न की जाती है) आदि कितने ही औद्योगिक कारखाने इस रिजेन्सी कौंसिल के प्रयत्नों का फल है।

वर्तमान मैसूर नरेश की शिक्षा

मैसूर के वर्तमान् महाराजा श्रीमान श्रीकृष्णराजा उडियार की शिक्षा का प्रबन्ध सुयोग्य हाथों में दिया गया था। आपने अपनी अपूर्व प्रतिभा के कारण न केवल उच्च श्रेणी की शिक्षा ही प्राप्त की वरन् राज्यशासन सञ्चालन का खासा अनुभव भी प्राप्त कर लिया। आपने राज्य के भिन्न भिन्न प्रान्तों में घूम कर लोगों की स्थिति का, औद्योगिक और शिक्षा सम्बन्धी-सम्भावनाओं का अध्ययन किया। ई० स० १९०० में काठियावाड़ के वाण नगर के राणा विनयसिंह की कन्या के साथ आपका शुभ विवाह सम्पन्न हुआ।

ई० स० १९०२ में श्रीमान् को अठारह वर्ष की उम्र में पूर्ण राज्याधिकार प्राप्त हुए। इस शुभ अवसर पर भारत के भूतपूर्व वाइसरॉय लॉर्ड कर्ज़न भी पधारे थे। इसी साल श्रीमान् सप्तम एडवर्ड के राज्यारोहण के उपलक्ष्य में दिल्ली में जो दरबार हुआ था उसमें भी श्रीमान् पधारे थे।

वर्तमान मैसूर नरेश और राज्य की प्रशंसनीय प्रगति।

वर्तमान मैसूर नरेश एक आदर्श शासक (Ideal Ruler) हैं। प्रिय प्रजा को हर तरह से योग्य बनाना, उसमें नागरिकत्व और मनुष्यत्व के भावों का सञ्चार करना, ज्ञान की उज्वल ज्योति से उसके हृदयाकाश को प्रकाशमान करना—उसकी मानसिक, आर्थिक और शारीरिक उन्नति में तन मन धन से पूर्ण सहयोग देना—राज्यशासन में उसका पूर्ण सहयोग प्राप्त कर उसके हितों की रक्षा करना—वर्तमान उन्नतिशील मैसूर नरेश का प्रधान ध्येय रहा है। यही कारण है कि भारतीय राज्य-मण्डल में मैसूर का नाम सूर्य्य सा चमक रहा है। मैसूर नरेश लाखों प्रजा के हित को अपना हित समझते हैं। प्रजा कल्याण ही उनका एक मात्र उद्देश्य है। हमारे आर्य ग्रन्थों में एक आदर्श नृपति के जो गुण कहे गये हैं, वे सम्पूर्ण रूप से नहीं तो भी बहुत कुछ वर्तमान मैसूर नरेश में चरितार्थ होते हैं।

आजकल देखते हैं कि हमारे बहुत से भारतीय नृपतिगण करमें वसूल किये हुए प्रजा के कठिन कमाई के धनको जिस बेरहमी के साथ अपने ऐशो-आराम में उड़ाते हैं और प्रजा को केवल अपने विषय वासना की तृप्ति के लिये भक्ष्य माने हुए बैठे हैं। इस प्रकार की लज्जा-जनक और शोचनीय स्थिति से वर्तमान मैसूर नरेश बहुत दूर हैं। मैसूर राज्य का अधिकांश द्रव्य प्रजा की हितकामना में—उन्नति के विविध क्षेत्रों में उसे आगे बढ़ाने में—उसके हृदय को ज्ञान की दिव्य किरणों से प्रकाशमान करने में व्यय होता है। अगर हमारे भारतीय नृपति ऐसे आदर्श शासक का अनुकरण

करने लगें तो हमारा विश्वास है कि वे संसार के सामने भारत के मुख को बहुत कुछ उज्ज्वल कर सकते हैं और भारतवासियों पर लगाये जानेवाले इस अभियोग को दूर कर सकते हैं कि भारतीय शासन-कला में प्रवीण नहीं होते तथा स्वाभाविक तौर से ही वे प्रतिनिधि-तत्व के आदी नहीं होते।

मैसूर नरेश के कार्य्य

प्रजा के विकास के लिये मैसूर नरेश ने जो अनेक कार्य्य किये हैं उन सबका उल्लेख स्थानाभाव के कारण करने में असमर्थ हैं। आपने मैसूर राज्य-शासन को एक उन्नतिशील और सभ्य शासन बनाकर एक आदर्श नृपति होने का परिचय दिया। आपने विविध उपायों के द्वारा लोगों की स्थिति को सुधारा। राज्य में रहे हुए साधनों का विकास कर तरह तरह के उद्योग धंधों को उत्तेजन दिया। रेल्वे का खूब विस्तार किया गया। राज्य की ओर से अपना एक स्वतन्त्र विश्वविद्यालय खोला गया। भारतवर्ष के देशी राज्यों में मैसूर ही एक ऐसा राज्य है, जहाँ विश्वविद्यालय है। किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये स्थान स्थान पर सहकारी समितियाँ स्थापित की गईं। औद्योगिक क्षेत्र में भी राज्य ने अपने कदम बहुत कुछ आगे बढ़ाये। भद्रावती में लोहे का एक सुविशाल कारखाना खोला गया। धारा सभा स्थापित की गई। राज्यशासन में लोगों का और भी अधिक सहयोग प्राप्त करने की व्यवस्था की गई। ई० स० १९१७ में शासन को और भी उदार बनाया गया। धारा सभा और प्रतिनिधि सभा के अधिकार और भी अधिक व्यापक और विस्तृत किये गये। कहने का मतलब यह है कि इन महाराजा के समय में राज्य की विभिन्न शाखाओं में अच्छी उन्नति की गई।

मैसूर में शिक्षा की उन्नति

हम ऊपर कह चुके हैं कि प्रजा के अन्तःकरण को ज्ञान की किरणों से प्रकाशमान करना वर्तमान मैसूर नरेश के शासन का मुख्य ध्येय रहा है।

आपने अपने यहाँ एक उच्च श्रेणी का विश्वविद्यालय स्थापित कर रखा है। यहाँ एम० ए० तक की शिक्षा दी जाती है। विज्ञान में एम० एस०-सी० तक यहाँ पढ़ाई होती है। ऑक्सफर्ड और लण्डन के विश्वविद्यालयों ने मैसूर विश्वविद्यालय को उपनिवेशों के तथा भारत के अन्य विश्वविद्यालयों की तरह स्वीकार किया है। ईस्वी सन् १९१७ में बृटिश साम्राज्य के विश्व-विद्यालयों की जो कांग्रेस हुई थी, उसमें उक्त विश्वविद्यालय की ओर से ९ प्रतिनिधि आमन्त्रित किये गये थे। यह विश्वविद्यालय जगत् के सन्मान्य विद्वानों को निमन्त्रित कर विभिन्न विषयों पर व्याख्यान करवाता है। इससे लगा हुआ एक सुविशाल ग्रन्थालय है, जिसमें विभिन्न भाषाओं के तथा विभिन्न विषयों के हज़ारों महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। भौतिक-शास्त्र, रसायन शास्त्र, जीवशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र, गणितशास्त्र, इतिहास, तत्वज्ञान, अर्थ शास्त्र-आदि विभिन्न शास्त्रों की अन्वेषण के लिये भी यहाँ विशेष प्रबंध है। कलकत्ता विश्वविद्यालय की कमीशन द्वारा सूचित किये हुए शिक्षा सम्बन्धी कई सुधार किये जाने का आयोजन किया जा रहा है।

ई० स० १८८० और १८८१ की मैसूर की शासन की रिपोर्ट देखने से प्रतीत होता है कि उक्त साल वहाँ १०३४१ शिक्षा सम्बन्धी संस्थाएँ थीं। इनमें ३२८२९० विद्यार्थी शिक्षा लाभ करते थे। यहाँ यह बात विशेष रुप से ध्यान देने योग्य है कि इन विद्यार्थियों में ५५९९८ लड़कियों की संख्या थी। यहां लड़कों के लिये १७ अंग्रेजी हाइ स्कूल्स तथा लड़कियों के लिये २ हाइस्कूल्स हैं। यहाँ वर्नाक्युलर हाइस्कूल्स भी हैं, जिनमें केवल देशी भाषा द्वारा पढ़ाई होती है। इनकी संख्या ७ है। इनमें एक लड़कियों के लिये है। अंग्रेजी मिडिल स्कूल्स की संख्या ३१६ है, जिनमें १३ लड़कियों के लिये हैं। प्राईमरी (प्राथमिक) स्कूल्स की तो यहाँ भरमार है। उनकी संख्या ८८०० है इनमें ५९४ लड़कियों के लिये हैं। पाठक सुनकर आश्चर्य करेंगे कि मैसूर में २३ औद्योगिक शिक्षालय, दो इञ्जीनियरिंग स्कूल्स, चार व्यापारिक शिक्षा लय, ५७ संस्कृत विद्यालय और २ कृषि विद्यालय हैं। गूँगे और बहरों को

शिक्षा देने के लिये भी यहाँ २ विद्यालय हैं। व्यवहारिक कामों की शिक्षा के लिये २७२ शिक्षालय हैं। इनके अतिरिक्त यहाँ कई कॉलेज हैं, जिनमें उच्च शिक्षा दी जाती है।

अछूतों के शिक्षालय

मैसूर के उन्नतिशील राज्य में, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, गरीबों के झोंपड़ों से लगा कर अमीरों के महलों तक में ज्ञान की दिव्यकिरणों का प्रकाश पहुँचाया जाता है। अन्य स्थानों में अछूत लोग जहाँ पशुओं से भी बदतर समझे जाते हैं, मैसूर राज्य में उनके लिये भी शिक्षा का समुचित प्रबंध है। ईसवी सन् १९८०—८१ की रिपोर्ट देखने से प्रतीत होता है कि वहाँ उस साल अछूतों की शिक्षा के लिये कोई ७३९ विद्यालय थे, जिनमें १७१५० विद्यार्थी शिक्षा लाभ करते थे। इनके लिये कई छात्रालय भी हैं। इनमें से योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति भी मिलती है। उक्त शासन-रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि प्राइमरी ग्रेड के अछूत विद्यार्थियों के लिये २५० छात्र-वृत्तियाँ, लोअर सेकन्डरी ग्रेड के लिये १०० और अंग्रेजी क्लासेस के लिये १८४ छात्र-वृत्तियाँ दी गई थी। ईसवी सन् १९२०–२१ में अछूत विद्यार्थियों को छात्र-वृतियाँ देने में मैसूर राज्य ने करीब ९३६४८ रुपये खर्च किये।

मैसूर की रात्रि-पाठशालाएँ

जो लोग दिन में मजदूरी करते हैं, जिन्हें अपने उदरनिर्वाह के कार्य्य के कारण दिन में स्कूल जाने का समय नहीं मिलता उनके सुभीते के लिये मैसूर की उन्नतिशील सरकार ने रात्रि-पाठशालाएँ खोल रखी हैं। ईसवी सन् १९२०–२१ में इस प्रकार की रात्रि-पाठशालाओं की संख्या २६१४ थी और जिनमें ४३२३५ विद्यार्थी शिक्षा लाभ करते थे।

मैसूर में छात्र-वृत्तियां

उन्नतिशील मैसूर राज्य योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ देकर उनका

उत्साह बढ़ाने में भी अच्छी इकम खर्च करता है। ईस्वी सन् १९२०—२१ में इस राज्य ने विभिन्न विद्यार्थियों को छात्र-वृतियाँ देने में २६८६००० रुपये व्यय किये। कई विद्यार्थी बड़ी बड़ी छात्रवृतियाँ देकर युरोप अमेरिकादि देशों में भी शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजे गये थे।

संस्थाओं को उदार सहायता

जो सज्जन सर्वसाधारण के चन्दे से या खानगी द्रव्य से मैसूर राज्य में शिक्षा सम्बन्धी संस्थाएं खोलते हैं, उन्हें राज्य की ओर से समुचित सहायता मिलती है। ईस्वी सन् १९२०—२१ में इस प्रकार की खानगी शिक्षा-संस्थाओं को राज्य की ओर से ६९६३५१ रुपयों की सहायता दी गई। इससे पाठक जान सकते हैं कि खानगी संस्थाओं उत्तेजन देने में भी मैसूर की उन्नतिशील रियासत कितनी दत्त-चित्त रहती है।

मैसूर राज्य में बॉय स्काऊट

मैसूर राज्य में बॉय स्काऊट संस्था ने भी अच्छी तरक्की की है। वहाँ राज्य में कई स्थानों पर स्काऊट के पहले पहल केन्द्र खुले हुए हैं। मैसूर राज्य भरमें ईसवी सन् १९२०—२१ में कोई २००० स्काऊट थे।

कहने का मतलब यह है कि मैसूर राज्य शिक्षा प्रचार की विविध शाखाओं में बड़ी तेजी से अग्रगति कर रहा है। पाठक सुनकर प्रसन्न होंगे कि यह राज्य प्रतिसाल कोई ५०००००० रुपया शिक्षा-प्रचार में व्यय करता है। ईसवी सन् १९२०—२१ में इसने ४८०९८८५) रुपया शिक्षा प्रचार में खर्च कर एक आदर्श राज्य होनेका गौरव प्राप्त किया।

इसके अतिरिक्त वहाँ ग्रन्थकारों को उत्तेजन देने के लिये भी बजट में ५०००) प्रतिसाल की मंजूरी रखी गई है। इससे वहाँ प्रतिसाल कई अच्छे अच्छे और अन्वेषणात्मक ग्रन्थ प्रकाशित होते हैं।

मैसूर में पुरातत्व

राज्य की ओर से एक पुरातत्व विभाग भी खुला हुआ है। यह विभाग बड़ी तरक्की कर रहा है। प्राचीन ऐतिहासिक स्थलों, शिलालेखों, सिक्कों आदिका परीक्षण कर इसने कई ऐतिहासिक विषयों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। इस विभाग द्वारा कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं।

समाचार-पत्र

ईसवी सन् १९२०—२१ में मैसूर से १६ समाचार पत्र, ५० मासिक पत्र प्रकाशित होते थे। अब तो इनकी संख्या और भी अधिक बढ़ गई होगी। जो रियासतें समाचारपत्रों से छूत की बीमारियों की तरह डरती हैं, उन्हें आँख उठाकर उन्नतिशील मैसूर राज्य की ओर देखना चाहिये।

इन्दौर राज्य का इतिहास

HISTORY OF THE INDORE STATE.
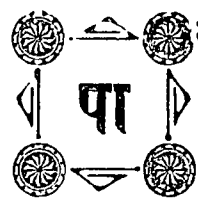
हिज हाईनेस महाराजा साहिब इन्दौर (वर्त्तमान)

पाठक जानते हैं कि दुर्दान्त औरंगज़ेब के भीषण अत्याचारों के खिलाफ़ महाराष्ट्र में एक महाप्रबल शक्ति का उदय हो रहा था। इस शक्ति के अलौकिक और दिव्य प्रकाश ने तत्कालीन भारतवर्ष को चकाचौंध कर दिया था। औरंगज़ेब ने अपनी अमानुषिक निष्ठुरता और प्रबल धर्मान्धता के कारण हिन्दू संसार के हृदयाकाश में जो काला और अन्धकार पूर्ण मेघमण्डल उपस्थित कर दिया था, उसको इसी शक्ति की प्रकाशमान किरणों ने छिन्न-भिन्न कर दिया। कहना न होगा कि इस शक्ति के उदय ने समस्त निराश हिन्दू हृदयों में नवीन ज्योति, नवीन आशा, नवीन स्फूर्ति और नवीन बल का अद्भुत सञ्चार कर दिया था। इस शक्ति ने मृतप्राय हिन्दू-धर्म में चैतन्य और सजीवता की अद्भुत ज्योति प्रकट की थी। इस शक्ति के अन्तर्गत महामना साधु रामदास सरीखे महान् तपस्वी और महान् योगी-जनों की लोकोत्तर प्रेरणा काम कर रही थी। यह शक्ति हिन्दू संस्कृति और हिन्दूधर्म के अभ्युदय के लिये ईश्वरीय प्रेरणा से प्रकट हुई जान पड़ती थी। इस दिव्य शक्ति का उदय महाराष्ट्र देश में शिवाजी नामक एक युवक के शरीर में हो रहा था। महामना शिवाजी ने हिन्दूधर्म-द्रोही और हिन्दू सभ्यता तथा हिन्दू-राष्ट्र का नाश करने पर कमर बाँधे हुए दुर्दान्त औरंगज़ेब के खिलाफ़ उठ कर हिन्दूधर्म, हिन्दू सभ्यता और हिन्दू संस्कृति की रक्षा के लिये एक महान् हिन्दू साम्राज्य की जिस प्रकार नींव डाली थी, उस पर लिखने के लिये यहाँ विशेष

स्थान नहीं है। इस संबंध में केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि बड़ी २ शक्तियाँ इस महान् साम्राज्य से आतङ्कित थीं। स्वयं औरंगजेब ने इस महान् साम्राज्य के संस्थापक महाराज शिवाजी के बारे में लिखा था-"वह (शिवाजी) एक महान् सेनानायक है और वही ऐसा एक पुरुष है जो नया साम्राज्य स्थापित करने की प्रतिभा रखता है। मैं भारतवर्ष के प्राचीन राज्यों को नष्ट करने का प्रयत्न कर रहा हूँ, मेरी फौजें गत १९ वर्षों से शिवाजी की शक्ति का नाश करने में लगी हुई हैं, पर उसका राज्य दिन २ बढ़ता ही जा रहा है (Scott Waring)।" मतलब यह कि शिवाजी की शक्ति को घमण्डी औरंगजेब ने मुक्त-कण्ठ से स्वीकार किया था या दूसरे शब्दों में यों कहिये कि इस शक्ति के सामने औरंगजेब की रूह काँपती थी, क्योंकि उस समय उसने देखा था कि शिवाजी के उदय के साथ २ देश में राष्ट्रीय आत्मा (National Spirit) का अद्भुत रूप से विकास हो रहा है और हिन्दू हृदय में हिन्दू साम्राज्य स्थापित करने के विचार का संचार हो रहा है। हिन्दूधर्म के उदय के चिन्ह प्रत्यक्ष रूप से दृष्टि-गोचर होने लग गये थे और महाराष्ट्र शक्ति की प्रबलता के साथ २ हिन्दू भावनाओं में एक प्रकार के विलक्षण बल का आविर्भाव होने लग गया था। मि० रेमजे म्यूर अपने Making of British India नामक ग्रन्थ में लिखते हैं:—

"आर्थर वेलेस्ली की यह बात बिलकुल सच है कि महाराष्ट्र शक्ति ही एक ऐसी शक्ति थी जिसका बल राष्ट्रीय भावनाओं से बढ़ा था। धार्मिक दृष्टि से वे हिन्दू थे और यही कारण है कि उनकी ताकत बिजली की गति की तरह सारे देश में फैल गई थी। उनके उदय के पहले सब बड़ी शक्तियाँ मुसलमान थीं।" महाराष्ट्र इतिहास के सर्वोपरि जानकर श्रीयुत राजवाड़े महोदय लिखते हैं:—

"हिन्दूधर्म की प्रस्थापना, गो-ब्राह्मण का प्रतिपाल, स्वराज्य की स्थापना, मराठों का एकी-करण और उनका नेतृत्व आदि महाराष्ट्र धर्म के मुख्य तत्व और उनके प्रतिबिम्ब जिस प्रकार शिवाजी महाराज की युवावस्था में दृष्टि-

श्रीमान् महाराज मल्हारराव होल्कर, इन्दौर

गोचर होते हैं, वैसे ही खरड़ा की लड़ाई के बाद नाना फड़नवीस ने निज़ाम के साथ जो सन्धि की उसमें भी उसका दिग्दर्शन होता है।"

इन सब बातों से पाठकों को ज्ञात हुआ होगा कि महाराज शिवाजी करोड़ों हिन्दुओं के हिन्दुत्व की रक्षा करने की पवित्र भावनाओं से प्रेरित होकर एक महान् साम्राज्य की नींव डालने में प्रवृत्त हुए थे। कहना न होगा कि इसकी नींव महाराज ने सफलता पूर्वक डाली और उस पर वीर शिरोमणि बालाजी विश्वनाथ, बाजीराव प्रथम, बालाजी बाजीराव और महान् माधवराव बल्लाल ने एक जबरदस्त साम्राज्य रूपी इमारत खड़ी कर दी।

इन्दौर के होल्कर इसी महान् महाराष्ट्र साम्राज्य के एक अत्यन्त प्रकाशमान रत्न थे। होल्कर राज्य के मूल संस्थापक मल्हारराव होल्कर का उदय महाराष्ट्र साम्राज्य के प्रकाशमान दिनों में ही हुआ था। नवयुवक मल्हारराव ने महान् पेशवा बाजीराव से महाराष्ट्र धर्म का पवित्र मन्त्र सीखा था। इसका यह प्रभाव था कि होल्कर राजवंश हमेशा से स्वतन्त्रता और आत्मसम्मान आदि उच्च गुणों का पुजारी रहा है। अगर सूक्ष्म दृष्टि से होल्कर राज्य के सच्च इतिहास का अवलोकन किया जाय तो यह प्रतीत हुए बिना न रहेगा कि भारतवर्ष के इतिहास में इस गौरवशाली राजवंश ने स्वतन्त्रता, स्वाधीनता और राष्ट्र-सम्मान की रक्षा के लिये जो २ महान् कार्य किये थे, वैसे कार्य बहुत कम राजवंशों ने किये होंगे। राष्ट्रीय दृष्टि से, साम्राज्य संगठन की दृष्टि से, तथा समय-सूचकता और राजनीतिज्ञता की दृष्टि से, होल्कर राजवंश का इतिहास प्रायः अद्वितीय है। हम तो बड़े अभिमान के साथ यों कहेंगे कि मल्हारराव, तुकोजीराव प्रथम, प्रातःस्मरणीया अहिल्याबाई तथा तुकोजीराव द्वितीय—इनके नाम भारतवर्ष के इतिहास के पन्नों को तब तक शोभायमान करते रहेंगे जब तक कि संसार में हिन्दू वीरत्व, स्वदेशभक्ति, राज्य-संगठन का अद्भुत सामर्थ्य तथा उच्च श्रेणी की राजनीतिज्ञता का आदर और पूजा होती रहेगी।

होल्कर वंश बहुत पहले वीरकर-वंश के नाम से प्रसिद्ध था। होल्कर वंश की उत्पत्ति के लिये भिन्न २ इतिहासवेत्ताओं के भिन्न २ मत हैं। कुछ

लोग इन्हें प्रख्यात् राठौड़ वंश से इनकी उत्पत्ति मानते हैं। पर इस संबंध में और अधिक ऐतिहासिक अनुसन्धान की अभी आवश्यकता है। अतएव हम इसके निर्णय का भार भावी इतिहासवेत्ताओं पर छोड़ कर आगे बढ़ते हैं।

होल्कर राज-घराने के पूर्वज गोकुल (मथुरा) के रहने वाले थे। उनकी जाति धनगर थी। मथुरा से आकर वे पहले पहल चित्तौड़ में बसे। चित्तौड़ से वे दक्षिण के औरंगाबाद जिले में जा बसे और कुछ अर्से तक वहाँ रहे। इसके बाद वे पूना से ४० मील पर पुल्टन परगने में, नीरा नदी के किनारे बसे हुए होलगाँव में रहने लगे। होलगाँव में बस जाने ही के कारण इस वंश का नाम होल्कर पड़ा। पहले इस वंश का नाम जैसा हम ऊपर कह चुके हैं वीर-कर था।

होल्कर राज्य को जन्म देने का यश मल्हारराव को है। इनका जन्म १६९४ ई० के अक्तूबर मास में हुआ। इनके पिता का नाम खण्डूजी था। खण्डूजी होलगांव के चौगुले अर्थात् सहायक पटेल थे। वे खेती आदि से अपनी गृहस्थी चलाते थे। मल्हाराराव उनके एकलौते बेटे थे। वे मल्हारराव को चार पाँच वर्ष की अनजान अवस्था में छोड़ परलोकवासी हुए। इसके बाद मल्हारराव की माता अपने भाई बन्धुओं के झगड़ों से तङ्ग आकर अपने भाई भोजराज बारगल के यहाँ चली गई। भोजराज खानदेश के तलौदा नामक गाँव के जमींदार थे। जब मल्हारराव कुछ बड़े हुए तब उनके मामा ने उन्हें भेड़ें चराने का काम सौंपा। मल्हारराव कई दिन तक यह काम करते रहे। इसी बीच में एक चमत्कारिक घटना हुई जिससे मल्हारराव के समुज्ज्वल भविष्य पर प्रकाश पड़ा। कहा जाता है कि एक समय सूर्य की कड़ी धूप से घबराकर मल्हारराव रास्ते में सो रहे थे। ऊपर से सूर्य भगवान अपनी सहस्र किरणों से अग्नि बरसा रहे थे। इतने में एक भुजङ्ग वहाँ आया और उसने मल्हारराव के मुखमण्डल पर अपने फन से छाया कर दी। जब मल्हारराव उठे तब उन्होंने देखा कि एक बृहदाकार भुजङ्ग सूर्य की धूप से उनकी रक्षा कर रहा है। यह अनूठा हाल

श्रीमान् बाजीराव पेशवा प्रथम

भोजराज के कानों तक पहुँचा। उन्होंने इन्हें भाग्यवान समझ इनसे भेड़ व बकरियाँ चराने का काम लेना बन्द कर दिया। उन्होंने अपनी २५ सवारों की सेना में, जो सरदार कदमबांड़े की सेवा में तैनात रहती थी, इनको भी भर्ती कर लिया। इन्होंने फ़ौज में भर्ती होने पर बहुत जल्द अपने में सिपाहियों के गुण सिद्ध कर बताये। इन्होंने एक लड़ाई में निजाम-उल्मुल्क के एक सरदार का सिर बड़ी ही वीरता से काटा। इस वीरता से उनका नाम बहुत बढ़ गया। इनके मामा भोजराज ने प्रसन्न होकर अपनी लड़की गौतमाबाई का विवाह इनके साथ कर दिया।

इसके कुछ समय बाद प्रथम बाजीराव पेशवा ने इनको सरदार कदमबांडे से माँगकर ५०० घुड़सवारों का सेना-नायक नियुक्त किया। इसी समय निजामुल्मुल्क दिल्ली के बादशाह से स्वतन्त्र होकर अपने राज्य की स्थिति मजबूत करने में लगा हुआ था। दिल्ली के तत्कालीन मुगल सम्राट् ने इससे भय खाकर मालवे का चार्ज राजा गिरधर को सौंप दिया था। इसी राजा गिरधर से मराठों का किस प्रकार मुकाबला हुआ और विजयी मराठों ने किस प्रकार मालवा पर अपनी राज-सत्ता कायम की इसका विस्तृत वर्णन आगे दिया जाता है।

मरहठों का मालवा विजय।

हम ऊपर कह चुके हैं कि छत्रपति महाराज शिवाजी ने संसार में हिन्दू संस्कृति और हिन्दू धर्म का विजयी डंका बजाने के लिये भारतवर्ष में एक महान् हिन्दू साम्राज्य की नींव रक्खी थी और उन्हीं के वीर वंशज इसका विस्तार करने में तन, मन, धन से लगे हुए थे। यहाँ यह दुहराने की आवश्यकता नहीं कि तत्कालीन मुगल शासन के वीभत्स अत्याचारों से लक्षावधि हिन्दू जनता में त्राहि २ मची हुई थी। हिन्दू जनता बेतरह हैरान थी और वह मुगल शासन से अपना छुटकारा करना चाहती थी। मालवा की जनता

भी मुगल शासन के अत्याचारों से बेतरह दुःखी थी। इससे वीर मराठों को हिन्दू साम्राज्य की कल्पना को मूर्त स्वरूप देने में विशेष सफलता हुई। अन्य प्रान्तों की तरह उन्होंने आर्य सभ्यता और आर्य्य संस्कृति के मुकुट-मणि कहलाने वाले तथा महाराजा विक्रमादित्य और महाराजा भोज का वास-स्थान मालव देश को मुगल शासन से छुड़ा कर महाराष्ट्र साम्राज्य में सम्मिलित करने का निश्चय किया। उन्होंने मालवा के महत्वपूर्ण प्रवेशद्वारों पर सहज ही में अधिकार कर लिया। यह कार्य वीरवर मल्हारराव होल्कर तथा पँवार आदि सरदारों ने किया।

सर जॉन माल्कम महोदय कहते हैं कि औरंगजेब के साथ युद्ध शुरू होते ही उसे तङ्ग करने के उद्देश्य से मराठों ने मालवे पर आक्रमण करने शुरू कर दिये। ई० सं० १६९० के एक पुराने पत्र से मालूम होता है कि मराठों के आक्रमण के कारण उस साल मालवे की पैदावार में बहुत कमी होगई थी। औरंगजेब के अत्याचारों से तङ्ग आकर कई राजपूत राजा उसके शत्रु को मदद करने लगे थे, और यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन्हीं राज-पूत राजाओं की सहायता और प्रेरणा से मराठों ने मालवे में प्रवेश किया था। ई० स० १६९८ में० ऊदाजी पवाँर ने मालवा में प्रवेश कर माण्डवगढ़ में मराठों का विजयी झण्डा फहराया था। पर उस समय वे वहाँ राज्य कायम न कर सके थे। जयपुर के तत्कालीन महाराजा सवाई जयसिंह का मुगल दरबार में बड़ा प्रभाव था। पर उस समय हिन्दुओं पर जो अत्याचार होते थे उन्हें उनका सदय अन्तःकरण सहन नहीं कर सका था। वे भीतर ही भीतर बड़ी चतुराई के साथ मुगल शासन की नींव उखाड़ देने का षड़यन्त्र रच रहे थे। उनकी प्रेरणा से मालवे के जमींदार व बुन्देल राजपूत औरंग-जेब के अत्याचारों को स्मरण कर मराठों के अनुकूल हो गये थे। बाजीराव का अतुलनीय पराक्रम देखकर लोग उन्हें अपना नेता मानने लगे थे और बाजीराव के प्रधान सहायक होल्कर, सिन्धिया और पँवार की बहादुरी और राजनीतिज्ञता के कारण मालव-विजय में बड़ा सुभीता हुआ। दूसरे शब्दों में

यों कह लीजिये कि मालव-विजय का श्रेय प्रधान रूप से मल्हारराव होल्कर, राणोजी सिन्धिया और ऊदाजी पँवार को था। मुग़ल बादशाही के पतन-काल में जुदे २ प्रान्तों के शासक किसी न किसी उपाय से स्वतन्त्र होने का प्रयत्न कर रहे थे। इस परिस्थिति का लाभ बाजीराव तथा मल्हारराव होल्कर आदि महानुभावों ने बहुत ही अच्छी तरह उठाया। मालवे के तत्का-लीन शासक गिरधर बहादुर व दया बहादुर का उद्दश भी स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने का था, पर इसमें वे सफल न हो सके। इसका कारण यह था कि वे बड़े अत्याचारी थे। प्रजा उनसे बेतरह तङ्ग थी। राजपूत और मराठों से उनकी तनिक भी नहीं पटती थी। उनकी ओर जनता का मनोबल (Moral force) बिलकुल नहीं था और यह एक राजनीति का सर्वमान्य सिद्धान्त है कि जिस शासन के खिलाफ़ सङ्गठित जनमत है वह एक न एक दिन बालू की दीवाल की तरह गिर पड़ता है। महाराज जयसिंहजी भी इनसे बड़े नाराज़ थे और उन्हें यह बात बहुत बुरी लगी थी कि ये लोग हिन्दू हो-कर हिन्दुओं पर अत्याचार कर रहे हैं। इसलिये उन्होंने खास तौर से मराठों को मालवा में निमन्त्रित किया। मालवे के प्रधान जमींदार नन्दलाल मण्ड-लोई दया बहादुर के अत्याचारों से तङ्ग आ गये थे। इसलिये उन्होंने भी मराठों को खुले हाथ से सहायता दी। सुप्रख्यात इतिहास-लेखक श्रीयुत देसाई का मत है कि नन्दलाल को वश करने का काम मल्हारराव होल्कर ने प्रधान रूप से किया था। नन्दलाल के साथ जयपुर के महाराज जयसिंह जी का भी अच्छा स्नेह था। ई० स० १७२० के बाद मल्हारराव होल्कर और नन्द-लाल के बीच जो पत्र-व्यवहार हुआ था उससे प्रतीत होता है कि होल्कर ने मालव-विजय करने का प्रयत्न बालाजी विश्वनाथ की मौजूदगी में शुरू कर दिया था। वे इसके लिये अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न कर रहे थे। मुग़ल शासन तथा मुग़ल सम्राट् के हाकिमों क खिलाफ़ जितनी शक्तियाँ थीं उनका उन्होंने बड़ी अच्छी तरह सङ्गठन कर लिया था। इन शक्तियों से मल्हारराव ने मैत्री का सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। इस समय मल्हारराव तथा उनके अन्य

कुछ सहयोगियों ने जिस नीति का अवलम्बन किया था उससे यह स्पष्ट प्रकट होता था कि वह न केवल ऊँचे दर्जे के वीर ही थे पर राजनीतिज्ञ भी थे। उन्होंने प्राप्त अवसर से बड़ी ही स्फूर्ति के साथ लाभ उठाया जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं। जयपुर के महाराज सवाई जयसिंहजी तथा इन्दौर के तत्कालीन प्रभावशाली व्यक्ति नन्दलाल जी मण्डलोई तो इनकी ओर थे ही पर इनके द्वारा उन्होंने मालवा के अन्य छोटे मोटे जागीरदारों को भी अपने पक्ष में मिला लिया था। इससे मालव-विजय में उन्हें सफलता हुई। अब हम उन युद्धों का थोड़ा सा वर्णन करते हैं जो मालव-विजय के लिये मराठों को करने पड़े थे।

सारंगपुर का युद्ध (ई० स० १७२४)

मालव-विजय के लिये मराठों को जो सब से पहला युद्ध करना पड़ा वह सारंगपुर का युद्ध था। यह युद्ध मालवा के तत्कालीन मुग़ल प्रतिनिधि राजा गिरधर के साथ हुआ था। यहाँ पर राजा गिरधर के विषय में दो शब्द लिख देना अनुचित न होगा। तत्कालीन मुग़ल सम्राट् के दरबार में स्वपराक्रम से जिन थोड़े से हिन्दू मुसद्दियों ने प्रख्याति प्राप्त की थी उनमें से राजा गिरधर भी एक था। यह अलाहाबाद का निवासी था। इसने मुग़ल सम्राट् की बड़ी २ सेवाएँ की थीं। जब सम्राट् ने यह देखा कि निज़ाम-उल्मुल्क की लोभी दृष्टि मालवे पर गिरना चाहती है तब उन्होंने राजा गिर-धर को मालवे का सूबेदार नियुक्त कर दिया। इस नियुक्ति में पहले पहल जयपुर के महाराज सवाई जयसिंहजी तथा जोधपुर के महाराज अजीतसिंहजी का भी हाथ था। अर्विन लिखता है कि "वास्तविक रूप से तो सम्राट् ने मालवा और आगरा प्रान्त की व्यवस्था जयसिंह के ही सिपुर्द की थी पर आगरा प्रान्त जयपुर के पास होने से वहाँ की शासन-व्यवस्था तो स्वयं महा-राज जयसिंहजी देखने लगे और मालवा की शासन-व्यवस्था के लिये उन्होंने राजा गिरधर को भिजवाया। पर गिरधर जयसिंहजी की मंशा के खिलाफ

आचरण करने लगा। जयसिंहजी को पहले पहल यह आशा थी कि गिरधर हिन्दू होने से हिन्दुओं पर अत्याचार न करेगा, पर उनकी यह आशा निराशा में परिणत हो गई। राजा गिरधर ने हिन्दुओं पर जुल्म करना शुरू किया। उसके जुल्मों से हिन्दू प्रजा और हिन्दू जागीरदार सब के सब तङ्ग आगये। यह बात हिन्दू-धर्म प्रेमी महाराजा जयसिंहजी को अच्छी न लगी। उन्होंने नन्दलाल मण्डलोई की मार्फ़त बातचीत कर मराठों को मालवे में निमन्त्रित किया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि महाराष्ट्र फौजों ने मालवे पर कूच किया। ई० स० १७२४ में राजा गिरधर और मराठों के बीच सारंगपुर मुकाम पर एक भीषण युद्ध हो गया। इसमें मल्हारराव होल्कर और चिमाजी आपा का प्रधान हाथ था। इसमें राजा गिरधर मारा गया, मराठों की विजय हुई और मालव-विजय का प्रथम दृश्य समाप्त होकर दूसरे दृश्य का आरम्भ हुआ।

तिरला की लड़ाई

दयाबहादुर का पतन (१२-१०-१७३१)

राजा गिरधर के पतन के बाद अगले दो वर्ष तक बाजीराव पेशवा तथा मल्हारराव होल्कर प्रभृति महानुभावों का ध्यान निजाम की ओर झुका। पेशवा ने मालवा से अपनी सेना वापस बुला ली। दिल्ली के तत्कालीन मुग़ल सम्राट् ने दया बहादुर को गिरधर के स्थान पर मालवा का शासक नियुक्त किया।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इन सब युद्धों में नवयुवक मल्हारराव ने असाधारण वीरता और अलौकिक चतुरता का परिचय दिया। उन्होंने अपनी अद्भुत कारगुजारी से पेशवा को बहुत ही प्रसन्न कर लिया। पेशवा ने खुश होकर ई० स० १७२८ में इन्हें मालवा के १२ जिले जागीर में दिये। ई० सन् १७३१ में पेशवा की इन पर और भी कृपा हुई और अबकी बार उन्होंने इन्हें मालवे का बहुतसा मुल्क दे डाला। इस समय मल्हारराव मालवे में ८२ जिलों के मालिक हो गये।

सारंगपुर के युद्ध के तीन वर्ष बाद पेशवा ने अपने भाई चिमाजी और मल्हारराव के संचालन में फिर मालवे में सेना भेजी। इस समय मुग़ल सम्राट् की ओर से दयाबहादुर मालवा का शासन करता था। यह भी बड़ा जुल्मी था। मालवे के लोग इससे भी बड़े अप्रसन्न थे। सर जॉन माल्कम साहब को नन्दलाल मण्डलोई के किसी वंशज से दयाबहादुर के शासन समय की जो जानकारी प्राप्त हुई थी उसके आधार से उन्होंने अपने Memoirs of Central India Part II में लिखा है:—

"सम्राट् महम्मदशाह के शासन काल में जब मुग़ल साम्राज्य के टुकड़े २ हो रहे थे और दिल्ली सम्राट् की शक्ति बड़ी शीघ्रता से क्षीण हो रही थी उस समय मालवे में दया बहादुर नाम का एक ब्राह्मण सूबेदार था। उस समय मुग़ल साम्राज्य में जो महान् अन्धाधुन्धी और भ्रष्टता फैल रही थी, उसका शान्तिमय किसानों और मज़दूरों पर बड़ा ही बुरा प्रभाव हो रहा था। वे हर एक छोटे २ अधिकारी के अत्याचारों से बुरी तरह पिसे जा रहे थे। मालवा के ठाकुर, किसान और छोटे २ मातहत रईसों पर दयाबहादुर और उसके एजन्टों के बड़े २ जुल्म हो रहे थे। उन पर कई प्रकार के अमानुषिक कर लगा दिये गये थे और वे बुरी तरह लूटे जा रहे थे। इन लोगों ने दिल्ली के सम्राट् के पास अपनी फ़रियाद भेजी और अपने दुःख मिटाने के लिये उनसे प्रार्थना की। उस समय का सम्राट् मुहम्मदशाह बड़ा कमज़ोर और विषय-लम्पट था। वह दिनरात ऐशो-आराम में अपने आपको भूला हुआ रहता था। जब इस फ़रियाद का कोई नतीजा नहीं हुआ तब मालवे के राजपूत राजाओं ने अपनी आँख जयपुर के सवाई जयसिंहजी की ओर फेरी और उनसे अपना दुःख मिटाने की अपील की। जयसिंहजी उस समय उन अत्यन्त शक्तिशाली राजाओं में से एक थे जो बादशाह की फरमा-बरदारी के लिये मशहूर थे। पर कहा जाता है कि बादशाह की कृतघ्नता से जयसिंह जी की इस राजभक्ति में बहुत कुछ कमी आगई थी। उन्होंने (जयसिंहजी ने) पेशवा बाजीराव से गुप्त पत्र-व्यवहार करना शुरू किया और मुसलमान साम्राज्य को किस प्रकार उलट देना इसके मन्सूबे होने लगे। जिन
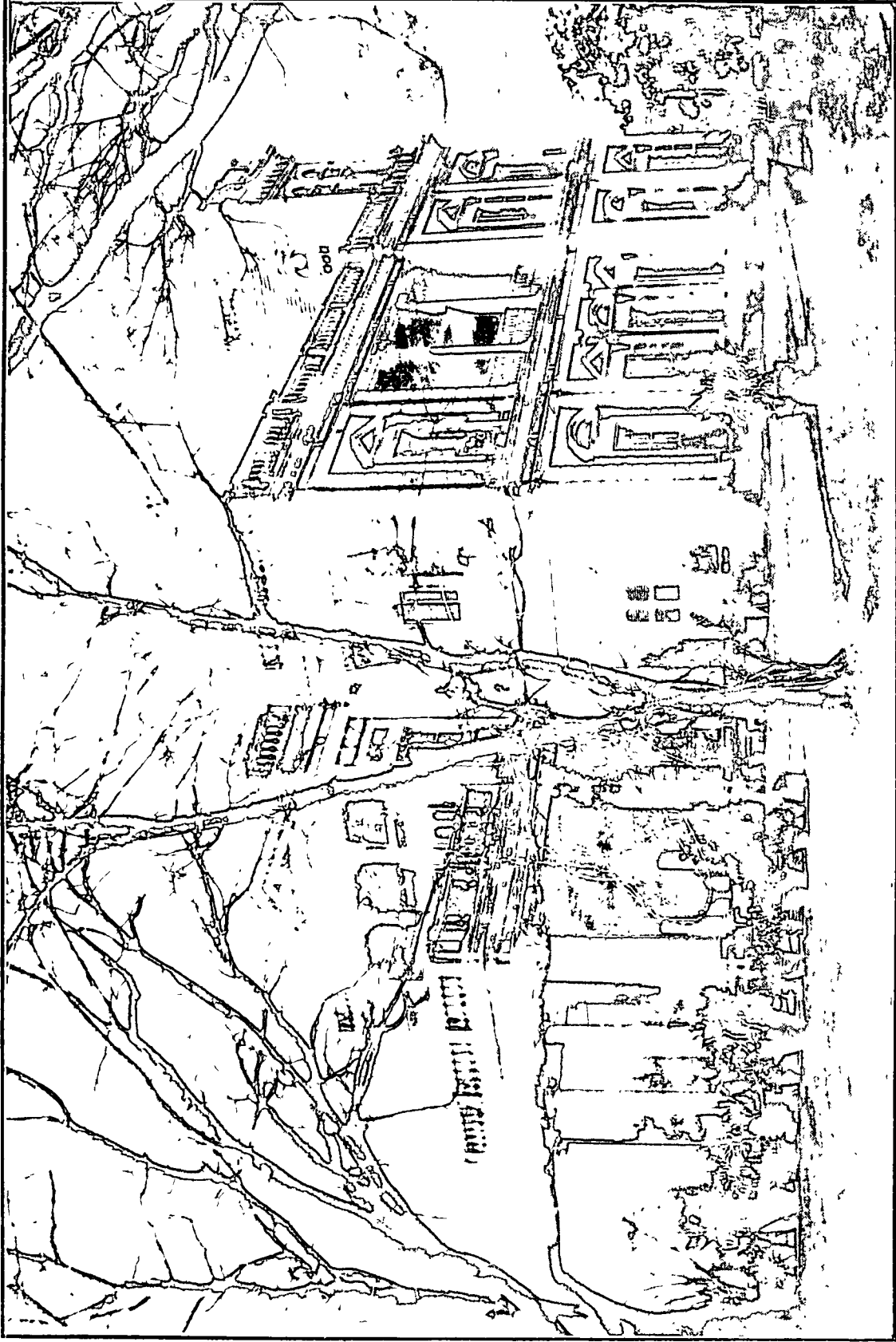
हवा बंगला, इन्दौर ।

मालवे के राजपूत राजाओं ने जयसिंहजी के पास अपने दुःखों की शिकायत की थी। उन्हें जयसिंहजी ने यह आदेश किया कि वे मराठों को मालवे पर आक्रमण कर मुगल शासन को उलट देने के लिये निमन्त्रित करें। राव नन्द-लाल चौधरी उस समय एक बड़ा धनवान और प्रभावशाली जमींदार था। उसके पास पैदल और घुड़सवारों की २००० फौज थी जिसे वह अपनी जागीर से तनख्वाह देता था। नर्मदा के भिन्न २ घाटों (fords) की रक्षा का भार भी उसी पर था। इसीलिये मराठों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने और उन्हें मालवे के आक्रमण में सहायता करने का भार उसे सौंपा गया था। पेशवा की सेना ने बुरहानपुर के पास अपना पड़ाव डाल रखा था। यहाँ से मल्हारराव १२००० सेना को साथ लेकर आगे बढ़े। राव नन्दलाल ने अपना वकील भेजकर मालवे में प्रवेश करने के लिये उनका स्वागत किया और उन्हें विश्वास दिलाया कि उनकी सेना के लिये ये नर्मदा के घाट खोल देंगे इतना ही नहीं; प्रत्युत सारे जमींदार इस आक्रमण में उनकी सहायता करेंगे। यह आश्वासन पाकर मरहठी सेना आगे बढ़ी। उसने अकबरपुर नामक घाट के मार्ग से नर्मदा को पार किया। जब इस बात की खबर दया बहादुर को लगी तो उसने अपनी सेना के साथ प्रस्थान करके टान्डा जानेवाले मार्ग पर के घाट पर पड़ाव डाल दिया। उसकी धारणा थी कि शत्रुसेना इसी मार्ग द्वारा मालवे में प्रवेश करेगी। पर उसका यह अनुमान गलत निकला। महाराष्ट्र सेना मालवे के जमींदार और प्रजागण की सहायता से बिना किसी प्रकार की बाधा के भैरवघाट के मार्ग से मालवे में आ धमकी। धार और अमझरा के बीच तिरला नामक स्थान पर इसका दयाबहादुर की सेना से मुकाबिला हुआ। दया-बहादुर इस युद्ध में मारा गया और उसकी सेना तितर-बितर हो गई। इसी समय से मालवे में मरहठों की सत्ता स्थापित हुई। मरहठों ने मालवे के प्राचीन ठाकुरों और जमींदारों की जागीरें उन्हीं के अधिकार में रहने दीं। उनके साथ शर्तें भी वे ही कायम रहीं जोकि उनकी मुगल सम्राट् के साथ थीं। मुगल आधिपत्य में ये जमींदार जिस प्रकार चूसे जाते थे अब उससे मुक्त

हो गये। मुग़लों द्वारा नियुक्त किये गये तमाम अमलदार और अधिकारी गण हटा दिये गये और उनके स्थान में मरहठों के आदमियों की नियुक्ति हुई। हाँ, जिन जमींदारों ने मरहठों का आधिपत्य स्वीकार नहीं किया वे अपनी जागीरों से च्युत कर दिये गये और उनके स्थान में उन जागीरों का अन्य वास्तविक अधिकारी नियुक्त कर दिया गया। मरहठों के आगमन से तमाम हिन्दू सरदार और जनता के दुःखों का अन्त हो गया।"

इस विषय पर अधिक प्रकाश डालने के लिये हम उन पत्रों को ज्यों के त्यों नीचे प्रकाशित करते हैं जो दयाबहादुर ने नन्दलाल मण्डलोई को लिखे थे। उनसे उस समय की परिस्थिति पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ेगा।

"सिद्दे श्री १०८ महाराज धर्ममूर्ति राव नन्दलालजी प्रमुख्य मुख्य सरदार प्राँत मालवा सवस्थान इंदोर, जोग श्री अवन्तिका से लेखक दया बहादुर कृत श्री प्रमाण पोंचे। विनंति है के मालवा का राजा महाराज श्री गिरधर बहादुर के खानदान में प्राचीन राज्य चला आया। ये सन ११३२ में मालवी सालमें दखन के मराठे सरदार मालवा में आये, और जंग हुवा, लड़ाइयाँ लीं; परमेश्वर कृपा से सारंगपुर मुकाम पर परमधाम गये। पीछे उसी जगे आप हो, ऐसा हम समझकर दखनवाले से बदला लेना इसी वास्ते में दिल्ली जाकर पातशासाब से अरज कर सुभे का अधिकार ले आया हूँ। मेरे सुनने में आया है की आप मेरे से बहुत नाराज होकर सवाई जेसिंग महाराजा से सला करते हो के मराठे सरदार को मालवे में लाकर प्रमुख करना, और निजाम साब को जेर करना, ऐसा बिचार करते हो, तो ये कैसा होगा। पातशा की पुन्याई क्या कम है नहीं। मैं आपकी मरजी के माफीक सब बन्दोबस्त करनेवाला हूँ। दखनवाले से बैर लेने में आवेगा। आप दाना सरदार हो इस वास्ते कानूनगो नरहरदासजी व मयारामजी जोसी वकील कूं यां बुलाकर, ये सब मजकूर कहेकर समभा दिये हैं। आपको कहेंगे, और पत्र बाँचने से भी मालूम होगा। सब ध्यान में लाकर, उत्तर मेहेरबानी से लिखें। १५ जमादिल अवल सल्लासीन मया व आलफ (२६-११-१७२९)।"

ता० २३-३-१७३१ को दया बहादुर की ओर से नन्दलाल मण्डलोई को जो पत्र मिला था उसकी नकल इस प्रकार है—

"सन साल गुदस्त तारीख १५ जमा दिलावल का खत नरहरदासजी मयारामजी जोसी वकील इनोंके हाथ भेजा वो पोंचा, जुबानी सब मजकूर आपकूं कह्या, फेर बी आपके दिलमें जो आटी हमारे निसबत है, उसकी सफाई न की, और विसी तरे आप दुशमनों को लाने के वास्ते दखन पत्र व्यवहार कर रहे हो, और कुल मालवे के सरदारों का दिल आपने अपनी मुठी में लेकर बादशहा गारद होना, ये सल्ला विचारी तो, ये बात आप दाना सरदार के लायक नहीं। आपके मरजी माफीक सब सरदारों का बन्दोबस्त, आप जैसा चाहोगे वैसाही होगा, पर आप बैरीओं से सलूक मत करो। और हम सुनते हैं की आप मालवे के नाके घाटे बन्दकर, पचास हजार फौजका जमाव करते हो, तो इसका क्या कारन ? आपसे मैं मिलने की इच्छा करता हूँ। आप उज्जेन पधारो या मैं इंदोर आऊं। छ २५ रमजान। इहिदे सल्लासीन मया व आलफ।"

दया बहादुर ने चौधरी नन्दलाल को ता० ६-४-१७३१ को एक पत्र लिखा था। वह इस प्रकार है:—

"ता० २५ रमजान सन गुदस्त का आपके तरफ पत्र भेजा और मिलने की इच्छा की, परन्तु उसका जवाब न भेजने से मिलना भी हुवा नहीं; इससे आपके दिलका मतलब नहिं मालुम पड़ता। और आप पत्र से भी नहीं मालूम करते, इससे मेरे दिलमें बहोत से शक पैदा होते हैं। पहले तो मेरे पर इतराजी, दुसरे मराठे को लड़ने का मालूम होता है, और इसलिये आप जमाव कर रहे हो। एसी आपकू क्या भीड़ की दुश्मनों से सल्ला करना। ये सब नरहरदासजी कानूंगो आपकू समझाकर कहेंगे, वो ध्यान में लाकर ये जलदी मालवे में से गलबा उठालो ऐसी मेरी विनंती है। छ ९ माहे सवाल, इहिदे सल्लासीन मया व आलफ।"

दया बहादुर द्वारा नन्दलालजी को भेजा हुआ ता० १८-१०-१७३१ का पत्र इस प्रकार है:—

"तिरलां से दया बहादुर सुभा के प्रणाम पोंचे। ता० १८ के पत्र मुक्काम माँडवे से आया। लिखा है, की राव साहेब के सरदार भाई बेटे ने मरेठी फौज निकाल कर दूसरे घाट चढ़ाली, और ये लोग सामने में रहे। इस्से इनके सरदार भाई बेटे अच्छे बहोत से घाटपर मारे गये, इनकी तपसील भी लिखी आई है, सो, आपको लिखते हैं की, ऐसा आपको क्या अड़ा है, मरेठे को बचाना और अपने भाई बेटे सरदार मरवाना और दुश्मनों को मुलूख दिलवाना, ये क्या बात और क्या विचार में फरक आया है? अब ये भाई बेटे की हानी हुवी इसका और मालक के घरमें निमकहरामी हुवी इसका, कोण विचार करेगा, ऐसा सब सोचकर, पाँच आपके सरदारों से सला मिला कर, आपना मालवदेश दूसरे के हाथमें मत दो। इश्वर करेगा तो महाराजा साहेब गिरधर बहादुर की फिर गादी स्थापित हो जावेगी, वंश कुछ डुबा नहीं है। आपके उन्हके स्थाईक प्रधान हो, पर बैरी दुशमनों को लाने से, ओर आप सवाई जेसिंग महाराज की एसी सल्ला होने से, कुछ न होगा, ओर आप इनको मदत मत करो, ये मेरी आखीर विनति है। ता० १९ रविलाखर, सुरुसन इसन्ने सल्लासीन मया व आलफ।"

इसी सिलसिले में हम उन पत्रों की नकल भी यहाँ देते हैं जो जयपुर नरेश श्रीमान् जयसिंहजी ने नन्दलालजी मण्डलोई को लिखे थे। इन पत्रों से भी उस समय की स्थिति पर कुछ प्रकाश पड़ेगा।

जयसिंहजी द्वारा लिखा हुआ ता० २६-१०-१७३१ का पत्रः—

"मालवे की हकीकत आपकी तरफसूँ लिखी आई थी वो सब मालूम हुवी। और ता० २९ रविलाखर का पत्र राजश्री बाजीराव बल्लाल पेशवा प्रधान दक्खन सुं लिख्यो कि, आपके संकल्प के माफिक ता० २१ के रोज (१२-१०-१७३१) मालवे में फत्ते हुई, ओर दया बहादुर सुबा रण में काम आया। इसमें राव साहेबजी व ठाकर नरहरदासजी व मयारामजी वकील, इनने आपने आपने तन मन धन से भाई बेटे सरदार सुदा मदत दी, परंतु मांडव घाट पर पादशा का सुबा ने ऐसा बन्दोबस्त करा था, की रस्ते में

तीन सुरंग लगाई थी, और फौज २५ हजार तयार थी, घाट चढ़ते मरेठी फौज बहुत सी मरने लगी, और जरा सो कदम ऊपर चढ़े तो मांडववाले सुरंग दागे, तो कुछ फौज गारद होवे। ऐसे मौके पर राव साहेब ने खबर दी, और मांडव घाट का रस्ता बदला कर, दूसरे रस्ते भेरों घाट से फौज चढ़ा ली, और अपने भाई बेटे व सरदारों को घाट पर सुरंग में उड़ाये, और मुकाबले में कट गये। बहोत सी मदत करी के उसका हाल लिख नहीं सकता। ऐसा लिखा आया सो, आपकुं लिखते हैं, कि यह बात आपने तपसीलवार लिखी नहीं। हजार शाबास है के फकत हमारे कोल के ऊपर आप सब मालवे सरदार रहेकर, अपना धर्म का कल्यान होना, और मालवे में धरम की वृद्धि होना, ये बात विचार कर मालवे में से मुसलमानों कू नापेद किये, और धर्म कायम रखा, हमारा मनोरथ आपने पुरा किया, इस बदल हमने पेशवा को लिखा है की, आपके मरजी के माफीक मालवे के सब सरदारों का बन्दोबस्त अच्छा होगा, जैसा तुम इनकू बहादुरी से लाये हो, इसी माफक उनका मालवे में जमाव डालना, ऐसा न हो की इनके पाव पहिले सरीके उठ जावें, तीन बखत मालवे में आनकर पीछे गये कुछ मिला नहीं; सो इसका पूरा विचार, और दूरंदेश विचार समजना, जादा आपकु लिखने में आता नहीं। आप दाना सरदार हो तारीख ५ जमादिल अव्वल, सन इसन्ने सलसीन मया व आलफ।"

महाराजा जयसिंहजी का तारीख ६।८।१७३२ का पत्र:—

"महाराव भाई नन्दलालजी प्रधान व ठाकुर नरहरदासजी कानुनगो सवस्थान इंदोर। योग श्री जेपुर से श्री महाराजा सवाई जेसिंगजी कृत प्रणाम बंचना। अत्र कुशल, श्रीजीकी कृपा से चाहिजे जी। अपरंच हकीकत ऐसी के ता० ५ जमादिल अव्वल सन गुदस्त का पत्र आपकु लिखा था कि जैसे आप मल्हारराबजी होल्कर व राणोजी सिंदे कुल दखन से वकील भेजकर बुलाये, और आपने भाई बेटे सरदार हजारों आदमी कटाकर इनकू मालवे में स्थापित किये, और हमारे लिखने पर इनकूं पुरी मदत देकर

टाँकेदारों से और महालों से वसूल पोता सुरू करा दिया। ये खबर दिल्ली के दरबार में पोहोंचने से बादशा सलामत हमसे बहोत नाराज होकर लिखी है की, राव साहेब ने कुल मालवे के सरदारों का दिल आपने हात में लेकर आप उनसे मिले, इससे हमारा सुभा गारद करवाया, और, मुलूक दुश्मनों को दिलवाकर, तोजी करादी, तो कुछ फिकर नहीं, इसका बदला सब को मिलेगा, और मरेठे तीन दफे मालवे में आये, ओर मारकर निकाल दिये। एसा फिर उसी माफिक सजा होकर निकाले जाने हैं। समालो, यहाँ से चढ़ाई की तारीख मुकर्रर है। ऐसा लिखा अया सो हमने प्रधान बाजीरावजी को लिखा। उस पर से बाजीरावजी पेशवा लिखते हैं की ये सब मालवे में हमारा जमाव डालना, ये काम प्रधान राव नन्दलालजी ठाकोर नरहरदासजी और उनके सरदारों का है। इन्हों का मालवे में हक्क, प्रधानी, चोधरात व चोथान कानुनगोई, व भाई बेटे हक्कदार जो, मालवे में हैं, उनके सब स्थानों का हक्क महाराजा गिरधर बहादुर के खानदान से मिला हुआ चला आया, वो निबंध हम चलाके जास्ती परवरसी करेंगे। दुसरे राव साहेब से एसा कोल है की, राजा साहेब गिरधर बहादुर ये मालवे के मालवी राजा, इनोंने पादशा के मदतगार होकर हमारे भाई चिमाजी आपा से लड़े, ये शके १६४६ के साल में सारंगपुर मुकाम पर रणमें जूझ गये, इनके वंश में मालवे का जो उत्पन्न आता था, उसका हिसाब हमने देखा। उनकी गादी कायम कर के वेसा ही बन्दोबस्त चलावेंगे, एसा श्री नर्मदा जी के तीर पर कोल है, ऐसा लिखा आया। सो आपको लिखते हैं की बादशा ने चढ़ाई की है, तो कुछ चिन्ता नहीं। श्री परमात्मा पार लगावेगा। बाजीराव जी पेशवा से हमने आपके निसवत धर्म कर्म कोल वचन कर लिया है। अब किसी तरे का शक न रखते, इनका जमाव मालवे में अच्छी तरे से डालना मालवे का बन्दोबस्त सब आप के भरो से है। ता० २५ सफर, सल्लास सलासीन मया व आलफ।"

इन पत्रों से पाठकों को उस समय की मालवा की राजनैतिक परिस्तिथि और गति विधि का भली प्रकार ज्ञान हो गया होगा। कहना न होगा कि मालवे

पर मराठों का विजयी झण्डा उड़ने लगा। अब वहा मुग़ल हुकूमत की जगह पेशवा की हुकूमत हो गई। फिर पेशवा ने मालवा को मल्हारराव होल्कर, राणोजी सिन्धिया और परमार सरदार के बीच बांट दिया। इन महानुभावों ने बड़ी ही उत्तमता के साथ मालवे का शासन किया।

ई० स० १७३७ में पेशवा ने उत्तर हिन्दुस्तान की चढ़ाई में मल्हारराव को भी साथ लिया था। जब तत्कालीन मुग़ल सम्राट् ने सुना कि महाराष्ट्र फौजें दिल्ली पर चढ़ आरही हैं, तब उन्होंने निजाम को सहायता के लिये बुलाया। निजाम ३४०० सेना और एक जंगी तोपखाना लेकर मुग़ल सम्राट् की सहायता के लिये चले। इस समय निजाम के पास तीस हजार पैदल सेना और ऊँचे दर्जे का तोपखाना था। कई बुन्देले राजा भी अपनी सेना सहित आकर मिल गये थे। धामोनी और सिरोंज होती हुई निजाम की सेना भोपाल के सुप्रसिद्ध तालाब के किनारे पहुँची। निजाम ने अपने दूसरे पुत्र नासिर-जंग को बाजीराव पेशवा को रोकने का हुक्म दिया। कहने की आवश्यकता नहीं कि नासिरजंग को असफलता हुई। सुसज्जित महाराष्ट्र सेना भी नर्मदा नदी लाँघकर निजाम के मुकावले के लिये चल पड़ी। भोपाल मुकाम पर दोनों का मुकाबला हुआ। इसमें निजाम की सेना बुरी तरह से हारी। वह वीर मराठों के सामने अपना टिकाव न कर सकी। निजाम ने सेना सहित भाग कर पास ही के एक किले में आश्रय लिया। मराठों ने भोपाल पर घेरा डाला। इसी बीचमें खबर लगी कि मुग़ल कोर्ट का एक बड़ा सरदार सफदर-खाँ और कोटा के राजा निजाम की सहायता पर आ रहे हैं। जब मल्हार-राव ने यह सुना तो उन्होंने जसवन्तराव पवाँर की सहायता लेकर उनका मार्ग रोका। दोनों फौजों में युद्ध हुआ। मल्हारराव की भारी विजय हुई। विपक्षी सेना के कोई १५०० आदमी काम आये। अब निजाम ने विजय की सारी आशा खोदी। भोपाल का घेरा बराबर २७ दिन तक रहा, इस बीच में निजाम सेना की बड़ी दुर्दशा हुई। न तो उसके पास खाने का सामान रहा और न फौजी सामान। आखिर सब तरफ से मजबूर होकर निजाम ने मराठों

के हाथ आत्म समर्पण किया। इस समय मराठों और निजाम के बीच जो सन्धि हुई वह मराठों की जाज्वल्यमान विजय और निजाम की भारी पराजय की स्पष्ट द्योतक है। अर्विन अपने Latter Mughals के दूसरे भाग पृष्ठ ३०५ में लिखता है कि "निजाम ने अपने हाथ से बाजीराव को लिख कर दिया कि अब से सारे मालवे पर आपका अधिकार रहेगा और मैं आपको सम्राट् से ५० लाख रुपया नक्द दिलवाने की कोशिस करूँगा।" कहना न होगा कि इस विजय से मराठों का चारों ओर बोलबाला होने लगा। उनका जबर्दस्त दबदबा जम गया।

ई० स० १७३९ में मल्हारराव पोर्च्युगीजों के खिलाफ़ चिमनाजी आपा की सहायता करने के लिये भेजे गये। ये पोर्चुगीज़ लोग सैकड़ों वर्षों से हिन्दुओं को राक्षसी यन्त्रणाएँ दे रहे थे। मराठों ने इनके साथ युद्ध किया। मराठों की विजय हुई। बेसीन के किले पर उनकी विजय ध्वजा फहराने लगी। इस समय से मल्हारराव की कीर्ति ध्वजा दूर २ पर फहराने लगी।

ई० स० १७४३ में बूंदी के राजा उम्मेदसिंह जी की माता ने जयपुर नरेश ईश्वरीसिंह जी के खिलाफ़ उनकी सहायता करने के लिये मल्हारराव को निमन्त्रित किये। इसका कारण यह था कि बूंदी की बहुत सी ज़मीन पर ईश्वरीसिंह ने अन्याय पूर्वक अधिकार कर लिया था। लखारी मुकाम पर जयपुर और मराठों की फौजों का मुकाबला हुआ। इसमें जयपुर की फौजें बुरी तरह हारीं। इसके बाद मल्हारराव ने जयपुर के महाराजा से बूंदी के महाराजा के लिये उस मुल्क की सनद प्राप्त की, जिसके लिये यह सब झगड़ा बखेड़ा खड़ा हुआ था।

ई० स० १७४३ में जयपुर के माधवसिंह जी की माता ने मल्हारराव से प्रार्थना की कि वे उनके पुत्र माधवसिंह को जो राज्य का वास्तविक अधिकारी है गद्दी दिलाने में सहायता दें। उन्होंने महाराजा मल्हारराव को यह भी समझाया कि किस प्रकार ईश्वरीसिंह अन्याय पूर्वक गद्दी का मालिक बन बैठा। इस पर मल्हारराव ने माधवसिंह को राज्य गद्दी पर बिठाने के लिये सेना
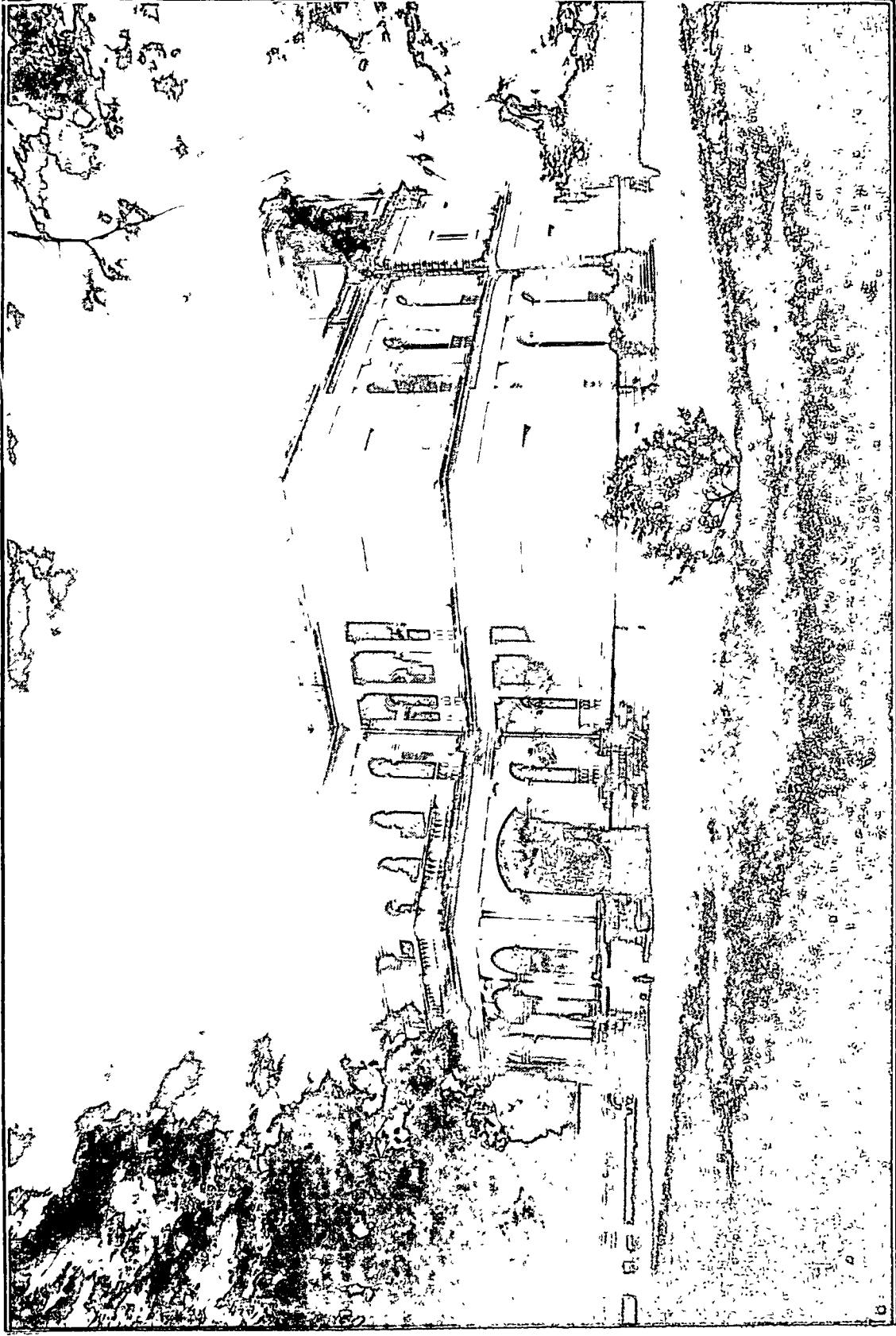
नर्मदा महल बड़वाह (इन्दोर स्टेट)

सहित कूच किया। ईश्वरीसिह ने जब मल्हारराव की चढ़ाई का समाचार सुना तब विजय की कोई आशा न देख आत्म-हत्या करली। इससे माधवसिंह को राज्यगद्दी मिल गई। इस सहायता के उपलक्ष में माधवसिंह ने मल्हारराव को रामपुर, भानपुर के परगने दे दिये। इतना ही नहीं उन्होंने इन्हें ३½ लाख रुपया प्रति साल खिराज का देना कबूल करते हुए, ७६००००० रुपया एक मुश्त भी दिया।

ई० स० १७४६-४७ में मल्हारराव ने अजयगढ़, कालिंजर और जौनपुर के युद्धों में आसाधारण वीरत्व और अलौकिक कार्य पटुता प्रकट की। इससे पेशवा आप पर बहुत ही प्रसन्न हुए। आपकी बड़ी प्रशंसा होने लगी।

ई० स० १७५१ में मल्हारराव होल्कर कुर्की नदी के किनारे वाले युद्ध में पेशवा के साथ थे, जिसमें निजाम ने बुरी तरह शिकस्त खाई थी। इसमें भी मल्हारराव ने आसाधारण वीरत्व प्रकट किया था।

ई० स० १७५१ में अवध का नवाब सफ़दरजंग मराठों से मिला और उसने उनसे प्रार्थना की कि वे रोहिलों से अवध की रक्षा करें। मराठों ने यह बात स्वीकार करली। इस कार्य का भार विशेष रुप से मल्हारराव के सिपुर्द किया गया। अतएव रोहिलों के खिलाफ़ जो युद्ध हुआ, उसमें मल्हार-राव ने खास तौर से भाग लिया। इस समय मल्हारराव के पास शत्रु सेना के मुकाबले में बहुत कम सेना थी। सीधी तरह से लड़ने में विजय की आशा बिलकुल नहीं थी अतएव मल्हारराव ने अपनी बुद्धि दौड़ाकर एक अजब युक्ति ढूँढ निकाली। उन्होंने कई हजार ढोर मँगवा कर उनके सींगों में इस युक्ति से छोटी २ जलती हुई मशालें बन्धवा दीं कि जिससे उन ढोरों को हानि न पहुँचे। फिर उन ढोरों को एक विशिष्ट दशा में भड़का दिया गया। वे ढोर जिस ओर भगकर गये उस ओर शत्रु सेना को हजारों प्रकाश चिन्ह दिख-लाई देने लगे। रोहिलों ने देखा कि विपक्षियों की सेना तो अपार है, वे भय-भीत होकर किंकर्तव्य विमूढ़ हो गये। वे प्रकाश चिन्हों की ओर देखने लगे। पीछे से मल्हारराव ने अन्धेरे में शत्रु पर एकाएक हमला कर दिया। बस

रोहिले घबरा गये। वे बेतहाशा होकर इधर उधर भागने लगे। इस वक्त शत्रुओं का बहुत सा सामान मल्हारराव के हाथ लगा।

ईस्वी सन् १७५२ में मल्हारराव का निजाम के साथ भालकी मुकाम पर फिर युद्ध हुआ। इसमें भी निजाम की हार हुई।

ई० स० १७५४ में मराठों ने भरतपुर के राजापर जो चढ़ाई की थी, उसमें भी मल्हारराव का खास हाथ था। इस चढ़ाई का कारण यह था कि भरतपुर के राजा ने सम्राट् आलमगीर के लिये दूसरे के खिलाफ़ वजीर शुजाउद्दौला को सहायता दी थी और मुगल सम्राट् के प्रधान सेनापति नजफ़खाँ ने भी अपने दुश्मनों से बदला लेने के लिये मराठों को निमन्त्रित किया था। मराठों ने भरत-पुर राज्य के कुँभेर नामक किले पर घेरा डाला। इस घेरे में मल्हारराव के पुत्र खण्डेराव विपक्षी सेना की तोप के गोले से मारे गये। इससे मल्हारराव आग बबूला हो गये। उनका खून उबल उठा। उन्होंने यह प्रतिज्ञा की कि मैं भरत-पुर के किले को जमींदस्त करके उसके सारे सामान को जमना नदी में फिंकवा दूंगा। इससे भरतपुर के राजा भयभीत हो गये। उन्होंने सुलह के लिये प्रार्थना की। उन्होंने मल्हारराव के गुस्से को शान्त करने के लिये ७५००० रु० प्रतिसाल की आमदनी के ५ गाँव दिये, जिससे कि खण्डेराव की छत्री का खर्च चलता रहे।

ई० स० १७५६ में मल्हारराव ने उस लड़ाई में भाग लिया था जो दक्षिण के साबनूर के नवाब के साथ पेशवा की हुई थी। ई० स० १७५९—६० में उन्होंने जयपुर जिले के कुछ किले हस्तगत किये।

पानीपत और मल्हारराव

भारतवर्ष के इतिहास में पानीपत का युद्ध विशेष महत्व रखता है। इस युद्ध ने भारतवर्ष के राजनैतिक भविष्य पर किस प्रकार का प्रभाव डाला था यह बात सूक्ष्मदृष्टि इतिहास-वेत्ताओं से छिपी हुई नहीं है। इस युद्ध के परि-णाम के विषय में भिन्न २ इतिहास-वेत्ताओं का भिन्न २ मत है। हमारे पास

स्थान नहीं है कि हम उन सब का साङ्गोपाङ्ग विवेचन करें। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस युद्ध में मराठों की शक्ति को एक जबर्दस्त धक्का लगा था। कम से कम कुछ समय के लिये मराठों के भाग्याकाश को विपरीत दशा में पलट दिया था। हमें यहां यह देखना है कि मल्हारराव होल्कर का इस युद्ध में किस प्रकार का भाग रहा था।

जब सदाशिवराव बड़े अभिमान के साथ महाराष्ट्र सेना को पानीपत के मैदान की ओर ले जा रहे थे तब वीरवर सूरजमल जाट जैसे बहादुर सिपाही की अनुभवी आंख ने महाराष्ट्र सेना की इस ऊपरी सजधज के अन्तर्गत अव्यवस्था और असगंठन के बीज देखे थे। उसने सदाशिवराव से यह अनुरोध किया था कि पुरानी महाराष्ट्र पद्धतियों से अफ़गानों को हैरान करें और जब अफ़गान सेना पीछे हटने लगे तब उन पर अकस्मात् रूप से आक्रमण कर दें। सूरजमल ने सदाशिवराव को बाकायदा युद्ध करने की सलाह न दी। मल्हारराव होल्कर और अन्य फौजी अफसरों ने सूरजमल की राय का समर्थन किया था। पर देश के दुर्भाग्य से सदाशिवराव को उनकी बात नहीं पटी। सदाशिवराव ने सूरजमल को एक छोटासा जमींदार और मल्हारराव को गडरिया कह कर ताना मारा। इसके बाद भी सदाशिवराव ने मल्हारराव की रायकी उपेक्षा की। पानीपत के युद्ध के मैदान में भी मल्हारराव ने सदाशिवराव को अपनी युद्ध नीति बदलने के लिये कई बार समझाया पर उन्होंने एक न सुनी। वे अपनी ज़िद पर अड़े रहे। इससे मल्हारराव को बड़ा क्रोध आया और वे लड़ाई से अलग हो गये। इसके थोड़े ही अर्से बाद ताँदुलजा (उद्गीर) की लड़ाई में भारी विजय प्राप्त करने के उपलक्ष्य में मल्हारराव को पेशवा की ओर से ३००००० की जागीर मिली।

ई० स० १७६४ में वजीर शुजाउद्दौला ने मल्हारराव को निमन्त्रित किया। इसका कारण यह था कि शुजाउद्दौला अंग्रेजों से हार गया था और इसीलिये उसने अंग्रेजों के खिलाफ़ सहायता पाने के लिये मल्हारराव को बुलाये थे। मल्हारराव ने यह निमन्त्रण स्वीकार करलिया और उन्होंने अपनी सेना सहित

कूच किया। मल्हारराव और अंग्रेजों के बीच लड़ाई हुई। इसमें मल्हारराव को भारी विजय प्राप्त हुई। इस लड़ाई में अंग्रेजों की भारी हानि हुई। इसके बाद अंग्रेजों ने मल्हारराव की फ़ौज पर अकस्मात् आक्रमण कर बदला लिया। इस हमले के कारण मल्हारराव को बुन्देलखंड के काल्प नामक स्थान तक पीछे हटना पड़ा। यहाँ आकर इन्होंने देखा कि गोहद का राना तथा दतिया का राजा सम्मिलित होकर मराठों की राज्यसत्ता को जड़मूल से खोदने का षड़यन्त्र कर रहे हैं। उन्होंने यह भी देखा कि हिम्मतबहादुर ने मराठों से झाँसी का प्रान्त भी छीनलिया है। इसपर मल्हारराव को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने मरहठों के हाथसे गये हुए प्रान्तों को वापस लेने का निश्चय किया। मल्हारराव ने झाँसी पर घेरा डाला। तीन मास की लड़ाई के बाद उसे वापस फतह् करलिया। चार दिन तक लड़ने के बाद दतिया के राजा ने भी घुटने टेक दिये। उसने मल्हारराव के हाथमें आत्म समर्पण कर दिया। यही स्थिति ओरछा, शेवड़ा, और अन्य स्थानों के राजाओं की हुई।

इसी बीच में मल्हारराव की सहायता करने के लिये राघोबा के सेनापतित्व में दक्षिण से सेना आ पहुँची। पर मल्हारराव इस सेनाका कुछ भी उपयोग न कर सके क्योंकि ई० सन् १७६६ की २० वीं मई को आलमपुर में इनका देहान्त हो गया। स्मारक रूपमें आपकी वहाँ छत्री बनी है। इस छत्री के खर्च के लिये दतिया आदि राज्यों की ओर से होल्कर को २७ गाँव मिले हैं।

मल्हारराव अपने समय के महान् वीरों में सें एक थे। आपने कोई चालीस युद्धों में बड़ी सफलता के साथ भाग लिया था। आप जैसे असाधारण वीर थे वैसेही चतुर राजनीतिज्ञ भी थे। प्राप्त अवसर का फायदा उठाने में आप अपना सानी नही रखते थे। आप अपने समय के सर्वोच्च राजनीतिज्ञों में से थे। इसी का यह परिणाम है कि आप अपने पीछे एक करोड़ रुपये प्रतिसाल की आमदनी का एक विशाल राज्य छोड़ गये। मल्हारराव को खण्डेराव नामक एक पुत्र थे जिनके भरतपुर की लड़ाई में मारेजाने

श्रीमती देवी अहिल्याबाई होल्कर, इन्दौर

का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। खण्डेराव को मालीराव नामक एक पुत्र थे। वे ही अपने पूज्य पितामह की गद्दी पर विराजे। पर दुर्भाग्य से वे अधिक दिन तक इस संसार में न रह सके। गद्दीपर बैठने के नौ मास बाद ही इनका स्वर्गवास हो गया। इनके बाद पेशवा ने मल्हारराव के भतीजे तुकोजी-राव होल्कर को, जिन्हें कि गौतमाबाई ने गोद लिया था, मालवे का सूबेदार नियुक्त किया।
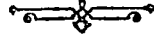
अहल्या बाई

मालीराव की मृत्यु के पश्चात् राज्य का सारा कारोबार मल्हारराव की पुत्र-वधू तथा खण्डेराव की धर्म-पत्नी अहल्याबाई करती थीं। अहल्याबाई एक दिव्य महिला थीं। वे बड़ी धर्मात्मा, शुद्ध-हृदया और प्रजापालक थीं। हृदय की विशालता में वे अपना सानी नहीं रखती थीं। वे दया और करुणा की साक्षात् मूर्ति थीं। उनके विशाल अन्तःकरण में दिव्याति-दिव्य गुणों का अद्भुत रूप से विकास हुआ था। इन दिव्य गुणों के साथ २ शासन-कार्य में भी वे अद्वितीय थीं। वे बड़ी बुद्धिमती और प्रतिभा-शालिनी थीं। उन्होंने ऐसी उत्तमता से शासन किया कि प्रजा और आसपास के राजाओं ने अति प्रसन्नता प्रकट की। उन्होंने प्रजा के सामाजिक और आर्थिक जीवन का भी भली प्रकार अध्ययन किया। प्रजा की हित-कामना उनके हृदय में हमेशा बनी रहती थी। गरीब से गरीब मनुष्य भी अपनी दुःख-कहानी माता अहल्या को सुना सकता था। प्रजा उन्हें अपनी माता समझती थी। वे प्रजा को निज पुत्र से भी विशेष प्रिय समझती थीं। उस समय इन्दौर राज्य पूर्णरूप से रामराज्य था। प्रजा सुखी और समृद्धि-शालिनी थी।

अहल्याबाई धर्म की मूर्ति थीं। उन्होंने भारतवर्ष के प्रायः सब तीर्थ-स्थानों में धर्मादों के वितरण की व्यवस्था की थी। यह व्यवस्था आज तक जारी है। आपको हिन्दुस्तान में ऐसा कोई तीर्थ-स्थान नहीं मिलेगा जिसमें अहल्याबाई का बनाया हुआ कोई स्मारक न हो। भगवती देवी की इस साक्षात् मूर्ति ने ई० सन् १७९५ में ७० वर्ष की अवस्था में इस लोक की यात्रा समाप्त की।

सुप्रख्यात् अंग्रेज लेखक सर जॉन माल्कम अपने 'Memoirs of Malwa' में अहल्याबाई के विषय में लिखते हैं:—

"अहल्याबाई के लिये जो कुछ कहा जाता है वह निस्सन्देह ठीक है। उस में सन्देह को स्थान नहीं। वास्तव में वह एक अद्वितीय और असाधारण मूर्ति थी। उसको अभिमान छू तक न गया था। धर्म में कट्टर होते हुए भी सहन-शीलता की वह उज्वल प्रतिमा थी। यद्यपि वह एकतन्त्रीय शासिका थी, तथापि उसके प्रत्येक कार्य में उच्च-विवेक, अद्वितीय नीतिमत्ता और धर्म की छाप रहती थी। यही कारण है कि आज भी मालवे में लोग उसे देवी और ईश्वरीय अवतार कह कर सम्बोधित करते हैं। वह सांसारिक व्यवहारों में दक्ष होते हुए भी ईश्वर के प्रति अपने कर्तव्य को भली प्रकार समझती थी।"

यहाँ यह बात भी नहीं भूलना चाहिये कि श्रीमती देवी अहल्याबाई को तुकोजीराव से बहुमूल्य सहायता मिलती थी।

अहल्याबाई आत्मा के उच्चतम गुणों में जैसी अद्वितीय थीं वैसी ही वह वीर-रमणी भी थीं। एक समय किसी बातके लिये उनके और राघोबा दादा के बीच खटक गई। राघोबा ने इन्दौर पर चढ़ाई करने की धमकी दी। इस पर वह वीर नारी डरी नहीं, वरन् उसने अपने वीरोचित गुणों का प्रकाशन किया। उसने राघोबा को कहला भेजा—"आप जैसे वीरों का यह धर्म नहीं है कि आप एक अबला पर चढ़ाई करें। फिर भी मैं हर तरह से तैयार हूँ। अगर मैं हार गई तो इसमें मुझे कोई बुरा नहीं कहेगा, पर दैववशात् यदि आप की पराजय हुई, तो संसार क्या कहेगा। इस पर ज़रा विचार कर लीजियेगा।"

महाराजा तुकोजी राव होल्कर (प्रथम)

इतना ही सँदेसा पहुँचा कर अहल्याबाई ने सन्तोष न माना। उन्होंने युद्ध की तैयारी भी कर ली। उन्होंने राघोबा की फौजों का मुकाबिला करने के लिये अन्य फ़ौजों के साथ २ कुछ स्त्री योद्धाओं को भी तैयार किया था। राघोबा इस वीर रमणी की अद्भुत् तेजस्विता से विस्मित होगये और उन्होंने अहल्याबाई पर चढ़ाई करने का विचार त्याग दिया। बाद में उन्होंने केवल यह कहला भेजा कि—"मैं मालीराव की मृत्यु के उपलक्ष्य में आपके साथ समवेदना और सहानुभूति प्रकट करने के लिये आ रहा था।"

तुकोजीराव (प्रथम)

इसमें तिलमात्र भी सन्देह नहीं कि श्री तुकोजीराव मल्हारराव के योग्य उत्तराधिकारी थे। आपने कई युद्धों में असाधारण चतुराई और वीरत्व का परिचय दिया था। उन्होंने अपनी फौजों में यूरोपियन युद्ध-कला और नियम-पालकता (Discipline) का प्रचार किया।

ई० सन् १७६७ में पेशवा ने रोहिलों को दण्ड देने के लिये जो फ़ौज भेजी थी उसमें सिन्धिया के साथ २ तुकोजीराव ने भी बहुत बड़ा भाग लिया था। इसका कारण यह था कि रोहिलों ने पानीपत की लड़ाई में मराठों के खिलाफ़ अहमदशाह अब्दाली का साथ दिया था। पहले पहल मराठों की यह फौज तीन हिस्सों में विभक्त हुई। उसकी एक टुकड़ी सिन्धिया के हाथमें, दूसरी होल्कर के हाथमें, और तीसरी दूसरे सेनापतियों के हाथ में रही। सिन्धिया ने उदयपुर पर कूच किया और वहाँ के महाराणा पर ६० लाख का खिराज लगाया। तुकोजीराव ने कोटा और बूँदी पर चढ़ाई कर उनपर खिराज लगाया। अन्य दो जनरल सागर में रहकर बुन्देलखंड के राजाओं से खिराज वसूल करने लगे। इसके बाद सब सेना ने मिलकर भरत-

पुर के राजा के खिलाफ़ कूच किया। इसका कारण यह था कि भरतपुर का राजा अवध के नवाब शुजाउद्दौला से मिल गया था जो मराठों से विश्वासघात कर पानीपत के युद्ध में अहमदशाह अब्दाली से जा मिला था। यही नहीं, उक्त राजाने आगरे का किला और उसके आसपास का कुछ मुल्क भी छीन लिया था। इससे चिढ़कर मराठों ने बदला लेने का निश्चय किया। भरतपुर से १६ मील की दूरी पर दोनों सेनाओं का मुकाबला हुआ। इसमें भरतपुर का राजा पूर्णरूप से हार गया तब उसी राजा नवलसिंह ने ६५००००० रुपया नक्द और लिया हुआ मुल्क वापस लौटाकर मराठों से सुलह की। इसके बाद मराठों की विजयी सेना ने दिल्ली की ओर कूच किया। ई० सन् १७७० में नजीबखाँ रोहिला से इन्होंने दोआब का प्रान्त जीता। यह प्रान्त पहले मराठों के हाथ में था परन्तु पानीपत की लड़ाई के बाद उनके हाथ से निकल गया था। इसके बाद उन्होंने फर्रुखाबाद के पठानों पर चढ़ाई की। ये पठान लोग पानीपत के युद्ध में मराठों के खिलाफ़ लड़े थे। इस समय रोहिले और पठानों ने आपस में गुट बाँधकर मराठों का मुकाबला करने का निश्चय किया। मराठों और इनके बीच में छोटी बड़ी अनेक लड़ाइयाँ हुई। आखिर में मराठों ने इनसे सब किले और इटावा का जिला छीन लिया। इन लड़ाइयों में एक लडाई ई० सन् १७७० में पत्थरगढ़ मुकाम में हुई जिसमें शत्रु की कोई ७०००० सेना की भयङ्कार हानि हुई। आखिर में शत्रुओं ने सुलह के पैगाम पहुँचाये। मराठों ने अपना खोया हुआ मुल्क वापस लेकर अपने विपक्षियों सें सुलह कर ली।

पाठक जानते हैं कि इसी समय दिल्ली का नामधारी सम्राट् शाह आलम बादशाही से च्युत होकर प्रयाग में अंग्रजों के आश्रय में रहता था। मराठों ने उससे लिखा पढ़ी करना शुरू किया। अंग्रेजों ने जब देखा कि मराठे मुगल बादशाह को शाही तख्तपर बैठा कर अपना काम बनाना चाहते हैं तो उन्होंने भी शाह आलम को शाही तख्त पर बैठाने का प्रयत्न शुरू किया। उन्होंने देखा कि बादशाह का मराठों के हाथ में चला जाना उनके स्वार्थ में हानिकारक
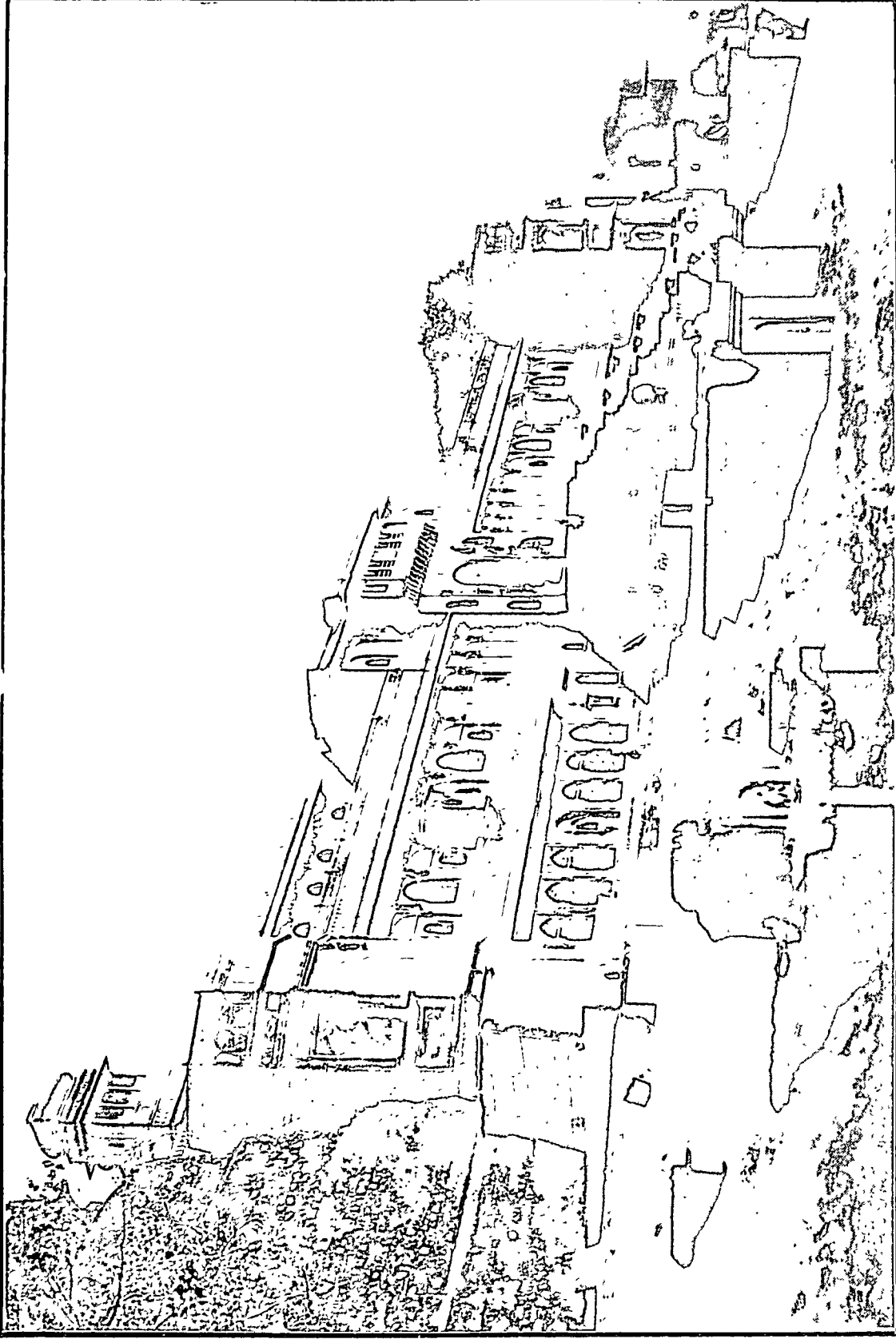
महेश्वर के घाट, (इन्दौर स्टेट)

है। अतः मराठों की सत्ता का बढ़ना अंग्रजों को अखरा। अतएव उन्होंने भी यही चाहा कि अवसर मिलते ही बादशाह को तख्तपर बैठाने का श्रेय प्राप्त करना चाहिये। पर बादशाह बहुत बेचैन हो रहा था। उसने मराठों से बात चीत कर ली। उसने उन्हें वचन दे दिया कि—"अगर तुम मुझे बादशाही तख्त पर फिर बैठा दोगे, तो मैं तुम्हें उस सब जागीर का परवाना फिर दे दूँगा जो पानी-पत की लड़ाई के बाद तुम्हारे हाथ से निकल गई है।" उसने मराठों से यह भी शर्त की कि–"मेरी ओर जो तुम्हारी चौथ बकाया है, वह भी मैं सब दे दूँगा।" बस फिर क्या था। ई० सन् १७७१ के अन्त में मराठों ने शाह आलम को दिल्ली के तख्त पर बैठा दिया।

ई० सन् १७७२ में मुग़ल सम्राट् शाह आलम और मराठों की संयुक्त सेना ने रोहिला सरदार जबीता खाँ के खिलाफ़ कूच किया। यद्यपि यह पत्थरगढ़ में हार चुका था, पर अभी तक सीधा नहीं हुआ था। अतएव इस वक्त फिर उस पर चढ़ाई करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। रोहिले मराठों का मुकाबला न कर सके। पीछे हटकर उन्होंने शुक्रताल नामक किले में आश्रय ग्रहण किया। मराठों ने इस किले पर भी घेरा डाल दिया। इस वक्त जबीता-खाँ के बहुत से आदमी मारे गये। जबीताखाँ भी प्राणों को लेकर बिजनौर भाग गया। मराठों ने इसका पीछा किया और चन्दीघाट के उस पार उसे पूरी तौर से शिकस्त दी। फिर मराठों ने इसके तमाम किले और सारे मुल्क पर अधिकार कर लिया। इसके बाद मराठे अपनी कुछ सेना दोआब में छोड़ कर दिल्ली की ओर लौट गये।

जब मराठे दिल्ली में थे तब उनके विरुद्ध एक षड़यन्त्र की सृष्टि हुई। इस षड़यन्त्र का मुखिया अवध का नवाब शुजाउद्दौला था। अंग्रेज भी इसमें शामिल थे। मुग़ल सम्राट् शाहआलम का भी इसमें हाथ था। बात यह हुई थी कि महादजी सिन्धिया ने मुग़ल सम्राट् से पेशवा के भाई नारायणराव को प्रधान सेनापति का पद जबरदस्ती दिलवा दिया था। यह पद अब तक पूर्वोक्त जबीताखाँ को प्राप्त था। यह पद प्राप्त हो जाने से शाही फ़ौजपर भी

मराठों का अधिकार हो गया था। यह देखकर शुजाउद्दौला और अंग्रेज सशङ्कित हुए। खास मुग़ल सम्राट् को भी यह बात न भाई। बस फिर क्या था; मराठों के खिलाफ़ इन तीनों के षड़यन्त्र शुरू हुए। मुग़ल सम्राट् ने भी फौज इकट्ठा की। इसमें बृटिश फौजें भी शामिल थीं। तुकोजीराव और बिनीवाले की आधीनता में मराठी सेना भी तैयार हो गई। दोनों में युद्ध हुआ। मुग़ल सम्राट् शाह आलम हार कर पीछे हटे। उन्हें मजबूर होकर मराठों की शर्तें स्वीकार करनी पड़ीं।

अभी तक रोहिलों ने मराठों से सुलह नहीं की थी। अतएव फिर मराठों ने उनपर चढ़ाई की। इस चढ़ाई का कारण यह बतलाया गया कि रोहिलों ने ५० लाख रुपया देने का जो वचन दिया था उसका अभी तक पालन नहीं किया था। रोहिलों ने भी मुकाबिला किया। आसदपुर में पूरी तौर से उन्होंने उल्टे मुँह की खाई। उनका सेनापति अहमदखाँ गिरफ्तार कर कैद कर लिया गया। इसके बाद अवध के नबाब शुजाउद्दौला और अंग्रेजों ने रोहिलों का पक्ष ग्रहण किया। यहाँ यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि किसी अनबन के कारण इस समय महादजी सिन्धिया रुष्ट होकर तुकोजीराव प्रभृति मराठा सरदारों को छोड़कर राजपूताना चले गये थे और इसी अर्से में माधवराव पेशवा का भी देहान्त हो गया था। अंग्रेजों और नवाब शुजाउद्दौला ने मराठों को नीचा दिखलाने का यह उपयुक्त अवसर देखा। वे रोहिलों से मिल गये। इधर तुकोजीराव होल्कर भी बड़े राजनीतिज्ञ थे। जब उन्होंने देखा कि मतभेद के कारण अपना बल कुछ क्षीण हो गया है और विपक्षियों की संख्या बहुत बढ़ती जा रही है तब वे बड़ी सैनिक चतुराई के साथ पीछे हट गये। दिल्ली से हट कर मराठी सेना भरतपुर पहुँची। भरतपुर शहर से कुछ मील की दूरी पर भरतपुर की सेना से इनका मुकाबला हुआ। दोनों में युद्ध ठना। भरतपुर की सेना बुरी तरह हारी। आखिर भरतपुर के राजा से कुछ शर्तें तय कर मराठी सेना दक्षिण की ओर चली गयी। तुकोजीराव होल्कर इन्दौर आ गये और बिसाजी बीनीवाले भी पूना चले गये।

माधवराव पेशवा की मृत्यु के विषय में हम पहले ही लिख चुके हैं। ई० सन् १७७६ में माधवराव के छोटे भाई नारायणराव का खून हो गया। कहा जाता है कि इस खून में राघोबा का हाथ था। इस घटना से मराठी सरदारों में बड़ी खलबली मच गई। खून करनेवाले के खिलाफ़ मराठे सरदारों का गुट बना; लेकिन नारायणराव को माधवराव नामक पुत्र हुआ जिससे रिजेन्सी कौन्सिल ने राघोबा दादा को पेशवाई से हटा दिया। इसके बाद राघोबा दादा शुजाउद्दौला और अंग्रेजों की सहायता पाने की आशा से मालवा गये। उन्होंने सिन्धिया और होल्कर के राज्य में प्रवेश किया। वहाँ रहने के लिये उन्हें इजाज़त मिल गई। पूना सरकार ने अपने प्रधान सेनापति हरिपन्त फड़के को राघोबा का पीछा करने के लिये भेजा। इधर राघोबा पूना सरकार के विरुद्ध षड़यन्त्र रचने की इच्छा से कभी धार और कभी भोपाल आदि स्थानों में घूमते रहे। आखिर महाराजा होल्कर और महाराजा सिन्धिया ने उन्हें पूना लौटने के लिये मजबूर किया। रास्ते में सिन्धिया और होल्कर की फौजों की निगरानी रहते हुए भी राघोबा किसी तरह आँख बचा कर भाग निकले। उन्होंने गोविन्दराव गायकवाड़ और अन्य कुछ मराठे राजाओं को अपने पक्ष में कर लिया। उधर होल्कर, सिन्धिया और हरिपन्त की संयुक्त सेनाओं ने बड़ौदा के नजदीक राघोबा को जा घेरा। माहीनदी के किनारे दोनों पक्षों की फौजों में युद्ध हुआ। इसमें राघोबा बुरी तरह हारे और उन्हें पीछे हटना पड़ा। विजेताओं ने उनका पीछा किया। राघोबा ने खंभात के नवाब से सहायता माँगी, पर उन्होंने देने से इन्कार किया। आखिर में वे खंभात के नवाब के बृटिश एजन्ट से मिले। बृटिश एजन्ट ने उन्हें ज्यों त्यों कर सूरत की बृटिश फेक्टरी में पहुँचा दिया। अंग्रेजों का राघोबा को आश्रय देना और उनका सालसीट पर आक्रमण करना, यही ख़ास तौर से प्रथम मराठा युद्ध का कारण है।

बम्बई सरकार का यह कार्य गवर्नर जनरल ने पसन्द नहीं किया। उन्होंने बम्बई सरकार के इस कार्य की पुष्टि करने से इनकार कर दिया।

उन्होंने (वारन हेस्टिंग्ज ने) बम्बई की अंगरेजी सरकार को यह भी लिखा कि "आपको मेरी अनुमति के बिना किसी के साथ युद्ध विघोषित करने का अधिकार नहीं है।" इतना ही नहीं उन्होंने पूना की पेशवा-सरकार से सम्बन्ध स्थापित करने के लिये अपना एक वकील भी भेजा। इस कारण थोड़े से समय के लिये दोनों का मन-मुटाव शान्त हुआ। और ई० सन् १७७६ में अंग्रेजों और पूना की सरकार के बीच में एक सन्धि हुई जो पुरन्दर की सन्धि के नाम से मशहूर है। इस सन्धि में अंग्रेजों ने यह स्वीकार किया कि वे राघोबा का पक्ष ग्रहण न करेंगे।

इसी बीच पूना की पेशवा सरकार और सिन्धिया-होल्कर में किसी कारण मनो-मालिन्य हो गया। पर शीघ्र ही आपस में समझौता भी हो गया। सब एक दूसरे से मिल गये। ई० सन् १७७६ में महाराष्ट्र देश में कुछ गड़बड़ और अशान्ति हो गई थी उसे तीनों ने मिलकर मिटा दिया। ई० स० १७७८ में तुकोजीराव होल्कर ने नरसो गोविन्द पर चढ़ाई की और उस से करकब का थाना छीन कर उसके असली हकदार पटवर्धन कुटुम्ब को दे दिया। नरसोगोविन्द झूठमूठ ही थाने का मालिक बन बैठा था। तुकोजीराव ने नरसोगोविन्द को भी गिरफ्तार कर लिया।

हम पहले लिख चुके हैं कि पुरन्दर में मराठों और अंग्रेजों की जो सन्धि हुई थी उसमें अंग्रेजों ने राघोबा का पक्ष ग्रहण न करने का वचन दिया था पर गवर्नर जनरल के बराबर सूचना करते रहने पर भी बम्बई सरकार अपना हठ न छोड़ा। बम्बई की बृटिश सरकार राघोबा को सूरत से ले गई और पूने में बृटिश राजदूत ने बम्बई के बृटिश अधिकारियों के कार्य का समर्थन करते हुए कहा कि—"पूना की पेशवा सरकार ने राघोबा के के लिये कोई इन्तजाम नहीं किया था, अतएव बम्बई सरकार को यह वाई करनी पड़ी।" यहाँ यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि पुरन्दर की में ऐसी कोई बात तय नहीं हुई थी जिसके लिये बृटिश राजदूत ने उक्त था। इन सब कार्रवाइयों को देखकर पूना की पेशवा सरकार को अंग्रे
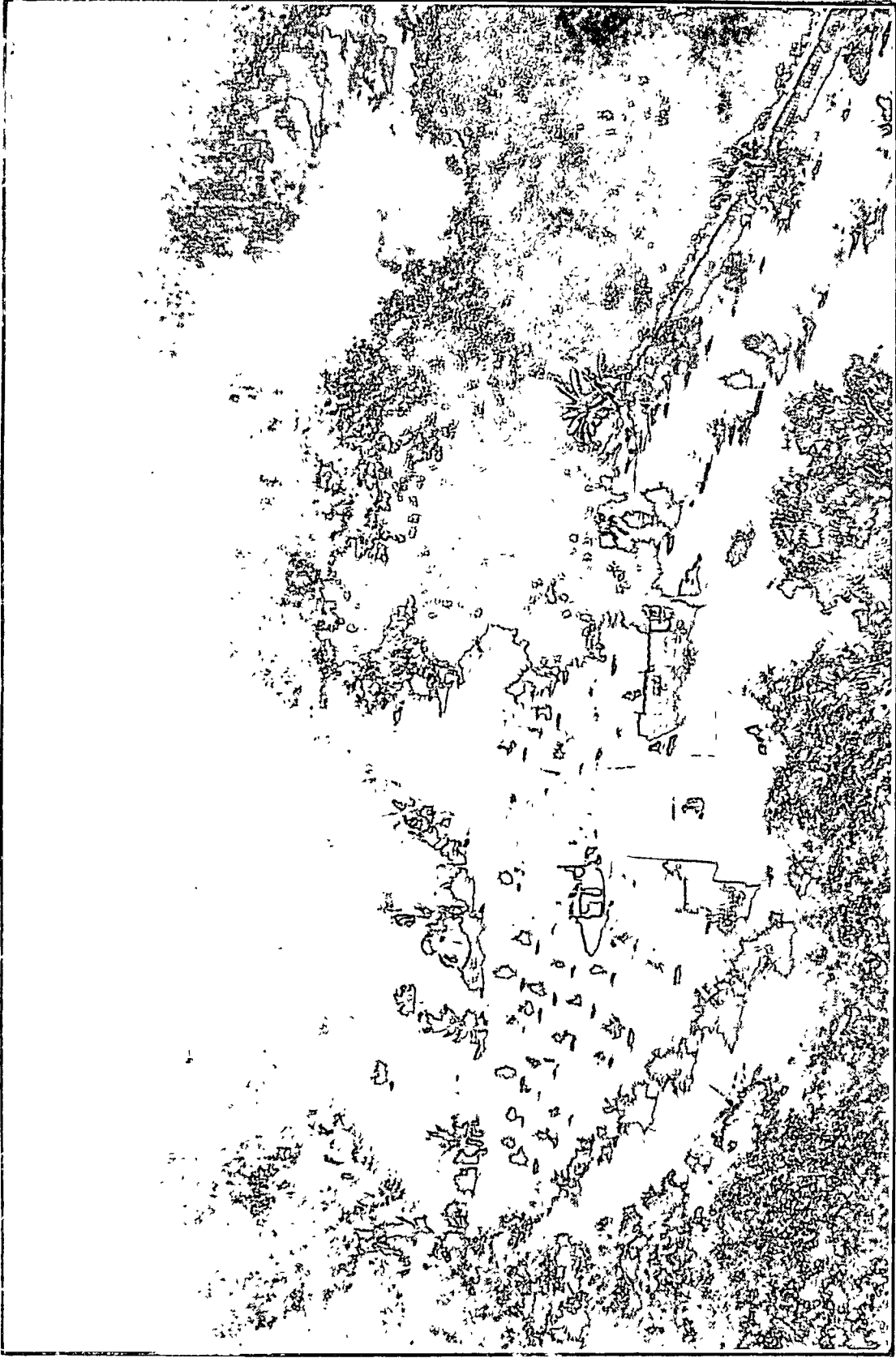
दरियाव महल बड़वाह, (इन्दौर स्टेट)

सावधान रहने की आवश्यकता प्रतीत हुई । इसी बीच में एक घटना हो गई । नाना फड़नवीस के भतीजे मोरोबा ने सचिव के पद के लिये दावा किया । इस पर मराठों में दो दल हो गये । एक दल के लोगों ने तो नाना फड़नवीस का पक्ष लिया और दूसरे ने मोरोबा का । मोरोबा ने अंगरेजों के साथ मिल कर राघोबा को पेशवाई दिलवाने का षड़यन्त्र रचना शुरू किया । पर इसका कोई फल नहीं हुआ । बम्बई सरकार अब तक राघोबा को आश्रय देती रही । जब पूना सरकार ने देखा कि उसके बराबर कहने सुनने का बम्बई की बृटिश सरकार पर कुछ भी असर नहीं होता है, तब उसने फ्रेंचों से अपना सम्बंध करना शुरू किया । इससे बम्बई की सरकार बहुत भयभीत हुई । उसने यह सब गवर्नर जनरल को लिखा । जो गवर्नर जनरल अब तक अपनी मातहत बम्बई सरकार के कार्यों का विरोध कर रहे थे वे इन सब घटनाओं का विवरण सुनकर उसका समर्थन करने लग गये । इस वक्त उन्होंने राघोबा को पेशवा बनाने की योजना स्वीकृत की और बम्बई सरकार की मदद के लिये कलकत्ता से कुछ फौज भेज दी । यह घटना ई० सन् १७७८ की है । इन फौजों के बम्बई में पहुँचने के पहले ही सरकार ने राघोबा और उसके अनुयायियों को साथ लेकर पूने पर चढ़ाई कर दी । पूने की फौजें भी मुकाबले के लिये तैयार थीं । बोरघाट पर दोनों का युद्ध शुरू हो गया । इस युद्ध में अंग्रेजों के केप्टन स्ट्यूअर्ट तथा और केप्टन भी मारे गये । फिर बृटिश सेना ज्योंही तलेगाँव के पास पहुँची कि उसे सिन्धिया और तुकोजीराव के प्रधानत्व में एक बहुत बड़ी सेना का मुकाबला करना पड़ा । अंग्रेज पीछे हटे । ई० सन् १७७९ में वे बड़गाँव पहुँचे । यहाँ मराठों का और उनका भयानक युद्ध हो गया । मराठी सेना ने अंग्रेजी सेना पर भयङ्कर आक्रमण किया । यह आक्रमण बहुत सफल हुआ । अंग्रेजी सेना ने पूरी तौर से शिकस्त खाई और उसका बड़ा नुकसान हुआ । इस पर अंग्रेजों की ओर से होम्स महोदय ने मराठों से सुलह का अनुरोध किया । यह अनुरोध स्वीकार किया गया । बारगाँव में दोनों में सन्धि हुई । इस सन्धि से अंग्रेजों ने राघोबा को पूना

सरकार का समर्पण करने का पूरा वादा किया, जिस पर उसने (बृटिश ने) थोड़े समय से अधिकार कर लिया था। इतना ही नहीं बृटिश सरकार ने अपने अधिकारी मि० होम्स और मि० फॉर्मर को बतौर जमानत (Hostage) के पेशवा सरकार को सौंपा और यह यकीन दिलाया कि शर्तें पूरी तौर से पालन की जावेंगी। इसके बाद बृटिश फौजों को बम्बई लौटने के लिये इजाजत दी गई। यहाँ यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि लौटती हुई बृटिश फौजों की रक्षा भी होल्कर और सिन्धिया की फौजों ने की थी। इस युद्ध में भी तुकोजीराव होल्कर ने जिस अद्भुत कौशल का परिचय दिया था उससे प्रसन्न होकर पूना की पेशवा सरकार ने उन्हें और भी जागीरें दी।

सन्धि के अनुसार बृटिश सरकार ने राघोबा को पूना की सरकार के सिपुर्द कर दिया। उसने सिन्धिया की देखरेख में राघोबा को झाँसी में रखने का निश्चय किया। सिन्धिया और होल्कर की फ़ौजों के पहरे में वे झाँसी भेजे जा रहे थे कि फिर किसी तरह वे रास्ते में से भाग कर सूरत के अंग्रेजों के आश्रय में चले गये। इसी बीच कर्नल गोडार्ड की अध्यक्षता में बंगाल की बृटिश सेना भी आ पहुँची। इसलिये अंग्रेजों ने बारगाँव की सन्धि को ताक में रखकर गुजरात और कोकन प्रान्त के कुछ स्थानों पर अधिकार कर लिया। इसके बाद अंग्रेजों ने पूना की ओर भी कूच किया। उन्हें पद पद पर मराठों का विरोध सहना पड़ा। आखिर ज्यों त्यों कर यह सेना बोरघाट पहुँची। यहाँ पहुँचते ही उसने तुकोजीराव होल्कर और फड़के के सञ्चालन में एक सुविशाल मराठी सेना को देखा। दोनों में भयङ्कर युद्ध शुरू हुआ और इसमें दोनों ओर का नुकसान हुआ। आखिर में मराठी सेना ने अंग्रेजी सेना को घेर लिया और उसकी रसद का मार्ग बन्द कर दिया। भयङ्कर हानि सहने के बाद किसी तरह कर्नल गोडार्ड पीछे हटने में समर्थ हुए। पनवेल के रास्ते से वे बम्बई लौट गये। अंग्रेजों ने फिर सुलह के पैगाम भेजे। ई० सन् १७८२ में अंग्रेजों और मराठों के बीच फिर सुलह हुई। इसमें अंग्रेजों ने मराठों का वह सब मुल्क वापस लौटाने का वादा किया जो अभी २ उन्होंने

उनसे ले लिया था। इसके अलावा उन्होंने राघोबा का पक्ष त्यागने की भी पुनः प्रतिज्ञा की।

ई० स० १७८३ में राघोबा पेन्शन देकर कोपरगाँव भेज दिये गये। इन्हें तुकोजीराव होल्कर ने सुरक्षितता का अभिवचन दिया था। कोपरगाँव जाने के थोड़े ही दिनों के बाद राघोबा का देहान्त हो गया। इससे पूना की पेशवा सरकार का बहुत कुछ चिन्ता-भार हलका हो गया। राघोबा के षड्-यन्त्रों के कारण उसे हमेशा सचेत रहना पड़ता था और यही कारण था कि उसे अपने मुल्क का कुछ हिस्सा देकर निजाम आदि को खुश रखना पड़ता था। अब चिन्ता-भार से मुक्त होकर पूना की पेशवा सरकार ने निजाम और मैसूर सरकार को लिखा कि उनकी तरफ चौथ का जो बकाया है उसे वे शीघ्र जमा करें। ई० स० १७८५ में यादगिरी में निजाम और पूना सर-कार के बीच सम्मेलन हुआ। पूना सरकार की ओर से नाना फड़नवीस, तुकोजीराव होल्कर और हरिपन्त प्रतिनिधि थे। इसमें परस्पर के मतभेद किसी समझौते के द्वारा दूर कर दिये गये, और साथ ही साथ टीपू सुल्तान के राज्य पर हमला करने का भी एक गुप्त समझौता हुआ। टीपू ने जब यह समाचार सुना तो उसने परस्पर का मतभेद मिटाने के लिये अपना एक वकील पूना भेजा। पर इसी समय उसने पेशवा के अधिकृत राज्य नारगन्ड और चित्तूर पर चढ़ाई करने के लिये १०,००० सेना भेज दी। टीपू ने इन दोनों राज्यों पर अधिकार कर उन्हें अपने राज्य में मिला लिया। इतना ही नहीं, उसने बेलगाँव जिले के कुछ हिस्से पर भी अधिकार कर लिया। इस पर मराठों को बड़ा गुस्सा हुआ। ई० स० १७८५ के दिसम्बर मास में नाना फड़नवीस ने टीपू पर चढ़ाई कर दी। इस चढ़ाई में तुकोजीराव होल्कर भी शामिल थे। टीपू भी तैयार होकर मुकाबले पर आ गया। दोनों में युद्ध ठन गया। टीपू ने अपनी फ़ौजों का सञ्चालन आप ही किया। अन्त में मराठों की भारी विजय हुई। उन्होंने टीपू के बादामी किले पर भी अधि-कार कर लिया। टीपू विजय से निराश हो गया। उसने मराठों के पास सुलह

का पैगाम भेजा। ई० स० १७८७ में दोनों के बीच सुलह हो गई। उसने मराठों को ६५,००००० रु० खिराज के रूप में दिये। इसके अलावा हैदरअली ने मराठों से जो जमीन ले ली थी वह भी वापस कर दी गई। मराठों को जो हक मैसूर में पहले प्राप्त थे, वे फिर कायम कर दिये गये।

इसके बाद ई० स० १७८७ से १७९० तक महाराष्ट्र में शान्ति थी। पर ई० स० १७८७ में जोधपुर, जयपुर और गुलाम कादिर की फौजों ने मिलकर लालसोट मुकाम पर महादजी सिन्धिया को शिकस्त दी। इससे उत्तर भारत में मराठों के प्रभाव को बड़ा धक्का पहुँचा। आगरा और अजमेर पर फिर राजपूतों ने अधिकार कर लिया। बूँदी ने भी मराठों के खिलाफ बलवे का झण्डा उठाया। ऐसी दशा में महादजी सिन्धिया ने अहल्याबाई और पूना की सरकार को सहायता के लिये लिखा। इस पर अहल्याबाई ने महादजी सिन्धिया को लिखा "अगर आप उत्तर भारत में जीते हुए मुल्कों में से हमें हिस्सा दें, जैसा कि मल्हारराव होल्कर के समय में तय हो चुका है, तो हम आप को सैनिक सहायता देने के लिये तैयार हैं।" ई० स० १७८८ में पूना दरबार ने सिन्धिया को सैनिक सहायता पहुँचाने के लिये तुकोजीराव और अलीबहादुर को लिखा। इसी समय उदयपुर की फ़ौजों ने मेवाड़ में होल्कर की फ़ौजों को शिकस्त दी। इस पर बदला लेने के लिये अहल्याबाई ने अपनी नई सेना भेजी। इस सेना ने उदयपुर की सेना को हराया। तुकोजीराव के पुत्र काशीराव, दादा सिन्धिया की सहायता करने के लिये, भेजे गये और तुकोजीराव उदयपुर के राणा से शर्तें तय करने के लिये नाथद्वारा गये। यहाँ उन्हें अलीबहादुर भी आकर मिल गये। इसके बाद ई० स० १७८९ में ये दोनों सिन्धिया की सहायता करने के लिये मथुरा के लिये रवाना हो गये। अब सिन्धिया की स्थिति मजबूत हो गई। इसका परिणाम यह हुआ कि उत्तर भारत में फिर मराठों की सत्ता का बोल बाला होने लगा। इस समय सिन्धिया ने होल्कर को उनके हिस्से का ९२१००० प्रति साल की आमदनी का मुल्क देना स्वीकार किया। इसमें २००००० रु० प्रति साल की
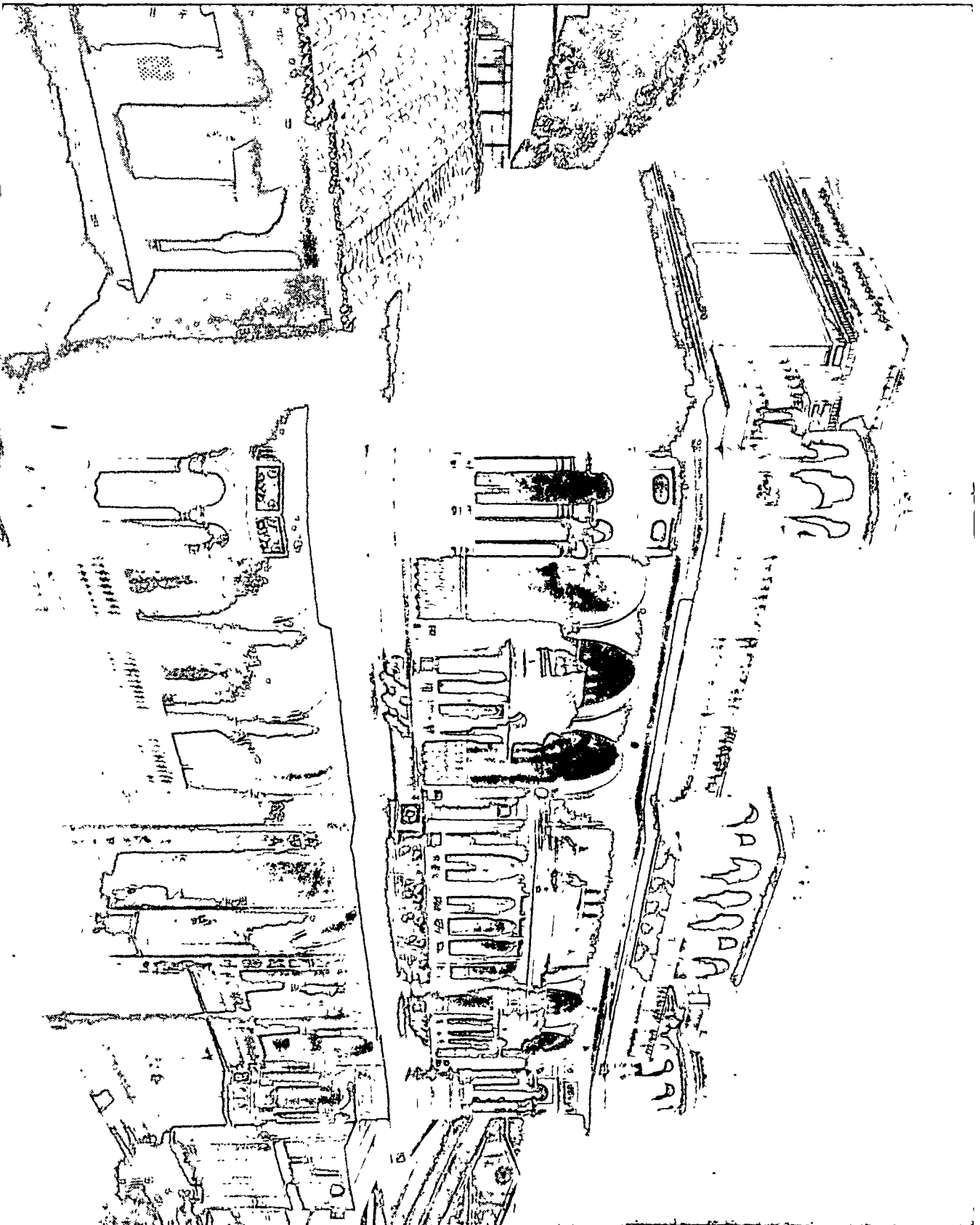
जैन मन्दिर, इन्दौर।

आमदनी का मुल्क तो तुरन्त दे देने के लिये कहा, पर इसमें सिन्धिया ने यह शर्त रखी कि इस मुल्क का सायर महसूल और इनाम का हक़ वे खुद (सिन्धिया) अपने हाथों में रखेंगे। तुकोजीराव ने यह बात अस्वीकार की। इसी बात को लेकर आगे सिन्धिया और होल्कर में अनबन हो गई ।

ई० स० १७९० में सिन्धिया सतवास थाना के मार्ग से होकर पूना जा रहे थे। उक्त थाना होल्कर राज्य में पड़ता था। इस पर सिन्धिया ने अधिकार कर लिया।

ई० स० १७९२ के बाद सिन्धिया पूने ही में रहे। उन्होंने वहाँ तुकोजी-राव और अलीबहादुर को मालवा से बुला लेने की कोशिश की। इसका कारण यह था कि सिन्धिया हिन्दुस्थान पर अपना अबाधित अधिकार चाहते थे। पर ई० स० १७९४ के फरवरी मास में वे स्वर्गवासी हो गये। कहने की आवश्यकता नहीं कि वे अपने पुत्र दौलतराव सिन्धिया के लिये एक सुविशाल राज्य छोड़ गये थे।

इसी अर्से में निजाम और पेशवा में फिर विरोध के बादल उमड़ने लगे। पेशवा ने तुकोजीराव को अपनी फ़ौजों सहित निमन्त्रित किया। पेशवा निज़ाम पर चढ़ाई करने ही वाले थे कि तुकोजीराव अपनी सेना सहित पूना पहुँच गये। खरड़ा मुकाम पर पेशवा और निजाम की सेना का मुकाबला हुआ। निजाम खुद अपनी सेनाका सञ्चालन कर रहे थे। भयङ्कर युद्ध हुआ और इसमें निजाम की पूर्ण पराजय हुई। निजाम ने अपना बहुत कुछ मुल्क और धन देकर मराठों से सुलह कर ली।

ई० स० १७९६ के अगस्त मास में महेश्वर मुकाम पर देवी अहिल्याबाई का परलोकवास हुआ। इसके दो मास बाद ही पूना में ऊपर की मंजिल से गिर जाने के कारण पेशवा का भी शरीरान्त हो गया। अब पेशवा के घर में फिर गद्दी-नशीनी के लिये झगड़ा शुरू हुआ। पहले तो सरदारों ने यह चाहा कि बाजीराव को एक तरफ रख कर वह लड़का गद्दी पर बिठाया जाय जिसे स्वर्गीय पेशवा की विधवा रानी गोद ले। पर अन्त में पटवर्द्धन के घराने

को छोड़ कर सब ने बाजीराव ही का पक्ष समर्थन किया और वे ई० स० १७९६ के दिसम्बर मास में गद्दी पर बिठा दिये गये।

तुकोजीराव पूना में बैठे हुए इन सब घटनाओं को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से देख रहे थे। पर इस समय उनका स्वास्थ्य दिन ब दिन खराब होता जा रहा था। आखिर ई० स० १७९७ की १५ अगस्त को यह महान् राजनीतिज्ञ और वीर इस असार संसार को छोड़ कर परलोकवासी हुआ। तुकोजीराव के चार पुत्र थे। इनमें से दो औरस (Legitimate) और दो अनौरस थे। अर्थात् दो असली रानी से थे और दो रखेली से। औरस पुत्रों का नाम काशीराव और मल्हाराव था। अनौरस पुत्रों का नाम यशवन्तराव और विठोजी था। तुकोजीराव की इच्छानुसार पेशवा ने काशीराव का उत्तराधिकारित्व स्वीकार कर लिया। इसके अतिरिक्त मृत्यु के पहले तुकोजीराव ने बड़ी बुद्धिमानी के साथ काशीराव और मल्हारराव के बीचका मत-भेद भी मिटा दिया था। पर इसका कोई फल नहीं हुआ। काशीराव में शासन करने की क्षमता नहीं थी। बुद्धि से भी वे बड़े कमज़ोर थे। इसके विपरीत मल्हारराव में वे सब गुण थे जो एक योग्य शासक और सैनिक नेता में होने चाहियें। इस वक्त तक सिन्धिया और होल्कर का मतभेद ज्यों का त्यों बना हुआ था। होल्कर घराने के कई लोग जैसे यशवन्तराव, विठोजी, हरीबा आदि मल्हारराव को गद्दी पर बिठाना चाहते थे। सिन्धिया ने काशीराव का पक्ष इस शर्त पर ग्रहण किया कि उन्हें सिन्धिया पर का वह कर्ज छोड़ना होगा जो वे (होल्कर) अहिल्याबाई के समय से उनसे (सिन्धिया से) मांगते हैं। यह कर्ज १६ लाख रुपया था। मल्हारराव को, जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, पेशवा और नाना फड़नवीस की सहायता थी। पर इस समय सिन्धिया ही सर्व-सत्ताधारी थे। उनकी ताकत बहुत बढ़ी हुई थी। ई० स० १७९७ के सितम्बर मासकी १४ तारीख को सिन्धिया ने मल्हारराव को पकड़ने के लिये अपनी फौज रवाना की। इस सेना ने होल्कर राज्य के कुछ गावों पर अधिकार कर लिया। आखिर मल्हारराव के आदमियों और सिन्धिया की

श्रीमान् महाराज यशवन्तराव होल्कर, इन्दौर

फ़ौज का मुकाबला हो गया। छोटीसी लड़ाई हुई। इसमें मल्हारराव और उनके कुछ साथी मारे गये। इस समय यशवन्तराव, हरीबा और बिठोजी किसी तरह वहां से निकल भगे। मल्हारराव की विधवा पत्नी और यशवन्तराव की भीमाबाई नामक पुत्री सिन्धिया की हिरासत में आ गई। यशवन्तराव और हरीबा नागपुर चले गये। वहाँ के भोंसला राजा ने उन्हें गिरफ्तार कर कैद कर लिया। यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह सब कार्रवाई सिन्धिया के इशारे पर की गई थी। बिठोजी ने पेशवा के राज्य में गड़बड़ मचाना शुरू किया था। आखिर वें भी सिन्धिया के द्वारा गिरफ्तार कर लिये गये। बिठोजी को पेशवा ने मृत्युदण्ड दिया। पेशवा का उद्देश चाहे जो कुछ हो पर यह कहना पड़ेगा कि वे सिन्धिया के इशारे पर ही नाच रहे थे। वे उनके हाथ की कठपुतली बने हुए थे। सिन्धिया का बड़ा जोर था। यहाँ तक कि ई० स० १७९७ के दिसम्बर मास में नाना फड़नवीस तक को सिन्धिया ने कैद कर लिया था। ई० स० १६९७ में तो सिन्धिया ने पेशवा के भाई अमृत राव का डेरा तक लूट लिया था।
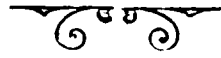
यशवन्तराव
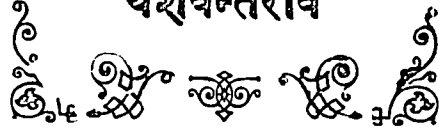
यशवन्तराव एक अर्से तक नागपुर में कैद रहे। आखिर वे किसी तरह वहाँ से खानदेश और मालवा की तरफ़ भाग गये। कुछ समय तक मालवा में वे इधर उधर घूमते रहे। घूमते २ ये धार पहुँचे। यहाँ ये क्या देखते हैं कि धार के तत्कालीन महाराज अनन्दराव पर वहाँ का दीवान रंगराव उदेकर पिंडारियों की सहायता से चढ़ाई करने की तैयारी कर रहा है। वह खुद महाराज को हटाकर वहाँ का राजा बनना चाहता है। यशवन्तराव ने महाराज

का पक्ष ग्रहण किया। महाराजा और उनके दीवान की सेना में जो युद्ध हुआ उसमें यशावन्तराव की वीरता और बुद्धिमत्ता के कारण महाराज की सेना ही विजयी हुई। दूसरे शब्दों में यों कहिये कि महाराज की डूबती हुई नाव वीरवर यशवन्तराव ने बचा ली। पर वीर यशवन्तराव शीघ्र ही धार छोड़ने के लिये मजबूर हुये; कारण कि सिन्धिया ने धार के राजा को इस सम्बन्ध में बहुत डराया धमकाया था। इसके बाद यशवन्तराव देपालपुर की ओर रवाना हुए। वहाँ उन्होंने काशीराव की फौज को हराकर उसपर अधिकार कर लिया। इस विजय से यशवन्तराव की कीर्ति बहुत फैल गई। यशवन्तराव ने—यह देख कर कि सिन्धिया काशीराव को हाथ की कठपुतली बना कर होल्कर राज्यको हड़प करते जा रहे हैं और वे काशीराव के प्रति बड़ी दुश्मनी के भाव रखते हैं—सिन्धिया के मुल्क को बरबाद करना शुरू किया। उन्होंने मल्हारराव के पुत्र खण्डेराव के नाम पर अपना बहुत कुछ मुल्क भी सिन्धिया से छीन लिया। यशवन्तराव की अपूर्व वीरता और असाधारण बुद्धिमत्ता तथा समय-सूचकता को देख कर लोग मोहित होने लगे। सैकड़ों इनके अनुयायी होने लगे। इतना ही नहीं, प्रत्युत् प्रख्यात् पिण्डारी नेता अमीरखाँ आदि ने भी उनकी मातहती में काम करना स्वीकार किया।

यशवन्तराव के पास धन नहीं था। अतएव उन्होंने सिन्धिया के मुल्क को लूटना शुरू किया। कसरावद मुकाम पर उन्होंने काशीराव की सेना पर फिर विजय प्राप्त की। सतवास मुकाम पर फिर तीसरी विजय हुई। ई० स० १८०१ में उज्जैन और नर्मदा के आस पास यशवन्तराव और सिन्धिया की फौजों में कई मुठ भेड़ें हुई। इनमें प्रायः यशवन्तराव ही की विजय हुई। ई० स० १८०१ में उज्जैन मुकाम पर यशवन्तराव ने सिन्धिया की विशाल फ़ौजों पर भारी विजय प्राप्त की। इस समय सिन्धिया की फ़ौजों का सञ्चालन यूरोप के सैनिक-विद्या-विशारद कर रहे थे। उनके पास नये यूरोपियन ढाँचे का बढ़िया तोपखाना भी था। यशवन्तराव ने सिन्धिया की फौज से इस तोपखाने की बहुत सी तोपें भी छीन लीं। उज्जैन की प्राचीनता और

सर जॉन मालकम और तांतिया जोग
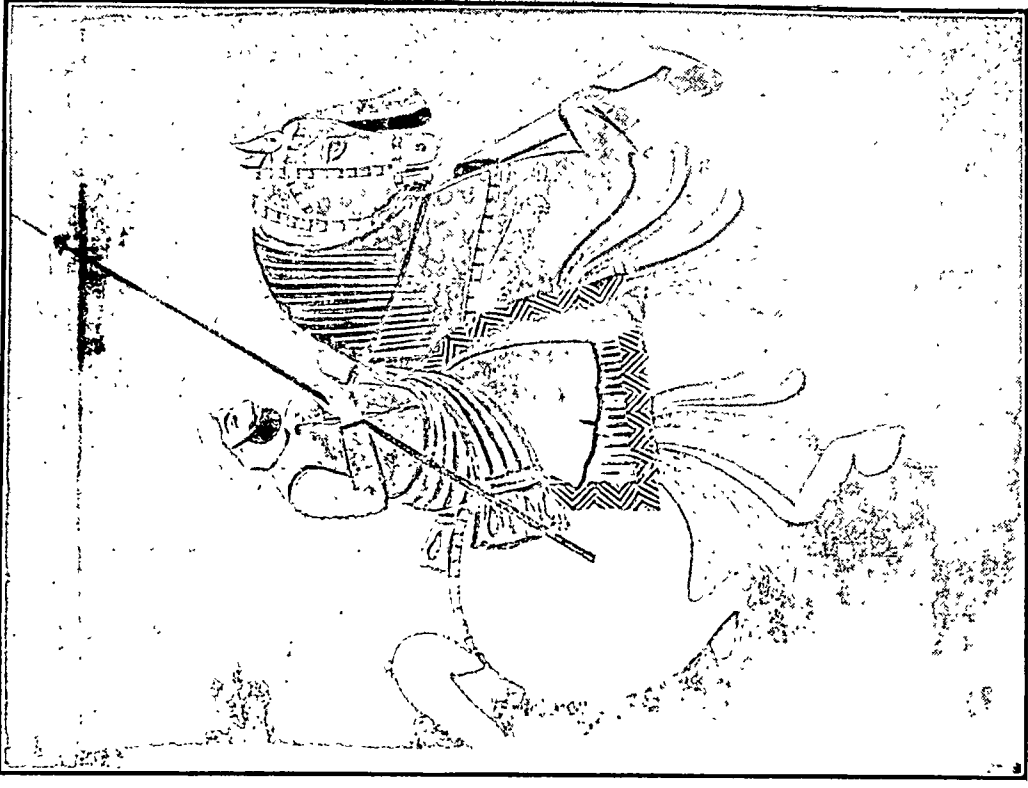
पिण्डारी नेता अमीर खाँ

पवित्रता का खयाल कर यशवन्तराव ने जान बूझ कर इसे बर्बाद नहीं किया।

सिन्धिया ने जब यह खबर सुनी तो उन्हें बड़ा गुस्सा आया। बदला लेने के विचार उनकी रगरग में दौड़ने लगे। उन्होंने इन्दौर की ओर एक बड़ी सुसज्जित सेना भेजी। यशवन्तराव भी मुकाबले पर आ डटे। दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। आखिर इस युद्ध में यशवन्तराव हार गये। फिर क्या था? महाराज सिन्धिया के आदमियों ने इन्दौर को बरबाद करना शुरू किया। इन्दौर का राजमहल ज़मीदस्त कर दिया गया। इन्दौर बुरी तरह लूटा गया। इससे यशवन्तराव को फिर सँभलने में कुछ समय लगा। पर थोड़े से सँभल जाने के बाद ही यशवन्तराव ने सिन्धिया का मुल्क बर्बाद करना और लूटना शुरू किया। सिन्धिया तंग आगये। उन्होंने यशवन्तराव को कहलवाया कि अगर आप मेरे राज्य में लूटमार और बर्बादी का काम छोड़ दें तो आपका लिया हुआ मुल्क और मल्हारराव के लड़के को हम मुक्त कर देंगे। पर यशवन्तराव उन अधिकारों के लिये ज़ोर देते रहे जो उन्हें प्रथम मल्हारराव होल्कर के समय में प्राप्त थे। सिन्धिया ने यह बात स्वीकार नहीं की। इससे यशवन्तराव होल्कर अपना काम दूने उत्साह से करने लगे।

यशवन्तराव पेशवा से भी मन ही मन बुरा मानते थे क्योंकि पेशवा ने अन्याय पूर्वक उनके भाई विठोजी को मृत्यु-दण्ड दिया था। इसके अतिरिक्त होल्कर की खानदेश स्थित जागीर को जब्त करने के लिये भी उन्होंने (पेशवा ने) सेना भेजी थी। यशवन्तराव ने पहले तो पेशवा से मेलजोल करने का प्रयत्न किया पर इसमें सफलता न होती देख उन्होंने अन्त में तलवार से काम लेने का निश्चय किया। ई० स० १८०२ में उन्होंने पेशवा की सेना को कई शिकस्तें दीं। इसी साल उन्होंने सिन्धिया और पेशवा के राज्य में प्रवेश कर लोगों से धन और वस्तुएं लीं। यशवन्तराव ने पेशवा को लिखा कि अगर निम्नलिखित शर्तें स्वीकार की जावें तो बर्बादी का यह सब काम बन्द कर दिया जा सकता है। शर्तें यों हैं:—

(१) सिन्धिया मल्हारराव के पुत्र को मुक्त कर दें।

(२) मल्हारराव का पुत्र खण्डेराव इन्दौर-राज्य का राजा स्वीकृत किया जाय।

(३) सिन्धिया ने होल्कर के जो मुल्क ले लिये हैं उन्हें वे वापस लौटा दें।

(४) महादजी सिन्धिया के समय में उत्तर भारतवर्ष का मुल्क बाँटने के लिये जो इकरारनामा हुआ था, सिन्धिया उसका पालन करें।

हम ऊपर कह चुके हैं कि बेचारे पेशवा शक्तिहीन थे। सारी सत्ता एक तरह से महादजी सिन्धिया के हाथ में थी। वे बिना सिन्धिया की स्वीकृति के इन शर्तों को मंजूर नहीं कर सकते थे। सिन्धिया ने पहले ही ये शर्तें नामंजूर कर दी थीं। अतएव समझौते की कोई आशा न देख यशवन्तराव ने इन सब बातों का फैसला तलवार से करना चाहा। उन्होंने सेना सहित दक्षिण की ओर कूच किया। ई० स० १८०२ में भयङ्कर युद्ध हुआ। इसमें एक ओर तो अकेले यशवन्तराव और उनकी सेना थी और दूसरी ओर सिन्धिया और पेशवा की संयुक्त सेनाएँ। इसमें यशवन्तराव को भारी और निश्चयात्मक विजय प्राप्त हुई। पेशवा अपनी राजधानी छोड़ कर भागे। उन्होंने अंग्रेजों का आश्रय ग्रहण किया। अब पूने के कर्ता-धर्ता यशवन्तराव बन गये। यशवन्तराव ने पेशवा को लौट आने के लिये लिखा, पर उन्होंने यशवन्तराव की प्रामाणिकता में विश्वास नहीं किया। फिर यशवन्तराव ने अमृतराव को पेशवा की गद्दी पर बैठाने का विचार किया पर अमृतराव ने यह बात स्वीकार करने में हिचकिचाहट प्रकट की। इसी बीच पेशवा अंग्रेजों से मेलजोल करने के लिये लिखा पढ़ी कर रहे थे। आखिर सन् १८०२ के दिसम्बर मास में पेशवा और अंग्रेजों के बीच सन्धि हो गई। यह सन्धि "बेसीन की सन्धि" के नाम से मशहूर है। इस सन्धि के कारण पेशवा को अंग्रेजों की सैनिक सहायता मिल गई। इस सेना की सहायता से बाजीराव पूने में प्रवेश करने में समर्थ हुए।

बाजीराव पेशवा की यह कार्रवाई यशवन्तराव को तो क्या, पर उनके

खास हिमायती सिन्धिया और भोंसला को भी पसन्द न आई; क्योंकि इसमें उन्होंने मराठा साम्राज्य के नाश का दृश्य देखा। वे नाराज़ होकर पेशवा से अलग हो गये। इसके बाद सिन्धिया और भोंसला ने मिल कर अंग्रेजों के ख़िलाफ़ अपना गुट बनाना शुरू किया। यशवन्तराव को भी उन्होंने अपने में सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रित किया। उन्हें (यशवन्तराव को) यह भी वचन दिया गया कि आपका मुल्क, जिसके लिये आप दावा कर रहे हैं आप को लौटा दिया जायगा और आपकी पुत्री भीमाबाई भी आपके सिपुर्द कर दी जायगी। भोंसला ने होल्कर को ये उपरोक्त शर्तें पूरी करने के लिये अभिवचन दिया और साथ ही में उनका कुछ मुल्क भी लौटा दिया। पर उत्तर भारत के मुल्क का हिस्सा उन्हें वास्तविक रूप से अब तक नहीं दिया गया था। इससे होल्कर को पूर्ण संतोष नहीं हुआ। आखिर अंग्रेज और सिन्धिया-भोंसले में युद्ध हो गया। इसमें यशवन्तराव निरपेक्ष रहे। इस युद्ध में सिन्धिया और भोंसले की पराजय हुई। आखिर इन्हें अपना बहुत सा मुल्क देकर अंग्रेजों से सन्धि करनी पड़ी।

इन घटनाओं से मराठा साम्राज्य का तो अन्तिम दृश्य उपस्थित होगया, पर सिन्धिया और भोंसले से यशवन्तराव की स्थिति ऊँची होगई। अब महाराष्ट्र में यशवन्तराव की तूती जोर से बजने लगी। अंग्रेज लोग इन्हें ही अपना प्रधान प्रतिद्वन्द्वी समझने लगे। दिल्ली के नामधारी मुग़ल सम्राट् ने भी इन्हें "राजराजेश्वर अलीजा बहादुर" की उपाधि प्रदान की। भारतीय राजाओं में ये विशेष सम्मानित समझे जाने लगे। बृटिश सरकार ने पहले तो इनसे छेड़छाड़ करना मुनासिब न समझा, पर आखिर में कुछ ऐसे सवाल आ पड़े जिनसे इनके साथ अनबन हो जाना अनिवार्य था। क्योंकि बृटिश सरकार ने राजपूत राजाओं से सन्धि कर उनसे मैत्री का सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उनमें से कई राजा यशवन्तराव को चौथ देते थे। यशवन्तराव होल्कर अपने अधिकारों का उपयोग करने के लिये-चौथ वसूल करने के लिये-राजपूताना गये।

बृटिश अफसरों ने उन्हें ऐसा करने से मना किया। उन्हें (यशवन्तराव को) कहा गया कि इन सब राजपूत राजाओं की हमारे साथ मैत्री हो गई है। आप इनसे छेड़छाड़ न कीजिये। इसके अलावा उन्होंने यह भी सूचित किया कि इन्दौर के राजा काशीराव हैं, इसमें आपका कोई सम्बन्ध नहीं। फिर भी इनमें और बृटिश अधिकारियों में लिखा-पढ़ी चली। होल्कर ने निम्नलिखित शर्तें उपस्थित कीं—

(१) पहले की तरह होल्कर खिराज वसूल करते रहेंगे।

(२) दुआब पर्गना और बुन्देलखण्ड के एक पर्गने के विषय में होल्कर का जो दावा चला आया है, वह स्वीकृत किया जावे।

(३) हुराणिया का देश जो पहले होल्कर की अधीनता में था, वह वापस लौटाया जावे।

(४) इस समय होल्कर के अधिकार में जो मुल्क है उसकी सुरक्षितता का वचन दिया जावे।

ये सब शर्तें बृटिश सरकार ने स्वीकार नहीं की। मेलजोल के लिये जो लिखा-पढ़ी हो रही थी उसका कोई फल नहीं हुआ। यशवन्तराव से कहा गया कि वे अपने राज्य में लौट जायँ। इस समय यशवन्तराव बृटिश के खिलाफ़ गुट बनाने के लिये सिक्ख और बुन्देलखण्ड के राजाओं से लिखा पढ़ी कर रहे थे। उन्होंने इसी सम्बन्ध में काबुल, भरतपुर और सिन्धिया महाराज को भी लिखा था। ई० सन् १८०४ में अंग्रेजों ने होल्कर के खिलाफ़ लड़ाई छेड़ने का निश्चय किया। इस समय वीरवर यशवन्तराव होल्कर जयपुर राज्य में थे। यहाँ अंग्रेजों ने एक बड़ी कूट-नीति की चाल चली। उन्होंने यह आश्वासन देकर सिन्धिया को अपनी ओर मिला लिया कि अगर होल्कर आत्म-समर्पण कर देगा तो उसे और काशीराव को बृटिश के आश्रय में कुछ जागीर देकर उसका सारा मुल्क आपको दे दिया जायगा। इस प्रलोभन से सिन्धिया न बच सके। वे यशवन्तराव को छोड़ कर अंग्रेजों की ओर जा मिले।

ई० सन् १८०४-५ में यशवन्तराव और अंग्रेजों के बीच कई लड़ाइयाँ हुईं। सेनापति लुकान की अधीनस्थ बृटिश सेना का पराजय हुआ। मुकन्दरा

लाल-काठा, इन्दौर ।
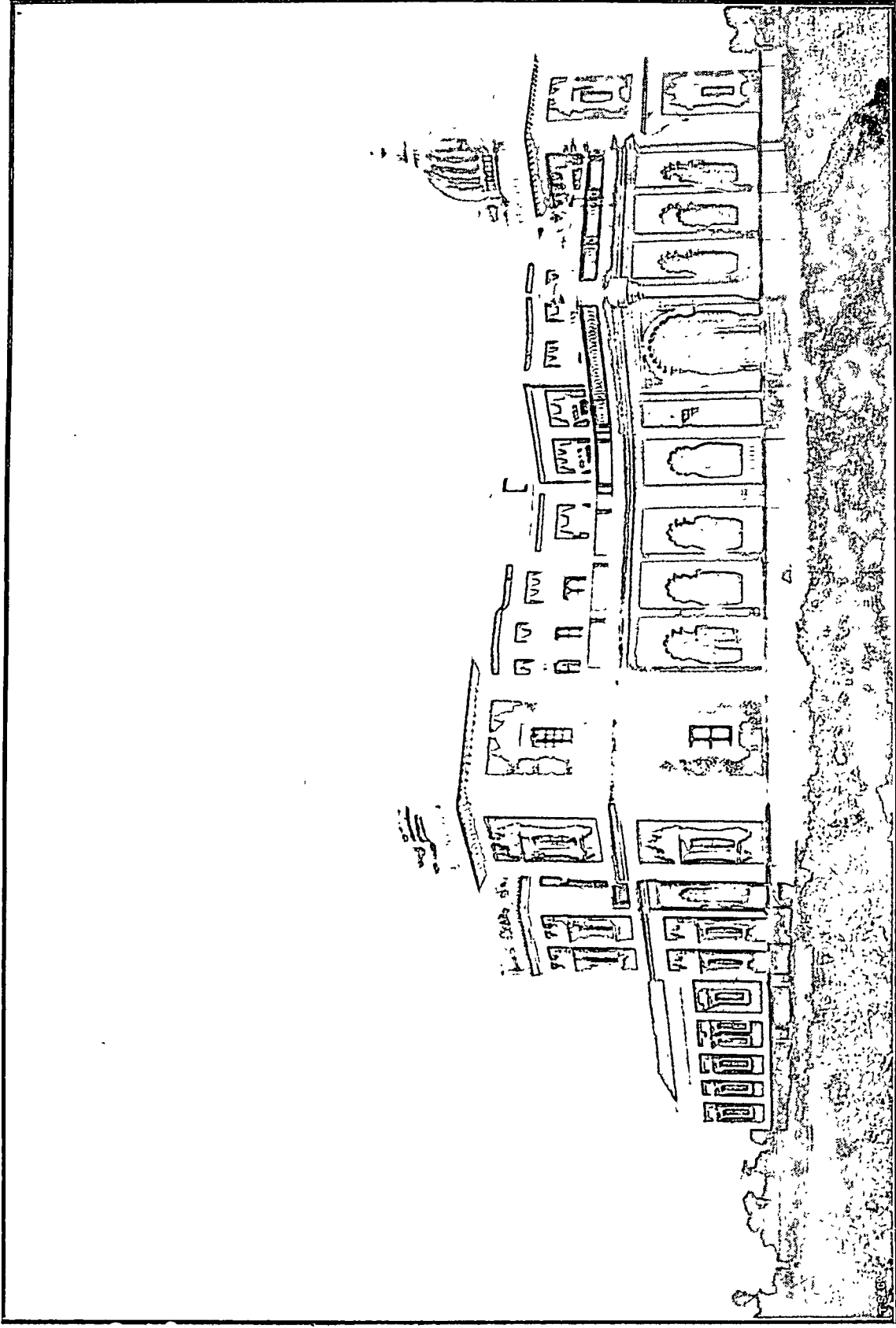
के पास कर्नल मानसून की फ़ौजें—जिनमें जयपुर, कोटा और सिन्धिया की फौजें भी शामिल थीं—बुरी तरह हारीं। ये होल्कर के सामने से बेतहाश भागीं। हिंगलाजगढ़ का किला होल्कर ने वापस ले लिया। मानसून की फौजों का होल्कर की फौजों ने पीछा किया और उनकी बुरी दशा कर डाली। मानसून के सैकड़ों आदमी मारे गये और साथ ही उनका सब असबाब भी छीन लिया गया। बनास नदी और सीकरी के पास भी बृटिश और होल्कर की फौजों का मुकाबला हुआ। इसमें किसी की हार जीत प्रकट नहीं हुई। यशवन्तराव ने मानसून की फ़ौजों पर जो अपूर्व विजय प्राप्त की उससे उनकी सैनिक कीर्ति और भी बढ़ गई थी। उनका भारतीय राजा महाराजाओं पर बहुत दबदबा छा गया था। पश्चात् यशवन्तराव ने मथुरा की ओर कूच किया। वहां भी बृटिश फौजों के साथ इनकी लड़ाई हुई, पर कोई फल प्रकट नहीं हुआ। फिर उन्होंने वृन्दावन की ओर कूच किया। इसी समय अंग्रेज सेनापति लॉर्ड लेक मथुरा आ पहुँचे। फिर दोनों सेनाओं में मुठभेड़ हो गई और यह कई दिन तक चलती रही। बेचारे लॉर्ड लेक दिल्ली की ओर पीछे हटने लगे। होल्कर की फ़ौजों ने उन्हें इतना तंग किया कि उनको पीछे हटना भी मुश्किल हो गया। वे ज्यों त्यों कर बड़ी मुश्किल से दिल्ली पहुँचे। इसके बाद होल्कर की फ़ौज ने दिल्ली के किले पर आक्रमण किया पर अंग्रेजों ने उसे विफल कर दिया। इसके बाद यशवन्तराव शामली और फ़रुर्खाबाद पहुँचे यहां से उन्होंने भरतपुर के राजा से लिखा-पढ़ी शुरू की और उनसे उन्हें अच्छी सहायता भी मिल गई। बृटिश फ़ौज भी डिग आ पहुंची। यहां पर युद्ध हुआ और उसमें अंग्रेजों को सफलता मिली। उन्होंने डिग के किले पर अधिकार कर लिया। होल्कर पीछे हटकर भरतपुर चले गये। बृटिश फ़ौज भी वहां आ धमकी। उसने भरतपुर के किले पर सात हमले किये पर उसे सफलता न मिली। इस ओर से प्रख्यात पिण्डारी नेता अमीरखां बृटिश मुल्क को बरबाद करने के लिये भेजा गया।

ई० सन् १८०५ के मार्च में सिन्धिया ने होल्कर और अंग्रेजों के बीच समझौता करवाने का प्रयत्न किया, पर इसमें उन्हें सफलता न मिली। अंग्रेजों के

साथ तो होल्कर का मेल हुआ ही नहीं पर इसी साल मई में सिन्धिया के साथ इनका मेल हो गया। ये दोनों अपनी फ़ौजों सहित सबलगढ़ में आ मिले। यशवन्तराव ने पेशवा, महाराजा रणजीत सिंह, भोंसला और अन्य कई राजा महाराजाओं को अंग्रेजों के ख़िलाफ खड़े होने के लिये लिखा। जयपुर के राजा, भोंसला और महाराजा रणजीत सिंह ने यशवन्तराव के अनुरोध को स्वीकार किया। पर इसी समय अंग्रेज एक राजनैतिक पैंतरा चले। उन्होंने सिन्धिया को अपनी ओर मिलाने के लिये उन्हें गवालियर और गोहद के किले, दस लाख रुपया नक्द और होल्कर राज्य का कुछ अंश देने का प्रलोभन दिया। पहले तो सिन्धिया ने इस प्रलोभन से मुँह मोड़ लिया पर वे आखिर में होल्कर से अलग हो गये। ई० स० १८०५ की सन्धि के अनुसार उन्हें पुरस्कार भी मिल गया। ई० स० १८०५ में भरतपुर के राजा को भी अंग्रेजों से मिल जाने के लिये प्रलोभन दिया गया।

ई० सन् १८०५ के सितम्बर में यशवन्तराव जयपुर राज्य में और अक्टूबर में नारनोल और भिन्द होते हुए पटियाला पहुँचे। पहले तो कई सिक्ख राजाओं ने यशवन्तराव को सहायता देने का अभिवचन दिया था पर ठीक समय पर सब मुकर गये। इसका कारण यह था कि बृटिश अधिकारियों ने कई प्रकार के प्रलोभन देकर इन्हें अपनी ओर मिला लिया था। जब यशवन्तराव ने देखा कि बृटिश सेना उन्हें घेरना चाहती है तो वे बड़ी बुद्धिमानी के साथ ऐसे स्थान पर हट गये जहाँ से अंग्रेजों का मुकाबला सुगमता से किया जा सके और उन्हें सिक्ख राजाओं की भी सहायता मिल जाय। कहने की आवश्यकता नहीं कि अंग्रेजों के और यशवन्तराव के बीच छोटी मोटी कई लड़ाइयाँ हुईं, पर इस वक्त दोनों दल थक गये थे। दोनों की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। आखिर ई० सन् १८०५ के दिसम्बर में दोनों के बीच सन्धि हो गई। इसके दो मास बाद उक्त सन्धि में कुछ ऐसे सुधार किये गये जिनसे यशवन्तराव को कुछ अधिक सन्तोष हो सके।

ई० सन् १८०२ और १८०५ की लड़ाइयों में वीरवर यशवन्तराव

होल्कर बिलकुल स्वतन्त्र सत्ताधारी हो गये। उन्होंने तुकोजीराव महाराज के समय में, होल्कर राज्य को जो हक प्राप्त थे वे सब फिर से प्राप्त कर लिये। जयपुर, उदयपुर, कोटा, बूंदी और अन्य राजपूत रियासतों पर भी उनके पूर्वोपार्जित अधिकार फिर से कायम हो गये। भारतवर्ष के अन्य राजाओं में भी इनका दबदबा छा गया।

यशवन्तराव धीरे २ कूच करते हुए पंजाब से लौट गये। अब भी वे अंग्रेजों को दुआबा के लिये लिखते रहे। पर उन्हें इस कार्य में सफलता न हुई। राजपूताने में लौट कर उन्होंने उदयपुर और जयपुर से खिराज वसूल किया। फिर उन्होंने जोधपुर को सहायता देकर उस अहसान का बदला चुकाया जो जोधपुर राज्य ने एक युद्ध के समय उनके कुटुम्ब को आश्रय देकर किया था।

निरन्तर युद्ध में लगे रहने के कारण-जैसा हम ऊपर कह चुके हैं-उनकी आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। फ़ौजों को वक्त पर तनख्वाह न मिलने से उनमें बगावत फैल गई थी। एक वक्त तो (१८०६) उन्हें अपनी बागी फ़ौज को उसकी तनख्वाह की जमानत के बतौर अपने भतीजे खण्डेराव को सिपुर्द करना पड़ा था। खण्डेराव का शाहपुरा मुकाम पर हैजे के कारण देहान्त हो गया। इसके बाद यशवन्तराव होल्कर-राज्य के भानपुर ग्राम में आ गये।

भानपुर आकर ये अपनी सेना और तोपखाने का यूरोपीय पद्धति के अनुसार संगठन करने लगे। वे तोपें भी ढलवाने लगे। उसी समय उन्हें उन्माद रोग ने आ घेरा और उसी से ई० सन् १८११ में भानपुर मुकाम पर इनका स्वर्गवास हो गया। आपके शव-दहन-स्थान पर भानपुर में एक विशाल छत्री बनी हुई है।

मल्हारराव (द्वितीय)

महाराज यशवन्तराव के बाद उनकी पत्नी तुलसीबाई—जिन्होंने महाराजा की विक्षिप्त अवस्था में राज्य का शासन किया था—रिजेन्ट बनाई गई। उस समय महाराजा के उत्तराधिकारी मल्हारराव की उम्र केवल चार वर्ष की थी। सब लोगों ने उनके उत्तराधिकारित्व को स्वीकार किया। इन बाल-महाराजा के समय कुछ सैनिक अधिकारियों की बगावत के कारण राज्य में बड़ी अशान्ति और गड़बड़ी फैली हुई थी। आधीनस्थ इलाकेदार इस समय स्वाधीन होने लग गए थे। भील लोग जंगलों से निकल २ कर उत्पात मचाने लग गए थे। तनख्वाह के लिये सेना अलग चिल्ला रही थी। तुलसीबाई और मल्हारराव के खिलाफ़ साजिशें होने लगीं। यह अशान्ति और गड़बड़ इतनी फैली हुई थी कि ई० सन् १८१५ में तुलसीबाई को गंगराड़ के किले में आश्रय लेना पड़ा। इसके बाद दीवान गनपतराव तुलसीबाई के हर एक काम पर नज़र रखने लगे। बाग़ी फौज के नायक राज्य की शान्ति स्थापना में बराबर बाधा डालते रहे। इन सब बातों से तङ्ग आकर तुलसीबाई को गंगराड़ का किला छोड़ कर आलोट के किले में आश्रय लेना पड़ा। इसी समय अर्थात् ई० सन् १८१७ में पेशवा ने अंग्रेजों से युद्ध विघोषित कर दिया। होल्कर सरकार के कुछ बाग़ी सेना-नायक इस समय पेशवा से मिल गये। तुलसीबाई अंग्रेजों से सुलह रखना चाहती थी, अतएव वे इस बाग़ी फ़ौज द्वारा मार डाली गईं। उनके सचिव भी कैद कर दिये गये। इसी बाग़ी फौज ने बाल महाराज को भी पकड़ कर इसलिये अपने कब्जे में कर लिया कि वह उनके नाम पर हुकूमत करे। इस समय वह अंग्रेजी सेना जो पिण्डारियों को दबाने के लिये मध्य-भारत में घुसी थी
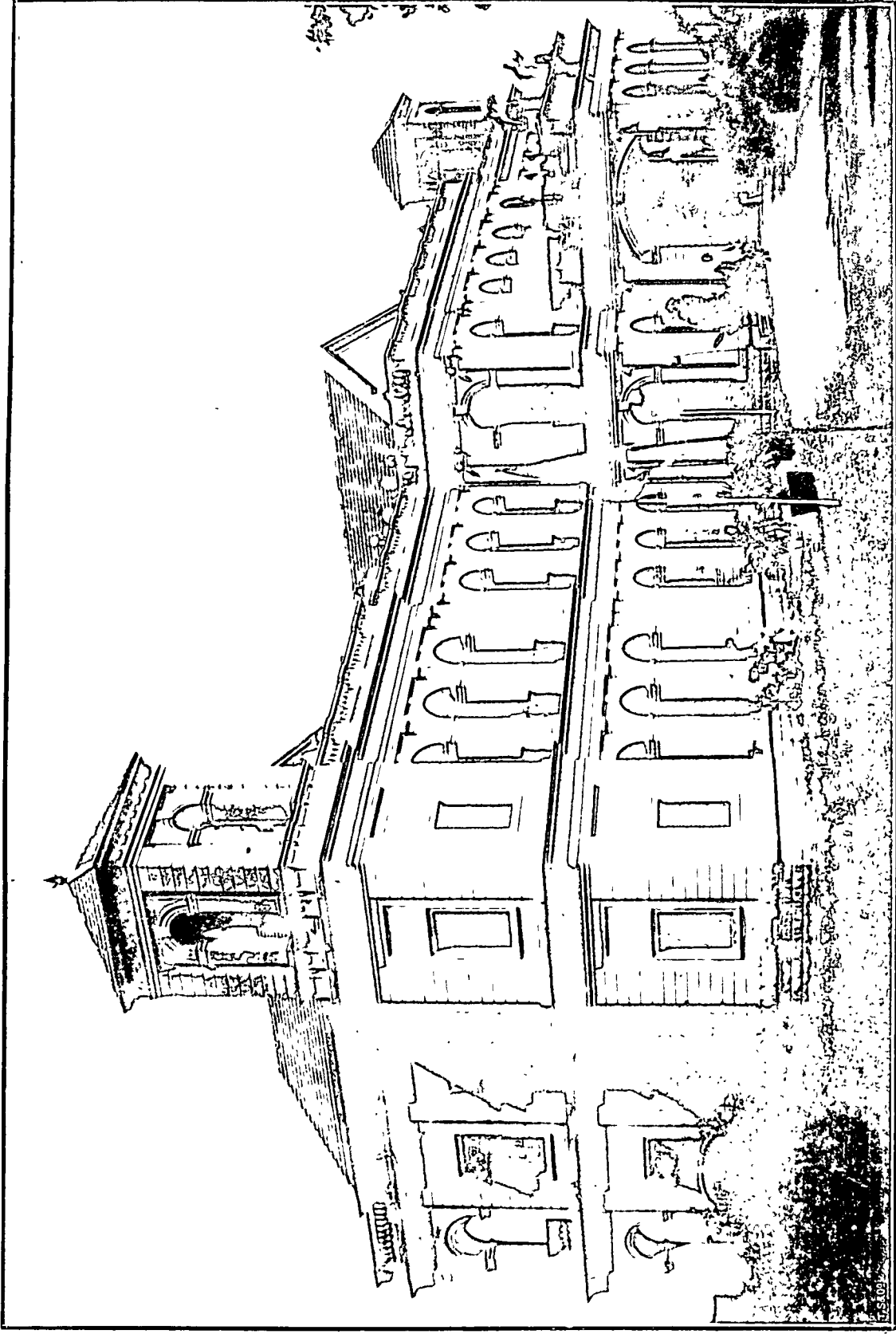
होलकर कालेज इन्दौर।

होल्कर राज्य में आ पहुँची। इसने होल्कर राज्य की बाग़ी सेना की चहल-पहल देख कर यह समझा कि होल्कर राज्य बृटिश से युद्ध किया चाहता है। उसने युद्ध की तैयारी की और ई० सन् १८१७ के दिसम्बर में युद्ध हुआ। यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिये कि इस युद्ध में होल्कर राज्य के केवल तोपखाने ने भाग लिया था। इसने अंग्रेज़ी सेना को बहुत नुकसान पहुँचाया। राज्य की अन्य फौजें निरपेक्ष रहीं। इससे अंग्रेजों को सहज ही में विजय मिल गई। अंग्रेज़ी सरकार ने यह तो न समझा कि यह सब कार्रवाई बाग़ी फ़ौज की है—इसमें होल्कर राज्य का कोई दोष नहीं। उसने होल्कर राज्य पर बड़ी ही कड़ी शर्तें लादीं। होल्कर राज्य के तत्कालीन दीवान ताँतिया जोग ने अंग्रेज़ों को यह बात खूब अच्छी तरह समझाई कि यह सब कार्रवाई होल्कर राज्य की मन्शा के खिलाफ़ बाग़ी फ़ौज की थी—इसमें राज्य का तिल भर भी दोष नहीं; पर उनकी एक न सुनी गई। आखिर उन्हें उस कड़े सन्धि-पत्र पर हस्ताक्षर करने पड़े, जो अंग्रेज़ सरकार की ओर से पेश किया गया था। यह बात ई० सन् १८१८ की है।

इस सन्धि से होल्कर राज्य का $\frac{२}{३}$ हिस्सा चला गया। उदयपुर, जयपुर, जोधपुर, कोटा, बूंदी और करौली आदि के महाराजा जो कर और खिराज होल्कर राज्य को देते थे, इस सन्धि के अनुसार वह अंग्रेज सरकार को दिया जाने लगा। रामपुरा, बसन्त, राजेपुरा, बलिया, नीमसरा, इन्द्रगढ़, बूंदी, लाखेरी, सामेदी, ब्राह्मणगाँव, दसई और अन्य स्थानों से जोकि बूँदी की पहाड़ियों के बीच में या उत्तर में हैं, होल्कर ने अपना अधिकार हटा लिया और सतपुड़ा की पहाड़ियों के बीच के या उनके दक्षिण वाले इलाकों, खानदेश वाली अमलदारियों तथा निजाम और पेशवा के इलाकों से मिले हुए अपने जिलों का सम्पूर्ण अधिकार भी उन्हें अंग्रेज सरकार को देना पड़ा। पचपहाड़, डग, गंगराड़ और आवर आदि परगने कोटा के जालिमसिंह को दिये गये। अंग्रेज सरकार ने इकरार किया कि वह महाराजा होल्कर की सन्तानों, सम्बन्धियों, आश्रितों, प्रजा व कर्मचारियों से किसी तरह का

संबंध न रखेगी। उन सब पर महाराजा होल्कर का पूर्ण अधिकार रहेगा। इसी प्रकार का इकरार अंग्रेज सरकार ने निजाम हैदराबाद और सिन्धिया सरकार के साथ भी किया। अंग्रेज सरकार ने स्वीकार किया कि वह होल्कर दरबार में अपना मन्त्री तथा राज्य में शान्ति स्थापित रखने के लिये सेना रखेगी। महाराजा अपना वकील बड़े लाट के पास जब चाहेंगे भेज सकेंगे। इस सन्धि से होल्कर सरकार पर से पेशवा का प्रभुत्व उठ गया।

ई० सन् १८१८ में इन्दौर राजनगर (राजधानी) नियुक्त किया गया। इसके बाद जल्दी ही दीवान ताँतिया जोग ने खर्च में कमी करना शुरू की। इस समय इलाकों से बहुत कम मालगुजारी वसूल होती थी। राजकाज चलाने के लिये कर्ज निकालने की जरूरत पड़ी। सेना का एक भाग कान्टिन्जेन्ट में परिवर्तित किया गया और अंग्रेज सरकार के एक फ़ौजी अफसर की अधीनता में महिदपुर भेज दिया गया। कुछ सैनिक रोब जमाने की गरज से इलाकों में भेजे गये। केवल ५०० सवार राजनगर में रखे गये। रक्षा और पुलिस का काम करने के लिये कुछ पैदल सेना भी राजनगर में रखी गई।

अब तक राज्य में सर्वत्र शान्ति स्थापित थी। सन् १८१९ में कुछ लोगों ने इधर उधर उत्पात मचाना शुरू किया। सबसे पहले कृष्णकुँवर नामक एक व्यक्ति ने अपने आपको काशीराव का भाई मल्हारराव प्रकट कर चम्बल के पश्चिम में एक सेना का संगठन किया। उसने अरबों और मकरानियों की मदद से महीनों उत्पात मचाया पर महिदपुर की कान्टिन्जेन्ट सेना ने उसे मार भगाया। इसी समय मल्हारराव के चचेरे भाई हरिराव ने भी सिर उठाया।

सन् १८२६ में ताँतिया जोग की मृत्यु हो गई। इनके मन्त्रित्व-काल में राज्य की आमदनी ५ लाख से बढ़ कर ३० लाख हो गई थी। इनकी मृत्यु के बाद राज्य-प्रबन्ध क्रमशः बिगड़ता गया।

सन् १८२९-३० में उदयपुर के इलाकेदार बेगूं के ठाकुर ने नन्दवास पर दो बार आक्रमण किया। पर राज्य और कान्टिन्जन्ट सेना ने उन्हें दोनों बार मार भगाया।

भारत के देशी राज्य—

श्रीमान् महाराज हरिराव होल्कर, इन्दौर

सन् १८३१ में एक ढोंगी ने सात महाल में कुछ आदमी जमा कर बलवा किया पर मालवे की कान्टिन्जन्ट सेना द्वारा वह परास्त और निहत हुआ।

२७ अक्टूबर सन् १८३३ को २८ वर्ष की अवस्था में मल्हारराव की मृत्यु हो गई। इन्दौर में इनकी छत्री बनी हुई है। इनका कद मझला और रङ्ग साँवला था। ये बड़े उदार और दयालु थे। पुराना महल (Old Palace) और पंढरिनाथ का मन्दिर—जोकि नगर के मध्य में है—इनके ही समय में बना है।
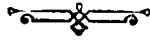
हरिराव

महाराजा मल्हारराव को कोई पुत्र नहीं था। अतएव उनकी रानी साहिबा गौतमाबाई ने अपने पति की मृत्यु के कुछ समय पूर्व ही मार्तण्डराव होल्कर को गोद ले लिया था। ई० सन् १८३३ की २७ अक्टूबर को वे गद्दी-नशीन हुए। अंग्रेज़ सरकार ने भी इनकी गोदनशीनी मंजूर कर ली। पर इसके कुछ ही समय बाद महाराजा यशवन्तराव के भतीजे हरिराव उनके साथियों द्वारा महेश्वर के किले से मुक्त कर दिये गये। इन्हें स्वर्गीय महाराजा मल्हारराव ने कैद किया था। इनका राजगद्दी पर विशेष अधिकार था। इनके साथी इन्हें मंडलेश्वर में पोलिटिकल ऑफिसर के पास ले गये और वहाँ वे होल्कर राज्य की गद्दी के असली उत्तराधिकारी सिद्ध हुए।

राज्य की प्रजा और सिपाहियों ने भी मार्तण्डराव का पक्ष त्याग कर हरिराव का पक्ष ग्रहण किया। स्वर्गीय महाराजा मल्हारराव की माता तथा पत्नी ने रेसिडेन्ट के आगे मार्तण्डराव के पक्ष का बहुत कुछ समर्थन किया। पर उनकी एक न चली। अंग्रेज़ सरकार ने आखिर हरिराव ही को असली उत्तराधिकारी मान कर उन्हें होल्कर राज्य की गद्दी का स्वामी विघोषित कर दिया। ई० सन् १८३४ की १७ अप्रैल को रेसिडेन्ट की उपस्थिति में हरिराव मसनद

पर विराजे। हरिराव ने रेवाजी फनसे को राज्य का दीवान मुकर्रर किया। यह आदमी बहुत खराब चाल-चलन का था। इसे राज्य-शासन का कुछ भी अनुभव न था। इसकी नियुक्ति से राज्य में निराशा और असन्तोष छा गया। राज्य की आमदनी घट कर ९ लाख रह गई। खर्च बढ़ कर २४ लाख तक पहुँच गया। १२ लाख केवल फ़ौज के लिये खर्च होते थे। इससे राज्य में अशान्ति और अव्यवस्था का साम्राज्य छा गया। इस अव्यवस्था के कारण लोकमत हरिराव के विरुद्ध और मार्तण्डराव के पक्ष में होने लगा। तीन सौ मकरानी और राज्य की फौज के कुछ अफ़सर मार्तण्डराव से आ मिले। इन सबों ने मिल कर राज-महल को घेर लिया। इन्होंने स्वर्गीय महाराजा मल्हारराव की माता से सहायता के लिये प्रार्थना की। पर उस बुद्धिमती महिला ने इन्कार कर दिया। आखिर ये सब लोग तितर-बितर कर दिये गये। इसी समय रेवाजी की बद अशुभ दीवानगिरी का भी अन्त हुआ। ई० सन् १८३६ के नवम्बर में रेवाजी अपने पद से अलग कर दिये गये। इनके बाद भी राज्य की दशा खराब ही रही। पश्चात् महाराजा हरिराव के भवानीदीन नामक एक मर्जीदान को दिवानगीरी का पद मिला। यह रेवाजी से भी खराब और अयोग्य था। यह भी उक्त पद से बरख़्वास्त कर दिया गया। अब महाराजा हरिराव ने अपने हाथों से राज्य-व्यवस्था चलाने का निश्चय किया। पर उनकी तन्दुरुस्ती ने उनका साथ नहीं दिया। अतएव उन्हें बीच बीच में फिर दिवानों को नियुक्त करने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। उन्होंने राज-कार्य में सहायता देने के लिये राजाभाऊ फनसे को बुलाया। पर यह बड़ा शराबी था। इसने भी शासन-कार्य में अपनी अयोग्यता का परिचय दिया। इसके बाद नारायणराव पलशीकर इस कार्य के लिये बुलाया गया। पर ई० सन् १८४७ के अक्टूबर में उक्त दीवान साहब का भी शरीरान्त हो गया। महाराजा हरिराव की तन्दुरुस्ती गिरती ही गई। राज्य-सम्बन्धी चिन्ताओं ने उनकी तन्दुरुस्ती को बड़ा धक्का पहुँचाया। आखिर ई० सन् १८४३ की १६ अक्टूबर को उनका परलोक-वास हो गया।

खण्डेराव

जब महाराज हरिराव अपनी अन्तिम शय्या पर लेटे हुए थे, उस समय रेसिडेन्ट ने उन्हें गोद लेने की सलाह दी थी। उन्होंने बापू होल्कर के पुत्र खण्डेराव को अपना उत्तराधिकारी चुना था। ई० सन् १८४३ की १३ नवम्बर को खण्डेराव इन्दौर के राज्य-सिंहासन पर बिराजे। इस समय राजाभाऊ फनसे राज्य के दीवान मुकर्रर किये गये। इन्होंने बालक महाराज पर अपना बड़ा दबदबा जमा लिया। ये एक तरह से सर्व-सत्ताधिकारी हो गये। पर महाराजा खण्डेराव इस संसार में अधिक दिनों तक नहीं रह सके। वे ई० सन् १८४४ की १७ फरवरी को १५ वर्ष की अल्पायु में इहलोक-यात्रा संवरण करने के लिये बाध्य हुए। इनको भी कोई संतान न थी।

महाराजा खण्डेराव की मृत्यु के पश्चात् पुनः उत्तराधिकार का सवाल उठा। मा साहबा मार्तण्डराव के पक्ष में थीं। प्रजा भी मार्तण्डराव का पक्ष समर्थन कर रही थी। पर इस समय भारत सरकार की नीति में बहुत अन्तर पड़ गया था। अब वह अधिकार के घरेलू मामलों में भी हस्तक्षेप करने लग गई थी। अतएव भारत सरकार ने मा साहबा और प्रजा की बात पर ध्यान न देकर मार्तण्डराव के हक्क को अस्वीकार कर दिया। हाँ, उसने (अंग्रेजी सरकार ने) मा साहबा को भाऊ होल्कर के पुत्र को गोद लेने की अनुमति दे दी। रेसिडेन्ट ने खुले दरबार में अंग्रेज सरकार की इच्छा को प्रकट करते हुए भाऊ होल्कर के पुत्र को राज्याधिकार के लिये नामाङ्कित (Nominate) किया।
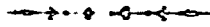
तुकोजीराव (द्वितीय)

महाराजा तुकोजीराव (द्वितीय) का राज्याभिषेक-उत्सव ई० सन् १८४४ की २७ जून को हुआ। इस समय २१ तोपों की सलामी हुई। महाराजा को गद्दीनशीनी की सनद लेने के लिये कहा गया। महाराजा को यह बात मजबूर होकर स्वीकार करनी पड़ी। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह बात सन्धि के खिलाफ़ थी। जिस हालत में महाराज तुकोजीराव होल्कर राजगद्दी के मालिक हो चुके थे, उन्हें सनद देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। होल्कर राज्य उनके पूर्वजों की तलवार से जीता गया था न कि अंग्रेजी सरकार से वह दान में मिला था।

महाराज की नाबालिग अवस्था में मा साहबा ने कौंसिल आफ रिजेन्सी (Council of Regency) की सहायता से राज्य-व्यवस्था का संचालन किया। राजा भाऊपन्त, रामराव नारायण पलशीकर और खासगी दीवान गोपालराव बाबा कौंसिल के सदस्य थे। इस समय इन्दौर के रैसिडेन्ट एक सहृदय और उदार महानुभाव थे, जिनका कि नाम हेमिल्टन था। इनकी मित्रता-पूर्ण राय से राज्य के कारोबार में बड़ी सहायता मिलती थी। इनका बाल महाराज पर अगाध प्रेम था। ये महाराज को अपने पुत्र की तरह मानते थे। महाराज का हृदय भी इनसे गद्‌गद् रहता था। वे अपने जीवन भर तक इन्हें याद करते रहे। उन्होंने स्मारक-स्वरूप इन्दौर में इनकी एक भव्य मूर्ति बना रखी है।

ई० सन् १८४८ में कौंसिल के सीनियर मेंबर राजाभाऊ अपने दुर्व्यवहारों के कारण अपने पद से हटा दिये गये और उनके स्थान पर रामराव नारायण पलशीकर नियुक्त किये गये। ई० सन् १८४९ में मा साहबा का स्वर्गवास हो गया। यहाँ यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि राज्य की सब

श्रीमान् महाराजा तुकोजी राव होल्कर (द्वितीय) इन्दौर ।

प्रजा मा साहबा को पूज्य दृष्टि से देखती थी और उनका बाल महाराज पर बड़ा प्रभाव था। अब महाराज को राज्य के कारोबार पर विशेष दृष्टि रखने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। आप राज्य की कौंसिल में नियमित रूप से बैठ कर शासन-सम्बन्धी व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने लगे। महाराजा बड़े प्रतिभा-सम्पन्न पुरुष थे और उनकी ग्राह्य-शक्ति बड़ी ही अद्भुत थी। इससे शासन-सम्बन्धी कार्यों को वे बड़ी ही स्फूर्ति के साथ हृदयङ्गम कर लेते थे।

स्वर्गीय मा साहबा कृष्णाबाई और तत्कालीन रेसिडेन्ट मि० राबर्ट हेमिल्टन ने बाल महाराज की शिक्षा का बड़ा ही उत्तम प्रबन्ध किया था। आप की शिक्षा का भार मुन्शी उम्मेदसिंह नामक एक अनुभवी शिक्षक पर रखा गया था। महाराजा ने संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी भाषा का बहुत ही अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। मि० हेमिल्टन ने महाराज की कार्य कुशलता और शासन-प्रेम के सम्बन्ध में लिखा है:—

"बालक महाराज की बढ़ती हुई बौद्धिक प्रतिभा और राज्य-शासन के सम्बन्ध में सूक्ष्म जानकारी प्राप्त करने की उनकी उत्कृष्ट इच्छा थी। वे राज्य के भिन्न २ महकमों में जाकर बैठ जाते थे और वहाँ किस तरह काम होता है इस बात को बड़ी बारीक निगाह से देखते थे। इसमें महाराज एक विशेष प्रकार का आनन्द अनुभव करते थे। यह बात तत्कालीन कौंसिल के सीनियर मेम्बर राजाभाऊ फनसे को अच्छी न लगती थी और वह इससे अप्रत्यक्षरूप से महाराज की बुराई कराने लगा। इसमें शक नहीं कि महाराज छोटी २ गलतियों को झट पकड़ लेते थे और किसी की यह ताकत नहीं थी कि वह उनकी आँख बचाकर एक पैसा भी खा जाय अथवा व्यर्थ खर्च कर डाले।"

पहले पहल श्रीमान महाराजा तुकोजीराव फाइनान्स और अकौन्टसी का काम देखने लगे।

ई० सन् १८५० की १९ दिसम्बर को श्रीमान् उत्तरीय भारत की यात्रा करने के लिये इन्दौर से रवाना हुए। यह यात्रा आपने अपने घोड़े की पीठ पर

ही की। ई० सन् १८५१ की ३ मार्च को आप इन्दौर लौट आये। ई० सन् १८५२ में महाराज शासन-कार्य देखने लगे। महाराजा की कार्यपटुता को देखकर सर हेमिल्टन विमोहित हो गये। उन्होंने (सर हेमिल्टन ने) भारत सरकार के पास जो रिपोर्ट भेजी थी उसमें महाराजा की असाधारण योग्यता, अपूर्व ग्राह्यशक्ति, राजनीतिज्ञता तथा विलक्षण स्मरणशक्ति की बड़ी प्रशंसा की थी। इसी साल अर्थात् ई० सन् १८५२ की ८ मार्च को इन्दौर में एक दरबार हुआ। इसमें इन्दौर के रेसिडेन्ट सर हेमिल्टन तथा रियासत के जागीरदार, जमींदार और अमीर उमराव सब उपस्थित थे। इसमें महाराज को पूर्ण राज्याधिकार प्राप्त हुए। इस अवसर पर सर हेमिल्टन ने उपस्थित सज्जनों को सम्बोधित करते हुए कहा था—"महाराज के कर कमलों में आज से राज्य के पूर्ण अधिकार रखे जाते हैं, हर एक को उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिये। सब ही का यह कर्तव्य है कि वे महाराज के आज्ञाकारक और राज्यभक्त रहें।" इसके दूसरे दिन फिर दरबार हुआ। इस में महाराजा ने कई लोगों को जागीरें और इनाम दिये। इसी साल के दिसम्बर मास में महाराजा ने हिन्दुस्तान की यात्रा की। इस यात्रा में आप कई महत्वपूर्ण स्थानों में पधारे।

ई० सन् १८५७ में हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ सरकार के खिलाफ़ भयङ्कर विद्रोहाग्नि सुलग उठी। शुरू शुरू में मेरठ में इसकी चिनगारी चमकी और वड़वानल की तरह यह सारे हिन्दुस्तान में फैल गई। महिदपुर और भोपाल में अंग्रेजों ने जो हिन्दुस्तानी सेना रक्खी थी, वह भी इस विद्रोह में शामिल हो गई। इसका असर बिजली की तरह इन्दौर और मऊ में भी पहुँचा। इस समय इन्दौर के लोकप्रिय रेसिडेन्ट मि० हेमिल्टन बदल चुके थे और उनके स्थान पर कर्नल डूरेन्ड आये थे। उन्हें महाराजा ने बहुत समझाया कि वे अपने स्त्री, बच्चों तथा खजाने को मऊ भेज दें। पर उन्होंने महाराजा की बात को अस्वीकार कर दिया। विद्रोहियों ने ई० सन् १८५७ की १ जुलाई को इन्दौर-रेसिडेन्सी पर हमला कर उसे बुरी तरह लूटा। इस दिन भी महाराज

महाराजा तुकोजी राव होल्कर (दूसरे) (कौन्सिल सहित)

ने कर्नल डूरेन्ड को लिखा कि वे (महाराजा) उन्हें अपनी शक्तिभर सहायता करने के लिये तैयार हैं। पर साथ ही उन्होंने यह भी जतला दिया था कि मेरी फ़ौजें मेरे अधिकार से बाहर हो गई हैं। कर्नल डूरेन्ड सिहोर की ओर चले गये। यह घटना होने के बाद महाराजा ने अपने विश्वासपात्र सैनिकों को घायल यूरोपियनों के लाने के लिये भेजा। कहने की आवश्यकता नहीं कि महाराजा ने कई घायल यूरोपियनों को आश्रय दिया और उनकी सेवा सुश्रूषा का भी अच्छा प्रबन्ध किया। उन्होंने रेसिडेन्सी से भगे हुए लोगों को भी अपने यहाँ आश्रय दिया। इन्दौर रेसिडेन्सी खजाने में जो कुछ बचा था उसे लेकर महाराजा ने मऊ के केप्टन हंगर फोर्ड के पास भेज दिया। इसके अति-रिक्त उन्होंने उक्त कर्नल को अपनी शक्ति भर सहायता दी। अमझरा और सरदारपुर में ठहरे हुए महाराजा के फौजी अफ़सरों ने भोपाल के पोलिटि-कल एजन्ट कर्नल हचिसन को बहुत सहायता पहुँचाई। ई० सन् १८६० में जबलपुर में जो दरबार हुआ था उसमें तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड केनिंग ने उक्त सहायताओं को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया था। पर दुःख है कि महाराजा सिन्धिया और निजाम की सेवाओं को स्वीकार कर अंग्रेज सरकार ने जिस प्रकार इन दोनों महानुभावों को पुरस्कार स्वरूप कुछ मुल्क दिया था, वैसा महाराजा तुकोजीराव को नहीं दिया गया। उनके हृदय में इस बात का दुःख हमेशा रहा। वे इसे अपने प्रति अन्याय समझते रहे। उनका यह खयाल था कि इसका कारण कर्नल डूरेन्ड का पैदा किया हुआ विपरीत प्रभाव है। कर्नल डूरेन्ड ई० सन् १८५७ के दिसम्बर मास तक इन्दौर के रेसिडेन्ट तथा ए० जी० जी० और बादमें भारत-सरकार के वैदेशिक-विभाग के सेक्रेटरी रहे। ये महाराजा तुकोजीराव के सख्त खिलाफ़ थे और उनके हित का हमेशा विरोध किया करते थे।

बलवे के बाद महाराज को राज्य-कार्य में मदद देने के लिये एक सुयोग्य दीवान की आवश्यकता प्रतीत हुई। उन्होंने अपने प्रियमित्र मि० हेमिल्टन की राय से इस जिम्मेदारी के पद पर सुप्रख्यात् राजनीतिज्ञ सर टी० माधव-

राव को नियुक्त किया। आप ने इस पद पर नियुक्त होते ही राज्य-शासन में अनेक सुधार करने शुरू कर दिये। आपने शासन के जुडिशियल, पुलिस, रेव्हेन्यू आदि विभागों का पुनर्संगठन किया। ई० स० १८७२ के ३ दिसम्बर को लॉर्ड नार्थब्रुक इन्दौर राज्य के अन्तर्गत बढ़वाह नामक स्थान पर पधारे। वहाँ उन्होंने कई राजा महाराजाओं तथा अंग्रेज अफसरों के सामने नर्मदा नदी के पुल का नींव का पत्थर रखा। लार्ड महोदय ने इस अवसर पर श्रीमान् तुकोजीराव महाराज की बड़ी प्रशंसा की थी।

ई० स० १८७३ में श्रीमान् दक्षिण भारत के कई तीर्थस्थानों में पधारे। इसी समय आप बम्बई और पूना भी तशरीफ ले गये थे। पूना में आपको कई दक्षिणी सरदारों के साथ मित्रता करने का अवसर प्राप्त हुआ। आपने यहाँ जमना बाई साहब गायकवाड़ के साथ भी बड़ी सहानुभूति प्रकट की और उन्हें बड़ौदे के मामले में पूर्ण सहायता देने का वचन भी दिया। ई० स० १८७४ में श्रीमान् कलकत्ते पधारे और वहाँ व्हाइसराय के अतिथि रहे। श्रीमान् व्हाइसराय ने आपका बड़ा स्वागत किया। इसी समय बड़ोदे के महाराजा मल्हारराव पर अंग्रेज सरकार ने एक दुर्व्यवहार का अपराध लगाया था। उनके अपराधों की जाँच करने के लिये भारत सरकार ने एक कमीशन नियुक्त किया था। व्हाइसराय ने महाराजा तुकोजीराव से इस कमिशन में बैठने के लिये पूछा था। पर महाराजा ने किसी खास सिद्धान्त के कारण कमिशन में बैठने से इन्कार कर दिया था। ई० स० १८७५ में व्हाइसराय की प्रार्थना को स्वीकार कर श्रीमान् ने अपने प्रधान मंत्री सर० टी माधवराव को बड़ौदे के प्रधान मंत्रित्व का पद स्वीकार करने के लिये अनुमति दे दी। सर टी० माधवराव के स्थान पर रघुनाथराव इन्दौर के प्रधान मन्त्री हुए। इन्होंने भी सर० टी० माधवराव की तरह राज्य-शासन में अनेक प्रकार के सुधार करना शुरू किये।

ई० सन् १८७५ में भारत के तत्कालीन व्हाइसराय लार्ड नॉर्थब्रुक इन्दौर पधारे और वे महाराजा के अतिथि रहे। ई० सन् १८७६ में

प्रिन्स आफ वेल्स भी इन्दौर पधारे, जिनका महाराजा साहब ने अच्छा स्वागत किया। ई० सन् १८७७ में दिल्ली में जो दरबार हुआ था उसमें भी श्रीमान् पधारे थे। श्रीमान् को को जी० सी० एस० आई० की उपाधि पहले ही प्राप्त थी, अब सी० आई० ई की उपाधि भी प्राप्त होगई। आप श्रीमती सम्राज्ञी विक्टोरिया के कौंसिलर भी हो गये थे। भारत सरकार ने आपकी तोपों की सलामी १९ से बढ़ाकर २१ कर दी। दिल्ली दरबार में महाराजा का प्रभाव प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होता था। दूसरे राजा महाराजा आपको अपना पथ-प्रदर्शक मानते थे। आपकी सम्मति का वे बड़ा आदर करते थे। भारत के प्राय: सब राजा महाराजाओं से आपकी मैत्री थी।

ई० सन् १८७९ में श्रीमान् तुकोजीराव ने महाराजा सिन्धिया को अपनी राजधानी में निमन्त्रित किया था। महाराजा सिन्धिया निमन्त्रण स्वीकार कर इन्दौर पधारे और एक सप्ताह तक श्रीमान् के अतिथि रहे।

ई० सन् १८८२ में श्रीमान् तुकोजीराव ने अपनी महारानी साहबा सहित बद्रीनारायण की यात्रा की। रास्ते में आप जयपुर ठहरे। जयपुर नरेश महाराजा माधोसिंहजी ने आपका बड़ा स्वागत किया। बद्री नारायण से लौटते समय श्रीमान् तुकोजीराव लार्ड रिपन से मिलने नैनीताल ठहरे। यहाँ आपने अंग्रेज अधिकारियों पर अच्छा प्रभाव डाला। ई० सन् १८८६ की १७ जून को महाराजा तुकोजीराव ने अनेक महान् कार्य करने के पश्चात् इहलोक यात्रा संवरण की।

होल्कर राज्यवंश में महाराजा तुकोजीराव एक असाधारण प्रतिभा-शाली नरेश हो गये हैं। आप उत्कृष्ट श्रेणी के बुद्धिमान राजनीतिज्ञ थे। राज्य-प्रबन्ध करने की आप में अच्छी योग्यता थी। महाराजा मल्हारराव को इन्दौर जैसे महान् और विशाल राज्य की नीव डालने का यश प्राप्त है। श्रीमती देवी अहल्याबाई अपने दिव्यचरित्र, अलौकिक पुण्य तथा अनेक सद्गुणों के कारण भारत में अपना नाम अमर कर गई हैं। महाराजा यशवन्तराव ने अपनी वीरता और समयसूचकता से इन्दौर-राज्य की महानता को अक्षय

रखने का गौरव प्राप्त किया। पर द्वितीय तुकोजीराव ने ई० सन् १८१८ की की घटी हुई रियासत को उन्नति और समृद्धि के ऊँचे शिखर पर पहुँचाने का श्रेष्ठ गौरव प्राप्त किया।

जब महाराजा तुकोजीराव ने राज्य-शासन का भार ग्रहण किया था, तब रियासत की आमदनी २२ लाख और लोकसंख्या ५॥ लाख थी। खजाना खाली पड़ा हुआ था। पर आपके सुशासन की वजह से रियासत की आमदनी २२ लाख से बढ़कर ८५ लाख हो गई। लोक संख्या दूनी हो गई। खजाना भरपूर हो गया। राज्य के व्यापार, खेती और उद्योग धन्धों आदि में असाधारण उन्नति हो गई।

इन्हीं महाराजा के समय में इन्दौर को विद्या केन्द्र बनाने का प्रधान रूप से सूत्रपात हुआ। आपके राज्य में उस समय कई नई पाठशालाएँ खोली गईं।

खेती की ओर श्रीमान् का विशेष ध्यान रहता था। ई० सन् १८६५ में आपने राज्य-भूमि की पूरी पैमाइश करवाई। किसानों को खेती की तरक्की के लिये खुले हाथों से तकावी दी जाती थी। राज्य में आबपाशी का बड़ा ही उत्तम प्रबन्ध किया गया था और इसके लिये ४० लाख रुपये खर्च किये गये थे। श्रीमान् अपने राज्य में बार बार दौरा कर किसानों की स्थिति का प्रायः निरीक्षण किया करते थे। आप पटेलों और किसानों से स्वतन्त्रतापूर्वक मिलते थे और खेती के सम्बन्ध में उनसे बातचीत किया करते थे। आप किसानों को उत्साहित करने के लिये पुरस्कार एवम् पोशाखें आदि वितरण किया करते थे। इन्दौर राज्य के वृद्ध किसान आज भी आपको बड़ी भक्ति से स्मरण किया करते हैं और श्रीमान् के शासन-काल के सुखी दिनों को याद करते हैं।

राज्य की व्यापारिक और औद्योगिक उन्नति की ओर भी श्रीमान् का विशेष ध्यान रहता था। आज भारतवर्ष के व्यापारिक क्षेत्र में इन्दौर को जो अत्युच्च स्थान प्राप्त हुआ है उसका मूल श्रेय श्रीमान् को ही है। आप कई
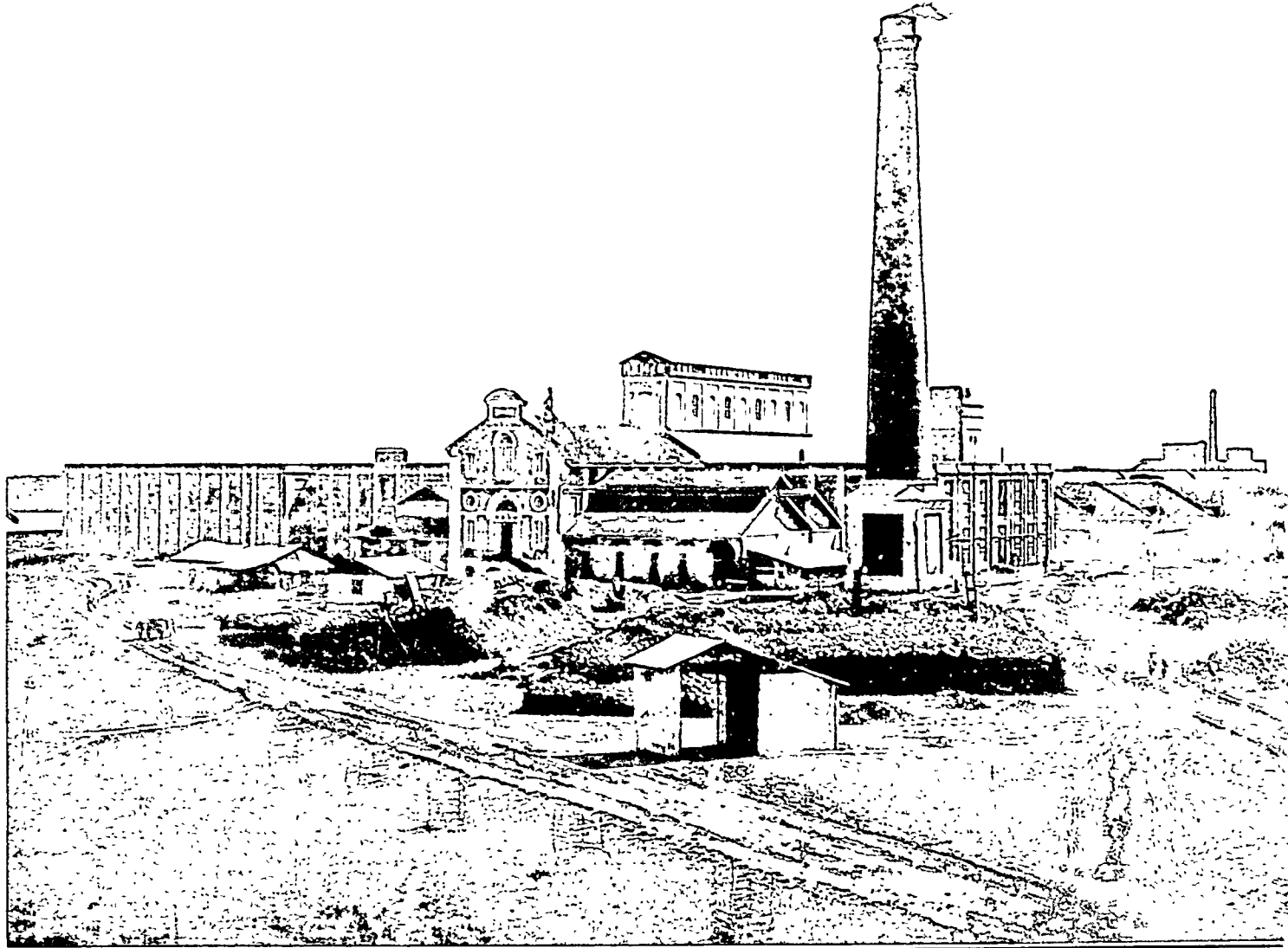
हुकुमचद मिल नं० २, इन्दौर

व्यापारियों को व्यापार की उन्नति के लिये आर्थिक सहायता दिया करते थे। श्रीमान् ने ठीक समय पर आर्थिक सहायता देकर कई साहूकारों को दिवालिया होने से बचा लिया और उन्हें अपनी पूर्व-स्थिति में ला देने का श्रेय प्राप्त किया था। इन्दौर में ग्यारह पंच नाम की जो प्रसिद्ध व्यापारिक संस्था है उसे श्रीमान् की ओर से विशेष उत्तेजन मिला करता था। इस संस्था को श्रीमान् की ओर से कई अधिकार प्राप्त थे।

श्रीमान् ने इन्दौर राज्य के एक्साइज और सायर विभागों को पुनः सङ्गठित किया जिससे उनके द्वारा विशेष आमदनी होने लगी। न्याय और पुलिस विभागों में सुधार किये गये। नये कानून बनाये गये। फ़ौज की तरक्की की गई।

मध्यभारत में आप ही पहले नरेश हैं जिन्होंने अपने राज्य में १५ लाख रुपयों की पूंजी से स्टेट मिल खोली। यह मिल अब तक चलती है। इस मिल के खोलने में यह उद्देश था कि लोगों को सस्ता कपड़ा मिले। राजा होते हुए भी आप लोगों के सामने अपना आदर्श रखने के लिये इस मिल का मोटा कपड़ा पहनते थे। आपने और भी कई प्रकार के उद्योग धन्धों को तरक्की पर पहुंचाया। इन्ही सब बातों से इन्दौर के नृपति गण में श्रीमान् एक उच्च-श्रेणी के शासक माने जाते हैं। श्रीमान् का प्रजाप्रेम, उनका आदर्श शासन आज के नृपतियों के लिये एक दिव्य आदर्श है।

श्रीमान् अपनी प्रजा के सुख दुःख से बहुत ही प्रभावित होते थे। वे अपनी प्रजा को दुखी नहीं देख सकते थे। उन्होंने तहसीलदारों और पटवारियों को एक सरक्यूलर निकाल कर सूचना दी थी कि राज्य का कोई मनुष्य भूखों न मरने पाये।

इन्दौर का व्यापार

अब हमें यह देखना है कि महाराजा तुकोजीराव ने मिल और रेलवे द्वारा अपने राज्य के व्यापार की किस प्रकार उन्नति की। ई० सन् १८६७ में श्रीमान् महाराजा ने इन्दौर में एक मिल खोली और उसका नाम "स्टेट मिल"

रखा। इस मिल के प्रबन्ध का भार मि० ब्रूम नामक एक अंग्रेज़ के सिपुर्द किया गया। इस मिल में साटन और लट्ठा आदि मोटे कपड़े निकाले जाने लगे। पहले पहल तो इस मिल के कपड़े की अधिक खपत न हुई, पर कुछ काल के उपरान्त महाराजा और रियासत के अधिकारी गणों की सहायता और सहयोग से इस मिल ने अद्भुत उन्नति की। इन्दौर के तत्कालीन रेसिडेन्ट मि. डेली ने अपनी रिपोर्ट में इस सम्बन्ध में जो भाव प्रकट किये हैं, वे नीचे उद्धृत किये जाते हैं:—

"श्रीमान् महाराजा साहब से इस सम्बन्ध में मेरी कई बार बातचीत हुई। यदि इस प्रकार की मिलें यहाँ चालू कर दी जायँगी तो उससे इन्दौर राज्य की प्रजा को बड़ा लाभ होगा और साथ ही साथ रियासत की आमदनी में भी वृद्धि होगी। यहाँ की ज़मीन में कपास की पैदावार पहले ही अच्छी होती है और मिल के खुल जाने से तो उसे और भी प्रोत्साहन मिलेगा। जहाँ चारों ओर कपास के खेत हों और पास ही रेलवे हो, ऐसे स्थान में यदि मिल खोली जाय तो वह क्यों न सफल होगी? मिल के सफलतापूर्वक चल निकलने से लोगों को रोज़गार मिलेगा, कृषि की उन्नति होगी, नये नये रास्ते बनाये जायंगे और लोगों को सस्ता कपड़ा मिलेगा।"

भारतवर्ष की देशी रियासतों में पहिले पहल मिल खोलने का श्रय श्रीमान महाराजा तुकोजीराव ही को प्राप्त है। सब खर्चा बाद करने पर रियासत को इस मिल से प्रतिवर्ष ८०,००० रुपये का फ़ायदा होता था। सचमुच महाराजा तुकोजीराव बड़े दूरदर्शी और विचारवान नरेश थे। वे अपनी प्रजा के कल्याण की कई योजनाएँ सोचा करते और न केवल सोच कर ही रह जाते, प्रत्युत् उन्हें कार्यरूप में परिणत करके भी दिखला देते थे। जिस 'स्वदेशी' के प्रश्न पर आजकल इतना जोर दिया जाता है उसे श्रीमान् महाराजा साहब ने ६० वर्ष पूर्व ही हल कर दिया था।

उस समय राज्य के बड़े बड़े अधिकारी गण स्टेट मिल का बना हुआ कपड़ा पहनते थे। अधिक क्या, स्वयं महाराजा साहब तक इसी मिल का

कपड़ा अपने उपयोग में लाते थे। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि महाराजा साहब के हृदय में 'स्वदेशी' के प्रति कितना आदर था।

महाराजा साहब ने आपा साहब चांगन की अधीनता में राज्य के खर्च से इन्दौर में कई दूकानें खुलवा दी थीं। भारत के अन्य बड़े २ नगरों में भी इन दूकानों की शाखाएँ खोली गईं थीं। इन दूकानों से रियासत को काफ़ी मुनाफ़ा होता था। पर आपा साहब ने कुछ ही दिनों में सट्टा करना शुरू कर दिया। इस कार्य में उन्हें बड़ी हानि उठानी पड़ी। आपा साहिब इन्दौर छोड़कर भाग गये और स्वयं महाराजा साहब को वह नुकसान भरना पड़ा। पर इससे महाराजा विचलित न हुए। उन्होंने सट्टे का व्यापार बन्द करके और भी नई दूकाने खोल दीं। इन दूकानों से उन्हें प्रति वर्ष ३ लाख रुपये का मुनाफ़ा होने लग गया था। इन दूकानों पर के सरकारी मुनीम, लोगों पर बड़े जुल्म करने लग गये थे, पर महाराजा साहब ने कानून बनाकर ऐसे जुल्मों का होना बन्द कर दिया।

महाराजा साहब का विश्वास था कि रेलवे के प्रचार से व्यापार की तरक्की में बड़ी सहायता पहुँचेगी। अतएव उन्होंने अपने राज्य में रेलवे भी निकाली। ई० सन् १८६४ में महाराजा ने रेलवे कम्पनी को अपने राज्य में रेलवे निकालने की आज्ञा दी और साथ ही उसके लिये जमीन भी प्रदान की। आगे चलकर ई० सन् १८६९ में महाराजा साहब ने रेलवे कम्पनी को एक करोड़ रुपया कर्ज़ दिया। जिससे इन रुपयों के व्याज स्वरूप एक अच्छी रक़म रियासत को मिलने लगी। यहाँ यह बात ध्यान में रखने लायक है कि श्रीमान् के गद्दी पर बैठने के समय खजाना खाली था तथापि इतने थोड़े से समय में आपने उसे इतना परिपूर्ण कर दिया कि जिसमें से एक करोड़ रुपया उधार दिया जा सके। ये एक करोड़ रुपये निम्नलिखित किश्तों पर दिये गये थे।

२५ लाख..............ई० सन् १८७०

२० लाख..............ई० सन् १८७१-७२

५५ लाख..............ई० सन् १८७२–७७

रेलवे और कपड़े बुनने के मिल ही केवल ऐसी चीजें नहीं थीं जिनकी ओर महाराजा साहब का ध्यान गया हो। आपने बड़वाह में भी लोहे के कई कारखाने खुलवाये जिनसे काफी मुनाफा मिलता था। इनके अतिरिक्त कागज़ तैयार करने की मिल की ओर भी आपका ध्यान आकर्षित हुआ था। कहने का तात्पर्य यह है कि महाराजा तुकोजीराव बड़े ही व्यापार-कुशल नरेश थे। उनकी हार्दिक अभिलाषा यह थी कि प्रत्येक आवश्यक सामग्री राज्य की सीमा के अन्दर ही तैयार कर ली जाय, किसी भी वस्तु के लिये राज्य की प्रजा को दूसरों का मुँह न ताकना पड़े।

बड़ौदे का मामला

श्रीमान् महाराजा साहब तुकोजीराव ने बड़ौदे की महारानी जमनाबाई को जो बहुमूल्य सहायता पहुँचाई थी इसका वृत्तान्त हम पाठकों की जानकारी के लिये यहां देते हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि जब किसी बड़े आदमी पर आपत्ति आ जाती तो महाराजा साहब जल्द ही उसकी रक्षा के निमित्त दौड़ पड़ते थे। अपनी इसी प्रवृत्ति के कारण आपको बड़ौदे के मामले में हाथ डालना पड़ा था। आप ही ने सुप्रख्यात् दीवान सर० टी० माधवराव की नियुक्ति बड़ौदे में करवाई थी। आपही की सलाह से लॉर्ड नार्थब्रुक ने उन्हें बड़ोदे की दिवानगिरी के पद पर भेजा था।

महाराजा तुकोजीराव ने इस मामले में क्या क्या सहायता पहुँचाई, यह जानने के लिये हमें बड़ोदा की तत्कालीन परिस्थिति का दिग्दर्शन कर लेना होगा। हमें यह जान लेना होगा कि किस प्रकार भारत सरकार को बड़ोदा की राज्य-व्यवस्था में हाथ डालने की आवश्यकता प्रतीत हुई थी।

ई० सन् १८७० में बड़ोदा के प्रतापी महाराजा खण्डेराव का देहावसान हुआ। आपने १४ वर्ष राज्य किया था। आप अपने भाई गनपतराव के

बाद राज-गद्दी पर बिराजे थे। आपको कोई सन्तान न थी अतएव आपके बाद आपके छोटे भाई मल्हारराव बड़ौदे की राज-गद्दी पर बिराजे।

यहां पर महाराजा मल्हारराव के पूर्व जीवन पर भी कुछ दृष्टि डालना अनुपयुक्त न होगा। कहा जाता है कि ई० सन् १८६३ में मल्हारराव ने अपने बड़े भाई खण्डेराव को ज़हर देने का प्रयत्न किया था। पर खण्डेराव को यह बात पहिले ही मालूम होगई। इसलिये उन्होंने मल्हारराव को पाद्रा नामक स्थान में कैद कर लिया। ये ही मल्हारराव, महाराजा खण्डेराव की मृत्यु के बाद राज-गद्दी पर बिराजे। इस समय विधवा महारानी जमनाबाई गर्भवती थीं। अतएव मल्हारराव इस शर्त पर गद्दी पर बैठाये गये थे कि महारानी के गर्भ से यदि पुत्र उत्पन्न होगा तो वही राज–गद्दी का हक़दार होगा और आप अलग कर दिये जायंगे। पर अन्त में जमनाबाई के गर्भ से पुत्री उत्पन्न हुई और मल्हारराव बड़ौदे की राज-गद्दी के मुस्तकिल हक़दार करार दिये गये। लेकिन मल्हारराव में राज्योचित गुणों का नितान्त अभाव था। यह सम्भव है कि लोगों के द्वारा उनके विषय में जो बातें फैलाई गई थीं उनमें कुछ अतिशयोक्ति हो। पर यह बात तो निर्विवाद है कि वे कई बुरी आदतों के शिकार बने थे और उनमें आत्मिक बल की भी बेतरह कमी थी। वे हमेशा चाटुकार और स्वार्थी लोगों से घिरे रहते थे और उन्हीं से प्रेम भी करते थे। उनके राज्य-काल में आरम्भ से अन्त तक अव्यवस्था ही का साम्राज्य बना रहा। बड़ौदा निवासी समय २ पर भारत सरकार के पास मल्हारराव और उनके मंत्रियों की शिकायतें पेश करते रहे। अन्त में ई० सन् १८७३ में इस बात की जाँच करने के लिये एक कमीशन बैठाया गया। ई० सन् १८७४ के मार्च में इस कमीशन ने पूरी जाँच के बाद अपनी रिपोर्ट भारत सरकार के पास भेज दी। इस पर भारत सरकार ने महाराजा साहब को १८ महीने की मुहलत देते हुए लिखा कि–" आप इस अवधि में अपने राज्य की व्यवस्था ठीक कर लीजिये"। इसके साथ ही उन्हें इस बात की भी सूचना दे दी गई थी कि

यदि इस अवधि में वे शासन-व्यवस्था को न सुधार सकेंगे तो उनके साथ उचित कार्रवाई की जायगी।

महाराजा मल्हारराव पर इस सूचना का कुछ भी असर न हुआ। उनकी विषयलोलुपता और प्रजा-पीड़न का कार्य ज्यों का त्यों जारी रहा। इसी बीच आपको लक्ष्मीबाई नामक एक रखेली से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस बालक के जन्म पर बड़ी खुशी मनाई गई। बड़ी धूमधाम के साथ उत्सव किया गया, रेसिडेन्ट साहब भी इसमें निमंत्रित किये गये थे।

इसी समय एक और उपद्रव खड़ा हुआ। कर्नल फेयर ने भारत सरकार को सूचना दी कि महाराज ने रेसिडेन्ट को विष देने का यत्न किया है। इस घटना के केवल ७ दिन पहले अर्थात् ई० सन् १८७४ के नवम्बर की २ री तारीख के दिन गायकवाड़ सरकार ने रेसिडेन्ट का तबादला करने के आशय का एक खरीता भारत सरकार के पास भेजा था। इस समय वाइसराय के पद पर लॉर्ड नॉर्थब्रुक थे। इस खरीते को पाकर उन्होंने यही निश्चय किया कि जब तक कर्नल फेयर बड़ौदे से बदले नहीं जायंगे तब तक गायकवाड़ सरकार और वहाँ के रेसिडेन्ट के बीच के झगड़े का अन्त न होगा। अपने इस निश्चय के अनुसार बड़े लाट ने कर्नल फेयर को बड़ोदे से बदल कर उनके स्थान पर सर लुई पेली को नियुक्त किया। साथ ही साथ इस बात की जाँच करने के लिये उन्होंने एक कमीशन भी नियुक्त किया कि कर्नल फेयर को विष देने का प्रयत्न वास्तव में महाराजा गायकवाड़ ने किया था? सर लुई पेली ने बड़ौदा जाते ही इस बात की घोषणा कर दी कि भूतपूर्व रेसिडेन्ट को विष देने का शक महाराजा मल्हारराव ही पर किया जाता है।"

हम ऊपर कह आये हैं कि महाराजा की जाँच के लिये एक कमीशन बैठाया गया था। उक्त कमीशन में निम्न लिखित सज्जन सम्मिलित थे:—

१ श्रीमान् महाराजा साहब जयाजीराव सिंधिया जी० सी० एस० आई, जी० सी० बी, सी० आई० ई०।

२ श्रीमान् महाराजा साहब सवाई रामसिंहजी ऑफ़ जयपुर जी० सी० एस आई० ।

३ सर रिचर्ड कोच, नाइट चीफ जस्टिस आफ बंगाल–हाईकोर्ट (प्रेसिडेन्ट)।

४ राव राजा सर दिनकरराव के० सी० एस० आई० ।

५ जनरल सर रिचर्ड मीड के० सी० एस० आई० ।

६ मि० मेलव्हिल, बंगाल सिविल सर्विस।

७ मि० जार्डिन, बम्बई (सेक्रेटरी)।

यद्यपि महाराजा मल्हारराव एक कमज़ोर-दिल रईस थे और उन्हें राज्य प्रबंध का ज्ञान बिलकुल न था तथापि जब उन पर मुक़दमा चला तब सारी प्रजा ने उनके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की थी। सारे भारतवर्ष का ध्यान इस कमीशन की ओर आकर्षित हो गया था।

ई० सन् १८७५ के फरवरी मास की २३ वीं तारीख को कमीशन ने अपनी कार्रवाई शुरू की। जनता महाराज के पक्ष में थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि जाँच बड़ी धूमधाम के साथ शुरू हुई। भारतवर्ष के कई बड़े बड़े आदमियों ने दिलचस्पी के साथ इसमें भाग लिया। महाराजा के बचाव के लिये इंग्लैण्ड से एक प्रख्यात् बैरिस्टर जिनका नाम सर वेलंटाइन था, बुलाये गये। महाराजा मल्हारराव को भी कमिशन की कार्रवाई देखने के लिये कमीशन भवन में ही स्थान दिया गया था। पाँच सप्ताह तक जाँच होती रही। पश्चात् ३१ वीं मार्च को कमीशन ने अपना फैसला दे दिया। सर रिचर्ड कोच, सर रिचर्ड मीड और मि० मेलव्हिल ने महाराज को अपराधी ठहराया और महाराजा जयाजीराव, महाराजा रामसिंहजी और राजा सर दिनकरराव ने उन्हें निर्दोषी पाया।

इस विषय पर अब अधिक न लिख कर थोड़े में यह कह देना उचित है कि गवर्नमेन्ट ने महाराजा गायकवाड़ को गद्दी से अलग कर दिया। विधवा महारानी जमनाबाई को दत्तक लेने की आज्ञा दी गई। येही दत्तक पुत्र

बड़ौदे की गद्दी पर बिठाये गये। महाराजा तुकोजीराव ने महारानी जमना-बाई को जो आश्वासन दिया था, वह पूर्ण हुआ। पाठक यह जानने के लिये बड़े उत्सुक होंगे कि किस प्रकार महाराजा तुकोजीराव ने महारानी जमनाबाई की सहायता की थी और किस प्रकार वे राजा सर टी० माधवराव को बड़ोदे के Administrator के पद पर नियुक्त करवाने में समर्थ हुए थे।

यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से महाराजा तुकोजीराव ने इस मामले में कुछ भी भाग नहीं लिया था, तथापि अन्दर ही अन्दर उन्होंने महारानी जमनाबाई को अधिकार दिलवाने के लिये बड़ी कोशिश की थी। तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड नॉर्थ ब्रुक ने महाराजा तुकोजीराव और राजा सर दिनकरराव की सलाह से बड़ौदे के मामले का अन्तिम फ़ैसला किया था। अब हम महाराजा तुकोजीराव ने युवक महाराजा सयाजीराव को जो उपदेश दिया था, उसका भाव नीचे देते हैं:—

"मेरा समस्त गायकवाड़ सरदारों के सामने आप से (महाराजा सयाजीराव से) यही कहना है कि आपका और मेरा दोनों ही का जन्म छोटे कुलों में हुआ है। इन छोटे कुलों से हम राज-वंशों में आये हैं। अतएव अब हम लोगों को इस प्रकार कार्य करना चाहिये कि किसी को हमारी ओर उँगली दिखाने का मौक़ा न मिले। हमें ग़रीबों के साथ ग़रीबों का सा और अमीरों के साथ अमीरों का सा व्यवहार रखना चाहिये। हमें अपनी अमीरी का अभिमान कभी न करना चाहिये।

महान् पुरुषों का आगमन।

श्रीमान् महाराजा तुकोजीराव के राज्य-काल में कई बड़े बड़े नेताओं और महानुभावों का समय २ पर इन्दौर में आगमन होता रहा।

ई० सन् १८७२ के अक्तूबर में सुप्रख्यात् देशभक्त दादाभाई नौरोजी का इन्दौर में आगमन हुआ। श्रीमान् महाराजा साहब ने आपका

बड़ा स्वागत् किया। आपको सम्मान सूचक पोशाखें भेंट दी गईं। आप इन्दौर में राज्य के अतिथि की हैसियत से ठहरे थे।

ई० सन् १८७३ में जगद्गुरु शंकराचार्य यहाँ पधारे। आपका भी बड़ी धूमधाम के साथ स्वागत हुआ।

ई० सन् १८७४ में सुप्रख्यात् सुधारक और वक्ता बाबू केशवचन्द्र सेन इन्दौर पधारे। आप भी दादाभाई नौरौजी ही की तरह श्रीमान् महाराजा साहब के अतिथि रहे थे। इस समय इन्दौर की दिवानगीरी के पद पर सर-माधवराव थे। इन्दौर में बाबू केशवचन्द्र सेन के तीन ओजस्वी व्याख्यान हुए। तीनों भाषणों की बड़ी तारीफ हुई। पहला भाषण रेसिडेन्सी स्कूल में सर माधवराव के सभापतित्व में हुआ। दूसरा और तीसरा भाषण इन्दौर स्कूल में हुआ। इनमें स्वयं महाराजा साहब भी उपस्थित थे। आप के भाषण की शैली पर महाराज मुग्ध हो गये थे। उन्होंने दो बार आपसे अपने राजप्रासाद में मुलाकात की थी। बाबूजी ने महाराजा साहब से कलकत्ते आने का अनुरोध किया। तदनुसार महाराजा साहब ई० सन् १८७५ में कल-कत्ता पधारे। इसके लिये लॉर्ड नॉर्थब्रुक (तत्कालीन वाइसराय) ने भी आप-को निमंत्रित किया था।

ई० सन् १८७४ में 'ज्ञान प्रकाश' के सम्पादक बाबा गोखले इन्दौर पधारे। महाराजा साहब ने आपका यथोचित स्वागत् किया। श्रीमान् का बहुत देर तक आपके साथ वाद विवाद हुआ था।

ई० सन् १८६७ में 'इन्दु प्रकाश' के सम्पादक लक्ष्मण शास्त्री इन्दौर पधारे। महाराजा साहब ने आपका बड़ा सम्मान किया।

ई० सन् १८७५ में पूना की सार्वजनिक सभा से मि० जी० डबल्यू० जोशी इन्दौर पधारे। महाराजा साहब ने बड़ी देर तक आपके साथ बात-चीत की और सीमा-सम्बन्धी मामले में आप से सलाह ली।

ई० सन् १८८३ में बाबू प्रतापचन्द्र मजूमदार इन्दौर आये। स्कूल में आपके प्रभावशाली अंग्रेजी भाषण हुए।

ई० सन् १८५४ में श्रीमान् गनपतराव हरिहर पटवर्धन (कुरुन्द-वाड़) और विधवा महारानी बायजाबाई सिंधिया इन्दौर पधारी थीं। और इसी वर्ष सातारा के राजा छत्रपति भी इन्दौर पधारे। आपका बड़ी धूम-धाम से स्वागत् हुआ।

ई० सन् १८७६ की १५ मार्च के दिन श्रीमान् भावनगर नरेश का इन्दौर में आगमन हुआ। दोनों महाराजाओं के बीच बड़ी प्रम पूर्ण बातचीत हुई।

ई० सन् १८७८ के मार्च में अक्कलकोट नरेश इन्दौर पधारे। आप लालबाग में ठहराये गये थे। महाराजा ने आपका बड़ा स्वागत् किया और एक हाथी, एक घोड़ा तथा खिलत आपको प्रदान की।

ई० सन् १८७८ के फरवरी मास में बम्बई के गवर्नर राइट ऑनरे-बल सर रिचर्ड टेम्बल यहां पधारे। आपका बड़ा स्वागत हुआ। राज्य की ओर से एक भोज भी आपको दिया गया। गवर्नर साहब ने महाराजा साहब की शासन सम्बन्धी योग्यता की बड़ी तारीफ की।

ई० सन् १८८० की १३वीं मार्च को बढ़वाण के ठाकुर साहब इन्दौर पधारे। युवराज बाला साहब ने आपका स्वागत् किया और आप लाल-बाग में ठहराये गये। इसी मास की १८ वीं तारीख के दिन ठाकुर साहब वापिस लौट गये। इसी साल की १३ जनवरी के दिन जनरल मीड इन्दौर आये। महाराजा साहब ने उनसे मुलाकात ली और उन्हें एक भोज भी दिया। २० वीं तारीख के दिन महाराजा ने आपके साथ कई विषयों पर बहस की। मीड साहब ने महाराजा साहब की शासन सम्बन्धी योग्यता की बड़ी तारीफ़ की। २१ वीं तारीख को जनरल साहब हैदराबाद के लिये रवाना होगये।

ई० सन् १८८२ के मार्च मास में श्रीमान् ट्रावनकोर नरेश इन्दौर पधारे। महाराजा साहब ने स्टेशन पर जाकर आपका स्वागत किया। आप भी लालबाग में ठहराये गये। आपके आगमन के उपलक्ष में महाराजा साहब

ने एक दरबार किया। इस दरबार में महाराजा साहब ने ट्रावनकोर नरेश और उनके युवराज को एक एक हीरे की अँगूठी भेंट की।

ई० सन् १८८२ के जुलाई में महाराजा सिंधिया फिर से इन्दौर पधारे। युवराज शिवाजीराव उर्फ बाला साहब ने आपका यथोचित स्वागत किया। इस समय महाराजा तुकोजीराव बद्रीनारायण की यात्रा करने गये हुए थे। युवराज ने सिंधिया नरेश को एक भोज दिया।

ई० सन् १८८२ के नवम्बर मास में महाराजा साहब ने कर्नाटक के नवाब से मुलाकात की। महाराजा ने नवाब साहब को ८०० रुपये नक़द और एक पोशाख भेंट में दी थी।

ई० सन् १८८४ के मई में हैदराबाद के नवाब साहब इन्दौर पधारे। आपका भी अच्छा स्वागत किया गया।

ई० सन् १८८४ के शीतकाल में लॉर्ड रेनडॉल्फ चर्चिल भारत में आये। आप इन्दौर भी पधारे थे। महाराजा साहब से बड़वाह मुकाम पर आपकी मुलाकाव हुई। आध घंटे तक बातचीत होती रही।

ई० सन् १८८५ के नवम्बर की १२ वीं तारीख के दिन तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड डफरिन का इन्दौर में शुभागमन हुआ। बडी धूमधाम के साथ आपका स्वागत किया गया।

इन्दौर की आर्थिक उन्नति।

एक लम्बे अर्से से इन्दौर-राज्य का खजाना खाली रहता चला आया था; पर महाराजा तुकोजीराव द्वितीय के राज्य-काल में उसकी दशा सुधरने लगी। इसका कारण और कुछ नहीं, केवल महाराजा साहब का शासन सम्बन्धी ज्ञान था। इस अध्याय में हम यह बतलायेंगे कि किस प्रकार महाराजा तुकोजीराव ने अपने खजाने को भरने की कोशिश की थी और किस प्रकार वे इस कार्य में सफलीभूत हुए थे। महाराजा तुकोजीराव बड़े ऊँचे दर्जे के खजानची थे। अपने Finance Minister का काम आप स्वयं ही

देखते थे। यहाँ तक कि सर टी० माधवराव और दीवान बहादुर आर० रघुनाथराव की दिवानगीरी के समय भी माल और खजाने का काम आप ही की देखरेख में था।

महाराजा तुकोजीराव के राज्यकाल के पहले फौज में बहुतसा धन खर्च कर दिया जाता था। वास्तव में देखा जाय तो मन्दसोर की संधि के बाद परिस्थिति कुछ ऐसी हो गई थी कि इतनी बड़ी सेना की कोई आवश्यकता प्रतीत न होती थी। तुकोजीराव ने अनावश्यक सेना घटा दी, इससे बहुत बचत होने लगी। इस प्रकार एक ओर तो आपने अनावश्यक खर्च को घटाना शुरू किया और दूसरी ओर राज्य की आमदनी बढ़ाने के आयोजन किये। इस दुहरी पद्धति का परिणाम यह हुआ कि जो खजाना बहुत वर्षों से खाली रहता आया था, वह अब पूर्णतया भरा रहने लगा। अब रियासत के खजाने में इतना रुपया हो गया था कि लाखों रुपये व्याज पर दिये जाने लगे। इतना होते हुए भी ४ करोड़ रुपये अलग ही सेव्हिंग केश में रख दिये गये थे।

कहने का तात्पर्य यह है कि महाराजा साहब ने रियासत का खर्च घटाकर आमदनी से कम कर दिया था। इससे खजाना धीरे धीरे भरने लग गया था। प्रत्येक वर्ष के खर्च के हिसाब को महाराजा साहब स्वयं देखते थे। पाठकों की जानकारी के लिये हम रियासत की भिन्न भिन्न वर्षों की आमदनी के अङ्क नीचे देते हैं। इन अङ्कों से मालूम हो जायगा कि किस प्रकार आपके राज्यकाल में रियासत की आमदनी बढ़ती गई।

ई० सन् १८१८..............५ लाख.

ई० सन् १८८२..............२२ लाख.

ई० सन् १८८७.............. ५१ लाख तेईस हजार.

इतने ही से महाराजा साहब संतुष्ट होगये हों यह बात नहीं थी। उनकी यह प्रबल इच्छा थी कि रियासत १ करोड़ की कर दी जाय। उनकी यह इच्छा सफल भी हुई। ई० सन् १८८६ में बलवन्तराव अनन्त शिंत्रे और मलाप्पा आदि सज्जनों ने १ करोड़ की आमदनी का बजट बनाकर
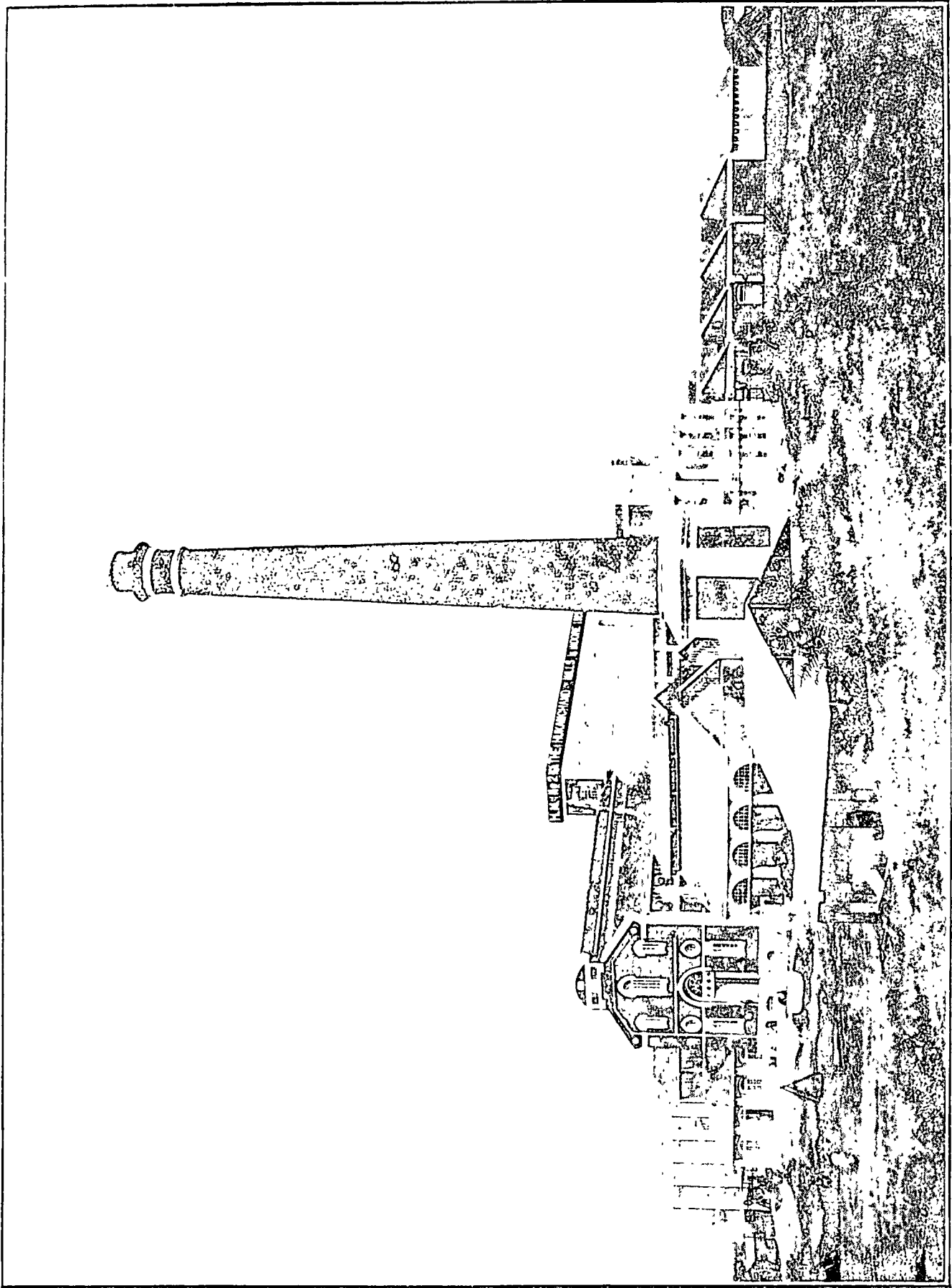
हुकुमचंद मिल नं० १, इन्दौर

महाराजा साहब के सम्मुख पेश किया। महाराजा साहब ने बड़ा भारी दरबार करके उसमें उक्त दोनों महानुभावों को इनाम दिया। रियासत की आमदनी को बढ़ाने के लिये किन किन उपायों का अवलम्बन किया गया, उसका भी उल्लेख कर देना यहाँ अनुपयुक्त न होगा। वे उपाय इस प्रकार थे:—

(१) राजा भाऊ फनसे को तराना पर्गने की जागीर दी गई थी, वह जब्त कर ली गई।

(२) सायर विभाग खोला गया और अमीनों के अधिकार से वह अलग कर दिया गया। इससे बहुत सी आमदनी होने लगी।

(३) खंडवा और इन्दौर के बीच रेलवे निकालने के लिये १ करोड़ रुपये भारत सरकार को व्याज पर दिये गये। इन रुपयों के व्याज स्वरूप ४½ लाख रुपया प्रति वर्ष रियासत को मिलने लगा।

(४) कोर्ट फी स्टाम्प चलाये गये।

(५) 'सरदेशमुखी' से भी रियासत को १ लाख रुपया प्रति वर्ष की आमदनी बढ़ी।

(६) जंगल खाता विभाग खोला गया। इससे भी राज्य की आमदनी बढ़ी।

(७) बहुत से आदमियों को बिना किसी खास कारण के ही जागीरें दे रखी थीं। महाराजा तुकोजीराव ने उनकी छानबीन की और जिनको जागीर देने की कोई आवश्यकता नहीं थी, अथवा जिनका उसपर कोई हक नहीं था उनकी जब्त कर ली।

महाराजा तुकोजीराव के राज्यकाल में किस प्रकार राज्य की आमदनी बढ़ती गई इस पर अधिक प्रकाश डालने के लिये हम ई० सन् १८८१–८२ की मध्य भारत एजन्सी की रिपोर्ट के कुछ वाक्य यहाँ उद्धृत करते हैं:—

"इन्दौर दरबार ने हमेशा के समान अपनी शासन-रिपोर्ट भेजी है। इससे मालूम होता है कि होलकर राज्य में कितनी नियमितता है। मेरा ख़याल था कि वहाँ की जन संख्या ६३५००० से अधिक न होगी, पर मर्दुमशुमारी

की रिपोर्ट को देखने से पता चलता है कि वह १०००००० से भी ऊपर है। गत चार वर्षों की होलकर राज्य के लगान (Revenue)की आमदनी इस प्रकार है:—

पहले वर्ष ५७६७००० रुपये
दूसरे „ ६१८२००० „
तीसरे „ ६६३६००० „
चौथे „ ७०७४४०० „

इन अङ्कों से पता चलता है कि आमदनी बड़ी तेजी के साथ बढ़ी है। महाराजा साहब की तो यह इच्छा है (यह इच्छा उन्होंने कई बार प्रदर्शित भी की है) कि यह आमदनी १ करोड़ तक पहुँच जाय।"

—सर लीपेल ग्रिफिन, के० सी० एस० आई०

महाराजा जयाजीराव सिंधिया से भेंट

ई० सन् १८६४ में महाराजा जयाजीराव सिंधिया मालवा प्रान्त में पधारे थे। पर कई कारणों से उस समय महाराजा तुकोजीराव के साथ उनकी मुलाकात न हो सकी। निदान ई० सन् १८७४ के नवम्बर में नर्मदा नदी के तीर पर इन दोनों नृपतियों की मुलाकात का मौक़ा आया। इस समय महाराजा जयाजीराव कानपुर और अलाहाबाद की ओर जारहे थे। महाराजा तुकोजीराव के कहने पर वहां से लौटते समय आप बड़वाह भी ठहरे। तीन दिन तक आप होलकर सरकार के मिहमान रहे। इसी समय से दोनों महाराजाओं के बीच घनिष्ट मैत्री होगई। यह मैत्री मरणपर्यन्त तक ज्यों की त्यों अटल रही। यहाँ से दोनों महानुभाव ओंकारेश्वर की यात्रा करने पधारे। गवालियर सरकार के प्रधान मंत्री रावराजा सर गनपतराव खड़के और होलकर सरकार के प्रधान मंत्री सर टी० माधवराव इन दोनों महानुभावों ने मिलकर मालवा सम्बन्धी कई महत्वपूर्ण प्रश्नों पर वाद-विवाद किया। सचमुच इन दोनों महानुभावों का यह मिलन बड़ा ही सुन्दर था।

यह मैत्री यहां तक बढ़ गई कि महाराजा सिन्धिया का वकील इन्दौर में और महाराजा होलकर का वकील ग्वालियर में रहने लगा। एक दूसरे के पास अपने वकीलों को रखने की यह बात एजन्सी ऑफिस तक पहुँची। पहले तो एजन्सी ने इसका कुछ विरोध किया, पर पीछे जाकर शान्ति पूर्वक सब बात तय होगई। महाराजा तुकोजीराव होलकर और महाराजा जयाजीराव सिन्धिया ने आजीवन एक दूसरे को अपना भाई समझा और वैसा ही बर्ताव भी रखा। महाराजा जयाजीराव कुछ समय के लिये इन्दौर के डेली कॉलेज में भी रहे थे। उस समय इन्दौर के राजवाड़े से प्रति दिन उनके लिये थाल जाता था। दशहरा अथवा अन्य त्यौहारों के दिन महाराजा तुकोजीराव उन्हें अपने महलों में बुलाते थे।

ई० सन् १८७७ के दिल्ली दरबार के समय महाराजा सिन्धिया होलकर की छावनी (Holker Camp) में गये थे। और वहां आपने एक भोज भी दिया था। भोजन स्वयं महाराजा जयाजीराव की देख रेख में बनाया गया था।

ई० सन् १८८१ में महाराजा होलकर मन्दसोर पधारे थे। उस समय महाराजा सिन्धिया ने आपके स्वागत के लिये जो पत्र और तार भेजे थे, उनसे साफ़ मालूम होता था कि वे महाराजा तुकोजीराव को बड़ी प्रेम पूर्ण और आदर की दृष्टि से देखते हैं।

ई० सन् १८७९ में महाराजा सिन्धिया और महाराजा होलकर की फिर मुलाकात होगई। इस समय महाराजा जयाजीराव अपने मालवा स्थित राज्य में दौरा करने आये हुए थे। दौरा करते करते आप उज्जैन पधारे। महाराजा होलकर को यह ख़बर लग गई। बस, फिर क्या था! झट उन्होंने आप से इन्दौर आने के लिये आग्रह किया। भला इस आग्रह को वे टाल ही कैसे सकते थे? १२ अगस्त के दिन महाराजा जयाजीराव की सवारी इन्दौर पधारी। बड़ी धूमधाम के साथ आपका स्वागत किया गया। दरबार भराया गया जिसमें दोनों महाराजा एक ही गद्दी पर बिराजे। भोज दिया गया

और आतिशबाजी भी छोड़ी गई। जब छोटे और बड़े बालासाहब ने महाराजा जयाजीराव की पान सुपारी की तब आपने कहा कि "यह तो मेरा घर ही है। आप क्यों पान सुपारी की रस्म अदा करते हैं?"

महाराजा तुकोजीराव के कहने से आप इन्दौर की कॉटन मिल को देखने के लिये भी पधारे थे। इन्दौर में मिल देखकर आपको बड़ा सन्तोष हुआ। १८ तारीख को आप वापिस उज्जैन लौट गये।

महाराजा तुकोजीराव की योग्यता।

श्रीमान् महाराजा तुकोजीराव की वक्तृत्व शक्ति खूब बढ़ी चढ़ी थी। आप प्रत्येक विषय पर बड़ी गंभीरता से बोलते थे। समालोचना करने में भी आप सिद्धहस्त थे। प्रत्येक विषय पर आप बड़े गवेषणा पूर्ण विचार प्रकट करते और प्रत्येक बात को बड़े ध्यान पूर्वक सुनते थे। अपने इन्हीं गुणों के कारण आप भारत के जिस किसी बड़े शहर में पधारते थे वहाँ आपका सम्मान होता था। यहाँ पर इस विषय में कुछ उदाहरण देना अनुपयुक्त न होगा। सर० टी० माधवराव को दीवानगीरी का पद प्रदान करते समय जो दरबार हुआ था उसमें महाराजा ने एक भाषण दिया था। इस भाषण से स्पष्ट प्रकट होता था कि महाराजा साहब एक जबर्दस्त सार्वजनिक व्याख्याता थे। सर० टी० माधवराव की ओर इसारा करते हुए महाराजा ने कहा था कि "दीवान साहब राज्य में सुधार करने के लिये बुलाये गये हैं। सुधार कार्यों में जहाँ तक हो सके यहाँ के नागरिकों से ही काम लेना चाहिये। हाँ, जब विदेशियों के विना कार्य चल ही न सके तब उनको अवश्य बुलाना चाहिये।" महाराजा साहब ने सर० टी० माधवराव से यह बात खास तौर से कही थी कि वे राज्य ही के आदमियों को शासन के योग्य बनावें। आगे चल कर आपने फिर कहा "कि सुधार के भाव प्रजा की अन्तरात्मा में पैदा करना चाहिये न कि उन पर ऊपर से लाद देना चाहिये।" पूना की सार्व-

जनिक सभा और बम्बई-निवासियों ने महाराजा साहब को अभिनन्दन-पत्र दिये थे। इन अभिनन्दन-पत्रों के जवाब में महाराजा साहब ने जो कुछ कहा था वह भी आपके वक्तृत्व-कला के ज्ञान को प्रदर्शित करता है।

आपके राज्य-काल में बङ्गाल के सुप्रख्यात् वक्ता बाबू केशवचन्द्र सेन इन्दौर पधारे थे। यहाँ पर उनका व्याख्यान सुनने के लिये महाराजा साहब के सभापतित्व में एक सभा की गई थी। इस सभा में महाराजा साहब ने सभापति की हैसियत से जो भाषण दिया था उसे सुनकर लोग बड़े खुश हुए थे। आज से ७० वर्ष पूर्व एक देशी नरेश का इतना देशभक्त और सार्वजनिक कार्यकर्ता होना सचमुच आश्चर्य की बात है।

एक समय महाराजा तुकोजीराव ने अपने भाषण में उदयपुर के प्राचीन राज-वंश के प्रति बड़ी भक्ति प्रदर्शित की थी। सुप्रख्यात् महादजी सिन्धिया के हृदय में भी इस राज-वंश के प्रति बड़ा आदर था।

ई० स० १८७७ में दिल्ली में एक दरबार हुआ था और इस दरबार के बाद ही वहाँ एक सभा भी हुई थी। इस सभा में श्रीमान् महाराजा तुकोजीराव ने बड़ा सारगर्भित भाषण दिया था। इसके अतिरिक्त आपको जब जी० सी० एस० आई, की उपाधि मिली थी तब भी सम्राज्ञी को धन्यवाद देने के लिये एक सार्वजनिक सभा की गई थी। इसमें भी आपने बड़ा प्रभावशाली भाषण दिया था। इन व्याख्यानों से पता चलता था कि आपके बिचारों में प्रजातन्त्र और राजतन्त्र की भावनाओं का बड़ा सुन्दर सम्मिश्रण था।

कहने का तात्पर्य यह है कि कोई भी प्रमुख दरबार ऐसा न होता था जिसमें महाराजा साहब कुछ न कुछ न बोलते हों अथवा बोलने की इच्छा न रखते हों। आपके भाषण उपमाओं और नज़ीरों से परिपूर्ण रहते थे जिससे सुनने वालों पर जादू का सा असर होता था।

महाराजा तुकोजीराव के मज़ाकी स्वभाव के लिये कई दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। आपने देश देशान्तरों का भ्रमण किया था। आपको पढ़ने का भी बड़ा शौक था। प्रत्येक नई खबर से आप जानकारी रखते थे।

इन कई कारणों से आप में भले बुरे की पहचान करने की अच्छी योग्यता आगई थी।

महाराजा तुकोजीराव ने किस प्रकार एक चतुर राजनीतिज्ञ की तरह बृटिश भारत के अंग्रेजी शासन की समालोचना करते हुए उसकी प्रकाशमय और अन्धकारमय दोनों बाजुओं को बतलाया था, इसका वर्णन जनरल सर हेनरी डेली ने अपनी वार्षिक रिपोर्ट में प्रकाशित किया था। जब कभी कोई सार्वजनिक अथवा राजनैतिक प्रश्न उपस्थित होता महाराजा साहब जल्द ही उसकी समालोचना कर डालते थे। कभी २ आप ऐसे विषयों पर अपनी विचारपूर्ण राय गवर्नर जनरल के पास भी भेजते थे। जब ब्रह्मदेश अंग्रेजी-राज्य में मिलाया गया तब महाराजा तुकोजीराव को भारत सरकार की यह नीति ठीक न जँची। उन्होंने तुरन्त गवर्नर जनरल को लिखा कि "यह कार्य सम्राज्ञी विक्टोरिया की ई० स० १८५८ की घोषणा के विरुद्ध है। यदि वहाँ के राजा थीवा ने कुछ अपराध भी किया है तो यह कोई ऐसा कारण नहीं है कि जिसके आधार पर उस सारे के सारे राजवंश का हक मार कर ब्रह्मदेश भारत-सरकार हड़प कर ले।" हमारे पास स्थान नहीं है अन्यथा हम महाराजा की इस सम्बन्ध में सर लीवेल ग्रिफिन और अन्य प्रसिद्ध बृटिश अधिकारियों के साथ जो बातचीत हुई थी उसका भी सारांश यहाँ देते। कहाँ तो वे भारतीय नरेश जो स्वयं अपनी रियासतों के शासन सम्बन्धी प्रश्नों पर भी सरकार के साथ बहस नहीं कर सकते और कहाँ महाराजा तुकोजीराव कि जो न केवल अपनी रियासत ही के प्रश्नों पर वरन् समस्त भारत के राजनैतिक प्रश्नों पर भारत सरकार के साथ सारगर्भित और गवेषणपूर्ण बहस करते थे।

इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं कि महाराजा तुकोजीराव अंग्रेजी शासन के प्रशंसक थे। इतना ही नहीं, वरन्—जैसा कि वे बार २ कहा करते थे—वे अंग्रेजी राज्य और सम्राट् के सच्चे हितचिन्तक भी थे। पर इससे वे बृटिश अधिकारियों के सिद्धांतहीन कार्यों की निन्दा करने में तनिक भी नहीं हिचकते थे।

आमतौर से यह बात प्रचलित है कि महाराजा तुकोजीराव बड़े अनुदार विचारों के (Conservative) थे। पर हमारे पास प्रमाण मौजूद हैं जिनके आधार पर हम कह सकते हैं कि महाराजा क्या सामाजिक और क्या राज-नैतिक सभी विषयों में सुधार (Reforms) के पक्षपाती थे। आपने अपने राज्य में 'पंचायत पद्धति' शुरू की जिसने कि बड़ी ही सफलता पूर्वक कार्य किया। इस सम्बन्ध में राज्य के 'मल्लारी मार्तण्ड विजय' नामक पत्र में जो विचार प्रकाशित हुए थे उन्हें हम यहाँ उद्धृत करते हैं:—

"होल्कर राज्य की प्रजा के लिये पंचायत पद्धति कोई नई बात नहीं है। कैलाशवासी श्रीमान द्वितीय तुकोजीराव के राज्यकाल में दिवानी और फ़ौजदारी के मामलों में इस पद्धति का उपयोग किया जाता था। यह पद्धति बड़ी सफलीभूत हुई थी।" यह बात एक सुप्रसिद्ध अंग्रेजी पत्र के उद्धरण पर से और भी स्पष्ट हो जायगी:—

"इन्दौर राज्य की शासन रिपोर्ट को पढ़ने से मालूम होता है कि दिवानी और फौजदारी मामलों को तय करने के कार्य में पंचायत पद्धति बड़ी ही कामयाब हुई है। इस पद्धति को जारी करने से महाराजा होल्कर की प्रजा में न्याय की अभिवृद्धि हुई है। श्रीमान् महाराजा साहब को भी इसमें आशातीत सफलता प्रतीत होती है। न्याय विभाग के एक प्रतिष्ठित अधिकारी ने तो यहां तक कहा है कि न्यायाधीशों के मार्ग में आने वाली एक बड़ी भारी कठिनाई इस पद्धति से दूर हो गई है। यह कठिनाई और कुछ नहीं, गवाहों के सत्यासत्य का निर्णय करना है। इसमें चार जज जनता की ओर से और एक सरकार की ओर से निर्वाचित किये गये। इस पद्धति के प्रचार से एक और भलाई उत्पन्न हुई है। जनता यह जानने लग गई है कि अब केवल अधिकारियों के सिर पर दोष मढ़ देने ही से काम न चलेगा।

जो पद्धति इन्दौर में इतनी सफलता पूर्वक चल निकली थी वह आगे चल कर क्यों बन्द हो गई इसका कोई कारण मालूम नहीं होता।"

श्रीमान् महाराजा साहब तुकोजीराव ने एक समय दरबार में भाषण

देते हुए इन्दौर में बृटिश पार्लियामेन्ट अथवा मैसूर प्रतिनिधि सभा के जैसी एक छोटी सी प्रतिनिधि सभा कायम करने की अपनी उत्कट अभिलाषा प्रकट की थी। पर परिस्थिति की प्रतिकूलता के कारण महाराजा साहब की यह इच्छा मन की मन ही में रह गई।

ई० स० १८७१ में गणेश शास्त्री और अन्य बहुत से प्रतिष्ठित सज्जन इंग्लैंड की यात्रा करके वापस इन्दौर में लौट आये। इस समय इन लोगों के खिलाफ़ जाति में बड़ा भारी आन्दोलन खड़ा हुआ। पण्डितों और शास्त्रियों ने उन्हें जाति में लेने से इनकार कर दिया। इस समय महाराजा ने गणेश शास्त्री का पक्ष लेकर बड़ी बुद्धिमानी के साथ पंडितों और शास्त्रियों को समझा दिया। गणेश शास्त्री जाति में सम्मिलित कर लिये गये।

महाराजा तुकोजीराव स्त्री-शिक्षा के कट्टर पक्षपाती थे। न्याय विभाग के सम्बन्ध में महाराजा साहब का यह मत था कि जनता को उसके मुखियाओं द्वारा ही न्याय मिला करे तो अधिक ठीक हो। आप समझौतों के (Compromises) बड़े पक्षपाती थे। इस सम्बन्ध का आपने एक सरक्यूलर भी प्रकाशित किया था। इस सरक्युलर के अनुसार उन न्यायाधीशों को अधिक सम्मान प्रदान किया जाता था जो कि अधिक समझौते करवाते थे।

पञ्चायत और सरकार भिन्न २ नहीं यह बात लोगों पर प्रकट करने के हेतु से सरकार को अपनी पैदावार का कुछ हिस्सा पंचायतों को प्रदान करना चाहिये। लोगों की यह मांग सात्विक है अतएव इसे मान्य करना प्रत्येक विचारवान राज्याधिकारी का कर्तव्य है। पंचायतें स्थापित होजाने से सरकार को राज्यव्यवस्था के कार्य में बड़ी सहायता मिलेगी। संयुक्त प्रान्त के पुलिस विभाग के सुपरिन्टेन्डेन्ट मि० गेलेवो कहते हैं कि:—"पंचायत पद्धति के स्थापित होजाने से पुलिस और जनता के बीच का सम्बन्ध अच्छा हो जायगा।" कहने का तात्पर्य यह है कि पंचायत पद्धति के शुरू होजाने से जनता में जवाबदारी के भाव उत्पन्न हों। जवाबदारी के भाव उत्पन्न होने से देश की आर्थिक और शिक्षा सम्बन्धी प्रगति में सहायता पहुँचेगी।

वैदेशिक नीति

आपकी वैदेशिक नीति सम्बन्धी योग्यता देखते ही बनती थी। आपकी वैदेशिक, नीति मिलनसारी, और निर्भयता बुद्धिमता पूर्ण थी। माननीय वाईसराय लॉर्ड डफरिन जो कि एक तीक्ष्ण राजनीतिज्ञ थे, आपकी राजनैतिक प्रतिभा के विषय में बड़ा ऊँचा खयाल रखते थे। कई बड़े २ यूरोपियन और हिन्दुस्तानी अधिकारी महाराजा साहब की असाधारण राजनैतिक योग्यता और परिपक्व अनुभव को देखकर आश्चर्यान्वित हो जाते थे। भारत सरकार और भारतीय नरेशों के बीच समय २ पर जो गम्भीर प्रश्न उपस्थित हो जाते थे उन्हें महाराजा तुकोजीराव बात की बात में हल कर दिया करते थे। आप स्वयं ही अपने वैदेशिक मंत्री और रेसिडेन्सी वकील थे। आपके वकील केवल आपकी बतलाई हुई बातों को रेसि-डेन्ट के सामने जाकर कह दिया करते थे। महाराज ने भूम्यधिकार (Territorial reward) के सम्बन्ध में जो लम्बी लिखा पढ़ी भारत सरकार के साथ की थी उससे आपकी दूरदर्शिता और पूर्ण राजनीतिज्ञता स्पष्ट झलकती है। आप जब भारत सरकार के वैदेशिक विभाग में किसी खास विषय का खरीता भेजते तो उसका प्रत्येक शब्द और वाक्य इस प्रकार चुन २ कर लिखवाते थे कि जिससे आपकी बुद्धिमता प्रकट होती थी। यद्यपि आप का अंग्रेजी ज्ञान अधिक न था तथापि आपको इस भाषा के कुछ खास २ ऐसे शब्द और वाक्य मालूम थे कि जिनसे पढ़नेवाले पर उनका गहरा असर पड़ता था। लॉर्ड नॉर्थब्रुक एक बुद्धिमान और हमदर्द वाइसराय थे। ये वाईसराय महाराज की योग्यता और कार्य कुशलता को देखकर उन पर मोहित हो गये थे। न केवल कई देशी नरेश ही वरन् कभी २ वाइसराय तक आप से सलाह लिया करते थे।

ई० स० १८७५ में बड़ौदा रियासत में जो पेंचीदा प्रश्न उपस्थित हो गया था उसमें वाइसराय ने आपकी बहुमूल्य सलाह ली थी। आप और

धार राज्य की रक्षा का प्रयत्न

पाठक जानते हैं कि ई० सन् १८५७ में जब सारे भारतवर्ष में विद्रोहाग्नि ने अपना प्रचण्डरूप धारण किया था, उस समय धार-राज्य के कुछ सैनिक भी इस बलवे में शामिल हो गये थे। तत्कालीन धार-नरेश उस समय बालक थे। वे बलवे को दबाने में नितान्त असमर्थ थे। पर महाराज की नाबालिग अवस्था का कोई खयाल न कर धार-राज्य जब्त कर लिया गया था। उस समय श्रीमान् तुकोजीराव द्वितीय ने बड़े यत्न के साथ धार राज्य की किस प्रकार रक्षा की थी उसी का संक्षिप्त रूप से यहां विवेचन किया जायगा। इसका विस्तृत वर्णन पाठकों को जॉन डिकिन्सन लिखित "Dhar not restored" नामक पुस्तक में मिलेगा। मि० हेमिल्टन के वापस इंग्लैंड लौट जाने और कर्नल डूरन्ड की लन्डन स्थित इन्डिया कौंसिल में नियुक्ति होजाने के बाद कई अंग्रेजों और महाराज के बीच जो सम्बन्ध होगया था वह सब पर प्रकट ही है। इन्हीं अंग्रेज मित्रों की सहायता से धार के प्रश्न को महाराज सफलता पूर्वक हल करवाने में समर्थ हुए थे।

यह तो मानी हुई बात है कि यदि कोई नरेश अथवा सद्‌गृहस्थ अपने अंग्रेज मित्रों की सहायता से अपना कोई कार्य करवा ले तो इसमें कोई बुराइ नहीं। पाठक जानते हैं कि महाराज तुकोजीराव ने सर राबर्ट हैमिल्टन की देख रेख में शिक्षा प्राप्त की थी और वे कई सुप्रख्यात अंग्रेजों के प्रीतिभाजन बन गये थे। महाराज में यह एक खूबी थी कि जिस बात की सत्यता में उनका विश्वास हो जाता उसमें वे अधिकारी मण्डल के विरोधी रहने पर भी जी जान से कोशिश करते थे। आपकी इसी खूबी ने आपको Dhar Rstoration Case में सहायता देने के लिये प्रवृत्त किया।

लॉर्ड स्टेनले, राइट ऑनरेबल मि० वाइट एम. पी., मि० जे० बी० स्मिथ आदि सज्जनों और अन्य कई प्रतिष्ठित महानुभावों ने हाउस ऑफ कॉमन्स और इन्डिया ऑफिस में धार राज्य के प्रश्न में बड़ा भाग लिया था।
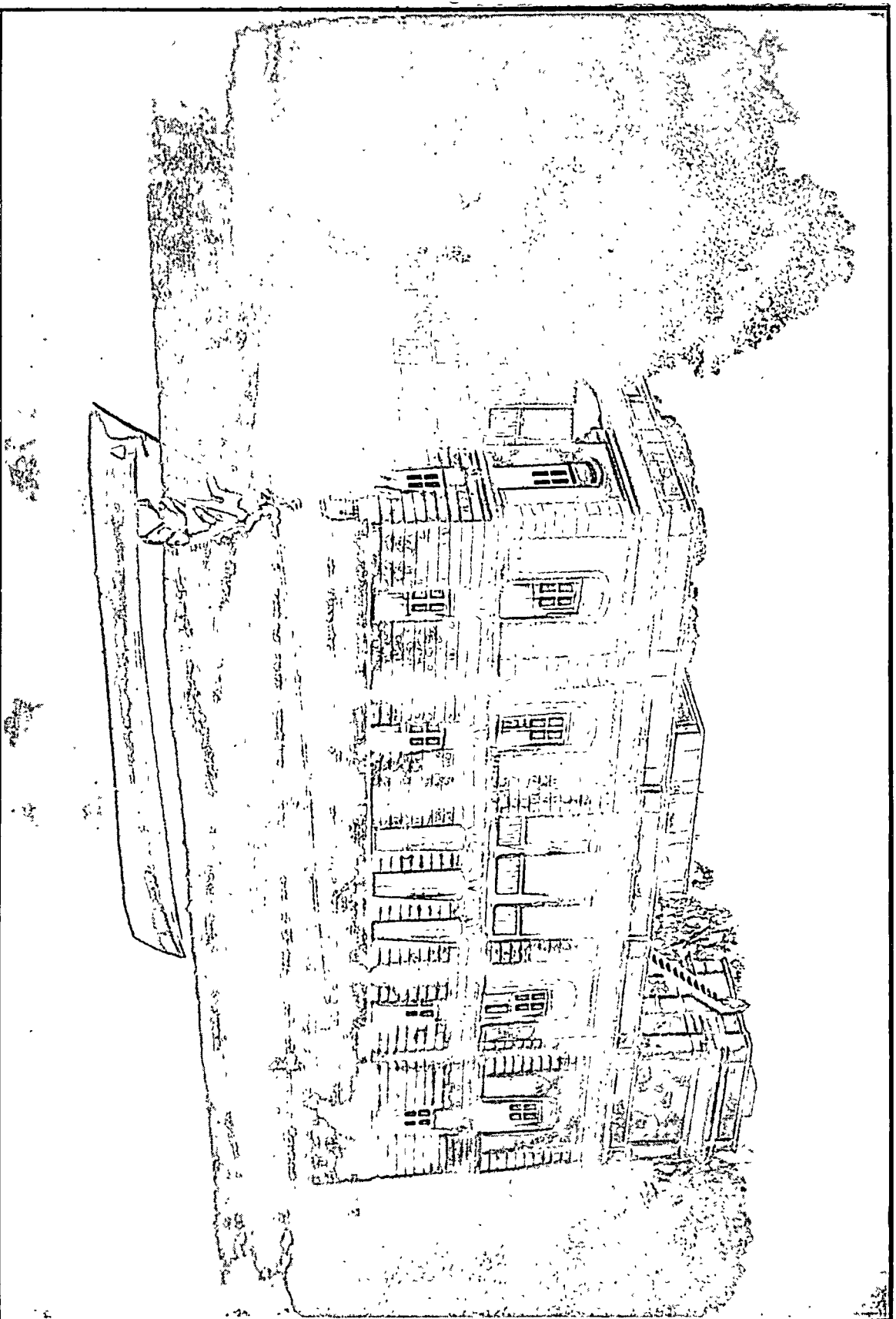
सुख-निवास, इन्दौर ।

ईधर महाराज तुकोजीराव ने रामचन्द्रराव भाऊ और कर्नल फेनविक की मार्फत अपने अंग्रेज मित्रों द्वारा इस कार्य में सहायता पहुँचाई।

धार के प्रश्न को अपने हाथ में ले लेने के कारण महाराज तुकोजी-राव की कर्नल डूरण्ड के साथ और भी दुश्मनी होगई। इस विषय की अधिक जानकारी पाठकों को 'Sir Henry Durand's Life और मेजर ईव्हन्स बेल लिखित 'Letter to Mr. H. M. Durand' नामक पुस्तकों से मिलेगी। कहने की आवश्यकता नहीं कि सर राबर्ट हेमिल्टन महाराज के जितने पक्ष में थे उतने ही कर्नल डूरन्ड उनके विरोधी थे। इस बात की पुष्टि कर्नल फेनविक के पत्रों से होती है। कर्नल फेनविक इन्दौर दरबार के गुप्त राजनैतिक विभाग के सेक्रेटरी थे।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि यदि महाराज होल्कर धार सम्बन्धी मामले में इतना भाग न लेते तो ई० स० १८५७ के गदर के समय में उन्होंने अंग्रेजी सरकार की जो सहायता की थी उसके उपलक्ष्य में थोड़ा बहुत प्रदेश उन्हें अवश्य मिलता। पर ऐसा नहीं हुआ। महाराज होल्कर ने अपने निजी लाभ की कुछ भी परवाह न कर अपने सारे अहसानों को धार के मामले में खर्च किये।❀

भारतीय सरकार का रुख देखकर जनता का विश्वास होगया था कि धार-राज्य अब अंग्रेजी राज्य में मिला लिया जायगा। पर अन्त में होम गव-र्नमेंट ने न्याय का विचार कर धार को वापस लौटा देने का हुक्म दे दिया। पाठकों को स्मरण रहे कि इसका सारा श्रेय महाराजा तुकोजीराव और उनके अंग्रज मित्रों को है।

इस सम्बन्ध में सर मार्टिमर डूरन्ड साहब ने अपनी Life of Sir Henry Durand' नामक पुस्तक में निम्नलिखित विचार प्रकट किये हैं—

❀ इस विषय की अधिक जानकारी के लिये पाठक 'Hansard' के Vol, 155-1859, Vol. 174-1864 (22nd April)Vol 175-1864 (17th June) को देखें।

"इस समय मेरे पिता के चरित्र और व्यवहार पर इंग्लैंड में बड़े जोरों के साथ आरोप किया गया है। कारण कि मि० जॉन डिकिन्सन नामक एक अंग्रेज ने—जो कि पेम्फलेट छपवाने का काम करता था—महाराज तुकोजीराव के साथ अपनी घनिष्ठता बढ़ाकर धार की देशी रियासत के मामले में बड़े जोरों के साथ बहुतसी गलत-फ़हमियाँ फैला दी थीं।"

कर्नल डूरन्ड इस समय वैदेशिक-विभाग के मंत्री थे और तत्कालीन व्हाइसराय सर जॉन लॉरेन्स के साथ उनकी थोड़ी सी अनबन भी हो गई थी। इन व्हाइसराय महोदय ने अपने १३ मार्च सन् १८६८ के एक पत्र में जो विचार प्रकट किये हैं उससे स्पष्ट मालूम हो जायगा कि डूरन्ड साहब कैसे स्वभाव के मनुष्य थे। पत्र इस प्रकार है:—

"मैं सत्यता पूर्वक कह सकता हूँ कि सर हेनरी डूरन्ड को कौंसिल के मेम्बर बनाने में मैंने भी सहायता की है, पर जब से उन्होंने कौंसिल में प्रवेश किया है, मेरी और उनकी नहीं पटती। वे अपनी जिद्द के इतने पक्के हैं कि उनके साथ काम करना बड़ा मुश्किल है। उन्होंने अवध-लगान के प्रश्न और शिमला की बहस में मेरा विरोध किया। इतना ही नहीं प्रत्युत् उन्होंने मुझ पर अनुचित दोषारोपण करके मुझे भला बुरा भी कहा। जब से मैंने कौंसिल के मेम्बरों के खर्चें के सम्बन्ध का सवाल उठाया है तब से तो बड़ा ही झगड़ा उठ खड़ा हुआ है। इस सम्बन्ध में कई बातें बढ़ा २ कर फैलाई गई हैं। मैं कह सकता हूँ कि मैंने इस प्रश्न के सम्बन्ध में जो कुछ कहा वह केवल कौंसिलरों के हित के लिये कहा। पर उन्होंने इसका मतलब कुछ और ही समझा और अपनी इस प्रकार की राय दी कि यदि वे उसे वापस न ले लेते तो हम दोनों में से एक को अवश्य ही कौंसिल से इस्तीफ़ा दे देना पड़ता। इसी समय से हम दोनों परस्पर विरोधी हो गये हैं।"

कहने का तात्पर्य यह कि कर्नल डूरन्ड का स्वभाव ही कुछ ऐसा था कि वे झगड़े को पसन्द करते थे। हिन्दुस्तान के राजा महाराजाओं के प्रति उनके हृदय में सहानुभूति नहीं थी।

हम ऊपर कह चुके हैं कि महाराज तुकोजीराव होल्कर ने अपने अंग्रेज मित्रों की सहायता से धार के प्रश्न में बड़ा भाग लिया था। इस कार्य में वे सफल भी हुए। ई० स० १८६४ में धार-नरेश के हाथ में उनके राज्य का शासन सौंप दिया गया। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस कार्य को करने में महाराज तुकोजीराव को बहुत बड़ा स्वार्थ त्याग करना पड़ा था।

ई० स० १८६१ से १८६५ तक कर्नल डूरन्ड वैदेशिक मंत्री के पद पर थे। उन्हें यह मालूम हो गया था कि महाराज होल्कर अपने अंग्रेज मित्रों की सहायता से धार के प्रश्न में भाग ले रहे हैं। इस समय कर्नल हंगरफोर्ड, कर्नल ईलियट और कर्नल हचिसन आदि सज्जनों ने महाराज तुकोजीराव की राजभक्ति की प्रशंसा करते हुए लॉर्ड केनिंग और एल्फिन्स्टन के के पास कई रिपोर्टें भेजीं। पर कर्नल डूरन्ड ने इन रिपोर्टों का घोर विरोध किया, इतना ही नहीं प्रत्युत् उसने उक्त कर्नलों की बड़ी निन्दा भी की। पर अन्त में सत्य सत्य ही निकला। कर्नल डूरन्ड की बातें मिथ्या सिद्ध हुईं।

वैदेशिक मंत्री के पद पर होने के कारण भारत सरकार के राजनैतिक विभाग पर कर्नल डूरन्ड का पूरा अधिकार था। पर वे इस अधिकार का बड़ा दुरुपयोग करते थे। जब कभी महाराज होल्कर अपनी गदर के समय प्रदर्शित की गई राजभक्ति के उपलक्ष्य में कुछ बदला चाहने की इच्छा से वाइसराय से लिखा पढ़ी करते तब ही कर्नल डूरन्ड झट उस पर अपनी विरोध सूचक राय लिख देते। कहने का मतलब यह है कि कर्नल डूरन्ड महाराज होल्कर के मार्ग में बड़े २ रोड़े अटकाते थे। हम नीचे उन आश्वासनों का उल्लेख करते हैं जो समय २ पर महाराज होल्कर को भारत सरकार की ओर से दिये जाते थे। इनसे पाठकों को मालूम हो जायगा कि साम्राज्य सरकार महाराजा तुकोजीराव की सेवाओं को जानती थी और वह उन्हें इनके बदले पुरस्कार देने के लिये भी सोच रही थी पर कर्नल डूरन्ड महाराज के हित में बाधक हो रहे थे :—

"हम आशा करते हैं कि आप शीघ्रही उन नरेशों, सरदारों और अन्य

सज्जनों की सूची हमारे पास भेजेंगे जिन्होंने कि गदर के समय बृटिश साम्राज्य के साथ राजभक्ति और मित्रता का परिचय दिया है। इसके साथ ही यह भी लिख भेजिये कि उन्होंने क्या क्या सेवाएँ की हैं और उन्हें इनाम देने का सब से अच्छा तरीका आपकी राय में क्या है ? उन्हें कुछ मुल्क दिया जाय, पेन्शनें दी जाँय अथवा पदवियाँ दी जाँय ?"

"हमें विश्वास है कि इस सूची में सिन्धिया, होल्कर, निजाम और नेपाल-नरेश तथा सालारजंग और जंगबहादुर के सुयोग्य और प्रभावशाली दीवानों के नाम सब से ऊपर रहेंगे।"

"जिन पर हम प्रत्युपकार करना चाहते हैं उनके लिये ऊपर बतलाये तरीकों में से प्रथम तरीका ही सर्वश्रेष्ठ होगा।"

यद्यपि समय २ पर इस प्रकार के अश्वासन दिये जाते थे तथापि कर्नेल डूरन्ड के वैदेशिक मंत्री के पद पर होने के कारण ये अश्वासन जहाँ के तहाँ रह जाते थे।

महाराजा तुकोजीराव का धार के मामले में भाग लेने का कार्य कलकत्ते के बृटिश अधिकारियों को अच्छा न लगा, अतएव उन्होंने भी आपके मार्ग में कई बाधाएँ डालीं।

यहाँ यह बात भी ध्यान में रखने लायक है कि यदि धार-राज्य जब्त कर लिया जाता तो—जैसा कि होम-गवर्नमेन्ट और भारत सरकार ने उन्हें आश्वासन दिया था—महाराज होल्कर को भी उसमें से कुछ इनाम मिल जाता। हाँ साम्राज्य-सरकार बृटिश भारत में से आपको कुछ भी देने के लिये तैयार नहीं थी। यह सब हानि महाराज को धार नरेश की सहायता करने के कारण उठानी पड़ी।

ई० स० १८५८ के जनवरी मास की २९ वीं तारीख को तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड केनिंग ने सर राबर्ट हेमिल्टन को जो पत्र भेजा था उसमें लिखा था कि "उन्होंने (महाराजा होल्कर ने) अपना आचरण ऐसा रखा था कि जिससे उनकी राजभक्ति में सन्देह करने के लिये कोई प्रमाण नहीं

मिलता।" आगे चलकर ई० स० १८५९ के २६ मार्च के पत्र में उन्होंने महाराज होल्कर को कुछ भूम्यधिकार (Territorial Grant) प्रदान करने की इच्छा भी प्रकट की थी। पर जैसा कि हम बार २ कह चुके हैं धार के मामले में पड़जाने के कारण यह बात जहाँ की तहाँ दब गई।

मैसूर को पुनः हिन्दू राज्य बनाने के प्रयत्न

इतिहास के पाठकों को मालूम होगा कि हैदर अली नामक एक मुसलमान ने मैसूर के महाराज की सेना में भर्ती होकर धीरे २ अपना अधिकार बढ़ा लिया था। यह नौबत यहाँ तक आ पहुँची कि कुछ ही दिनों में वह वहाँ के हिन्दू राजा को अलग कर स्वयं राज्य का मालिक बन बैठा। हैदरअली के बाद उसका पुत्र टीपू मैसूर के राज्य का अधिकारी हुआ। टीपू और अंग्रेजों के बीच युद्ध हुआ जिसमें टीपू मारा गया। अब यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि मैसूर की राज-गद्दी पर कौन बिठाया जाय। अन्त में यह राज-गद्दी मैसूर के प्राचीन हिन्दू शासक के वंशज को दी गई, पर शासन की व्यवस्था ठीक न रहने के कारण वहाँ के लोगों ने बलवा किया। ई० सन् १८३१ में बृटिश सरकार ने यह बलवा शान्त करके महाराज को गद्दी से अलग कर दिया। बृटिश कमिशन द्वारा राज्य का भार चलाया जाने लगा। कुछ वर्षों के बाद फिर प्रश्न उपस्थित हुआ कि मैसूर की राज-गद्दी पर कौन बिठाया जाय?

इस समय महाराजा तुकोजीराव द्वितीय ने मैसूर का राज्य उसके प्राचीन हिन्दू राजवंश को दिलाने के लिये जो प्रयत्न किये वे सचमुच स्तुत्य थे। यद्यपि इसमें महाराजा होल्कर का कोई लाभ नहीं था तथापि उनके हृदय की उदारता और सदाशयता ने उन्हें इस कार्य में हाथ डालने के लिये मजबूर किया। उनसे देखा नहीं जाता था कि एक हिन्दू राजा इस प्रकार उनके सामने अपने अधिकारों से वंचित किया जाय।

भारत और इंग्लैण्ड में इस प्रश्न पर गरमा-गरम बहसें हुईं। इसी

समय महाराजा तुकोजीराव ने व्हाइसराय को लिखा कि एक सन्धिशुदा राज्य (Treaty state) को इस प्रकार एक सनद याफता रियासत (Sanad state) में परिवर्तित करना घोर अन्याय है ।

हमारे पास ऐसे साधन नहीं हैं कि जिनसे हम इस प्रश्न की तह में बैठ सकें तथापि इतना हम अवश्य कहेंगे कि गत अर्द्ध शताब्दी में भारत के देशी नरेशों में कोई भी ऐसे साहसी नरेश नहीं हुए कि जिन्होंने ऐसे राजनैतिक प्रश्नोंपर अपने विचार इस प्रकार की स्वतन्त्रता के साथ प्रकाशित किये हों। आपके मन्त्री बख्शी खुमानसिंहजी सी० एस० आई० ने सर लीपेल को इस सम्बन्ध में जो जवाब दिया था उससे स्पष्ट प्रकट होता है कि महाराजा तुकोजीराव आजकल से नहीं वरन् ई० सन् १८६६ से ही मैसूर के मामले में दिलचस्पी से भाग ले रहे थे ।

भारत के प्रिय व्हाइसराय लॉर्ड रिपन ने ई० सन् १८८१ में बालक महाराजा को मैसूर के राज्य-सिंहासन पर बिठा दिया । उन्हें इस बात से बड़ी प्रसन्नता हुई कि महाराजा होल्कर ने मैसूर राज्य को उसके वास्तविक हिन्दू अधिकारी को दिलवाने के कार्य में इतनी जी जान से कोशिश की । सचमुच लॉर्ड रिपन भारतीय नरेशों और जनता के सच्चे हितैषी थे। महाराजा तुकोजीराव को भी अपने प्रयत्नों को फलीभूत होते देखकर अपार आनन्द हुआ । ऐसे परोपकार के कार्यों में आनन्द मानने वाले पुरुष इस संसार में बिरले ही होते हैं । महाराजा तुकोजीराव के इस आनन्द का पता पाठकों को उस बातचीत से हो जायगा जो कि उन्होंने वाइसराय महोदय लार्ड रिपन के साथ की थी ।
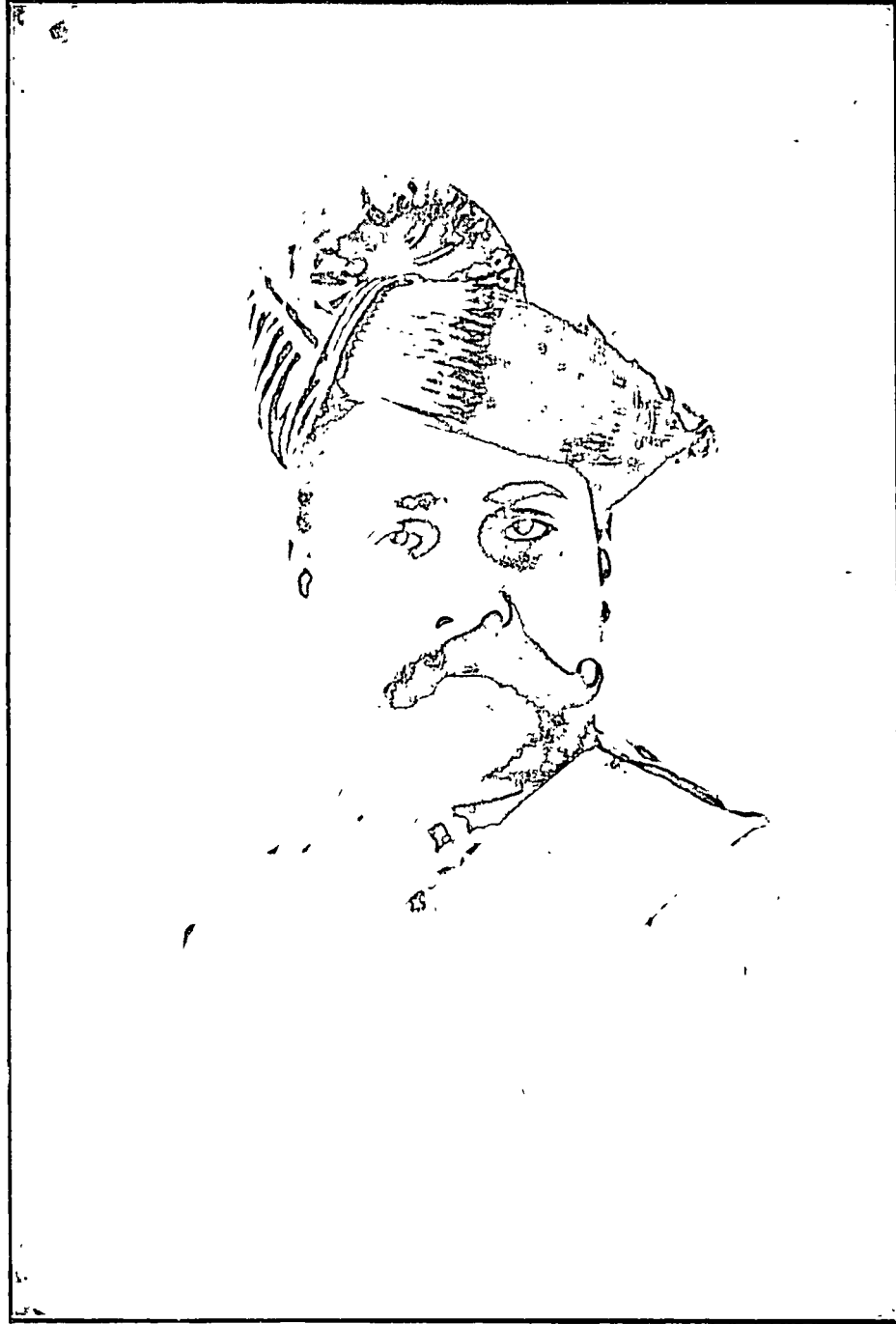
श्रीमान् महाराज शिवाजीराव होल्कर, इन्दौर

महाराजा शिवाजीराव

श्रीमान् द्वितीय तुकोजीराव के बाद उनके पुत्र महाराजा शिवाजीराव ई० स० १८८६ की ३ री जुलाई को राज-सिंहासन पर बिराजे। इस समय आपकी अवस्था ३३ वर्ष की थी। श्रीमान् बड़े विद्याप्रेमी थे और अंग्रेजी भाषा पर अपका बड़ा अप्रतिहत अधिकार था। सिंहासनारूढ़ होने के थोड़े समय बाद श्रीमान् ने प्रख्यात् मुत्सद्दी दीवान बहादुर आर० रघुनाथराव सी० एस० आई०, सी० आई० ई० को मद्रास से बुला कर प्रधान मंत्री के उच्च पद पर नियुक्त किया।

ई० स० १८८७ में श्रीमन्त महाराजा शिवाजीराव अपने योग्य प्रधान मंत्री को शासनभार सौंप कर इंग्लैंड की यात्रा के लिये पधारे। वहां आप श्रीमती सम्राज्ञी के ज्युबिली महोत्सव में शामिल हुए। आपने इंग्लैंड में अच्छा प्रभाव उत्पन्न किया। कई सम्माननीय व्यक्तियों के साथ आपकी मैत्री होगई। इसी समय श्रीमती सम्राज्ञी विक्टोरिया ने आपको जी० सी० एस० आई० की उपाधि से विभूशित किया।

इंग्लैंड की सफर कर श्रीमान ने स्विट्झरलैंड, फ्रांस आदि कई यूरोपीय देशों की यात्रा की। आपने यूरोप के सामाजिक जीवन का खूब अध्ययन किया। इसके बाद आप भारत पधारे और यहां भी आपने यात्रा का सिलसिला शुरू रखा। आपने भारत के अनेक राजा महाराजाओं से मित्रता का सम्बन्ध स्थापित किया।

श्रीमान् शिवाजीराव ने अनेक लोकोपकारी कार्य किये। ई० स० १८८७ में सम्राज्ञी विक्टोरिया के ज्युबिली दिवस को चिरस्मरणीय रखने के लिये आपने एक नया अस्पताल खोला। ई० स० १८०१ में आपने तुकोजीराव अस्पताल का उद्घाटन किया। इन्दौर का यह अस्पताल दूर २ मशहूर है और हजारों रोगी इसके द्वारा आरोग्य लाभ करते हैं।

ई० स० १८८९ में श्रीमान् ने इन्दौर में टेक्निकल इन्स्टिट्यूट (Technical institute) नामकी संस्था खोली। ई० स० १८९१ में आपने उच्च शिक्षा के लिये एक कॉलेज खोला जो होल्कर-कॉलेज के नाम से मशहूर है। यहां बी० ए० तक की शिक्षा दी जाती है। प्रयाग विश्वविद्यालय के अन्तर्गत कॉलेजों में इसकी विशेष ख्याति है।

श्रीमान् महाराजा शिवाजीराव उच्च श्रेणी के शिक्षित थे। अंग्रेजी पर तो आपका इतना अव्याहत अधिकार था कि उसे आप मातृभाषा की तरह बोलते थे। भारतवर्ष की कई भाषाओं का आपका ज्ञान था। आपका व्यक्तित्व बड़ा ही प्रभावशाली था। आपके मुखमण्डल पर बड़ी ही तेजास्विता दिखलाई पड़ती थी। आप बड़ी उदार प्रकृति के थे। पूने के फर्ग्यूसन कॉलेज आदि संस्थाओं को आपने मुक्तहस्त से दान दिया था। आपको मकान बनवाने का बड़ा शौक था। इन्दौर का शिवविलास महल, सुखविलास महल तथा बढ़वाह का दरियाव महल आप ही के बनवाये हुए हैं।

श्रीमान् के राज्यकाल में भारत के तत्कालीन व्हाइसरॉय लॉर्ड लेन्सडाउन और लॉर्ड एलगिन इन्दौर पधारे। श्रीमान् ने बड़े उत्साह से उनका स्वागत किया था। गवालियर के महाराजा भी श्रीमान् से मिलने के लिये इन्दौर पधारे थे। श्रीमान् ने बड़ी हा उमंग के साथ आपका आतिथ्य सत्कार किया था।

ई० सन् १८९९-१९०० में भारतवर्ष में बड़ा भीषण अकाल पड़ा था। यह अकाल करोड़ों गरीब भारतवासियों को चट कर गया। इस भीषण अकाल के समय श्रीमान् शिवाजीराव ने अपनी प्रिय प्रजा के लिये जगह २ गरीबखाने खोल दिये। इन गरीबखानों में हजारों भूखों को अन्न मिलता था। इस क्षुधा निवारण के कार्य में राज्य के लाखों रुपये खर्च हुए थे।

ई० सन् १९०३ में अस्वास्थ्य के कारण श्रीमान् ने राज-कार्य से अवसर ग्रहण किया और अपने पुत्र महाराजा तुकोजीराव बहादुर को राज्य-सिंहासन पर आसीन किया। इस समय बालक महाराजा की उम्र १३ साल की थी। महाराजा की नाबालिग अवस्था में राज्य-कार्य सञ्चालन के लिये शर्तों के साथ
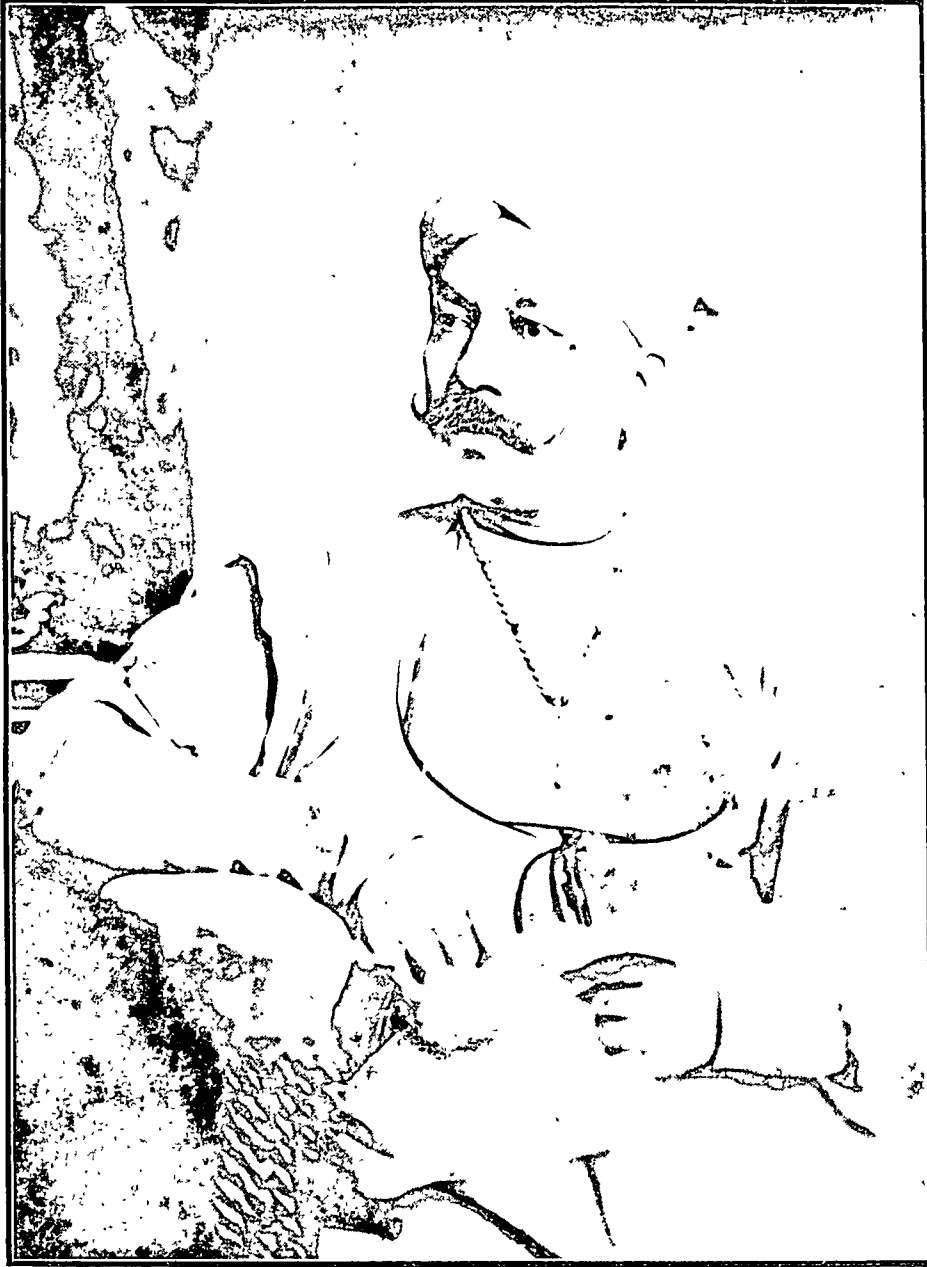
श्रीयुत् सर टी० माधवराव।

रिजेन्सी कौंसिल नियुक्त की गई। इस कौंसिल का अध्यक्ष रेसिडेन्ट था। इन्दौर राज्य के अत्यन्त अनुभवी दीवान राय बहादुर नानकचन्दजी उनके प्रधान सहायक थे। उक्त राय बहादुर महोदय की असाधारण शासन क्षमता और अपूर्व राजनीतिज्ञता तथा समयसूचकता में कोई सन्देह नहीं कर सकता। सभी लोग उनके इन गुणों के कायल हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि रिजेन्सी कौंसिल ने अपने कन्धे पर रखे हुए जिम्मेदारी के कार्य को बड़ी ही योग्यता के साथ सञ्चालित किया। उसने राज्यकार्य में अनेक सुधार कर डाले। उसने ज्यूडिशियल, पुलिस, रेव्हेन्यू, जंगलात, शिक्षा, मेडिकल, जेल, पब्लिक वर्क्स, म्युनिसिपेलिटी, सायर, एक्साइज़ आदि विभागों में सुधार कर उन्हें पुनर्सङ्गठित किया। स्थानीय प्रजा के योग्य मनुष्य राज्यकार्य के भिन्न २ विभागों की शिक्षा प्राप्त करने के लिये बाहर भेजे गये। कइयों को पोस्ट ग्रेजुएट स्कॉलर्शिप भी दी गई। अस्पताल और न्यायालय तथा अन्य कचहरियों के लिये इन्दौर शहर और कस्बों में नये मकान बनवाये गये। इन कार्यों में रियासत के ५३१३५०३ रुपये खर्च हुए। २८१ मील लम्बाई की पक्की सड़कें बनवाई गई जिनमें ४५२४८५३ रुपये खर्च हुए। पुरानी इमारतों की मरम्मत करवाने में ४२८१०४२ रुपये लगे। तालाव और कुओं के बनवाने में रियासत ने ४२८१०४२ रुपये खर्च किये। इन्दौर शहर में पानी के सुभीते के लिये जो महान योजना की गई थी, उसमें २० लाख रुपये व्यय हुए। एक बिजली का कारखाना भी खोला गया। इन्दौर में एक नमूनेदार टाउनहाल बनवाया गया। इसका उद्घाटनोत्सव तत्कालीन प्रिन्स ऑफ वेल्स (हाल में सम्राट् पञ्चम जार्ज) ने किया। हाइकोर्ट के लिये नई इमारत बनाई गई। सारे शहर में टेलीफोन लगा दिये गये। नागदा-मथुरा रेलवे नामक एक नई लाइन खुली जिसके लिये रियासत की ओर से मुफ्त में जमीन दी गई। राज्य के योग्य और अनुभवी अफसरों द्वारा पैमाइश की गई। इस प्रकार अनेक महत्वपूर्ण कार्य कौंसिल ऑफ रिजेन्सी के जमाने में किये गये।
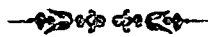
जब कौंसिल ऑफ रिजेन्सी राज्यशासन में अनेक प्रकार के सुधार कर रही थी तब हमारे वर्तमान महाराजा शिक्षा लाभ कर रहे थे। पहले पहल आपने इन्दौर के डेली कॉलेज और बाद में अजमेर के मेयो कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की। ई० सन् १९०८ में आपने मेयो कॉलेज से डिप्लोमा प्राप्त किया। इसी समय के लगभग आपको अपने पूज्य पिता श्रीमान् महाराजा शिवाजीराव का वियोग सहना पड़ा। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि श्रीमान् की अपने स्वर्गीय पूज्य पिता श्री के प्रति अगाध श्रद्धा और भक्ति थी। ई० सन् १९१० में श्रीमान् यूरोप की यात्रा के लिये पधारे। इस समय आपके साथ श्रीमन्त बाला साहेब और कन्या साहिबा भी थीं। इसी साल के सितम्बर मास में श्रीमान् ने स्काटलैण्ड की यात्रा की थी। स्काटलैंड से वापस लण्डन लौटने पर श्रीमान् ने तत्कालीन सेक्रेटरी ऑफ स्टेट लॉर्ड क्रू और इंगलैंड के फील्ड मार्शल लॉर्ड राबर्ट्स से मुलाकात की। ई० सन् १९११ के जनवरी मास में श्रीमान् फ्रांस पधारे और वहाँ जर्मन सम्राट् की बहन सेक्से की राजकुमारी से मुलाकात की। इसी साल के फरवरी मास में नीस नगर में श्रीमान् मान्टिनिग्रो के राजकुमार और पर्शिया और ईरान के शाह के दो पुत्रों से मिले। यहीं स्पेन के राजपुत्र के साथ श्रीमान् का परिचय करवाया गया। मार्च मास में श्रीमान् रोम पधारे। वहाँ इटली के राजदूत और बृटिश राजदूत ने आपका स्टेशन पर स्वागत किया। बृटिश राजदूत श्रीमान् के मुकाम पर मिलने के लिये भी आये थे। इटली में श्रीमान् ने रोम के अतिरिक्त नेपल्स, पॉम्पी, फ्लोरेन्स और व्हेनिस आदि नगरों की भी यात्रा की। इसके बाद श्रीमान् वापस फ्रांस पधारे। ई० सन् १९११ के अप्रैल मास में श्रीमान्

श्रीमान् एक्स महाराजा साहिब, इन्दौर

पेरिस से वापस लण्डन पधारे। यहाँ इण्डिया ऑफिस की ओर से लेफ्टिनेन्ट कर्नल सर जेम्स डनलॉप स्मिथ ने स्टेशन पर आपका स्वागत किया।

इसी साल के मई मास में श्रीमान् बकिंगहम राजप्रासाद में पधारे। यहाँ श्रीमान् सम्राट् और श्रीमती सम्राज्ञी ने आपका स्वागत किया। कहने का मतलब यह है कि जहाँ २ श्रीमान् पधारे वहाँ २ आपका बहुत ही अच्छा स्वागत हुआ। जिन २ महानुभावों से आपकी मुलाकात हुई उन पर आपका बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा। साम्राज्य सरकार की ओर से उपनिवेशों के मन्त्रियों के स्वागत करने के लिये जो आयोजन हुआ था उसमें श्रीमान् के लिये बड़ी सम्मानसूचक बैठक की तजबीज की गई थी। इसी समय आपका आर्च बिशप ऑफ यार्क (Arch Bishop of York) उपनिवेशों के स्टेट-सेक्रेटरी मि० हारकोर्ट, (Duke fo Devonshire) आदि महानुभावों से परिचय करवाया गया। इसी यात्रा में श्रीमान् को भारत सम्राट् और सम्राज्ञी से कई समय मिलने का अवसर प्राप्त हुआ।

श्रीमती सम्राज्ञी विक्टोरिया के स्मारक उद्घाटनोत्सव में श्रीमान् ने भाग लिया था। इस समय आपकी बैठक राज घराने के प्रतिष्ठित महानुभावों के बराबर शाही डेस (dias) पर रखी गई थी।

जब भारत के वर्तमान् सम्राट् श्रीमान् पंचम जार्ज का अभिषेकोत्सव हुआ था उस समय श्रीमान् के लिये सबसे अन्दर के सर्कल (innermost circle) में खास बैठक की योजना की गई थी। इस प्रकार इंग्लैंड और यूरोप के अन्य देशों में बहुत कुछ सन्मान प्राप्त कर श्रीमान् भारतवर्ष के लिये रवाना हुए। ई० स० १९११ के अक्तूबर मास की २१ तारीख को श्रीमान् इन्दौर पधारे। इस समय इन्दौर की प्रजा ने एक हृदय से अपने प्रिय नरेश का जैसा हार्दिक स्वागत किया वह देखते ही बनता था। प्रजा में अपूर्व आनन्द छाया हुआ था। इन्दौर नगर बड़ी भव्यता से सजाया गया था और बड़ी शानदार रोशनी की गई थी। इन्दौर राज्य के अन्य जिलों के सैकड़ों लोग श्रीमान् के स्वागत के लिये आये हुए थे।

ई० स० १९११ के ६ नवम्बर को श्रीमान् ने अपने राज्य के सम्पूर्ण राज्याधिकार अपने हाथ में लिये। इस समय प्रजा में अप्रतिहत आनन्द की लहर बह रही थी। जिस शुभ दिन की वह बहुत दिनों से बाट जोह रही थी वह आज उसे प्राप्त हुई। इस समय श्रीमान् महाराजा साहब ने अपने कई उच्च अधिकारियों को बहुत सा पुरस्कार दिया।

इसी दिन लालबाग में राज्य की ओर से एक भोज दिया गया जिसमें ए० जी० जी०, रेसिडेन्ट, रियासत के तमाम प्रतिष्ठित अफसर और अनेक सन्माननीय नागरिक उपस्थित हुए थे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि जागीरदार और प्रजागण की ओर से श्रीमान् का मानपत्रों द्वारा अभिनन्दन किया गया था।

२९ नवम्बर को श्रीमान् अपने राजकुटुम्ब, सरदार और खास २ अफसरों के साथ दिल्ली दरबार के लिये रवाना हुए। आप ३० नवम्बर के दिन ४॥ बजे दिल्ली स्टेशन पर पहुँचे जहां वैदेशिक विभाग के असिस्टेन्ट सेक्रेटरी मि० गोल्ड तथा मेजर हेमिल्टन ने आपका स्वागत किया। ८ दिसम्बर को श्रीमान् अपने ९ सरदारों के साथ सम्राट् के केम्प में पधारे। वहां श्रीमान् सम्राट् से आपकी मुलाकात हुई। श्रीमान् गवर्नर जनरल ने उसी दिन आपको वापसी मुलाकात दी। श्रीमान् अपने सरदारों और ऑफिसरों के साथ दरबार में पधारते थे। दरबार के उपलक्ष्य में श्रीमान् के कई अफसरों और सरदारों को सम्मानसूचक उपाधियां और पदक मिले थे।

इसी साल श्रीमान् ने राजपूत हितकारिणी सभा को ५०००) रु० प्रदान किये और जागीरदारों के बच्चों के लिये बोर्डिंग हाउस बनवाने का वचन दिया।

ई० स० १९१२ की १८ अप्रैल को श्रीमान् शिमला के लिये रवाना हुए। वहाँ से श्रीमान् काश्मीर पधारे। काश्मीर से वापस शिमला लौटने पर श्रीमान् व्हाइसराय ने आपका आदर आतिथ्य किया। दिसम्बर मास में श्रीमान् बड़ौदा पधारे और श्रीमान् बड़ौदा नरेश के मिहमान रहे।

श्रीमान् नरसिंह राव लेट प्राइम-मिनिस्टर, इन्दौर

इसी साल श्रीमान् ने अपने राज्य के निमाड़ परगने में दौरा किया। उस समय वहां अकाल था। सब प्रकार के लोगों की श्रीमान् तक पहुँच थी। श्रीमान् ने सब लोगों के सुख दुःखों को बड़े ध्यान और सहृदयता के साथ सुना। इस समय श्रीमान् ने अपने अधिकारियों को प्रजा के उचित दुःख मिटाने की आज्ञा दी। श्रीमान् का प्रजा ने दिल खोल कर स्वागत किया। श्रीमान् मण्डलेश्वर और महेश्वर भी इसी मास में पधारे।

ई० स० १९१३ के जनवरी मास में श्रीमान् अपने सरदार और अफसरों के साथ रामपुरा भानपुरा के दौरे के लिये पधारे। प्रजा ने वहां आपका अपूर्व स्वागत किया। श्रीमान् ने प्रजा के सुख दुःख बड़े ध्यान से सुने। एक गरीब से गरीब मनुष्य भी श्रीमान् की मोटर रोककर उन्हें अपना दुःख सुना सकता था। बोहरा जाति की ओर से यहां श्रीमान् को एक अभिनन्दन पत्र दिया गया जिसका आपने बड़े ही उचित शब्दों में उत्तर देते हुए अपनी प्रजाहितैषिता, विद्याभिरुचि तथा प्रेम आदि का परिचय दिया था। आपने इस वक्त फरमाया कि "राज्य की औद्योगिक उन्नति की ओर मेरा विशेष रूप से ध्यान जारहा है। मैं आशा करता हूँ कि मेरी रियासत की व्यापारिक जातियां मेरे शासन के साथ सहयोग कर औद्योगिक और व्यापारिक उन्नति में मेरा हाथ बटावेंगी।" आगे चलकर अपनी शिक्षा सम्बन्धी नीति को प्रकट करते हुए आपने फरमाया कि "सब से अधिक मेरी दिली इच्छा यह है कि मेरी प्रजा में ज्ञान का खूब प्रचार हो। मुझे उस दिन बड़ी खुशी होगी जिस दिन आप शिक्षा सम्बन्धी सुभीताओं से पूरा २ लाभ उठाकर उन्नतिशील जाति कहलाने का गौरव प्राप्त करेंगे।"

इसी साल ८ अप्रैल को श्रीमान् विलायत यात्रा के लिये रवाना हुए। इंग्लैंड तथा स्काटलैंड में कुछ मास रहने के बाद श्रीमान् २० अक्टूबर सन् १९१३ को वापस इन्दौर पधारे। इस समय भी इन्दौर-राज्य की प्रजा ने आपका हार्दिक स्वागत किया। इस समय श्रीमान् को प्रजा की ओर से जो अभिनन्दन-पत्र दिया गया था उसका उत्तर देते हुए श्रीमान् ने एक

जगह फरमाया :—"सज्जनो! मैं अब अधिकाधिक रूप से अपनी प्रजा में शिक्षा-प्रचार की आवश्यकता को महसूस करने लगा हूँ। जब मैं शिक्षा शब्द का उच्चारण करता हूँ तब मेरा मतलब ऐसी शिक्षा-पद्धति से रहता है जिससे मेरी प्रजा में व्यापार, उद्योग-धन्धे और चरित्र का विकास हो। मेरा विश्वास है कि जब आप लोग हमें पूर्ण सहयोग देंगे और मेरे अफसर अपने कर्तव्य को सुसम्पन्न करेंगे तभी मेरे ये ऊंचे आदर्श परिपूर्ण हो सकेंगे।

ई० स० १९१३ के जनवरी मास में श्रीमान् रामपुरा भानपुरा दौरे के लिये पधारे। दोनों ही जगह दरबार हुए और श्रीमान् को नजर निछावर की गई। तत्कालीन रामपुरा भानपुरा के सूबे राय बहादुर हीराचन्द कोठारी को उनके काम से प्रसन्न होकर श्रीमान् ने १०००) रु० इनाम फरमाया।

ई० स० १९१४ में श्रीमान् ने क्षयरोगियों के लिये अपने राज्य में एक बढ़िया सेनिटोरियम खोला। इसके लिये श्रीमान् ने ८०००) रु० मंजूर फरमाये। १० अप्रैल १९१४ को श्रीमान् ने इन्दौर के सुप्रख्यात् हुकमचन्द मिल की नींव डाली। इसके बाद ७ नवम्बर को पीपलिया में श्रीमान् ने कृषिक्षेत्र (Agricultural farm) खोला और वहाँ व्यावहारिक वैज्ञानिक शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। सब परगनों के बहुत से किसान इसके निमित्त स्टेट की ओर से निमन्त्रित किये गये। पाठक जानते हैं इसी १९१४ के साल में यूरोप में एक महा भयानक युद्ध का सूत्रपात हुआ था। इसमें श्रीमान् ने अंग्रेज सरकार की बड़ी ही उदारता के साथ सहायता की थी। इसी साल राज्य के कुछ परगनों में अकाल का प्रकोप था। श्रीमान् ने बड़े ही मुक्तहस्त से गरीबों के लिये सहायता का प्रबन्ध किया और किसानों को भी तकाबी आदि के लिये लगभग २ लाख रुपया तकसीम किया।

ई० स० १९१९ में भारत के तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड चेम्सफोर्ड इन्दौर पधारे जिनका श्रीमान् ने योग्य सत्कार किया। इस समय श्रीमान् लॉर्ड महोदय ने शिवाजीराव हाई स्कूल का उद्घाटनोत्सव किया। आपने श्रीमान् महाराजा साहब के विद्या-प्रेम की बड़ी प्रशंसा की।

श्रीमान् के हृदय में अपनी प्रिय प्रजा के लिये अगाध प्रेम है। इस बात का प्रजाजनों को समय २ पर दिग्दर्शन होता रहता है। ई० स० १९१८ में इन्फ्लयूएन्झा की बीमारी में श्रीमान् ने अपनी प्रिय प्रजा की जो सेवा की वह चिरस्मरणीय रहेगी। आप डाक्टरों की राय पर कुछ कान न देकर, अपनी तन्दुरुस्ती की कुछ पर्वाह न कर उन स्थानों में घूमते फिरे जहाँ बीमारी फैल रही थी। आपने सेवा-समितियों को सेवा करने के लिये उत्साहित किया। आपने अपने हाथों से स्वयं-सेवकों की पीठें ठोकी तथा और और लोगों की विभिन्न सेवा-समितियों को भी खूब सहायता पहुँचाई।

यूरोपीय महायुद्ध के समय खाद्य-सामग्री की कीमत बहुत बढ़गई थी परन्तु श्रीमान् महाराजा साहब ने अपनी रियासत का गल्ला बाहर जाने से रोक कर प्रजा को कष्ट से बचाया। अभी भी हिन्दुस्तान के बहुत से प्रान्तों से खाद्य-सामग्री यहाँ सस्ती मिलती है। इतना ही नहीं, रियासत के नौकरों को अलाउन्स देना भी आपने शुरू कर दिया था।

श्रीमान् ने अपने राज्य के कृषकों की उन्नति के लिये सहकारी-समितियां खोल रखी हैं। इसके लिये इन्दौर, कन्नौद, सनावद, पेटलावद और महेश्वर आदि स्थानों में बेंकों (Banks) की योजना करदी गई है। रियासत के उद्योगधन्धों और व्यापार की उन्नति के लिये हाल ही में एक करोड़ रुपयों की पूंजी से इन्दौर नगर में एक और बेंक खोला गया है।

शिक्षा की उन्नति की तरफ भी श्रीमान् महाराजा साहब का खूब ध्यान है। आप अनिवार्य शिक्षा के भी पक्षपाती हैं। योग्य विद्यार्थी वर्ग राज्य की ओर से छात्रवृत्तियां प्राप्त कर विलायत तक पढ़ने जाते हैं। इन्दौर नगर में सरकार की ओर से संस्कृत की शिक्षा के लिये 'संस्कृत महाविद्यालय' नामक एक बड़ी विशाल पाठशाला है।

श्रीमान् महाराजा साहब ने २५०००० रु० डेली कालेज को और ५००००० बनारस की हिन्दू यूनिवर्सिटी को देकर अपने अगाध विद्याप्रेम का परिचय दिया है।

"महिला विद्यालय" और "अहिल्याश्रम" के समान विशाल पाठशालाएँ भी शायद ही किसी राज्य में होंगी।

इनके अतिरिक्त रियासत में और भी कई ऐसी संस्थाएँ हैं जिनसे श्रीमान् महाराजा साहब की विद्याभिरुचि का पता चलता है।

श्रीमान् ने एक बड़ी भारी रकम लगा कर इन्दौर नगर में विशाल वाचनालय चला रखा है। इस वाचनालय का नाम 'जनरल लायब्रेरी' है।

श्रीमान् के सामाजिक विचार सुधार को लिये हुए हैं। इसके प्रमाण स्वरूप आपने अपने राज्य में विधवा-विवाह और सिव्हिल मॅरेज एक्ट पास कर रखे हैं।

करीब चार पाँच वर्ष हुए होंगे कि रियासत की ओर से प्रोफेसर गिडीज़ नामक एक यूरोपियन सज्जन शहर निर्माण के कार्य पर रखे गये थे। मि० गिडीज़ ने एक बड़ी भारी रिपोर्ट तैयार करके पेश की है जिसके अनुसार कार्य भी चल रहा है।

राज्य में कांच का सामान, ब्रश और अजवाइन के फूल तैयार करने की फेक्टरियां हैं। एक कागज तैयार करने की मिल भी पालिया (इन्दौर से छः मील) नामक स्थान पर तैयार हो रही है।

इस वक्त श्रीमान् महाराजा साहब को एक राजकुमार और एक राजकुमारी हैं। दूसरी राजकुमारी श्रीमती स्नेहलता महाराज का हाल ही में देहावसान हो गया है। इससे राज्यकुटुम्ब और प्रजागण को हार्दिक दुःख हुआ। लाखों प्रजाजनों ने श्रीमन्त के साथ इस दुःख में अपनी पूर्ण समवेदना प्रकट की। राजकुमार का नाम श्रीमन्त युवराज यशवन्तराव है। श्रीमान् महाराजा साहब की उम्र इस समय ३५ वर्ष की है। ईश्वर आपको दीर्घायु करें।

अब हम वर्तमान इन्दौर रियासत और उसकी राजधानी इन्दौर शहर के बारे में कुछ लिखेंगे। श्रीमान् महाराजा साहब अपने कारभारी और कौंसिल की सहायता से राज-कार्य चलाते हैं। कारभारी के हाथ नीचे भिन्न २ विभागों के मंत्री हैं और प्रत्येक मंत्री के हाथ के नीचे कई अधिकारी हैं। हाल

रेसिडेन्सी, इन्दार।
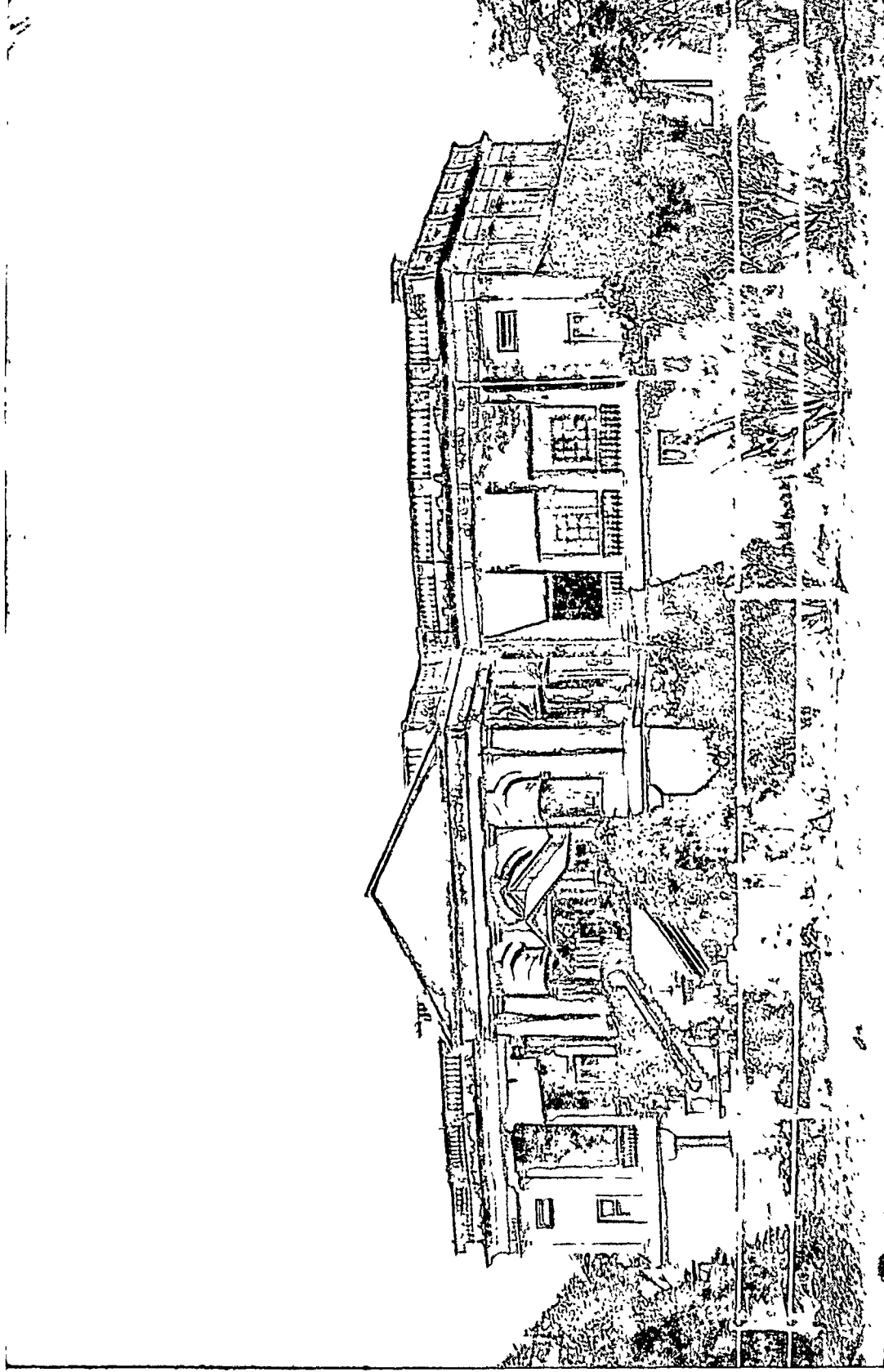
ही में श्रीमान् ने शासन-कार्य में प्रजा के अधिकारों को स्वीकार कर लेजिस्लेटिव कौंसिल की स्थापना की है। इसमें जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि रहेंगे और वे जन-मत को श्रीमान् की सरकार पर प्रकट करेंगे।

न्याय विभाग सेशन कोर्ट, डिस्ट्रिक्ट कोर्ट और मुन्सिफ कोर्ट आदि कई विभागों में विभक्त हैं। इन सब कोर्टों के ऊपर तीन जज्जों की एक हाईकोर्ट नियुक्त है। यह हाईकोर्ट करीब २ तमाम बड़े मामलों पर फैसला दे सकती है।

रेव्हेन्यू विभाग के मामलों की अपील 'बोर्ड ऑफ रेव्हेन्यू' के पास की जाती है। इसके बाद भी अगर अपील करना हो तो वह चीफ़ मिनिस्टर के पास और अन्त में कौंसिल में की जा सकती है।

राज्य के पुलिस, रेव्हेन्यू और जंगल आदि विभागों में विशेष (उसी विभाग के योग्य) शिक्षा पाये हुए अधिकारी रखे जाते हैं।

इन्दौर-राज्य में तोपखाने को छोड़कर कुल ३००० सेना है। रिजेन्सी-शासन के पहले यह सेना ६००० के करीब थी और ई० सन् १८१८ में तो इसकी संख्या ४०००० से भी अधिक थी।

शासन के सुभीते के लिये राज्य ५ जिलों में विभक्त है। प्रत्येक जिले में तहसील और थाना कायम किया हुआ है। राज्य में कुल मिलाकर ४२९५ गाँव हैं। जमीन का लगान रैयतवार पद्धति से वसूल किया जाता है। प्रजा को Occupancy हक्क भी प्राप्त हैं। राज्य की कुल जमीन का $\frac{1}{3}$ हिस्सा जोता बोया जाता है, २६०१.०१ वर्ग मील जंगल है और बाकी की जमीन बेकार पड़ी है।

इन्दौर शहर और जिले की आबहवा बड़ी नीरोग है। यहाँ प्रतिवर्ष ३० इंच के करीब वर्षा हो जाती है और ग्रीष्म ऋतु में गर्मी १०५ डिग्री फेरेनाइट तक पहुँच जाती है। निमाड़ और रामपुरा भानपुरा जिला इन्दौर जिले की अपेक्षा गर्मियों में ज्यादा गर्म रहता है और वर्षा भी वहाँ ज्यादा होती है। परन्तु महिदपुर और निमावर के जिले में वर्षा और आबहवा के लिहाज

से इन्दौर ही के समान हैं। निमाड़ और निमावर के जिले कपास के लिये, इन्दौर गेहूँ के लिये और रामपुरा भानपुरा तथा महिद्पुर के जिले अफ़ीम की खेती के लिये प्रसिद्ध हैं। राज्य में गेहूँ, दाल और Cereals जरूरत से अधिक पैदा होते हैं। कपास की खेती दिनों दिन तरक्की पर है। राज्य के जंगलों में कई तरह की जलाऊ और इमारती लकड़ी पाई जाती है। निमाड़, भानपुरा और निमावर परगने में खूब गोंद पैदा होता है। खेती बैलों द्वारा की जाती है। इन्दौर और महिद्पुर के बैल उत्तम श्रेणी के होते हैं।

इन्दौर नगर में रियासत की ओर से एक कॉलेज है जिसमें बी० ए० और बी० एस० सी० तक की शिक्षा दी जाती है। इस कॉलेज में २०० के करीब विद्यार्थी ज्ञान लाभ करते हैं। शहर में एक लड़कों का और एक लड़कियों का हाई स्कूल भी है। लड़कों के हाई स्कूल में २००० और लड़कियों के में २६९ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते हैं।

उपरोक्त पाठशालाओं के अतिरिक्त जैन हाई स्कूल, रेसिडेन्सी हाई स्कूल रेसिडेन्सी कॉलेज, मिशन कॉलेज और डेली कॉलेज (जिसमें सरदारों और राजा महाराजाओं के लड़के शिक्षा पाते हैं) आदि अन्य विद्यालय भी हैं। राज्य के भिन्न २ जिलों में कई प्राइमरी और ऍंग्लो व्हर्नाक्युलर पाठशालाएँ हैं। हाल ही में महाराजा साहब ने अपने राज्य में प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य कर दी है। मैसूर, बड़ोदा, ट्रावनकोर की उन्नतिशील रियासतों को छोड़कर भारतवर्ष में केवल इन्दौर ही एक ऐसी रियासत है जहां शिक्षा अनिवार्य कर दी गई है।

इन्दौर नगर में 'तुकोजीराव हास्पिटल' नामक एक विशाल दवाखाना है। इस दवाखाने में कई अनुभवी डॉक्टर कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त राज्य के भिन्न २ भागों में कुल मिलाकर ४५ दवाखानें और हैं। इन्दौर की छावनी में भी "किंग एडवर्ड हॉस्पिटल" नामक एक बृड़ा अस्पताल है। इस अस्पताल में एक मेडिकल स्कूल भी है जिसमें राजपूताना की कई रियासतों से विद्यार्थीगण पढ़ने के लिये आते हैं।

रियासत की करीब २ प्रत्येक तहसील में म्युनिसिपल कमिटी स्थापित है। इस विभाग से भी कुछ आमदनी होती है परन्तु इतनी कम कि उससे इस विभाग का खर्च तक नहीं चल सकता। इसलिये राज्य की आमदनी में से प्रतिवर्ष एक लाख रुपया इस विभाग को दिया जाता है।

इन्दौर राज्य में नर्मदा और चम्बल नामक दो बड़ी २ नदियाँ हैं। इनके अतिरिक्त कालीसिन्ध, क्षिप्रा और दूसरी कई छोटी २ नदियाँ भी हैं। खेती कुओं और तालाबों के पानी से की जाती है। राज्य में बहुत से ऐसे स्थान भी हैं जहां बहुत कम खर्च में बिजली पैदा की जा सकती है।

आर्थिक दृष्टि से इन्दौर की प्रगति

आर्थिक दृष्टि से इन्दौर को जो विशेष महत्व प्राप्त है वह सब पर प्रकट है। इन्दौर की प्रचुर सम्पत्ति, उसका विशाल व्यापार उसके बड़े २ उद्योगधन्धे भारतवर्ष भर में मशहूर हैं। व्यापारिक औद्योगिक चहल पहल में इन्दौर बम्बई का बच्चा कहलाता है। भारतवर्ष भर में दो चार ही नगर ऐसे होंगे जो आर्थिक, व्यापारिक और साम्पत्तिक दृष्टि से इन्दौर की बराबरी कर सकें। साम्पत्तिक और आर्थिक दृष्टि से इन्दौर का महत्व बहुत पहले से चला आया है। सर जॉन मालकम साहब ने अपने Memoirs of Central India में देवी अहल्याबाई के शासन के समय की इन्दौर-राज्य की समृद्धि की बड़ी ही प्रशंसा की है। उन्होंने उस प्रशंसनीय सहायता का भी जिक्र किया है जो राज्य की ओर से व्यापारियों को व्यापार की वृद्धि के लिये दी जाती थी। कर्नल मालकम साहब ने आगे चलकर लिखा है कि "महारानी अहल्याबाई अपने किसानों और धनवानों को उन्नत अवस्था में देखकर बड़ी ही प्रसन्न होती थी, उसके शासन-काल में वे समृद्धि के ऊँचे शिखर पर पहुँचे हुए थे। महारानी अहल्याबाई की तरह स्वर्गीय महाराज द्वितीय तुकोजीराव ने भी इन्दौर-राज्य के व्यापार और कृषि की उन्नति में जो प्रशंसनीय सहायता पहुँचाई है उसका जिक्र आज भी बड़े बुढ़े लोग बड़े प्रेम के साथ

करते हैं। इन्दौर की ग्यारह पंच नामक मशहूर व्यापारिक संस्था आपही की स्थापित की हुई है। गरीब किसानों की झोंपड़ियों में जाकर, उनके जीवन में योग देकर उन्हें उन्नति के मार्ग में आगे बढ़ाना यही महाराजा तुकोजीराव का प्रधान ध्येय था। आपने अपने राज्य में व्यापार और कृषि के विकास में जो २ कार्य किये हैं, उन पर विशेष रूप से लिखने के लिये यहाँ स्थान नहीं है। इसके लिये एक विस्तृत स्वतंत्र लेख की आवश्यकता है। मेरे कहने का आशय यह है कि कई सौ वर्षों से व्यापारिक संसार में इन्दौर अपना विशेष महत्व रखता है और अब भी उसका महत्व दिन २ वृद्धिगत होता जा रहा है। भारतवर्ष भर में इन्दौर अपनी व्यापारिक और औद्योगिक चहल पहल के कारण प्रसिद्ध है।

इन्दौर की सामूहिक सम्पत्ति पर विचार

साम्पत्तिक दृष्टि से इन्दौर न केवल भारतवर्ष की तमाम देशी रियासतों से ही बढ़कर है पर बृटिश भारत से भी वह आगे बढ़ा हुआ है। बृटिश भारत में प्रति मनुष्य के पीछे जो आमदनी है उससे इन्दौर की आमदनी कहीं अधिक है। लार्ड क्रॉमर महोदय जो कि भारत के अर्थ-सचिव थे, बृटिश भारत में हर एक आदमी की आमदनी की औसत २० रु० प्रति साल अन्दाज करते हैं। भारत के भूत पूर्व व्हाइसराय लार्ड कर्जन ने इसे ३०) रु० प्रति वर्ष माना है। लार्ड जॉर्ज हेमिल्टन महोदय का भी यही मत है। मि० विलियम डिग्बी ने अपनी गहरी जाँच के बाद इस आमदनी को २७) रु० प्रति वर्ष माना है। अब हमें यह देखना है कि इन्दौर-राज्य के प्रति मनुष्य की आमदनी की औसत क्या है।

ईस्वी सन् १९२१ में जब मनुष्य गणना हो रही थी तब राज्य ने यहाँ की साम्पत्तिक जाँच करना भी आवश्यक समझा था।

ईस्वी सन् १९२० के जुलाई मास की २ री तारीख को State Counlal के सदस्य तथा अन्य अफसर गण, इन्दौर शहर के मिल के
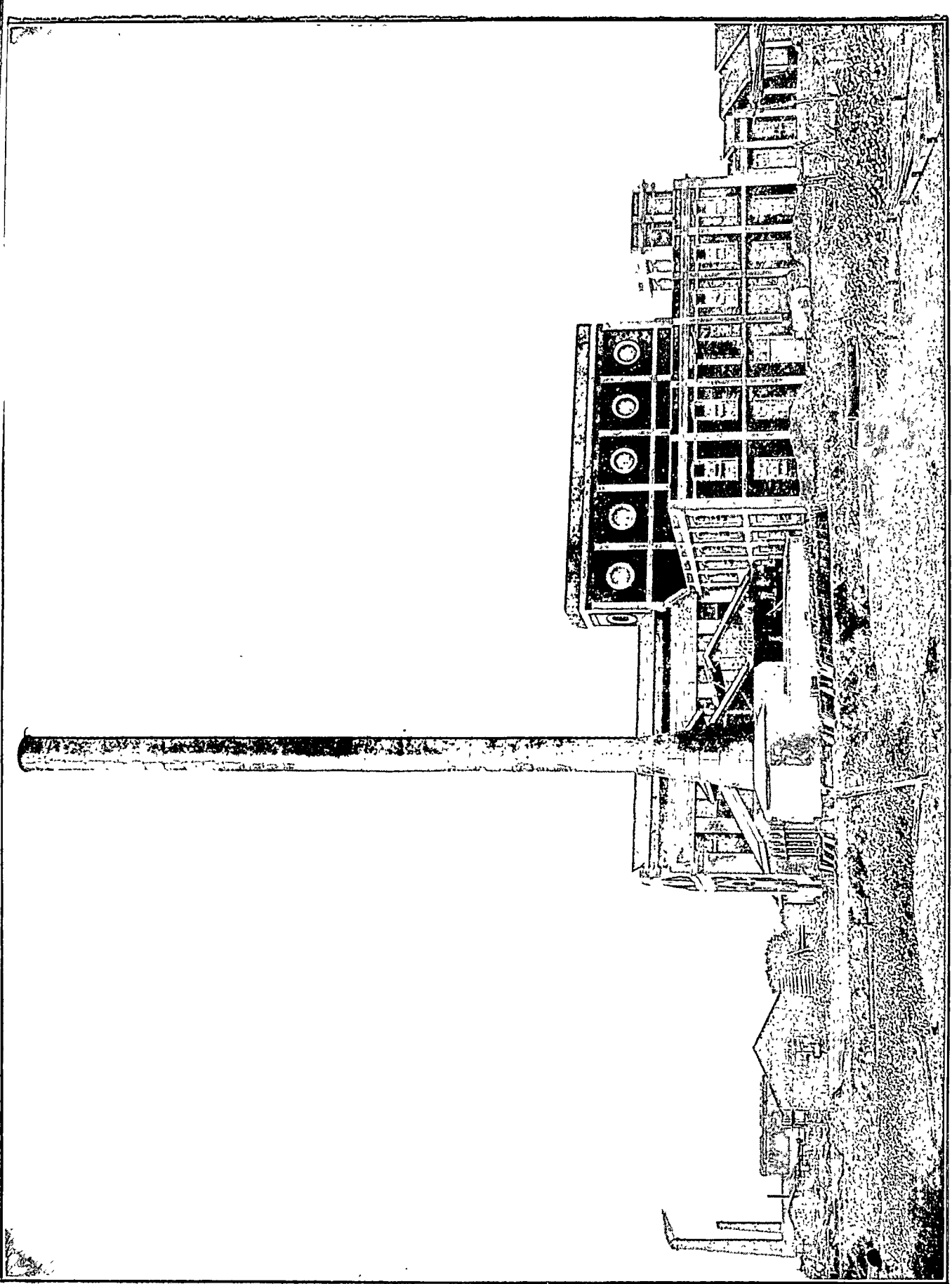
राजकुमार मिल, इन्दौर

मैनेजर गण की एक सभा हुई थी। इसमें यह निश्चय हुआ था कि मनुष्य गणना के साथ २ इन्दौर-राज्य की साम्पत्तिक जाँच Economic survey भी की जाय। इसके अनुसार राज्य के सेन्सस विभाग को इस बात की सूचना दी गई थी कि वे निम्न लिखित बातों की विशेष जाँच करें।

(१) हर कुटुम्ब की प्रति साल की आमदनी क्या है ?

(२) हर कुटुम्ब के पास स्थावर जायदाद कितनी है।

(३) गाड़ी, मोटर, बग्गी आदि वाहन सामग्री की गणना।

(४) अनाज की दर क्या है और गत १० वर्षों में मजदूरों की मजदूरी क्या रही है।

(५) पशु गणना।

(६) मजदूरों और कारीगरों की अवस्था की जाँच।

इन कार्यों के लिये मनुष्य गणना विभाग से विशेष फार्म तैयार किये गये थे और प्रारम्भिक मनुष्य गणना के समय इसकी जाँच की गई। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आर्थिक जाँच में मनुष्य अपनी वास्तविक आमदनी से कुछ कम बतलाते हैं। तो भी इस जाँच का जो परिणाम निकला वह यद्यपि यूरोप और अमेरिका के राष्ट्रों की अपेक्षा सन्तोषप्रद नहीं था पर तौ भी भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों की अपेक्षा उसमें आशा की विशेष स्फूर्ति थी। खास इन्दौर शहर में प्रति मनुष्य के पीछे १२०) रु० प्रति वर्ष औसत आमदनी है। जिलों में शहर की अपेक्षा कम औसत मानी गई। वहाँ प्रति मनुष्य की आमदनी ३७) रु० पाई गई। हमारे कहने का मतलब यह है कि इन्दौर सम्पत्ति की दृष्टि से निस्सन्देह बृटिस भारत से आगे बढ़ा हुआ है। इन्दौर शहर और इन्दौर-राज्य के अन्य जिलों की आमदनी मिला कर औसत निकालने से लगभग ४५) रु० प्रति मनुष्य प्रति साल की निकलती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि खास इन्दौर शहर के प्रति मनुष्य की आमदनी का औसत बृटिस भारत के औसत से लगभग चौगुना है। और सारे राज्य को दृष्टि में रख कर यह औसत निकाला जावे तो वह बृटिस भारत से लगभग ड्योढ़ा होता है।

इन्दौर में कारीगरों की आर्थिक अवस्था

इन्दौर में कारीगरों की आर्थिक दशा भी अन्य रियासतों से उत्तम और बृटिस भारत के मुकाबले में समानता पर है।

ई० सन् १९२१ की मर्दुमशुमारी के समय जो जाँच की गई थी उससे पता चलता है कि इन्दौर शहर में कारीगर की अधिक से अधिक आमदनी ५२॥) रु० और कम से कम २५।) रु० मासिक है। सब की साधारण औसत ३८।) रु० आती है। इनके कार्य करने का समय ७।) घण्टे से ९।) घण्टे तक है। कहने का मतलब यह है कि इन्दौर के कारीगरों की आर्थिक अवस्था अन्य कई प्रान्तों से कहीं अधिक अच्छी है। इन्दौर में ई० स० १९२१ की गणनानुसार कुल मिला कर ५५९२ कारीगर थे। इनमें से ३८७० ने खास इन्दौर-राज्य ही में और १७२२ ने अन्यत्र शिक्षा पाई है।

भिन्न २ धन्धों के हिसाब से देखा जावे तो इनमें से १७ फी सदी बुनने का, १५ फी सदी सुतारी का, १४ फी सदी सुनारी का, और १० फी सदी नक्काशी का काम करते हैं। शेष और और तरह का काम करते हैं। यहां यह बात ध्यान में रखने लायक है कि बुनने का धन्धा यहां सब से अधिक तरक्की पर है। अगर इस कार्य में कुछ प्रयत्न किया जाय तो यहां यह और भी चमक सकता है।

इन्दौर में मजदूरों की आर्थिक अवस्था

ई० स० १९२१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार इन्दौर-राज्य के मजदूर या श्रम जीवियों की संख्या १२१११ थी। इसमें से ४६४८ अलग २ कारखानों में उस समय काम करते थे। और शेष छुट्टी मजदूरी करते थे। इन्दौर शहर में प्रति मनुष्य की औसत आमदनी साढ़े चौदह आने अन्दाज की गई है। पर अन्य जिलों में इतनी आमदनी नहीं है। वहां की औसत लगभग साढ़े छः आने प्रति दिन आती है। इससे भी पाठकों को मालूम

हो गया होगा कि इन्दौर में मजदूरों की आर्थिक अवस्था भी भारतवर्ष की परिस्थिति को देखते हुए साधारण तया अच्छी है। दूसरी यह बात ध्यान देने योग्य है कि ई० स० १९१० की अपेक्षा आज मजदूरी का औसत लगभग दूना हो गया है।

मजदूरों की तन्दुरुस्ती भी अच्छी रही है। पूर्वोक्त १२१११ मजदूरों में से ६८५६ मजदूरों की तन्दुरुस्ती बहुत ही अच्छी रही। ४७५५ की कुछ नर्म और ५०० की साधारणतया अच्छी रही। आरोग्य की दृष्टि से भी मजदूरों की दशा बृटिश भारत की अपेक्षा निस्सन्देह अच्छी रही है।

इन्दौर के कारखानों पर एक दृष्टि

यह कहने की अवश्यकता नहीं कि मिल, जिनिङ्ग फेक्टरी, कॉटन प्रेस की जितनी शीघ्रगामी उन्नति इन्दौर में हुई है उतनी भारत के चार पांच औद्योगिक नगरों को छोड़ कर शायद ही कहीं हुई होगी। पाठकों के सामने हम गत १४, १५ वर्षों का विवरण देते हैं।

ई० स० १९०९, १० में सारे इन्दौर-राज्य में केवल ५८ औद्योगिक कारखाने थे जिनमें ३९ जिनिङ्ग फेक्टरी, ११ कॉटन प्रेस और दो कपड़े बुनने के मिल थे। बाकी फुटकर उद्योग अन्धों के कारखाने थे।

ई० स० १९२३ की इन्दौर-राज्य की शासन रिपोर्ट को देखने से पता चलता है कि गत १३ वर्षों में इनकी संख्या बहुत बढ़ गई। अर्थात् उक्त साल में ७३ जिनिङ्ग फेक्टरियां, २० कॉटन प्रेस, १५ लकड़ी के हेन्ड प्रेस और ५ कपड़े बुनने के मिल काम कर रहे थे। इसके अतिरिक्त आटे की चक्कियां, बर्फ फेक्टरी, अजवाइन के फूल बनाने की फेक्टरी, तेल निकाल ने के कारखाने, ब्रास फेक्टरी, रेशम का कारखाना, मौजे बुनने के कारखानें, ईंट और कवेलू बनाने की फेक्टरीयाँ आदि २ कई प्रकार के उद्योग धन्धों ने भी बड़ी ही प्रशंसनीय उन्नति की है। यहां यह कहना भी आवश्यक है कि इन कार-खानों को राज्य की ओर से बड़ी ही प्रशंनीय सहायता मिली है। जिस किसी

विश्वसनीय व्यक्ति ने किसी नये कारखाने के लिये राज्य से सहायता चाही उसे वह नाम मात्र के व्याज पर दी गई। श्रीमान् महाराजा साहब ने बड़ी ही उदारता से इन कारखानों की मदद की। इसके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं पर स्थानाभाव के कारण हम ऐसा करने में असमर्थ हैं।

कारखानों से माल का निकास

इन्दौर में कपड़े बुनने के बड़े २ कारखाने हैं जिनका नाम सारे हिन्दुस्तान में मशहूर है। इन्दौर की मिलों के बने हुए कपड़े आप हिन्दुस्तान के किसी शहर के बाजार से खरीद सकते हैं। यहां इस उद्योग ने बड़ी ही प्रशंसनीय उन्नति की है। दूर २ तक यहां के बने हुए कपड़े पसन्द किये जाते हैं। अभी तक इन्दौर ने लाखों नहीं बल्कि करोड़ों रुपयों का माल दूसरे प्रान्तों को दिया है। हम नीचे यह दिखलाना चाहते हैं कि इन्दौर ने कितना कपड़ा गत १०,१२ वर्षों में पैदा किया। ई० स० १९१० में स्टेट मिल ने १४४९८२५ पौ० और मालवा युनाइटेड मिल ने ४१९४१३० पौ० कपड़ा तैयार किया था। अर्थात् ५ वर्षों में मालवा युनाइटेड मिल ने लगभग ढ़ाईगुना कपड़ा ज्यादा निकाला।

ई० स० १९१६ में हुकमचन्द मिल ने अपना काम शुरू किया और ई० स० १९२० में तीनों मिलों ने मिलकर १०५७१९६४ पौंड कपड़ा तैयार किया। ई० स० १९१० से लगाकर १९२० तक अर्थात् दश वर्षों में इन तीनों मिलों ने मिलकर ७४१७७६१४ पौंड माल तैयार किया। इनके बाद स्वदेशी कॉटन फ्लॉवर मिल, कल्याणमल मिल, नन्दलाल भंडारी मिल, राजकुमार मिल आदि चार नये मिल स्थापित हुए। कल्याणमल मिल, ने ई० स० १९२३ में काम शुरू किया और उसी साल उसने १५२०८२१ पौं० माल तैयार किया। हुकमचन्द और मालवा युनाइटेड मिल की तरह कल्याणमल मिल का बना हुआ कपड़ा भी देश देशान्तरों में बहुत पसन्द किया गया है। यह मिल भी प्रशंशनीय रूप से तरक्की कर रहा है।
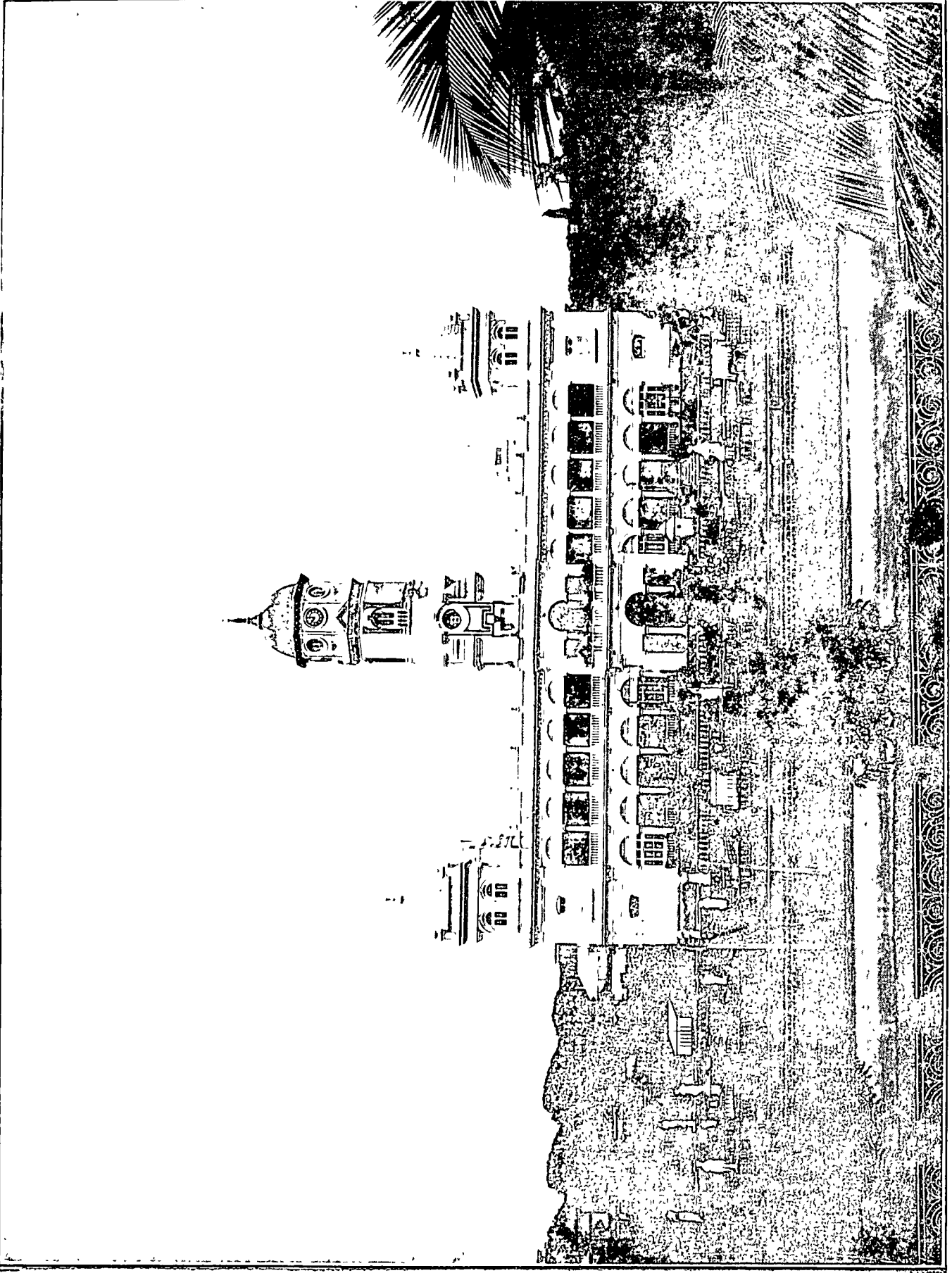
इन्द्रभवन, (हुकुमचंद) इन्दौर

उपरोक्त अङ्कों से पाठकों को इन्दौर की प्रशंसनीय औद्योगिक प्रगति का ज्ञान प्राप्त हुआ होगा। अदि पाठकगण निष्पक्ष दृष्टि से विचार करेंगे तो यह प्रतीत हुए बिना न रहेगा कि इन्दौर भारतवर्ष के औद्योगिक और साम्पत्तिक विकास में कितनी उच्च श्रेणी की सहायता पहुँचा रहा है। यह बात निस्सन्देह रूप से कही जा सकती है कि औद्योगिक दृष्टि से इन्दौर का नम्बर न केवल राजपूताना और मध्य भारत की रियासतों से ही बढ़ा हुआ है पर इस सम्बन्ध में वह बड़ौदा और मैसोर की उन्नति-शील रियासतों को भी टक्कर दे सकता है। अगर रियासत इस सम्बन्ध में कुछ अधिक ध्यान दे तो इसका औद्योगिक सितारा और भी अधिक चमक सकता है।

यहां यह बात भी विशेष ध्यान देने योग्य है कि भारत की गिरी हुई औद्योगिक अवस्था को देखते हुए इन्दौर अभी तक अपनी कीर्ति और महत्व को रखे हुए है। जहां बम्बई आदि शहरों में मिल खटाखट अपने कपाट बन्द कर रही हैं वहां इन्दौर की मिलें अब भी मुनाफा बाँट रही हैं।

औद्योगिक विकास में राज्य के प्रयत्न

इन्दौर-राज्य ने औद्योगिक विकास के लिये जो कुछ प्रयत्न किया है उस पर भी थोड़ा बहुत प्रकाश डालना आवश्यक है। उसने एक औद्योगिक और व्यापारिक महकमा कायम किया है।

हम ऊपर कह चुके हैं कि इनने कई नये उद्योग धन्धों को बड़ी ही उदार सहायता पहुँचाई है। इनमें से हम कुछ का ब्यौरा नीचे देते हैं।

५०००) मोजे बनियान आदि बुनने की फेक्टरी।
२००००) रोटेरी एञ्जिन।
२००००) बाल टाइल वर्क्स।
५००००) हाउस बिल्डिंग बोर्ड।
२००००) अजवाइन के फूल बनाने की फेक्टरी।
२००००) काँच का कारखाना।

९००००) काग़ज का कारखाना।

१६०००) प्रयोग शाला के लिये।

इनके अतिरिक्त समय २ पर स्थानीय मिलों को कम ब्याज पर लाखों रुपया कर्ज के रूप में दिया गया। इन्दौर में औद्योगिक सम्भावनाओं (Industrial possibilities) के लिये भी राज्य की ओर से हजारों रुपये खर्च किये गये।

उद्योग विद्या विशारद सज्जनों का आगमन

इन्दौर में कौन से उद्योग धन्धे सफलता पूर्वक चल सकते हैं और कौन २ से उद्योग धन्धों के लिये विशेष सम्भावनाएँ हैं। इस बात पर विचार करने के लिये अनेक तज्ञ महोदय निमन्त्रित किये गये थे। इनके लिये श्रीमान् महाराजा साहब ने एक खासी रकम मंजूर फरमाई थी।

अलाहबाद विश्वविद्यालय के इकॉनमिक्स विभाग के प्रधान प्रोफेसर एच० स्टेनले जेव्हन्स एम० ए०, बी० एस० सी०, एफ० एस० एस, एफ० ई० एस, एफ० जी० एस०, नगर निर्माण कला के संसार प्रसिद्ध विद्वान् प्रोफेसर पी० गिडीज़०, आनरेबल मि० लल्लूभाई सामलदास० सी० आई० ई० और मि० होल्डन आदि अनेक बड़े २ विद्वान् उद्योग विभाग की तरक्की में सलाह लेने के लिये समय २ पर राज्य की ओर से बुलाये गये थे।

इन्दौर में शिक्षा प्रचार

श्री तिलोकचन्द जैन हायस्कूल में व्याख्यान देते हुए इन्दौर के वर्तमान महाराजा श्रीमान् तुकोजीराव होलकर ने फ़रमाया था:—

"मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि मेरे राज्य में अमीरों के मकानों से लगाकर गरीबों के झोपडों तक विद्या का प्रकाश चमके"

मतलब यह है कि प्रजा के अन्तःकरण को शिक्षा से संस्कृत कर उसे ऊँचा उठाने के लिये महाराजा की बड़ी अभिलाषा रही है। समय समय पर

आपने जो व्याख्यान दिये तथा आज्ञाएं प्रकाशित की, उनसे यह बात स्पष्ट-तया प्रकट होती है। अगर महाराजा को अनुकूल परिस्थिति प्राप्त हुई होती तो आज शिक्षा के सम्बन्ध में हम इन्दौर को आज से बहुत आगे बढ़ा हुआ पाते। ताहम् भी यह बात निस्सन्देह रूप से कही जा सकती है कि राजपूताना और मध्यभारत के तमाम देशी राज्यों से इन्दौर शिक्षा में बहुत आगे बढ़ा हुआ है। अब हमें यहाँ यह देखना है कि महाराज को राज्याधिकार प्राप्त होने पर इन्दौर ने शिक्षा में किस प्रकार उन्नति की ?

ईसवी सन् १९१० में इन्दौर राज्य में शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं की संख्या ११८ थी। अध्यापकों और विद्यार्थियों की संख्या क्रमशः ३६८ और ९९१२ थी। ईसवी सन् १९२३ में यह संख्या अच्छी बढ़ी। अर्थात् इस साल शिक्षा सम्बन्धी संस्थाओं की संख्या २१४ हो गई। विद्यार्थियों की संख्या तो दूनी से भी ज्यादा हो गई। अर्थात् जहाँ ईसवी सन् १९१० में विद्यार्थियों की संख्या ९९१२ थी वहाँ ईसवी सन् १९२३ में वह १९१०७ हो गई। सन् १९२३ में अध्यापकों की कितनी संख्या थी, इसका लेखा उक्त साल की रिपोर्ट में नहीं दिया गया है, पर ईसवी सन् १९२० में अध्यापकों की संख्या ७०० थी अर्थात् दस वर्षों में यह संख्या लगभग दूनी हो गई। इससे पाठक जान सकते हैं कि इन्दौर ने गत दस बारह वर्षों में शिक्षा में खासी तरक्की की है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इन्दौर में शिक्षा सम्बन्धी कई ऐसी संस्थाएँ हैं, जिनकी दूर दूर तक बड़ी ख्याति है। वर्तमान महाराजा के राज्य-काल में कई नई संस्थाएं खुली हैं। अहल्याश्रम और चन्द्रावती हाई स्कूल इन्हीं महाराजा के समय में उद्घाटित हुए हैं। अहल्याश्रम में कई विधवाएं केवल शिक्षा ही नहीं पा रही हैं, वरन उनके भोजन वस्त्रादि का प्रबन्ध भी राज्य की ओर से है। इसमें उन्हें कई प्रकार के कला-कौशल्य का भी ज्ञान करवाया जाता है। श्री चन्द्रावती हाई स्कूल में लड़कियाँ, विवाहिता स्त्रियाँ तथा विधवाएँ अंग्रेजी में मेट्रिक्यूलेशन तक शिक्षा पाती हैं। उन्हें सङ्गीतकला और भारतीय ललनाओं के काम में आने वाले गृह-प्रबन्ध शास्त्र के अतिरिक्त

कुछ ऐसे हुन्नर भी सिखलाये जाते हैं, जिनसे वे भविष्य में अपने पैरों पर खड़ी रहकर धर्म और सम्मान पूर्वक अपना जीवन निर्वाह कर सकें। इन संस्थाओं से अब तक बहुत सी कन्याओं और स्त्रियों ने शिक्षा लाभ किया है। ये दोनों संस्थाएं संसार विख्यात विद्वान् स्वर्गीय डॉक्टर भण्डारकर की पौत्री श्रीमती कुमारी भण्डारकर एम० ए० के सुञ्चालन में हैं। यहाँ सुयोग्य कन्याओं को अच्छी स्कॉलरशिप भी दी जाती हैं। इसलिये राजपूताना तथा मध्यभारत की अन्य रियासतों को इनका अनुकरण करना चाहिये।

इन्दौर-राज्य में एक कॉलेज (जिसका नाम होल्कर कॉलेज है) तीन हाईस्कूल, एक संस्कृत महाविद्यालय और धनगर मराठों की शिक्षा के लिये एक मल्हार आश्रम के अतिरिक्त कई छोटी मोटी संस्थाएँ हैं, जिनकी संख्या हम ऊपर दे चुके हैं। होल्कर कॉलेज में बी. ए. और बी. एस. सी. तक पढ़ाई होती है। इसमें कई नामी नामी विद्वान् काम कर चुके हैं। यहाँ से शिक्षा पाये हुए कई विद्वानों ने दूर दूर तक ख्याति प्राप्त की है। इस कॉलेज और हाईस्कूल ने इन महाराजा साहब के राज्य-काल में, खासी तरक्की की है। पुराना सिटी हाईस्कूल का नाम बदल कर उसका महाराजा शिवाजी-राव हाई स्कूल नाम रखा गया। हाईस्कूल के लिये श्रीमान् ने कई लाख रुपया लगाकर आरोग्य कारक स्थान में एक बढ़िया इमारत बनवाई है।

संस्कृत महाविद्यालय में तीर्थ और आचार्य्य तक की शिक्षा दी जाती है। इसमें वेद, वेदाङ्ग दर्शनशास्त्र, ज्योतिष, वैद्यक आदि कई विषयों की निम्न तथा उच्च शिक्षा दी जाती है। इस संस्था में बाहर से आये हुए और छात्रालय में रहने वाले प्रायः सभी विद्यार्थियों के लिये भोजन वस्त्रादि का प्रबन्ध भी राज्य की ओर से है। कइयों को ग्रन्थ भी मुफ्त में दिये जाते हैं। इसमें शिक्षा पाने के लिये दूर दूर से विद्यार्थी आते हैं। जयपुर को छोड़ कर राजपूताना और मध्यभारत में ऐसी कोई संस्था नहीं है। यह कहने की आवश्कता नहीं कि यह वर्तमान महाराजा साहब की उदारता ही का फल है।
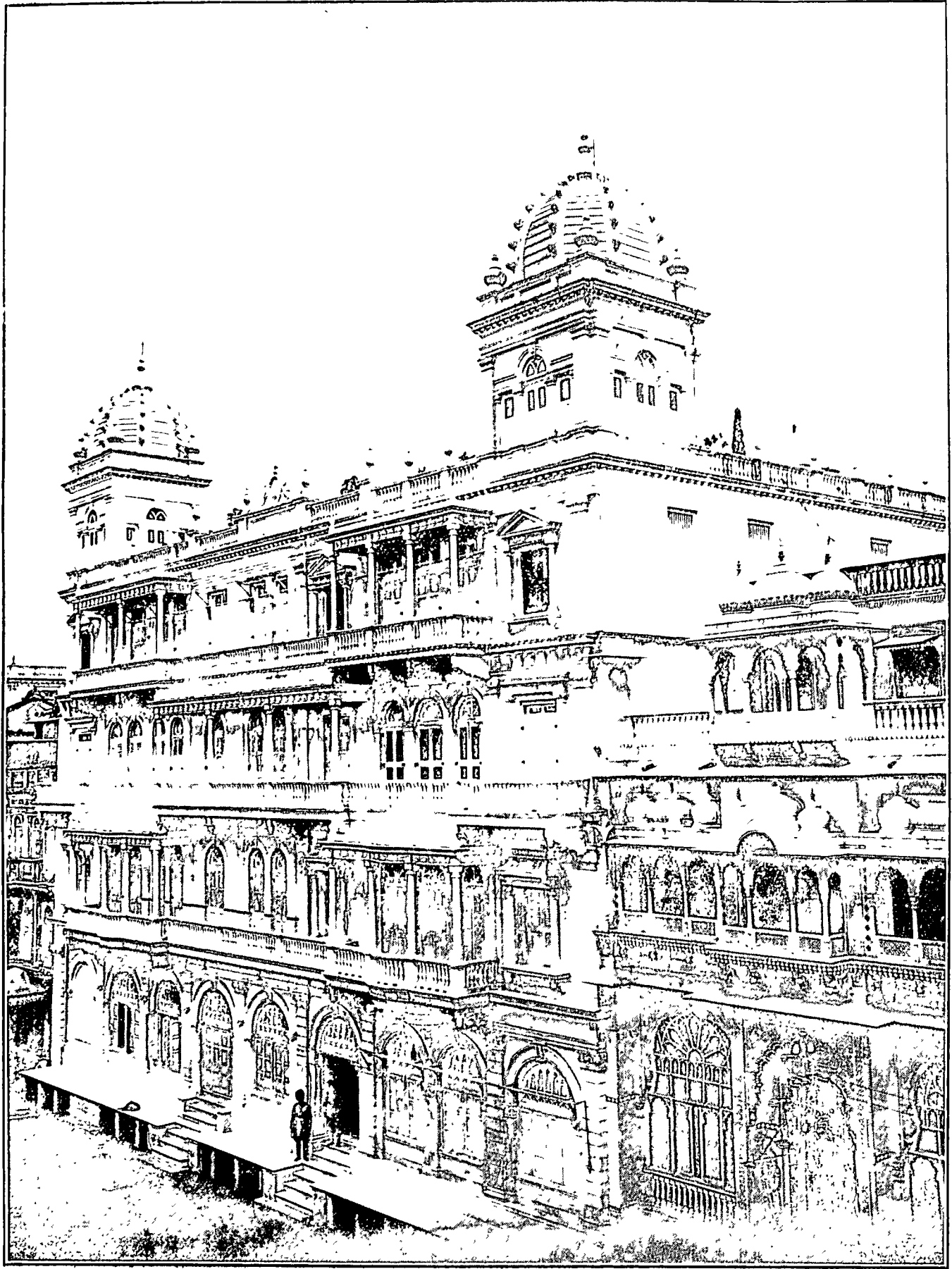
राजमहल (हुकुमचंद) इन्दौर

महाराजा और किसान

श्रीमान् महाराज तुकोजीराव का किसानों की उन्नति की ओर कितना ध्यान रहा है, यह बात उनके उस व्याख्यान से प्रकट होती है, जो उन्होंने ईस्वी सन् १९१४ के नवम्बर में इन्दौर के प्रयोग क्षेत्र का (Experimental farm) उद्घाटन करते समय दिया था। उसमें आपने फरमाया था:—

"जिन गरीब किसानों की कठिन कमाई से राज्य का अधिकांश कर वसूल होता है, उनके हित और कल्याण के लिये राजा को सदा तत्पर रहना चाहिये। यह आदर्श हमेशा से भारतीय जीवन का मूलभूत तत्व रहा है। मनु महाराज ने कहा है कि प्रजा का कल्याण साधन करना ही राजा का सर्व-प्रधान धर्म है। सम्राट अकबर ने इस उच्चतम कर्तव्य का भली प्रकार पालन किया था। इसीसे उन्होंने यह आज्ञा जारी की थी कि कर वसूल करने वालों को किसानों का सच्चा मित्र होना चाहिये"।

"उसी भारतीय आदर्श के अनुसार मेरा भी यह काम है कि मैं भी इस बात का पता लगाऊँ कि मेरे किसानों को किस बात की जरूरत है। मैंने यथाशक्ति इस बात को जानने की चेष्टा की है और इसीसे मैंने उन साधनों को काम में लाने का निश्चय किया है जिनसे उनकी जरूरतें पूरी हों। इस सम्बन्ध में सब से बड़ी आवश्यकता रेव्हेन्यू-शासन को उत्तम पाये पर सुसङ्गठित करना है। मेरे अधिकारियों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। इस कार्य्य को सरल बनाने के लिये मैंने रेव्हेन्यू सम्बन्धी नियमों का मसविदा (Draft) भी बनवाया है। इस मसविदे में किसानों के उचित अधिकारों की व्याख्या की गई है। पर सिर्फ नियम बना देने ही से किसानों के दुःख दूर नहीं हो सकते। उनके लिये सब से बड़ी आवश्यकता आबपाशी सम्बन्धी असुविधाओं को मिटा देना है। विशेष करके उन जिलों में तो आबपाशी की बड़ी आवश्यकता है जिनमें कि सियालू फसल (Winter crop) बिना पानी के पैदा हो ही नहीं सकती। ज्योंही मुझे आर्थिक सुभीताएँ मिलीं कि मैं इस सम्बन्ध में कुछ व्यावहारिक काम कर बताऊँगा। दूसरी असुविधा

जो आप लोगों के मार्ग में बाधा डाल रही है, वह समय समय पर आप लोगों के चौपायों का संक्रामक रोगों से सताया जाना है। इन रोगों से कई समय बड़ी भयङ्कर हानि होती है। मेरे राज्य के पशु-चिकित्सा विभाग के अधिकारियों का यह प्रथम कर्तव्य होगा कि वे इन विनाशक व्याधियों के खिलाफ़ जोरदार प्रयत्न करें। इस विभाग में हाल ही में कुछ ऐसे सुधार कर दिये गये हैं कि जिनसे कृषकगण पूरा पूरा फायदा उठा सकें। पर केवल उनके ढोरों का इलाज कर देने से भी काम न चलेगा। उन्हें उनके प्रत्येक दैनिक कार्य्य में सहायता दी जानी चाहिये।

"वे दिन आ रहे हैं जब कि किसान केवल खेती करके शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत कर सकेंगे। रेल्वे का विस्तार और व्यापार की उन्नति के कारण दूर दूर के व्यापारिक केन्द्रों के साथ भी किसानों का सम्बन्ध होता जा रहा है। अब यदि कृषक पैसा पैदा करना चाहें तो उन्हें चाहिये कि वे उन व्यापारिक केन्द्रों की आवश्यकताओं को समझें और उन्हें पूर्ण करने का यत्न करें। इधर मजदूरी की दर एवं पशुओं का मूल्य बढ़ जाने के कारण कृषि की प्राचीन पद्धतियाँ विशेष लाभप्रद सिद्ध नहीं हो रही हैं, अतएव किसानों को अब यह सीखने की आवश्यकता है कि किस प्रकार कम मिहनत में ज्यादा काम किया जा सकता है। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिये मैंने कृषि-विभाग का उद्घाटन किया है और यह प्रयोग क्षेत्र (Experimental farm उसी का एक महत्व पूर्ण अङ्ग है। इस संस्था का सब से पहले यह कर्तव्य होगा कि वह इस बात की तलाश करे कि मेरे राज्य के किसानों के लिये कौन कौन सी खेती विशेष लाभप्रद हो सकती है। इस विभाग का क्षेत्र बड़ा विस्तीर्ण है। किसानों को हर प्रकार से लाभ पहुँचाना ही मेरा प्रथम उद्देश्य है।

"बहुत से किसान बुरी तरह कर्ज से लदे हुए हैं। वे जान बूझकर भी ज्यादा पैदावार करने को इसलिये कोशिश नहीं करते कि अगर ज्यादा पैदावार होगी तो कर्जदार ले लेगा। अतएव मेरी कृषि सम्बन्धी नीति को सफल

बनाने के लिये यह भी आवश्यक है कि किसानों के कर्ज़ को मिटाने के लिये कुछ सुविधाएँ हो जायँ। उन्हें अपनी कृषि सम्बन्धी पद्धतियों के सुधारने के लिये उचित सूद पर उचित रकम मिल जाय। इसके लिये मैंने सहकारी समितियों की योजना की है। ये समितियाँ भारत के अन्य प्रान्तों में लाभ-प्रद सिद्ध हुई हैं।"

"मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि मेरे राज्य के किसान अपनी जमीन का अच्छा उपयोग कर सकें और इस कार्य्य में उन्हें जिन जिन बातों की ज़रूरत हो वे राज्य की ओर से पूरी की जावें। इस नीति को व्यवहार में लाने के लिये राज्य के प्रत्येक विभाग के सहयोग की आवश्यकता है। मैं अपने प्रत्येक अधिकारी से यह अनुरोध करना चाहता हूँ कि मेरे राज्य के कृषकों की उन्नति ही राज्य के सार्वजनिक जीवन की वास्तविक उन्नति है।"

"मुझे विश्वास है कि मेरे राज्य का धनिक वर्ग भी इस कार्य्य में हाथ बटाये बिना न रहेगा। जो व्यापारी हैं, वे बाजार की घटी बढ़ी की सूचना कर कृषि-विभाग को लाभ पहुँचा सकते हैं। वे भाग्यवान पुरुष जो कर्ज़ के रूप में सूद पर रुपया देने की शक्ति रखते हैं सहकारी समितियों को कर्ज़ पर रुपया देकर उन्हें सहायता पहुँचा सकते हैं; जो दान करना चाहें उनके लिये भी मार्ग खुला है। किसानों के बच्चों को छात्रवृत्तियाँ देकर वे उन्हें कृषि का कार्य्य सीखने के लिये भेज सकते हैं।"

"प्रिय किसानों! अधिक क्या कहूँ मैं आपके कल्याण का अभिलाषी हूँ। मैं आपके प्रत्येक हित के कार्य्य में सहायता पहुँचाने के लिये तैयार हूँ। सब से पहले मैं पुराने कुओं की मरम्मत करवाऊँगा, जहाँ आवश्यकता होगी वहाँ नये कुए बनवाने का यत्न करूँगा। इस कार्य्य में मैं यथा शक्ति रुपया खर्च करने के लिये तैयार हूँ। द्वितीय मैं पशु-चिकित्सा का पूरा पूरा प्रबन्ध करूँगा। तीसरा मैंने किसानों की माँगों को पूरा करने के लिये कृषि-विभाग खोल रक्खा है। यह विभाग आपको कृषि द्वारा ज्यादा द्रव्य प्राप्त करवाने में सहायता देगा। यदि आप मेरे कृषि-विभाग के अधिकारियों की सलाह से काम

करेंगे तो थोड़े ही समय में आप देखेंगे कि जिस जमीन से आप इस समय बहुत मिहनत करके बहुत कम द्रव्य उपार्जन करते हैं उसीसे बहुत थोड़ी मिहनत से आप कॉफी द्रव्य पैदा कर सकेंगे। बहुत सी ऐसी फसलें आप इन खेतों में उत्पन्न कर सकेंगे जिनके विषय में इस समय आप अन्धकार में हैं।

मैं आशा करता हूँ कि आप इन्दौर में मेरे मेहमान के बतौर रहेंगे और अपने गावों में पहुँचने पर मेरा सन्देश अपने भाइयों तक पहुँचा देंगे।"

महाराजा और विद्यार्थीगण

श्रीमान् महाराज तुकोजीराव (तृतीय) का अपने राज्य के विद्यार्थियों पर बड़ा प्रेम रहा है, यह बात समय समय पर आपके द्वारा प्रकाशित विचारों से प्रकट होती है। महाराज शिवाजीराव हाईस्कूल में भाषण देते हुए आप ने फरमाया थाः—

"मेरे राज्य का भविष्य वर्तमान विद्यार्थियों के भविष्य के साथ अबाधित रूप से जुड़ा हुआ है, अतएव मैं शिक्षकों से अनुरोध करता हूँ कि विद्यार्थियों के जीवन को बनाने का जो पवित्र उत्तरदायित्व उनके सर पर है, उसका वे भली प्रकार पालन करें। वे विद्यार्थियों को ऐसा बनाने का यत्न करें कि जिससे जब वे (विद्यार्थी) जीवन-विग्रह में प्रवेश करें तब उनमें इस प्रकार का चरित्र, सरलता, ईश्वरीय प्रेम और नागरिकत्व के गुणों का विकास हो कि उनके लिये मुझे योग्य अभिमान हो सके। इसके साथ ही मैं विद्यार्थी-वर्ग से भी यह अनुरोध करूगा कि आपकी शिक्षा का महत्व आपके उच्चतम चरित्र पर निर्भर है। आप यह ध्यान में रखिये कि उच्चतम सद्गुणों के प्रकाश में विद्या के असली तत्व छिपे हुए हैं। अगर आप ऐसी विद्या प्राप्त करेंगे तो आपके सामने आपके देश की भलाई करने का बड़ा क्षेत्र उपस्थित हो जायगा। (you will have immence scope of doing to your country)"

एक दूसरे अवसर पर सिटी हाईस्कूल में व्याख्यान देते हुए आपने फ़रमाया था;—

"आप लोग अपने मन को अपनी नीति को इस तरह संस्कारित कीजिये कि जिससे भविष्य में आप योग्य नागरिक बन सकें।" व्याख्यान के सिलसिले में आगे चलकर आपने कहा था;—"मेरे प्रिय विद्यार्थियों ! अब मैं दो शब्द आपसे कहना चाहता हूँ। आप लोगों में से कुछ को अपनी परीक्षाओं की सफलता के फल स्वरूप पुरस्कार मिला है। पर मैं जानता हूँ कि बहुत से बिना पुरस्कार ही के लौटेंगे। यह तो जीवन का एक अवसर मात्र है। जीवन के महत्त्व पुरस्कार बहुत कम लोगों को मिलते हैं। अधिकांश लोग इनसे खाली रहते हैं। पर मैं जीवन के एक वास्तविक पुरस्कार की ओर आपका ध्यान आकर्षित करता हूँ। वह यह है कि चाहे वह आपकी बुद्धि और स्थिति कैसी ही क्यों न हो, पर सच्चा, सीधा, दयालु, नम्र और मानव-जाति के सेवक होना, ये सब आपके वश की बातें हैं। ये ही सद्गुण जीवन के वास्तविक पुरस्कार हैं और इन्हीं पर मानव-चरित्र का उज्ज्वल विकास निर्भर रहता है। आप नियमित परिश्रमी, और ईश्वर से डरनेवाले होवें। सच्चाई, सहन-शीलता और नम्रता की मूर्ति बनें। द्वेष, मायाजाल और कपट जो कि मनुष्य के जीवन को निश्चयपूर्वक खा डालते हैं उनसे दूर रहें। कुष्ट रोग की तरह आप इनसे हमेशा बचते रहें। खुशामद से दूर रहें। यह बड़ा भयङ्कर रोग है। आप अपने बाहरी जीवन को भीतरी जीवन का प्रतिबिम्ब बनायें। सत्य के लिये आप बहादुर (Bold in the Cause of truth) बनें। ये ही ऐसे पुरस्कार हैं, जिनके लिये आपको ललचाना चाहिये। ये ऐसी बातें हैं जिन्हें आपको स्कूल में सीखने की जरूरत है और इन्हें आप इस ढङ्ग से सीखिये कि जिससे स्कूल आपके लिये और आप स्कूल के लिये अभिमान कर सकें।"

महाराजा का साहित्य-प्रेम

साहित्य की उन्नति और विकास के लिये भी श्रीमान् महाराज तुकोजी-राव ने प्रशंसनीय सहायता पहुँचाई है। आपने कई प्रख्यात और योग्य ग्रन्थकारों को हजारों रुपयों का पुरस्कार देकर उनका उत्साह बढ़ाया। कहा जाता है कि छत्रपति शिवाजी महाराज के जीवनी-लेखक को श्रीमान् ने कोई ४०००० रुपयों से सहायता पहुँचाई। यह ग्रन्थ अपने ढङ्ग का अद्वितीय है। हिन्दी और मराठी साहित्य सम्मेलन की आपने दस दस हजार रुपयों से सहायता की। हिन्दी और मराठी साहित्य की उन्नति के लिये आपने पाँच हजार रुपये प्रतिसाल मंजूर फ़रमा रखे हैं। इस सहायता से उक्त दोनों भाषाओं में कितने ही बहुमूल्य ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। इसके अतिरिक्त इन्दौर में हिन्दी और मराठी दोनों साहित्य सम्मेलन जिस धूमधाम और उत्साह के साथ हुए, वैसे हम दावे के साथ कह सकते हैं कि कहीं भी नहीं हुए। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति संसार-मान्य महात्मा गाँधी थे। जब आप इन्दौर पधारे थे, तब श्रीमान् बम्बई में थे। वहीं से आपने तार द्वारा अपनी राजधानी में महात्मा गांधी का स्वागत किया था। हिन्दी साहित्य सम्मेलन में श्रीमान् महाराजा साहब के प्रतिनिधि स्वरूप श्रीमान् युवराज बाला साहब सरकार पधारे थे और वहाँ आपने एक सुन्दर स्फूर्तिदायक भाषण दिया था।

महाराजा और सार्वजनिक संस्थाएँ

श्रीमान् महाराजा साहब ने सार्वजनिक संस्थाओं में बड़ी उदारता से सहायता पहुँचाई। इसका थोड़ासा ब्योरा नीचे देते हैं।

१	हिन्दू विश्वविद्यालय	५०००००)
२	डेली कॉलेज इन्दौर	४५००००)
३	अलीगढ़ कॉलेज	५००००)
४	डिप्रेस्ड क्लास एसोसियेशन	२००००)

५	डेकन वर्नाक्यूलर एज्युकेशन सोसाइटी, पूना	१०००)
६	राजपूत हितकारिणी सभा	५०००)
७	किंग एडवर्ड हॉस्पिटल, इन्दौर	१०५००)
८	लेडी हार्डिञ्ज मेडिकल कॉलेज	५००००)
९	रॉयल जियॉग्राफिकल सोसाइटी	५०००)
१०	हिन्दू पब्लिक हाल, दार्जिलिंग	१०००)
११	सेनिटोरियम, दार्जिलिंग	३०००)
१२	लेडी हार्डिञ्ज मेडिकल कॉलेज	१००००)
१३	पूना ग्यामखाना।	३५००)
१४	साऊथ ऑफ्रिकन रिलीफ फन्ड	१०००)
१५	सेवासदन, पूना	१००००)
१६	गोखले मेमोरियल	५०००)
१७	सर फिरोजशाह मेहता मेमोरियल	४०००)
१८	फर्ग्यूसन कॉलेज, पूना	२००००)
१९	दादाभाई नौरोजी स्मारक	३०००)
२०	महाराष्ट्र साहित्य सम्मेलन	१०००)
२१	इन्द्रप्रस्थ हिन्दू कन्या पाठशाला, दिल्ली	२०००)
२२	सर्व भारतवार्षिय सङ्गीत कॉन्फरेन्स	१०००)
२३	हिन्दी साहित्य सम्मेलन	१००००)
२४	आर्युवेदिक यूनानी कॉलेज, दिल्ली	१००००)
२५	शिवाजी स्मारक	५०००००)
२६	शिवाजी मेमोरियल सोसाइटी	२००००)
२७	लीग ऑफ मेटरनिटी	२००००)
२८	कलकत्ता विश्वविद्यालय	३०००)
२९	शिमला की कुछ संस्थाएं	३०००)
३०	शिवाजी के जीवनी लेखक को	२४०००)

लिखा था, उसमें आपकी इस स्वाभिमानयुक्त वृत्ति का परिचय स्पष्टतया प्रतीत होता है। यहाँ यह कह देना भी आवश्यक है कि श्रीमान् के सिंहासन-त्याग से उनकी प्रजा को हार्दिक दुःख हुआ और जब आप विलायत के लिये रवाना हुए तब हजारों प्रजागण सजल नयनों से आपको पहुँचाने के लिये गये थे।

श्रीमन्त महाराजा यशवन्तराव होलकर

श्रीमन्त महाराजा तुकोजीराव के सिंहासन-त्याग करने के बाद युवराज श्रीमन्त यशवन्तराव बाला साहिब राजगद्दी पर विराजे। ई० स० १९०८ को ६ वीं सितम्बर को आपका जन्म हुआ। आप इस समय ऑक्सफर्ड में शिक्षा पा रहे हैं और सुना जाता है कि वहाँ आपने अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया। इंगलैण्ड के शिक्षा-विशारद मि० हार्डी आपके गार्डियन और ठाकुर रघुराजसिंह जी आपके असिस्टंट गार्डियन हैं। अंग्रेजी और मराठी के साथ श्रीमन्त ने हिन्दी का भी अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया है और हिन्दी साहित्य में आपकी बड़ी दिलचस्पी है। लक्षणों से प्रतीत होता है कि अगर आस-पास योग्य वायुमण्डल रहा, तो श्रीमन्त एक होनहार और प्रगतिशील नरेश निकलेंगे। आशा है जिम्मेदार अधिकारी-गण श्रीमन्त नव-युवक महाराजा साहब के पास ऐसे ही महानुभावों को रखने की चेष्टा करेंगे, जो चरित्रवान्, गुणवान्, सदाचारी, स्पष्टवक्ता और प्रामाणिक हों।

आपकी नाबालिग अवस्था में शासन कैबिनेट के द्वारा सञ्चालित हो रहा है, जिसके प्रेसिडेन्ट रायबहादुर सिरेमलजी बापना और डेपुटी प्राइम मिनस्टर सरदार किबे महोदय हैं।
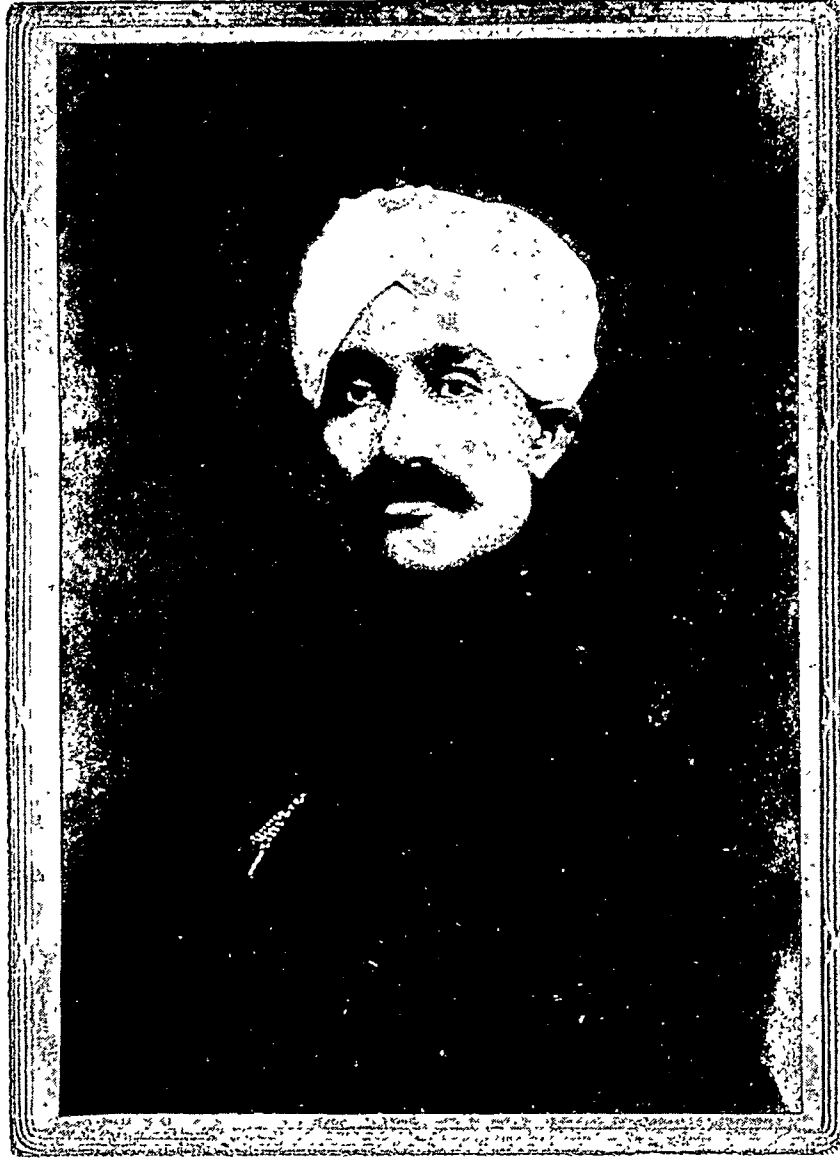
श्रीमान् राय बहादुर सिरेमल जी बापना, प्राइम मिनिस्टर इंदौर स्टेट।

भोपाल-राज्य का इतिहास
HISTORY OF THE BHOPAL STATE
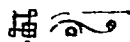
हर हाइनेस नवाब सुलतान जहान बेगम G. C. S I,. G. C. I. E., C. B E., C I., भोपाल

मध्य भारत में भोपाल प्रथम श्रेणी की एक महत्वपूर्ण रियासत है। यहाँ के राज्यकर्ता मुसलमान हैं। यहाँ का इतिहास कई दृष्टि से बड़ा दिलचस्प है। हिन्दुस्थान में भोपाल ही एक ऐसी रियासत है, जहाँ गत सौ वर्षों से विदुषी और राजनीतिज्ञ महिला-शासिकाएँ बड़ी सफलता के साथ राज्य-शासन-सूत्र का सञ्चालन करती आ रही हैं। यहाँ का तालाब भारत-प्रसिद्ध है। अब हम इस राज्य की उत्पत्ति से लगाकर अब अब तक के इतिहास पर कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं।

नवाब दोस्त महम्मद खाँ

भोपाल रियासत के मूल संस्थापक का नाम दोस्त महम्मद खाँ हैं। आपने ई० स० १७०८ में अफ़गानिस्तान के खैबर प्रान्त के तराई नामक ग्राम से भारत में प्रवेश किया। आपके पिता का नाम नूर महम्मद खाँ था। ये नूर महम्मद खाँ सुप्रसिद्ध खान महम्मद खाँ 'मिरजा खेल' के पौत्र थे। जिस समय दोस्त महम्मद खाँ ने हिन्दुस्तान में प्रवेश किया उस समय मुगल सम्राट् औरङ्गजेब इस दुनिया से कूच कर चुके थे, उनके पुत्र बहादुरशाह दिल्ली के तख्त पर आसीन थे।

दोस्त महम्मद खाँ पहले पहल भारत में मुजफ्फर नगर जिले के लोहारी जलालाबाद नामक ग्राम में आकर बसे। यह जिला उस समय जलाल खाँ नामक पुरुष के आधीन था। कुछ दिनों के पश्चात् दोस्त महम्मद खाँ का लोहारी जलालाबाद वासी एक पठान से झगड़ा हो गया। क्रोध में आकर उन्होंने पठान को कत्ल कर डाला। राज्य के अधिकारियों द्वारा इस अभियोग में दण्ड मिलने के भय से वे जलालाबाद छोड़कर शाहजहाँबाद अथवा देहली जा बसे। देहली से वे शाहँशाह की सेना के साथ मालवा प्रान्त में आये। यहाँ उन्होंने सीतामऊ नरेश के यहाँ नौकरी की। कुछ दिन नौकरी करके वे यहाँ से भेलसा के अधिकारी महम्मद फरुख से जा मिले। इसके बाद महम्मद फरुख को अपनी जायदाद सौंपकर उन्होंने मालवा प्रान्त के तत्कालीन एक सरदार के यहाँ नौकरी की। अपने मालिक की आज्ञा पाकर उन्होंने बाँस बरैली के जमींदार से युद्ध किया, जिसमें उन्हें गहरी चोट आई। किसी ने उसके इस युद्ध में मारे जाने की झूठी खबर फैला दी। महम्मद फरुख को यह खबर लगते ही उसने उनका भीलसा में रखा हुआ सब असबाब हड़प कर लिया। यह खबर जब दोस्त महम्मद खाँ के कानों तक पहुँची तो वे भेलसा पहुँचे। उनके हाजिर होने पर महम्मद फरुख ने उनका कुछ असबाब वापिस दे दिया किन्तु बाकी असबाब देने से उसने इन्कार किया। महम्मद फरुख के इस बर्ताव से अप्रसन्न होकर दोस्त महम्मद खाँ ने बेरसिया परगने के मंगलगढ़ संस्थान की रानी—ठाकुर आनन्दसिंह की माता के पास नौकरी कर ली। यह सोलंकी राजपूत थीं। रानी दोस्त महम्मद खाँ के उत्साह एवं स्वामिभक्ति से इतनी संतुष्ट थीं कि वे कभी २ उन्हें अपना पुत्र कह कर सम्बोधित किया करती थीं। वह उन्हें इतना विश्वास पात्र समझती थीं कि उसने अपने कुछ बहुमूल्य जवाहिरात उन्हें सौंप दिये। रानी की मृत्यु के पश्चात् दोस्त महम्मद खाँ कुल जवाहिरात लेकर बेरसिया चले गये। उस समय बेरसिया बहादुरशाह की राज्य-मजलिस के सरदार ताज महम्मद खाँ की जागीर में था।

बहादुरशाह के शासन-काल के समय भारत में मुगलों की सत्ता का सार्वभौमत्व उठ गया था। तैमूर लंग के वंशज इस समय बहुत कमजोर हो गये थे। वे इतने बड़े प्रदेश का राज्य प्रबंध करने में बिलकुल असमर्थ हो रहे थे। भारत में उस समय जान व माल की कुशल नहीं थी। लुटेरे प्रायः रास्तागिरों को लूट लिया करते थे। वे गाँवों में भी डाका डालते थे। वे मालवा प्रान्त के पारासून आदि संस्थानों के ठाकुरों के आश्रय में रह कर खानदेश तथा बरार प्रान्त तक धावा करते थे। सारांश यह है कि, चारों ओर अव्यवस्था और गड़बड़ फैली हुई थी। मालवा प्रान्त के चान्दखेड़ी तालुके के अधिकारी यार खाँ भी लुटेरों के कष्ट से बचे नहीं थे। इतना ही नहीं, वे डाकुओं को पराजित करने में बिलकुल असमर्थ थे। अतएव चाँदखेड़ी के जागीरदार ने काजी महम्मद साले और अमोलकचंद आदि पुरुषों की अनुमति से चाँदखेड़ी तालुका दोस्त महम्मद खाँ को प्रति वर्ष ३०, ००० रुपये के इजारे पर दे दिया। आसपास का मुल्क जीतने की इच्छा से दोस्त महम्मद खाँ ने अपने रिश्तेदारों तथा जाति बाँधवों को चाँदखेड़ी तालुके में एकत्रित करना शुरू किया। साथ ही साथ उन्होंने अपने एक अनुभवी गुप्त-चर को पारासून राज्य का भेद लेने के लिये भेजा। गुप्तचर अत्यंत चतुर था। वह फकीर के वेश में पारासून में घूमा करता था। उसने होली के दिन पारासून के ठाकुर तथा उसके सिपाहियों को नाच रंग में मस्त देखकर उसकी सूचना दोस्त महम्मद खाँ को दी। दोस्त महम्मद खाँ अपने साहसी और होशियार सिपाही साथ लेकर पारासून पहुँचे। उस समय मध्य रात्रि थी। ठाकुर तथा दूसरे पुरुष नशे में बेसुध थे। नाच भी हो रहा था। दोस्त महम्मद खाँ ने ऐसा सुयोग्य अवसर पाकर एकाएक उन्हें घेर लिया तथा ठाकुर और उसके कई अनुयायियों को मार डाला। ठाकुर के मारे जाने से उसके पुत्र, औरतें तथा तमाम मालियत दोस्त महम्मद खाँ के कब्जे में आगई।

दोस्त महम्मद खाँ का उत्साह इस विजय से और बढ़ गया। उन्होंने दूसरे प्रदेश भी अपने अधीन करने का निश्चय किया। खिचीवाड़ा तथा

उमतवाड़ा प्रान्तों के प्रान्तों के लुटेरों का प्रबंध भी उन्होंने अच्छा किया। भेलसा के शासक महम्मद फरुख की ओर से शमसाबाद के हाकिम राजा खाँ और शमशीर खाँ ने दोस्त महम्मद के साथ युद्ध किया। युद्ध में राजा खाँ और शमशीर खाँ दोनों मारे गये। जगदीशपुर के देवराबंश का राजपूत सरदार बड़ा लुटेरा था। उसने दिलोद परगने के पटेल से कर माँगा। पटेल ने दोस्त महम्मद खाँ की सहायता की आशा पर उसे कर देने से इन्कार कर दिया। अतएव जगदीशपुर के राजपूत सरदार ने उक्त पटेल को लूट लिया। इस पटेल ने दोस्त महम्मद खाँ से सहायता माँगी। वे ऐसे अवसर की बाट जो ही रहे थे। उन्होंने उसे सहायता देने का अभिवचन दिया। पठान लोग गुप्त रूप से आक्रमण की तैयारी करने लगे। कुछ दिनों के पश्चात् जगदीशपुर के अधिकांश राजपूत डाका डालने के लिये दूर देश में चले गये। दिलोद परगने में के रायपुर ग्राम के ठाकुर ने दोस्त महम्मद खाँ को यह खबर दी। खबर पाते ही दोस्त महम्मद खाँ ने अपने कुछ चुने हुए सिपाहियों सहित जगदीशपुर के नज़दीक तहाल नदी पर पहुँच कर वहाँ अपना मुकाम किया। वह यहाँ शिकार के बहाने से आये थे उन्होंने जगदीशपुर के ठाकुर के पास अपना वकील भेजकर उनसे भेंट करने की इच्छा प्रकट की। जगदीशपुर के ठाकुर ने उन्हें दावत दी और खुद उनके डेरे पर पहुँचे। दोस्त महम्मद खाँ ने ठाकुर का आदर सत्कार किया तथा मित्र-भाव प्रदर्शित कर उन्हें अपने डेरे में बुलाया। कुछ समय के पश्चात् वे अतर पान लाने के बहाने से डेरे के बाहर निकले। पूर्वानुसंधित कार्य-क्रम के अनुसार ज्यों ही दोस्त महम्मद खाँ ने डेरे के बाहर पैर रखा त्योंही उनके सिपाहियों ने रस्सियां काटकर डेरे को गिरा दिया और कुल राजपूत सरदारों को काट डाला। उनकी लाशें तहाल नदी में फेंक दी गई। इसी दिन से इस नदी का नाम "हलाली" नदी पड़ गया। इस प्रकार सारा जगदीशपुर का राज्य दोस्त महम्मद खाँ के अधीन हो गया। उसने इस स्थान का नाम जगदीशपुर बदल कर इस्लामपुर रखा। यहाँ उन्होंने एक किला और कुछ इमारतें बनवाईं और बाद वे यहीं रहते थे।

थोड़े ही समय में बहुत सफलता प्राप्त हो जाने के कारण दोस्त महम्मद खाँ की हिम्मत बहुत बढ़ गई और वे महम्मद फरुख पर आक्रमण करने की तैयारी करने लगे। भेलसा के नज़दीक जमाल बावड़ी गाँव में महम्मद फरुख और दोस्त महम्मद खाँ की फौजों का सामना हुआ। दोस्त महम्मदखाँ की सेना उनके छोटे भाई शेरमहम्दखाँ के संचालन में युद्ध कर रही थी। महम्मद फ़रुख युद्ध-स्थल में नहीं उतरा। वह एक हाथी पर सवार होकर दूर ही से युद्ध का तमाशा देख रहा था। दोस्त महम्मद खाँ अपनी सेना के कुछ चुने हुए सिपाहियों सहित पास ही की एक टेकरी के पीछे छिपे बैठे थे। भीषण युद्ध शुरू हुआ। कुछ देर में महम्मद फ़रुख के दुराहा नामक ग्राम के राजाखाँ मेवाती ने शेर महम्मद खाँ को इतने जोर की बर्छी मारी कि वह आर पार निकल गई। इधर शेर महम्मदखाँ पर बर्छी का वार होना था कि उधर उन्होंने राजाखाँ मेवाती पर तलवार का एक हाथ मारा। इससे उस के भी दो टुकड़े हो गये। अपने सेनापति के मारे जाने पर दोस्त महम्मद खाँ की फौज के पाँव उखड़ गये। वह युद्ध से भाग खड़ी हुई। महम्मद फ़रुख की फौज ने उसका पीछा किया। अपनी सेना के विजयी होने से महम्मद फ़रुख अत्यंत प्रसन्न हुए। उन्होंने रण-दुंदुभी बजाने का हुक्म दिया। दोस्त महम्मद खाँ, जोकि इस समय तक टेकरी की आड़ में छिपे हुए बैठे थे, शत्रु को आनन्द और खुशी में लीन होते देख अपने गुप्त-स्थान से बाहर निकले। बड़े साहस और चतुराई से उन्होंने महम्मद फ़रुख को घेरकर उसे कत्ल कर डाला। इसके पश्चात् अपने मुँह पर धाटा बाँधकर वे महम्मद फ़रुख के हाथी पर सवार हुए।

रण-दुंदुभी बजानेवाले सब सैनिक दोस्त महम्मदखाँ के अधीन हो गये थे। अतएव उन्होंने उन्हें रण-दुंदुभी बजाने की आज्ञा दी। रण-दुन्दुभी का नाद सुनकर भेलसा की सेना, जो कि अपनी विजय से पहिले ही प्रफुल्लित हो उठी थी, इस समय फूली न समाई। युद्ध खतम होने तक रात हो गई थी, इससे भेलसा की सेना ने दोस्त महम्मद खाँ

को नहीं पहचाना। वह उन्हें अपना मालिक समझ कर उनके साथ भेलसे के किले तक आ पहुँची। किले के रक्षकों ने भी दोस्त मुहम्मद खाँ को अपना स्वामी समझा। उन्होंने किले का द्वार खोलकर दोस्त महम्मद खाँ को किले के अन्दर ले लिया। किले में अपनी सेना सहित प्रवेश करने पर दोस्त महम्मद खाँ ने महम्मद फ़रुख का मृत शरीर बाहर निकाल कर फेंक दिया तथा किले पर अपना अधिकार कर लिया।

इस विजय से दोस्त महम्मद खाँ की शक्ति बड़ी प्रबल हो गई। थोड़े दिनों के पश्चात् महालपुर, गुलगाँव, ऊँटकेड़ा, ग्यासपुर, अंबापानी, साँची, चोरासी छानवा, अहमदपुर, बाँगरोद, दोराहा, इच्छावर, सिहोर, देवीपुरा, आदि बहुत से परगने उनके कब्जे में आ गये।

दोस्त महम्मद खाँ की बढ़ती हुई शक्ति को रोकने के लिये मालवा प्रान्त के सूबेदार दया बहादुर ने उनके विरुद्ध एक सेना भेजी। दोनों ओर की सेना में युद्ध हुआ। इस समय भी अपनी कूट-नीति से दोस्त महम्मद खाँ को विजय प्राप्त हुई और सूबेदार दया बहादुर की सेना पराजित हुई। इस युद्ध में विपक्षी दल का तोपखाना तथा अन्य युद्धोपयोगी बहुत सा सामान दोस्त महम्मद खाँ के हाथ लगा। उनके भाग्य को बढ़ते हुए देखकर शुजालपुर के अमीन विजेराम ने अपना परगना उन्हे सौंप दिया और खुद ही उनके अधीन हो गया। कुखाई का सरदार दलेल खाँ दोस्त महमद खाँ की सफलता पर लुब्ध हो कर भेलसा पहुँचा। उसने उनसे मुलाकात की और उन्हें युद्ध में सहायता पहुँचाने का वादा किया। यह भी निश्चित किया गया कि युद्ध के पश्चात् कब्जे में आए हुए प्रदेश का आधा २ हिस्सा दोनों में बाँटा जावे। जिस समय एकांत में इस विषय पर दोनों में वाद-विवाद हो रहा था, उस समय दोनों में झगड़ा हो गया। दोस्त महम्मद खाँ ने ऐसा योग्य अवसर पाकर सरदार दलेल खाँ को कत्ल कर डाला।

गुन्नूर में गोंड लोगों का एक सुदृढ़ किला था। उनका सरदार निज़ामशाह गोंड था। उसे चैनपुर बाड़ी में रहनेवाले किसी रिश्तेदार ने विष

देकर मार डाला था। निजामशाह की रानी का नाम कमलावती था। उसके एक लड़का था, जिसका नाम नवलशाह था। ये गुन्नूर के किले में रहते थे। दोस्त महम्मद खाँ के साहस पर विश्वास कर इन्होंने निजामशाह पर विष-प्रयोग करनेवाले रिश्तेदारों से बदला लेने का निश्चय किया। अतएव, इन्होंने दोस्त महम्मद खाँ से चैनपुर बाड़ी पर आक्रमण करने के लिये अनुरोध किया। दोस्त महम्मद खाँ ने चुपचाप चैनपुर बाड़ी को घेर लिया और उसे अपने अधीन कर लिया। इस विजय के उपलक्ष्य में कमलावती रानी ने उन्हें अपना मैनेजर नियुक्त किया। रानी की मृत्यु होते ही इन्होंने गुन्नूर के किले पर अपना अधिकार कर लिया। इन्होंने बहुतरे लुटेरे गोंड सरदारों को भी कत्ल करवा दिया था।

हिजरी सन् ११४० के जिल्हेज मास की ९ वीं तारीख को दोस्त महम्मद खाँ ने भोपाल के आसपास एक नगर कोट और एक किला बंधवाने का काम शुरू किया। भोपाल उस समय एक विशाल सरोवर के तट पर बसा हुआ छोटा सा ग्राम था। भोपाल नगर की उन्नति के लिये दोस्त महम्मद खाँ ने बहुत कोशिश की। हि० स० ११३२ में सैयद हुसेन अली खाँ तथा सैयद दिलावर खाँ ने निज़ाम-उल्-मुल्क से बरहानपुर के समीप युद्ध किया था। उस समय दोस्त महम्मद खाँ के भाई मीर अहमद खाँ ५०० अश्वारोही तथा २०० ऊँटों की सेना सहित दिलेर खाँ की ओर से युद्ध में लड़े थे। इस द्वेष का बदला लेने के लिये निज़ाम-उल्-मुल्क ने दिल्ली से हैदराबाद वापिस लौटते समय हि० स० ११५२ में इस्लामपुर दुर्ग के समीप "निज़ाम टेकड़ी" पर अपना डेरा डाला। दोस्त महम्मद खाँ ने निजाम–उल्-मुल्क सरीखे प्रबल शत्रु से युद्ध करना उचित न समझा। अतएव उन्होंने उनसे संधि कर ली और अपने पुत्र यार महम्मदखाँ को बतौर ज़ामिन के निजाम-उल्-मुल्क के हवाले कर दिया।

दोस्त महम्मद खाँ ने तीस वर्ष तक कठिन परिश्रम करके भोपाल राज्य की स्थापना की थी। उन्हें युद्ध में लगभग ३० चोटें लगीं थीं। ई० स० १७४० में ६६ वर्ष की उम्र में उनकी मृत्यु हो गई। इनकी कब्र भोपाल के

नज़दीक फतेहगढ़ के किले में अब तक मौजूद है। दोस्त महम्मद खाँ के पिता नूर महम्मद खाँ की कब्र भी मेरिसा में बनी हुई है। दोस्त महम्मद खाँ के पाँच भाई और थे। इनमें से चार भाई पृथक् पृथक् युद्धों में मारे गये थे। पाँचवें भाई आकिल महम्मद खाँ थे। वे राज्य के दीवान थे। दोस्त महम्मद खाँ के ६ पुत्र तथा ५ पुत्रियाँ थीं।
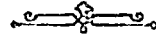
नवाब यार महम्मद खाँ

दोस्त महम्मद खाँ के बाद मसनद पर किसे बैठाया जावे, इसके लिये झगड़ा चला। पाठक जानते हैं कि, दोस्त महम्मद खाँ ने अपना एक पुत्र निज़ाम को सौंपा था। वह सब से बड़ा पुत्र था। पर भोपाल के अमीर उमरावों ने उनके हक्क को नाकबूल कर सुलतान महम्मद खाँ नाम के दूसरे लड़के को, जिसकी उम्र उस समय केवल आठ वर्ष की थी, मसनद पर बैठाया। दोस्त महम्मद खाँ के सब से बड़े पुत्र यार महम्मद खाँ ने निजाम की कृपा प्राप्त कर ली थी। निजाम ने जब सुना कि भोपाल के अमीर उमरावों ने यार महम्मद खाँ का हक मार दिया है, तब उन्हें बहुत बुरा लगा और उन्होंने उसे नवाब मानकर एक बड़ी फौज़ के साथ भोपाल भेजा। इस फौज का किसी ने मुकाबिला नहीं किया। बस फिर क्या था? नवाब यार महम्मद ने अपने भाईको गद्दी से अलग कर दिया और अपने आपको भोपाल का नवाब घोषित कर दिया।

यार महम्मद बड़े महत्वाकांक्षी थे। वे अपने राज्य की सीमाओं को बढ़ाना चाहते थे। ये इसके लिये यत्न करने लगे और अपने राज्य को बहुत कुछ बढ़ा लिया। ईसवी सन् १७५४ में इस महत्वाकांक्षी नवाब का देहान्त हो गया।

नवाब फैज महम्मद खाँ

यार महम्मदखाँ के पाँच पुत्र थे। सब से बड़े पुत्र का नाम फैज महम्मद था। मसनद के लिये फिर झगड़ा खड़ा हुआ। रियासत में एक पार्टी ऐसी थी जो पदच्युत नवाब सुल्तान महम्मद को मसनद पर बैठाना चाहती थी। दूसरी पार्टी फैज महम्मद के पक्ष में थी। इन दोनों में परस्पर खूब झगड़ा हुआ। आखिर में स्वर्गीय नवाब यार महम्मद की विधवा बेगम ममोला बीबी और रियासत के दीवान विजयराम ने बीच में पड़ कर यह समझौता करवाया कि, सुलतान महम्मद को रियासत में जागीर दे दी जावे और वह मसनद का हक़ छोड़ दे। यह समझौता दोनों पार्टियों ने मंजूर कर लिया।

फैज महम्मद, जो इस वक्त नवाबी की मसनद पर थे, अपना बहुत सा समय ईश्वर की भक्ति में लगाते थे, राज्य-कार्य्य की ओर उनका ध्यान विशेष न था। अतएव उन्होंने राज्य के शासन-सूत्र का भार ममोला बीबी और अपने वजीर पर डाल दिया। इनके समय में भोपाल राज्य पर मरहठों के कई हमले हुए और इनमें भोपाल भोपाल का बहुत सा मुल्क मरहठों के हाथ चला गया। ईसवी सन् १७७७ में नवाब फैज महम्मद की मृत्यु हो गई।

नवाब हयात महम्मद खाँ

फ़ैज महम्मद खाँ के कोई पुत्र न था। अतएव उनके भाई हयात महम्मद खाँ मसनद पर बैठे। इस पर मृत नवाब की बेगम ने आपत्ति की। उसने शासन-सूत्र अपने हाथ में लेने की इच्छा प्रकट की।

यद्यपि हयात् महम्मद मसनद पर रहे, पर वे रियासत का इन्तजाम सन्तोष-जनक रीति से न कर सके। इसका कारण यह था कि वे अपना बहुत सा समय धार्मिक क्रियाओं में व्यतीत करते थे। अतएव इन्होंने फौलाद खाँ नामक एक गोंड को अपना प्रधान मन्त्री बनाया। इस समय रियासत की आमदनी में से ५००,००० रुपया नवाब को खर्च के लिये दिये जाने लगे और शेष १५,००,००० राज्य-कार्य्य के लिये खर्च किये जाने लगे।

ईसवी सन् १७७६ में जब ईस्ट इण्डिया कंपनी ने पुरन्दर की सन्धि को अस्वीकृत कर दिया, तब तत्कालीन गवर्नर जनरल वॉरन हेस्टिंग्ज ने बम्बई सरकार का समर्थन करने का निश्चय कर लिया। अतएव उन्होंने बङ्गाल से फौज भेजी। उसके रास्ते में भोपाल पड़ा था। उस फौज की नवाब हयात महम्मद खाँ ने यथासम्भव हर प्रकार की सहायता की।

ईसवी सन् १७८० में भोपाल के तत्कालीन प्रधान मन्त्री फौलाद खाँ को किसी ने मार डाला। उसके बाद छोटे खाँ प्रधान मन्त्री हुआ। यह बड़ा होशियार और बुद्धिमान् था। उसने मराठों के साथ मित्रता का सम्बन्ध स्थापित किया। मृत नवाब फैज महम्मद की बेगम ने इसके सुदृढ़ शासन को पसन्द नहीं किया। उसने इसके खिलाफ़ विद्रोह खड़ा करने का यत्न किया। पर उसने बेगम के इस यत्न को सफल न होने दिया। इसे इस उच्च पद से हटाने के लिए जो फौजें खड़ी की गई थीं जिन्हें उसने हरा दिया। पर कुछ समय तक वहाँ षड्यन्त्र और विद्रोह चलते रहे। आखिर में छोटे खाँ इन सबों

को दबाने में सफल हुआ। इसने राज्यशासन बड़ी बुद्धिमत्ता और योग्यता से किया। इसने बहुत से प्रजा-हितकारी कार्य्य भी किये, जो कि भोपाल रियासत के लिये तथा उसकी प्रजा के लिये बहुमूल्य सिद्ध हुए।

ईसवी सन् १७९५ में छोटे खाँ का देहान्त हो गया। वह फतहगढ़ के क़िले में गाड़ा गया। इसके बाद अमीर महम्मद खाँ और हिम्मत-राम ने क्रम से वहाँ के प्रधान मन्त्री के पद को ग्रहण किया। इस समय नवाब हयात महम्मद के निर्बल शासन की वजह से रियासत की हालत बहुत खराब हो रही थी। यहाँ के उच्च अधिकारियों में सिवा परस्पर षड्यन्त्रों के और कुछ नहीं हो रहा था।

इसी बीच में मराठों ने भोपाल राज्य पर हमले किये और उसके मुल्क को तहस नहस कर डाला। ईसवी सन् १७९५ में मुरीद महम्मद खाँ भोपाल की चीफ़ मिनिस्टरी का पद ग्रहण करने के लिये निमन्त्रित किये गये। वे अपने १००० साथियों सहित वहाँ पहुँचे। उन्होंने नवाब से मुलाकात की और कहा कि जब तक विरोधी लोग हटा न दिये जावेंगे तब तक मैं प्रधान मन्त्री का पद कभी ग्रहण नहीं कर सकता। मुरीद महम्मद खाँ की बात नवाब ने मान ली। विरोधी समझे जानेवाले लोग निकाले जाने लगे। मुरीद ने बड़ी हृदय-हीनता से प्रजा पर नये २ टेक्स बैठाने शुरू किये। नवाब की बेगम को मार डालने में भी उनका हाथ था। उसने नवाब के पुत्र गाजी महम्मद खाँ और दोस्त महम्मद खाँ के प्रपौत्र को भी मरवाने का षड्यन्त्र रचा। ये सब बातें नवाब को मालूम हो गई। उसने मुरीद के खिलाफ़ मामला उठाना चाहा, पर इसी बीच में मराठों के आक्रमण का आतङ्क उपस्थित हुआ। अगर महाराजा सिन्धिया मराठों को वापस न बुला लेते तो वह इस आक्रमण में पूरी सफलता प्राप्त करते। कुछ हो, वापस लौटते समय मराठों की फौज मुरीद को पकड़ ले गई और वह उसके द्वारा कैद कर लिया गया। पीछे जाकर उसने आत्म-हत्या कर ली।

इसके बाद वजीर महम्मद प्रधान मन्त्री के पद पर नियुक्त किये

गये। वे भी बड़े मजबूत दिल के शासक थे। इन्होंने अपने अधिकार का इतना जोर दिखलाया कि, नवाब गौस महम्मद भयभीत हो गये। नवाब गौस महम्मद ईसवी सन् १८०८ में भोपाल की मसनद पर बैठे थे पर ये नाम-मात्र के ही नवाब थे। क्योंकि सारे अधिकार तो वजीर महम्मद खाँके हाथ में थे। उन्होंने रियासत पर अपनी ताकत का बेतरह सिक्का जमा रखा था।

नवाब ने सब ओर से निरुपाय होकर वजीर को निकालने के लिये नागपुर के मराठों से सहायता माँगी। पर इसमें भी वे सफल नहीं हुए। वजीर ने मराठों को भी नगर से निकाल दिया। इसके बाद वजीर ने नवाब गौस महम्मद को अवसर ग्रहण करने के लिए मजबूर किया। इस वक्त से नवाबों के बजाय वहाँ के वजीर ही वास्तविकरूप से शासन करते रहे। नवाब केवल नाम-मात्र का रहा। भोपाल के गजेटियर में लिखा है:—

From this date the rule of Bhopal practically passsd to Vazir" branch of the family. मतलब यह कि—"इस समय से अमली तौर से भोपाल का शासन वजीरों के खानदान के ही हाथ में रहने लगा।"

ईसवी सन् १८११ में वजीर ने बृटिश सरकार से सन्धि करने के प्रस्ताव किये, पर मराठों के हमलों के कारण इसमें सफलता नहीं हुई। ईसवी सन् १८१६ में वजीर का देहान्त हो गया। इनके दो पुत्र थे। बड़ा पुत्र अमीर महम्मद खाँ शरीर और मन से कमजोर होने के कारण अपने पिता का पद ग्रहण न कर सका। छोटे पुत्र नजर महम्मद ने यह पद ग्रहण किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि वे ही इस वक्त भोपाल के असली नवाब थे। सारा कारोबार उन्हीं के हाथ में था। पर इस समय भोपाल का नवाब जिन्दा था। अतएव उन्होंने नवाब की उपाधि धारण नहीं की।

ईसवी सन् १८१८ में नजर महम्मद ने नवाब गौस महम्मद की लड़की गौहर बेगम के साथ विवाह किया। इसी साल के मार्च मास में उन्होंने बृटिश सरकार के साथ सन्धि की। सन्धि-पत्र में एक यह भी शर्त रखी गई

थी कि आवश्यकता पड़ने पर उन्हें बृटिश सरकार को ६०० सवारों ४०० पैदल सिपाहियों की सहायक सेना से सहायता करनी पड़ेगी। इस शर्त की पूर्ति के लिये नजर महम्मद ने बृटिश सरकार को बहुत से जवाहरात दे डाले; जिनकी बिक्री से सरकार को ५०,००,००० रुपये प्राप्त हुए। इससे बृटिश सरकार बड़ी प्रसन्न हुई और उसने इस्लाम-नगर का किला और पाँच उपजाऊ परगने जो अब तक महाराजा सिन्धिया के अधिकार में थे, उनको लौटा दिये। ईसवी सन् १८१९ में नजर महम्मद अपने नवयुवक बहनोई के हाथ भूल से मारे गये।

नवाब जहाँगीर महम्मद खाँ

नजर महम्मद के कोई पुत्र न था। उनको सिकन्दर बेगम नाम की केवल एक पुत्री थी। अतएव बृटिश सरकार ने यह प्रस्ताव किया कि नजर महम्मद का भतीजा मुनीर महम्मद गौहर बेगम की रिजेन्सी के नीचे गद्दी पर बैठे। साथ ही यह भी तय हुआ कि मुनीर महम्मद सिकन्दर बेगम के साथ शादी कर ले। पर ईसवी सन् १८२७ में मुनीर महम्मद ने गौहर बेगम पर एक तरह से हुकूमत चलाना शुरू किया, इससे दोनों में नाइत्तफाकी होने लगी। अतएव बृटिश सरकार ने मुनीर महम्मद को गद्दी से इस्तीफा देने के लिये मजबूर किया, और उसके छोटे भाई जहाँगीर महम्मद खाँ को गद्दी पर बैठाया। सिकन्दर बेगम की शादी जहाँगीर महम्मद के साथ हुई। गौहर बेगम और नवाब जहाँगीर महम्मद खाँ की भी नहीं बनी। परस्पर तनातनी होने लगी। आखिर में ईसवी सन् १८३७ में पोलिटिकल एजन्ट ने गौहर बेगम को रिजेन्सी से अवसर प्राप्त करने के लिये (to retire) कहा। उसे गुजर के लिये ५००,००० रुपये दिये गये। ईसवी सन् १८७७ में दिल्ली में जो दरबार हुआ था, उसमें गौहर बेगम को "इम्पीरियल

ऑर्डर ऑफ दी क्रौन आफ इण्डिया" की पदवी से विभूषित किया गया।

नवाब जहांगीर बड़े विद्याप्रेमी थे। वे साहित्य से भी विशेष अनुराग रखते थे। विद्वानों की बड़ी कद्र करते थे। इतना होते हुए भी वे राज्य-कार्य्य पर बड़ा ध्यान देते थे। प्रजा की उन्नति और विकास की ओर उनका सविशेष ध्यान था। पर दुर्भाग्य से ये इस संसार में अधिक दिनों तक नहीं रहने पाये। ईसवी सन् १८४४ में केवल २७ वर्ष की उम्र में इन्होंने परलोक-यात्रा की। नवाब जहाँगीर ने अपने मृत्यु-पत्र में यह इच्छा प्रकट की कि, उनकी रखेल का लड़का दस्तगीर उनकी गद्दी का वारिस हो और उनकी लड़की वजीर महम्मद के खानदान के किसी लड़के से ब्याही जावे। बृटिश सरकार ने इस मृत्यु-पत्र को मंजूर नहीं किया और उन्होंने जहाँगीर की पुत्री शाहजहाँ ही को गद्दी का वारिस कबूल किया। साथ ही में यह भी तय हुआ कि "शाहजहाँ का भावी पति, जो कि भोपाल के राज्य-कुटुम्ब ही में से चुना जायगा, भोपाल का नवाब होगा। यह इसलिये किया गया जिससे भोपाल के भूतपूर्व राज्यकर्ता गौस महम्मद और वजीर महम्मद दोनों के खानदान आपस में मिले हुए रहें।

नवाब शाहजहाँ बेगम

शाहजहां बेगम भोपाल की राज्य-गद्दी पर बैठा दी गईं। इस समय इनकी उम्र केवल ७ वर्ष की थी। इनकी नाबालगी में राज्य-कार्य्य सँभालने के लिये एक रिजेन्सी कौन्सिल बनाई गई। नवाब गौस महम्मद का सब से छोटा लड़का मियाँ फौजदार महमद खाँ भोपाल का प्रधान मंत्री भी बना दिया गया। पर एक साल ही में यह बात मालूम होने लगी कि, शासन की यह दोहरी पद्धति (Dual system) असफल

होती जा रही है। फौजदार महम्मद खाँ और सिकन्दर बेगम के नहीं बनी। दोनों में गम्भीर मत-भेद होने लगे। अतएव आखिर में पोलिटिकल एजन्ट ने हस्तक्षेप किया, और उन्होंने फौजदार महम्मद खाँ को इस्तिफा देने के लिये मजबूर किया। साथ ही में यह भी तय हुआ कि, जब तक शाहजहाँ बालिग न हो जायं तब तक सिकन्दर बेगम ही के हाथ में राज्य-व्यवस्था की डोर रहे। ईसवी सन् १८३८ में शाहजहाँ बेगम बालिग हो गईं। इसके कुछ वर्ष तक भोपाल की अच्छी तरक्की होती रही। कई अत्याचारी पद्धतियाँ मिटाई गईं। किसानों को आराम पहुँचाने की व्यवस्थाएँ की गईं। ईसवी सन् १८५५ में शाहजहाँ बेगम की भोपाल के कमांडर-इन-चीफ बक्शी बाकी महम्मद खाँ के साथ शादी हो गई। इससे ये महाशय भी नवाब कहलाने लगे। इन्हें 'नवाब वजीर उद्दौला उमरावद्दौला बहादुर' का ऊँचा खिताब भी मिल गया।

नवाब सिकन्दर बेगम

ईसवी सन् १९५७ में भारत में भयंकर विद्रोहाग्नि की ज्वाला चमकी। इसकी चिनगारियाँ देखते २ सारे भारतवर्ष में फैल गईं। इस समय भोपाल की रिजेन्ट सिकन्दर बेगम ने (यह अब तक रिजेन्ट का काम करती थीं) ब्रिटिश सरकार की तन, मन, धन से सहायता की। इन्होंने अपने राज्य में पूर्ण शान्ति स्थापन की भी अच्छी व्यवस्था की। इन्होंने कई भागे हुए अंग्रेजों की प्राण-रक्षा की। अंग्रेजी फौजों को रसद से मदद पहुँचाई। इससे अंग्रेजों को बड़ी सहायता मिली। जब देश में पूर्ण शान्ति स्थापित हो गई, तब सिकन्दर बेगम ने ब्रिटिश सरकार को दरख्वास्त दी कि, वह भोपाल की बेगम स्वीकार की जाय। उन्होंने अपनी दरख्वास में यह भी दिखलाया कि, दर असल भोपाल-राज्य-गद्दी की वही अधिकारिणी है। उसके (शाहजहाँ बेगम के)

पति को गलती से नवाब घोषित किया गया था। इसके साथ ही शाहजहाँ बेगम ने भी यह स्वीकार कर लिया कि, जब तक उसकी माता सिकन्दर बेगम जीवित रहे, तब तक वही भोपाल की शासिका रहे। ब्रिटिश सरकार ने सन् १८५७ में सिकन्दर बेगम की दी गई सहायता को स्वीकार करते हुए उसे भोपाल की बेगम घोषित कर दिया। ईसवी सन् १८६१ में जबलपुर में एक दरबार हुआ था, उसमें सिकन्दर बेगम भी उपस्थित हुई थीं। उस दरबार में तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड केनिंग ने सिकन्दर बेगम को संबोधित करते हुए कहा था—

"सिकन्दर बेगम ! मैं इस दरबार में आपका हार्दिक स्वागत करता हूँ। मैं एक लंबे अर्से से यह अभिलाषा कर रहा था कि आपने श्रीमती सम्राज्ञी के राज्य की, जो बहुमूल्य सेवाएँ की हैं उनके बदले में आपको धन्यवाद प्रदान करूँ। बेगम साहिबा, आप एक ऐसे राज्य की अधिकारिणी हैं, जो इस बात के लिये मशहूर है कि, उसने ब्रिटिश सरकार के खिलाफ कभी तलवार नहीं उठाई। अभी थोड़े दिन पहले जब कि आपके राज्य में शत्रुओं का आतङ्क उपस्थित हुआ था, उस समय आपने जिस धैर्य्यता, बुद्धिमत्ता और योग्यता के साथ राज्य कार्य्य का सञ्चालन किया, वैसा कार्य्य एक राजनीतिज्ञ या सिपाही के लिए ही शोभास्पद हो सकता था। ऐसी सेवाओं का अवश्य ही प्रतिफल मिलना चाहिए।"

मैं आपके हाथों में बर्सिया जिले की राज्य-सत्ता सौंपता हूँ। यह जिला पहले धार-राज्य के अधीन था। पर उसने बलवे में शरीक होकर उस पर से अपना अधिकार खो दिया। अब यह राज्य-भक्ति के स्मारकस्वरूप हमेशा के लिये आपको दिया जाता है।"

इसी साल श्रीमती सिकन्दर बेगम को जी. सी. एस. आई. की उपाधि मिली। ईसवी सन् १८६२ में आपको गोद लेने की सनद भी मिली। ईसवी स० १८६४ में आप मक्का यात्रा के लिये पधारीं और ईसवी सन् १८६८ की ३० अक्टूबर को आपने परलोक की यात्रा की। मृत्यु के समय श्रीमती की अवस्था ५१ वर्ष की थी।

पुनः नवाब शाहजहां बेगम

अब शाहजहाँ बेगम की बारी आई। वे पुनः भोपाल की राज्य-गद्दी पर बैठाई गई। इसी अर्से में शाहजहां बेगम के पति नवाब बाकी महमदखाँ बहादुर की मृत्यु हो गई। अतएव उन्होंने ईसवी सन् १८७१ में मौलवी सैय्यद् सादीक हुसैन से दूसरा विवाह कर लिया। ये मौलवी साहब पहले भोपाल के कई महत्वपूर्ण पदों पर काम कर चुके थे। बेगम शाहजहां के साथ विवाह हो जाने से इन्हें "नवाबवाला जहां अमीर उल-मुल्क" की पदवी मिल गई। सरकार ने इन्हें १७ तोपों की सलामी का मान दिया।

ईसवी सन् १८७२ में नवाब शाहजहां बेगम की सेवाओं से प्रसन्न होकर भारत सरकार ने उन्हें "जी० सी० एस० आई० की उच्च उपाधि प्रदान की। ईसवी सन् १८९० में बेगम साहबा के दूसरे पति का भी देहान्त हो गया। उनकी मृत्यु के बाद से लगा कर ईसवी सन् १९०१ तक बेगम साहबा ने अपने ही हाथों से भोपाल राज्य का शासन किया। इसी साल इनका देहान्त हो गया।

नवाब सुलतानजहाँ बेगम

आपके बाद भोपाल की वर्तमान बेगम साहबा, नवाब सुलतान जहाँ बेगम जी० सी० एस० आई०, जी० सी० आई० ई०, सी० आइ मसनद पर बैठीं। इस बात को छः ही मास न हुए थे कि आपको अपने पति का वियोग सहन करना पड़ा। ईसवी सन् १९०४ में बेगम साहबा मक्का की यात्रा के लिये तशरीफ ले गई। ईसवी सन् १९०५ में इन्दौर मुकाम पर आपने तत्कालीन प्रिन्स आफ वेल्स से मुलाकात की।

ईसवी सन् १९०९ के दिसम्बर मास में तत्कालीन वाईसराय लॉर्ड मिन्टो भोपाल पधारे। ईसवी सन् १९१० में श्रीमती बेगम साहबा को के० सी० एस० आई० की उपाधि प्राप्त हुई। ईसवी सन् १९११ में श्रीमती बेगम साहबा, श्रीमान् सम्राट् पंचम जॉर्ज के राज्यारोहण-उत्सव में सम्मिलित होने के लिए इंग्लैड पधारीं। इसी समय आपने फ्रान्स, जर्मनी, आस्ट्रीया, स्विटझर्लैण्ड और तुर्की आदि आदि देशों की यात्रा की। तुर्की के सुलतान ने बेगम साहबा को अपनी मुलाक़ात का मान प्रदान किया। इतना ही नहीं आपने बेगम महोदया को पैगम्बर साहब की दाढ़ी का बाल भी भेंट किया। ईसवी सन् १९११ में श्रीमती दिल्ली दरबार में पधारीं। ईसवी सन् १९१२ में लार्ड हार्डिञ्ज महोदय भी भोपाल पधारे।

श्रीमती का स्त्री शिक्षा की ओर विशेष ध्यान है। जब श्रीमान् वर्तमान सम्राट् पंचम जॉर्ज दिल्ली दरबार के अवसर पर यहाँ पधारे थे। उस समय उनके आगमन को चिर-स्मरणीय बनाने के लिये श्रीमती बेगम साहबा ने जो अपील प्रकाशित की थी, उसका सारांश यह है:—"इस शुभ अवसर को चिर-स्मरणीय बनाने के लिये हमें चाहिये कि, हम लड़कियों के लिये आदर्श स्कूल खोलें। इसके लिये मेरी राय में १२ लाख रुपयों की शुरू २ में आवश्यकता होगी। मैं इसके लिये राज्य से एक लाख रुपया और मेरे प्रायव्हेट खर्च से बीस हजार रुपया देती हूँ। मेरी बहुओं (Daughter in-law) ने भी इस संस्था के प्रति अपनी सहानुभूति दिखलाई है और उनमें से बड़ी ने ७०००) और छोटी ने ५०००) प्रदान किये हैं। आशा है मेरे इस कार्य्य के प्रति वे सब लोग सहानुभूति प्रकट करेंगे, जिन्हें स्त्री शिक्षा के लिये दिल में लगन है, फिर चाहे वे रईस हों, रानियाँ हों या साधारण मनुष्य हों। मुझे इसकी सफलता की पूरी २ आशा है।"

बेगम साहबा के तीन पुत्र हैं*। (१) नवाब नसरुल्ला खाँ बहादुर (२) नवाबज़ादा महम्मद अब्दुल्ला खाँ बहादुर (३) नवाबज़ादा हमीदुल्ला

* खेद है कि बेगम साहबा के बड़े पुत्र का देहान्त हो गया।

खाँ बहादुर। इनमें पहले पुत्र जंगल-विभाग के सब से ऊँचे अफसर हैं। दूसरे पुत्र राज्य की फौज के कमाँडर-इन-चीफ हैं। इन्हें भारत सरकार की ओर से "कमाण्डर ऑफ दी ऑर्डर ऑफ दी स्टार ऑफ इण्डिया" की उपाधि प्राप्त है। तीसरे पुत्र फौज के लेफ्टिनेंट कर्नल हैं। इसके साथ ही आप बेगम साहबा के चीफ सेक्रेटरी भी हैं। आप प्रयाग विश्व-विद्यालय के ग्रेजूएट हैं।

उत्तर भारत में भोपाल सब से बड़ी मुसलमानी रियासत है। इसका विस्तार ६८५९ वर्गमील है। लोक-संख्या ७२०००० के ऊपर है। इसके चारों ओर आस-पास ग्वालियर, बड़ौदा, नृसिंहगढ़, टोंक की रियासतें आई हुई हैं। इस राज्य में बेटवा, पार्वती, और नर्मदा मुख्य नदियाँ हैं। इस राज्य में ७३ फी सदी हिन्दू, १३ फी सदी मुसलमान और १४ फी सदी अन्य मतावलम्बी हैं। यहाँ बढ़ई, काछी और कुलमी प्रधान रूप से खेती का धन्धा करते हैं। यहाँ ४३ फी सदी खेती करते हैं। यहाँ के लोगों का ध्यान खेती के सुधार की ओर बहुत कम है।

प्रजा को न्याय देने के लिये यहाँ ४४ कोर्टें हैं—यथाः—चीफ्स कोर्ट, दो जज कोर्टें, एक सदर अमीन कोर्ट, एक मुन्सिफ कोर्ट, छः डिस्ट्रिक्ट और असिस्टेंट मॅजिस्ट्रेट की कोर्टें। २७ तहसीलदारों की कोट। इन सब के ऊपर अन्तिम चीफ्स कोर्ट है।

भोपाल में शिक्षा का प्रचार अच्छा है। ईसवी सन् १८६० के शुरू २ में यहाँ पहला 'रेग्यूलर' स्कूल खोला गया। इसके दस वर्ष बाद भोपाल दरबार ने यह निश्चय किया कि लोगों को इस बात के लिये उत्साहित किये जायँ कि, वे अपने लड़कों को कम से कम प्रारम्भिक शिक्षा दें। इसलिये दरबार ने यह सरक्यूलर प्रकाशित किया कि, जिस आदमी ने किसी स्कूल या कॉलेज से सार्टिफिकेट प्राप्त न किया होगा, उसे राज्य के किसी महकमे में नौकरी न दी जायगी। इसके बाद वहाँ शिक्षा में प्रगति नजर आने लगी।

भोपाल में एक हायस्कूल है जिसका नाम अलेक्झेंड्रिया हायस्कूल है। इसमें मेट्रिक तक की पढ़ाई होती है। इसमें लगभग २०० विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं।

इसके अतिरिक्त यहाँ जहाँगीरिया स्कूल है, जिसमें सब से पहले अंग्रेजी की पढ़ाई शुरू हुई थी। इसमें लगभग ३०० विद्यार्थी ज्ञान लाभ करते हैं। यहाँ एक मुसलमानों के लिए धार्मिक स्कूल भी है, जिसे मदरसी अह-मदिया कहते हैं। इसमें केवल इस्लाम ही की धर्म-शिक्षा दी जाती है। कन्याओं के लिए भी यहाँ पाठशाला है, जिसका नाम विक्टोरिया गर्ल्स स्कूल है। ईसवी सन् १८९१ में इसकी स्थापना हुई थी। सारे राज्य में ७५ प्राईमरी स्कूल्स हैं। यूनानी हिकमत सिखलाने के लिये यहाँ एक मेडिकल स्कूल है। इसमें यूनानी हिकमत के सिवा व्यवच्छेदन शास्त्र (Surgery) और शरीर शास्त्र की भी तालिम दी जाती है। अनाथ और विधवाओं के लिये यहाँ एक ऐसा स्कूल है, जिसमें कला-कौशल की शिक्षा दी जाती है। इसमें काम सिख कर स्त्रियाँ इज्जत के साथ अपना गुजर कर सकती हैं।

भोपाल राज्य में रोगियों की चिकित्सा का भी अच्छा प्रबन्ध है। यहाँ इस सम्बन्ध में एक ऐसी विशेषता है, जो अन्य राज्यों में नहीं है। यहाँ यूनानी हिकमत को खूब उत्तेजन दिया जा रहा है। यहाँ राज्य की तरफ से स्थान २ पर जो अस्पताल खुले हुए हैं, वे विशेष रूप से यूनानी हैं। यहाँ इस वक्त ४० अस्पताल हैं, जिनमें ३७ यूनानी हैं। दूसरे अस्पताल का नाम लेडी लेन्स डाऊन अस्पताल है, इसमें पर्दानशीन औरतों की चिकित्सा की जाती है।

भोपाल राज्य ने, उसके अफसरों ने तथा प्रजा ने बृटिश सरकार को युद्ध में अच्छी सहायता दी थी। सब मिलकर भोपाल-राज्य की ओर से लगभग २८३४५७५ रुपये युद्ध फन्ड में दिये गये थे।

उदयपुर राज्य का इतिहास
HISTORY OF THE UDAIPUR STATE.

महाराणाजी श्री प्रताप सिंहजी
महाराणाजी श्री अमर सिंहजी
महाराणाजी श्री कर्ण सिंहजी
महाराणाजी श्री जगत सिंहजी
महाराणाजी श्री राज सिंहजी
महाराणाजी श्री संग्राम सिंहजी
महाराणाजी श्री अरसी सिंहजी
महाराणाजी श्री भीम सिंहजी
महाराणाजी श्री जवान सिंहजी
महाराणाजी श्री सरदार सिंहजी
महाराणाजी श्री स्वरूप सिंहजी
महाराणाजी श्री सज्जन सिंहजी
महाराणाजी श्री फतह सिंहजी
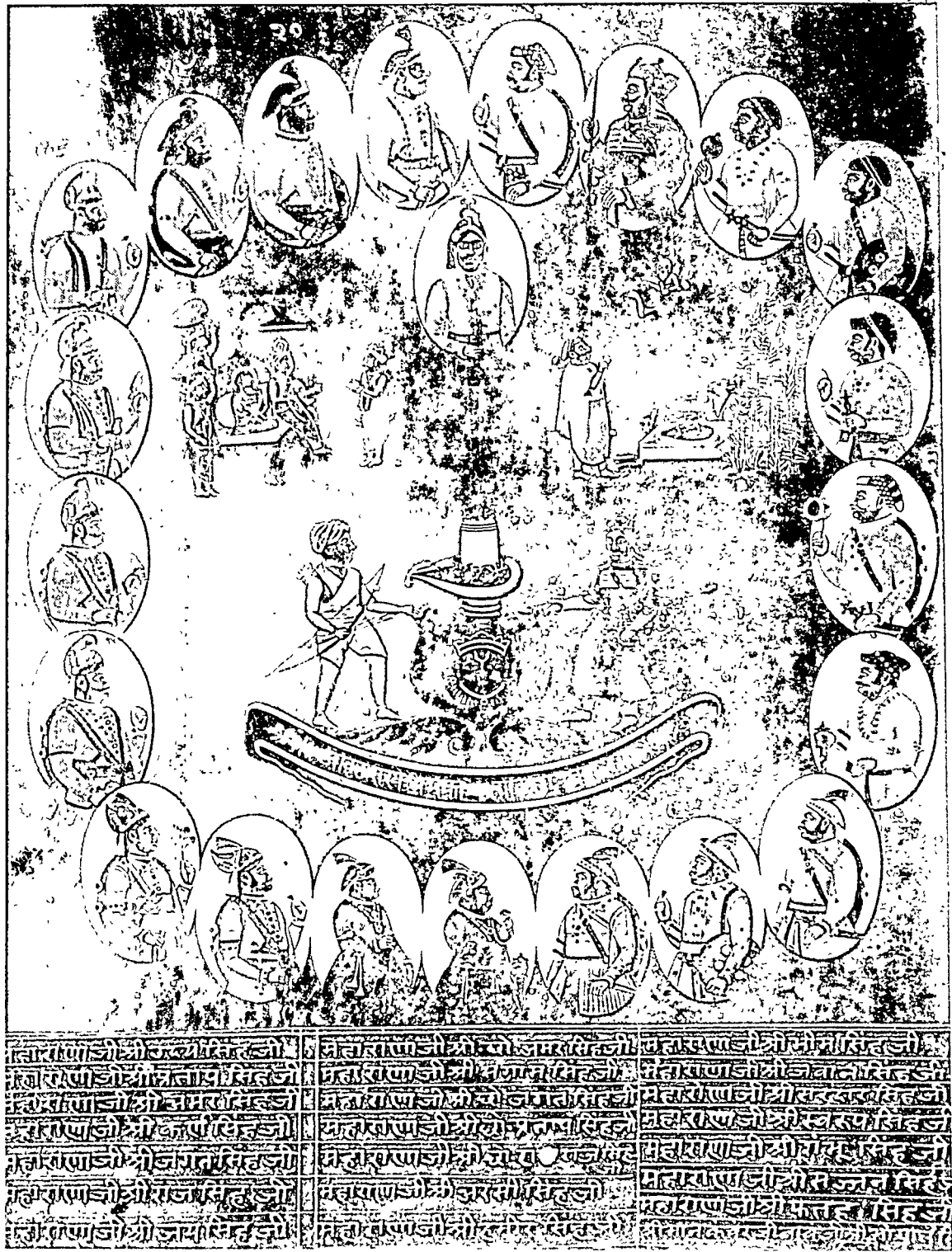
उदयपुर राजवंश
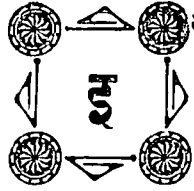
इस पुण्य-भूमि भारतवर्ष के इतिहास में मेवाड़ के गौरवशाली राजवंश का नाम बड़े अभिमान के साथ लिया जाता है। इस गौरवशाली राजवंश में ऐसे अनेक प्रतापशाली नृपति हो गये हैं, जिन्होंने अपने अपूर्व वीरत्व, अलौकिक स्वार्थ-त्याग और अद्वितीय आत्माभिमान के कारण मानव-जाति के इतिहास को प्रकाशमान किया है। संसार भर में यही एक ऐसा राजवंश है जो ई० सन् ५६८ से लगाकर अब तक अनेक दुर्द्धर परिवर्तनों और तूफानों को सहता हुआ एक ही प्रदेश पर राज्य करता चला आ रहा है। जिस समय परम प्रतापी महाराज हर्ष कन्नौज की राज्य-गद्दी पर विराजमान थे, उस समय मेवाड़ का शासन-सूत्र शिलादित्य * संचालित करते थे। महाराज हर्ष का विशाल साम्राज्य तो उनकी मृत्यु के साथ साथ ही नष्ट हो गया पर शिलादित्य के वंशज अब भी मेवाड़ पर राज्य कर रहे हैं। सुप्रख्यात् फारसी इतिहास-वेत्ता फ़रिश्ता लिखता है "उज्जैन-वाले महाराज विक्रमादित्य के पीछे राजपूत जाति का उत्थान और अभ्युदय हुआ। मुसलमानों के हिन्दुस्तान में आने के पहले यहाँ पर बहुत से स्वतंत्र राजा थे, परन्तु सुलतान महमूद गजनवी तथा उनके वंशजों ने उनमें से बहुतों को अपने अधीन किया। इसके पश्चात् शहाबुद्दीन गोरी ने अजमेर और दिल्ली के राजाओं पर विजय प्राप्त की। बाकी रहे सहे को तैमूर के वंशजों ने अधीन किया। यहाँ तक कि विक्रमादित्य के समय से जहाँगीर बादशाह के समय तक कोई प्राचीन राज्यवंश न रहा। केवल मेवाड़ के राणा

---

* विक्रम संवत् ७०३ का सामोलीगाँव से जो शिलालेख मिला है उससे यह बात प्रगट होती है।

ही एक ऐसे राजा हैं जो मुसलमान धर्म की उत्पत्ति के पहले भी विद्यमान थे, और अब भी राज्य करते हैं।" इसी प्रकार कई अन्य मुसलमान और अंग्रेज इतिहास-लेखकों ने महाराणा के वंश की प्राचीनता और गौरव को मुक्तकंठ से स्वीकार किया है। सम्राट् बाबर अपनी दिनचर्या की पुस्तक "तुजूके-बाबरी" में लिखते हैं—"हिन्दुओं में विजयनगर के सिवाय दूसरा प्रबल राजा राणा सांगा है जो अपनी वीरता तथा तलवार के बल से शक्तिशाली हो गया है। उसने मांडू के बहुत से इलाके, रणथम्भोर, सारंगपुर, भेलसा और चन्देरी ले लिये हैं।" आगे चल कर फिर वह लिखता है— "हमारे हिन्दुस्तान में आने के पहले राणा सांगा की शक्ति इतनी बढ़ गई थी कि दिल्ली गुजरात और मांडू के सुलतानों में से एक भी बड़ा सुलतान बिना हिन्दू राजाओं की सहायता के उनका मुकाबला नहीं कर सकता था। मेरे साथ की लड़ाई में बड़े बड़े राजा और रईस राणा सांगा की अध्यक्षता में लड़ने के लिये आये थे। मुसलमानों के अधीन देशों में भी २०० शहरों में राणा का झण्डा फहराता था जहाँ मसजिदें तथा मकबरे बर्बाद हो गये थे और मुसलमानों की औरतें तथा बाल-बच्चे कैद कर लिये गये थे। उसके अधीन १०००००००० रु० की वार्षिक आमदनी का मुल्क है, जिसमें हिन्दुस्तान के कायदे के अनुसार १००००० सवार रह सकते हैं।"

सम्राट् जहाँगीर ने अपनी "तुजूके-जहाँगीरी" में लिखा है—"राणा अमरसिंह हिन्दुस्तान के सब से बड़े सरदारों तथा राजाओं में से एक हैं। उनकी तथा उनके पूर्वजों की श्रेष्ठता तथा अध्यक्षता इस प्रदेश के सब राजा और रईस स्वीकार करते हैं। बहुत समय तक उनके वंश का राज्य पूर्व में रहा। उस समय उनकी पदवी 'राजा' थी। फिर वे दक्षिण में आये और वहाँ के कई प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया तथा वे रावल कहलाने लगे। वहाँ से मेवाड़ के पहाड़ी प्रदेश की ओर बढ़ते हुए शनैः शनैः उन्होंने चित्तौड़ का किला ले लिया। उस समय से मेरे इस आठवें जुलूस तक १४७१ वर्ष बीते। इतने दीर्घकाल में उन्होंने हिन्दुस्तान के किसी नरेश के आगे अपना सिर

नहीं झुकाया और बहुधा लड़ाइयाँ लड़ते ही रहे। मेवाड़ के राणा सांगा ने इधर के सब राजाओं, रईसों तथा सरदारों को लेकर १८०००० सवार तथा कई पैदल सेना सहित बयाना के पास बाबर बादशाह के साथ युद्ध किया था।

फ़ारसी के सुप्रसिद्ध इतिहास 'विसातुलग़नाइम' में लिखा है "यह तो भलीभाँति प्रसिद्ध है कि उदयपुर के राजा हिन्द के तमाम राजाओं में सर्वोपरि हैं और दूसरे हिन्दू राजा अपने पूर्वजों की गद्दी पर बैठने के पूर्व उदयपुर राजा से राज-तिलक करवाते हैं।" कर्नल टॉड ने अपने सुप्रख्यात् राजस्थान में लिखा है "मेवाड़ के राजा सूर्यवंशी हैं और वे राणा तथा रघुवंशी कहलाते हैं। हिन्दू जाति एकमत होकर मेवाड़ के राजाओं को राम की गद्दी का वारिस मानती है और उन्हें 'हिन्दुआ सूरज' कहती है। राणा ३६ राजवंशों में सर्वोपरि माने जाते हैं।" इस प्रकार समय २ के विविध इतिहास-वेत्ताओं ने मेवाड़ के राजवंश के अपूर्व गौरव की मुक्तकंठ से प्रशंसा की है। अब हम इस गौरवशाली राजवंश के इतिहास की ओर झुकते हैं।

कई हज़ार वर्ष पहले अयोध्या में भगवान् रामचन्द्र हुए जिनकी कीर्तिध्वजा आज हिन्दुस्तान में इस छोर से उस छोर तक फहरा रही है, और जो करोड़ों हिन्दुओं के द्वारा अवतार के रूप में पूजे जाते हैं। उन्हीं भगवान रामचन्द्र के ज्येष्ठ पुत्र कुश के वंश के अन्तिम राजा सुमित्र तक की नामावली पुराणों में दी गई है। इन्हीं सुमित्र के वंश में ई० सन् ५६८ के लगभग मेवाड़ में गुहिल नामक के प्रतापी राजा हुए जिनके नाम से उनका वंश गुहिल वंश कहलाया। संस्कृत शिलालेखों तथा पुस्तकों में इस-वंश का नाम गुहिल, गुहिलपुत्र, गोकिलपुत्र, गुहिलोत या गौहल्य मिलते हैं और भाषा में गुहिल, गोहिल गहलोत और गैलोत प्रसिद्ध हैं।

महाराज गुहिल के समय के लगभग दो हज़ार से अधिक चाँदी के सिक्के आगरे के आसपास गड़े हुए मिले जिन पर 'श्रीगुहिल' * लिखा

---

* कनिंगहम की Archealogical Survey report volume 4th Page 95

है। इन सिक्कों से यह सूचित होता है कि गुहिल एक स्वतंत्र राजा थे। जयपुर–राज्य के चाटसू नामक प्राचीन स्थान से विक्रम संवत् ११०० के आसपास का गुहिलवंशियों का एक शिला-लेख मिला है, जिसमें गुहिलवंशी राजा भर्तृभट्ट प्रथम से बालादित्य तक के १२ राजाओं के नाम दिये हैं। वे चाटसू के आसपास के इलाके पर जो आगरे के प्रदेश के निकट था, राज्य करते थे। आगरे के आसपास एक साथ २०००० सिक्कों के पाये जाने से मि० कार्लाइल ने यह अनुमान किया कि वहां पर उस समय शायद गुहिल का राज्य रहा हो। चाटसू के शिलालेख से भी यह सिद्ध होता है कि उनका राज्य मेवाड़ से बहुत दूर दूर तक फैला हुआ था। गुहिल के इन सिक्कों से सुप्रख्यात् पुरातत्वविद् रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा अनुमान करते हैं कि गुहिल के पहले से भी शायद इस वंश का राज्य चला आया हो। इसका कोई हाल अब तक हमको निश्चय के साथ नहीं मिला। संभव है समय पाकर पिछले लेखकों ने गुहिल के प्रतापी होने से ही उनकी वंशावली लिखी हो।

गुहिल के बाद क्रम से भोज, महेन्द्र और नाग नाम के राजा हुए, जिनका कोई स्पष्ट वृत्तान्त उपलब्ध नहीं है। राजा नाग के बाद राजा शिलादित्य हुए जिनके समय का वि० सं० ७०३ का एक शिलालेख मिला है। इस शिलालेख में उस राजा को शत्रुओं को जीतने वाला देव, द्विज और गुरुजनों को आनन्द देने वाला और अपने कुल रूपी आकाश के लिये चन्द्रमा के समान बतलाया है। उक्त लेख से यह भी पाया जाता है कि उसके राज्य में शान्ति थी जिससे बाहर के महाजन आकर वहां आबाद होते थे और इसीसे लोग धन धान्य सम्पन्न थे। महाराज शिलादित्य के बाद महाराज अपराजित हुए। ये बड़े प्रतापी थे। इनका वि० सं० ७१८ का एक शिलालेख नागदा (मेवाड़) के निकट के कुन्डेश्वर के मंदिर में मिला है, जिसमें लिखा है " अपराजितने दुष्टों को नष्ट किया। राजा लोग उन्हें सिर से बन्दन करते थे और उन्होंने महाराज बराहसिंह को (जो शिव का

पुत्र था, जिसकी शक्ति को कोई तोड़ नहीं सकता था और जिसने भयंकर शत्रुओं को परास्त किया था) अपना सेनापति बनाया था। ” महाराज अपराजित के बाद राजा महेन्द्र हुए, जिनका विशेष उल्लेख नहीं मिलता है।

बापा रावल

महेन्द्र के बाद उनके पुत्र कालभोज, जो बापा रावल के नाम से प्रसिद्ध हैं, राज्यासीन हुए। यह बड़े प्रतापी और पराक्रमी थे। इनके सोने के सिक्के चलते थे। अनेक संस्कृत शिलालेखों तथा पुस्तकों में 'वप' 'वैप्पक' 'वप्प' 'बप्पक' 'बाप' 'बप्पाक' 'बापा' आदि मिलते हैं। बापा रावल के समय का जो स्वर्ण-सिक्का मिला है उससे एक ऐतिहासिक रहस्य का उद्घाटन होता है। उदयपुर के राज्य-वंश की मूल जाति के विषय में जो अनेक तरह के भ्रम फैले हुए हैं, उनसे इनका निराकरण होता है। इस सिक्के में, जो कि सुप्रख्यात् पुरातत्वविद् राय बहादुर पं० गौरीशंकरजी ओझा को अजमेर के किसी महाजन की दूकान से प्राप्त हुआ है, एक ओर चँवर, दूसरी ओर छत्र और बीच में सूर्य का चिन्ह है। इससे यह पाया जाता है कि बापा रावल सूर्यवंशी थे। इन बापा रावल ने चित्तौड़ के मोरी (मौर्य-वंशीय) राजा से चितौड़ का किला विजय किया था। इन्होंने अपने राज्य का विस्तार दूर दूर तक फैलाया था। दन्त-कथाओं में तो यहां तक उल्लेख है कि उन्होंने ठेठ ईरान तक धावा मारा था और वहीं उनका देहान्त हुआ।

बापा रावल बड़े प्रतापी थे। वे 'हिन्दू-सूर्य' 'चक्रवर्ती' आदि उच्च उपाधियों से विभूषित थे। इनके सम्बन्ध की अनेक दन्त-कथाएँ प्रचलित हैं।

इन दन्त-कथाओं में बहुतसी ऐसी बातें हैं जिनमें अतिशयोक्ति का अधिक अंश हैं। इन दन्त-कथाओं में बापा का देवी के बलिदान के समय एक ही झटके से दो भैंसों का सिर उड़ाना, बारह लाख बहत्तर हज़ार सेना रखना, पैंतीस हाथकी धोती और सोलह हाथ का दुपट्टा धारण करना, बत्तीस मन का खड्ग रखना, वृद्धावस्था में खुरासान आदि देशों को जीतना, वहीं रहकर यहाँ की अनेक स्त्रियों से विवाह करना, वहाँ उनके अनेक पुत्रों का होना, वहीं मरना, मरने पर उनकी अन्तिम क्रिया के लिये हिन्दूओं और वहाँ वालों में झगड़ा होना और अन्त में कबीर की तरह शव की जगह फूल ही रह जाना आदि आदि लिखा हुआ मिलता है। हम ऊपर कह चुके हैं कि इन दन्त-कथाओं में अतिशयोक्ति होने की वजह से ये पूर्णरूप से विश्वास करने योग्य नहीं हैं। पर इनसे यह निष्कर्ष तो अवश्य निकलता है कि बापा रावल महान् पराक्रमी, महावीर और एक अद्भुत योद्धा थे। उन्होंने बाहुबल से बड़े बड़े काम किये। अगर दन्त-कथाओं पर विश्वास किया जावे तो यह भी मानना पड़ेगा कि उन्होंने ठेठ ईरान तक पर चढ़ाई की और वहीं वे वीर-गति को प्राप्त हुए। थोड़े दिन हुए लंडन के एक प्रख्यात् मासिक पत्र में किसी युरोपीय सज्जन का एक लेख प्रकाशित हुआ था। उसमें लेखक ने यह दिखलाया था कि ईरान के एक प्रान्त में अब भी मेवाड़ी भाषा बोली जाती है*। अगर यह बात सच है तो निसन्देह मानना ही पड़ेगा कि बापा रावल ने एक न एक दिन ठेठ ईरान तक पर अपना विजयी झण्डा उड़ाया था। पर इस सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय पर पहुँचने के लिये खोज की आवश्यकता है।

बापा रावल का समय

बापा रावल का ठीक समय कौनसा था इसका निर्णय करना बड़ा कठिन है; क्योंकि बापा रावल के राजत्त्व-काल का कोई शिलालेख या दान-पत्र अब तक उपलब्ध नहीं हुआ। अतएव अन्य साधनों से उसका निर्णय

* यह बात हमने रा० ब० गौरीशंकर जी ओझा से सुनी थी।

करना आवश्यक है। विक्रम संवत् १०२८ की राजा नरवाहन के समय की एक प्रशस्ति में बापा रावल का ज़िक्र आया है। इससे यह तो स्पष्ट हो गया कि बापा रावल उक्त काल के पहले हुए। मेवाड़ के सुप्रख्यात् वीर और विद्वान् महाराणा कुंभ ने उस समय मिली हुई प्राचीन प्रशस्तियों के आधार पर कन्हव्यास की सहायता द्वारा "एकलिंग माहात्म्य" बनवाया था। इसमें कितने ही राजाओं के वर्णन में तो पहले की प्रशस्तियों के कुछ श्लोक ज्यों के त्यों धरे हैं और बाकी के नये बनवाये हैं। कहीं कहीं तो "यदुक्तं पुरातनेः कविभिः" (जैसा कि पुराने कवियों ने कहा है) लिख कर उन श्लोकों की प्रामाणिकता दिखलाई है। जान पड़ता है कि महाराणा कुंभ को किसी प्राचीन पुस्तक से बापारावल का समय ज्ञात हो गया था जो उक्त माहात्म्य में नीचे लिखे अनुसार है।

"यदुक्तं पुरातनैः कविभिः"

आकाशचन्द्र दिग्गज संख्ये संवत्सरे वभूवाद्यः।

श्री एकलिंग शंकर लब्धवरो बाप्प भूपालः॥

अर्थ—जैसे कि पुराने कवियों ने कहा है, संवत् ८१० में श्री एकलिंग शंकर से प्राप्त वर राजा बाप्प (बापा) पहिला (प्रसिद्ध राजा) हुआ।

इस श्लोक से इतना ही पाया जाता है कि बापा वि० सं० ८१० में हुए। इससे यह निश्चित नहीं होता कि उक्त संवत में वे गद्दी नशीन हुए या उन्होंने राज्य छोड़ा या उनकी मृत्यु हुई। महाराणा कुंभ के दूसरे पुत्र रायमलजी के राज्य-काल में 'एकलिंग माहात्म्य' नाम की दूसरी पुस्तक बनी जिसको 'एकलिंग पुराण' भी कहते हैं। एकलिंग पुराण में बापा के समय के विषय में लिखा है—

"राज्यं दत्वा स्वपुत्राय आथर्वण मुपागतः।

खचन्द्र दिग्गजाख्ये च वर्षे नाग ह्रदे मुने॥

क्षेत्रे च भुवि विख्याते स्वगुरोर्गुरु दर्शनम्।

चकार स समित्पाणी श्चतुर्थाश्रम माचरन्॥

अर्थ—हे मुनि, संवत् ८१० में अपने पुत्र को राज देकर संन्यास ग्रहण

कर हाथ में समिध (लकड़ी) लिये वह (बापा) पृथ्वी में प्रसिद्ध नागहृद्-क्षेत्र में (नागदा) अथर्व-विद्या विशारद गुरु के पास पहुँचा और उसने गुरु का दर्शन किया।" इस कथन से पाया जाता है कि वि० सं० ८१० में बापा ने अपने पुत्र को राज्य देकर संन्यास धारण किया। बीकानेर दरबार के पुस्तकालय में फुटकर बातों के संग्रह की एक पुस्तक है, जिसमें मुहता नैणसी की ख्याति का एक भाग भी है। इसमें बापा रावल से लगाकर राणा प्रताप तक की वंशावली है, जिसमें बापा का वि० सं० ८२० में होना लिखा है। राजपूताने के इतिहास के सर्वोपरि विद्वान रा० ब० पंडित गौरीशंकर जी ओझा ने बड़ी खोज के बाद बापा का राज्यकाल वि० सं० ७९१ से ८१० तक माना है।

बापा रावल किस वंश के थे ?

बापा रावल के वंश के सम्बन्ध में भी यहाँ दो शब्द लिखना अनुचित न होगा। अजमेर में रा० ब० ओझाजी को बापा रावल के समय का जो सोने का सिक्का मिला है, उससे उनका सूर्यवंशी होना स्पष्टतया सूचित होता है। एकलिंग के मंदिर के निकट के लकुलीश के मंदिर में एक प्रशस्ति है। यह प्रशस्ति वि० सं० १०२८ की राजा नरवाहन के समय की है। उससे भी इनका सूर्यवंशी होना सिद्ध होता है। मुहता नैणसी ने भी मेवाड़ के राज्यवंश को सूर्यवंशी माना है। जोधपुर राज्य के नारलोई गाँव के जैनमंदिर के शिलालेख में गुहिदत्त, बप्पाक (बापा) खुमाण आदि राजाओं को सूर्यवंशी कहा है।

बापा रावल के बाद

बापा रावल के बाद उनके पुत्र खुम्माण ई० सन् ८११ में राज्य-सिंहासन पर बैठे। टॉड साहब ने लिखा है कि खुम्माण पर काबुल के मुसलमानों ने चढ़ाई की थी, पर इन्होंने उन्हें मार भगाया, और उनके सरदार महम्मद को क़ैद कर लिया। आपके बाद क्रम से मत्तट, भर्तृभट, सिंह, खुम्माण (दूसरा)

सहायक, खुम्माण (तीसरा) भर्तृभट (दूसरा) आदि राजा सिंहासनारूढ़ हुए। इनके समय का विशेष इतिहास उपलब्ध नहीं है। भर्तृभट (दूसरे) के बाद अल्लट राज्य-सिंहासन पर बैठे। इनके समय का वि० सं० १०२८ (ई० सन् ९७१) का एक शिलालेख मिला है। इनकी रानी हरियादेवी हूण राजा की पुत्री थी। अल्लट के पश्चात् नरवाहन राज्य-सिंहासन पर बैठे। इनके समय का वि० सं० १०१० का एक शिलालेख मिला है। इनका विवाह चौहान राजा जेजय की पुत्री से हुआ था। इनके बाद शालिवाहन, शक्तिकुमार, अंबाप्रसाद, शुचिवर्मा, कीर्ति-वर्मा, योगराज, वैरट, हंसपाल और वैरिसिंह हुए। दुःख है कि इनका इति-हास अभीतक उपलब्ध नहीं हुआ। वैरसिंह के बाद विजयसिंह हुए। इनका विवाह मालवा के प्रसिद्ध परमार राजा उदयादित्य की पुत्री श्यामलदेवी से हुआ था। इनको आल्हणदेवी नामक कन्या उत्पन्न हुई थी, जिसका विवाह चेदी देश के हैहयवंशी राजा गयकर्णदेव से हुआ था। राजा विजयसिंह के समय का वि० सं० ११६४ का एक ताम्रपत्र मिला है। विजयसिंह के बाद क्रम से अरिसिंह, चौड़सिंह, विक्रमसिंह आदि नृपतिगण हुए। इनके समय में कोई विशेष उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। विक्रमसिंह के बाद रणसिंह हुए। इनसे दो शाखाएँ निकलीं। एक रावल शाखा और दूसरी राणा शाखा। इनके बाद क्षेमसिंह, सामन्तसिंह, कुमारसिंह, मंथनसिंह, पद्मसिंह आदि नृपति हुए। इनके समय का इतिहास अभी उपलब्ध नहीं है। पद्मसिंह के बाद चित्तौड़ के राज्य-सिंहासन पर एक महान् पराक्रमी नृपति बिराजे। उनका शुभ नाम जैत्रसिंह था। टॉड साहब ने इनका उल्लेख तक नहीं किया है। भारत के सर्वमान्य इतिहास-लेखक राय बहादुर पं० गौरीशंकरजी ओझा की ऐतिहा-सिक खोजों ने इस महान् नृपति के पराक्रमों पर अद्भुत प्रकाश डाला है। उन्हींके आधार से नीचे हम उनका संक्षिप्त इतिहास लिखते हैं—
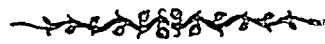
जैत्रसिंहजी

जैत्रसिंह मेवाड़ के राजा मंथनसिंह के पौत्र और पद्मसिंह के पुत्र थे। प्राचीन शिलालेखों में जैत्रसिंह के स्थान पर जयतल, जयसल, जयसिंह और जयतसिंह आदि नाम भी मिलते हैं। भाटों की ख्यातों में उनका नाम जैतसी या जैतसिंह मिलता है। वे बड़े प्रतापी राजा हुए। उन्होंने अपने आस-पास के हिन्दू राजाओं तथा मुसलमानों से कई युद्ध किये। उनके समय के वि० सं० १२७० से १३०९ तक के कई शिलालेख मिले हैं। उनसे पाया जाता है कि इस महान् पराक्रमी नृपति ने कम से कम ४० वर्ष राज्य किया। इस प्रबल पराक्रमी राजा के गौरवशाली कार्यों का उल्लेख कई शिलालेखों में किया गया है। जैत्रसिंह के पुत्र तेजसिंह के समय के घाघसा गाँव से जो चित्तौड़ से ६ मील पर है, वि० सं० १३२२ का एक शिलालेख मिला है। इसमें जैत्रसिंह के गौरव पर दो श्लोक हैं जिनका भाव यह है—

"उस (पद्मसिंह) का पुत्र जैत्रसिंह हुआ जो शत्रु राजाओं के लिये प्रलय-काल के पवन के समान था। उसके सर्वत्र प्रकाशित होने से किनके हृदय नहीं काँपे! गुर्जर (गुजरात) मालव, तुरुष्क (देहली के मुसलमान सुलतान) और शाकंभरी के राजा (जालौर के चौहान) आदि २ उसका मान मर्दन न कर सके"।

जैत्रसिंह के पौत्र रावल समरसिंह के समय का वि० सं० १३३० का एक शिलालेख मेवाड़ के चिरवा गाँव में मिला है। उसमें जैत्रसिंह का गौरव इस प्रकार वर्णन किया गया है—"मालव, गुजरात, मारव (मारवाड़) तथा जांगल देश के स्वामी तथा म्लेच्छों के अधिपति (देहली के सुल्तान) भी उस राजा (जैत्रसिंह) का मान मर्दन न कर सके"।

इसी प्रकार रावल समरसिंह के वि० सं० १३४२ मार्गशीर्ष सुदी १ के

आबू के शिलालेख में लिखा है—"पद्मसिंह का स्वर्गवास होने पर जैत्रसिंह ने पृथ्वी का पालन किया। उसकी भुजलक्ष्मी ने नड्डूल (नाडौल) को निर्मूल किया। तुरुष्क सैन्य (सुलतान की सेना) के लिये वह अगस्त्य के समान था। सिंधुकों (सिंधवालों) की सेना का रुधिर पीकर मतवाली पिशाचियों के आलिङ्गन के आनन्द से मग्न हुए पिशाच रणक्षेत्र में अब तक श्रीजैत्रसिंह के बाहुबल की प्रशंसा करते हैं"।

ऊपर उद्धृत किये हुए तीनों शिलालेखों के अवतरणों से पाया जाता है कि जैत्रसिंह तीन लड़ाइयाँ मुसलमानों से और तीन हिन्दू राजाओं से लड़े थे। अर्थात् वे देहली के सुल्तान, सिन्ध की सेना और जाँगल के मुसलमानों से, तथा मालवा, गुजरात के शासक और जालौर के चौहानों से लड़कर विजयी हुए थे। परन्तु इन अवतरणों से यह नहीं पाया जाता कि वे लड़ाइयाँ किस किस के साथ और कब कब हुई ? इसी पर यहाँ कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है।

सुलतान के साथ की लड़ाई

उपरोक्त शिलालेखों में जैत्रसिंह का सब से पहले दिल्ली के सुल्तान के साथ युद्ध कर विजय पाना लिखा है। अब यह देखना है कि यह सुल्तान कौन था ? मेवाड़ के राजाओं के शिलालेखों में जैत्रसिंह के समय मेवाड़ पर चढ़ाई करनेवाले सुल्तान का नाम नहीं दिया है। उसका परिचय 'म्लेच्छाधिनाथ' और 'सुरत्राण' (सुल्तान) आदि शब्दों से दिया है। 'हमारी मद-मर्दन' में उसको कहीं तुरुष्क (तुर्क), कहीं हमीर (अमीर सुलतान), कहीं सुरत्राण, कहीं म्लेच्छ चक्रवर्ती और कहीं 'मीलछीकार' कहा है। इनमें से पहले चार नाम तो उसके पद के सूचक हैं और अंतिम नाम उसके पहले के ख़िताब 'अमीर शिकार' का संस्कृत शैली का रूप प्रतीत होता है। 'अमीर-शिकार' का ख़िताब देहली के गुलाम सुल्तान क़ुतुबुद्दीन ऐबक ने अपने गुलाम अलतमश को दिया था। क़ुतबुद्दीन ऐबक के पीछे उसका पुत्र आरामशाह

देहली के तख्त पर बैठा, जिसको निकाल कर अलतमश वहाँ का सुल्तान बन बैठा और उसने शमसुद्दीन ख़िताब धारण कर हिजरी सन् ६०७ से ६३३ (वि० सं० १२६७ से १२९३) तक देहली पर राज्य किया। ऊपर हम बतला चुके हैं कि जैत्रसिंह और सुलतान के बीच की लड़ाई वि० सं० १२७९ और १२८६ के बीच किसी वर्ष हुई और उस समय देहली का सुल्तान शमसुद्दीन अलतमश ही था। इसलिये निश्चित है कि जैत्रसिंह ने उसी को हराया था।

कर्नल जेम्स टॉड ने अपने 'राजस्थान' में लिखा है कि 'राहप ने संवत् १२५७ (ई० सन् १२०१) में चित्तौड़ का राज्य पाया और थोड़े ही समय के बाद उस पर शमसुद्दीन का हमला हुआ जिसको उस (राहप) ने नागोर के पास की लड़ाई में हराया।' कर्नल टॉड ने राहप को रावल समरसिंह का पौत्र और करण का पुत्र मान कर उसका चित्तौड़ के राज्य-सिंहासन पर बैठना लिखा है। परन्तु न तो वह रावल समरसिंह का (जिसके कई शिलालेख वि० संवत् १३३० से १३५८ तक के मिले हैं) पौत्र था, और न वह कभी चित्तौड़ का राजा हुआ। वह तो सिसोदे की जागीर का स्वामी था। वह समरसिंह से बहुत पहले हुआ था। अतएव शमसुद्दीन को हराने वाला राहप नहीं, किन्तु जैत्रसिंह था, और उस (शमसुदीन) के साथ की लड़ाई नागोर के पास नहीं, किन्तु नागदा के पास हुई थी जैसा कि ऊपर चिरवा के शिलालेख से बतलाया जा चुका है।

सिंध की सेना के साथ लड़ाई

रावल समरसिंह के समय के आबू के शिलालेख में जैत्रसिंह का तुरुष्क (सुलतान शमसुद्दीन अलतमश) की सेना को नष्ट करने के पीछे सिंधुको (सिंधवालों) की सेना को नष्ट करना लिखा है जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है। अब यह जानना आवश्यक है कि वह सेना किसकी थी और वह मेवाड़ की ओर कब आई? फ़ारसी तवारीख़ों से पाया जाता है कि

शहाबुद्दीन गोरी का गुलाम नासिरुद्दीन कुबाचः, जो कुतबुद्दीन ऐबक का दामाद था, उस (कुतबुद्दीन ऐबक) के मरने पर सिंध को दबा बैठा। मुग़ल चंगेज़-खाँ ने ख्वा़र्जम के सुल्तान मुहम्मद (कुतबुद्दीन) पर चढ़ाई कर उसके मुल्क को बर्बाद किया। मुहम्मद के पीछे उसका बेटा जलालुद्दीन (मंगवर्नी) ख्वार्जिमी चंगेज़खाँ से लड़ा और हारने पर सिंध को चला गया। उसने नासिरुद्दीन कुबाचः को कच्छ की लड़ाई में हरा कर ठट्टानगर (देवल) पर अपना अधिकार कर लिया, जिससे वहाँ का राय, जो सुमरा जाति का था, और जिसका नाम जेयसी (जयसिंह) था, भाग कर सिंध के एक टापू में जा रहा। जलालुद्दीन ने वहाँ के मंदिरों को तोड़ा और उनके स्थान पर मस-जिदें बनवाईं। उसने हि० सन् ६२० (वि० सं० १२८९) में ख़ासखाँ की मातहती में नहरवाले (अनहिलवाड़ा, गुजरात की राजधानी) पर फ़ौज भेजी, जो बड़ी लूट के साथ लौटी। सिंध से गुजरात पर चढ़ाई करने वाली सेना का मार्ग मेवाड़ में होकर था, इसलिये संभव है कि जैत्रसिंह ने उस सेना को अनहिलवाड़ा जाते या वहाँ से लौटते समय परास्त किया हो।

जांगल के मुसलमानों से लड़ाई

जाँगल देश की पुरानी राजधानी नागोर (अहिछत्रपुर) थी। चौहान पृथ्वीराज के मारे जाने के बाद अजमेर, नागोर आदि पर, जहाँ पहले चौहानों का राज्य रहा, मुसलमानों का अधिकार हो गया। देहली के सुल्तान नासिरु-द्दीन महमूद के वक्त में नागोर का इलाक़ा गुलाम उलूगखाँ (बलबन) को जागीर में मिला था। 'तबक़ाते नासिरी' से पाया जाता है कि हि० स–६५१ (वि० संवत् १३१०) में उलूग़खाँ अपने कुटुम्ब आदि सहित हाँसी में जा रहा। सुल्तान के देहली में पहुँचने पर उलूगखाँ के शत्रुओं ने सुल्तान को यह सलाह दी कि हाँसी का इलाक़ा तो किसी शाहजादे को दिया जावे और उलूगखाँ नागोर भेजा जावे। इस पर सुल्तान ने उसको नागोर भेज दिया। यह घटना जमादिउल्–आखिर हि० स० ६५१ (भाद्रपद वि० सं०

१३१०) में हुई। उलूगखाँ ने नागोर पहुँचने पर रणथंभोर, चित्तौड़ आदि पर फौज भेजी। तबक़ाते नासिरी में चित्तौड़ पर गई हुई फौज ने क्या किया, इस विषय में कुछ भी नहीं लिखा। इससे अनुमान होता है कि वह फौज हार कर लौट गई हो जैसा कि घाघसा तथा चिरवा के शिलालेखों से पाया जाता है कि जाँगल वाले राजा, जैत्रसिंह का मान-मर्दन न कर सके। उलूगखाँ की उक्त चढ़ाई के समय चित्तौड़ में राजा जैत्रसिंह का ही होना पाया जाता है।

मालवा के राजा से लड़ाई

मेवाड़ से मिला हुआ बागड़ का इलाका जैत्रसिंह के समय मालवा के परमार राजाओं के अधीन था और उस पर मालवा के परमारों की छोटी शाखा वाले सामंतों का अधिकार था। जैत्रसिंह के समय मालवे के राजा परमार देवपाल और उसका पुत्र जयतुगिदेव (जिसको जयसिंह भी लिखा है) था। चिरवा के लेख से पाया जाता है कि राजा जैत्रसिंह ने तलारक्ष (कोतवाल) योगराज के चौथे पुत्र क्षेम को चित्तौड़ की तलरक्षता (कोतवाल का स्थान, कोतवाली) दी। उसकी स्त्री हीरू से रत्न का जन्म हुआ। रत्न का छोटा भाई मदन हुआ जिसने उत्थूणक (अर्थूणा, बाँसवाड़ा राज्य में) के रणक्षेत्र में जैत्रसिंह के लिये लड़कर अपना बल प्रगट किया। अर्थूणा मालवा के परमारों के राज्य के अंतर्गत था और उनकी छोटी शाखा के सामन्तों की जागीर का मुख्य स्थान था। जैत्रकर्ण मालवा का परमार राजा जयतुगिदेव (जयसिंह) होना चाहिये जिसका मेवाड़ के जैत्रसिंह का समकालीन होना ऊपर बतलाया गया है। अनुमान होता है कि जैत्रसिंह ने अपना राज्य बढ़ाने के लिये अपने पड़ोसी मालवा के परमारों के राज्य पर हमला किया हो और वह जयतुगिदेव (जयसिंह) जैत्रकर्ण से लड़ा हो। इसी समय के आसपास बागड़ पर से मालवा के परमारों का अधिकार उठ जाना पाया जाता है।

गुजरात के राजा से लड़ाई

चिरवा के उक्त लेख में यह लिखा है कि नागदा के तलारक्ष (कोतवाल) योगराज के दूसरे पुत्र महेन्द्र का बेटा बालक कोट्टडक (कोटडा) लेने में राणक (राणा) त्रिभुवन के साथ की लड़ाई में राजा जैत्रसिंह के सामने लड़कर मारा गया और उसकी स्त्री भोली उसके साथ सती हुई। त्रिभुवन (त्रिभुवनपाल) गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव दूसरे (भोला भीम) का उत्तराधिकारी था। भीमदेव (दूसरे) का देहान्त वि० सं० १२९८ में हुआ। त्रिभुवनपाल ने 'प्रवचन परीक्षा' के लेखानुसार ४ वर्ष राज्य किया। इसके पीछे उक्त धोलका के राणा वीरधवल का उत्तराधिकारी बीसलदेव गुजरात का राजा बना। इसलिये गुजरात के राजा त्रिभुवनपाल से जैत्र-सिंह की लड़ाई वि० सं० १२९८ और १३०२ के बीच किसी वर्ष हुई होगी। चिरवा तथा घाघसा के शिलालेखों में गुजरात के राजा से लड़ने का जो उल्लेख मिलता है, वह इसी लड़ाई का सूचक है।

मारवाड़ के राजा से लड़ाई।

जैत्रसिंह के समय मारवाड़ के बड़े हिस्से पर नाडौल के चौहानों का राज्य था। नाडौल के चौहान साँभर के चौहान राजा वाक्पतिराज (वप्पयराज) के दूसरे पुत्र लक्ष्मण (लाखणसी) के वंशधर थे। उक्त वंश के राजा आल्हण के तीसरे पुत्र कीर्तिपाल (कीतु) ने अपने भुजबल से जालौर का किला परमारों से छीन कर जालौर पर अपना अलग राज्य स्थिर किया। कीर्तिपाल के पौत्र और समरसिंह के पुत्र उदयसिंह के समय नाडौल का राज्य भी जालौर के अंतर्गत होगया। इतना ही नहीं, किन्तु मारवाड़ के बड़े हिस्से अर्थात् नड्डूल (नाडौल) जवालिपुर (जालौर) माडव्यपुर [मंडौर] वाग्भट-मेरु [बाहडमेर] सूराचन्द, राटहृद, खेड, रामसैन्य [रामसेण] श्रीमाल [भीनमाल] रत्नपुर [रतनपुर] सत्यपुर [साचौर] आदि उसके राज्य

के अंतर्गत होगये थे। समरसिंह के समय के शिलालेख वि० सं० १२३९ से १२४२ तक के और उसके पुत्र उदयसिंह के समय के वि० सं० १२६२ से १३०६ तक के मिले हैं। उनसे पाया जाता है कि वि० सं० १२६२ के पहले से लगाकर १३०६ के पीछे तक मारवाड़ का राजा चौहान उदयसिंह ही था और वह मेवाड़ के राजा जैत्रसिंह का समकालीन था। घाघसा के उपर्युक्त शिलालेख में लिखा है कि शाकंभरीश्वर (चौहान राजा) उसका (जैत्र-सिंह का) मान-मर्दन न कर सका। यह जैत्रसिंह का जालौर के चौहान राजा उदयसिंह से लड़ना सूचित करता है। चिरवा के शिललेख में जैत्रसिंह का मारव (मारवाड़) के राजा से लड़ना पाया जाता है और आबू के शिलालेख में स्पष्ट लिखा है कि 'उस (जैत्रसिंह) की भुजलक्ष्मी ने नाडूल (नाडौल) को निर्मूल (नष्ट) किया था।'

कहने का मतलब यह है कि मेवाड़ के इतिहास में जैत्रसिंह एक महा-पराक्रमी राणा होगये हैं, जिन्हों ने कई प्रबल और महान् शत्रुओं को परास्त कर विजय लक्ष्मी प्राप्त की थी। इन महाराणा के महान् पराक्रमों पर प्रकाश डालने का श्रेय हमारे परम पूज्य इतिहास-गुरु रायबहादुर पण्डित गौरी शङ्कर जी ओझा को है।

महाराणा जैत्रसिंहजी के बाद

महाराणा जैत्रसिंहजी के बाद उनके पुत्र महाराणा तेजसिंहजी राज्य-सिंहासन पर विराजे। विक्रम संवत १३१७ से १३२४ तक के इनके समय के बहुत से लेखादि मिले हैं। महाराणा तेजसिंहजी के बाद उनके कुँवर महा-राणा समरसिंहजी राज्यासीन हुए। विक्रम संवत १३३० से लगाकर १३४५ तक के इनके समय के कई लेख मिले हैं। तीर्थकल्प नामक प्रख्यात् जैन ग्रन्थ के कर्ता इनके समकालीन थे वे लिखते हैं कि "विक्रम संवत् १३५६ में सुल-तान अलाउद्दीन खिलजी के भाई उल्लूखाँ ने चितौड़ के स्वामी समरसिंह के समय मेवाड़ पर चढाई की, पर समरसिंह ने बड़ी बहादुरी के साथ चितौड़

की रक्षा की।" पृथ्वीराज रासो में इनका जो वर्णन कियाहै, वह ऐतिहासिक दृष्टि से भूल भरा हुआ है। समरसिंहजी के बाद रत्नसिंहजी मेवाड़ के राज्य-सिंहासन पर आरूढ़ हुए। इनके समय में अलाउद्दीन खिलजी ने चितौड़ पर चढ़ाई की। युद्ध हुआ और रत्नसिंहजी काम आये। इसी हमले में शिसोदिया वीर लक्ष्मणसिंहजी अपने सातों पुत्रों सहित मारे गये। चितौड़ पर अलाउद्दीन का अधिकार हो गया। मेवाड़ की ख्यातों में लिखा है कि लक्ष्मणसिंह के ज्येष्ठ पुत्र अरिसिंह भी इसी लड़ाई में मारे गये और छोटे पुत्र अजयसिंह घायल होकर बच गये थे।
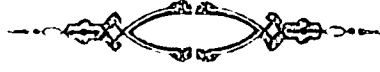
महाराणा हमीर

रत्नसिंहजी के बाद परम पराक्रमी वीर श्रेष्ट राणा हमीर ने मेवाड़ के सिंहासन को सुशोभित किया। इन्होंने मारवाड़ के सुप्रख्यात् राजा मालदेव की पुत्री से विवाह किया था। आपने अपनी बहादुरी से चितौड़ को वापस विजय कर लिया। इस पर दिल्ली का तत्कालीन सम्राट् महम्मद तुग़लक बड़ा गुस्सा हुआ और उसने एक विशाल सेना के साथ चितौड़ पर चढ़ाई करदी। इधर महाराणा हमीर भी तैयार थे। भीषण युद्ध हुआ। बादशाही फौजों ने उलटे मुँह की खाई। मेवाड़ की ख्यातों में लिखा है कि बादशाह कैद कर लिया गया। वह बहुत सा मुल्क, पचास लाख रुपया और सौ हाथी देने पर छोड़ा गया। मेवाड़ के महा पराक्रमी राणाओं में से हमीर भी एक थे।

महाराणा क्षेत्रसिंह

प्रबल प्रतापी राणा हमीर के बाद उनके पुत्र क्षेत्रसिंह ईस्वी सन् १३६४ में मेवाड़ के राज्य सिंहासन पर बिराजे। आपने भी अपने राज्य का खूब विस्तार किया। अजमेर और जहाजपुर पर आपने अपनी विजय ध्वजा फहराई और उन पर अपना पूर्ण अधिकार कर लिया। मांडलगढ़, मन्दसौर तथा छप्पन से लगाकर ठेठ मेवाड़ तक का सारा का सारा प्रदेश फिर इनके प्रतापशील राज्य में शामिल कर लिया गया। आपने दिल्ली के तत्कालीन मुसलमान सम्राट् की विशाल सेना पर अपूर्व विजय प्राप्त की। राणा कुंभ के समय के चितौड़गढ़ के एक शिलालेख में लिखा है:—"क्षेत्रसिंह ने चितौड़ के पास मुसलमान फौज का नाश किया, और शत्रु अपने आपको बचाने के लिये भागा।" कुम्भलगढ़ के शिलालेख में भी क्षेत्रसिंह के इस विजय का गौरवशाली शब्दों में उल्लेख है। वीरवर क्षेत्रसिंह इसी विजय से संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने युद्ध में गुजरात के राजा पर भारी विजय प्राप्त की और उसे अपना कैदी बनाया। कुम्भलगढ़ के शिला-लेख से मालूम होता है कि राणा क्षेत्रसिंह ने गुजरात के प्रथम स्वतंत्र सुल्तान जाफ़रखाँ को गिरफ्तार कर उसे अन्य राजाओं के साथ कैद किया। उन्होंने मालवा के मुसलमान सुल्तान अमीरशाह को हराया और मार डाला। मालवा का उक्त सुलतान राणा क्षेत्रसिंह के नाम से काँपता था। उन्होंने और भी बहुत से राजाओं पर विजय प्राप्त की थी।

महाराणा लाखा

राणा क्षेत्रसिंह के बाद राणा लक्षसिंह उर्फ़ लाखा राज्य-सिंहासन पर विराजे। ये भी बड़े साहसी और पराक्रमी वीर थे। इन्होंने ई० सन् १३८२ से १३९७ तक राज्य किया। इन्होंने मेरवाड़ा को अपने विशाल राज्य में सम्मिलित किया और वहां के बर्तगढ़ नामक किले को तोड़ा। उसी स्थान पर आपने बदनोर नगर बसाया। आपही के समय में जावर (jawar) की चांदी और टिन की खदानों का पता लगा। इससे उनकी आमदनी खूब बढ़ गई। आपने उन मन्दिरों और महलों को फिर से बनवाया, जो अलाउद्दीन द्वारा नष्ट कर दिये गये थे। आपने बड़े बड़े तालाब और किले बनवाये और शेखावटी के साँखला राजपूतों पर विजय प्राप्त की। अपने वीर पिता की तरह इन्होंने भी बदनोर मुकाम पर दिल्ली के सुल्तान की फौज़ को भारी शिकस्त दी। कुम्भलगढ़ के शिलालेख से मालूम होता है कि उन्होंने मुसलमानों से त्रिस्थली और मेर लोगो से वर्द्धन का किला विजय किया था। महामति टॉड सा० ने लिखा है कि; उन्होंने ठेठ गया तक अपनी विजय-सेनाको दौड़ाया तथा वहाँ से म्लेच्छों को निकाल बाहर किया था। ये युद्ध-क्षेत्र में लड़ते लड़ते वीर की तरह काम आये थे। चित्तौड़गढ़ के कीर्तिस्तंभ शिलालेख से प्रतीत होता है कि उस समय मुसलमानों की ओर से गया में यात्रियों पर जो टेक्स लगा हुआ था, उसको आपने जबर्दस्ती बन्द करवा दिया।" इनके इन कार्यों का उल्लेख करते हुए महामति टॉड लिखते हैं—"उनके स्वधर्मानुराग और स्वदेश-प्रेम के कारण दूसरे प्रसिद्ध प्रातःस्मरणीय राजाओं के नामों के साथ उनका नाम भी मेवाड़ के घर घर में लिया जाने लगा। राणा लाखा, जैसे स्वदेश हितैषी थे, वैसे ही शिल्प-प्रेमी भी थे। स्वदेश की शोभा बढ़ाने के लिये उन्होंने शिल्प के जो जो काम बनवाये थे, वे अब भी वर्तमान हैं तथा वे उनकी गहरी शिल्प-प्रियता का परिचय देते हैं।

महाराणा मोकल

राणा लाखा के बाद उनके पुत्र मोकल ई० सन् १३९७ में राज्य-सिंहासन पर बैठे। ये भी अपने पूर्वजों की तरह बड़े वीर, साहसी और पराक्रमी थे। उनके अतुलनीय तेज के आगे बड़े बड़े राजा मस्तक झुकाते थे। उन्होंने रायपुर के युद्ध-क्षेत्र में दिल्ली के तत्कालीन सम्राट् मुहम्मद तुग़लक को औंधे मुँह पछाड़ा था। उन्होंने अजमेर, और साँभर पर हमला कर उन पर अधिकार कर लिया। ये दोनों नगर इस समय दिल्ली के बादशाह के अधीन थे। जालौर का राजा इनके नाम से काँपता था। इनका अतुलनीय पराक्रम देखकर दिल्ली के तत्कालीन सम्राट् को अपने राज्य के चले जाने की चिन्ता होने लगी। उन्होंने नागोर के सुलतान फिरोज़खां और मांडू के गोरी सुलतान को परास्त कर उनके हाथियों को मार डाला था। चित्तौड़ के कीर्ति-स्तंभ के पास इन्होंने समाधिश्वर का मंदिर बनवाया। ये प्रतापी राजा, अपने दो चाचाओं द्वारा विश्वासघात से मार डाले गये।

महाराणा कुम्भ

राणा मोकल के बाद उनके पुत्र महाराणा कुम्भ ने मेवाड़ के गौरवशाली राज्य-सिंहासन को सुशोभित किया। मेवाड़ के जिन महा-पराक्रमी राणाओं ने अपने अपूर्व वीरत्व, अद्वितीय स्वार्थत्याग आदि दिव्य-गुणों से भारतवर्ष के इतिहास को समुज्वल किया है, उनमें महाराणा कुम्भ का आसन सर्वोपरि है। उन्होंने जो जो महान् विजय प्राप्त की हैं, उनका न केवल मेवाड़ के इतिहास में, वरन् भारतवर्ष के इतिहास में बड़ा महत्व है। इन प्रतापी महाराणा का पूर्ण परिचय देने के प्रथम यह आवश्यक है कि तत्कालीन भारतवर्ष की परिस्थिति पर कुछ प्रकाश डाला जावे।

जिस समय मेवाड़ में परम तेजस्वी, परम पराक्रमी और परम राज-नीतिज्ञ महाराणा कुम्भ का उदय हो रहा था, उस समय दुर्दान्त तैमूरलंग ने भारतवर्ष पर आक्रमण कर दिल्ली को बर्बाद कर दिल्ली के तत्कालीन मुसलमान तुग़लक बादशाह की ताकत को तोड़ डाला था। यद्यपि तैमूर के लौट जाने पर मुहम्मद तुग़लक दिल्ली को वापस लौट आया था, पर इस वक्त वह अपनी सारी प्रतिष्ठा, प्रभाव और तेज को खो चुका था। इस वक्त वह केवल नाम मात्र का बादशाह रह गया था। इससे मालवा, गुज-रात, और नागोर के सुल्तानों ने इसकी अधीनता से निकल कर स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी थी। इस वक्त इनकी शक्ति का सूर्य खूब तेजी से चम-कने लगा था। कहना न होगा, पंद्रहवीं सदी के मध्य में इन्हीं बढ़ती हुई शक्तियों से महाराणा को मुकाबला करना पड़ा था।

ईस्वी सन् १२९७ तक गुजरात, सुप्रख्यात चौलुक्य वंश की बघेला शाखा के अधीन था। उक्त साल में सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने उलु-

खां को उस पर विजय करने के लिये भेजा था। चौलुक्य वंश के पहले गुजरात पर चावड़ा राजपूतों का अधिकार था। चौलुक्य वंशीय सिद्धराज, जयसिंह और कुमारपाल के समय में गुजरात का राज्य शक्ति और समृद्धि के सर्वोपरि आसन पर विराजमान था। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि गुजरात के उक्त प्रतापशील नृपति ने मालवा पर विजय प्राप्त की थी। चित्तौड़ को फतह कर लिया था एवं अजमेर के चौहानों को भारी शिकस्त दी थी। ये सब महत्व-पूर्ण घटनाएँ ई० सन् १०९४ और ११७५ के बीच हुई।

ई० सन् १२९७ से लगातर १४०७ तक गुजरात दिल्ली के बादशाह के मातहत रहा। ई० सन् १४०७ में गुजरात के बादशाही प्रतिनिधि (Viceroy) ज़ाफरखां ने स्वाधीनता की घोषणा कर वीरपुर में गुजरात के राज्य-सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। इस वक्त उसने मुजफ्फरशाह की उपाधि धारण की। ज़ाफरखाँ असल में हिन्दू था। मुसलमानी धर्म स्वीकार कर लेने पर वह सुल्तान फिरोजशाह तुगलक का खास बबरची हो गया था। धीरे धीरे वह सुल्तान का कृपा पात्र बन गया और वह गुजरात का शासक बना दिया गया। मुजफ्फरशाह ने अपने भाई शम्सखाँ को नागोर का शासक नियुक्त किया, जहाँ कि उसने और उसके बेटे पोतों ने कई वर्ष तक राज्य किया। शम्सखाँ के बाद उसका पुत्र फिरोजखां नागोर का शासक हुआ। इसने अपनी वीरता के लिये अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। उसने महाराणा कुम्भ के पिता मोकल से दो दो तलवार के हाथ लिये थे। उसने मेवाड़ पर आक्रमण कर बांदणवाड़ा के पास राणा की फौज को शिकस्त दी थी। इस विजय से उसकी आँखें फिर गई थीं। अभिमान में चूर होकर वह मेवाड़ की ओर फिर आगे बढ़ा, पर उदयपुर से २० मील के अन्तर पर जावर नामक गाँव में उसे बुरी तरह परास्त होना पड़ा। मन मसोसते हुए उसे वापस नागोर लौटने को मजबूर होना पड़ा।

ई० सन् १४५५ में महाराणा कुंभ ने नागोर पर अधिकार कर

लिया। इससे अहमदाबाद के सुलतान को बहुत बुरा लगा और उन्होंने महाराणा के खिलाफ तलवार उठाई। यहां यह कहना आवश्यक है कि इसके पहले एक समय महाराणा को मालवा के सुल्तान के खिलाफ लड़ना पड़ा था। उस समय भारतवर्ष में मालवा और गुजरात के राज्य, शक्ति के ऊँचे आसन पर चढ़े हुए थे। ये दोनों राजा एक एक करके जब महाराणा से हार गये थे, तब इन दोनों ने मिलकर पश्चिम और दक्षिण की ओर मेवाड़ पर आक्रमण किया। वीरवर्य कुंभ भी तैयार थे। पवित्र क्षत्रिय वंश का खून उनकी रगों में दौड़ रहा था। मेवाड़ की स्वाधीनता उन्हें अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय थी। स्वाधीनता और स्वदेश-रक्षा की पवित्र भावनाओं से उत्साहित होकर वीरवर महाराणा कुम्भ इन प्रबल शत्रुओं की बलशाली सेना के सामने आ डटे। भीषण युद्ध हुआ। महाराणा को अपूर्व विजय प्राप्त हुई। शत्रुओं ने बुरी तरह उलटे मुँह की खाई। इस विजय से महाराणा की शक्ति का प्रकाश सारे भारत में आलोकित होने लगा।

यहाँ तत्कालीन मालवा पर भी कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। ई० सन् १३१० तक मालवे पर हिन्दुओं का राज्य था। इसके बाद उसे मुसलमानों ने विजय किया। दूसरे सुलतान मुहम्मद के राज्य तक वह दिल्ली के सुलतानों के अधीन रहा। इसके बाद वह स्वतंत्र राज्य हो गया। दिलावर खाँ गोरी, जिसका असली नाम हसन था, फिरोज़ तुग़लक के समय में, मालवे का शासक नियुक्त किया गया। ई० सन् १३९८ की १८ दिसंबर को अमीर तैमूर ने दिल्ली पर अधिकार कर उसको तहसनहस कर डाला। फिरोजशाह तुग़लक का लड़का सुलतान मुहम्मद तुग़लक गुजरात की ओर भागा; पर उसका रास्ता महाराणा ने रोका। रायपुर मुकाम पर युद्ध हुआ, जिसमें सुलतान बुरी तरह से हारा। इसके बाद वह मालवे की ओर मुड़ा। वह मालवा पहुँचा, जहाँ दिलावर खाँ ने उसका स्वागत कर अपनी राज-भक्ति प्रकट की। ईस्वी सन् १४०१ में उसने स्वाधीनता की घोषणा कर दिल्ली से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया।

ईस्वी सन् १५७१ तक मालवा स्वतंत्र राज्य रहा। अर्थात् इसका दिल्ली के सम्राट् के साथ कोई सम्बन्ध न रहा। ई० सन् १५७१ में महान् सम्राट् अकबर ने इसे अपने साम्राज्य का एक प्रान्त बनाया।

दिलावर खाँ अपने महत्वाकाँक्षी और दुश्चरित्र लड़के अलप खाँ द्वारा क़त्ल कर दिया गया। अलप खाँ सुलतान होशंगगोरी का खिताब धारण कर मसनद पर बैठा। सुलतान होशंगगोरी का लड़का महम्मद खाँ द्वारा मार डाला गया। मोहम्मद खाँ, सुलतान मोहम्मद खिलजी का खिताब धारण कर मालवे की मसनद पर बैठा। इसके समय में राज्य की शक्ति खूब बढ़ी। महाराणा कुम्भ ने इसी शक्तिशाली सुलतान को रण-मैदान में आने के लिये ललकारा।

मालव-विजय

हमने ऊपर महाराणा कुम्भ के पिता राणा मोकल की हत्या का वृत्तान्त लिखा है। इन हत्यारों में से एक को, जिसका नाम माहप्पा पँवार था, मालवा के सुलतान महम्मद खिलजी ने, पनाह दी थी। महाराणा ने सुलतान से उक्त हत्यारे को माँगा। सुलतान ने उसे देने से इन्कार कर दिया। इस पर महाराणा ने एक लाख घुड़सवार और १४०० हाथियों की प्रबल सेना से मालवा की ओर कूच किया। ई० सन् १४४० में चित्तौड़ और मन्दोसर के बीच में दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हो गई। भीषण लड़ाई हुई। इसमें सुलतान पूर्णरूप से परास्त हुआ। वह और उसकी सेना हताश होकर भागी। राणा की फौज ने उसका पीछा किया और तत्कालीन मालव राजधानी माँडू पर घेरा डाल दिया। जब सुलतान ने विजय की सब आशा खो दी और वह चारों ओर से तंग हो गया तब उसने हत्यारे माहप्प से कहा कि 'अब मैं तुम्हें नहीं रख सकता। तुम यहाँ से चले जाओ।' माहप्प घोड़े पर बैठ कर किले से निकल कर भागने लगा इसमें उसका घोड़ा मारा गया, पर वह सुरक्षित रूप से गुजरात की ओर भाग गया। इसके बाद महाराणा ने माँडू के किले पर हमला कर उस पर अधिकार कर लिया। सुलतान महम्मद खिलजी गिरफ्तार कर

लिया गया। उसकी सेना भयभीत होकर बेतहाशा इधर उधर भागने लगी। कैदी सुलतान सहित महाराणा चित्तौड़ को लौट आये। सुलतान छः मास तक चित्तोड़ में क़ैद रहा। बाद में उदार और सहृदय महाराणा ने बिना किसी प्रकार का हर्जाना लिये उसे मुक्त कर दिया। इसके बाद कृतघ्न सुलतान ने गुजरात के सुलतान की सहायता से बदला लेने के लिये कई प्रयत्न किये, पर वे सब निष्फल हुए। इस विजय के उपलक्ष्य में महाराणा ने चित्तौड़ में एक कीर्ति-स्तम्भ बनवाया है।

इसके बाद राणा कुंभ ने और भी कई युद्धों में भाग लिया। आप का जोधपुर राज्य के मूल संस्थापक राव जोधाजी के साथ भी युद्ध हुआ और आपने मंडूर आदि पर अधिकार कर लिया। आखिर में फिर मंडूर राव जोधाजी के हाथ पड़ गया।

मालवा और गुजरात के सुलतान के साथ युद्ध

राणा कुम्भ ने मालवा और गुजरात के मुसलमानों की संयुक्त सेना के दाँत बुरी तरह से खट्टे किये थे, तथा उन्होंने मालवा के सुलतान को भारी शिकस्त देकर किस प्रकार चित्तौड़ में छः मास तक कैद रखा था, इसका जिक्र हम ऊपर कर चुके हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस पराजय से मालवा के सुलतान के हृदय में बदला लेने की आग जोर से धधकने लगी थी। वह इसके लिये मौका ताक रहा था।

ई० सन् १४३९ में महाराणा हाड़ौती पर चढ़ाई करने के लिये चित्तौड़ से रवाना हुए। जब मालवा के सुलतान ने देखा कि महाराणा हाड़ौती पर हमला करने गये हुए हैं और मेवाड़ अरक्षित है, तो उसने तुरन्त मेवाड़ पर हमला करने का निश्चय किया। ई० सन् १४४० में उसने मेवाड़ पर कूच कर दिया। जब वह कुम्भलमेर पहुँचा तो उसने वहाँ के बानमाता के मंदिर को तोड़ने का निश्चय किया। इस समय दीपसिंह नामक एक राजपूत सरदार ने कुछ वीर योद्धाओं को इकट्ठा कर सुलतान का मुकाबला किया।

बराबर सात दिन तक दीपसिंह ने अतुलनीय पराक्रम के साथ सुलतान की विशाल सेना के हमलों को निष्फल किया। आखिर में दीपसिंह वीरगति को प्राप्त हुआ। उक्त मंदिर पर सुलतान का अधिकार हो गया। सुलतान ने उसे नष्टभ्रष्ट कर जमींदस्त कर दिया। उसने माता की मूर्ति को भी तोड़ मरोड़ डाला। इस विजय से सुलतान का उत्साह बहुत बढ़ गया। वह मन्दोन्मत्त होकर चित्तौड़ पर हमला करने के लिये रवाना हुआ, और उक्त किले पर अधिकार करने की इच्छा से अपनी कुछ सेना वहाँ छोड़ कर वह महाराणा से मुकाबला करने के लिये रवाना हुआ। महाराणा के मुल्कों को नष्टभ्रष्ट करने के लिये उसने अपने पिता आजम हुमायूँ को मन्दसौर की ओर भेज दिया।

जब महाराणा ने यह सुना कि सुल्तान ने मेवाड़ पर चढ़ाई की है, तो वे तुरन्त हाड़ौती से रवाना हो गये। मांडलगढ़ में दोनों सेनाओं का मुकाबला हुआ। भीषण युद्ध हुआ। पर इसमें कोई अन्तिम फल प्रकट नहीं हुआ। कुछ दिनों के बाद महाराणा ने रात के समय सुलतान की फौज पर अकस्मात् आक्रमण कर दिया। बस फिर क्या था, सुलतान की फौज तितर बितर हो गई। घोर पराजय का अपमान सह कर सुलतान को मांडू लौटना पड़ा।

फिर इस हार का बदला चुकाने के लिये चार वर्ष बाद अर्थात् ई० सन् १४४६ में सुलतान ने बहुत बड़ी सेना के साथ मांडलगढ़ की ओर फिर कूच कर दिया। ज्योंही शत्रु की सेना बनास नदी उतरने लगी कि महाराणा की सेना ने उस पर आक्रमण कर दिया। सुलतान की सेना बेतहाशा भागी और उसने मांडू में जाकर विश्राम किया। इस हार का यह फल हुआ कि इसके आगे दस वर्ष तक मेवाड़ पर हमला करने की सुलतान की हिम्मत न हुई।

ई० सन् १४५५ में महम्मद खिलजी के पास अजमेर के मुसलमानों की ओर से यह दरख्वास्त गई कि अजमेर के हिन्दू शासक ने मुसलमान धर्म

के सब व्यवहारों को बन्द कर दिया है। अगर आप अजमेर पर चढ़ाई करेंगे तो यहाँ के मुसलमान दिल से आप की मदद करेंगे। इस पर सुलतान ने अपनी फौज की एक टुकड़ी को तो महाराणा की कौज से मुकाबला करने के लिये मन्दसौर की ओर भेजा और खुद सुलतान अजमेर पर आक्रमण करने के लिये आगे बढ़ा। अजमेर के तत्कालीन शासक गजाधरसिंह ने बड़ी बीरता के साथ चार दिन तक अजमेर की रक्षा की। आखिर में वह शत्रु-सेना पर टूट पड़ा और सैकड़ों शत्रु सैनिकों को यमलोक पहुँचा कर आप भी वीरगति को प्राप्त हुआ। यह कहना न होगा कि अजमेर पर सुलतान का अधिकार हो गया और वह नियामतउल्ला को अजमेर का शासक नियुक्त कर मांडलगढ़ की ओर लौटा। ज्योंही सुलतान की सेना बनास नदी के पास पहुँची त्योंही महाराणा की सेना उस पर टूट पड़ी। सुलतान की सेना पराजित होकर मांडू की ओर भाग गई। सुलतान की इस पराजय को सुप्रख्यात् मुसलमान इतिहास-वेत्ता 'फरिश्ता' ने भी स्वीकार किया है (Brigg's Farishta, Vol IV P. 223)

इसी साल अर्थात् ई० सन् १४५५ में नागोर का सुलतान फिरोज खाँ इस दुनियाँ से कूच कर गया। पाठक जानते हैं कि यह गुजरात के राजाओं का वंशज होकर दिल्ली के सम्राट् के अधीन था। पीछे जाकर वह स्वतन्त्र हो गया था। इसकी मृत्यु के बाद इसका शम्सखाँ नामक लड़का नागोर का सुलतान हुआ। पर शम्सखाँ का लड़का मुजाइदखाँ इसे राज्यच्युत कर इसके मारने की फिक्र करने लगा। शम्सखाँ भाग कर महाराणा कुंभ की शरण में गया। राणा कुंभ ने कुछ शर्तों पर उसे मदद देना स्वीकार किया। महाराणा ने बड़ी सेना के साथ नागोर पर चढ़ाई की और मुजाइद को परास्त कर शम्सखाँ को गद्दी पर बैठा दिया। पर थोड़े ही दिनों के बाद महाराणा ने देखा कि शम्सखाँ अपने वचन से च्युत हुआ चाहता है। वह महाराणा के साथ की गई शर्तों को पालन करने के लिये तैयार नहीं है। इतना ही नहीं, वह उनका मुकाबला करने के लिये नागोर के

किले की मजबूती कर रहा है। इससे महाराणा को बड़ा क्रोध आया। वे विशाल सेना के साथ नागोर पर चढ़ आये। शम्सखाँ नागोर से भाग गया। नागोर का किला महाराणा के हाथ पड़ा। उन्हें शम्सखाँ के खजाने से हीरे, रत्न आदि कई बहुमूल्य पदार्थ मिले। राणा कुंभ के समय में बने हुए एक-लिंग महात्म्य में लिखा है:—

"राणा कुंभ ने शकों (मुसलमानों) को परास्त किया। उन्होंने मुजाहिद को भगाया और नागपुर (नागोर) के योद्धाओं को मारा। उन्होंने सुलतान के हाथियों को ले लिया; और शकों (मुसलमानों) की औरतों को कैद कर लिया; असंख्य मुसलमानों को सजा दी; गुजरात के राजा पर विजय प्राप्त की; नागोर शहर की तमाम मसजिदें जला दीं; बारह लाख गौओं को मुसलमानों से मुक्त किया। गौओं को चरने के लिये गोचर भूमि की व्यवस्था की और कुछ समय के लिये नागोर ब्राह्मणों को दे दिया।"

चित्तौड़-गढ़ के कीर्ति-स्तंभ पर जो लेख है उसमें लिखा है—"उन्होंने सुलतान फिरोज़ द्वारा बनाई हुई विशाल मसजिद को ज़मींदस्त कर दिया। उन्होंने नागोर से मुसलमानों को जड़ से उड़ा दिया, और तमाम मसजिदों को ज़मींदस्त कर दिया।" राणा कुंभ नागोर के किले के दरवाज़े और हनुमान की मूर्ति भी ले आये और उसे उन्होंने कुंभलगढ़ के किले के खास दरवाजे के पास प्रतिष्ठित किया। यह दरवाज़ा हनुमान पोल के नाम से मशहूर है।

शम्सखाँ अपनी पुत्री सहित अहमदाबाद की ओर भाग गया। उसने अपनी उक्त पुत्री सुलतान कुतबुद्दीन को ब्याह दी (Bayley's Gujrat P. 149) इससे सुलतान, शम्सखां के पक्ष में हो गया और उसने एक बड़ी सेना महाराणा के मुकाबले पर भेजी। ज्योंही यह सेना नागोर के पास पहुँची कि महाराणा की सेना ने विद्युत् वेग से इस पर आक्रमण कर दिया। यह पूर्ण रूप से परास्त हुई। इसकी बड़ी दुर्दशा हुई। इस सेना का अधिकांश भाग 'कड़बी' की तरह काट डाला गया। थोड़े से आदमी इस दुर्दशा का

समाचार लेकर सुलतान के पास वापस पहुँच सके। (Brigg's Farishta Vol IV Page 11.)

अब सुलतान नागोर पर अधिकार करने के लिये खुद रण के मैदान में उतरा। महाराणा भी इसके मुकाबले के लिये रवाना हो गये और वे आबू आ पहुँचे।

ई० सन् १४५६ में गुजरात का सुलतान आबू के निकट पहुँचा और उसने अपने सेनापति इम्माद-उल-मुल्क को एक बहुत बड़ी सेना के साथ आबू का किला फतह करने के लिये भेजा और आप खुद कुम्भलगढ़ की ओर रवाना हुआ। महाराणा कुंभ को सुलतान के इस व्यूह का पता चल गया था। उन्होंने तुरन्त सेनापति की फौज पर आक्रमण कर उसे छिन्न-भिन्न कर दिया। (Bombay Gazetteer Vol. I) और इस के बाद वे बड़ी तेज गति से कुम्भलगढ़ की ओर रवाना हुए। वे सुलतान के पहले ही कुम्भलगढ़ आ पहुँचे थे। इम्माद-उल-मुल्क भी आबू से निराश होकर सुलतान के पास आ पहुँचा और दोनों ने मिलकर कुम्भलगढ़ के किले पर हमला करने का निश्चय किया। महाराणा भी तैयार थे। उन्होंने तुरन्त किले से निकल कर सुलतान की फ़ौज पर हमला कर उसे पूर्ण रूप से परास्त कर दिया। सुलतान को भीषण हानि उठानी पड़ी। निराश होकर वह अपने राज्य को लौट गया।

इसके बाद ई० सन् १४५७ में गुजरात के सुलतान ने मालवा के सुलतान से मिलकर फिर मेवाड़ पर आक्रमण किया। महाराणा ने अपूर्व वीरत्व के साथ इनका मुकाबला किया। शुरू शुरू में किसी के भाग्य का फैसला नहीं हुआ। कभी विजय की माला महाराणा के गले में पड़ती तो कभी सुलतान के, पर आखिर में गहरी हानि सहने के बाद महाराणा ने दोनों के दाँत खट्टे कर दिये। गुजरात का सुलतान वापस लौट गया। यही दशा मालवे के सुलतान की भी हुई। वह अपनी खोई हुई भूमि को भी वापस न ले सका। उसने विजय की सारी आशा खो दी। उसकी आँखों के सामने

घोर निराशा के काले बादल मँड़राने लगे। इसके बाद वह दस वर्ष तक जीवित रहा, पर फिर कभी मेवाड़ पर हमला करने का उसने साहस नहीं किया।

सुलतान कुतबुद्दीन इस हार के बाद अधिक दिन तक जीता न रहा। ई० सन् १४५९ की २५ मई को वह दुनिया से कूच कर गया और उसके बाद दाऊदशाह उसका उत्तराधिकारी हुआ।

इसी समय बूंदी के हाड़ाओं ने मौका पाकर अमरगढ़ पर अधिकार कर लिया और उन्होंने मांडलगढ़ के राजपूतों को बहुत कुछ तकलीफ दी। इस पर महाराणा ने अमरगढ़ पर हमला किया, जिसमें बहुत से हाड़ा मारे गये। इसके बाद महाराणा ने बूँदी पर घेरा डाला। बूँदी के हाड़ाओं के माफी मांग लेने पर सहृदय महाराणा ने घेरा उठा लिया और फौज, खर्च, नज़-राना इत्यादि लेकर चित्तौड़ को वापस लौट गये। इस विषय में कुछ मतभेद है, क्योंकि कुम्भलगढ़ के शिलालेख में लिखा है कि महाराणा ने हाड़ाओं को परास्त कर उनसे ख़िराज वसूल किया।

ई० सन् १५२४ में महाराणा के पास यह समाचार पहुँचा कि नागोर में मुसलमानों ने गायें मारना शुरू किया है। बस, फिर क्या था ? आप तुरन्त २५ हज़ार सवारों के साथ नागोर पर हमला करने के लिये रवाना हो गये। उन्होंने हजारों शत्रुओं को तलवार के घाट उतार दिया। नागोर के किले पर अधिकार कर शत्रुओं को लूट लिया। महाराणा के हाथ लाखों रुपयों का सामान लगा। नागोर का मुसलमान शासक अहमदाबाद के सुल-तान के पास भाग गया। अहमदाबाद का सुलतान बहुत बड़ी सेना लेकर सिरोही के रास्ते से कुम्भलगढ़ के निकट पहुँचा। उधर महाराणा भी तैयार थे। वे भी बहादुर राजपूतों के साथ उसके मुकाबले के लिये आगे बढ़े। दोनों का मुकाबला हुआ और घमासान युद्ध हुआ। सुलतान ने औंधे मुँह की खाई। पहले की तरह इस बार भी वह खूब पिटा और सीधा मुँह करके उसने गुजरात का रास्ता पकड़ा।

महाराणा कुम्भ की मृत्यु

दुःख की बात है कि ई० सन् १४६८ में परम पराक्रमी परम राज-नीतिज्ञ महाराणा कुम्भ अपने पुत्र उदयकरण के द्वारा विश्वासघात से मार डाले गये। इस हत्या के मूल उद्देश के विषय में तरह तरह के अनुमान लगाये जाते हैं। किसी किसी का मत है कि महाराणा कुम्भ के शत्रुओं ने उदयकरण को सिंहासन का लोभ देकर यह क्रूर कृत्य करवाया था। कोई कोई इसके दूसरे ही कारण बतलाते हैं। कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि हत्यारे उदयकरण ने इस अमानुषिक कुकृत्य से भारतवर्ष के इतिहास में अपना काला मुँह कर लिया है। उस दुष्ट पितृहन्ता के नाम से आज हृदय में अपने आप घृणा और तिरस्कार के भाव पैदा होते हैं। "उदो तू हत्यारो" इन शब्दों से भाट लोग उसके पाप कृत्य का प्रकाशन करते हैं।

महाराणा कुम्भ की महानता

३५ वर्ष के गौरव-मय राज्य के बाद कुम्भ इस संसार को छोड़ स्वर्ग-धाम को सिधार गये। भारतवर्ष के इतिहास में कुम्भ का नाम बड़े गौरव और आदर के साथ लिया जायगा। जिन महान् नृपतियों ने भारत के इति-हास को अभिमान करने योग्य वस्तु बनाया है, उनमें महाराणा कुम्भ का आसन बहुत ऊँचा है। जिन महान् पुरुषों से इतिहास बनता है, उनमें से महाराणा कुम्भ एक थे। कुम्भलगढ़ के शिलालेख में इनकी कीर्ति-कलाप के विषय में जो कुछ लिखा है, उसका सारांश यह है—"वे धर्म और पवित्रता के अवतार थे। उनका दान राजा भोज और राजा कर्ण से भी बढ़ चढ़ कर था।"

सैनिक दृष्टि से महाराणा कुम्भ

सैनिक दृष्टि से महाराणा कुम्भ का आसन बहुत ऊँचा है। वे एक सैनिक होते हुए भी सहृदय थे। मनुष्यत्व की अत्युच्च भावनाओं के वे प्रत्यक्ष

अवतार थे, यही कारण है कि उन्होंने असीम पराक्रमी होते हुए भी तैमूर और अलाउद्दीन खिलजी जैसे पाशविक कृत्य नहीं किये। उन्होंने व्यर्थ में खून की नदियाँ बहाना—निर्दोष मनुष्यों को कत्ल करना—उच्च श्रेणी के क्षात्र-धर्म के विरुद्ध समझा। वे बड़े भाग्यशाली थे। विजय हमेशा हाथ जोड़े हुए उनके सामने खड़ी रहती थी। वे युद्ध में हमेशा विजय-लाभ करते थे, चित्तौड़, कुम्भलगढ़, रानपुर, आबू आदि के शिलालेखों से पता चलता है कि उन्होंने अपने सब दुश्मनों को अच्छी तरह चने चबवाये थे। उनकी विजयी तलवार की धाक सारे भारतवर्ष में थी। उन्होंने कई राजाओं को अपना मातहत सरदार बनाया था। उन्होंने बूंदी, वामोद पर अधिकार कर हाड़ौती को जीता था। उन्होंने मेवाड़, मांडलगढ़ सिंहपुर, खाटु, चाटसु, टोड़ा और अजमेर का परगना अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया था। उन्होंने साम्भर के राजा को अपना मातहत (Tributary) बनाकर वहाँ की झील के नमक पर कर बैठाया था। उन्होंने नरवर, जहाजपुर, मालपुरा, जावर और गंगधार को फ़तह किया था; मंडोर पर अपना विजयी झंडा उड़ाया था। आमेर पर अधिकार कर कोटरा की लड़ाई में फ़तह पायी थी। उन्होंने सारंगपुर को विजय कर वहाँ के मुसलमान शासक महम्मद का गर्व चूर्ण किया था। उन्होंने हमीरपुर पर विजय-डंका बजाकर वहाँ के राजा रणबीर की कन्या के साथ विवाह किया था। उन्होंने मालवा के सुलतान से जंकाचल-घाटी विजय कर उस पर किला बनाया था। उन्होंने दिल्ली के सुलतान का बहुतसा मुल्क फ़तह किया था। उन्होंने गोकर्ण पर्वत पर अधिकार कर आबू राज्य को अपने अधीन किया था। उन्होंने गागरोन (कोटा स्टेट) और बिसलपुर को जीतकर धन्यनगर और खंडेल को ज़मींदस्त किया था। रणथम्भोर के इतिहास प्रसिद्ध किले पर उन्होंने अपनी विजय पताका फहराई थी। उन्होंने मुजफ्फर के गर्व को बेतरह पद दलित कर नागोर पर विजय-डंका बजाया था। उन्होंने जाँगलदेश (अजमेर का पश्चिमीय भाग) को लूटा तथा गोडवार को अपने राज्य में मिलाया था। उन्होंने मालवा और गुजरात

जैसे शक्तिशाली सुलतानों की सम्मिलित फौज को बुरी तरह पछाड़ा था। इन महान् सफलताओं के उपलक्ष्य में दिल्ली और गुजरात के सुलतान ने आपको छत्री नज़र कर आपका सम्मान किया था। संसार में उन्हें राजगुरु, दानगुरु, चापगुरु और परमगुरु के सम्मानसूचक नामों से जानता था।*

महाराणा कुम्भ की विद्वत्ता

महाराणा कुम्भ न केवल महान् नृपति, वीर और चतुर सेना नायक ही थे, वरन् वे बड़े भारी विद्वान् और कवि भी थे। कुम्भलगढ़ के शिला-लेख में लिखा है कि उनके लिये काव्य सृष्टि करना उतना ही सरल था, जितना रण मैदान में जाना। आप अपने समय के अद्वितीय कवि माने जाते थे। संगीत विद्या में आप परम निष्णात थे। नाट्य-शास्त्र के तो आप अपने समय के अद्वितीय विद्वान् थे और इसके लिये आप "अभिनव भारताचार्य" की उच्च उपाधि से भी विभूषित थे। आपने संगीत राज, संगीत मीमांसा आदि ग्रंथों की रचना की। आपने गीतगोविंद पर रसिकप्रिया नामक टीका लिखी। आपने संगीत् रत्नाकर भाष्य भी लिखा इससे आपके नाटक विज्ञान के ज्ञान का पता लगता है।

इनके अतिरिक्त आपने चार नाटक और चंडीशतक पर टीका लिखी। चित्तौड़ के शिलालेख से मालूम होता है कि राणा कुम्भ ने अपने उक्त चार नाटकों में कर्नाटकी, मेदापटी और महाराष्ट्रीय भाषाओं का भी उपयोग किया था। उस समय के बने हुए एक माहात्म्य से पता चलता है कि महाराणा कुंभ वेद, स्मृति, मीमांसा, नाट्य-शास्त्र, राजनीति, गणित, व्याकरण, उपनिषद और तर्क-शास्त्र के भी बड़े पंडित थे। आपने गीतगोविंद पर रसिकप्रिया नामक जो टीका लिखी है, उससे यह प्रतीत होता है कि आप संस्कृत के भी बड़े

* जो सज्जन महाराणा के इन पराक्रमों के विषय में अधिक जानना चाहें वे कुम्भलगढ़, चित्तौड़ रानपुर आदि के शिलालेख तथा एकलिंग माहात्म्य आदि ग्रंथों का अवश्य अवलोकन करें।

पंडित थे। आप संस्कृत का गद्य और पद्य बड़ी आसानी से लिख सकते थे। एकलिंग माहात्म्य का पिछला हिस्सा आपही ने लिखा है। उससे प्रकट होता है कि आप मधुर और सुन्दर कविता करने में भी बड़े सिद्धहस्त थे। आप चौहान सम्राट् बिसलदेव की तरह प्राकृत भाषा के भी बड़े विद्वान् थे।

राणा कुम्भ केवल विद्वान् ही न थे वरन् विद्वानों के कदरदान भी थे। आप निर्माण शास्त्र में भी बड़ी दिलचस्पी रखते थे। आपने जो विविध भव्य इमारतें बनवाई हैं वे आपके निर्माण-विद्या-प्रेम को प्रकट करती हैं। आपने इस विद्या पर निम्न लिखित आठ पुस्तकें भी लिखवाई थी (१) देवता मूर्ति प्रकर्ण। (२) प्रासाद मंडन। (३) राजवल्लभ। (४) रूप मंडन। (५) वास्तुमंडन। (६) वास्तुशास्त्र। (७) वास्तु सार। (८) रूपावतार।

कहने का मतलब यह हैं कि महाराणा कुंभ ने केवल एक ही क्षेत्र में नहीं, वरन् विविध क्षेत्रों में अपनी महानता का परिचय दिया था।
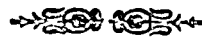
महाराणा कुंभ के पश्चात्

महाराणा कुंभ के बाद पितृघाती राणा ऊदा राज्यासन पर बैठा जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं। इस हत्यारे के नाम ने मेवाड़ के गौरवशाली इतिहास को कलङ्कित किया है। यह केवल चार वर्ष राज कर सका। इस अल्पस्थायी राज्यकाल में इसने अप॰ कीर्ति को धूल में मिला दी। आखिर सब सरदारों ने मिलकर इसे पदभ्रष्ट कर दिया तथा इसे देश से भी निकाल दिया। इसके बाद वह सहायता पाने की आशा से तत्कालीन दिल्ली सम्राट बहलोल लोदी से मिलने के लिये रवाना हुआ, पर बीचही में बिजली गिरने से इस पापी को अपने पापों के प्रायश्चित रूप में प्रकृति की ओर से प्राणदण्ड मिला। इसके बाद राणा रायमल राजसिंहासन पर बिराजे। ये योग्य पिता के योग्य पुत्र थे। इन्होंने गद्दी पर बैठते ही तत्कालीन मुगल सम्राट्

पर विजय प्राप्त की। आपने मालवे के सुलतान को भी युद्ध में पछाड़ा। आपके संग्रामसिंह पृथ्वीराज और जयमल नामक तीन पुत्र थे। ईस्वी सन् १५०९ में आपका देहान्त हो गया। आपके बाद आपके पुत्र सांगा या संग्रामसिंह राज्यासन पर विराजे। ये अपने स्वर्गीय पितामह राणा कुम्भ की तरह महा पराक्रमी थे। इनका इतिहास नीचे देते हैं।

महाराणा सांगा

तत्कालीन परिस्थिति

अजमेर के चौहानों, कन्नौज के गहरवालों और गुजरात के सोलंकियों का पतन होते ही मेवाड़ में गुहिलोत और मारवाड़ में राठोड़ हिन्दुस्तान के राजनैतिक गगन पर चमकने लगे। इनके चमकने से सारी राजपूत जाति में पुनः नवजीवन का संचार होने लगा। इधर दिल्ली में अफगानों की शक्ति दिन प्रति दिन घटने लगी। राजपूतों की उन्नति और अफगानों की अवनति से देश के अन्दर ऐसे चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे कि अब वह समय दूर नहीं है, जब हिन्दू लोग पुनः अपना नष्ट साम्राज्य प्राप्त कर लें।

ऐसे अवसर पर पैतृक धन को पुनः प्राप्त करने के लिये हिन्दुस्तान के रंग मंच पर महाराणा सांगा प्रकट हुए। तत्काल ही वे सारी हिन्दू जाति के नेता बन गये। उनका देश प्रेम और कर्त्तव्य पालन, उनके उच्च विचार और उदारता, उनकी वीरता और महान् मनःस्विता और हिन्दुस्तान के सब से अधिक शक्तिशाली राज्य के स्वामी होने के परिणाम स्वरूप उनकी स्थिति ने उन्हें इस उच्च स्थान को ग्रहण करने के योग्य सिद्ध किया।

सुप्रसिद्ध इतिहास लेखक हरविलास शारदा लिखते हैं कि "साँगा भारत के वे अन्तिम सम्राट् थे कि जिनकी अधीनता में समस्त राजपूत जातियाँ विदेशी आक्रमणकारियों को निकालकर बाहर करने के लिये एकत्रित हुईं।"

परवर्त्ती काल में यद्यपि कई नेताओं का उत्थान हुआ, और कई वीरों ने अद्वितीय साहस के कार्य सम्पादन किये। महान् युद्ध भी किये। अपने समय की सबसे अधिक बलशाली शक्तियों का मुकाबला भी किया। परन्तु राणा साँगा के पश्चात् कभी किसी ऐसे राजपूत का उत्थान न हुआ जिसने समस्त राजपूत जाति की हार्दिक शक्ति और सम्मान पर आधिपत्य प्राप्त किया हो तथा जिसने भारत के मुकुट के लिये मध्य एशिया के उन आक्रमणकारियों से-जिनके भाई बन्धुओं ने दक्षिणी युरोप को तहसनहस कर डाला था-लड़ने के लिये भिन्न भिन्न राजपूत जातियों को सम्मिलित कर उनका नेतृत्व ग्रहण किया हो।

साँगा के समय में भारत का राजनैतिक गगन बहुत मेघाच्छन्न हो रहा था। कई आपत्तियाँ भारत के सर पर मंडरा रही थीं। साम्राज्य छिन्न भिन्न हो रहा था। एक ओर मुसलमान आक्रमणकारियों की धूम थी दूसरी ओर राजपूत ही आपस में लड़कर कट रहे थे। पारस्परिक द्वेष की अग्नि समाज में धाँय धाँय करके जल रही थी। ऐसे कठिन समय में राणा संग्रामसिंह (साँगा) अवतीर्ण हुए। उन्होंने अपनी बुद्धिमानी और पराक्रम के जोर पर सारे साम्राज्य को फिर शृंखलाबद्ध कर दिया और वह समय बहुत ही अनकरीब रह गया था, जब वे दिल्ली में इब्राहीम लोदी के सिंहासन पर आरूढ़ होते; पर यह आशा दैव दुर्वियोग से कहिये या हिन्दुओं के चरित्र की उन नाशकारी त्रुटियों के कारण कहिये-जो उनके सामाजिक और धार्मिक अन्ध विश्वासों के कारण उत्पन्न हुई थीं-शीघ्रही निराशा में परिणत होगई। विजय का प्याला जो होठों तक पहुँच चुका था, पृथ्वीपर गिरा दिया गया। हिन्दू साम्राज्य के स्थान पर, हिन्दुओं ही की सहायता से मुग़ल साम्राज्य की नींव पड़ी। इसका विवरण पाठकों को आगे चलकर मालूम होगा।

जन्म और राज्यारोहण ।

महाराणा साँगा (संग्रामसिंह) मेवाड़ के प्रसिद्ध राणा कुम्भ के पौत्र और राणा रायमल के पुत्र थे। राणा रायमल के ग्यारह रानियाँ थीं, जिनसे उनको चौदह पुत्र और दो कन्याएं उत्पन्न हुईं। सबसे ज्येष्ठ पुत्र का नाम पृथ्वीराज था। ये बड़े ही वीर और तेजस्वी थे। बदनौर के राव सुरतान की इतिहास प्रसिद्ध कन्या ताराबाई इन्हीं की महिषी थीं। इन्होंने कई ऐसे बहादुरी के कार्य किये जो आज भी इतिहास के अन्दर प्रसिद्ध हैं। अ-प्रासंगिक होने से उनका वर्णन यहाँ पर करना व्यर्थ है। पृथ्वीराज को उनके बहनोई जयपाल ने धोखे से विष देकर मारडाला। वीर रमणी तारा अपने पति के साथ सती हुई। पृथ्वीराज की मृत्यु के पश्चात् राणा संग्रामसिंह युव-राज की जगह चुने गये। ये राणा रायमल के तीसरे पुत्र थे। वि० संवत् १५६६ में राणा रायमल का देहान्त हो गया। उनके स्थान पर ज्येष्ठ सुदी ५ सं० १५६६ के दिन संग्रामसिंह सिंहासनारूढ़ हुए।

सिंहासन पर बैठते ही राणा सांगा ने अपने राज्य की सीमा को बढ़ाना प्रारंभ किया। केवल पश्चिम को छोड़कर—जहाँ कि राठौड़ों का सितारा तेजी पर था—साँगा का राज्य दिल्ली, गुजरात और मालवा के मुसलमान राज्यों से घिरा हुआ था। साँगा को इन तीनों राज्यों से युद्ध करना पड़ा। इन तीनों राज्यों ने एकत्रित होकर सम्मिलित शक्ति से एक ही स्थान पर राणा साँगा से युद्ध किया। परन्तु संग्रामसिंह ने अपने अपूर्व युद्ध-कौशल के बल से उस सम्मिलित शक्ति को परास्त कर दिया। उन्होंने शत्रु के कई प्रान्तों पर अधिकर भी कर लिया। संग्रामसिंह ने अपने कृत्यों से मेवाड़ के महत्त्व को इतना बढ़ा दिया कि उसकी समानता चौहान साम्राज्य के पतन के पश्चात् कोई भी राज्य नहीं कर सकता। उन्होंने अपने वीर कार्यों से भारत में बहुत उच्चासन प्राप्त किया। एर्सकिन ने लिखा है—"उस समय समस्त भारत-वासियों के हृदय में ये तरंगे उठने लगीं कि अब बहुत शीघ्र राज्य परिवर्तन

होने वाला है, और इस आशा द्वारा वे प्रसन्नता से भारत में स्वदेशी राज्य की स्थापना का स्वागत करने को तैयार हो उठे।" १६ मार्च सन् १५२७ ई० को यदि खानवा के मैदान में एक दुर्घटना न हुई होती तो निश्चय था कि भारत का शाही मुकुट एक हिन्दू के मस्तक पर विराजमान होता और प्रभुत्व की पताका इंद्रप्रस्थ को छोड़कर चित्तौड़ की बुर्जों पर लहराती।

महाराणा संग्रामसिंह को अपने जीवन-काल में कितने ही युद्ध करने पड़े। जिनमें से सुलतान इब्राहीम लोदी के साथ का युद्ध, सुलतान मुहम्मद खिलजी के साथ का युद्ध, गुजरात का आक्रमण और मुजफ्फर शाह का मेवाड़ पर आक्रमण विशेष मशहूर है। इन सब युद्धों में राणा संग्रामसिंह विजयी होते रहे। एक युद्ध में उनका बांयाँ हाथ बिलकुल कट गया और एक पैर लँगड़ा हो गया। एकाक्षी तो वे पहले ही हो गये थे, इस प्रकार इन युद्धों की वजह से महाराणा साँगा एक आँख व एक हाथ से बिलकुल वंचित और एक पैर से अर्द्ध वंचित होगये।

स्वेच्छा से राज छोड़ने की घोषणा

अंगहीन होने के कुछ दिनों के पश्चात् हकीमों की चिकित्सा से महाराणा जब आराम हो गये तो इसके उपलक्ष में उत्सव मनाने के निमित्त उन्होंने सब सरदारों और उमरावों को आमंत्रित किया। महाराणा इस बड़े दरबार में आये, और उनका उचित सत्कार भी हुआ, पर सदा के रिवाजकी तरह उहोंने दोनों हाथ छाती तक न उठा कर केवल दाहिना हाथ सिर तक उठाया। इस प्रकार सब लोगों के अभिवादन का जवाब दिया। इसके पश्चात् हमेशा की तरह राज्यसिंहासन पर न बैठ कर वे एक साधारण सरदार की तरह ज़मीन पर ही बैठ गये। इस घटना से तमाम दरबारी आश्चर्य निमग्न हो गये। वे आपस में कानाफूसी करने लगे। इस पर महाराणा ने स्वयं ही खड़े होकर ऊँची आवाज़ से कहा—

"भारत का यह प्राचीन और दृढ़ नियम है कि जब कोई मूर्ति टूट

जाय या उसका कोई हिस्सा खण्डित हो जाय तो फिर वह पूजा के योग्य नहीं रहती। उसके स्थान पर दूसरी मूर्ति स्थापित की जाती है। इसी प्रकार राज्य-सिंहासन—जो कि प्रजा की दृष्टि में पूजनीय है—पर बैठनेवाला व्यक्ति भी ऐसा होना चाहिये जो सर्वांग हो और राज्य की सेवा करने के पूर्ण योग्य हो। मेरी एक आँख के सिवाय एक भुजा और एक पैर भी निकम्मा हो गया है। ऐसी हालत में मैं अपने आपको कदापि इस योग्य नहीं समझता। इसलिये इस पवित्र स्थान पर आप सब लोग जिसे उचित समझें, बिठलायँ और मुझे अपने निर्वाह के लिये कुछ दें दें जिससे मैं भी अन्य सामन्तों की तरह अपनी हैसियत के अनुसार राज्य की सेवा कर सकूं।"

इस पर सब दरबारियों ने कहा कि महाराणा की अंगहानि रणक्षेत्र में हुई है, इसलिये यह हानि राज्य-सिंहासन के गौरव को घटाने की अपेक्षा वर्द्धित ही अधिक करेगी। यह कह कर सब लोगों ने महाराणा का हाथ पकड़ कर उन्हें राज्य-सिंहासन पर आरूढ़ कर दिया।

घटना बहुत साधारण है। पर हिन्दुओं की राज्य कल्पना के वास्तविक उद्देशों को बतलानेवाली है। यह घटना बतलाती है कि हिन्दुओं की राज्य कल्पना का आदर्श यह नहीं था कि राजा प्रजा को अपनी इच्छानुकूल चलावे, और देशका शासन भी अपनी व्यक्तिगत् इच्छा के अनुसार करे। बल्कि वह आदर्श यह था कि राजा प्रजा का मुख्य कर्मचारी है और उसका शारीरिक सुख, आकांक्षाएँ और व्यवसाय प्रजा की भलाई के नीचे हैं। उसका कर्त्तव्य शासन करना है न कि अधिकार। यदि प्रजा की सेवा करने योग्य गुणों की उसमें न्यूनता हो तो उसे सिंहासन-त्याग के निमित्त हमेशा प्रस्तुत रहना चाहिये।

भारतवर्ष पर मुग़लों का आक्रमण।

जिस समय भारतवर्ष के अन्दर पठानों की ताक़त लड़खड़ा कर गिरने वाली थी, उस समय क़ाबुल में एक असाधारण योग्यतावाले पुरुष का आविर्भाव हुआ। इस व्यक्ति का नाम ज़ाहिरुद्दीन मुहम्मद बाबर था। १५ फरवरी सन् १४८३ में फ़रग़ाना नामक छोटीसी रियासत के राजा उमरशेख़ के घर बाबर का जन्म हुआ। ११ वर्ष की उमर होने पर बाबर के बाँप का देहान्त होगया और उसी दिन से वह अपने बाप की रियासत का मालिक हुआ। बाबर बचपन से ही नेपोलियन की तरह महत्त्वाकांक्षी था और इन्हीं ऊँची महत्त्वाकांक्षाओं के कारण उसे ऐसी भयंकर विपत्तियों का सामना करना पड़ा कि कभी कभी तो उसके पास खाने को चने तक नहीं रहते थे। पर उत्साही बाबर के हृदय पर इन विपत्तियों का विशेष प्रभाव न पड़ा। इन विपत्तियों के आने से उसकी महत्त्वाकांक्षाओं को अधिकाधिक बल मिलता गया।

मतलब यह कि अनेक स्थानों पर भ्रमण करते करते अन्त में बाबर को एक बुढ़िया के द्वारा हिन्दुस्तान की शस्य श्यामला भूमिका पता लगा। भारत भूमि की इतनी प्रशंसा सुनते ही उसके मुँह में पानी भर आया। महत्त्वाकांक्षी तो वह था ही, भावी विपत्तियों की रंचमात्र भी पर्वाह न कर वह १२००० सैनिकों को साथ लेकर भारत-विजय के निमित्त चल पड़ा। रास्ते में और भी बहुत से लोग आ आकर उसकी फौज में मिलने लगे। सबसे पहले पानीपत के मशहूर रणक्षेत्र में दिल्ली के सुलतान इब्राहीम लोदी से उसका मुकाबला हुआ। यहाँ आते आते बाबर की सेना ७०००० के लग भग हो गई थी। १९ अप्रेल १५२६ के दिन यह इतिहास प्रसिद्ध भयंकर युद्ध हुआ। जिसमें इब्राहीम लोदी की फौज़ पराजित हुई, और विजयमाला बाबर के गले में पड़ी। इसके एकही सप्ताह पश्चात् दिल्ली का शाही ताज़ बाबर के मस्तक पर मंडित हुआ और उसी दिन से भारत हमेशा के लिए सूत्ररूप से गुलाम हो गया।

इब्राहीम लोदी से विजय पाने पर भी बाबर निश्चिन्त न हुआ। वह भली प्रकार जानता था कि हिन्दुस्तान में उसका प्रधान शत्रु इब्राहीम लोदी नहीं है, प्रत्युत राणा संग्रामसिंह है, और इसलिये वह महाराणा सांगा (संग्रामसिंह) पर विजय प्राप्त करने के साधन इकट्ठे करने लगा।

राणा सांगा और बाबर

इस स्थान पर प्रसंगवशात् हम राणा सांगा और बाबर के जीवन पर एक तुलनात्मक दृष्टि डालना उचित समझते हैं। क्योंकि हमारे ख़याल से इन दोनों महापुरुषों के जीवन में बहुत कुछ साम्य है।

राणा सांगा और बाबर ये दोनों ही भारत में अपने समय के प्रसिद्ध व्यक्ति हैं। जिस प्रकार राणा सांगा एक साधारण राजपूत न थे, उसी प्रकार बाबर भी साधारण व्यक्ति न था। दोनों एक ही ढङ्ग के और एक ही अवस्था के थे। राणा सांगा का जन्म १४८२ में और बाबर का १४८३ में हुआ था। दोनों वीर थे और दोनों ही ने मुसीबत के मदरसों में तालीम पायी थी। बाबर का पूर्व जीवन दुःख निराशा और पराजय में व्यतीत हुआ था। फिर भी उसमें अदम्य उत्साह, भारी महत्त्वाकांक्षा कर्म शीलता और निजी वीरता का काफ़ी समावेश था। विपरीत परिस्थितियों के धक्के खा खाकर इतना मज़बूत हो गया था कि कठिन से कठिन विपत्ति के समय में भी उसका धैर्य्य विचलित न होता था। उसका जीवन उत्तर की जंगली जातियों और तुर्किस्तान तथा ट्रान्स आक्सियाना की क्रूर, उपद्रवी और विश्वासघाती जातियों में व्यतीत हुआ था। उसके बलवान् शरीर, अदम्य साहस और बेशक़ीमती तजुर्बे ने ही मनुष्यता और सभ्यता में उन्नत राजपूत जाति का मुक़ाबला करने में सहायता की। बाबर का आचरण शुद्ध था, वह एक सच्चा मुसलमान था, हमेशा हँस मुख और प्रसन्न रहा करता था। राजनैतिक मामलों को छोड़कर दूसरी बातों में वह उदार भी था। व्यक्तिगत योग्यता और नेतृत्व की दृष्टि से वह उन तमाम सरदारों और नेताओं से—जो उसके

पूर्व भारत में आ चुके थे—अधिक बुद्धिमान और शक्तिशाली था। साहस, दृढ़ता और शारीरिक पराक्रम में वह महाराणा के समान ही था। पर शूरता, वीरता, उदारता आदि गुणों में वह महाराणा संग्रामसिंह से कम था, पर इसके साथ ही स्थिति के अनुभव में, सहन शीलता और धैर्य्य में वह महाराणा से बढ़कर भी था। लगातार की पराजय और क्रमागत दु:खों की लड़ी ने बाबर को धैर्य्यवान्, स्थिति-परीक्षक और धूर्त बना दिया। भयङ्कर सङ्कटों की अग्नि में पड़ कर उसकी विचार शक्ति तप्तसुवर्ण की तरह शुद्ध हो गई थी और इस कारण वह मानवीय हृदय और मनुष्य के मानसिक विकारों के परखने में निपुण हो गया था। पर इसके विरुद्ध महा-राणा सांगा में लगातार सफलता के मिलते रहने से और आपत्तियों की बोछार न पड़ने से इन गुणों का समावेश न होने पाया। लगातार की विजय से उनके हृदय में आत्म विश्वास, साहस और आशावाद का संचार हो गया। जिसके कारण वे परिस्थिति का रहस्य समझने में और लोगों के मनोभावों के परखने में कुछ कमजोर रह गये और इन्हीं गुणों की कमी के कारण शायद उनकी यह इतिहास-विख्यात पराजय हुई।

सांगा महावीर और शूर नेता थे; तो बाबर अधिक राजनीतिज्ञ, अधिक चतुर और कुशल सेनापति था। सांगा की ओर प्रतिष्ठा, वीरता, साहस और सेना की संख्या अधिक थी; तो बाबर की ओर युद्ध नीति, चतुरता और धार्मिक उत्साह का आधिक्य था। मतलब यह कि भारत के तत्कालीन इतिहास में ये दोनों ही व्यक्ति महापुरुष थे।

खानवा का युद्ध

हम पहले ही लिख आये हैं कि बाबर को जितना डर राणा सांगा का था, उतना किसी का भी नहीं था। इसलिये वह राणा को पराजित करने के लिये कई दिनों से तैयारी कर रहा था। अन्त में ११ फरवरी सन् १५२७ ई० के दिन बाबर राणा सांगा से मुकाबला करने के लिये आगरे

से रवाना हुआ। कुछ दिनों तक वह शहर के बाहर ठहर कर अपनी फौज और तोपखाने को ठीक करने लगा। उसने आलमखाँ को ग्वालियर एवं मकन, क़ासिमबेग, हमीद और महम्मूद जैतून को 'संबल' भेजा और वह स्वयं मेढाकुर होता हुआ फ़तहपुर सीकरी पहुँचा। यहां आकर वह अपनी मोर्चे बंदी करने लगा।

इधर राणा सांगा भी बाबर का मुक़ाबला करने के लिये चित्तौड़ पहुँचे। इब्राहीम लोदी के खोये हुए राज्य को पुनः प्राप्त करने की इच्छा से उनका भाई मुहम्मद लोदी भी राणा की शरण में आ गया था। इसके अतिरिक्त और कई अफ़गान सरदारों से—जो कि बाबर को हिन्दुस्तान से निकालना चाहते थे—राणा को सहायता मिली थी। राणा की फौज के रणथम्भोर पहुँचने का समाचार जब बाबर को मिला तो वह बहुत डर गया। क्योंकि राणा के बल और विक्रम से वह पूर्ण परिचित था। वह अपनी दिनचर्य्या में भी लिखता है कि "सांगा बड़ा शक्तिशाली राजा था और जो बड़ा गौरव उसको प्राप्त था, वह उसकी वीरता और तलवार के बल से ही था।" अस्तु, जब उसने सुना कि राणा बढ़ते चले आ रहे हैं तो उसने तोमर राजा सिलहदी के द्वारा संधि का प्रस्ताव भेजा, पर राणा ने उसे स्वीकार नहीं किया और कंदर के मज़बूत किले पर अधिकार करते हुए वे बयाना की ओर आगे बढ़ने लगे। रास्ते में हसनखाँ मेवाती नामक अफ़गान भी १०००० सवारों के साथ राणा की सेना में आ मिला। बाबर अपनी दिनचर्य्या में लिखता है:—

"जब उसकी सेना में यह खबर पहुँची कि राणा अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ शीघ्रता से आ रहा है तो हमारे गुप्तचर न तो बयाने के किले में पहुँच सके और न वहां की कुछ खबर ही वे पहुँचा सके। बयाने की सेना कुछ दूर तक बाहर निकल आई। शत्रु उस पर टूट पड़ा और वह भाग निकली। तब महाराणा ने बयाना पर अधिकार कर लिया।" इसके पश्चात् महाराणा की सेना और आगे बढ़ी और २१ फ़रवरी १५२७ ई० को

उसने बाबर की आगेवाली सेना को बिलकुल नष्ट कर दिया। यह समाचार बाबर को मालूम हुआ तो वह विजय की ओर से पूरा निराश हो गया और आत्मरक्षा के लिये मोर्चे बन्दी करने लगा।

एर्सकिन साहब लिखते हैं कि मुग़लों के साथ राजपूतों की गहरी मुठभेड़ हुई, जिसमें मुग़ल अच्छी तरह पीटे गये। इस पराजय ने उन्हें अपने नये शत्रु की प्रतिष्ठा करना सिखाया। कुछ दिन पूर्व मुग़ल सेना की एक टुकड़ी असावधानी से किले से निकल कर बहुत दूर चली आई। उसे देखते ही राजपूत उस पर टूट पड़े और उसे वापस किले में भगा दिया। उन्होंने वहाँ जाकर अपनी सेना में राजपूतों के वीरत्व की बड़ी प्रशंसा की जिस से मुग़ल लोग और भी भयभीत हो गये। उत्साही, शूर, योद्धे और रक्त-पात के प्रेमी राजपूत जातीय भाव से प्रेरित होकर अपने वीर नेता की अध्यक्षता में शत्रु के बड़े से बड़े योद्धा का सामना करने को तैयार थे और अपनी आत्म प्रतिष्ठा के लिये जीवन विसर्जन करने को हमेशा प्रस्तुत रहते थे।

स्टेनली लेनपूल लिखते हैं कि "राजपूतों की शूरवीरता और प्रतिष्ठा के उच्चभाव उन्हें साहस और बलिदान के लिये इतना उत्तेजित करते थे जितना कि बाबर के अर्द्धसभ्य सिपाहियों के ध्यान में भी आना कठिन था।"

बाबर के अग्रभाग के सेनापति मीर अब्दुलअजीज ने सात आठ मील तक आगे बढ़कर चौकियाँ क़ायम की थीं पर राजपूतों की सेना ने उन्हें नष्ट कर दिया।

इस तरह राजपूतों की निरन्तर सफलता, उनके उत्साह, उनकी आशातीत सफलता और उनकी सेना की विशालता—जो क़रीब सवालाख होगी—को देखकर बाबर की सेना में समष्टिरूप से निराशा का दौर दौरा हो गया। इससे बाबर को फिर एक बार सुलह की बात छेड़ना पड़ी। इस अवसर में उसने अपनी मोर्चे बन्दी को और भी मजबूत किया। इतने में काबुल से चला हुआ ५०० स्वयं सेवकों का एक दल उसकी सेना में आ मिला, पर बाबर की निराशा और बेचैनी बढ़ती ही गई। तब उसने अपने

गत जीवन पर दृष्टि डालकर उन पापों को जानना चाहा, जिनके फल स्वरूप उसे यह दुःख उठाना पड़ रहा था। अन्त में उसे प्रतीत होने लगा कि उसने नित्य मदिरापान का स्वभाव डालकर अपने धर्म के एक मुख्य सिद्धान्त को कुचल डाला है। उसने उसी समय इस संकट से बचने के लिये इस पाप कर्म को तिलांजलि देने का विचार किया। उसने मदिरापान की कसम ली और शराब पीने के सोने चाँदी के गिलासों और सुराहियों को उसने तुड़वा कर उनके टुकड़ों को ग़रीबों में बंटवा दिया। इसके अतिरिक्त मुसलमानी धर्म के अनुसार उसने डाढ़ी न मुँडवाने की प्रतिज्ञा की।

पर इन कामों से सब लोगों की निराशा घटने के बदले अधिकाधिक बढ़ती ही गई। वह अपनी दिनचर्य्या में लिखता है:—

"इस समय पहले की घटनाओं से क्या छोटे और क्या बड़े सबही भयभीत हो रहे थे। एक भी आदमी ऐसा नहीं था, जो बहादुरी की बातें करके साहस वर्द्धित करता हो। वज़ीर जिनका फ़र्ज़ ही नेक सलाह देने का था, और अमीर जो राज्य की सम्पत्ति को भोगते आ रहे थे, कोई भी वीरता से न बोलता था, और न उनकी सलाह ही दृढ़ मनुष्यों के योग्य थी। अन्त में अपनी फ़ौज में साहस और वीरता का पूर्ण अभाव देखकर मैंने सब अमीरों और सरदारों को बुलाकर कहा—

सरदारों और सिपाहियों! प्रत्येक मनुष्य जो इस संसार में आता है, वह अवश्य मरता है। जब हम यहाँ से चले जाँयगे, तब एक निराकार ईश्वर ही बाकी रह जायगा। जो कोई जीवन का भोग करेगा, उसे जरूर ही मौत का प्याला पीना पड़ेगा। जो इस दुनियाँ में मौत की सराय के अन्दर आकर ठहरता है, उसे एक दिन जरूर बिना भूले इस घर से बिदा लेनी होगी। इसलिये अप्रतिष्ठा के साथ जीते रहने की अपेक्षा प्रतिष्ठा के साथ मरना कहीं उत्तम है"।

........"परमात्मा हम पर प्रसन्न है, उसने हमें ऐसी स्थिति में ला रखा है कि यदि हम लड़ाई में मारे जाँय तो शहीद होंगे और यदि जीते

रहे तो विजय प्राप्त करेंगे। इसलिये हम सबको मिलकर एक स्वर से इस बात की शपथ लेना चाहिये कि देह में प्राण रहते कोई भी लड़ाई से मुँह न मोड़ेगा और न युद्ध अथवा मारकाट में पीठ दिखावेगा।"

इस भाषण से उत्साहित होकर क़रीब २०००० वीरों ने कुरान हाथ में ले लेकर क़सम खाई। पर बाबर को इस पर भी विश्वास न हुआ और उसने सिलहिद्दी को सुलह का पैग़ाम लेकर फिर राणा के पास भेजा। बाबर ने इस शर्त पर राणा को कर देना स्वीकार किया कि वह दिल्ली और उसके अधीनस्थ प्रान्त का स्वामी बना रहे। पर महाराणा ने इसको भी स्वीकार न किया। इससे सिलहिद्दी बहुत अप्रसन्न हुआ और उसने भविष्य में महाराणा के साथ किस प्रकार विश्वासघात कर इसका बदला लिया यह आगे जाकर मालूम होगा। अस्तु!

जब बाबर संधि से बिलकुल निराश हो गया तो अन्त में उसने जो तोड़ कर लड़ाई करना ही निश्चित किया। यदि इसी अवसर पर महाराणा सुस्ती न करके उस पर आक्रमण कर देते तो मुग़ल वंश कभी दिल्ली के सिंहासन पर प्रतिष्ठित न होता और आज भारत के इतिहास का रूप ही दूसरा नज़र आता। पर जब दैव ही अनुकूल न हो तो सब का किया हो ही क्या सकता है। हाँ, भारत के भाग्य में ग़ुलाम होना बदा था।

बाबर ने सब प्रोग्राम निश्चित कर अपने पड़ाव को वहाँ से हटा कर दो मील आगे वाले मोर्चे पर जमाया। १२ मार्च को बाबर ने अपनी सेना और तोपखाने का इन्तिज़ाम किया और उसने चारों ओर घुमकर सब लोगों को दिलासा दे दे कर उत्तेजित किया। प्रातःकाल साढ़े नौ बजे युद्ध आरंभ हुआ। राजपूतों ने बाबर की सेना के दाहिने ओर मध्य भाग पर तीन आक्रमण किये। जिसके प्रभाव से वे मैदान छोड़ कर भागने लगे। इस पर अलग रखी हुई सेना उसकी मदद के लिये भेजी गई और राजपूतों के रिसालों पर तोपें दागना प्रारंभ हुई, पर वीर राजपूत इससे भी विचलित न हुए। वे उसी बहादुरी के साथ युद्ध करते रहे। इतने ही में दग़ाबाज सिलहिद्दी अपने

३५००० सवारों को लेकर सांगा का साथ छोड़ बाबर से जा मिला। पर इसका भी राजपूत-सैन्य पर कुछ विशेष प्रभाव न पड़ा, वह पूर्ववत् ही लड़ती रही। इन सब घटनाओं के साथ ही एक घटना और हो गई, जिसने सारे युद्ध के ढंग को ही बदल दिया। वह समय बहुत ही निकट आ चुका था कि जब बाबर की फौज़ भागने लगती, पर इसी बीच किसी मुग़ल सैनिक का चलाया हुआ तीर महाराणा के मस्तक पर इतने ज़ोर से लगा कि जिससे वे बेसुध हो गये। बस, इस समय में महाराणा का बेसुध हो जाना ही हिन्दुस्तान के दुर्भाग्य का कारण हो गया। यद्यपि कुछ लोगों ने चतुराई के साथ उनके रिक्तस्थान पर सरदार आज्झाजी को बिठा दिया, पर ज्योंही राजपूत सेना में महाराणा के घायल होने का समाचार फैला त्योंही वह निराश हो गई, और उसके पैर उखड़ने लगे। इधर अवसर देखकर मुग़लों ने ज़ोरशोर से आक्रमण कर दिया, फल वही हुआ जो भारत के भाग्य में लिखा था। राजपूत सेना भाग निकली और सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध सरदार मारे गये।

राजपूतों की इस हार पर गंभीरतापूर्वक मनन करने से यही फल निकलता है कि उनके इस पराजय का कारण उनकी वीरता की कमी न थी, परन्तु इसका कारण हमारी सैनिक कायदों की वह कमज़ोरी थी, जिसने कई बार हमको पहले भी धोखा दिया। इसी सैनिक पद्धति से सिंध के राजा दाहिर की—जो किसी भी प्रकार मुहम्मद कासिम से कम न था—पराजय हुई। इसी पद्धति के कारण पंजाब के शक्तिशाली राजा आनन्दपाल के भाग्य का निपटारा हुआ। आनन्दपाल भी महमूद ग़ज़नवी से किसी प्रकार कम न था पर सन् १००८ के पेशावरवाले युद्ध में उनका हाथी बेकाबू होकर भाग गया और इसीके कारण उनकी पराजय हुई। इसी नाशकारी पद्धति के कारण प्रसिद्ध राणा संग्रामसिंह की भी यह पराजय भारत को देखनी पड़ी।

मूर्च्छित महाराणा को ले जानेवाले लोग जब 'बसवा' नामक ग्राम में पहुँचे तब महाराणा को चेत हुआ। उन्होंने जब सब लोगों से अपने इस प्रकार लाये जाने की बात सुनी तो उन्हें बड़ा क्रोध और खेद हुआ। उसी

समय उन्होंने प्रतिज्ञा की कि बिना बाबर को पराजित किये जीते जी चित्तौड़ न जाऊँगा। इसके पश्चात् स्वस्थ होने के निमित्त कुछ समय तक महाराणा रणथम्भोर में रहे। इस स्थान पर टोडरमल चाँचल्या नामक एक व्यक्ति ने एक ओजपूर्ण कविता सुनाकर महाराणा को प्रोत्साहित किया। जिससे वे फिर युद्ध के लिये तैयार हो गये। उन्हें युद्ध के लिये इस प्रकार प्रस्तुत देख उनके विश्वासघातक मंत्रियों ने-जो कि अब युद्ध करना न चाहते थे-उन्हें विष दे दिया। इस कारण संवत् १५८४ के वैशाख में उनका देहान्त हो गया। मृत्यु-समय उनकी देह पर करीब ८० जख्म थे। राणा संग्रामसिंह के साथ ही साथ भारत के राजनैतिक रंगमंच पर हिन्दू साम्राज्य का अन्तिम दृश्य भी पूर्ण हो गया। यहीं से हिन्दू साम्राज्य के नाटक की यवनिका का पतन हो गया। जिस देश के अन्दर आज़ादी के निमित्त युद्ध करनेवाले बहादुर देश सेवक को विष दे दिया जाय-जिस देश में सिलहिद्दी के समान विश्वासघातक उत्पन्न हो जाय---वह देश यदि चिरकाल के लिये गुलाम हो जाय तो क्या आश्चर्य? पाठक! अब इन देश द्रोहियों के चरित्र पर आलोचना करते हुए हमारी लेखनी काँपती है। हिन्दू साम्राज्य के इस दुःखान्त नाटक की यवनिका-पतन के साथ साथ वह भी विश्राम लेती है।
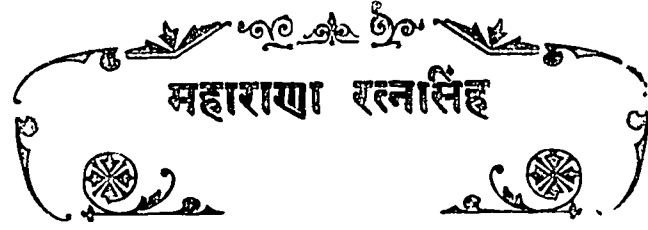
महाराणा संग्रामसिंह के बाद उनके पुत्र महाराणा रत्नसिंह राज्य-सिंहासन पर बैठे। आपमें अपने पराक्रमी पिता की तरह वीरोचित गुण भरे पड़े थे। रणक्षेत्र ही को आप अपनी प्रिय वस्तु समझते थे। आपने चित्तौड़गढ़ के दरवाजे खुले रखकर लड़ने का प्रण किया था। इन्होंने आमेर के राजा पृथ्वीराज की पुत्री के साथ गुप्त विवाह किया था। स्वयं पृथ्वीराज को यह बात मालूम न थी। उन्होंने हाड़ावंशीय सरदार सूरजमल के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया जब महाराणा को इस विवाह की खबर लगी तो उन्हें बड़ा दुःख हुआ। राजा सूरजमल की बहिन महाराणा को ब्याही थी, अतएव प्रत्यक्ष रूप से महाराणा उन्हें कुछ न कह सके। पर उनके दिल में इसका बदला लेने की आग बड़े जोर से धधक रही थी। थोड़े ही दिनों के बाद अहेरिया का दिन आया। महाराणा शिकार खेलने के लिये निकले। प्रसंगवश सूरजमल भी महाराणा के साथ शिकार खेलने के लिये चल पड़े। अवसर देख कर महाराणा ने सूरजमल को ललकारा। दोनों वीरों ने तलवार से फ़ैसला करने का निश्चय किया। इसमें दोनों काम आये।

महाराणा रत्नसिंह के केवल एक ही पुत्र था, जो महाराणा की आज्ञा से फाँसी पर लटका दिया गया था। यह कथा कुछ ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। अतएव हम उसे यहाँ देते हैं—पाठक जानते हैं कि वीरवर महाराणा संग्रामसिंह ने गुजरात और मालवा के शासकों को बुरी तरह हराया था। वे दोनों इस पराजय से दुःखी होकर मेवाड़ पर सदा दृष्टि लगाये रहते थे। जब इन्होंने देखा कि महाराणा रत्नसिंह के समय में सरदारों और सामन्तों में फूट पड़ रही है तो इन्होंने मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। इस

आक्रमण की बात सुनकर महाराणा बड़े दुःखी हुए। परन्तु मंत्रियों ने उन्हें समझाया कि कुछ भी हो मेवाड़ की रक्षा अवश्य करनी होगी। इस पर महाराणा ने रण-भेरी बजवा कर हुक्म दिया कि पवित्र भूमि मेवाड़ की रक्षा के लिये सब सामन्त और सरदार कराला देवी के मंदिर में ठीक १२ बजे उपस्थित हों। सामन्त और सरदार ठीक समय पर पहुँच गये, परन्तु युवराज उपस्थित न हो सके। उनका एक भिलनी से स्नेह था। वे उस समय उससे मिलने के लिये गये हुए थे। उपस्थिति का घण्टा बजते ही सरदारों में काना फूसी होने लगी कि युवराज अभी तक नहीं आये। जब महाराणा ने देखा कि एक सरदार ने खड़े होकर ताना मारा कि सब आ गये, पर युवराज अभी तक नहीं आये। उस समय मेवाड़ में यह नियम था कि युद्ध की भेरी बजने पर कोई सरदार या सामन्त ठीक समय पर उपस्थित न होता तो वह फाँसी पर लटका दिया जाता था। इसी नियम पर पाबन्द रह कर महाराणा ने अपने खास पुत्र के लिये फाँसी तैयार करवाने का हुक्म दिया। मंत्रियों ने महाराणा को अपनी यह कठोर आज्ञा वापस लेने के लिये बहुत समझाया और कहा कि युवराज अब उपस्थित हो गये हैं। इस पर महाराणा ने कहा कि वह ठीक समय पर क्यों न उपस्थित हुआ। दूसरे दिन युवराज फाँसी पर लटका दिये गये।
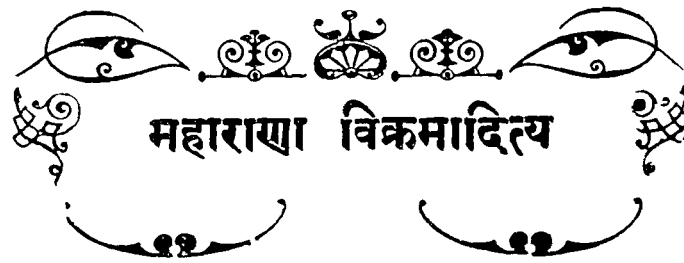
महाराणा विक्रमादित्य

महाराणा रत्नसिंह के अब कोई पुत्र न बचा था, अतएव उनके भाई विक्रमादित्य राज्य सिंहासन पर बैठे। इनके शासन-काल में घरेलू विरोध की आग बड़े जोर से धधकने लगी। भील भी उनसे नाराज

रहने लगे। इस उपयुक्त अवसर को देख कर गुजरात के शासक बहादुरशाह ने फिर मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। यह बड़ा भीषण आक्रमण था। शिसोदिया वीरों ने अपूर्व वीरत्व के साथ युद्ध किया। यहाँ तक कि स्वयं महारानी कई वीर चत्राणियों के साथ हाथ में तलवार लेकर शत्रुओं पर टूट पड़ी और उसने सैकड़ों शत्रु-सैनिकों को तलवार के घाट उतार दिये। बहादुर-शाह दंग रह गया। पर बहादुरशाह के पास असंख्य सेना एवं बढ़िया तोपखाना था, अतएव आखिर में वह विजयी हुआ। असंख्य राजपूत वीर और वीर रमणियाँ अपनी मातृभूमि की रक्षा करती हुई स्वर्गलोक को सिधारीं। बहादुरशाह ने चित्तौड़ लूट कर अपने अधीन कर लिया, पर पीछे से बादशाह को महाराणा ने चित्तौड़ से निकाल दिया। राणा विक्रमादित्य अपने सरदारों के साथ अच्छा व्यवहार न करते थे, इससे एक समय सब सरदारों ने मिलकर उन्हें गद्दी से उतार दिया। उनके स्थान पर उनके छोटे भाई बनवीर, जो दासी पुत्र थे, राज्यासन पर बैठाये गये! ये बड़े दुष्ट स्वभाव के थे। इन्होंने सरदारों पर अनेक अत्याचार करना शुरू किया। इन्होंने अपने भाई भूतपूर्व महाराणा संग्रामसिंह को मारकर अपनी अमानुषिक वृत्ति का परिचय दिया। इतना ही नहीं, संग्रामसिंह के बालक पुत्र उदयसिंह पर भी यह दुष्ट हाथ साफ कर अपनी राक्षसी वृति का परि-चय देना चाहता था। पर दाई पन्ना ने निस्सीम स्वामि-भक्ति से प्रेरित होकर बालक उदयसिंह को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया और उसके स्थान पर अपने निज बालक को सुला दिया। नराधम बनवीर ने दाई पन्ना के बालक को उदयसिंह जानकर मार डाला! दाई पन्ना ने अपने इस दिव्य स्वार्थ-त्याग से मेवाड़ के इतिहास में अपना नाम अमर कर लिया। बालक उदयसिंह को आसाशाह नामक एक ओसवाल जैन ने पर्वरिश किया। आखिर में सरदारों ने बनवीर को हटा कर इन्हें मेवाड़ के सिंहासन पर बैठाया। यह घटना ईस्वी सन् १५४२ की है।

महाराणा उदयसिंह

महाराणा उदयसिंहजी ईस्वी सन् १४४२ में मेवाड़ के राज्य-सिंहासन पर विराजे। यहाँ यह बात स्मरण रखना चाहिये कि जिस साल महाराणा उदयसिंहजी मेवाड़ के राज्य-सिंहासन पर बैठे, उसी साल सुप्रख्यात् महान मुग़ल सम्राट् अकबर ने अमरकोट में जन्म लिया था। इतिहास के पाठक जानते हैं कि अकबर का पिता हुमायूं दिल्ली छोड़कर भागा था, और पीछे उपयुक्त अवसर देखकर दिल्ली लौट आया। वह अपने प्रतिभा सम्पन्न पुत्र अकबर की सहायता से राज्य-सिंहासन प्राप्त करने में समर्थ हुआ। उसने १२ वर्ष की अल्पावस्था में जो वीरता और साहस दिखलाया, उसे देखकर हुमायूं बड़ा खुश हुआ। अकबर की बाल्यावस्था में कुछ दिन तक बहरामखाँ ने राज्य-शासन-सूत्र का सञ्चालन किया। इसके बाद अकबर ने सारी जिम्मेदारी अपने हाथों में ली। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि सम्राट् अकबर बड़े राजनीतिज्ञ, बुद्धिमान् और चतुर थे। दूरदर्शिता राजनीति का प्रधान अङ्ग है। अकबर बड़े दूरदर्शी थे। उन्होंने सोचा कि भारतीय राजा महाराजाओं के सहयोग विना राज्य की स्थिति अधिक दिनों तक नहीं रह सकती, अतएव उन्होंने कुछ ऐसा कार्य्य करना उचित समझा, जिससे राजपुताने के बलशाली राजाओं का स्थायी सहयोग प्राप्त हो। उन्होंने राजपुताने के राजाओं के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थिर करने का निश्चय किया। कहना न होगा कि सम्राट अकबर को इसमें बहुत कुछ सफलता हुई और जयपुर, जोधपुर के राजाओं के साथ उनका इस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित भी हो गया। यह बात इतिहास के पाठक भली प्रकार जानते हैं। कहना न होगा कि मेवाड़ के कुलाभिमानी

राणा ने अकबर के इस प्रकार के प्रस्तावों को ठोकर मारी। इस पर अकबर ने मेवाड़ पर चढ़ाई कर दी। महाराणा उदयसिंह चित्तौड़ छोड़कर चले गये। इस बात को लेकर कई इतिहास-वेत्ताओं ने इन्हें बहुत कुछ भला बुरा कहा है। पर सुप्रख्यात इतिहास-वेत्ता मुन्शी देवीप्रसादजी ने इनके उक्त कार्य्य का समर्थन इस प्रकार किया है। "केवल चित्तौड़गढ़ में बैठकर लड़ने से उन्होंने यह अच्छा समझा कि बाहर रहकर मेवाड़ के दूसरे गढ़ों को सुदृढ़ किया जावे। जब एक बड़ी सेना से किला घिर जाता है तो लड़कर मारे जाने या अधीनता स्वीकार करने के सिवा दूसरा चारा ही नहीं रह जाता है।" कुछ भी हो, इसमें सन्देह नहीं कि महाराणा उदयसिंहजी में अपने पूज्य पिताजी महाराणा सांगा की तरह अलौकिक वीरत्व नहीं था।

मुसलमान इतिहास लेखक लिखते हैं कि अकबर ने एक बार की चढ़ाई ही में चित्तौड़ को जीत लिया था, परन्तु राजपूत वंशावलियों से अकबर की चढ़ाई का पता लगता है। कहा जाता है कि पहली बार की चढ़ाई में अकबर हार गया। यह हराने वाली महाराणा उदयसिंह की उपपत्नी वीरा थी। इसने कुछ बहादुर सरदारों की सहायता से बादशाही सेना के पैर उखाड़ दिये। इस वीर रमणी की प्रशंसा स्वयं महाराणा उदयसिंहजी ने की थी। वे कहा करते थे कि वीरा की बहादुरी से मेरा छुटकारा हुआ। सरदारों को महाराणा की यह प्रशंसा अच्छी मालूम न हुई। उन्होंने षड्-यन्त्र रचकर वीरा को मरवा डाला। इस हत्या से चित्तौड़ में बड़ी अशान्ति फैली। घरेलू झगड़ों ने फिर जोर पकड़ा। अकबर ने इस झगड़े की खबर पाकर चित्तौड़ पर फिर ज़बरदस्त चढ़ाई कर दी। इस समय मुसलमानी सेना इतनी विशाल थी कि दस दस मील तक उसकी छावनी पड़ी हुई थी। ज्योंहीं अकबर ने घेरा डाला कि उदयसिंहजी गढ़ से निकल कर चले गये, पर फिर भी चित्तौड़ में वीरों की कमी न थी। इस समय गढ़ में आठ हजार क्षत्रीय थे। जिन्होंने चार मास तक बड़ी वीरता से अकबर का सामना कर अपना जातीय गौरव स्थिर रखा था। चूड़ाजी के वंशधर सलुम्बर के राव

साईदास इस दल के प्रधान थे। वे बड़ी योग्यता और वीरता से चित्तौड़की रक्षा करने लगे। जब सूर्य्यद्वार के ऊपर मुसलमानों ने धावा किया तब उसकी रक्षा करते हुए ये मारे गये। इनके अतिरिक्त महाराजा पृथ्वीराज-वंशज बेदला और कोठारिया के राव, बिजोलिया के परमार और सादड़ी के झाला आदि सरदारों ने भी इस समय अपूर्व वीरत्व का प्रकाश किया। सादड़ी के राजा राणा सुल्तानसिंह बड़ी वीरता से लड़े। वे यवनों के साथ युद्ध करते २ वीर गति को प्राप्त हुए। बदनौर के राठौर जयमलजी ने जिस अलौकिक वीरता का प्रकाश किया था, उसकी प्रशंसा अबुलफज़ल ने "आईने अकबरी" में की है। हम ऊपर कह चुके हैं कि सूरजद्वार की रक्षा करते २ सलुम्बर के राव मारे गये। इनके बाद राजपूत सेना का सञ्चालन केलवा के सरदार फत्ताजी को सौंपा गया। यद्यपि इस समय इनकी अवस्था केवल १६ वर्ष की थी पर साहस पराक्रम और क्षमता में ये बड़े २ वीरों से भी बढ़कर थे। ये अपनी माता के इकलौते पुत्र थे। पर माता ने इन्हें वीर-कर्तव्य पालन करने का आदेश किया, उनकी प्रिय पत्नी ने भी उन्हें युद्ध में जाने के लिये उत्साहित किया। उनकी बहिन कर्णवती ने उन्हें जन्मभूमि की रक्षा करने के लिये उत्तेजित किया। फिर क्या था? यह एक १६ वर्ष का बालाक सच्चे वीर की तरह सबसे विदा होकर जन्मभूमि की रक्षा के लिये रण-स्थल में पहुँचा। मुग़ल सेना दो भागों में विभक्त थी। पहला भाग स्वयं सम्राट् अकबर के सेनापतित्व में और दूसरा किसी दूसरे की संरक्षितता में था। दूसरी सेना और फत्ताजी में घमासान लड़ाई छिड़ गई। सम्राट् अकबर फत्ताजी पर शस्त्र प्रहार करने के लिये दूसरी ओर से बढ़े। वे आगे बढ़ते हुए क्या देखते हैं कि सामने पर्वत पर से उनकी सेना पर गोलियाँ बरस रही हैं। सेना की गति रुक गई। पाठक यह जानने के लिये, अवश्य ही उत्सुक होंगे कि यह गोलियाँ कौन बरसा रहा था। फत्ताजी की वृद्ध माता तथा नवयौवना पत्नी और बहन तीनों सैनिक वेष में घोड़े पर सवार होकर जन्मभूमि की रक्षा के लिये निकल पड़ी थीं, और वेही शत्रु सेना के संहार में कटिबद्ध हुई थीं। इन्होंने असंख्य मुग़ल सेना
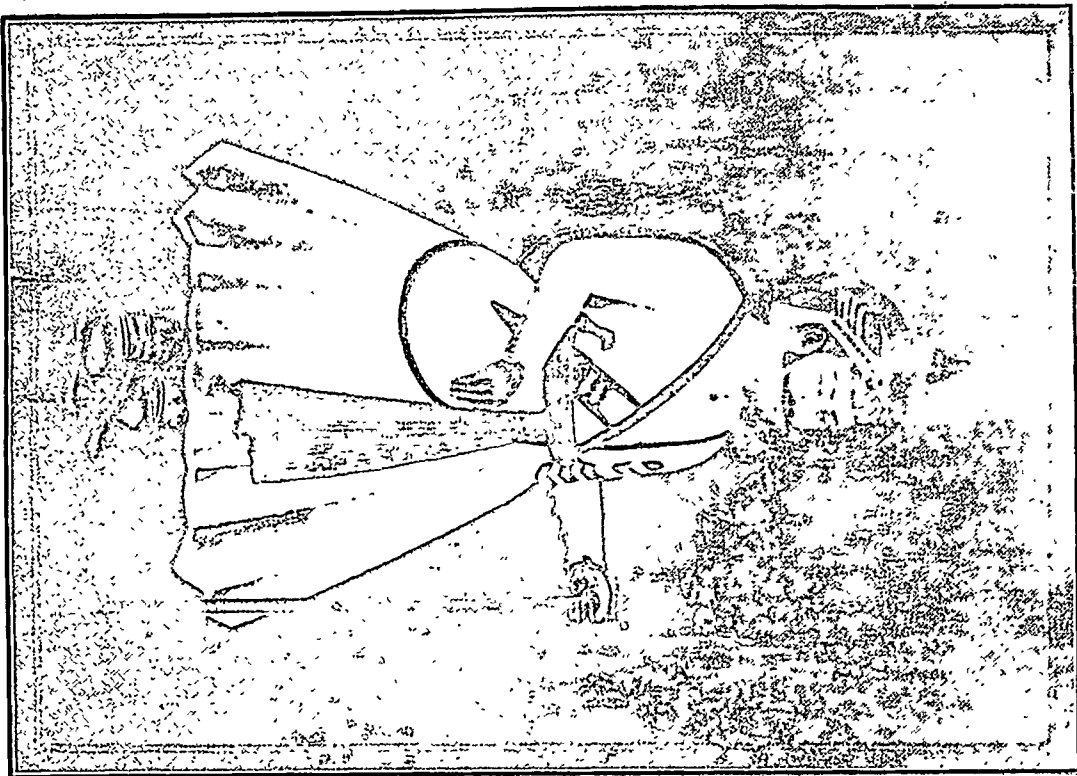
महाराणा संग्राम सिंह जी

प्रातः स्मरणीय महाराणा प्रताप सिंह जी

को यम-लोक में पहुँचा दिया। इन वीर महिलाओं की अपूर्व वीरता देखकर अकबर स्वयं स्तम्भित हो गया। वीरवर फत्ता और उक्त क्षत्रिय रमणियों ने वीरत्व की पराकाष्ठा का परिचय दिया। पर सम्राट् अकबर की सेना असंख्य थी। आखिर वीरश्रेष्ठ फत्ता, उनकी वृद्ध माता, नवयौवना पत्नी और बहन चारों वीर गति को प्राप्त हुए। अन्ततः चित्तौड़ पर सम्राट् अकबर का अधिकार हो गया। उन्होंने वहां खूब विजयोत्सव मनाया। वहां से वे अपनी राजधानी को बहुत सा कीमती सामान ले गये। महाराणा उदयसिंहजी ने चितौड़ से लौटकर पहाड़ों की तराई में एक गांव बसाया और उसका नाम उदयपुर रखा। इस युद्ध के चार वर्ष बाद ४२ वर्ष की अवस्था में महाराणा उदयसिंह जी का देहान्त हो गया।

महाराणा प्रतापसिंह

ई० सन् १५७२ में प्रतापसिंहजी मेवाड़ के महाराणा हुए। इस समय महाराणा के पास न तो पुरानी राजधानी ही थी न पुराना सैन्यदल और न कोष ही था। महाराणा रात दिन इसी चिन्ता में रहने लगे कि चितौड़ का उद्धार किस तरह किया जाय। ये इस बात को अच्छी तरह जानते थे कि अकबर की सेना और शक्ति के सामने हमारी शक्ति कुछ भी नहीं है। चारण और भाटों के मुख से अपने पूर्वजों की कीर्ति और वीरता सुनकर प्रताप के हृदय में देशोद्धार और स्वाभिमान ने पूरा स्थान पा लिया। मेवाड़ के सभी सरदारों ने महाराणा की उच्चाभिलाषा का हृदय से समर्थन किया। अकबर ने मेवाड़ के सब सरदारों को धन-दौलत और राज्य का लोभ देकर अपनी ओर मिलाने की चेष्टा की; परन्तु चण्ड, जयमल और फत्ते के वंशधरों ने किसी भी लोभ

में पड़कर महाराणा का साथ नहीं छोड़ा। अकबर ने भी स्वयं महाराणा को कई बार लिखा कि यदि आप मेरे दरबार में एक बार आकर मुझे भारतेश्वर कह कर पुकारें तो मैं अपने राज्य-सिंहासन की दाहिनी ओर आपको स्थान देने के लिये तैयार हूँ; परन्तु महाराणा ने किसी भी प्रलोभन में आकर अपना प्राचीन गौरव न घटाया। वे सदा कहा करते थे कि बापा रावल का वंशज मुग़लों के आगे सिर नहीं झुका सकता। एक दिन अपने सरदारों के साथ बैठे हुए महाराणा ने इस बात की प्रतिज्ञा कराई कि जब तक मेवाड़ का गौरवोद्धार न हो तब तक मेवाड़-सन्तान सोने चाँदी के थालों में भोजन न कर पेड़ के पत्तोंपर किया करे, कोमल शय्या के स्थान में घास पर सोया जाय, महलों की जगह घास और पत्तों की कुटियों में निवास किया जाय, राजपूत अपनी दाढ़ी मूँछों पर छुरा न चलवायें और रण-डङ्का फौज के पीछे बजा करे। वीरवर प्रताप सदा कहा करते थे कि मेरे दादा और मेरे बीच में यदि मेरे पिता उदयसिंहजी न हुए होते तो चित्तौड़ का सिंहासन शिसोदिया कुल से न जाता। महाराणा ने सबसे प्रतिज्ञा कराई और स्वयं भी इस प्रतिज्ञा का पालन करने लगे।

मुग़ल-सेना के विरुद्ध लड़ने के लिये महाराणा ने एक उपाय सोच निकाला। उन्होंने राज्य में आज्ञा निकाली कि मेवाड़ की सारी प्रजा, बस्ती और नगरों को छोड़कर परिवार सहित अरावली पर्वतों के बीच रहने लगे। जो इस आज्ञा का पालन न करेगा वह शत्रु समझा जायगा और उसे प्राण-दण्ड मिलेगा। इस आज्ञा का पालन उन्होंने बड़ी कठोरता से किया। जिसने आज्ञा-पालन न की, वही मार डाला गया। एक चरवाहे को भी प्राण-दण्ड भोगना पड़ा था। सामन्तों ने धन संग्रह का एक और मार्ग निश्चित किया। उन दिनों सूरत बंदर से होकर सारे भारत को मेवाड़ से व्यापार सामग्री जाया करती थी। सरदारों ने दल बाँधकर वह सामग्री और खजाने लूटने शुरू कर दिये। इस लूट से महाराणा के पास बहुतसा धन आगया। अकबर ने जब महा-राणा की सब बातें सुनीं तो वह बड़ा क्रुद्ध हुआ और अपनी सारी सेना सजाकर अजमेर के पास डेरा डाल बैठा। अकबर के पास कई लाख सेना

थी। मारवाड़ के राव मालदेव ने जब अकबर की इस चढ़ाई का हाल सुना तो उसने अपने बड़े बेटे उदयसिंह को अकबर के पास भेज दिया। अजमेर में उदयसिंह ने अकबर से सन्धि कर ली और उसी दिन से मारवाड़ के राजाओं को अकबर की दी हुई 'राजा' उपाधि भोगने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिन राजाओं के वंशधर मेवाड़ की विपत्ति के समय महाराणाओं की सहायता किया करते थे, वेही मेवाड़ को दासत्व के बन्धन में डालने के लिये अकबर का साथ देने को तैयार हो गये। उनके साथ देने का एक और भी कारण था। जब सारे राजपूतों ने अपनी कन्याएँ अकबर को दे दीं तो मेवाड़ के शिसोदियों ने उन राजाओं से अपना सम्बन्ध त्याग दिया। वे सब को कुलहीन राजपूत समझने लगे। एक दिन जब सोलापुर के युद्ध में विजय पाकर आम्बेर-नरेश राजा मानसिंह अपनी राजधानी को लौट रहे थे, तो उन्होंने सोचा कि महाराणा प्रताप से यदि इस समय मुलाकात की जायगी तो अपने घर आये हुए अतिथि का वे अपमान न करेंगे। यह समझ कर उन्होंने अपनी सेना यथास्थान भेज दी और कुछ चुने हुए आदमी लेकर उदयपुर पहुँचे। उदयसागर के किनारे मानसिंह का स्वागत करने का प्रबन्ध किया गया। मानसिंह ने सरदारों से कहा कि किसी विशेष कारणवश मैं महाराणा से मिलने आया हूँ। सरदार महाराणा के पुत्र अमरसिंह को उनके पास लेकर पहुँचे और कहा कि महाराणा के सर में दर्द है। आप भोजन कीजिये। इसके बाद महाराणा आपसे मिलेंगे। मानसिंह समझ गये और उन्होंने महाराणा से कहलाया कि मैं आपके सर-दर्द का कारण जानता हूँ। जो कुछ हो गया वह तो वापस आ नहीं सकता। उसे तो किसी तरह मिटाना ही होगा। हम लोगों ने जो कुछ किया है, वह हिन्दुओं की मर्यादा और आपकी प्रतिष्ठा रखने के लिये ही किया है। मुझे भी अपनी भूल मालूम होती है। जब तक आप न आयँगे, मैं थाल पर किसी तरह नहीं बैठ सकता। घर आए हुए अतिथि का अपमान हिन्दू-धर्म के विरुद्ध है। जब महाराणा ने ये बातें सुनीं तो वे कुटिया से बाहर निकल आये और

बोले कि जिस राजपूत ने अपनी बहन देकर धन और शान्ति खरीदी है, बाप्पा रावल का वंशज उसके साथ भोजन नहीं कर सकता। जिस स्वाभिमान को बेचकर आपने हिन्दू धर्म की रक्षा करनी चाही है, वह यदि आपके कार्य बिना रसातल को चला जाता तो ठीक था। मानसिंह ने थाल पर बैठकर कुछ ग्रास नैवेद्य के लिये निकाले और वे भोजन किये बिना ही उठ गये। उन्होंने कहा कि यदि मेरे यहाँ चले आने पर भी हम लोगों का मनोमालिन्य दूर न हुआ तो आपको भी भयानक परिणाम का सामना करना पड़ेगा। मानसिंह को उस समय क्रोध आगया और उन्होंने घोड़े पर सवार होकर कहा कि यदि मैंने तुम्हारा यह अभिमान चूर्ण न किया तो मेरा नाम मानसिंह नहीं।

महाराणा भी मानसिंह की ये बातें सुन उत्तेजित होकर बोले कि अब रण-स्थल में ही हम दोनों की मुलाकात होगी। महाराणा के एक सरदार ने ताना मारकर कहा कि युद्ध में आते समय अपने बहनोई को भी साथ लेते आना। जिन पात्रों में मानसिंह के लिये भोजन बनाया गया था, वे सब तोड़ कर फेंक दिये गये। जिन लोगों ने भोजन बनाया या मानसिंह का स्पर्श किया था, उन सब ने कपड़े बदले। जिस स्थान पर मानसिंह ने भोजन किया था, उस स्थान की मिट्टी खोदकर मेवाड़ के बाहर फेंकी गई और गंगाजल से वह स्थान पवित्र किया गया। राजा मानसिंह उदयपुर से प्रस्थान कर अकबर के पास पहुँचे और उन्होंने अपने अपमान की सारी बातें उनसे कहीं। बादशाह बड़ा क्रुद्ध हुआ और कई लाख सेना सजाकर मानसिंह को उनके भानजे सलीम और सगरजी के पुत्र मुहब्बतखाँ को साथ देकर महाराणा प्रताप के विरुद्ध चढ़ाई कर दी। मुहब्बतखाँ सगरजी का पुत्र था जो महाराणा प्रताप के भाई थे। वह किसी मुसलमान स्त्री के प्रेम में फँसकर मुसलमान हो गया था। जब महाराणा पर चढ़ाई करने के लिये घर का भेदी भेजा गया तो उसने अपने देश-द्रोह का पूरा परिचय दिया। वह गिरि-मार्गों से परिचित था। उदयपुर के पश्चिम कई कोस के मैदान में बादशाही सेना ने डेरा डाला। महाराणा युद्ध की तैयारी की बात पहले से ही सुन चुके थे। इसलिये २२

हजार राजपूत और कुछ भीलों को पहाड़ों के चारों ओर रख दिया गया और शत्रुओं पर बरसाने के लिये पत्थर भी एकत्र कर लिये गये ।

हल्दीघाटी का युद्ध

ई० सन् १५७६ के जुलाई मास में हल्दीघाटी के मैदान में दोनों दलवाले भिड़े। महाराणा अपने सामन्तों को साथ ले मुग़ल सेना में घुस पड़े। पहले आक्रमण से ही मुग़ल सेना के छक्के छूट गये; वह छिन्न भिन्न हो गई। महाराणा ने पुकार कर कहा कि राजपूत-कुल-कलंक मानसिंह कहाँ है ? परन्तु उन्हें कोई उत्तर न मिला। महाराणा अपने चेतक घोड़े पर सवार हो कर सलीम के पास पहुँचे। शत्रु को सामने देखते ही महाराणा का उत्साह दूना हो गया। उन्होंने चेतक की लगाम खींची और चेतक ने उन्हें लेकर अपने दोनों पाँव हाथी के सिर पर जमा दिये। महाराणा ने अपना भाला उठाया, जिसे देखकर सलीम घबरा गया और उसने हाथ जोड़ कर क्षमा माँगी *। महाराणा ने अपना घोड़ा वापस लौटा लिया और नीचे उतर कर उन्होंने कहा कि शरणागत शत्रु पर हिन्दू आक्रमण नहीं किया करते। महाराणा ने सलीम के हौदे में बड़े जोर से अपना भाला मारा जिससे हौदा फट गया और महावत मर गया। हाथी बड़े वेग से सलीम को लेकर भागा। इधर महाराणा को नीचे उतरा देख मुग़ल सेना ने उन्हें घेर लिया। राजपूतों ने बड़े उत्साह के साथ महाराणा की रक्षा के लिये प्राण त्याग दिये परन्तु महाराणा की सेना कम होने के कारण उनका बल घटने लगा। महाराणा के शरीर में इस समय तक एक गोली लगने के सिवा तलवार के तीन और भाले के तीन घाव हो चुके थे।

महाराणा ने सब स्थानों को खूब कस कर बाँधा और बड़े उत्साह से लड़ने लगे। उन्हें यह बात मालूम हो चुकी थी कि यह युद्ध बहुत देर तक न चल सकेगा परन्तु क्षत्रिय वीर ने एक समय भी युद्ध-स्थल छोड़कर भागने

* रायबहादुर पण्डित गौरीशंकरजी ओझा के मतानुसार यह घटना सत्य नहीं है।

का प्रयत्न न किया। इसी समय थोड़ी ही दूर पर मेवाड़ की जय और महाराणा प्रताप की जय सुनाई पड़ी, जिसे सुन कर महाराणा और भी ज़ोर से गरजने लगे। झालापति मन्नाजी ने जब यह देखा कि महाराणा के सिर पर मेवाड़ के छत्र चँवर तथा अन्य सारे राज्यचिन्ह हैं, इसीसे मुग़ल अपनी सारी शक्ति उन्हीं के विरुद्ध लगाये हुए हैं तो उन्होंने वहाँ पहुँच कर महाराणा से कहा कि ये सारे चिह्न मुझे दे कर आप चले जाइये। परन्तु महाराणा ने कहा कि प्रताप जीवित रहता हुआ रण-स्थल नहीं छोड़ सकता। मन्नाजी को जब कोई उपाय न सूझा तो उन्होंने महाराणा का मुकुट और छत्र छीनकर अपने सिर पर रखा और चेतक घोड़े की पूँछ काट दी। चेतक महाराणा को लेकर युद्ध-स्थल से निकल गया। मुग़ल, मन्नाजी को महाराणा समझ उनपर ही आक्रमण करने लगे और थोड़ी ही देर बाद वीर झालापति ने अपूर्व स्वामिभक्ति दिखाकर प्राण त्यागे। उनकी इसी स्वामिभक्ति के कारण उनके वंशजों को महाराणा की ओर से बहुत सी जागीर मिली और सरदारों में सर्वोच्च पद मिला। वे राजा के नामसे पुकारे गये और उनके नगाड़े महाराणा के भवन के द्वार तक बज सकते थे।

महाराणा की वीरता और आत्म त्याग को देख कर राजपूत उनके चले जाने पर भी बहुत देर तक उत्साह पूर्वक लड़े परन्तु मुग़ल सेना की संख्या अधिक होने के कारण कोई फल न हुआ। मुग़ल सेना के पास तोप, बन्दूक और गोलाबारी का पूरा सामान था, परन्तु महाराणा की सेना भाला, तलवार और तीर कमान से ही लड़ती थी। संध्या के बाद जब युद्ध समाप्त हुआ तो २२ हज़ार राजपूतों में से केवल ८ हजार वापस लौटे। महाराणा के कई सौ घनिष्ट सम्बन्धी युद्ध-स्थल में काम आये। जब चेतक घोड़ा महाराणा को लेकर भागा तो दो मुसलमान और एक राजपूत ने उनका पीछा किया। पहाड़ों के बीच होता हुआ एक नदी को पारकर चेतक दूसरी तरफ़ चला गया, परन्तु उसका पीछा करनेवाले नदी पार न कर सके। पीछे से बन्दूक का शब्द सुनाई दिया। किसी ने आवाज़ भी दी। महाराणा ने देखा

कि दोनों मुग़ल सैनिक मार डाले गये हैं और उनके भाई शक्तिसिंह आ रहे हैं। शक्तिसिंह एक दिन महाराणा से लड़ कर जन्मभूमि का मोह त्याग अकबर से जा मिले थे। उनकी इच्छा थी कि महाराणा का नाश कर मेवाड़ की गद्दी प्राप्त की जाय और इसी उद्देश्य से अकबर के साथ उन्होंने महाराणा पर चढ़ाई की। जब उन्होंने अकबर की सेना के व्यूह के बीच खड़े होकर महाराणा का अपूर्व त्याग और देश-रक्षा का दृढ़ व्रत और शरीर के घावों से निकलता हुआ रुधिर देखा तो शक्तिसिंह का हृदय पिघल गया और भाई का उद्धार करने के लिये वे उनके पीछे रवाना हो गये। मार्ग में जब और दो मुग़लों को उनका पीछा करते देखा तो बन्दूक से उन्हें मार डाला। महाराणा ने सोचा कि शायद शक्तिसिंह बदला लेने आ रहा है, इसलिये वे तलवार लेकर खड़े हो गये। परन्तु शक्तिसिंह पास पहुँच कर उनके चरणों में गिर पड़े और अपने अपराधों के लिये क्षमा माँगने लगे। इसी समय महाराणा के प्यारे घोड़े ने प्राण त्याग दिये। महाराणा ने उस स्थानपर एक स्मारक बनवाया जो आज भी चेतक का चबूतरा कहलाता है।

शक्तिसिंह ने अपना घोड़ा महाराणा को दिया और सलीम के सन्देह से बचने के लिये वे वहाँ से चल पड़े। शक्तिसिंह की आकृति और उनके विलम्ब को देखकर सलीम को सन्देह हो गया और जब शक्तिसिंह ने यह कहा कि दोनों मुग़ल महाराणा के हाथ से मारे गये, तो सन्देह और भी बढ़ गया। सलीम ने कहा कि यदि तुम सब बातें सच सच कह दोगे तो मैं तुम्हारा कसूर माफ कर दूँगा। शक्तिसिंह रो कर बोले कि मेरे भाई के सिर पर मेवाड़ सरीखे बड़े राज्य का भार है; हजारों आदमियों का सुख दुःख उन्हीं पर निर्भर है। ऐसी विपत्ति के समय में उनकी सहायता न करता तो क्या करता। सलीम ने और कुछ न कहकर अपनी सेना से उन्हें अलग कर दिया। शक्तिसिंह हल्दीघाटी के मैदान से लौटकर जिस समय उदयपुर आ रहे थे तो भीम-सरोवर क़िला, जो अकबर के हाथ में था, जीतने में समर्थ हुए और अपने भाई को उदयपुर में इस किले की भेंट दी।

नकली विजय का आनन्द मनाता हुआ सलीम हल्दीघाटी के पहाड़ी स्थानों को त्याग कर चला गया, क्योंकि वर्षाऋतु के कारण नदियाँ उमड़ पड़ी थीं और पहाड़ी स्थान दुर्गम हो गये थे। महाराणा का पीछा नहीं किया जा सकता था। महाराणा को इस बीच विश्राम लेने का समय मिल गया। परन्तु १५७७ ई० के जनवरी मास में मुग़लसेना ने उदयपुर पर फिर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में भी महाराणा अपनी थोड़ीसी सेना लेकर मुग़लों के साथ बडी वीरता से लड़े। अन्त में वे उदयपुर छोडकर कुंभलमेर चले गये। अकबर के सेनापति शहबाजखाँ ने कुम्भलमेर को भी जा घेरा। बहुत देर तक महारणा इस किले में रह कर मुग़लसेना का सामना करते रहे परन्तु उस मुगल सेनापति के साथ मेवाड़ का जो देशद्रोही राजपूत देवराज था उसने महाराणा से कुंभलमेर भी छुड़ा दिया। देवराज को यह बात मालूम थी कि कुंभलमेर में एक ही कुआं है जिसका पानी सब पीते हैं, इसलिये उसने कुए में कुछ मरे हुए ज़हरीले साँप डलवा दिये थे। पानी खराब हो जाने के कारण महाराणा को अपना आश्रयस्थान त्याग देना पड़ा। महाराणा चौंड़ नामक पहाड़ी क़िले में चले गये। मुग़लों ने यह स्थान भी जा घेरा। भयानक युद्ध के बाद सरदार भानुसिंह और मेवाड़ के लोग इतने उत्तेजित हो चुके थे कि वे जहां कहीं किसी मुसलमान को पाते थे, मार डालते थे।

जिन दिनों महाराणा कुंभलमेर के किले में बन्द थे, मानसिंह ने धर्मेती और गोगुंब नामक किले जीत लिये। मुहब्बतखाँ ने उदयपुर पर अधिकार जमाया। अमीशाह नामक एक दूसरे मुसलमान सेनापति ने अपनी सेना को चौंड़ और अगुणपांडोर के बीच के मैदान में अड़ा दिया जिससे महाराणा का भीलों से सम्बन्ध टूट गया। फ़रीदखाँ चप्पन को घेरकर चौंड़ तक बढ़ा। महाराणा का आश्रयस्थान चारों ओर से घिर गया। यद्यपि मुगलों ने महाराणा के रहने के लिये कोई स्थान न छोड़ा, मुग़ल सेना पहाड़ की प्रत्येक गुफ़ा में उन्हें पकड़ने के लिये ढूँढ़ने लगी तथापि प्रतापसिंह को कोई न पकड़ सका। जब कभी वे मुग़ल सेना को असावधान पाते, उस पर

टूट पड़ते। कुछ ही दिनों में उन्होंने फरीदखाँ को उसकी सारी सेना सहित काट डाला। दूसरी, तीसरी और चौथी वर्षा-ऋतु इसी तरह निकल गई। वर्षा-ऋतु में महाराणा को विश्राम का कुछ समय मिल जाता था, बाकी समय में वे मुगलों का सामना ही करते रहते थे।

कई वर्ष बीतने पर भी महाराणा की विपत्ति कम न हुई। उन्हें किसी तरह भी न छोड़ा गया। महाराणा के स्थान एक एक कर मुग़लों के हाथ जाने लगे। अन्त में उन्हें अपने परिवार की रक्षा करना भी कठिन दिखाई दिया। एक समय वे सपरिवार शत्रुओं के हाथ पड़ ही चुके थे कि गिहलोत कुल के भीलों ने उनका उद्धार किया। महाराणा भीलों के साथ दूसरे मार्ग से चले गये। उनके परिवार को टोकरों में रख कर भीलों ने खदानों में छिपा दिया। पचासों बार भीलों को मुगलों के हाथ से रक्षा करने के लिये महाराणी, कुमार अमरसिंह और राजकुमारी को वृक्षों में लटकना पड़ा। आज तक भी उन स्थानों में बहुत से कड़े और बड़ी २ कीलें गड़ी हुई दिखाई देती हैं। जिस महाराणी और राजकुमारी ने कभी महलों के बाहर पैर तक न रखा था वे ही पवित्र स्वाधीनता और कुल गौरव के लिये सन्यासी महाराणा के साथ भूखे प्यासे काँटों के जंगलों और नोकीले पत्थरों के बीच घूमने लगीं। महाराणा की इस धीरता, त्याग और सहनशीलता का समाचार जब अकबर ने सुना तो उसने अपना एक विश्वासी गुप्तचर भेजकर महाराणा की वास्तविक अवस्था जाननी चाही। उसने लौटकर जब अकबर के दरबार में कहा—मैंने अपनी आँखों से देखा है कि प्रतापसिंह अब भी पहाड़ों और जंगलों में पेड़ों के नीचे बैठ कर अपने सरदारों को दौना बाँटते हैं। उसी समय अकबर के चरणों में आत्म-समर्पण करने वाले राजपूत भी महाराणा के गुणों का वर्णन करने लगे। खान खाना ने बड़े महत्व-पूर्ण शब्दों में महाराणा की प्रशंसा की।

एक दिन महाराणा ने कई दिन भूखे रहने के बाद घास के बीज एकत्र कर कुछ रोटियाँ बनाई, आधी २ रोटी कुमार और कुमारी को देकर बाकी आधी २ रोटी दूसरे दिन के लिये उनके खाने को रख दी। महाराणा भी

कुछ रोटी खाकर एक वृक्ष के नीचे लेटे हुए थे कि एक बन-बिलाव कुमारी के हाथ से घास की रोटी छीनकर भागा। कुमारी बड़े जोर से रोने लगी। महाराणा ने देखा कि बालिका रोटी के लिये रो रही है महाराणी की आँखों में भी आँसू निकल रहे हैं तो, उनका हृदय विदीर्ण हो गया। मेवाड़ाधिपति की कन्या घास की रोटी के लिये रो रही है यह बात महाराणा के लिये असह्य हो गई। जिन महाराणा का हृदय रण-स्थल में सहस्रों वीरों की शैया देखकर विह्वल न हुआ था, वह कन्या के आर्त्तनाद से शोकातुर हो गया।

महाराणा अधीर होकर बोले कि इस प्रकार की पीड़ा सहकर राज-मर्यादा की रक्षा करना असंभव मालूम होता है। थोड़ी देर बाद उन्होंने अकबर के पास संधि का प्रस्ताव भेज दिया। महाराणा का संधि प्रस्ताव जब अकबर के पास पहुँचा तो उसके हृदय में 'हिन्दूपति' कहलाने की इच्छा फिर जाग्रत हो गई। सारे शहर में रोशनी कराई गई। घर घर गाना बजाना होने लगा और दिल्ली में कई दिन तक बड़ी धूम रही। सलीम और बीकानेर राजा के छोटे भाई पृथ्वीराज को महाराणा का पत्र दिखाया गया। इस पत्र को अकबर ने उपर्युक्त दोनों व्यक्तियों को कई कारणों से दिखाया था। सलीम अकबर को सदा ताना मारा करता था कि महाराणा प्रताप के रहते हुए आप 'हिन्दूपति' की उपाधि नहीं पा सकते। सलीम भगवानदास की कन्या का पुत्र था। सलीम की माता जब कभी अपने पितृ-गृह जाया करती थीं तो वे अपनी बहिन से जो उदयपुर ब्याही हुई थीं मिला करती थीं। उदयपुर ब्याही हुई बहिन अकबर से ब्याही जानेवाली अपनी बहिन के साथ भोजन नहीं करती थीं, यहाँ तक कि उनके पीने के लिये उदयपुर से पानी जाया करता था। अकबर की स्त्री को यह बात बड़ी बुरी लगा करती थी और वह सदा अकबर से कहा करती थी कि महाराणा के रहते हुए आप 'हिन्दूपति' नहीं कहे जा सकते। सलीम भी माता के कथनानुसार ताना मारा करता था। सलीम ने अकबर से यह भी कह दिया कि मैं रण-क्षेत्र में महाराणा से प्राण-भिक्षा माँगकर लौटा हूँ इसलिये उनसे लड़ने के लिये अब न जाऊँगा। वह वास्तव में कभी महाराणा के

विरुद्ध लड़ने को गया भी नहीं। बीकानेर-नरेश के भाई पृथ्वीराज अकबर के यहाँ क़ैद थे। वे इस बात पर विश्वास करने के लिये तैयार न हुए कि महाराणा ने सन्धि-पत्र भेजा है।

पृथ्वीराज का विवाह महाराणा प्रताप के छोटे भाई सक्ताजी की लड़की से हुआ था। जब बीकानेर-नरेश ने अपनी लड़की अकबर को दी तो पृथ्वीराज ने उनका तीव्र प्रतिवाद किया और वे लड़ने के लिये तैयार हो गये। इस पर वे क़ैद कर लिये गये। उनकी स्त्री जितनी सुन्दरी थीं उतनी ही वीर भी थीं। उन्हें अपने पितृ-गृह का बड़ा भारी अभिमान था। अकबर दिल्ली में हर साल एक मेला लगवाया करता था जिसका नाम नौरोज़ या ख़ुशरोज़ था। इस मेले में एक बहुत बड़ा बाज़ार महलों के पीछे लगाया जाता था। राजपूतों की स्त्रियाँ और लड़कियाँ इस बाज़ार में चीज़ें बेचने जाया करती थीं। अकबर उनके बीच रूपलावण्य का आनन्द लूटने के लिये घूमा करता था। वहाँ किसी पुरुष को जाने की आज्ञा न थी। पृथ्वीराज की स्त्री पर उसकी आँख बहुत दिनों से लगी हुई थी; क्योंकि एक तो वे अत्यन्त सुन्दरी थीं और दूसरे उदयपुर के शिसोदिया वंश की थीं। जब वह एक दिन नौरोज़ के मेले में आई हुई थीं तो उनके लौटने पर अकबर ने और सब मार्ग तो बन्द करा दिये केवल अपने महल का मार्ग खुला रखा। उस खुले हुए द्वार से जब वह जाने लगीं तो राह में ही दुराचारी अकबर ने उन्हें घेर लिया। कामोन्मत्त होकर उसने राजपूत-बाला को अनेक प्रकार के प्रलोभन दिये। उसकी यह घृणित चेष्टा देख वीर महिला ने तत्काल ही अपनी बगल से छुरी निकाली और बोली कि यदि मुँह से एक भी शब्द निकाला तो यह छुरी तेरे कलेजे के पार हो जायगी। अकबर यह देखकर स्तम्भित हो गया। जिस पृथ्वीराज की रानी ने अकबर को ऐसा बदला दिया, उन्हीं के भाई बीकानेर के राजा रायसिंह की स्त्री अकबर के दिये हुए लालच में फँस गई और उन्होंने अपना अमूल्य सतीत्व अकबर के हाथ बेच डाला। पृथ्वीराज ने अपने भाई से इस घटना का वृत्तान्त बड़े मर्मभेदी शब्दों में कहा था।

जब पृथ्वीराज ने महाराणा प्रताप के पत्र को देखा तो उन्होंने अकबर से कहा कि मैं महाराणा को अच्छी तरह जानता हूँ और उनके हस्ताक्षर भी पहचानता हूँ। मैं दावे के साथ यह बात कह सकता हूँ कि यह पत्र उनका लिखा नहीं है। यदि आप अपना राजमुकुट भी उनके सिर पर रख दें तो भी वे आपके सामने सर नहीं झुका सकते। पृथ्वीराज ने राणा को एक पत्र लिखा और एक दूत उनके पास भेजा। पत्र का कुछ अंश यह है:—

अकबर समद अथाह, सूरापण भरियो सजल।
मेवाड़ो तिणमाहिं, पोयण फूल प्रताप सी ॥ १ ॥

अकबर एकण बार, दागल की सारी दुनी।
अण दागल असवार, रहियो राण प्रताप सी ॥ २ ॥

अकबर घोर अंधार, ऊँघाणा हिन्दू अवर।
जागे जगदातार, पोहरे राण प्रताप सी ॥ ३ ॥

हिन्दूपति परताप, पति राखो हिन्दु आणरी।
सहे विपत्ति सन्ताप, सत्य शपथ कर आपणी ॥ ४ ॥

चौथो चीतोडाह, बाँटो बाजन्ती तणू।
दीसै मेवाडाह, तो सिर राण प्रताप सी ॥ ५ ॥

चम्पो चीतोडाह, पौरसतणो प्रताप सी।
सोरभ अकबर शाह, अडियल आ भड़िया नहीं ॥ ६ ॥

पातलखाग प्रमाण, सांची सांगाहर तणी।
रही सदा लगराण, अकबर सूं ऊभी अणी ॥ ७ ॥

दोहा—माई जण अहड़ा जणा, जहड़ा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओझके, जाण सिराणै सांप ॥ ८ ॥

सोरठा—राओ अकबरियाह, तेज तिहारो तुरकड़ा।
नम नम नीसरियाह, राण बिना सह रावजी ॥ ९ ॥

सह गावड़िये साथ, येकण वाड़ै वाड़ियाँ।
राणा न मानी नाथ, तोड़े राण प्रताप सी ॥ १० ॥

सोय सो संसार, असुरप ढोले ऊपरे।
जागे जगदातार, पोहरे राण प्रताप सी ॥ ११ ॥

दोहा—धर बांकी दिन पांघरा, मरदन मूके माण।
घणे नरिन्दां घेरिया, रहे गिरन्दा राण ॥ १२ ॥

कविता का भावार्थ यह है :—

१—अकबर अथाह समुद्र है जिसमें वीररूपी जल भरा हुआ है। इस समुद्र में मेवाड़ कमल के फूल के समान जल से लिप्त नहीं।

२—अकबर ने एक ही बार सारी दुनियाँ कलंकित कर दिया केवल राणा प्रताप ही अकलंकित बचे।

३—अकबर के घोर अंधकार में और सब हिन्दू सो गये। ईश्वर की कृपा होने से वे जागेंगे। पहरे पर राणा प्रताप हैं।

४—हिन्दूपति प्रताप हिन्दुओं की लाज रखने वाले हैं। जिन्होंने अपनी शपथ सत्य बनाने के लिये विपत्ति और सन्ताप सहा।

५—चित्तौड़पति, मेवाड़-पतन के लिये चार बार विजय के लड्डू बाँटे जा चुके। अब आपका सिर ही दिखाई देता है।

६—चित्तौड़ाधीश, आप पौरुष के चम्पा-फूल हैं। अकबर आपकी सुगंध लेने के लिये अड़ा हुआ है, परन्तु पाता नहीं है।

७—राणा साँगा की सन्तान और अकबर के बीच आकाश पाताल का अन्तर है। आप तक अकबर के साथ सदा खड़ी नोक रही।

८—माताएँ राणा प्रताप के समान ही पुत्र जनती रहें। जिसके कारण अकबर अपने सिर के पास साँप समझकर सदा ओढ़कर सोता है।

९—अकबर के तेज के सामने राणा को छोड़कर और सब राव सर झुकाकर निकल गये।

१०—जितने भी बैल थे सबने नाथ डलवा ली, परन्तु एक राणा प्रताप ने नाथ नहीं डलवाई।

११—ऐश आराम के पलंग पर सारा संसार सोगया। ईश्वर की

इच्छा होने से वह जागेगा। पहरे पर राणा प्रताप हैं।

१२—मर्द अपना मान नहीं त्यागा करते, चाहे वे कितने ही कष्ट में क्यों न हों। यद्यपि अनेक मनुष्यों ने घेरा तथापि राणा पहाड़ों के बीच स्वतंत्र ही रहे।

पृथ्वीराज के इस पत्रको पढ़कर वीर शिरोमणि महाराणा प्रताप बड़े उत्साहित हुए। उन्होंने पत्र ले आनेवाले दूतसे कह दिया कि वह मेरा पत्र न था। मैं मुग़लों के सामने सिर झुकाना अपमान ही नहीं, घोर पाप समझता हूँ। दूतको रवाना करने के बाद महाराणा मुगलसेना पर टूट पड़े और सारी सेना काट डाली। दिल्ली खबर पहुँचते ही वहाँ से बहुतसी सेना भेज दी गई और फिर महाराणा का पीछा किया गया। महाराणा फिर छिप छिप कर आक्रमण करने लगे। जिन जंगलों में महाराणा रहते थे उनके वृक्षों के फल-फूल ख़तम हो गये और पानी की कमी से घास भी पैदा न हुई। जिन चीजों को खाकर वीर अपने प्राण की रक्षा किये हुए थे, उनका भी अभाव हो गया। इस विपत्ति के समय राणाजी ने अपने सरदारों के साथ बैठकर निश्चय किया कि अब इस स्थान में गुज़ारा नहीं हो सकता। इसलिये यहाँ से चलकर सिन्धु नदी के तटपर रहना चाहिये। यात्रा की तैयारी हुई, जीवन-मरण का साथ देनेवाले सरदार अपने परिवार सहित उनके पास पहुँच गये। जब महाराणा अपनी प्यारी जन्भूमि को त्यागकर पहाड़ों के नीचे उतरे तो उनकी आँखों से आँसू निकल पड़े जिसे देखकर मेवाड़-राज्य के प्रधान कोषाध्यक्ष भामाशाह नामक ओसवाल सेठ ने कहा कि महाराज, मुझे छोड़कर कहाँ जॉयगे? ठहरिये, मैं भी आपके साथ चलने के लिये आ रहा हूँ। अपनी स्त्री से बिदा माँग आऊँ। भामाशाह अपने घर आये और अपने स्त्री पुत्र को बुलाकर कहा कि जिस राज्य की बदौलत हम लोगों ने लाखों करोड़ों की सम्पत्ति पाई है, उसी देश के प्राण महाराणा प्रताप आज धन के बिना मेवाड़ की इस दीनावस्था में देशको मुसलमानों के हाथ में छोड़कर जाना चाहते हैं। हमारे धन का सदुपयोग इस समय से बढ़कर नहीं हो सकता। यदि देश

अपने पास बना रहेगा तो धन-सम्पत्ति फिर हो जायगी। यह कहकर भामाशाह ने अपनी स्त्री और पुत्र को एक एक वस्त्र पहिनाया। महाराणा के पास आकर बाकी की सारी सम्पत्ति उनके चरणों मे डाल दी। इतिहासकारों ने लिखा है कि यह सम्पत्ति दस बारह वर्ष तक २०,२५ हजार सैनिकों के भरण-पोषण के लिये पर्याप्त थी। इस विपुल धन को पाकर महाराणा ने स्वाधीनता की लीला-भूमि मेवाड़ को त्यागने का विचार छोड़ दिया। सरदारगण और महाराणाजी के हृदय में उत्साह की कमी तो थी ही नहीं, केवल कुछ अवलम्बन की आवश्यकता थी जिसे वैश्य शिरोमणि राजभक्त भामाशाह ने पूरा किया। महाराणा ने नयी सेना एकत्र की और मुग़ल सेना के अधिपति शहबाज़खाँ पर टूट पड़े। देवीर में भयानक युद्ध हुआ, जिसमें शहबाज़खाँ और उसकी सारी सेना काम आई।

महाराणा ने इसके बाद अमैत नामक दुर्गपर धावा किया, जहाँ पर बहुत सी मुसलमान सेना थी। वह किला भी उन्हें मिल गया। मुग़ल सेना काट डाली गई। थोडे से बचे हुए सैनिक कुंभलमेर चले गये। विजयोन्मत्त राजपूत वीरों ने शीघ्रही कुंभलमेर पर चढ़ाई कर दी और मुग़ल सेनापति अब्दुल्ला तथा समस्त सेना को मार डाला। यद्यपि मुग़लों की तुलना में राजपूत सेना कुछ भी न थी तो भी स्वदेशोद्धार की दृढ़ प्रतिज्ञा मुग़लों की सेना की संख्या से कहीं अधिक शक्तिवान थी। थोड़े ही दिनों बाद चित्तौड़, अजमेर और माण्डलगढ़ को छोड़कर सारा मेवाड़ मुसलमानों के हाथ से छीन लिया गया। अकबर बहुत से घरेलू झगड़ों में पड़ गया तथा वह महाराणा की वीरता पर मुग्ध भी हो गया। इसलिये उदयपुर पर कोई चढ़ाई न की गई। चित्तौड़ को शत्रुओं के पास देख महाराणा सदा दुःखी रहा करते थे। जब वे किले के उच्च शिखर से चित्तौड़ के जय स्तम्भों को देखते तभी कहा करते थे कि जब तक चित्तौड़ का उद्धार न होगा तब तक किसी भी प्रकार की वीरता का गौरव करना निरर्थक है।

कष्ट झेलने के कारण प्रौढ़ावस्था में ही महाराणा वृद्ध दिखाई देने

लगे थे। चित्तौड़ के उद्धार की चिन्ता से उनके पुराने घाव फिर हरे होगये। अन्तिम बार उन्होंने अम्बर-पति मानसिंह को देश-द्रोह से बदला देना चाहा इसलिये अम्बर पर चढ़ाई कर दी। यह नहीं कहा जा सकता कि मानसिंह स्वयं लड़े या नहीं, परन्तु कछवाहों ने बड़ी सेना सजाकर महाराणा से युद्ध किया। महाराणा इस युद्ध में विजय प्राप्त कर मालपुर आदि कई गांव लूट कर वापस लौटे। लूट का बहुतसा धन सरदार और सैनिकों को बाँटा गया। पिछोला सरोवर के किनारे महाराणा ने अपने रहने के लिये कई झोंपड़ियां बनाईं। एक दिन जब अमरसिंह इन झोंपड़ियों में प्रवेश करने लगे तो किसी बाँस से अटक कर उनकी पगड़ी गिर गई। उन्होंने फौरन तलवार से उस बाँस को काट डाला और झोंपड़ी बनाने वालों को धमकाया कि इतनी नीची झोंपड़ी क्यों बनाई गई। महाराणा यह देखकर बड़े दुःखी हुए। उनका स्वास्थ्य उस समय अच्छा न था इसलिये वे कुछ न बोले।

महाराणा इस बीमारी से अच्छे होकर फिर न उठे। काल ने हिन्दू-सूर्य को ग्रास लिया। महाराणा के अंतिम समय में जब सारे सरदार उनकी शैया के पास बैठे हुए थे तो महाराणाजी ने बड़ी लम्बी आह निकाली। सारे सरदार रोने लगे। सलुम्बर के अधिपति ने पूँछा महाराज, किस दारुण चिन्ता ने आपकी पवित्र आत्मा को दुःखी कर रखा है; आपकी शान्ति क्यों भङ्ग हो रही है? महाराणा ने उत्तर दिया "सरदारजी, अब तक भी प्राण नहीं निकलते। केवल आपकी एक शान्तिमय वाणी की प्रतीक्षा में हूँ। आप लोग शपथ खाकर कहें कि जीवित रहते मातृभूमि की स्वाधीनता किसी तरह भी दूसरों के हाथ अर्पण न करेंगे। अमरसिंह पर मुझे विश्वास नहीं। वह मेवाड़ के गौरव की रक्षा न कर सकेगा। जिस स्वाधीनता की रक्षा मैंने अपना और अपने सहस्रों सरदारों का रक्त बहाकर की है, वह ऐश आराम के बदले बेच दी जायगी, इन कुटियों के बदले आराम के महल बनेंगे। अमरसिंह विलासी है उससे इस कठोर व्रत का पालन न होगा।" महाराणाजी की बात सुनकर सब सरदारों ने मिलकर शपथ खाई

कि हम मेवाड़ के गौरव और सम्मान की रक्षा करने में कोई बात उठा न रखेंगे। अपने सरदारों के इन धैर्य्य-युक्त वचनों से महाराणा प्रतापसिंह जी को बड़ी तसल्ली मिली और शान्ति के साथ उन्होंने देह-त्याग किया।

महाराणा प्रतापसिंह जी के बाद उनके पुत्र महाराणा अमरसिंह जी राज्यसिंहासन पर विराजे। आपने सम्राट् जहाँगीर की फौजों के साथ कई युद्ध किये और कई वक्त उसे दाँतों चने चबवाये। जहाँगीर ने महाराणा को वश में लाने के कई प्रयत्न किये, पर वह सफलीभूत न हो सका। आखिर खुद जहाँगीर अजमेर तक आया और उसने शाहजादा खुर्रम को महाराणा के साथ युद्ध करने को भेजा। इसी समय सम्राट् जहाँगीर और महाराणा के बीच सन्धि हुई और उसमें यह तय हुआ कि महाराणा मुगल सम्राट् के दरबार में जाने के लिये कभी बाध्य न होंगे। हाँ, उनके कुँवर सम्राट् के पास पहुँचेंगे, जहाँ सम्राट् को उनका सविशेष सम्मान करना होगा। यहाँ यह कह देना भी आवश्यक है कि मुगल दरबार में उदयपुर के राजकुमार का आसन अन्य सब राजाओं से अधिक महत्व का था।

महाराणा अमरसिंह जी के स्वर्गवास होने पर ईस्वी सन् १६२७ में महाराणा कर्णसिंह राज्यासीन हुए। आपने आठ वर्ष तक राज्य किया। आपके पश्चात् महाराणा जगतसिंह जी (१६२८--१६५२) राज्य-सिंहासन पर विराजे। आपके राज्य-काल में प्रजा ने बड़ी ही सुख-शान्ति को भोगा। आपके बाद महाराणा राजसिंह जी (प्रथम) ने मेवाड़ के राज्यसूत्र को सँभाला। महाराणा राजसिंह जी बड़े वीर, बुद्धिमान् , प्रतिभाशाली और राजनीतिज्ञ नरेश थे। मेवाड़ के महापराक्रमी नरेशों में आपकी गिनती की जा सकती है।

जिस समय महाराजा राजसिंह जी मेवाड़ के राज्य-सिंहासन पर अधिष्ठित थे उसी समय दुर्दान्त मुगल सम्राट् औरङ्गजेब सिंहासनारूढ हुआ था। उसने हिन्दुओं पर मनमाने अत्याचार करने शुरू किये। उसने हिन्दुओं पर केवल हिन्दू होने के अपराध पर जजिया टैक्स लगाया। उसने हिन्दुओं के सैकड़ों मन्दिर तुड़वाये और कई हिन्दुओं को निर्दयतापूर्वक कत्ल करवा

दिया। हिन्दू-कुल-सूर्य्य महाराणा राजसिंह जी से यह बात न देखी गई। उन्होंने सम्राट् औरङ्गजेब को निम्नलिखित आशय का एक कड़ा पत्र लिखा—

"आप दण्ड-स्वरूप हिन्दुओं से जो खिराज वसूल करते हैं वह अन्यायपूर्ण है। यह राजनीति के भी खिलाफ़ है। इससे देश दरिद्र हो जायगा। यह हिन्दुस्थान के नियमों पर भयङ्कर आघात है। मुझे अफसोस है कि आपके मन्त्रियों ने आपको इस अन्यायमूलक कार्य्य के लिये नहीं रोका।"

ज्योंही यह पत्र सम्राट् औरङ्गजेब के पास पहुँचा कि वह आग-बबूला हो गया। गुस्से की चिनगारियाँ उसकी आँखों से निकलने लगीं। उसने तुरन्त अपनी शाही सेना को मेवाड़ पर चढ़ाई करने की आज्ञा दी। शाही सेना मेवाड़ की सीमा में पहुँच गई। इस समय युद्ध-कुशल और राज-नीतिज्ञ महाराणा एक चाल चले। उन्होंने शाही सेना को मेवाड़ में आगे बढ़ने दिया। शाही सेना बढ़ते बढ़ते उदयपुर से कुछ दूरी पर ऐसे स्थान पर पहुँच गई जो स्थान पर्वतों से प्रायः घिरा हुआ है। यहाँ आकर महाराणा की सेना ने उसे घेर कर उसका मार्ग चारों ओर से बन्द कर दिया। कहने की आवश्यकता नहीं कि शाही सेना की बड़ी दुर्दशा हुई। औरङ्गजेब को महाराणा का लोहा मानना पड़ा और इससे मेवाड़ का गौरवसूर्य्य फिर तेजी से चमकने लगा।

महाराणा राजसिंह जी के बाद महाराणा जयसिंह जी राज्यासन पर आरूढ़ हुए। आपने अपने नाम पर मेवाड़ का सुप्रख्यात सरोवर जयसमन्द बनवाया। अपनी आयु के पिछले दिनों में आप अपने राज्योचित कर्तव्य को भूल कर विषयों ही में रत रहते थे। आपके समय में कोई ऐतिहासिक महत्व-पूर्ण घटना नहीं हुई। आपका देहान्त संवत् १७५६ में हुआ। आपके बाद आपके ज्येष्ठ पुत्र कुँवर अमरसिंह जी, मेवाड़ के राज्यासन पर बिराजे आपने डूँगरपुर, प्रतापगढ़ और बाँसवाड़ा आदि राज्यों से लड़ाई छेड़ी। इसमें आपको कोई विशेष लाभ नहीं हुआ।

संवत् १७६५ में आम्बेर के महाराज सवाई जयसिंह जी और

वाड़ के महाराजा अजीतसिंह, जिनका राज्य तत्कालीन मुगल सम्राट् बहादुर-शाह ने जप्त कर रखा था। अमरसिंहजी से सहायता लेने के लिये महाराणा उदयपुर आये थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि अमरसिंहजी ने इन दोनों नृपतियों का बड़ा सत्कार किया। तीनों आपस में मिल गये। महाराणा अमर-सिंहजी ने अपनी पुत्री का आम्बेर के महाराजा के साथ, और बहन का जोधपुर के महाराजा के साथ विवाह कर दिया। इसके उपरान्त तीनों ने एका करके आम्बेर और जोधपुर ले लिया। संवत् १७६८ में महाराणा अमरसिंह जी का देहान्त हो गया।

महाराणा अमरसिंहजी के बाद आपके पुत्र संग्रामसिंहजी द्वितीय ने राज्यसिंहासन को सुशोभित किया। आप पराक्रमी नरेश थे। आपने अपने पूर्वजों द्वारा खोया हुआ राज्य का बहुतसा हिस्सा वापस प्राप्त किया। ये बड़े बुद्धिमान, न्यायी, आग्रही और कर वसूल करने में बड़े प्रवीण थे। सौभाग्य से इन्हें बिहारीलाल पंचोली नाम का एक बहुत ही होशियार दीवान मिल गया था। मुगलों के अन्तिम दिन आगये थे, इससे इनके राज्य में बहुत शान्ति रही। ई० स० १७३४ में आपका देहान्त हो गया।

महाराणा संग्रामसिंहजी के बाद उनके पुत्र जगतसिंहजी मेवाड़ के राज्यसिंहासन पर बैठे। आपने राणा अमर के द्वारा की गई राजपूत राजाओं की संरक्षण सन्धि का पुनरुद्धार किया। पर इसमें आपको सफलता प्राप्त नहीं हुई। राजपूताने के राजाओं में परस्पर फूट बढ़ने लगी और इसका परिणाम यह हुआ कि राजपूताने पर मराठों के आक्रमण होने शुरू हुए। ई० स० १७३५ में मराठों ने मेवाड़ को लूटना शुरू किया। इस समय राणा जी ने मराठों को एक लाख साठ हजार रुपये देकर उनसे सन्धि कर ली।

ई० स० १७४३ में जयपुर के राजा जयसिंहजी का स्वर्गवास हो जाने पर उनकी जगह उनके पुत्र ईश्वरीसिंहजी राज्यगद्दी पर बैठें। इस पर जयसिंहजी के दूसरे पुत्र माधोसिंहजी ने राज्यगद्दी के लिये दावा किया। माधोसिंहजी जयसिंहजी की उदयपुरवाली रानी के पुत्र थे।

जब जयसिंहजी ने उदयपुर की राज्यकन्या से विवाह किया था तब यह निश्चित हुआ था कि इस महारानी की कोख से जन्मा हुआ पुत्र ही राज्यगद्दी का मालिक बने। बस इसी बात पर माधोसिंहजी ने दावा किया। झगड़ा उपस्थित हो गया। सिन्धिया ईश्वरीसिंहजी के पक्ष में थे। इसलिये उदय-पुर के महाराणा ने अपने भानजे माधोसिंह को गद्दी पर बैठाने के लिये होल्कर को निमंत्रित किया। अस्सी लाख रुपये लेने पर होल्कर ने इन्हे मदद देना स्वीकार किया। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस समय होल्कर के प्रताप का देश भर में आतङ्क था। बड़ी बड़ी शक्तियाँ इनके नाम से काँपती थीं। होल्कर के आक्रमण की बात सुन कर ईश्वरीसिंह जहर खाकर मर गये। माधोसिंह गद्दी पर बैठा दिये गए। इसी समय माधोसिंहजी की ओर से महाराज होल्कर को रामपुर और भानपुर का परगना मिला। इसी समय से राजपुताने पर मराठों की बड़ी छाप बैठ गई। ई० स० १७५२ में महाराणा जगतसिंहजी का देहावसान हो गया। आपके बाद राणा राजसिंहजी (द्वितीय) राज्यासीन हुए। इनके समय में भी मेवाड़ पर मराठों के खूब हमले होते रहे। देश तबाह हो गया। खुद राणाजी को अपना विवाह करने के लिये एक ब्राह्मण से कर्ज लेना पड़ा। ई० स० १७६२ में राणा राजसिंहजी का स्वर्गवास हो गया। आपके बाद आपके काका राणा अरसीजी सिंहासनारूढ़ हुए। आप बड़े तेज मिजाज के थे। आप अपने बड़े से बड़े सरदार को अपमानित करने में नहीं चूकते थे। इनके समय में मेवाड़ का राज्य पूर्ण अवनति पर पहुँच चुका था। सलूम्बर, बिजोलिया, आमेट और बदनोर को छोड़ कर प्रायः सारे सरदार इनके खिलाफ हो गये। इन्होंने महाराणा के खिलाफ अपनी सहायता के लिये माधवराव सिन्धिया को निमंत्रित किया। अरसीजी की सेना ने सिन्धिया की सुशिक्षित सेना को परास्त किया। दूसरी बार फिर सिन्धिया ने चढ़ाई की। इस वक्त उन्हें सफलता मिली। अरसीजी ने चौंसठ लाख रुपया देने का इकरार कर सिंधिया से पिंड छुड़ाया। खजाने में रुपया नहीं था। इससे महाराणा ने अपनी रानी

का जेवर बेच कर तेंतीस लाख रुपया चुकाया और शेष के लिये जावद, जीरण, नीमल आदि परगने सिंधिया के पास गिरवी रख दिए। इसी समय महाराजा होल्कर ने भी निंबाहेड़ा का परगना ले लिया। इस प्रकार अरसीजी के राज्यकाल में मेवाड़ का बहुतसा उपजाऊ मुल्क हाथ से निकल गया। ई० स० १७८२ में अरसीजी के एक शत्रु ने भाला मार कर उनका प्राणान्त कर दिया।

राणा अरसीजी के बाद उनके भाई राणा भीमसिंहजी राज्यासीन हुए। इनके समय में महाराजा होल्कर ने महाराजा सिंधिया की फौजों को इन्दौर के निकट हराया था। इस समय से मेवाड़ से चौथ वसूल करने का अधिकार होल्कर को प्राप्त हो गया। महाराणा भीमसिंहजी के कृष्णाकुमारी नाम की एक अत्यन्त लावण्यवती कन्या थी। इस राजकुमारी के विवाह के लिये मारवाड़ और जयपुर के राजाओं में झगड़ा उत्पन्न हुआ। महाराणा की स्थिति अत्यन्त संकटमय हो गई। अन्त में ई० स० १८०८ में राणाजी ने उक्त राजकुमारी को अपनी स्थिति समझाकर जहर पीने के लिये कहा। अपने पूज्य पिता को विपत्ति से बचाने के लिये वह बालिका उसी समय विष-पान कर गई। देखते देखते उसके प्राणपखेरू उड़ गये। भारतवर्ष की दिव्य महिलाओं में इस वीर कन्या का आसन बहुत ऊँचा है।

ई० स० १८११ में सिन्धिया ने मेवाड़ पर चढ़ाई कर उसे लूट लिया और वहाँ के कुछ सरदारों और जागीरदारों को पकड़ कर उन्हें अजमेर में कैद कर लिया। इस समय राणाजी की अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। आर्थिक दृष्टि से वे इतने तंग हो गये थे कि उन्हें अपने खर्चे के लिये १०००) मासिक कोटा के तत्कालीन रिजेन्ट जालिमसिंहजी के पास से लेना पड़ता था। राणाजी के इस कार्य से उनके सरदारों के हृदय में उनके प्रति वह मान नहीं रहा जो पहले था और बड़े बड़े सरदार तो इस समय बिलकुल स्वतन्त्र हो बैठे थे।

ई० स० १८१७ तक अर्थात् पिण्डारियों के झगड़े के अन्त तक

मेवाड़ में इसी प्रकार की अंधाधुंधी चलती रही। आखिर में महाराणा ने ब्रिटिश सरकार के साथ संधि कर ली।

अंग्रेज सरकार के साथ सन्धि हो जाने पर मेवाड़ में चलती हुई सिंधिया तथा दूसरे लोगों की लूट-खसोट का अन्त हुआ। राज्य की आबादी बहुत कम हो गई थी। इसलिए अंग्रेज सरकार ने सब राज्य-शासन अपने हाथों में लेकर कर्नल टॉड साहब को वहाँ के एजेंट के पद पर नियुक्त किया। आपने बहुत से सुधार करके देश को फिर से समुन्नत और समृद्धिशाली बनाया। इसके बाद ब्रिटिश सरकार ने राज्य की बागडोर एक देशी सरदार के हाथ में सौंप दी। परन्तु यह प्रयोग संतोषजनक सिद्ध नहीं हुआ। कहा जाता है कि इन देशी सरदार की दो ही साल की अमलदारी में खजाना खाली हो गया। इस पर ब्रिटिश सरकार ने फिर से अपने एजन्ट द्वारा राज्य-कारभार चलाना शुरू किया। ई० स० १८२६ में फिर से राज-व्यवस्था का काम एक देशी सरदार के हाथ में सौंप दिया गया परन्तु इस बार भी दुर्भाग्य से इस कार्य में सफलता नहीं मिली। थोड़े ही दिनों में सब स्थानों में व्यवस्था हो गई और देश की वही हालत हो गई जो कि ई० स० १८१८ के पहले थी।

ई० स० १८२८ में राणा भीमसिंहजी का स्वर्गवास हो गया। आपके बाद आपके पुत्र जवानसिंहजी राज्यासन पर बैठे। दुर्भाग्य से इन नवीन राणाजी में किसी प्रकार के सद्गुण नहीं थे, इसलिये इनके समय में राज्य में खूब अंधाधुंधी मची। राज्य पर २ लाख रुपये का कर्जा हो गया। ईसवी सन् १८३८ में इन महाराणा की शरीरान्त हो गया।

आपके कोई सन्तान नहीं थी। इसलिये आपके दत्तक पुत्र राणा सरदारसिंहजी तख्तनशीन हुए। आप बड़े फैय्याज और मिजाजी थे। इसलिये आपके सरदार लोग आपसे बहुत नाखुश रहते थे। सिर्फ ४ साल तक राज्य करके १८४२ में आप परलोकवासी हो गये। आपके बाद आपके छोटे भाई स्वरूपसिंहजी राज्यासन पर बैठे। आपके समय में अंग्रेज सरकार ने आपसे ली जानेवाली चौथ के रुपये घटाकर सिर्फ २ लाख रुपये कर दिये। आपने

९ वर्ष तक राज्य किया। आपका बहुत सा समय अपने मांडलिक सरदारों के झगड़ों में व्यतीत हुआ। निदान अंग्रेज सरकार ने बीच में पड़कर इन झगड़ों का अन्त कर दिया। इसी साल अर्थात् ई० स० १८६१ में आपका देहांत हो गया। आपके बाद आपके भतीजे शंभूसिंहजी को गद्दी मिली। राज-गद्दी पर बैठते समय शंभूसिंहजी बालक थे। इसलिये अंग्रेज सरकार ने एक रिजेन्सी कौंसिल स्थापित करके उसके द्वारा मेवाड़ का शासन चलाना शुरू किया।

जब महाराजा शंभूसिंहजी योग्य उम्र के हो गये तो ई० स० १८६५ के नवम्बर मास की १७ वीं तारीख के दिन सब राज्यकारभार उन्होंने अपने हाथों में ले लिया। यद्यदि आप में शक्ति थी तथापि आप अपने राज्यकार्य में सफलता प्राप्त नहीं कर सके। हाँ, आप ब्रिटिश सरकार और अपनी प्रजा के प्रीतिभाजन जरूर हो गये थे। ई० स० १८७४ के अक्टूबर मास की १७ वीं तारीख के दिन उदयपुर में आपका स्वर्गवास हो गया। आपके बाद आपके दत्तक पुत्र सज्जनसिंहजी मेवाड़ की गद्दी पर बैठे। महाराजा सज्जनसिंह जी के गद्दी पर बैठने पर उनके चाचा बालाड़ के ठाकुर साहब ने गद्दी पर अपना हक बतलकर बलवा खड़ा किया, परन्तु आखिर में वे अंग्रेज सरकार द्वारा कैद कर काशी भेज दिये गये।

महाराणा सज्जनसिंहजी बड़े लोकप्रिय नरेश थे। विद्वानों और सुधारकों का बड़ा आदर करते थे। आर्यसमाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती जब उदयपुर पधारे, तब आपने उनका बड़ा सम्मान किया था। आपने बड़े ही पूज्यभाव से उन्हें उदयपुर में कुछ दिन ठहराया था। कहा जाता है कि महाराणा सज्जनसिंहजी स्वामीजी के दर्शनों के लिये रोज जाते थे। आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र से आपका बड़ा स्नेह था। श्रीमान् ने उक्त बाबू साहब को उदयपुर निमन्त्रित कर उनका योग्य सम्मान किया था। भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी ने महाराणा सज्जनसिंहजी की प्रशंसा में सज्जन-कीर्ति-सुधाकर नामक एक काव्य लिखा था।

ईस्वी सन् १८७७ में दिल्ली में जो शाही-दरबार हुआ था उसमें आप की तोपों की सलामी २१ कर दी गई। इसी समय आपको जी० सी० एस० आई० की उपाधि प्राप्त हुई। ईस्वी सन १८८४ में आपका स्वर्गवास हो गया।

महाराणा फतहसिंह जी

महाराणा सज्जनसिंहजी के बाद महाराणा फतहसिंह जी ईस्वी सन १८८५ में मेवाड़ के राजसिंहासन पर बिराजे। ईस्वी सन् १८८७ में जी० सी० एस० आई० की उपाधि से विभूषित किये गये। इसी साल आपने अफीम को छोड़ कर तमाम जावक माल का महसूल माफ़ कर दिया। आपके समय में चित्तौड़ से लगा कर उदयपुर तक रेल्वे लाईन खोली गई। राज्य की ज़मीन का बन्दोबस्त हुआ। खास उदयपुर नगर और जिलों में कई अस्पताल खुले। और भी कई काम हुए।

वर्तमान भारतीय नरेशों में महाराणा फतहसिंहजी एक विशेष पुरुष हैं। संयम, तेजस्विता, आत्मसम्मान और प्रतिभा के आप मूर्तिमंत उदाहरण हैं। पुराने ढङ्ग के होने पर भी भारतीय जनता आपको बड़े आदर की दृष्टि से देखती है। एक-पत्नीव्रतधारी हैं और यही कारण है कि ७२ वर्ष की वृद्धावस्था में भी आप सूर्य्य की तरह चमकते हैं। आपके मुखमण्डल पर संयम और शील का अलौकिक भाव दिखलाई पड़ता है। जो भारतीय नरेश राजधर्म के उच्च श्रेय को भूल कर प्रजा की कठिन कमाई के लाखों रुपयों को ऐयाशी और विलास-प्रियता में खर्च कर जनता और ईश्वर की दृष्टि में अक्षम्य अपराध कर अपने आपको कलङ्कित कर रहे हैं इन्हें इस सम्बन्ध में महाराणा फतहसिंह जी का आदर्श ग्रहण करना चाहिये।

संयम और शील ही का प्रताप है कि महाराणा साहब में आत्म-बल है। राजा के योग्य तेज और ओज है तथा ऐसी शक्ति है कि ७२ वर्ष की इस वृद्धावस्था में भी हाथ में बंदूक लिये हुए पहाड़ों पर बारह-बारह कोस तक वे घूमते हैं। युवा पुरुष भी आपकी शक्ति को देख कर स्तम्भित हो जाते हैं।

हिज हाईनेस महाराजाधिराज सर फतेसिंह जी साहिब बहादुर
G. C. S. I. G. C. I. E. उदयपुर
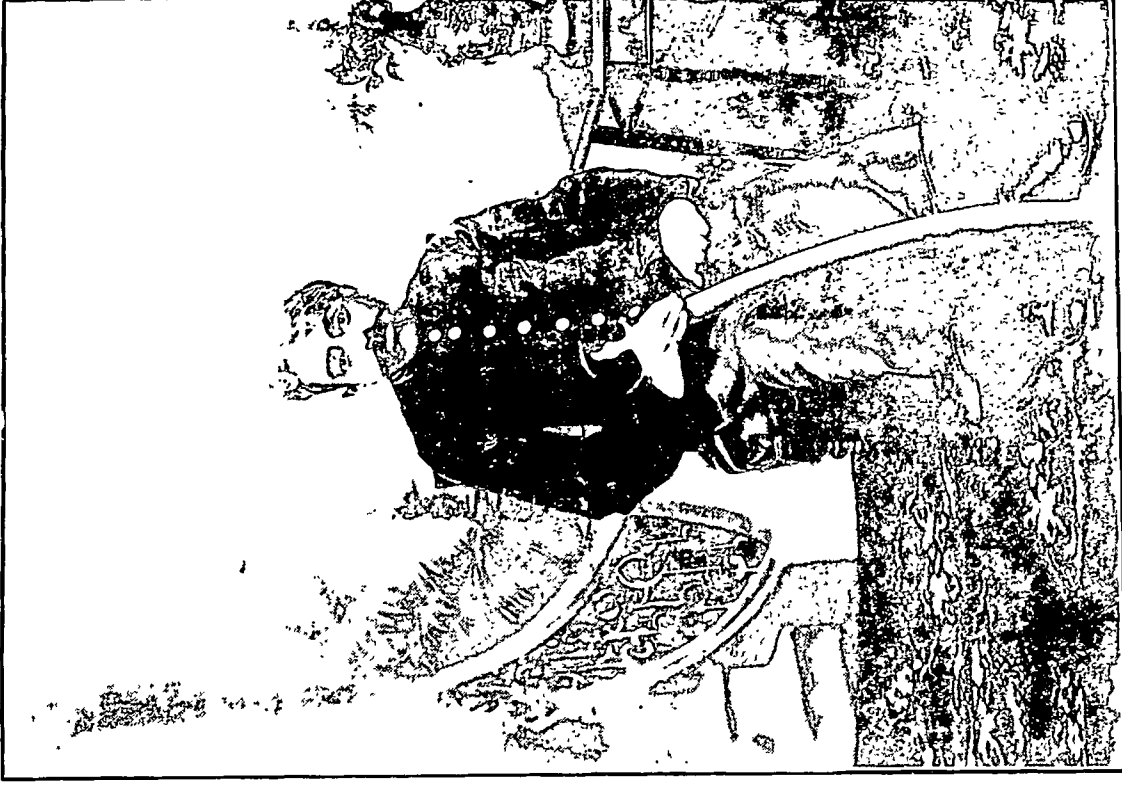
महाराज कुमार श्री भूपाल सिंह जी बहादुर

परमपिता परमात्मा को छोड़ कर इस प्रकाण्ड विश्व में कोई निर्दोष नहीं। महाराणा फतहसिंह जी में भी कुछ त्रुटियाँ होंगी, पर उनमें अनेक गुणों और विशेषताओं का अपूर्व सम्मेलन हुआ है। वर्तमान समय में वे कई दृष्टि से प्राचीनता के आदर्श हैं। मानव-प्रकृति के सूक्ष्म ज्ञाताओं का कथन है कि अगर इस प्राचीनता में देश, काल और पात्र के अनुसार सामयिकता का सम्मेलन हो जाता तो सोने में सुगन्ध हो जाती। कुछ भी हो वर्तमान भारतीय नरेशों में महाराणा फतहसिंह जी अपने ढङ्ग के एक ही नरेश हैं और आप एक सच्चे राजपूत हैं। देश को आपके लिये अभिमान है। आपके एक राजकुमार हैं, जिनका नाम सर भूपालसिंहजी है। आप बड़े शान्त-स्वभाव और सहृदय हैं। इस समय जागिरी आदि के कुछ कामों को छोड़ कर शासन की व्यवस्था आप ही कर रहे हैं।
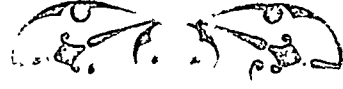
जयपुर राज्य का इतिहास
HISTORY OF THE JAIPUR STATE.

श्रीमान महाराजा मानसिंह जी (द्वितीय) जयपुर ।

जयपुर का राज्य राजपूताने के उत्तर-पूर्व में है। उत्तर में बीकानेर, लोहारु और पटियाला की रियासतें; पश्चिम में बीकानेर, जोधपुर, किशनगढ़ की रियासतें तथा अजमेर ताल्लुका; दक्षिण में उदयपुर, बूँदी, टोंक, कोटा तथा ग्वालियर राज्य और पूर्व में करौली, भरतपुर और अलवर के राज्य हैं।

जयपुर राज्य का दूसरा नाम ढूँढार भी है। वैदिक-काल में यह 'मत्स्य' देश के नाम से प्रसिद्ध था। मत्स्य एक जाति के योद्धा थे। ऋग्वेद में लिखा है कि मत्स्य लोग एक समय सुदास नामक राजा से लड़े थे। शतपथ ब्राह्मण में भी इनका वर्णन मिलता है। उसमें लिखा है—"इन मत्स्य लोगों का ध्वसन-द्वैतवन नामक एक राजा था। इस राजा ने एक समय अश्वमेध यज्ञ किया था।" मनु महाराज के मतानुसार यह प्रदेश ब्रह्मर्षि देश के अंतर्गत था। इसके अतिरिक्त महाभारत में भी कई जगह मत्स्य देश का वर्णन मिलता है। जयपुर राज्य के अन्तर्गत् बैरार नामक एक स्थान है जहाँ पांडवों ने अपने वनवास के दिन बिताये थे। बैरार स्थान अत्यन्त प्राचीन है। यहाँ पर अशोक (ई० सन् के १५० वर्ष पूर्व) और उससे भी पहले के सिक्के पाये गये हैं। पुरा-तत्ववेत्ताओं ने अनुसंधान द्वारा यह निश्चिय किया है कि यह नगर प्राचीन मत्स्य देश की राजधानी था। ई० सन् ६३४ में जब प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसंग आया था तो उसे यहाँ ८ बौद्धमठ (Budhist monasteries) मिले थे। यहीं पर सम्राट् अशोक ने बौद्ध साधुओं के लिये आज्ञा-पत्र निकाला था। यह शिलालेख अभी भी बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के दफ़्तर में मौजूद

है। ई० सन् की ११ वीं शताब्दी में महम्मद गज़नवी ने बैरार पर आक्रम किया जिसका वर्णन आईन अकबरी में लिखा हुआ है। जयपुर के महाराज का वंश अत्यन्त प्राचीन और प्रसिद्ध है। आप सूर्यवंशी कछवाह राजपूत हैं और अयोध्या के महान् प्रतापी महाराजा रामचन्द्र के बड़े पुत्र कुश के वंशज हैं। महाराज कुश के पुत्र का नाम कूर्म अथवा कछवा था। इसी से ये कछवाह राजपूत कहलाये जाने लगे। ई० सन् की १० वीं शताब्दी में इस वंश में राजा नल हुए। इन्होंने नरवर शहर बसाकर वहां राज्य किया। इनके बाद आपके वंशज ग्वालियर चले गये जहां उन्होंने कई वर्ष तक राज्य किया। ग्वालियर में इस राज्य-वंश के किन किन राजाओं ने राज्य किया उनका उल्लेख नीचे किया जाता है।

ग्वालियर में ई० सन् ९७७ का एक शिलालेख मिला है, जिससे मालूम होता है कि उस समय वहां पर वज्रदामा नामक राजा राज्य करता था। वज्रदामा ने कन्नौज के राजा विजयपाल परिहार से ग्वालियर का राज्य प्राप्त किया था।

वज्रदामा के बाद उनके पुत्र मंगलराज ग्वालियर की गद्दी पर बिराजे। जयपुर और अलवर के कछवाह राजवंश की उत्पत्ति आपके छोटे पुत्र सुमित्र से है। मंगलराज के बाद उनके पुत्र कीर्त्तिराज गद्दीनशीन हुए। इन्होंने मालवा के राजा को परास्त किया था। इस समय मालवे की राज्यगद्दी पर शायद भोजराज बिराजमान थे। ई० सन् १०२१ में महमूद गज़नवी ने ग्वालियर पर चढ़ाई की थी। यह चढ़ाई कीर्त्तिराज ही के राज्य-काल के लगभग हुई थी। कीर्त्तिराज के बाद क्रमशः मूलदेव, देवपाल, पद्मपाल और महीपाल ग्वालियर की गद्दी पर बिराजे। महीपाल को पृथ्वीपाल और भुवनेक मल्ल भी कहा करते थे। ग्वालियर के क़िले पर जो सास बहू का सुन्दर मन्दिर बना हुआ है उसे पद्मपाल ने बनवाना शुरू किया था। महीपाल ने उसे पूरा करवाया और उसका नाम पद्मनाथ मन्दिर रखा। महीपाल के पश्चात् क्रमात् त्रिभुवनपाल, विजयपाल, सूरपाल और अंनगपाल ग्वालियर की गद्दी पर बैठे। अनंगपाल तक की

कछवाहों की श्रृंखलाबद्ध वंशावली शिलालेखों में मिलती है। ई० सन् ११९६ में शहाबुद्दीन गोरी ने ग्वालियर पर चढ़ाई की थी। उस समय वहां सोलंखपाल नामक राजा राज्य करता था। शायद यही अनंगपाल का उत्तराधिकारी हो। ताजुलूम आसिर नामक फारसी तवारीख़ में लिखा है कि " जब सुलतान शहाबुद्दीन की सेना ने ग्वालियर पर चढ़ाई की तो वहां के राजा सोलंखपाल ने ख़िराज देना मंजूर किया और १० हाथी देकर सुलह कर ली।" पर तनकातिनासिरी में कुछ और ही लिखा है। उसमें लिखा है कि–"बहाउद्दीन तुग़लक को ग्वालियर फ़तह करने के लिये नियत कर सुल्तान स्वयं गज़नी लौट गया। एक साल तक बहाउद्दीन लड़ता रहा, पर क़िला फ़तह नहीं हुआ। अन्त में रसद चुक जाने के कारण राजा ने कुतुबुद्दीन ऐबक को क़िला सौंप दिया। इस पर से मालूम होता है कि ग्वालियर पर ई० सन् ११९६ तक कछवाहों का राज्य रहा। 'कछवाहों की ख्याति' को पढ़ने से मालूम होता है कि कछवाहा राजा ईसासिंहजी ने वहां का राज्य अपने भतीजे साजी तँवर को दे दिया था। पर यह बात विशेष प्रामाणिक प्रतीत नहीं होती। हम ऊपर कह आये हैं कि जयपुर के कछवाहे मंगलराज के छोटे पुत्र सुमित्र के वंशज हैं। सुमित्र के बाद उसके वंश में क्रमशः मधुब्रह्म कहान, देवानीक और ईश्वरी सिंह हुए। ईश्वरीसिंह के बाद सोढ़देव हुए। सोढ़देव के पुत्र दूलहराय का विवाह मोरन के चौहान राजा की कन्या के साथ हुआ था। अपने श्वसुर की सहायता से दूलहराय ने द्योसा नामक प्रान्त बड़गूजरों से जीत लिया और इस प्रकार एक नवीन राज्य की स्थापना की। यही राज्य आगे चल कर जयपुर का राज्य कहलाया। दूलहराय ने अपने पिताजी को द्योसा बुला लिया और राज्य का भार उन्हीं के हाथों में सौंप दिया। द्योसा बहुत ही छोटा था, अतएव सोढ़देव और उनके पुत्र दूलहराय ने और कुछ प्रदेश भी जीतना चाहा। द्योसा के आस पास जो मुल्क था, वह उस समय ढूँढार कहलाता था। इस मुल्क पर मीना और राजपूत सरदारों का अधिकार था। दूलहराय ने पहले पहल मीना लोगों के माच नामक स्थान पर हमला

किया और उसे जीत कर उसका रामगढ़ नाम रख दिया। इस समय जिस स्थान पर लड़ाई हुई थी उसीके पास साढ़देव ने एक मन्दिर बनवाया और अपनी कुलदेवी जामवा माता की स्थापना उसमें कर दी। दूलहराय ने थोड़े ही समय में मीना लोगों के खोह, गेरोर और झोटबाड़ा नामक तीन मजबूत स्थान और जीत लिये। दूलहराय ने इस्वी सन् १००६ से १०३७ तक राज्य किया। अपने राज्य-काल के आरंभ में तो आपको मीना लोगों से बहुत तंग होना पड़ा, पर धीरे२ आपने उन्हें पूर्ण रूप से पराजित कर दिया। एक समय दक्षिण के किसी राजा ने आपके रिश्तेदार को ग्वालियर में घेर लिया था। अतएव उसने आपसे सहायता माँगी। आपने तुरन्त ग्वालियर जाकर शत्रु को हरा दिया और घेरा हटा लेने के लिये बाध्य किया। पर इस लड़ाई में आप बड़ी बुरी तरह घायल होगये। लौटते समय रास्ते में खोह नामक स्थान में आपका स्वर्गवास हो गया। दूलहरायजी के बाद काकिल हुए। इन्होंने ई० सन् १०३७ में मीना लोगों से आमेर जीत लिया और उसको अपनी राजधानी बनाया। आपने एक अम्बिकेश्वर महादेव का मन्दिर भी यहां बनवाया था।

काकिलजी के बाद आमेर की गद्दी के जितने उत्तराधिकारी हुए उन में पंजुन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। चन्दबरदाई कृत पृथ्वीराज रासो नामक पुस्तक में आपका अच्छा वर्णन है। दिल्ली के सम्राट् पृथ्वीराज की सेना के आप नायक थे। आपने शहाबुद्दीन महम्मद गोरी को खैबर के दर्रे में बड़ी बुरी तरह हराया। इतना ही नहीं, वरन् गजनी तक उसका पीछा भी किया था। आपने पृथ्वीराज के सेना-नायक की हैसियत से बुन्देलखंड के चन्देल राजा से महोबा भी जीत लिया था। ई० सन् ११९२ में आप पृथ्वीराज के साथ लड़ते हुए कन्नौज के रणक्षेत्र में वीर-गति को प्राप्त हुए। आपका ब्याह सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की बहिन के साथ हुआ था। इसीसे आपके महा बल का परिचय मिल जाता है।

पंजुन से सातवीं पीढ़ी में उदयकरन हुए। इनके पाँच पुत्र थे जिनमें से एक गद्दी पर बैठे। चौथे का नाम बालोजी था। जिनके पौत्र को शेखावटी
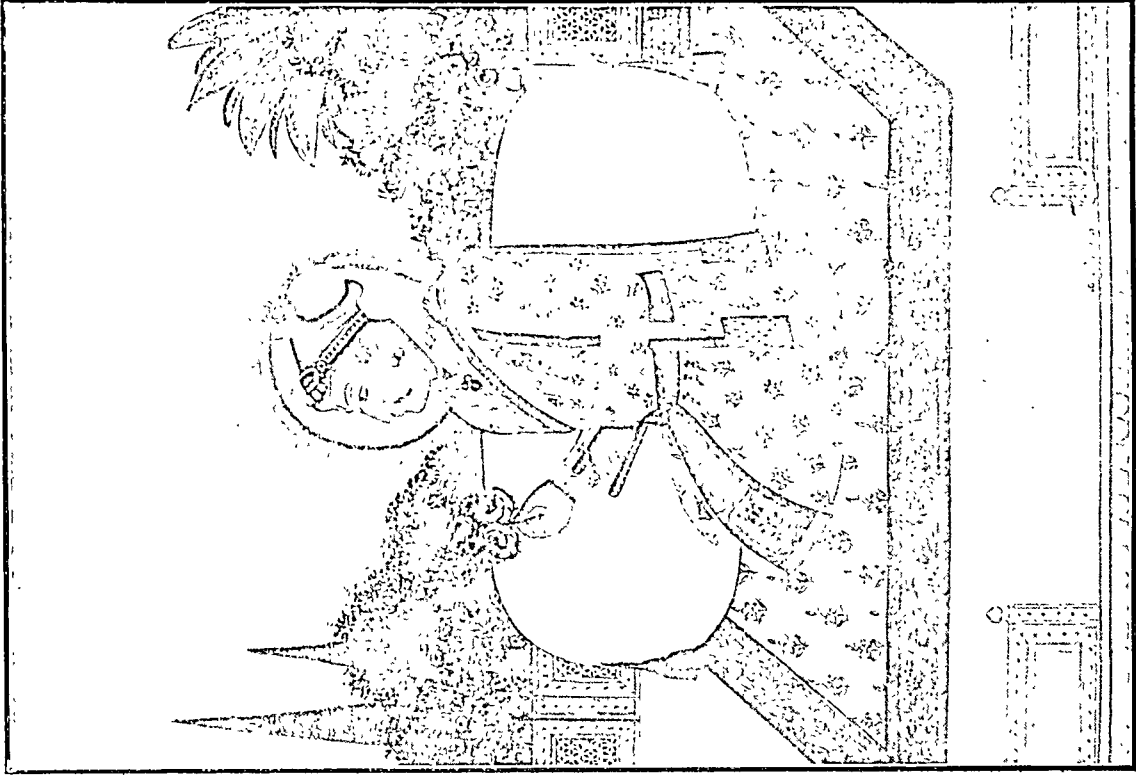
श्रीमान् महाराजा बिहारीमल जी, जयपुर।
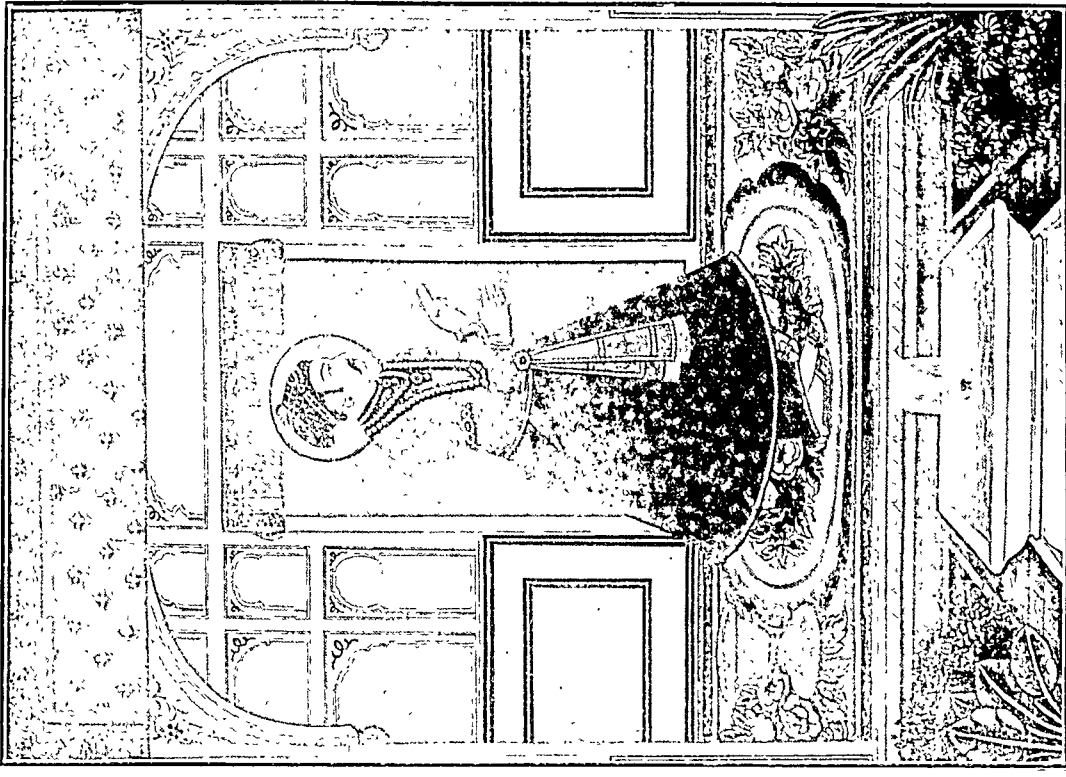
श्रीमान् महाराजा भगवानदास जी, जयपुर।

नामका प्रान्त मिला। इनके नाम पर से कछवाह राजपूतों में शेखावत नामक एक उपशाखा कायम हुई। पाँचवें का नाम बरसिंह था। ये बरसिंह नरु नामक उपशाखा के संस्थापक हुए। उदयकरन से पाँचवीं पीढ़ी में पृथ्वीराज हुए। आपके बहुत से पुत्र हुए जिनमें से केवल १२ ही जीवित रहे। इन बारहों पुत्रों के बारह घराने हुए और इनको अलग अलग जागीरें मिलीं।
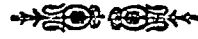
बिहारीमलजी

पृथ्वीराज के बाद बिहारीमलजी को गद्दी मिली। कछवाह वंश के आप प्रथम नरेश थे जिन्होंने मुसलमानों का आधिपत्य स्वीकार किया। आरम्भ में तो आपने मुसलमानों का तिरस्कार किया, पर पश्चात् उनके लगातार होनेवाले हमलों से तंग आकर आपको शाही आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा। आपने अपने छोटे पुत्र की लड़की का विवाह शाहजादा हुमायूं के साथ कर दिया। कहा जाता है कि ई० सन् १५६७ में जब कि सम्राट् अकबर कुतुबऔलिया की यात्रा करने निकले हुए थे तब बिहारीमलजी ने अजमेर आकर सम्राट् का स्वागत किया। अकबर ने इनसे प्रसन्न होकर इन्हें अपने मुख्य सरदरों में भरती कर लिया और इनकी पुत्री के साथ अपना विवाह कर लिया। बिहारीमलजी को भगवान्दासजी, जगन्नाथजी भूपत-जी और सलहदी नामक चार पुत्र थे। उन्हें भी बादशाह की ओर से अच्छी २ पदवियाँ प्रदान की गईं।

बिहारीमलजी के बाद उनके पुत्र भगवानदासजी आमेर की गद्दी पर विराजे। आपने दिल्ली-सम्राट् के साथ खूब ही मित्रता बढ़ा ली। सम्राट् अकबर के आप दिली दोस्त होगये थे। आपने काबुल और गुजरात को जीत कर मुगल साम्राज्य में मिलाया। पंजाब प्रान्त के तो आप सूबेदार भी रहे थे।

महाराजा मानसिंहजी

भगवानदासजी के कोई पुत्र नहीं था अतएव उन्होंने अपने भाई के लड़के मानसिंह को दत्तक ले लिया। ई० सन् १६१९ में मानसिंहजी अपने पिता के साथ आगरे गये थे। तभी से सम्राट् अकबर का ध्यान उनकी ओर आकर्षित होगया था। उसने उनकी वीरता पर प्रसन्न होकर उन्हें सेनाध्यक्ष की पदवी प्रदान की। मानसिंहजी इस पदवी के सर्वथैव योग्य थे। थोड़े ही समय में उन्होंने मुग़ल साम्राज्य के प्रधान स्तम्भों की सूची के सिरे पर अपना नाम लिखवा लिया। सचमुच मान-सिंहजी का सेनापतित्व और उनकी योग्यता इतनी बढ़ी चढ़ी हुई थी कि वे अकबरी नव रत्नों में परमोज्वल हीरक समझे जाते थे। उस समय मुग़ल-साम्राज्य में उनके समान रण-कुशल सेनापति कोई नहीं था। राजा मान-सिंहजी की तलवार की चमक से अफ़गानिस्तान के कट्टर अफ़गानों की भी आँखें झिप जाती थीं। उनकी विजयवाहिनी की लौह झन्कार हिरात से ब्रह्मपुत्र तक और काश्मीर से नर्मदा तक सुनाई पड़ती थी।

संवत् १६२९ में जब सम्राट् अकबर गुजरात विजय करने के लिये गये थे तब वे राजा भगवानदासजी और मानसिंहजी को भी साथ लेते गये थे। सम्राट् जब सिरोही से आगे डीसा दुर्ग पहुँचे, तब समाचार मिला कि शेरखां फौलादी अपनी सेना और परिवार के साथ ईडर जा रहा है। बादशाह ने सेना सहित कुँवर मानसिंहजी को उसका पीछा करने के लिये भेजा। बादशाह डीसा दुर्ग से पाटन पहुँचे होंगे कि ये भी अफ़गानों को परास्त कर बहुत से लट के माल के साथ वहां पहुँच गये। इसी वर्ष के अन्त में गुजरात के सुल्तान

मुजफ्फरशाह ने पाटन में अपना राज्य बादशाह को सौंप दिया। गुजरात प्रान्त के कुछ मिर्जे थोड़े से सैनिकों के साथ सूरत दुर्ग से निकल कर अपनी सेना से मिलने आ रहे थे जिन्हें पकड़ने की इच्छा से बादशाह ने उनका पीछा किया। सर्नोल ग्राम में मुटभेड़ होगई। बादशाह के पास केवल डेढ़ सौ सैनिक थे और शत्रु एक सहस्र के लग भग थे। दोनों सेनाओं के बीच महीन्द्री नदी थी, इसलिये बादशाह ने मानसिंहजी को हरावल नियत करके पार उतरने की आज्ञा दी। कुल शाही सवार नदी पार हो गये, जिन पर गुजराती मिर्जों के मुखिया मिर्जा इब्राहीम ने धावा किया। शाही सेना पीछे हट गई, पर दोनों ओर नागफनी के झंखाड़ होने के कारण शत्रु के तीन ही सवार आगे बढ़ सकते थे। इधर स्वयं बादशाह, राजा भगवानदास और कुँवर मानसिंहजी सब के आगे थे। इस समय मानसिंहजी ने अद्भुत् वीरता के साथ बादशाह की प्राण रक्षा करते हुए शत्रु को मार भगाया।

१८ वें वर्ष में बादशाह ने कुँवर मानसिंहजी को ससैन्य ईडर के रास्ते से डूंगरपुर भेजा। यहाँ के तथा आस पास के राजाओं ने विद्रोह किया था जिनका दमन करने के लिये ही यह सेना भेजी गई थी। इन्होंने वहां पहुँच कर उन लोगों को पूर्णतया पराजित किया। और उन लोगों से बादशाह की आधीनता स्वीकार करा लेने पर ये आज्ञानुसार उदयपुर होते हुए आगरे चले। जब ये रास्ते में उदयपुर की सीमा पर पहुँचे तब इन्होंने महाराणा प्रतापसिंह-जी को अपना आतिथ्य करने के लिये कहलाया। वे उस समय कुंभलनेर दुर्ग में थे पर मानसिंहजी के स्वागत् के लिये उदयसागर झील तक आकर उन्होंने वहां भोजन का प्रबन्ध किया। राणा भोजन के समय स्वयं नहीं आये और अपने पुत्र को अतिथि-सत्कार करने के लिये भेज दिया। मानसिंहजी इसका अर्थ समझ गये थे तब भी एक बार और कहलाया, पर सब निष्फल हुआ। अन्त में इन्होंने भोजन नहीं किया और मेवाड़ पर चढ़ाई करने की धमकी देकर चले गये। बादशाह के पास पहुँचते ही इन्होंने कुल बातें कुछ नोनमिर्च लगाकर कह दीं। इस पर बादशाह बड़े क्रोधित हुए और चढ़ाई करने की
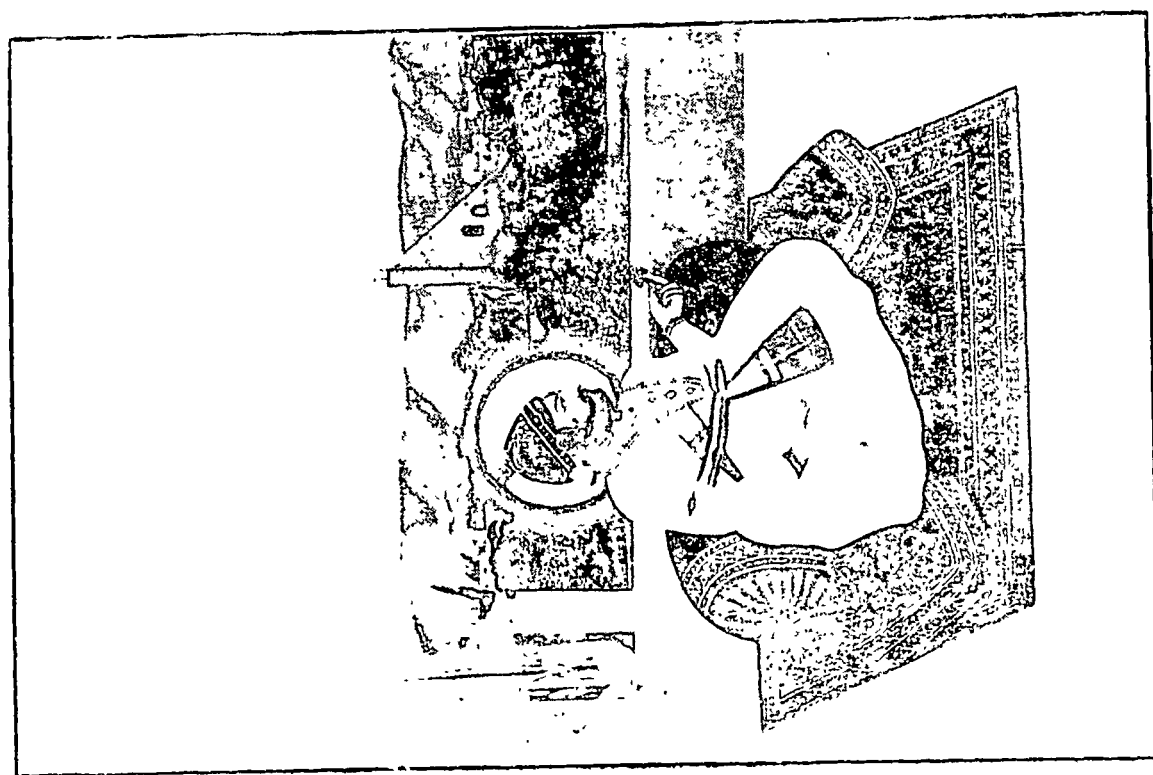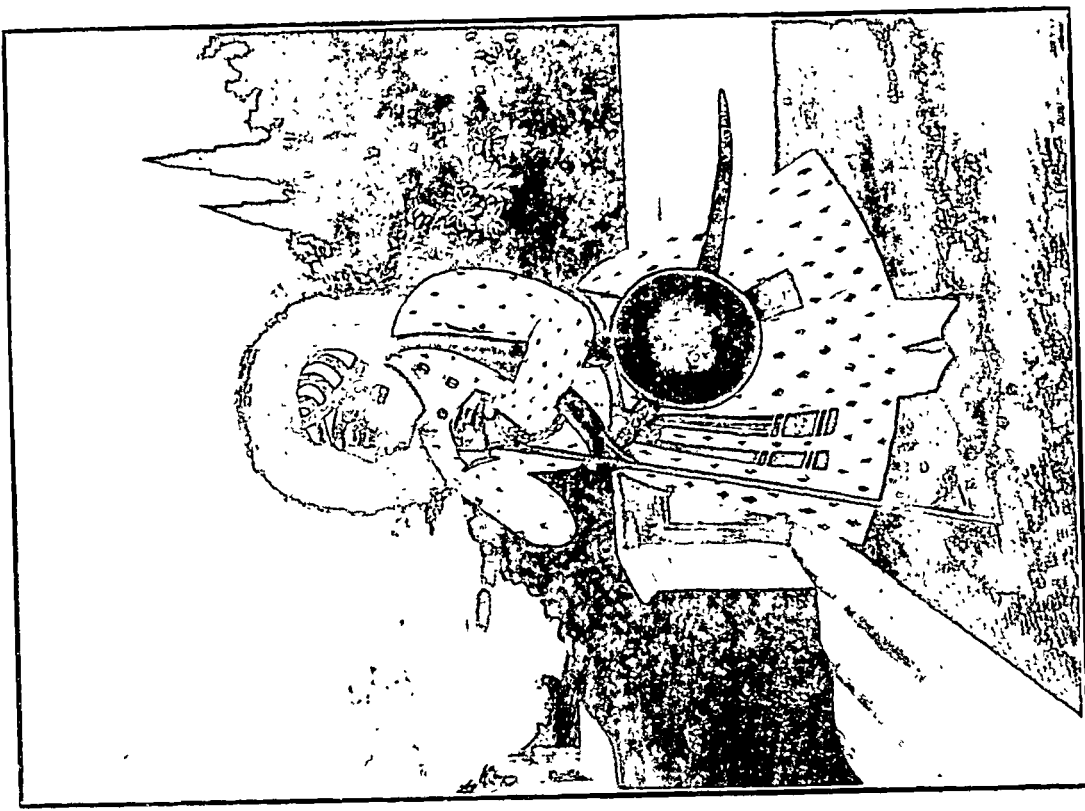
श्रीमान् महाराजा मानसिंह जी, जयपुर।

आज्ञा दे दी । सुल्तान सलीम, कुँवर मानसिंहजी और महावतखां के आधीन एक भारी-सेना मेवाड़ पर भेजी गई। प्रसिद्ध हल्दीघाट के मैदान में युद्ध हुआ। महाराणा की बड़ी इच्छा थी कि मानसिंहजी से द्वन्द्व युद्ध करें, पर उस घमासान में ऐसा अनुकूल अवसर प्राप्त न हो सका। युद्ध के धक्कम धक्का में महाराणा, सुलतान सलीम के हाथी के पास पहुँच गये और उस पर उन्होंने अपना वर्छा चलाया। यदि महावतखां और अम्बारी का लोहस्तंभ बीच में न होता तो अकबर बादशाह को अवश्य पुत्र-शोक उठाना पड़ता। सलीम का हाथी भाग निकला। दोनों ओर के वीर जी तोड़कर लड़ने लगे। इस अवसर पर राजा रामशाह ग्वालियरी ने स्वामि-भक्ति का उच्च आदर्श दिखलाया। जब उनने देखा कि मुसलमान सेना बड़े वेग से राणा पर टूट पड़ी है, तब उन्होंने राणा के छत्रादि राज-चिन्हों को बलात् छीन कर दूसरी ओर का रास्ता लिया। मुसलमानी सेना महाराणा को उस ओर भागता देखकर उधर ही टूट पड़ी जिससे अत्यन्त घायल राणा प्रतापसिंहजी को युद्धस्थल से निकल जाने का अवसर मिल गया। रामशाह अपने पुत्रों सहित वीर गति को प्राप्त हुए। अन्त में महाराणा की सेना को अगणित मुग़ल सैन्य के आगे पराजित होना पड़ा। यह युद्ध श्रावण कृष्ण ७ संवत् १६३२ को हुआ था।

वर्षा के कारण मेवाड़ का युद्ध रुक गया था पर उसके व्यतीत होते ही वह फिर आरंभ हो गया। बादशाह स्वयं ससैन्य अजमेर पहुँचे और कुँवर मानसिंहजी को सेना देकर मेवाड़ भेजा। महाराणा फिर परास्त होकर कुभलनेर दुर्ग में जा बैठे। शाहबाजखाँ ने इस दुर्ग को भी घेर लिया। शाहबाजखाँ के साथ राजा भगवानदास, कुँवर मानसिंह आदि सरदार भी गये थे। दैवात् दुर्ग की एक बड़ी तोप के फट पड़ने से मेगजीन में आग लग गई। बादशाही सेना घबरा कर पहाड़ी पर चढ़ गई। फाटक पर राजपूतों ने बड़ी वीरता से उन्हें रोका पर घमासान युद्ध के पश्चात् वे वीर गति को प्राप्त हुए। दुर्ग पर इनका अधिकार हो गया और गाजीखाँ वहां नियुक्त कर दिया गया। कुभलनेर दुर्ग के टूटने

पर मानसिंहजी ने मांडलगढ़ और गोघूंदा दुर्गों को जा घेरा। यहां महाराणा रहते थे। वे तीन सहस्र राजपूतों के साथ इन पर इस तरह टूट पड़े कि मुग़ल-हारावल नष्ट भ्रष्ट होगया। हाथियों से युद्ध होने लगा, जिसमें मानसिंहजी का हाथीवान् मारा गया। पर मानसिंहजी विचलित नहीं हुए। हाथी को सँभालते हुए वे युद्ध करते रहे। इतने पर भी युद्ध बिगड़ता ही जा रहा था कि इतने ही में एक मुग़ल सरदार यह कहता हुआ आया कि बादशाह आगये हैं। इससे मुग़ल सेना का उत्साह बढ़ गया और महाराणा परास्त हो गये। गोघूँदा विजय होगया और उदयपुर पर भी इनने अधिकार कर लिया। बादशाह की आज्ञा आ जाने पर कुँवर मानसिंहजी लौट आये।

बिहार और बंगाल के कुछ मुग़ल सरदारों ने इन प्रान्तों में विद्रोह मचा रखा था। उन्होंने अकबर के सौतेले भाई मिर्जा हकीम को,—जो कि क़ाबुल में स्वतंत्रता पूर्वक रहता था—लिख भेजा कि यदि आप भारत पर चढ़ाई करें तो हम लोग आपका साथ देने को तैयार हैं। मिर्जा के सरदारों ने भी जब उन्हें उभाड़ा तो उसकी मुग़ल सम्राट् बनने की इच्छा प्रबल हो उठी। उसने एक सरदार को सेना सहित आगे भेजा। यह सेना अटक तक आ पहुँची पर वहां के जा़गीरदार यूसुफखाँ कोका ने उसे रोक ने की बिलकुल चेष्टा न की। बादशाह ने यूसुफ़खाँ को बुला लिया और उसके स्थान पर कुँवर मानसिंहजी भेजे गये। इन्होंने सियालकोट पहुँच कर युद्ध की तैयारी की और एक सरदार को अटक दुर्ग दृढ़ करने के लिय भेजा। मिर्जा हकीम ने भी अपने धायभाई मिर्जा शादमान को एक सहस्र सेना के साथ भेजा, जिसने अटक दुर्ग घेर लिया। कुँवर मानसिंहजी इस समय सिन्ध नदी पार करने में कुछ हिचकिचा रहे थे तभी अकबर ने शायद यह दोहा उन्हें लिख भेजा था।

सबै भूमि गोपाल की यामें अटक कहा।
जाके मन में अटक है सोई अटक रहा॥

अटक के घेरे का समाचार मिलते ही मानसिंहजी वहां जा पहुँचे। घोर युद्ध हुआ। मानसिंहजी के भाई सूरजसिंहजी के हाथ से शादमान मारा

गया। इसी समय मिर्ज़ा हकीम भी सेना सहित घटनास्थल पर आ पहुँचा, पर शाही आज्ञा आ चुकी थी अतएव मिर्ज़ा आगे बढ़ने से नहीं रोका गया। मानसिंहजी लाहोर लौट आये पर मिर्ज़ा ने वहां भी दुर्ग को घेर कर युद्ध आरंभ किया।

बादशाह सेना सहित ज्यों ज्यों लाहोर की ओर बढ़ने लगे त्यों त्यों मिर्ज़ा पीछे हटने लगा। इस कार्य में मिर्ज़ा के बहुत से सैनिक रास्ते में आने वाली नदियों में बह गये। बादशाह की आज्ञा पाकर मानसिंहजी पेशावर और सुल्तान मुराद काबुल पहुँचा। मानसिंहजी जब खुद काबुल पहुँचे तो मिर्ज़ा हक़ीम का मामा फ़रेदूखाँ सेना के पिछले भाग पर छापा मार कर बहुत सा सामान लूट लेगया। मानसिंहजी वहीं ठहर गये। सामने ही पर्वत की ऊँचाई पर मिर्ज़ा हकीम सेना सहित मोर्चा बांधे डटा हुआ था। घोर युद्ध के उपरान्त मानसिंहजी ने उसे परास्त कर दिया। दूसरे दिन उसी स्थान पर फरेदूखाँ भी परास्त कर दिया गया और काबुल पर मानसिंहजी ने अधिकार कर लिया। पीछे से बादशाह ने आकर मिर्जा हक़ीम को काबुल का अध्यक्ष और मानसिंहजी को सीमान्त प्रदेश पर नियुक्त करदिया। मानसिंहजी ने बड़ी ही योग्यता के साथ सीमान्त प्रदेश की लड़ाकू जातियों का दमन किया।

ई० सन् १५८५ में मानसिंहजी की धर्म बहिन का विवाह सुल्तान सलीम के साथ हुआ। इसी समय काबुल से मिर्जा मुहम्मद हकीम की मृत्यु का समाचार आया अतएव मानसिंहजी काबुल भेज दिये गये। इन्होंने अपने सुप्रबन्ध से वहां की प्रजा को ऐसा प्रसन्न कर लिया कि फरेदूखाँ आदि विद्रोहियों की दाल न गल सकी। मानसिंहजी काबुल में एक वर्ष तक रहे। पर इतने ही समय में आपने वहां शान्ति स्थापित करदी। इसके बाद आप अफ़रीदी अफ़गानों का दमन करने के लिये भेजे गये। इस कार्य में भी आपको अच्छी सफलता मिली।

ई० सन् १५८८ में बादशाह ने मानसिंहजी को बिहार के सूबेदार के पद पर नियुक्त किया। बिहार के मुगल सरदारों का विद्रोहानल यद्यपि शमन

किया जा चुका था तथापि उसका कुछ अंश कहीं कहीं सुलग रहा था। मान-सिंहजी ने वहां पहुँचते ही बिलकुल शान्ति फैला दी। हाजीपुर के जमींदार राजा पूर्णमल का दमन करके आपने उसकी पुत्री का विवाह अपने भाई के के साथ करवा दिया। बिहार में शान्ति स्थापित कर लेने पर आपकी इच्छा उड़ीसा विजय करने की हुई। बिहार प्रान्त के अन्दर आपने रोहतासगढ़ नामक शहर का जीर्णोद्धार करवाया। वहां का अम्बर निर्मित सिंहद्वार और बड़ा तालाब आज भी आपकी कीर्त्ति के स्मारक हो रहे हैं।

उड़ीसा प्रान्त के राजा प्रतापदेव को उसके पुत्र वीरसिंहदेव ने विष देकर मारडाला। प्रतापदेव के एक सरदार मुकुन्ददेव ने इस अवसर पर स्वामि-भक्ति का ढोंग रचकर अपना अधिकार कर लिया। उड़ीसा राज्य की इस गड़बड़ी की खबर जब बंगाल के सुल्तान सुलेमान किरानी को मिली तो उसने सेना सहित आकर उस प्रान्त पर अपना अधिकार कर लिया। बंगाल से निकाले जाने पर अफ़गान इसी प्रान्त में आकर बसे थे। इनका सरदार कतलूखाँ था। राजा मानसिंहजी ने उड़ीसा विजय करने के लिये जो सेना भेजी थी उसने जहानाबाद नामक ग्राम में आकर छावनी डाल दी। इसी समय कतलूखाँ ने अपनी सेना धारपुर आदि स्थानों को लूटने के लिये भेजी। मान-सिंहजी ने अपने पुत्र जगतसिंहजी को सेना सहित कतलूखाँ पर भेजे। पहले तो अफ़गान परास्त होकर दुर्ग में जा बैठे और सन्धिका प्रस्ताव करने लगे, पर तुरन्त ही नई अफ़गान सेना के आ जाने के कारण उन्होंने रात्रि में मुग़ल-सेना पर आक्रमण कर दिया। जगतसिंहजी कैद कर लिये गये। पर इसी समय कतलूखाँ की मृत्यु हो गई। अफगान सरदार ख्वाजा ईसाखाँ ने जगतसिंहजी को मुक्त करके उन्हीं से सन्धि की प्रार्थना की। राजा मानसिंहजी ने कतलूखाँ के पुत्रों को उनके पिताका राज्य दे दिया। राजा साहब के सदय व्यवहार से कृतज्ञ होकर अफगानों ने पवित्र तीर्थ जगन्नाथपुरी को उन्हें सौंप दिया।

इस सन्धि के दो वर्ष उपरान्त ईसाखाँ की मृत्यु हो गई। नये अफगान

सरदारों में मुगल सेना से युद्ध करने की इच्छा प्रबल हो उठी। उन्होंने जगन्नाथपुरी लूट ली और बादशाह के राज्य में उपद्रव मचाना शुरू किया। इस अत्याचार का विरोध करने के लिये राजा मानसिंहजी सेना सहित चढ़ दौड़े। एक ही युद्ध में आपने अफगानों को पूर्णतया परास्त कर दिया और सारे उड़ीसे पर अपना अधिकार कर लिया। पराजित अफगानों ने भाग कर कटक के राजा रामचन्द्र के प्रसिद्ध दुर्ग सारंगगढ़ में आश्रय लिया। मानसिंहजी की शक्ति से चौंधिया कर राजा रामचन्द्र ने आत्म समर्पण कर दिया। उड़ीसा मुग़ल साम्राज्य में मिला लिया गया।

कूचविहार के राजा लक्ष्मीनारायण ने मुग़ल स्वाधीनता स्वीकारार्थ राजा मानसिंहजी से भेंट की। इस कारण उसके आत्मीय दूसरे नरेशों ने चिढ़कर उस पर चढ़ाई कर दी। लक्ष्मीनारायण ने मानसिंहजी से सहायता माँगी। मानसिंहजी ने सहायता पहुँचा कर वहाँ शान्ति स्थापित करवा दी। इस उपकार के बदले में राजा लक्ष्मीनारायण ने अपनी बहिन का विवाह राजा मानसिंहजी के साथ कर दिया। कुछ ही समय बाद कूचविहार में पुनः झगड़ा उत्पन्न हुआ। इस बार भी हिजाजखाँ नामक सेनापति को भेजकर मानसिंहजी ने शान्ति स्थापित करवा दी।

ई० सन् १५९८ में जब बादशाह ने दक्षिण जाने की तैयारी की तब मेवाड़ पर सेना भेजने की इच्छा से राजा मानसिंहजी को बंगाल से बुला लिया। मानसिंहजी के स्थान पर उनके ज्येष्ठ पुत्र जगतसिंहजी नियुक्त किये गये। पर आगरे पहुँचते ही जगतसिंहजी की मृत्यु हो गई अतएव उनके पुत्र मोहनसिंहजी उनके स्थान पर नियुक्त कर दिये गये।

ई० सन् १६०२ में मानसिंहजी रोहतासगढ़ पहुँचे। यहां पर शरीफाबाद–सरकार के अन्तर्गत् शेरपुर नामक स्थान के पास आपने अफगानों को पूर्ण पराजय दी। आपने सेना भेजकर अफगानों के आधिनस्त नगरों पर अधिकार कर लिया। बचे बचाये अफ़गान उड़ीसा के दक्षिण में भाग गये। मानसिंहजी ढाका पहुँच कर सूबेदारी करने लगे। सुल्तान सलीम

के स्वभाव में कुछ विद्रोह के भाव प्रगट हो चुके थे। विद्रोही पुत्र के पास के प्रान्त में मानसिंहजी का रहना अकबर को अच्छा न लगता था। उसने तुर्किस्तान पर हमला करने के कार्य में मंत्रणा लेने के बहाने मानसिंहजी को आगरे बुला लिया। अकबर ने उनकी योग्यता से प्रसन्न होकर उन्हें सात हज़ारी सवार का मन्सब प्रदान किया। इसके पहले किसी हिन्दू या मुसलमान सरदार को ऐसा सम्मान सूचक मन्सब प्राप्त नहीं हुआ था।

कुछ दिन दरबार में रहकर मानसिंहजी बंगाल लौट गये। वहां ई० सन् १६०४ तक आपने न्यायपरता और नीति कुशलता के साथ शासन किया। इसी बीच उसमान ने फिर विद्रोह कर ब्रह्मपुत्र नदी पार की। शाही थानेदार बाजबहादुर ने उसे रोकना चाहा, पर न रोक सका। राजा मानसिंहजी यह सुनते ही रातों रात कूचकर वहां पहुँचे और शत्रु को परास्त कर भगा दिया। बाजबहादुर को फिर नियुक्त करके आप ढाका लौट आये। जब उसने नदी पार कर अफगानों के राज्य पर अधिकार करने का विचार किया तब अफगानों ने तोप आदि से रास्ता रोका। मानसिंहजी ने सहायतार्थ चुनी हुई सेना भेजी पर जब शाही सेना फिर भी नदी पार न कर सकी तब ये स्वयं गये और हाथी पर सवार हो नदी पार करने लगे। अफ़गान यह साहस देखकर भागे और मानसिंहजी सारीपुर तथा विक्रमपुर विजय कर लौट आये।

ई० सन् १६०५ में जहांगीर बादशाह हुए। इन्होंने मानसिंहजी को द्वितीय बार बंगाल के सूबेदार बनाये। परन्तु एक वर्ष भी नहीं होने पाया था कि वे वापस बुला लिये गये। बंगाल से लौटने पर मानसिंहजी ने रोहतास-गढ़ के विद्रोह को दमन किया। ई० सन् १६०८ में आपने स्वदेश जाने की छुट्टी मांगी। छुट्टी मिल जाने पर आपने कुछ दिन अपने राज्य में जाकर शान्ति सुख भोग किया।

खॉनजहां आदि बादशाही सरदार दक्षिण में अपनी वीरता का परि-चय दे रहे थे, पर उससे कुछ लाभ नहीं हो रहा था। यह देख जहांगीर ने
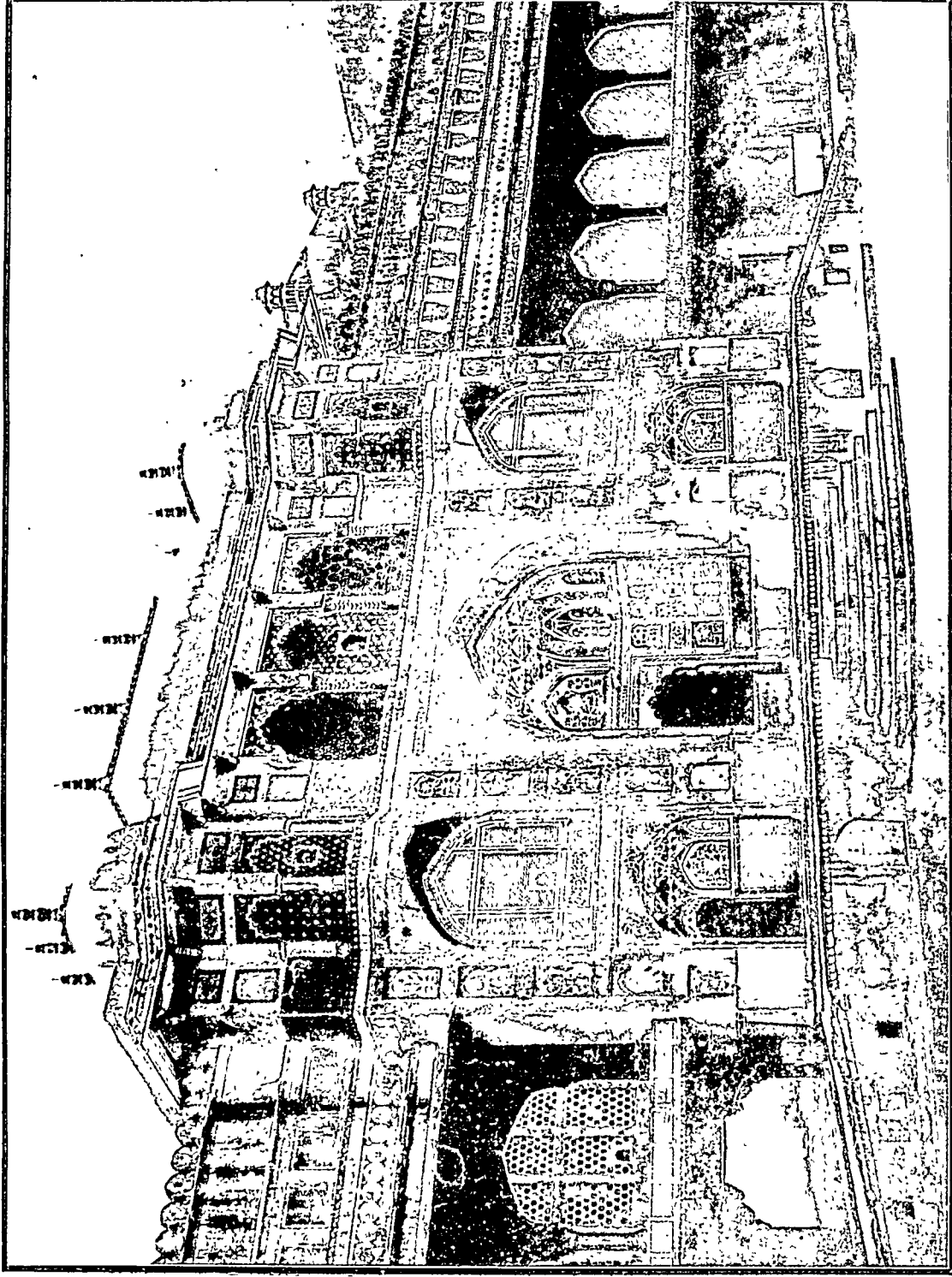
आम्बेर के महल का बाहरी दृश्य (जयपुर)

नवाब अबुर रहीम खानखाना और राजा मानसिंहजी को दक्षिण भेजे। यहां पर ई० सन् १६१४ में मानसिंहजी ने संसार त्याग किया। जहांगीर लिखता है कि "यद्यपि मानसिंह के सब से बड़े पुत्र जगतसिंह का पुत्र मोहनसिंह राज्य का वास्तविक अधिकारी था तथापि मैंने उस बात का विचार न कर के मानसिंह के पुत्र भाऊसिंह को, जिसने मेरी शाहज़ादगी में बड़ी सेवा की थी, मिर्ज़ाराजा की पदवी और चार हज़ारी सवार का मन्सब देकर जयपुर का राजा बनाया"।

राजा मानसिंहजी बड़े मिलनसार और अच्छे स्वभाव के पुरुष थे। बात-चीत में भी आप कुशल थे। आप प्रसिद्ध दानी भी थे। आपने एक लाख गायों का दान दिया था। आपके दान पर हरनाथ कवि ने यह दोहा कहा है:—

बलि बोई कीरति लता, कर्ण कियो द्वैपात।
सींच्यो मान महीप ने, जब देखी कुम्हलात॥

इस दोहे पर राजा मानसिंहजी ने उन्हें हाथी खिलअत आदि बहुत कुछ इनाम दिया था। मानसिंहजी स्वयं कवि थे और कवियों का यथेष्ट मान करते थे। आपने कवियों द्वारा "मान चरित्र" नामक एक ग्रंथ बनवाया है जिसमें आपके जीवन का विवरण दिया गया है। राजा मानसिंहजी कई बार काशी में आये और प्रत्येक बार एक एक कीर्ति स्थापित कर गये। इन में मान मंदिर और मान सरोवर घाट आदि प्रसिद्ध हैं। ई० सन् १५९० में महाराजा मानसिंहजी ने वृन्दावन में गोविन्ददेव का विशाल मन्दिर बनवाया और गिरिराज के पास मानसी गंगा के घाटों और सीढ़ियों का निर्माण भी कराया था।

मानसिंहजी उत्तर देने में भी बड़े पटु थे। आपका रंग साँवला और और शरीर बड़ा बेडौल था। जब आप प्रथम बार दरबार में आये तब बादशाह ने हँसी में आपसे पूछा कि "जिस समय खुदा के यहां रुप-रंग बँट रहा था उस समय तुम कहां थे!" मानसिंहजी ने उत्तर दिया कि मैं उस समय वहां नहीं था, पर जिस समय वीरता और दानशीलता बँटने लगी, तब मैं आ पहुँचा और उसके बदले में इसी को मांग लिया।

महाराजा भावसिंहजी

महाराजा मानसिंहजी के बाद उनके पुत्र भावसिंहजी आमेर के राज्य सिंहासन पर बैठे। स्वयं यवन सम्राट ने उनका राज्याभिषेक करके उन्हें सम्मान सूचक पंच हज़ारी मन्सब की उपाधि प्रदान की थी। इतिहास से यह जाना जाता है कि ये अत्यन्त निर्बोध थे और दिन-रात मद्यपान में रत रहते थे। कई वर्ष राज्य करने के बाद अधिक मदिरापान करने के कारण उनका देहावसान हुआ। उनके राज्य-काल में कोई महत्व पूर्ण घटना नहीं हुई।

महाराजा महासिंहजी

भावसिंहजी की मृत्यु के पीछे उनके भतीजे महासिंहजी राज्य-गद्दी पर विराजे। परन्तु ये भी अपने पिता की तरह अत्यन्त इन्द्रिय-लोलुप और मदिरा-भक्त थे। राजा मानसिंहजी जैसे महावीर, नीतिज्ञ और असीम साहसी थे वैसे ही उनके पुत्र और पौत्र उनके सम्पूर्ण गुणों से विपरीत हुए। इस समय आमेर-राज्य की प्रभुता और प्रताप क्षीण हो रहा था।
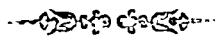
महाराजा जयसिंहजी

महासिंह जी के बाद जयसिंहजी आमेर के सिंहासन पर विराजे। इन्होंने आमेर के लुप्त गौरव को फिर प्रकाशमान किया। जिस प्रकार महाराजा मानसिंहजी ने अकबर के शासन-काल में राज्य का विस्तार, सामर्थ्य और सम्मान बढ़ाया था, ठीक उसी प्रकार राजा जयसिंहजी ने दुर्दान्त औरंगजेब के शासन में अपने अपूर्व बाहुबल और अद्वितीय राजनीतिज्ञता का परिचय दिया। हाँ, यहाँ यह बात अवश्य कहनी पड़ती है कि राजा जयसिंहजी की सारी शक्तियाँ सम्राट औरंगजेब की सेवाओं में तथा उनके राज्य-विस्तार में लगी थीं। इन्होंने सम्राट् औरंगजेब के लिये बड़े बड़े युद्ध किये और उनमें विजय-लक्ष्मी प्राप्त की। इन महाराजा जयसिंहजी के असीम-पराक्रम और अपूर्व-शौर्य की महिमा का वर्णन करते हुए सुप्रख्यात् इतिहास वेत्ता यदुनाथ सरकार अपने (Aurangzeb) नामक ग्रंथ के चौथे भाग के ६० वें पृष्ठ में लिखते हैं "बारह वर्ष की उम्र से जब से जयसिंह पहले पहल मुग़ल फौज में दाखिल हुए, तभी से उन्होंने अपनी जाज्वल्यमान-प्रभा का परिचय देना शुरू किया। मुग़ल-सम्राट् के झंडे के नीचे रहते हुए उन्होंने मध्य-एशिया के बलख प्रान्त से लगाकर दक्षिण भारत के बीजापुर प्रान्त तक तथा कंदहार से मुंगेर तक अनेक युद्धों में भाग लिया था। सम्राट् शाहजहाँ के सुदीर्घ शासन-काल में कोई वर्ष ऐसा नहीं गया, जिसमें उन्होंने कहीं न कहीं अपने शौर्य का परिचय न दिया हो तथा अपने अपूर्व गुणों के कारण तरक्की न पाई हो। वे इसी बुद्धिमत्ता और प्रतिभा के कारण मुगल सेना में एक टुकड़े के सेनापति होगये थे; और उन्होंने हिन्दुस्तान के बाहर भी अपने लोहे का परिचय दिया

था। रणक्षेत्र में उन्हें जैसी मार्के की सफलताएँ मिलीं उनसे भी कहीं अधिक राजनैतिक क्षेत्र में उन्होंने पारदर्शिता का परिचय दिया था। जब कभी सम्राट् के सामने किसी कठिन समय में कोई नाजुक प्रश्न उपस्थित होता तो वे महाराजा जयसिंहजी की तरफ सतृष्ण दृष्टि से ताकते थे। महाराजा जयसिंहजी वास्तव में असीम व्यवहार कुशल और नम्र थे। वे तुर्की, फ़ारसी, उर्दू, संस्कृत और राजपूताना की भाषा पर पूरा आधिपत्य रखते थे। वे अफ़गान, तुर्क, राजपूत और हिन्दुस्तानी सिपाहियों की संयुक्त सेना के आदर्श सेनानायक थे।

सैनिक और राजनैतिक सफलताएँ

पाठक जानते हैं कि दुर्दान्त औरंगजेब के विरुद्ध महाराष्ट्र देश में एक प्रबल शक्ति का उदय हो रहा था। स्वामी रामदास जैसे हिन्दू धर्म-रक्षक महापुरुषों की प्रेरणा से इस शक्ति में अपूर्व बल और दैवी स्फूर्ति का संचार होता जा रहा था। इस शक्ति ने सम्राट् औरंगजेब के शासन को बुरी तरह कम्पायमान कर दिया था। यह शक्ति शिवाजी नामक एक महाराष्ट्र युवक के शरीर में अवतीर्ण हुई थी। इसके प्रकाश ने भारतवर्ष के राजनैतिक गगन-मण्डल को आलोकित कर दिया था। मुग़ल सम्राट् औरंगजेब इस तेजस्वी प्रकाश के सामने चकाचौंध और भयभीत होगया था। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस वीर शिवाजी के साथ युद्ध करके मुग़ल सेना बारम्बार परास्त हुई थी। सम्राट् औरंगज़ेब ने इस बढ़ती हुई शक्ति को क्षीण करने के लिये महाराजा जयसिंहजी को नियुक्त किया।

हम पहले कह चुके हैं कि महाराजा जयसिंहजी जैसे अपूर्व रणनीति-कुशल थे वैसे ही असाधारण राजनीतिज्ञ भी थे। जब उनके ऊपर छत्रपति शिवाजी जैसे प्रबल पराक्रमी तथा शक्ति शाली पुरुष का मुक़ाबला करने का भार आ पड़ा तब उन्होंने अपनी सारा बौद्धिक शक्तियों को शिवाजी को कुचलने के लिये लगाना शुरू किया। वे ऐसे उपाय सोचने लगे कि जिससे शिवाजी

काँच महल आँबेर का भीतरी दृश्य ।
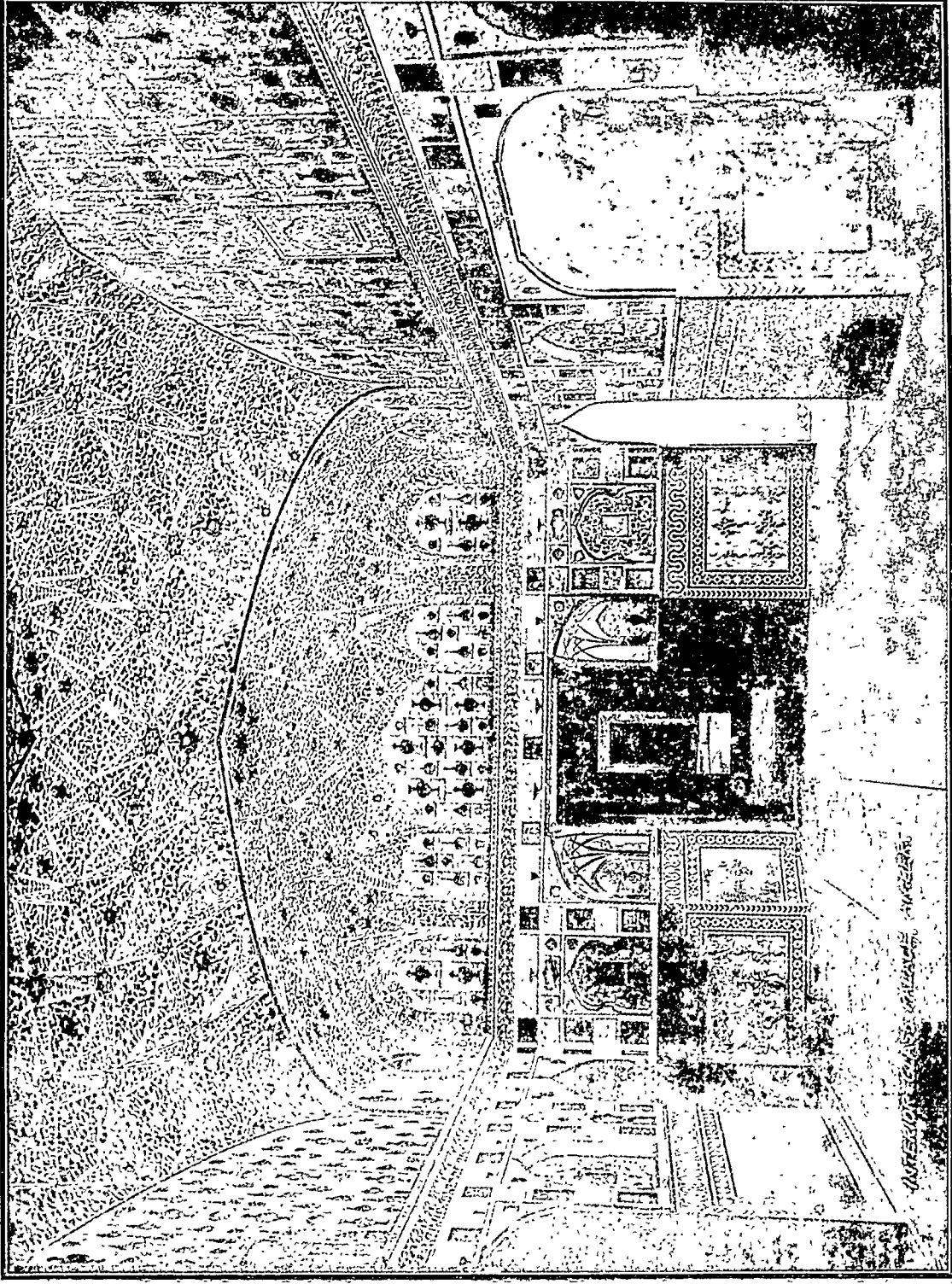
की केन्द्रगत शक्ति को ऐसा मार्के का धक्का पहुँचाया जावे कि वह छिन्न भिन्न हो जाय। उन्होंने सब के पहले सम्राट् द्वारा बीजापुर से सुल्तान की खिराज को घटाया, जिससे वह शिवाजी से नाता तोड़कर सम्राट् से आ मिले। इसके अतिरिक्त उन्होंने छत्रपति शिवाजी के तमाम शत्रुओं का गुट करके उनकी संयुक्त शक्ति में मिलाकर छत्रपति शिवाजी के खिलाफ लगाने का निश्चय किया। उन्होंने फ्रान्सिस माइल और डी० के० माइल नामक दो युरोपियनों को तत्कालीन युरोपियन कोठियों के मालिकों के पास भेजकर उनसे यह अनुरोध किया कि वे शिवाजी के खिलाफ सम्राट् की सहायता करें। इतने ही से महाराजा जयसिंहजी को सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने दक्षिण के कई राजाओं के पास ब्राह्मण राजदूत भेजकर उन्हें शिवाजी के खिलाफ उभाड़ना शुरू किया। जो दाक्षिणात्य राजागण भोंसला के आकस्मिक उदय से खिन्न हो उठे थे उन सब के पास इन प्रतापी मुगल सेनापति के गुप्त दूत पहुँचे और इन्हें सफलताएँ भी हुईं। बाजी, चन्द्रराव और उनका भाई गोविन्दराव मोरे–जिनसे कि शिवाजी ने जावली का परगना ले लिया था–महाराजा जयसिंहजी की सेवा में आ उपस्थित हुए। इनके अतिरिक्त मनकोजी धनगर भी मुगल फ़ौज में सम्मिलित हो गये। अफ़ज़लखाँ का लड़का फ़ज़लखाँ अपने बाप के खूनका बदला निकालने के लिये महाराजा शिवाजी के खिलाफ जयसिंहजी से आ मिला। जयसिंहजी ने इसकी पीठ ठोककर सेना में इसे एक अग्रगण्य पद प्रदान किया। जयसिंहजी ने अपने युरोपियन तोपखाने के अफसर Niccolao Manucci के द्वारा कल्याण के उत्तरवर्त्ती कोली देश के छोटे २ राजाओं का भी सहयोग प्राप्त कर लिया।

इन सब के अतिरिक्त शिवाजी के अफ़सरों को ऊँचे २ पदों का तथा विपुल द्रव्य का प्रलोभन देकर अपनी ओर मिलाने के भी खूब प्रयत्न किये गये और इसमें उन्हें कुछ सफलता भी हुई।

महाराजा जयसिंहजी ने इस समय सारी सत्ता को अपने हाथ में केन्द्रीभूत कर लिया। शुरू २ में सम्राट् ने उन्हें रणक्षेत्र में सेना संचालन का

कार्य दिया था और शासन सम्बन्धी सारा कार्य–जैसे, अफसरों और फौज की तरक्की, सजा और बदली आदि–औरंगाबाद के वाइसराय के आधीन था।

युद्ध का आरम्भ (१६६५)

जुनार से दक्षिण की तरफ जब हम प्राचीन मुग़ल राज्य की सीमा के आगे बढ़ते हैं, तो पहले पहल इन्द्रायनी की घाटी रास्ते में आती है। इसके किनारों पर की पर्वतमाला पर पश्चिम की तरफ लोहागढ़ और तिकोना नामक किले और मध्य में चाकन दुर्ग स्थित है। इसके बाद भीमा नदी की घाटी आती है जिसमें कि पूना नगर बसा हुआ है। इससे और भी दक्षिण की तरफ कार्हा की घाटी है। इसके पश्चिम के पहाड़ पर सिंहगढ़ और दक्षिण की पहाड़ियों पर पुरन्दर का किला स्थित है। इसी घाटी के मैदान में ससवद और सूपा नामक गाँव हैं। इन पहाड़ों के दक्षिण में नीरा नदी की घाटी है। इस घाटी के किनारे पर शिरवाल नामक गांव, पश्चिम में राजगढ़ और तोरना नामक किले और दक्षिण पश्चिम में रोहिरा का किला है।

पूना, उत्तर पश्चिम दिशा में स्थित लोहागढ़ और दक्षिण दिशा में स्थित सिंहगढ़ से समान अन्तर पर है। ससवद नामक स्थान ऐसे मौके पर बसा हुआ है कि वहां से पुरन्दर, राजगढ़, सिंहगढ़ और पूना आदि स्थानों पर सुगमता से चढ़ाई की जा सकती है। इतना ही नहीं, परन्तु इस स्थान के दक्षिण में मैदान होने के कारण यहां से बीजापुर पर भी हमला किया जा सकता है तथा उधर से आने वाली शत्रु की मदद को भी रोकी जा सकती है। इस समय भी ससवद में पाँच मुख्य मुख्य रास्ते मिलते हैं। इस प्रकार युद्ध की दृष्टि से ससवद एक अत्यन्त महत्त्व पूर्ण स्थान है।

हम ऊपर कह चुके हैं कि महाराजा जयसिंहजी एक कुशल सेनानायक थे। उन्होंने सूक्ष्म सैनिक दृष्टि से इन सब स्थानों पर हमला करने के लिये ससवद नामक स्थान पर अपनी छावनी डाल दी। पूना पर बड़ी ही मजबूत सैनिक किले बंदी की गई थी। लोहागढ़ के सामने एक सैनिक थाना स्थापित

किया गया। जिसका कार्य लोहागढ़ पर दृष्टि रखना तथा उस रास्ते की रक्षा करना था जो कि उत्तर की ओर जुनार के पास मुग़ल सीमा में जा मिलता था। इतना हो जाने पर एक ऐसी फौजी टुकड़ी बनाई गई जो इधर उधर घूम फिरकर ससवद से पश्चिम और दक्षिण पश्चिम में स्थित मरहठे के गाँवों को नष्ट करे। पूर्व की ओर से आक्रमण होने की कोई सम्भावना नहीं थी क्योंकि एक तो उस ओर बीजापुर-राज्य की सीमा आगई थी, और दूसरे मुग़ल सेना की एक टुकड़ी भी उस ओर गई हुई थी। तीसरे वहाँ की प्राकृतिक स्थिति ही कुछ ऐसी थी कि जिसके कारण दुश्मन उस ओर से आक्रमण नहीं कर सकते थे।

तीसरी मार्च के दिन जयसिंहजी पूना पहुँचे। यहां पर जयसिंहजी ने कुछ दिन प्रजा को शान्त करने तथा ऐसे सैनिक स्थान क़ायम करने में बिताये जो कि उनके ख़याल से इस युद्ध की सफलता के ख़ास स्तंभ थे। १५ वीं मार्च के दिन पुरन्दर के किले पर घेरा डालने का निश्चय कर वे ससवद के लिये रवाना हो गये।

२९ वीं तारीख़ को वे एक ऐसे स्थान पर जा पहुँचे जहां से एक दिन में ससवद पहुँच सकें। यहाँ से ससवद जाते समय एक दर्रा पार करना पड़ता था। जयसिंहजी ने पहले दिलेरखां को अपने सवारों और तोपखाने के साथ उस दर्रे को पार करने और चार मील आगे चल कर ठहरने का हुक्म दिया।

दूसरे दिन राजा जयसिंहजी पहाड़ को लाँघ कर दिलेरखाँ के खेमे में जा पहुँचे और दाऊदखाँ को इसलिये दर्रे के नीचे छोड़ गये कि वह दुपहर तक फौज को सकुशल दर्रे में प्रवेश करते हुए देखता रहे। सब से पीछे वाली फौज की टुकड़ी को भूले भटके सिपाहियों को मार्ग बतलाने का कार्य सौंपा गया था। इसी दिन (३० मार्च) सुबह दिलेरखाँ अपनी टुकड़ी के साथ पड़ाव के लिये योग्य स्थान की तलाश में निकला। ढूंढ़ते २ वह पुरन्दर के किले के पास जा पहुँचा। यहाँ पर मरहठे बन्दूकचियों के एक बड़े भारी

झुन्ड ने–जो कि एक बाड़ी में ठहरा हुआ था–शाही फौज पर हमला कर दिया। परन्तु शाही सेना ने उनको परास्त कर बाड़ी पर अधिकार कर लिया। इसके बाद दिलेरखाँ की सेना ने आस पास के मकानों को जला दिये और वह पुरन्दर के किले के जितने नज़दीक जा सकी, चली गई। वहाँ पहुँच कर इस सेना ने किले से इतनी दूरी पर जहाँ कि गोला नहीं आ सके, पड़ाव डाला और अपनी रक्षा के लिये अपने आस पास खाइयाँ खोद लीं।

जब यह ख़बर जयसिंहजी ने सुनी तो उन्होंने तुरन्त किरतसिंहजी, रायसिंहजी चौहान, कुबदखाँ, मित्रसेन, इन्द्रभान बुन्देला और दूसरे अधिकारियों की आधीनता में अपने ३००० सैनिक भेजे। उन्होंने दाऊदखाँ के नाम एक ज़रूरी हुक्म इस आशय का भेजा कि वह आकर पड़ाव का चार्ज ले ले; जिससे कि वे खुद घेरे की निगरानी के लिये जा सकें। परन्तु यह समाचार सुनकर दाऊदखाँ जयसिंहजी के पास न आते हुए स्वयं दिलेरखाँ के पास चला गया।

यह दिन इसी प्रकार बीता। छावनी की रक्षा के लिये कोई उच्च अधिकारी मौजूद नहीं था इस वजह से जयसिंहजी को मजबूरन वहीं ठहरना पड़ा। परन्तु उन्होंने दिलेरखाँ की मदद के लिये बहुत से रास्ता साफ करने वाले, भिस्ती, निशाने बाज और लड़ाई का सामान पहले ही रवाना कर दिया था।

दूसरे दिन सुबह (३१ मार्च) जयसिंहजी ने बड़ी सावधानी के साथ तम्बू आदि फौज का तमाम सामान स्थायी पड़ाव पर भेज दिया जो कि ससवद और पुरन्दर के बीच में निश्चित किया गया था। यह स्थान पुरन्दर से सिर्फ चार मील के अन्तर पर था। जब जयसिंहजी ने दाऊदखाँ और किरतसिंहजी जहाँ थे वहाँ से किले की स्थिति पर दृष्टि डाली तब उन्हें मालूम हुआ कि पुरन्दर का किला कोई एक किला नहीं है परन्तु पहाड़ियों के एक समूह की मजबूत दीवारों से घिरा है। इसलिये उसको चारों ओर से घेर लेना असम्भव है।

पुरन्दर का किला घेर लिया गया

ससवद से छः मील दक्षिण में पुरन्दर की पर्वतमाला है। इसकी सबसे ऊँची चोटी समुद्र की सतह से ४५६४ फीट और अपने आसपास के मैदान से २५००० फ़ीट से भी ज्यादा ऊँचाई पर है। यह एक दुहरा किला है और इसके पास ही पूर्व दिशा में एक और स्वतंत्र और बहुत ही मज़बूत किला है जिसका नाम वज्रगढ़ है।

पुरन्दर का किला इस प्रकार बना हुआ है:—एक पहाड़ी की चोटी पर एक किला है जहाँ से गोलाबारी की जा सके। इसके चारों तरफ की ज़मीन ढालू है। इसके ३०० फीट नीचे एक और छोटा किला है जिसको माची कहते हैं। यह माची चट्टानों की एक लाइन है जो कि पहाड़ के मध्य भाग के चारों तरफ फैली हुई है। यह माची उत्तर की तरफ कुछ और फैल गई है जिससे वहाँ इसका आकार एक झरोखे (Terraee) के समान हो गया है। इस जगह किले के रक्षक सिपाहियों की कचहरियाँ एवं मकान बने हुए हैं। इस झरोखे की आकृति वाले स्थान के पूर्व में भैरवखिंड नामक पहाड़ी स्थित है। यह पहाड़ी पुरन्दर की पहाड़ी के ढाल की सतह से उठी हुई है और किले के ऊपरी भाग के उत्तर पूर्वीय हिस्से पर झुकी हुई है। यह भैरवखिंड नामक पहाड़ी इसी प्रकार एक मील तक पूर्व की तरफ फैली हुई है जहाँ जाकर एक टेबुल लेन्ड में इसका अन्त होता है। यह Table land समुद्र की सतह से ३६१८ फीट ऊँचा है और इसी पर रुद्रमाला का किला (वर्तमान वज्रगढ़) बना हुआ है।

यह वज्रगढ़ पुरन्दर के नीचे के किले (माची) के उस अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण उत्तरीय विभाग की रक्षा करता था जहाँ कि किले के रक्षक सैनिक रहते थे। इसी वज्रगढ़ के हस्तगत कर लेने के कारण ई० सन् १६६५ में जयसिंह-जी ने और ई० सन् १८१७ में अंग्रेजों ने मरहठों को पुरन्दर की रक्षा करने में असमर्थ बना दिया था। एक दूरदर्शी सेना नायक की तरह जयसिंहजी ने पहले वज्रगढ़ पर धावा करने का निश्चय किया।

दिलेरखाँ ने अपने भतीजे, अफ़गान सेना, हरिभान और उदयभान गौर आदि के साथ पुरन्दर और रुद्रमंडल के बीच अपना मोर्चा कायम किया। दिलेर-खाँ के आगे तोपखाने का अफसर तरकताज़खाँ और जयसिंहजी के द्वारा भेजी गई टुकड़ी थी। किरतसिंहजी ने ३००० सवारों और कुछ दूसरे मन्सबदारों के साथ पुरन्दर के उत्तरीय दरवाजे के सामने मोर्चा बन्दी की। दाहिनी बाजू पर राजा नरसिंह गौर, कर्ण राठोर, नरवर के राजा जगतसिंहजी और सैयद माकूलआलम ने अपनी मोर्चे बन्दी की। पुरन्दर के पीछे की तरफ खिड़की के सामने दाऊदखाँ, राजा रायसिंह राठोड़, महम्मद सालेह तरखान, रामसिंह हाड़ा, शेरसिंह राठोर, राजसिंह गौर और दूसरे सरदार कायम किये गये थे। इस स्थान से दाहिनी बाजू पर रसूलबेग रोजभानी और उसके आधीनस्थ सेना नियुक्त थी। रुद्रमाल के सामने दिलेरखाँ के कुछ सिपाहियों के साथ, चतुर्भुज चौहान ने मोर्चे बन्दी की और इनके पीछे मित्रसेन, इन्द्रभाल बुन्देला और कुछ दूसरे अधिकारी गण रहे।

जयसिंहजी अपने सिपाहियों को किले के नज़दीक पहाड़ी की सतह में ले गये। इन सिपाहियों ने पहाड़ी की बाजू पर अपने डेरे गाड़ दिये। जयसिंहजी प्रति दिन खाइयों को देखने जाते, अपने आदमियों को उत्साहित करते और इस प्रकार इस घेरे का निरीक्षण करते रहते थे। पहले पहल उन्होंने अपनी सारी शक्तियाँ तोपों को ढालू और मुश्किल पहाड़ियों पर चढ़ाने की तरफ लगा दीं। अब्दुल्लाखाँ नामक एक तोप को रुद्रमाल के सामने के मोर्चे पर चढ़ाने में तीन दिन लग गये। इसके बाद फतेहलश्कर नामक तोप चढ़ाई गई जिसमें साढ़े तीन दिन लगे। तीसरी तोप भी जिसका कि नाम हाहेली था, बड़ी मुश्किल से वहाँ तक चढ़ाई गई। इसके बाद मुगल-सेना ने लगातार गोलाबारी शुरू की जिससे कि किले के सामने की दीवारों का नीचे का हिस्सा नष्ट भ्रष्ट होगया। इसके बाद रास्ता साफ करने वाले (Pioneers) उन दीवारों की सतह में छेद करने के लिये भेजे गये।

१३ वीं अप्रेल अर्ध रात्रि के समय दिलेरखाँ की टुकड़ी ने किले को

भयंकर गोलाबारी करके नष्ट भ्रष्ट कर डाला और शत्रु को उसके पीछे के अहाते में हटा दिया। इस कार्य में सात आदमी काम आये और चार घायल हुए। इधर जयसिंहजी ने दिलेरखाँ की मदद के लिये अपने कुछ और आदमी भेज दिये। दूसरे दिन विजयी मुगल सेना और भी अन्दर के भाग में बढ़ी और सीढ़ियों द्वारा अन्दर जाने का प्रयत्न करने लगी। इस दिन सायं-काल के समय मुगलों के गोलाबारी से तंग आकर मरहठे सैनिकों ने किले के बाहर आकर अस्त्र-शस्त्र रख दिये और आत्मसमर्पण कर दिया। इस समय जयसिंहजी ने बड़ी बुद्धिमानी का कार्य किया। उन्होंने इन मरहठे सैनिकों को सकुशल अपने २ घर लौट जाने दिया। इतना ही नहीं, वरन् इनके खास २ नेताओं को उनकी बहादुरी के उपलक्ष में बढ़ियाँ कई बहुमूल्य राजसी पोशाकें इनाम में दीं।

शत्रु के साथ यह नम्रता का बर्ताव इसलिये किया गया था कि जिस से दूसरे मरहठे सरदार व सैनिक भी लड़ मरने के बजाय जल्दी ही आत्म-समर्पण कर दें। आज की लड़ाई में मुग़ल सेना के ८० आदमी मारे गये और १०९ घायल हुए।

वज्रगढ़ पर अधिकार करना ही पुरन्दर के किले पर विजय प्राप्ति करने के मार्ग की पहिली सीढ़ी थी अथवा स्वयं जयसिंहजी के शब्दों में यों कह लीजिये कि " वह पुरन्दर के किले की कुंजी थी "। अब दिलेरखां पुरन्दर के किले की तरफ अग्रसर हुआ। इधर जयसिंहजी ने शिवाजी के राज्य में लूट खसोट करना शुरू कर दिया। इसका कारण जैसा कि उन्होंने औरंग-जेब को लिख भेजा था वह यह था "इससे शिवाजी और बीजापुर के सुल्तान को यह विश्वास हो जायगा कि मुग़लों के पास इतनी विशाल सेना है कि घेरा डालने के अतिरिक्त भी फौज बच जाती है। दूसरा फ़ायदा इस से यह होगा कि शिवाजी के राज्य में लगातार धूम मचाये रखने के कारण उनकी सेनाएँ किसी एक स्थान पर इकट्ठी नहीं होने पायंगी "।

इस प्रकार अपने कुछ जनरलों को इधर उधर भेज देने में उनका

एक मतलब यह भी था कि उनके कुछ सेनानायक आज्ञा-पालक नहीं थे और इसलिये उनके वहां रहने से नहीं रहना ही अच्छा था। दाऊदखाँ कुरेशी किले की खिड़की पर दृष्टि रखने के लिये नियुक्त किया गया था, परन्तु कुछ ही दिन बाद यह मालूम हुआ कि मरहठे लोगों का एक दल दाऊदखां की आंखों में धूल झोंक कर उस खिड़की द्वारा किले में प्रविष्ट होगया है। इस पर दिलेरखां ने दाऊदखां की खूब लानत-मलामत की, जिससे दोनों में तनाजा हो गया। जब यह बात जयसिंहजी को मालूम हुई तो उन्होंने दाऊदखाँ को अपने पहले के स्थान पर वापस भेज दिया और खिड़की के सामने पुरदिलखाँ और शुभकरण बुन्देला को नियुक्त किया। परन्तु इससे भी कुछ फायदा नहीं हुआ। शुभकरण ने इस कार्य में बिलकुल दिलचस्पी नहीं दिखाई। दिलचस्पी दिखाना तो दूर रहा, वह तो शिवाजी के साथ सहानुभूति दिखलाने लगा। उधर दाऊदखाँ भी अपने स्थान पर उधम मचाने लगा। वह बार २ यह अफ़वाह फैलाने लगा कि पुरन्दर के किले पर अधिकार कर लेना बिलकुल असंभव है इसलिये इस पर घेरा डालना सेना और द्रव्य का दुरुपयोग करना है। जयसिंहजी के मतानुसार यह अफ़वाह फलाने में दाऊदखाँ का आशय यह था कि इससे ख़ास सेना नायक (Cammander In Chief) निराश होजाय और वह दिलेरखाँ को हृदय से मदद न दे ताकि दिलेरखाँ पर घेरे का तमाम भार पड़ जाय और अन्त में वह अपने कार्य में असफल मनोरथ होकर लज्जा के साथ वापस लौट जाय।

जयसिंहजी दाऊदखाँ के हृदयगत् भावों को ताड़ गये। इसलिये उन्होंने तुरन्त एक युक्ति ढूंढ़ निकाली। एक इधर उधर घूमती रहने वाली सेना की टुकड़ी (Flying Column) बनाई गई और दाऊदखाँ को उसका नायक नियुक्त करके आसपास के भिन्न २ मरहठों के गाँवों पर लगातार हमले करते रहने के लिये भेज दिया।

२५ वीं अप्रेल को दाऊदखाँ की आधीनता में ६००० मजबूत सिपाहियों की उक्त टुकड़ी, जिसमें कि राजा रायसिंह, शरजाखाँ (बीजापुरी जन-

आम्बेर शहर का दृश्य (जयपुर)
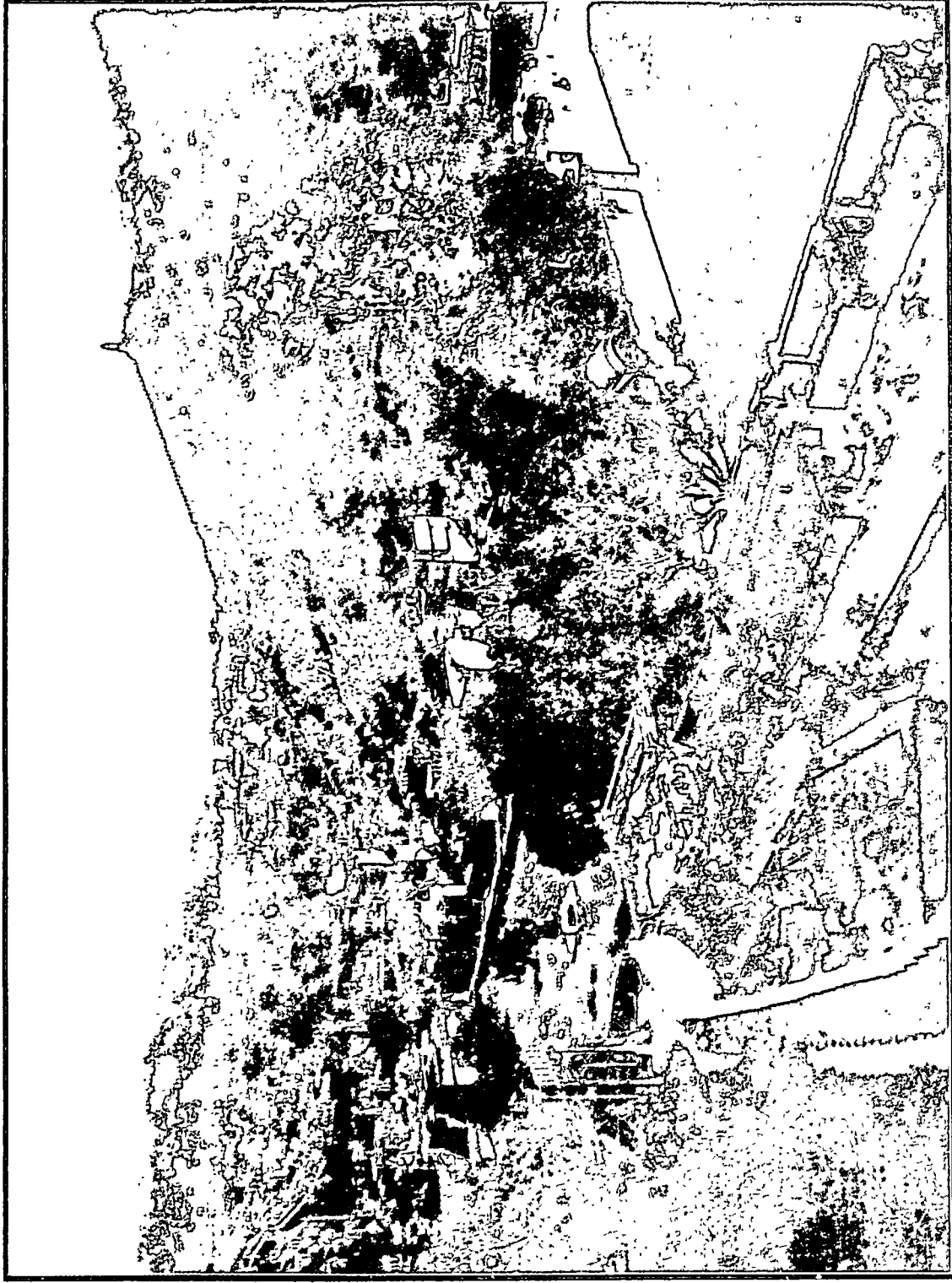
रल) अमरसिंह चन्द्रावत, अचलसिंह कछवा और खुद जयसिंहजी के ४०० सिपाही भी थे। दोनों बाजुओं से उनकी सेना राजगढ़, सिंहगढ़ और रोहिरा की सीमा में लूट खसोट मचाने के लिये रवाना हुई। इस सेना को रवाना होते समय यह हुक्म दिया गया था कि "उक्त प्रदेश में एक भी खेत व गाँव का निशान तक न रहने पाये तमाम बर्बाद कर दिये जाय"। फ़ौज की एक दूसरी टुकड़ी कुतुबुद्दीनखाँ और लूदीखाँ की आधीनता में उत्तरीय जिलों को बर्बाद करने के लिये भी भेज दी गई कि जिससे शिवाजी सब तरह से बर्बाद होकर घबरा जाँय।

२७ वीं तारीख को दाऊदखाँ की सेना रोहिरा के किले के पास पहुँची। उसने क़रीब क़रीब ५० गाँवों को जलाकर बिलकुल तहस-नहस कर डाले। कुछ मुगल सैनिक चार ऐसे आबाद गाँवों में जा पहुँचे जहाँ कि मुगल-सेना पहले कभी नहीं पहुँची थी। फिर क्या था। उन सैनिकों ने तमाम सेना को वहाँ बुला ली। जिन जिनने सामना किया वे धराशायी कर दिये गये, गाँवों पर अधिकार कर लिया गया, वे लूट लिये गये और अन्त में जला दिये गये। यहां एक दिन ठहर कर मुग़ल सेना ३० वीं तारीख को राजगढ़ की तरफ अग्रसर हुई। रास्ते में जो जो गाँव आये, वे सब के सब जला दिये गये। किले पर अधिकार नहीं करते हुए—जिसके लिये कि वे तैयार भी नहीं थे—उन्होंने आसपास के गांवों को लूटना और नष्ट भ्रष्ट करना शुरू किया। यह सब भयंकर कार्य राजगढ़ के किले के रक्षक सैनिक, तोपों की आड़ में बैठे २ देख रहे थे परन्तु मुग़ल सेना पर आक्रमण करने की उनकी हिम्मत नहीं हुई।

इस जिले के आस पास की जमीन विषम और पहाड़ी थी। इसलिये मुग़ल सेना चार मील पीछे हटकर गुंजनखोरा के दर्रे के पास की सम भूमि में ठहरी। आज रात को इस सेना ने यहीं विश्राम किया। दूसरे दिन यह सेना शिवापुर पहुँची। यहाँ से दाऊदखाँ ने सिंहगढ़ की तरफ जाकर उसके आसपास के मुल्क को बर्बाद किया। अन्त में ३री मई को जयसिंहजी के हुक्म से वह पूना जा हाजिर हुआ।

इस समय कुतुबुद्दीनखाँ, कुनारी के किले के पास के पुरखोरा और तासीखोरा नामक दर्रों में स्थित गांवों को बर्बाद करने में लगा हुआ था। जयसिंहजी ने इसे भी एक दम पूने बुला लिया। इस नये हुक्म का कारण यह था कि शिवाजी ने इस समय लोहगढ़ के पास एक बड़ी भारी सेना एकत्रित करली थी जिसको कि नष्ट करना जयसिंहजी ने ज्यादा जरूरी समझा।

उक्त निश्चय के अनुसार जयसिंहजी ने दाऊदखाँ और कुतुबुद्दीनखाँ को अपनी २ टुकड़ियों के साथ लोहगढ़ की तरफ रवाना किये। पूना से प्रस्थान करके यह सेना ४ थी तारीख को चिंचवाड़ ठहरी और ५ वीं तारीख को लोहगढ़ जा पहुँची। ज्योंही मुग़ल सेना के कुछ सिपाही किले के पास पहुँचे त्योंही मरहठी सेना के ५०० सवारों और १००० पैदल सिपाहियों ने उन पर आक्रमण कर दिया। परन्तु शाही सिपाहियों ने उनका अच्छा मुक़ाबिला किया। इतने ही में और शाही सेना आगई। भयंकर युद्ध होने के बाद मरहठे हार गये और उनका नुकसान भी बहुत हुआ। विजयी मुग़ल सेना ने पहाड़ी की तलहटी में स्थित कई गाँवों को जला दिये। जाते समय वे कई जानवर भी पकड़ ले गये। मरहठों के कई आदमी मुगलों के कैदी बने। इसके बाद मुगल सेना ने लोहगढ़, तिकोना, विसापुर और तांगाई के किलों के आसपास के प्रदेश और बालाघाट तथा मैनघाट के प्रदेशों पर हाथ साफ किया। इतना हो जाने पर मुगल सेना वापस लौट गई। कुतुबुद्दीनखाँ पूने के पास के थाने पर चला गया और दाऊदखाँ अपने साथियों सहित १५ दिन की ग़ैरहाजिरी के बाद १९ वीं मई को फिर से मुग़ल सेना में जा मिला।

घेरे को विफल करने के लिये मरहठों के प्रयत्न।

इधर जयसिंहजी शिवाजी को कुचल डालने के प्रयत्न कर रहे थे। उधर मरहठे सेना नायक भी चुप नहीं बैठे हुए थे। वे मुग़ल सेना को त्रस्त करके घेरे को उठा देने के लिये जी तोड़ परिश्रम कर रहे थे।

अप्रेल के आरंभ में नेताजी पालकर ने—जो कि शिवाजी के रिश्तेदार

और घुड़ सवारों के नायक थे—परेन्दा के किले पर भयंकर आक्रमण किया; परन्तु सूपा नामक स्थान से मुग़लसेना के आने के समाचार सुनकर मरहठी सेना इधर उधर बिखर गई। इससे शत्रु का मुक़ाबला न हो सका। इसके बाद मई के अन्त में उरोदा नामक स्थान पर मरहठे एकत्रित हुए थे, पर कुतुबुद्दीन को यह खबर लग गई। उसने वहाँ जाकर उन्हें इधर उधर बिखेर दिया। रास्ते में जो जो गाँव आये, कुतुबुद्दीन ने सबको लूट लिया। उसने जहाँ कहीं मरहठों को अपने किलों के पास एकत्रित होते देखा कि तुरन्त उनको तितर बितर कर दिया। लोहगढ़ के किले पर हमला कर दिया गया और वहाँ पर स्थित मरहठे सैनिक क़त्ल कर दिये गये तथा भगा दिये गये। दाऊदखाँ ३०० कैदियों और ३००० चौपायों के साथ वापस लौट आया। इसके पश्चात् नारकोट में ३००० मरहठे घुड़सवार एकत्रित हुए पर पूना के नवीन थानेदार कुबदखाँ ने उनको वहाँ से भी भगा दिया। लौटते समय उक्त थानेदार कई किसानों और चौपायों को पकड़ लाया।

पाठक ? उपरोक्त बातों से यह खयाल न कर लें कि मरहठे जगह २ हारते ही गये। उन्होंने भी कई जगह मुग़ल-सेना को बड़ी बुरी तरह छकाया था। स्वयं जयसिंहजी ने कहा था कि "कहीं कहीं हमें शत्रुओं द्वारा चली हुई चालों को रोकने में विफल मनोरथ भी होना पड़ा है।" खफ़ीखाँ ने तो और भी साफ २ कहा है कि "शत्रुओं ने कई बार अँधेरी रात में अचानक हमले करके, रास्तों तथा मुश्किल दर्रों की नाके बंदी करके और जंगलों में आग लगाकर शाही सैनिकों की गतिविधि को एकदम बन्द कर दी थी। मरहठों द्वारा उपस्थित की गई उपरोक्त बाधाओं के कारण मुग़लों को कई आदमी तथा चौपायों से हाथ धोना पड़ा था"।

अप्रेल मास के मध्य में जब वज्रगढ़ पर मुग़लों का अधिकार हो गया तब दिलेरखाँ ने आगे बढ़कर माची (पुरन्दर के नीचे के किले) पर घेरा डाल दिया। उसने किले के उत्तर पूर्वीय कोण तक अर्थात् खण्डकाला के किले तक खाइयाँ खुदवा दीं। किले की रक्षक सेना ने घेरा डालने वालों का विरोध किया। एक

दिन रात्रि के समय उन्होंने किरतसिंह पर हमला किया, पर किरतसिंह लड़ने के लिये बिलकुल तैयार था इसलिय उसने उन्हें वापस हटा दिया। इस हमले में मरहठों के बहुत से आदमी काम आये। इसके बाद एक दिन अँधेरी रात में मरहठों ने रसूलबेग रोजभानी के मोर्चों पर अचानक हमला कर दिया। रसूलबेग के १५ सिपाही घायल हुए और उसकी तोपों में कीले ठोक दिये गये। पर हल्ले-गुल्ले के कारण आसपास के मोर्चों के मुग़ल सैनिक रसूलबेग की सहायतार्थ आ गये जिससे मरहठों को वापस हट जाना पड़ा। दूसरे दिन फिर एक छोटी सी लड़ाई हुई जिसमें मुगलों के ८ आदमी मारे गये। पर दिलेरखाँ इससे तनिक भी विचलित नहीं हुआ और कृतान्त के समान पुरन्दर के सामने डटा ही रहा। उसके सिपाही भी बड़े उत्साह से काम करते थे। जिस कार्य को करने में दूसरा आदमी एक मास लगा देता उसी को वे एक दिन में कर डालते थे।

पुरन्दर की बाहरी दीवार पर गोलाबारी

दिलेरखाँ ने भयानक गोलाबारी करके दोनों किलों की बाहरी दीवारों को बिलकुल नष्ट भ्रष्ट कर डाला मई के मध्य तक मुग़ल-सेना के मोर्चे उक्त किलों की सतह तक जा पहुँचे। अब किलों की रक्षक सेना ने शत्रुओं पर जलता हुआ तेल, बारूद की थैलियाँ, बम तथा भारी २ पत्थर बरसाने शुरू किये। इससे मुग़ल सेना की गति रुक गई। यह देख जयसिंहजी ने लक्कड़ों और पटियों द्वारा एक ऊँचा मचान बनवाने तथा इस मचान पर दुश्मन का मुकाबला करने के लिये तोपें चढ़ाई जाने और साथ ही कुछ बन्दूकची भी यहाँ खड़े किये जाने का हुक्म दिया। दो वक्त मचान खड़ा किया गया, पर दोनों ही बार वह शत्रुओं द्वारा जला दिया गया। इसके लिये भी जयसिंहजी ने युक्ति ढूँढ़ निकाली। उन्होंने रूपसिंह राठोर और गिरिधर पुरोहित को हुक्म देकर पहले किले के सामने एक दीवार खड़ी करवा दी। साथ ही उन्होंने कुछ राजपूत तीरंदाजों को अपने तीरों के निशाने किले की तरफ करके खड़े कर दिये।

इन्होंने मराठों को किले के ऊपर चढ़ने न दिया। इस प्रकार का बन्दोबस्त कर लेने पर मचान निर्विघ्नता पूर्वक बनाया जाने लगा। इस समय सूर्यास्त होने में दो घंटे शेष रह गये थे।

अभी तोपें मचान पर चढ़ाई भी नहीं गई थीं कि कुछ रोहिले सिपाहियों ने बिना दिलेरखाँ को सूचित किये ही सफ़ेद किले पर गोले बरसाना शुरू कर दिया। मराठे सैनिकों के झुन्ड के झुन्ड दीवार पर इकट्ठे हो गये और उन्होंने मुगलों की गोलाबारी बन्द कर दी। पर मुगल सेना की सहायतार्थ और भी बहुत सी सेना आ गई और साथ ही दोनों तरफ के मोर्चों पर सैनिक सीढ़ियों द्वारा चढ़ २ कर मराठों की तरफ झपटने लगे। जयसिंहजी की तरफ का भूपतसिंह पँवार जो कि ५०० सैनिकों का नायक था सफ़ेद क़िले की दाहिनी बाजू पर कई राजपूतों के साथ काम आया। बाईं बाजू पर बालकृष्ण सखावल और दिलेरखाँ के कुछ अफ़गान सिपाही लड़ रहे थे। इसी समय किरतसिंह और अचलसिंह भी, जो कि अभी तक लकड़ी के मचान का आश्रय लिये बैठे थे–लड़ाई के मैदान में आ धमके। भयंकर मारकाट चलने लगी। मरहठों का बहुत नुक़सान हुआ और उन्होंने पीछे हटकर काले किले में जाकर आश्रय लिया। यहाँ से इन्होंने फिर मुग़ल-सेना पर बम गोले, बारूद, पत्थर और जलनेवाले पदार्थ फेंकना शुरू किया। आगे बढ़ना असम्भव समझ जयसिंहजी को आज तीन ही बुर्जों पर अधिकार कर सन्तोष मानना पड़ा। उन्होंने अपनी सेना को वहीं (जहाँ तक कि वे पहुँच गये थे) अपने मोर्चे क़ायम करने का हुक्म दिया। और सफेद किले को अधिकृत कर उस दिन आगे बढ़ने के कार्य को उन्होंने स्थगित रखा।

इसके बाद दो दिन उक्त लकड़ी के मचान को सम्पूर्ण करने में लगे। सम्पूर्ण कर लेने पर दो हलकी तोपें भी उस पर चढ़ा दी गईं। अब मुग़ल सेना ने यहाँ से शत्रु की काली बुर्ज पर गोलाबारी करना शुरू किया। इस गोलाबारी से तंग आकर मराठे सैनिक काली बुर्ज एवं उसके पास की दूसरी बुर्ज से भी पीछे हट गये। उन्होंने किले की दीवार से लगे हुए मोर्चों में जाकर शरण ली,

पर अब वे अपने सिरों को ऊपर नहीं निकाल सकते थे। निदान उक्त मोर्चों में भी उनकी रक्षा न हो सकी। और आखिरकार वे उसके पीछे की खाइयों के पास चले गये। इस प्रकार पुरन्दर के नीचे के किले की ५ बुर्जों और किले के एक मोर्चे पर मुगलों का अधिकार हो गया।

अब मराठों के हाथों में पुरन्दर के रह जाने की कोई आशा नहीं रह गई थी। वह तो पहिले ही क़रीब २ मुगलों के अधिकार में आ सा गया था कि इधर जयसिंहजी की माँग के मुवाफ़िक़ बादशाह ने एक भारी तोपखाना और भी रवाना कर दिया। किले के रक्षक सिपाही गिनती में कुल २००० थे जिनमें से कई तो लगातार दो महीने की लड़ाई में काम आ गये थे। घेरे के आरंभ में ही उनका बहादुर सेनानायक मुरार बाजीराव वीरगति को प्राप्त होगया था। इधर मुग़ल सेना की संख्या मरहठों की सेना से क़रीब २ दसगुनी थी।

मुरार बाजीराव ने अपने ७०० चुने हुए वीर सिपाहियों के साथ दिलेरखां पर उस समय हमला किया था जब कि वह अपने ५००० अफ़गान सैनिकों व कुछ दूसरे सिपाहियों के साथ पहाड़ी पर चढ़ने की कोशिश कर रहा था। इस समय मराठे सैनिक एक दम शत्रु पर टूट पड़े। वे शत्रु-सेना में मिश्रित हो गये। भयंकर मार-काट चलने लगी। मुरारबाजी ने बात की बात में अपने सैनिकों की सहायता से ५०० पठानों व दूसरे सैनिकों को धराशायी कर दिया। अब वह अपने ६० मज़बूत साथियों के साथ दिलेरखां के खेमे की तरफ झपटा। उसके कई साथी मुग़लों की अगणित सेना के हाथों मारे गये। परन्तु इससे मुरारबाजी की गति रुकी नहीं। वह दिलेरखाँ की तरफ बढ़ता ही गया। दिलेरखाँ भी मुरारबाजी के अद्वितीय साहस को सराहने लगा। उसने उन्हें कहला भेजा कि अगर आत्मसमर्पण कर दोगे तो हम तुम्हारे प्राणों की रक्षा करेंगे और साथ ही तुम्हें अपनी सेना में एक उच्च स्थान भी प्रदान करेंगे। पर वीर मुरार ने शत्रु के इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया। इतना ही नहीं, वह दिलेरखाँ पर वार करने के लिये झपटा

कि इतने ही में दिलेरखाँ ने एक तीर में उसका काम तमाम कर दिया। इस प्रकार मराठा सेना-नायक वीर मुरारबाजी अपने स्वामी की सेवा करते २ परलोक सिधारा। इस लड़ाई में मरहठी सेना के ३०० आदमी काम आये और बाकी बचे हुए वापस किले में लौट गये। मुरारबाजी के अधीनस्थ सैनिकों की बहादुरी एवं साहस को देखकर ग्रीस के स्पार्टन लोगों की बात याद आ जाती है। अपने सेना-नायक के वीर-गति को प्राप्त हो जाने पर भी उक्त महाराष्ट्र वीर बहादुरी के साथ मुग़लों का सामना करते रहे। वे कहते रहे कि "मुरारबाजी के मर जाने से क्या हुआ ? प्रत्येक सैनिक मुरारबाजी है। इसलिये हम उसी साहस और उत्साह के साथ लड़ते रहेंगे।"

पर जयसिंहजी भी मज़बूती और सफलता के साथ आगे बढ़ते ही गये। पुरन्दर चारों तरफ से बिलकुल घेर लिया गया। दो मास की लगातार लड़ाई के कारण उसके रक्षक सैनिकों की संख्या बहुत कम रह गई थी। इधर नीचे के किले की पाँच बुर्जों पर मुगलों का अधिकार हो ही गया था। उक्त कारणों से अब पुरन्दर की रक्षा करना मरहठों के लिये दुस्साध्य हो गया। मालूम नहीं होता था कि किस समय पुरन्दर पर मुगलों का अधिकार हो जाय। शिवाजी को महसूस होने लग गया था कि अब किले की रक्षा करते रहना निरर्थक होगा। इसके अतिरिक्त उनको यह भी ख़याल हुआ कि अगर इस दुर्ग पर मुगलों का अधिकार हो गया तो इसमें रक्षित समस्त मरहठे सरदारों के कुटुम्बी-जन मुग़ल सेना के हाथ पड़ जायँगे। मुगल सेना उनका निरादर करेगी। इधर उधर घूमकर देश को नष्ट भ्रष्ट करने वाली मुग़ल सेना को वे रोकने में असमर्थ हुए। इस प्रकार इस समय शिवाजी जिधर दृष्टि डालते, उधर ही उन्हें असफलता और विनाश का दृश्य दिखाई पड़ता था।

मुगलों द्वारा २ री जून को प्राप्त की गई विजय तथा पुरन्दर के नीचे वाले किले के अपने हाथों से निकल जाने की संभावना, आदि २ कुछ ऐसी घटनाएँ उपस्थित हो गई थीं जिनके कारण शिवाजी ने जयसिंहजी से मिलकर मुगलों के साथ सुलह करने का निश्चय कर लिया।

अपने उक्त निश्चय के अनुसार शिवाजी ने जयसिंहजी से कहला भेजा कि "अगर आप शपथ के साथ मेरी प्राण-रक्षा और सकुशल वापस घर लौट आने का जिम्मा लें तो मैं आप से मिल सकता हूँ। यह बात दूसरी है कि मेरी शर्तें आपको मंजूर हों या न हों"।

शिवाजी और जयसिंहजी

मिर्ज़ाराजा जयसिंहजी ने पुरन्दर में शिवाजी पर विजय प्राप्त की। पुरन्दर के किले एक एक करके जयसिंहजी के हाथ में आगये। अब शिवाजी ने जयसिंहजी से मिलकर सुलह की नई शर्तें पेश करने का निश्चय किया। पर साथ ही में शिवाजी ने जयसिंहजी से प्रतिज्ञापूर्वक इस बातका आश्वासन ले लिया कि चाहे सुलह की शर्तें मंजूर हों, या न हों, पर उनकी सुरक्षिता में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित न होने पावेगी।

तारीख ११ जून को शिवाजी पालकी में बैठकर जयसिंहजी से मिलने के लिये डेरे पर गये। जयसिंहजी ने अपने मंत्री उदयराज और उग्रसेन कछवा को बहुत दूर तक उनकी अगवानी के लिये भेजा, साथही यह भी कहलवाया कि अगर आप सब किले हमारे सुपुर्द कर देने को तैयार हों तो आवें वरना लौट जायँ। शिवाजी ने यह बात स्वीकार कर ली और वे अपने दो आदमियों के साथ जयसिंहजी के डेरे पर आ गये। जयसिंहजी ने कुछ आगे बढ़कर उनका स्वागत किया। उन्हें अपने गले लगाया तथा अपने पास बैठाया। इतना होते हुए भी जयसिंहजी ने कुछ ख़तरा समझकर सशस्त्र आदमियों का पहरा रखा।

आधी रात तक जयसिंहजी और शिवाजी में बात चीत होती रही। सुलह की शर्तों के सम्बन्ध में बहुत बहस हुई। जयसिंहजी को अपनी सुदृढ़ स्थिति का पूरा पूरा विश्वास था। उनके पीछे हिन्दुस्तान के बादशाह की ताक़त का पूरा पूरा ज़ोर था। अतएव इस समय उन्होंने शिवाजी पर दबाव डालकर अपने अनुकुल शर्तें तय करवाई। वे इस प्रकार हैं:—
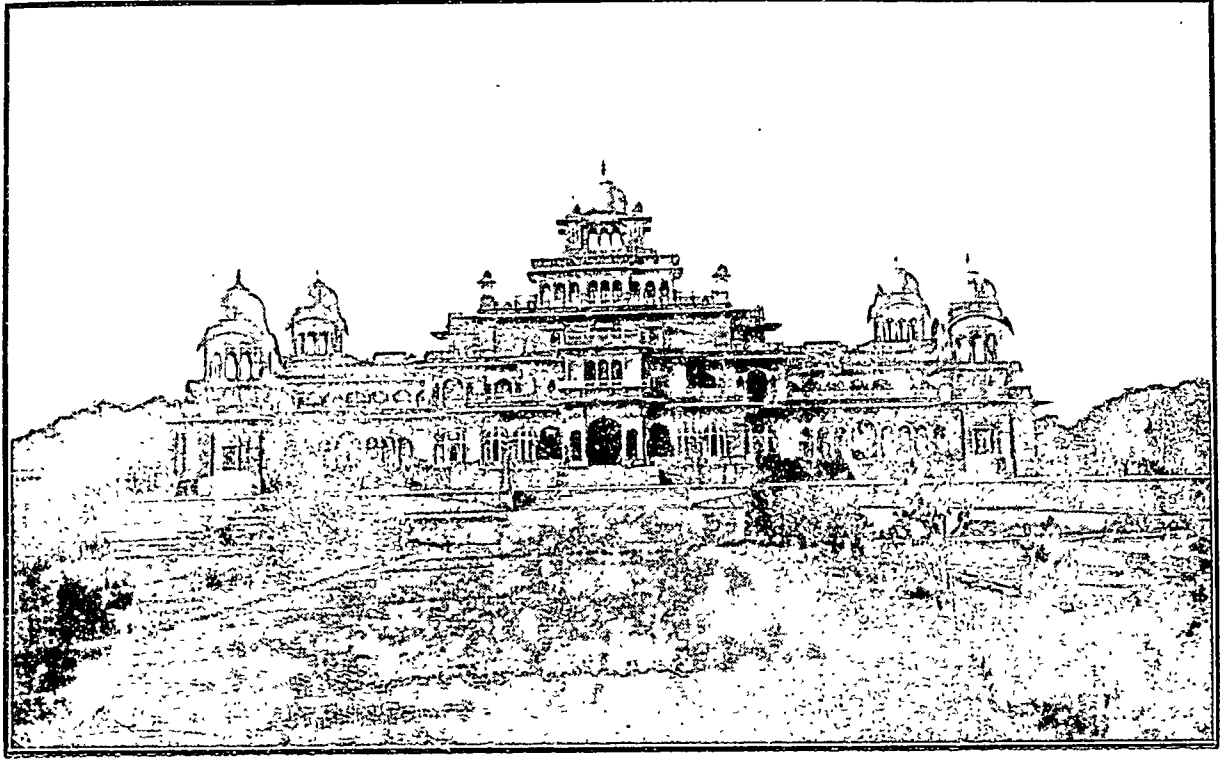
म्यूजियम राम निवास बाग, जयपुर।

भारत के देशी राज्य—
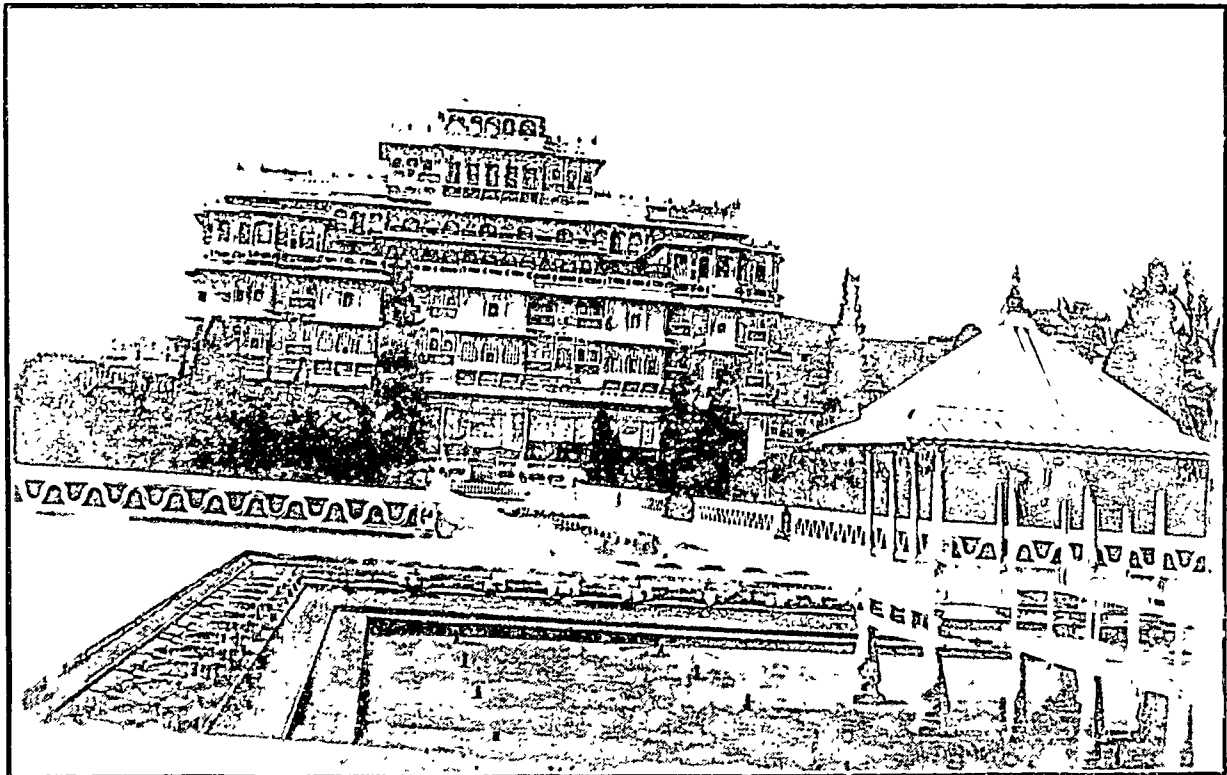
चन्द्र महल, जयपुर।

शिवाजी के किलों में से २३ किले–जिनकी जमीन की आय ४ लाख (Hun) है, मुगल साम्राज्य में मिला लिये जावें; शेष १२ किले—जिनकी जमीन की आमदनी १ लाख है—शिवाजी के आधीन इस शर्त पर रहें कि वे शाही तख्त के खैरख्वाह बने रहें।

इसके दूसरे दिन (१२ जून को) मुगल सेना ने पुरन्दर में प्रवेश कर उस पर अधिकार कर लिया। तमाम फौजी सामान मुगल अफसरों के हाथ लगा। शिवाजी ने सुलह के अनुसार २३ किले जयसिंहजी के सुपुर्द कर दिये।

इतना होने के पश्चात् जयसिंहजी शिवाजी को मुगल दरबार में उपस्थित करने का प्रयत्न करने लगे। यह काम बड़ा ही मुश्किल था। क्योंकि सुलह की बात-चीत के समय शिवाजी ने मुगल दरबार में हाज़िर न होने के लिये साफ साफ कह दिया था। हाँ, उन्होंने अपने पुत्र को मुगल दरबार में भेजना स्वीकार कर लिया था। इसके कई कारण थे। पहली बात तो यह थी कि, शिवाजी को धूर्त औरंगजेब पर बिलकुल विश्वास न था। वे उसे पक्का विश्वासघाती और दुष्ट-स्वभाव का समझते थे। दूसरी बात यह थी कि उन्हें मुसलमान बादशाह के सामने सिर झुकाना बहुत बुरा मालूम होता था। वे बादशाह से दिली नफ़रत करते थे। महाराज शिवाजी स्वतंत्रता के पवित्र वायु-मण्डल में पले थे। उनकी नस नस में स्वतंत्रता का पवित्र रक्त प्रवाहित हो रहा था। ऐसी दशा में उन्हें शाहीतख्त के सामने हाथ जोड़े हुए खड़ा रहना कब पसन्द हो सकता था।

जयसिंहजी ने शिवाजी को बहुत कुछ प्रलोभन दिया और कहा कि बादशाह आपको दक्षिण का वाइसराय (सूबेदार) बनाकर भेज देंगे। साथ ही साथ इसी प्रकार के और भी कई प्रलोभन दिये गये। जयसिंहजी ने शपथपूर्वक इस बात की प्रतिज्ञा की कि दिल्ली में आपको किसी प्रकार का धोखा न होगा। तब शिवाजी ने अपने कई मराठे सहयोगियों की सलाह से दिल्ली जाना निश्चय किया। ई० सन् १६६६ के तीसरे सप्ताह में वे अपने बड़े पुत्र सम्भाजी, ७ विश्वासपात्र अधिकारी और ४ हजार सेना के सहित आगरे के लिये रवाना

हुए। उन्हें मुगल सम्राट् की आज्ञा से दक्षिण के खज़ाने से १ लाख रुपया मार्ग-व्यय के लिये दिया गया। जयसिंहजी ने गाज़ीबेग नामक एक फौजी अधिकारी को शिवाजी के साथ भेजा। ९ मई को शिवाजी आगरे पहुँचे। १२ मई का दिन सम्राट् से आपकी मुलाकात के लिये निश्चित किया गया।

इस दिन सम्राट् औरंगजेब की ५० वीं वर्ष गाँठ थी। आगरे का किला खूब सजाया गया था। बड़े बड़े राजा महाराजा तथा अन्य दरबारी सम्राट् का अभिवादन करने के लिये उपस्थित हो रहे थे। ये सब लोग शाही-तख्त के सामने बड़े अदब के साथ खड़े थे। जब शिवाजी वहाँ पहुँचे तो कुँवर रामसिंहजी ने आगे बढ़ कर उनका स्वागत् किया। शिवाजी ने सम्राट् को १५०० सोने की मुहरें नज़र कीं और ६०००) उन पर न्यौछावर किये। औरंगजेब जोर से बोला "आवो राजा शिवाजी" पर थोड़ी ही देर के बाद सम्राट् के संकेत से वे पीछे ले जाये गये और वे वहाँ खड़े किये गये जहाँ तीसरे दर्जे के सरदार खड़े थे। यह व्यवहार शिवाजी को बहुत बुरा मालूम हुआ। इस अपमान से उनका अन्तःकरण जलने लगा; उनकी आँखों से मानो चिनगारियाँ निकलने लगीं। वे कुँवर रामसिंहजी से गुस्सा होकर जोर से बोलने लगे। इस समय बादशाह और सब दरबारियों का ध्यान इस घटना की ओर गया। रामसिंहजी ने शिवाजी को शान्त करने का बहुत यत्न किया, पर कोई फल नहीं हुआ। शिवाजी गुस्से से इतने बेकाबू हो गये कि वे नीचे गिर पड़े। इस पर बादशाह ने पूछा, क्या बात है? रामसिंहजी ने उत्तर दिया "यह सिंह जंगल का जानवर है, यहाँ की गर्मी इसके लिये असह्य है, इसीलिये यह बीमार हो गया है।" इसके बाद कुँवर रामसिंहजी ने मजलिसे-आम में शिवाजी के इस व्यवहार के लिये क्षमा प्रार्थना करते हुए कहा कि—"ये दक्षिणी हैं और दरबार तथा शिष्टाचार की पद्धतियों से अपरिचित हैं।" औरंगज़ेब ने शिवाजी को वहाँ से हटा कर एक अलग कमरे में ले जाने की आज्ञा दी, साथ ही साथ उन पर गुलाब जल छिड़कने के लिये भी कहा।

दरबार से लौट जाने पर शिवाजी ने औरंगजेब पर विश्वासघात का आरोप लगाया और उसे कहलवाया कि 'इससे तो बेहतर है कि तुम मेरी जान ले लो।' यह बात औरंगजेब के कानों तक पहुँची। वह बहुत नाराज हुआ, उसने कुँवर रामसिंहजी को आज्ञा दी कि वह शिवाजी को शहरपनाह के बाहर जयपुर-हाऊस में रख दे और उसकी निगरानी के लिये जिम्मेवार बने।

बस, फिर क्या था! शिवाजी बंदीगृह में पड़ गये। वे इस व्यवहार से महादुःखी हुए। उन्होंने अपनी मुक्ति के लिये कई जरियों से बड़ी कोशिस की, पर असफल हुए। आखिर में शिवाजी ने किस युक्ति से अपनी मुक्ति की, यह बात इतनी जनश्रुत है कि यहाँ इस पर विशेष प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं।

हाँ, यहाँ हम एक बात पर अवश्य पाठकों का ध्यान आकर्षित करेंगे। राजा जयसिंहजी और उनके पुत्र रामसिंहजी ने शिवाजी की सुरक्षिता के लिये जो प्रतिज्ञा की थी, उसका यथाशक्ति पालन किया। राजा जयसिंहजी ने जब शिवाजी की इस अवस्था का समाचार सुना तो वे दुःखी हुए। उन्होंने सम्राट् से यह अनुरोध किया कि शिवाजी को क़ैद करने या मारने से वे किसी प्रकार का लाभ न उठा सकेंगे। शिवाजी को मित्र बनाने ही से सम्राट् दक्षिण में अपनी सल्तनत को मज़बूत कर सकते हैं, और इसीसे वे लोगों का विश्वास भी ग्रहण कर सकते हैं। उस समय राजा जयसिंहजी ने अपने पुत्र रामसिंहजी को जो अनेक पत्र लिखे थे, उसमें शिवाजी की सुरक्षितता (saf.ty) के लिये बड़ा अनुरोध किया गया था। कुछ फ़ारसी इतिहास-वेत्ताओं का मत है कि शिवाजी के निकल भागने के षड्यंत्र में राजा जयसिंहजी और उनके कुँवर रामसिंहजी का भी अप्रत्यक्ष हाथ था।

बीजापुर पर जयसिंहजी (१६६५–६६)

जयसिंहजी को दक्षिण भेजते समय औरंगजेब ने उनसे कह दिया था कि शिवाजी और बीजापुर के शासक दोनों ही को सज़ा दी जाय। पर

जयसिंहजी ने यह कह कर कि "दोनों ही मूर्खों पर एक साथ हमला करना बुद्धिमानी का कार्य न होगा। इसलिये पहले अपनी सारी शक्तियों को शिवाजी के खिलाफ़ लगा देना चाहिये।" इसी अनुसार जयसिंहजी ने अपनी सारी शक्ति का प्रयोग शिवाजी के विरुद्ध किया था। पुरन्दर की सन्धि के अनुसार महाराजा शिवाजी को अपने दो-तिहाई राज्य से हाथ धोकर मुगल-साम्राज्य के आज्ञाकारी सरदारों की गिनती में अपना नाम लिखवाना पड़ा। अतएव अब मुग़ल सेना की वक्र दृष्टि बीजापुर की आदिलशाही पर पड़ी।

बीजापुर वालों के अपराध भी बहुत थे। ई० सन् १६५७ के अगस्त की सन्धि के अनुसार उसने (बीजापुर के शासक ने) १ करोड़ रुपये बतौर हर्ज़ाने के और साथ ही साथ परेन्दा का किला; उसके आस पास का प्रदेश और निज़ामशाही कोंकन, सम्राट् को दे देना मंजूर किया था। पर इसके बाद शाहजहाँ की बीमारी एवं तख्त-नशीनी के लिये होने वाले झगड़ों से फ़ायदा उठाकर उसने अपनी उक्त प्रतिज्ञा का पालन नहीं किया। हाँ, औरंगजेब की तख्तनशीनी के समय उसने ८½ लाख रुपये अवश्य सम्राट् को नजर किये थे। इसके अतिरिक्त ई० सन् १६६५ के जनवरी मास में भी उसने अपने कोर्ट में स्थित मुग़ल राजदूत द्वारा सम्राट् के पास ७ लाख रुपये नक्द और ६ जवाहिरात से भरी हुई छोटी २ सन्दूकें भेजी थीं। पर यह रक़म हर्जाने की कुल रक़म के सामने कुछ भी नहीं थी। इसके सिवा अभी तक उसने सन्धि की शर्तों के अनुसार उक्त किला और उसके आसपास का प्रदेश भी सम्राट् के सुपुर्द नहीं किया था। इसमें कोई शक नहीं कि ई० सन् १६६० के सितंबर मास में परेन्दा के किले पर मुगलों ने अधिकार कर लिया था। पर यह कार्य आदिलशाह की मर्जी से नहीं, बल्कि उक्त किले के सूबेदार को घूस देकर किया गया था। आदिलशाह की यह इच्छा नहीं थी कि किला मुगल सम्राट् को सौंप दिया जाय।

ई० सन् १६६० में बीजापुर के शासक ने शिवाजी पर आक्रमण किया था। इस समय उसने मुगल सम्राट् को कुछ और खि़राज देने का अभिवचन

देकर उसके साथ सहयोग कर लिया था। सम्राट् ने भी इस बात को मंजूर कर लिया था। इस समय शाइस्ताखाँ द्वारा शिवाजी के किलों पर आक्रमण किये जाने का आदिलशाह ने बड़ा फायदा उठाया। मरहठों का ध्यान शाइस्ताखाँ के आक्रमणों की तरफ बट जाने के कारण इस समय आदिलशाह अपने पन्हाला, पवनगढ़ और दूसरे कई किलों को मरहठों से मुक्त करने में समर्थ हुआ। पर अली आदिलशाह यह द्वितीय खिराज भी सम्राट् को न दे सका। इतना ही नहीं, बल्कि वह यह कहने लगा कि मैंने तो अपनी मदद भेज कर शाइस्ताखाँ की सहायता की है। इस सहायता के लिये शाइस्ताखाँ ने भी मुझे यह अभिवचन दिया था कि वह सम्राट् द्वारा मेरी खिराज की रकम में १० लाख रुपये की कमी करवा देगा।

इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि जब जयसिंहजी ने शिवाजी पर चढ़ाई की थी तब बीजापुर के सुलतान ने खवासखाँ की आधीनता में फौज की एक टुकड़ी मुग़लों के सहायतार्थ भेजी थी। पर मदद मिलना तो दूर रहा, उल्टा जयसिंहजी को इस सेना से धोखा बना रहता था। मालूम नहीं होता था कि किस समय यह सेना बदल जाय। जयसिंहजी ने बीजापुरी जनरल पर इस बात का दोषारोपण किया था कि वह जी लगा कर नहीं लड़ता था। उन्होंने इस सेना के लिये निम्न लिखित उद्गार प्रगट किये थे।

"आदिलशाह ने मूर्खतावश मेरे साथ दग़ा किया है। बाहर से दिखाने के लिये उसने शिवाजी के राज्य पर सेना तो भेज दी, पर वह यह समझता है कि शिवाजी के बिलकुल नाश में मेरा भी अहित है। वह शिवाजी को अपने और मुगलों के बीच की दीवार समझ कर उसके गिरा दिये जाने में सहमत नहीं है। इसीलिये उसने शिवाजी से एक गुप्त सन्धि की है और उसी की तन, मन, धन से सहायता भी की है। उसने गोलकुंडावाले को भी इस नीति में सहमत होने और शिवाजी को आर्थिक सहायता पहुँचाने के लिये समझाया है। एक तरफ तो वह यह कार्रवाइयाँ कर रहा है, दूसरी तरफ सम्राट् के पास ऐसे पत्र भेज रहा है कि जिनसे राजभक्ति टपकी पड़ती है।"

असल बात यह थी कि सम्राट् अकबर से लेकर औरंगजेब तक जितने भी मुगल सम्राट् हुए, उन सबकी लोलुप दृष्टि बीजापुर पर लगी रहती थी। वे मौका पाते ही बीजापुर को हज़म कर जाने की ताक में लगे रहते थे। यह बात बीजापुर के सुल्तान को भली भाँति विदित थी। वह जानता था कि मुगल सम्राट् के साथ अपनी मित्रता बहुत समय तक नहीं टिक सकेगी। यही कारण था कि सुलतान ऊपरी दिल से तो सम्राट् के प्रति मित्रता के भाव प्रदर्शित करता रहता था पर आन्तरिक हृदय से शिवाजी के साथ मैत्री कायम किये हुए था। शिवाजी की शक्ति को बिलकुल विनाश कर देने वाले किसी भी षड्यन्त्र में शामिल हो जाना उसके लिये नितान्त असंभव था।

इस समय जयसिंहजी ने सम्राट् को जो पत्र भेजा था उसकी एक पंक्ति हम यहाँ उद्धृत करते हैं। इस पंक्ति को पढ़ने से पाठकों को मालूम हो जायगा कि मुगलों की बीजापुर के प्रति इस समय क्या नीति थी। वह पंक्ति और कुछ नहीं, यह थी कि "बीजापुर पर विजय प्राप्त कर लेना मानो दक्षिण विजय की प्रस्तावना है"। शिवाजी के साथ होने वाले युद्ध के शान्त हो जाने पर जयसिंहजी के पास की विशाल मुगल सेना बेकार पड़ी हुई थी। अतएव बीजापुर के साथ युद्ध छेड़ देना ही इस सेना को उपयोग में लाने का अच्छा साधन समझा गया।

जयसिंहजी की विशाल नीति-मत्ता।

अब जयसिंहजी ने अपनी बुद्धिमत्ता से सुलतान के साथ युद्ध छेड़ने का क्षेत्र तैयार करना शुरू किया। उन्होंने ऐसे उपायों का अवलम्बन किया, जिनसे कि बीजापुर सुल्तान त्रस्त हो जाय। इस सम्बन्ध में जयसिंहजी का पहला कार्य शिवाजी और सुल्तान के बीच वैमनस्य पैदा करा देना था। इसी विचार को ध्यान में रखते हुए पुरन्दर की सन्धि के समय उन्होंने बीजापुर वालों का समुद्र के किनारे का प्रान्त और साथ ही पश्चिमीय घाट का कुछ प्रदेश शिवाजी को हमेशा के लिये दे डाला था। इस भूभाग के बदले में उन्होंने शिवाजी से

४० लाख हन अर्थात् २ करोड़ रुपया प्रति वर्ष लेना निश्चित किया। जयसिंहजी के इस बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य से मुगल-साम्राज्य का तीन तरह से फायदा हुआ। एक तो यह कि २ करोड़ रुपया प्रतिवर्ष सम्राट् के खजाने में जमा हो जाने लगा। दूसरा शिवाजी और बीजापुर के सुल्तान के बीच झगड़ा शुरू हो गया और तीसरे यह कि मुगल सेना को उक्त जंगली प्रान्तों में जाकर युद्ध करने की तकलीफ बच गई। इतना ही नहीं, वरन् इस समझौते के अनुसार शिवाजी ने जयसिंहजी को बीजापुर सुल्तान के खिलाफ ९००० सेना के साथ मदद देने का भी वचन दे दिया।

जयसिंहजी इतना ही करके चुप नहीं रह गये। उन्होंने बीजापुर के कई जमींदारों से भी मुगलों के आश्रय में आ जाने के लिये पत्र-व्यवहार शुरू कर दिया। उक्त जमीदारों को इस बात का प्रलोभन दिखाया गया कि अगर वे शाही आधीनता स्वीकार कर लेंगे तो उनको मुगल सेना में अच्छे २ पद प्रदान किये जावेंगे। जब आदिलशाह ने इस बात का विरोध किया तो उससे कहा गया कि मुगल सम्राट् के प्रतिनिधि (Viceroys) हमेशा से ऐसा करते आये हैं। शरणागत को आश्रय देना उनका कर्त्तव्य है। कर्नाटक के जमीदार और कर्नूल तथा जंजीरा प्रान्त स्थित अबीसीनियन लोग भी जयसिंहजी द्वारा अपने पक्ष में मिला लिये गये। यहाँ तक कि बीजापुर के जनरल और मंत्री तक मुग़लों के पक्ष में कर लिये गये। इन कार्यों में जयसिंहजी को रुपया भी बहुत खर्च करना पड़ा।

मुल्लाअहमद नामक एक अरब बीजापुर दरबार में अच्छे पद पर नियुक्त था। वहाँ के प्रधान अधिकारियों में प्रधान मंत्री अबुलमहमद को छोड़ कर दूसरा नंबर उसी का था। जयसिंहजी ने इसको भी अपने चंगुल में ले लिया। औरंगजेब से कह कर उसे अपनी सेना में ६००० सैनिकों का संचालक नियुक्त कर दिया। इसके अतिरिक्त २२ लाख रुपये उसे खर्च के लिये भी दिये गये।

इसमें कोई शक नहीं कि जयसिंहजी युद्ध-नीति के प्रकाण्ड पण्डित थे। उन्होंने बीजापुर के सुल्तान को शान्ति क़ायम रखने का वचन दे दिया जिससे

कि वह युद्ध की तैयारी भी न कर सका। अपनी कोर्ट में स्थित बीजापुर के राजदूत को उन्होंने यह कह कर समझा दिया कि "सम्राट् की तरफ से बीजापुर पर आक्रमण करने का हमको कोई हुक्म नहीं मिला है। हां, खिराज के एक लम्बे अर्से से चले आये हुए झगड़े को सुलझाने का हुक्म जरूर मिला है।" इधर तो बीजापुर राजदूत को इस प्रकार समझा दिया और उधर अपने रामा और गोविन्द नामक दो पण्डितों को आदिलशाह के पास इसलिये भेज दिये कि वे वहां जाकर सुल्तान के हृदय में इस बात का विश्वास जमा दें कि जयसिंहजी की इच्छा बिलकुल युद्ध करने की नहीं है। पर सच पूछा जाय तो जयसिंहजी की इच्छा शान्ति क़ायम रखने की कदापि नहीं थी। उन्होंने अपने एक गुप्त-पत्र में सम्राट् को लिखा था कि "अगर आदिलशाह मेरे पास खिराज का झगड़ा तय करने के लिये अपना दूत भेजेगा तो मैं उसके सामने ऐसी २ कठिन शर्तें पेश करूंगा जिनको संभव है कि वह मंजूर ही न कर सके।"

इधर गोलकुंडा के सुल्तान कुतुबशाह से भी जयसिंहजी ने अपनी तरफ मिल जाने का अनुरोध किया। इस सम्बन्ध में जयसिंहजी ने औरंगजेब को जो पत्र लिखा था उसकी कुछ पंक्तियों का सारांश नीचे दिया जाता है।

"अब कुतुबशाह को बीजापुर सुल्तान से विमुख करके सम्राट् की तरफ मिलाना अत्यन्त अनिवार्य है। अतएव मैंने उसको आश्वासन देकर उसके साथ मैत्री स्थापित कर ली है। अगर पर्दा खुल गया और उसको (कुतुबशाह को) असली बात का पता चल गया तो वह आदिलशाह की तरफ मिल सकता है।"

जयसिंहजी की फौज़ी तैयारियाँ

इस प्रकार चारों तरफ अपनी राजनीति का जाल बिछा कर जयसिंहजी अपनी सैनिक तैयारियाँ करने लगे। उनकी आधीनता में इस समय ४० हजार घरू सेना थी। यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि उक्त ४०

भारत के देशी राज्य—
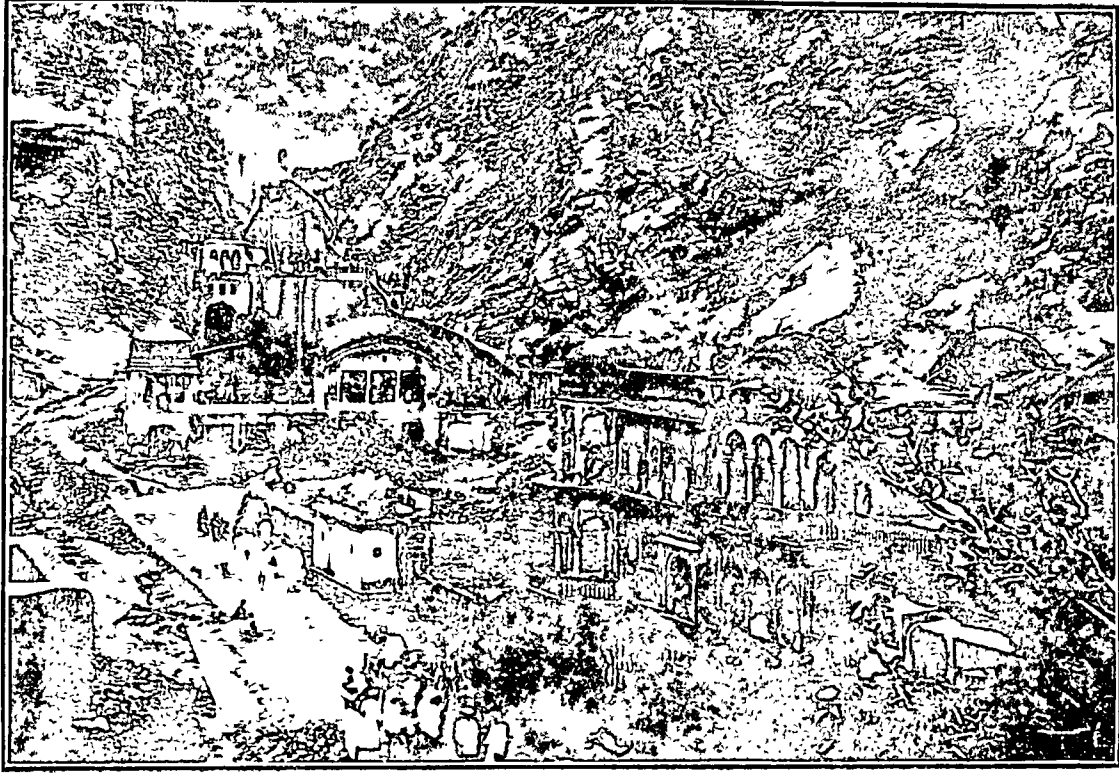
गलता, जयपुर।

भारत के देशी राज्य—
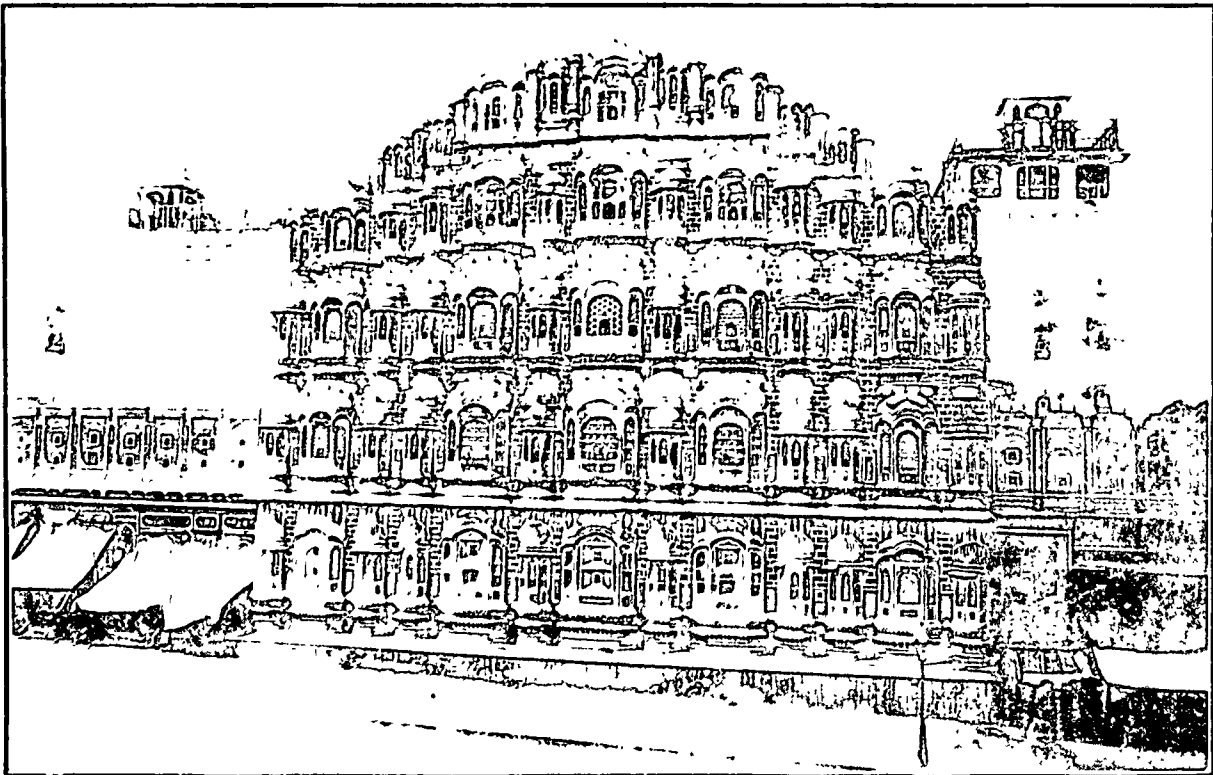
हवा महल, जयपुर।

हजार सेना में वह सहायक-सेना शामिल नहीं है, जो कि शिवाजी तथा दूसरे सहायकों द्वारा मुगलों की मदद पर आई हुई थी। शिवाजी ने ७००० बहादुर मराठे सैनिक नेताजी परलकर की आधीनता में तथा २००० सैनिक अपने पुत्र के साथ जयसिंहजी की मदद के लिये भेजे। पाठकों को मालूम होगा कि उक्त नेताजी परलकर अपनी बहादुरी एवं रण-पटुता के कारण महाराष्ट्र भर में "दूसरे शिवाजी" के नाम से सम्बोधित होते थे। इस समय शिवाजी बीजापुर-राज्य के दूसरे प्रान्तों में स्थित किलों पर अधिकार करने तथा आसपास के मुल्कों में गड़बड़ मचाने में लगे हुए थे। इस कार्य को जयसिंहजी ने अपने लिये हितकर समझा और यही कारण था कि उन्होंने इस समय शिवाजी से मुगल सेना में सम्मिलित होने के लिये आग्रह नहीं किया। जयसिंहजी शिवाजी को एक सुचतुर सेना नायक समझते थे। इसके लिये उन्होंने एक समय अपने पत्र में बादशाह को भी लिख भेजा था। उन्होंने लिखा था कि " इस युद्ध में शिवाजी अत्यन्त बहुमूल्य सहायक हो सकते हैं। अतएव इसमें उनकी उपस्थिति एकान्त अनिवार्य है "। अब खफीखाँ शिवाजी की उपयोगिता के सम्बन्ध में क्या उद्गार प्रगट करते हैं, वह भी सुन लीजिये। उन्होंने कहा था कि "शिवाजी और नेताजी किलों पर अधिकार करने के कार्य में प्रकाण्ड पण्डित और सिद्धहस्त हैं "।

चूंकि बीजापुरवालों के साथ प्रसिद्ध 'मालिक-मैदान' नामक तोप मौजूद थी इसलिये जयसिंहजी ने भी युद्ध शुरू करने के पहले ४०, ५० तोपें दक्षिण के किलों से अपने पास मँगवा लीं। इस प्रकार युद्ध सम्बन्धी तमाम तैयारियाँ कर लेने पर जयसिंहजी ने सम्राट् औरंगजेब को एक पत्र लिखा। इस पत्र में उन्होंने लिखा कि "हमारी सेना बिलकुल तैयार है। अब युद्ध छेड़ने में एक दिन की भी देर करना मानो एक वर्ष का नुक्सान करना होगा क्योंकि शत्रु भी अपनी तैयारी करने में लग गया है"। जयसिंहजी की इच्छा थी कि आदिलशाह को सावधान होने का मौका ही न दिया जाय और अचानक उस पर हमला कर दिया जाय। इसी समय उनको अपने बीजापुर स्थित

संवाददाता से खबर लगी कि शत्रु की सेना इस समय बिलकुल अव्यवस्थित दशा में है और आपस में लड़ाई झगड़े करने में लगी हुई है। यहाँ की सेना अपने शत्रु का मुक़ाबला करने के लिये बिलकुल तैयार नहीं है। अतएव ज्योंही सम्राट् की सेना यहां आ धमकेगी त्योंही आदिलशाह के बहुत से सरदार इसमें आ मिलेंगे। इस प्रकार बिना किसी कठिन प्रयास के ही बीजापुर सुल्तान हरा दिया जा सकेगा।"

अब तो जयसिंहजी युद्ध छेड़ने के लिये बड़े उत्सुक हो गये। पर मन मसोस कर रहजाने के सिवाय वे कुछ नहीं कर सके। इस सुवर्ण अवसर का वे सदुपयोग नहीं कर सके। इसका कारण और कुछ नहीं, सिर्फ रुपयों की कमी थी। शिवाजी के साथ के युद्ध में वे २२ लाख रुपये खर्च कर चुके थे इसलिये अब उनके पास कुछ नहीं रह गया था। सिपाहियों की छः छः महीनों की तनख्वाहें चढ़ गई थीं और वे भूखों मरने लग गये थे। अतएव जयसिंहजी ने युद्ध न छेड़कर पहले सम्राट् को रुपयों के लिये लिखा।

जयसिंहजी ने २० नवम्बर को ही बीजापुर पर आक्रमण करने का निश्चय किया था परन्तु रुपये समय पर न आनेके कारण उनको रुकना पड़ा। निदान १२ नवम्बर को सम्राट् के पास से २० लाख रुपये आये और साथ ही १० लाख रुपये दक्षिण के दीवान ने भी भिजवा दिये। रुपयों के आते ही जयसिंहजी ने अपने सैनिकों की तनख्वाहें चुका दीं और १९ वीं तारीख को पुरन्दर से प्रस्थान कर दिया। रास्ते में बीजापुर का अब्दुलमहमद मियाना नामक सरदार अपने अफ़गान सिपाहियों सहित मुग़ल सेना में आ मिला। पर आदिलशाही सेना के अफ़गानों का खास जत्था जो कि अब्दुलकरीम बहलोल की आधीनता में था स्वामिभक्त बना रहा।

युद्ध के पहले महीनेमें तो जयसिंहजी को विजय पर विजय प्राप्त होता गई। किसी ने उनका विरोध तक नहीं किया। पुरन्दर से मंगलवारिया तक के तमाम बीजापुरी किलों पर मुग़लों का आधिपत्य होगया। निदान २४ वीं डिसम्बर को बीजापुरी सेना से मुगल सेना का मुक़ाबिला हुआ।

पहली लड़ाई

२५ दिसम्बर के दिन दिलेरखाँ और शिवाजी अपने केम्प से १० मील आगे बढ़कर बीजापुरी सेना पर आक्रमण करने के लिये भेजे गये। बीजापुर सुल्तान की तरफ से शारजाखाँ और खवासखाँ नामक बहादुर जनरल १२००० सेना के साथ इनका मुकाबला करने के लिये आ डटे। कल्याण के सरदार यदुराव और शिवाजी के सौतेले भाई वेंकोजी भी बीजापुरी सेना की तरफ से इस लड़ाई में शामिल थे। इस युद्ध में बीजापुरी सेना ने बड़ी बहादुरी और रण-कुशलता का परिचय दिया, पर दिलेरखाँ और शिवाजी के सामने उनकी एक न चली। शाम होते २ बीजापुरी सेना युद्ध-क्षेत्र से पीछे हट गई। उसका १ जनरल और १५ कप्तान काम आये। पर ज्योंही मुगल-सेना ने अपने केम्प की तरफ मुँह फेरा कि बीजापुरी सेना ने उस पर फिर से भयंकर आक्रमण कर दिया। अब मुग़ल सेना को लेने के देने पड़ गये। मुग़ल सेना पर आपत्ति का पहाड़ टूटा देख जयसिंहजी ने उसकी मदद के लिये और सेना भेजी। निदान यदुराव को गोली लग जाने के कारण बीजापुरी सेना वापस लौट गई। दोनों पक्षों का भयंकर नुक्सान हुआ।

दो दिन इस स्थान पर ठहर कर जयसिंहजी फिर आगे बढ़ने लगे। २८ तारीख की दुपहर को उन्हें खबर मिली कि शत्रु की सेना एक मील के अन्तर पर है और बड़े जोरों से आगे बढ़ रही है। योग्य रक्षकों की आधीनता में केम्प को छोड़कर वे मुकाबले के लिये आगे बढ़े। भयंकर युद्ध हुआ और अन्त में बीजापुरी सेना मैदान छोड़कर भागी। मुगल सेना ने छः मील तक उनका पीछा किया।

तारीख २९ को जयसिंहजी ने बीजापुर से १२ मील के अन्तर पर अपना पड़ाव जा डाला। हम ऊपर कह चुके हैं कि आर्थिक कठिनाई के कारण जयसिंहजी को पुरन्दर से रवाना होने में बहुत देर हो गई थी। अतएव उनके बीजापुर के पास पहुँचने न पहुँचने तक अली आदिलशाह अपनी

तमाम तैयारियाँ कर चुका था। उसने अपने आधीनस्थ तमाम सरदारों को बीजापुर में एकत्रित कर लिये थे; किले की मरम्मत करवा ली थी और युद्ध में काम आने वाली समग्र सामग्री भी जुटा ली थी। उसने ३० हज़ार कर्नाटकी सिपाहियों को जो कि अपनी बहादुरी के लिये मशहूर होते हैं, तमाम आवश्यक सामग्री सहित दुर्ग की रक्षा के लिये नियुक्त कर दिये। इतना ही नहीं उसने बीजापुर के पास के नोरासपुर और शाहपुर नामक दोनों तालाबों के बाँध तुड़वा दिये तथा आसपास के छः छः मील तक की दूरी के कुँवों को मिट्टी से भरवा दिये जिससे कि मुगल सेना को पानी तक पीने के लिये न मिले।

इधर तो शत्रु ने इतने जोरों की तैयारियाँ करली थीं और उधर जयसिंहजी जल्दबाजी में पूरा तोपखाना भी अपने साथ नहीं लाये थे। उनकी भारी २ तोपें परेन्दा के किले में ही रह गई थीं।

निदान २० हज़ार बीजापुरी सेना मुग़ल सेना का सामना करने के लिये मैदान में आ डटी। इसी बीच में ख़बर लगी कि गोलकुंडा से भी एक विशाल सेना आदिलशाह की मदद के लिये आरही है।

बीजापुर वालों द्वारा अपने आस पासके जलाशयों को नष्ट कर डालने से जयसिंहजी की सेना को केवल जल कष्ट ही उठाना पड़ा हो ऐसी बात नहीं थी, वरन् उन्हें भूखों भी मरना पड़ा था। कारण की उसके साथ के अन्न से लदे हुए बैल भी घास पानी न मिलने से आगे न बढ़ सके थे। उक्त कारणों से "युद्ध की कौन्सिल" (council of war) ने मुगलसेना को वापस लौट जाने की सलाह दी।

ई० सन् १६६६ की ५ वीं जनवरी को मुगल सेना वापस लौट गई इस महीने में मुगल सेना को कई बड़ी २ मुसीबतों का सामना करना पड़ा। १२वीं जनवरी को मुग़लों का बहादुर कप्तान सिकन्दरखां अपनी सेना के साथ बीजापुरियों द्वारा क़त्ल कर दिया गया। तारीख १६ को पन्हाला के किले पर आक्रमण करते समय शिवाजी के एक हज़ार सिपाही शत्रुओं द्वारा काट

डाले गये और शिवाजी की हार हुई। तारीख २० के दिन समाचार मिला कि नेताजी परलकर बीजापुरियों से जा मिले हैं। ३१ वीं जनवरी को इजा-कुली की आधीनता में १२ हजार सवार और ४० हजार पैदल सेना मुगलों के खिलाफ बीजापुर के सुल्तान से आ मिली।

जयसिंहजी आपत्ति में

जयसिंहजी बीजापुर पर चढ़ाई करके बड़ी आपत्ति में आ फँसे। उनकी दशा साँप छछूँदर की सी होगई। वे न तो बीजापुर पर आक्रमण ही कर सकते थे और न वापस ही लौट सकते थे। वे चारों तरफ से शत्रु-सैन्य से घिर गये थे। निदान बड़ी मुश्किलों से वे वापस लौटने में समर्थ हुए। फिर भी लोहारी आदि स्थानों पर उनको शत्रु का मुकाबला करना ही पड़ा। यह लड़ाई बड़ी ही भयंकर थी। इसमें मुगल सेना के १८० आदमी मारे गये और २५० घायल हुए। इसके विपरीत शत्रुसैन्य के ४०० आदमी मारे गये और १००० घायल हुए। बीजापुरी सेना जयसिंहजी तक आ पहुँची थी कि उनके बहादुर राजपूत सिपाहियों ने बड़ी वीरता के साथ उसे पीछे हटने को मजबूर किया।

एक ही मास के अन्दर इस प्रकार की ४, ५ लड़ाइयाँ लड़ लेने के कारण मुगल सेना बिलकुल थक गई थी। इतने ही में समाचार मिला कि मंगलवीरा के किले को शत्रु ने घेर लिया है। इससे जयसिंहजी की सेना में और भी निराशा फैल गई। जयसिंहजी ने दाऊदखाँ और कुतुबुद्दीनखाँ को किले की रक्षा के लिये जाने का हुक्म दिया, परन्तु उक्त जनरलों ने इस हुक्म पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। इस विषय में जयसिंहजी ने बादशाह को इस प्रकार लिखा था—"इन सेना नायकों ने कुछ दिन तो व्यर्थ के वाद-विवाद में बिता दिये, अन्त में जब इन पर दबाव डाला गया तो इन्होंने जाने से इन्कार कर दिया और कहा कि वामपार्श्व की सेना राजा रायसिंहजी की आधीनता में भेजी जाय तो हम जाने को तैयार हैं। मैं इस प्रस्ताव में सहमत

होनके सिवाय और कुछ नहीं कर सका।" जब ये तीनों जनरल अपनी सेना सहित मंगलवीरा पहुँचे तो शत्रु-सैन्य घेरा उठा कर लौट गई।

बहलोलखाँ और नेताजी ने बिडर कल्याणी जिले में उत्पात मचा रखा था। इनको शान्त करना भी अत्यन्त अनिवार्य था। अतएव जयसिंहजी तारीख २० फरवरी को उधर की तरफ रवाना हुए।

भीमा-मंजीरा का युद्ध

अब युद्ध ने कुछ और ही रंग बदला। युद्ध साढ़े तीन महीने तक रहा। इस अवधि में जयसिंहजी को ४ और भीषण युद्ध करने पड़े। हर बार बीजापुरी सेना को हारकर पीछे हटना पड़ता था। पर मुगल-सेना उसे पूर्ण रूप से नहीं हरा पाई थी। अतएव उसका मुगल सेना के आसपास चक्कर लगाते रहना और मौक़ा पाते ही उस पर आक्रमण कर देने का कार्य फिर भी जारी रहा। यद्यपि धोकी, गंजोटी और नीलांग के किलों पर मुगलों का अधिकार हो गया तथापि इससे विशेष फायदा कुछ नहीं हुआ। निदान मई मास में युद्ध की नयी स्कीम तैयार की गई। चूंकि मुगल सेना के साथ बहुत सा युद्ध सम्बन्धी सामान रहता था अतएव बहुत दूर तक दुश्मन का पीछा करके उसे बिलकुल परास्त कर देना उसके लिये बहुत मुश्किल था। इस कठिनाई से मुक्त होने के लिये जयसिंहजी ने अपनी सेना को बहुत कम करने का निश्चय किया। इस निश्चय के अनुसार उन्होंने युद्ध सम्बन्धी तमाम आवश्यकता से अधिक सामान को धरूर नामक स्थान में रख दिया और उसकी रक्षा के लिये मज़बूत सेना भी वहाँ रख दी। इस प्रकार अपनी सेना को कम करके फिर युद्ध आरम्भ कर दिया।

१६ वीं मई को यह सेना मंजीरा के किनारे से चलकर सीना नदी को पार करती हुई भीमा के किनारे पर जा पहुँची, पर यहाँ पहुँचते २ मुगल सेना बिलकुल अस्त व्यस्त हो गई थी। मुगल सैनिक खाद्य सामग्री की कमी और लम्बी मंजिलों को तय करने के कारण थक गये थे। वर्षा-ऋतु

आरंभ हो गई थी अतएव सम्राट् ने जयसिंहजी को औरंगाबाद लौट जाने का हुक्म दिया। इसके साथ ही तमाम सेना को भी कुछ समय के लिये आराम करने का हुक्म दे दिया गया। इस प्रकार युद्ध स्थगित कर दिया गया।

मंगलवीरा का किला मुगल सरहद्द से बहुत दूर पर था जिसके कारण उसकी रक्षा के लिये वहाँ बड़ी भारी सेना का रखना आवश्यक था। अतएव जयसिंहजी ने वहाँ से अपनी सेना और युद्ध सम्बन्धी तमाम सामान हटवा लिया। जो कुछ बचा रह गया वह जला दिया गया। फल्टन के किले से भी मुगल सेना हटा ली गई और वह शिवाजी के दामाद महादजी निम्बालकर को दे दिया गया।

इस प्रकार मुगलों के अधिकार में इस समय पहली विजय द्वारा प्राप्त स्थानों में से एक भी स्थान नहीं रहा। ३१ वीं मार्च के दिन जयसिंहजी ने सम्राट् की आज्ञानुसार उत्तर की तरफ प्रस्थान कर दिया। १० वीं जून को जयसिंहजी भूम नाम स्थान पर पहुँचे। यहाँ ३½ महीने रहकर २८ सितंबर के दिन बीर नामक स्थान की तरफ रवाना हुए। १७ नवम्बर तक आपने यहाँ मुकाम रखा और फिर औरंगाबाद जाकर मुकाम किया।

इधर बीजापुर और गोलकुंडा की सेना भी थक गई थी अतएव उन्होंने सुलह के लिये पैग़ाम भेजे।

जयसिंहजी का दुःखमय अन्त

बीजापुर के साथ होने वाले युद्ध में पराजय मिलने के कारण सम्राट् औरंगजेब जयसिंहजी से असंतुष्ट होगया। उसने जयसिंहजी की पूर्व सेवाओं का कुछ भी ख़याल न करते हुए उन्हें अपने पद से अलग कर दिया और युवराज मुअज्ज़म को उससे चार्ज ले लेने के लिये भेज दिया। इतना ही नहीं, सम्राट् ने वह एक करोड़ रुपया भी जयसिंहजी को वापस नहीं लौटाया जो कि उन्होंने अपनी जेब से युद्ध में खर्च किया था। ई० सन १६६७ के मई मास में औरंगाबाद में जयसिंहजी ने मुअज्ज़म को चार्ज दे दिया। चार्ज दे

देने पर वे उत्तर हिन्दुस्तान की तरफ रवाना हुए। पर सम्राट् द्वारा किया हुआ अपमान तथा वृद्धावस्था और तिसपर भी रोगग्रस्त होने के कारण २ जुलाई सन् १६६७ में बुरहान में आपका स्वर्गवास हो गया। इस प्रकार इस वीर सेना-नायक ने आजन्म अपने अकृतज्ञ स्वामी की सेवा करते २ अपने प्राण विसर्जन किये।

जयसिंहजी की निर्दोषिता

जयसिंहजी अपने जीवन में सिर्फ एक ही वक्त हारे पर अहसान फ़रामोश औरंगजेब उन्हें एकबार भी माफी देने की उदारता नहीं दिखा सका। स्मरण रहे कि इस युद्ध में जयसिंहजी के सामने कई कठिनाइयाँ दरपेश थीं। उनकी थोड़ी सी मुगल सेना बीजापुर के समान विशाल और समृद्धिशाली राज्य पर विजय प्राप्त करने के लिये बिलकुल ही अयोग्य थी। उनके पास का युद्ध सम्बन्धी सामान और खाद्य पदार्थ इतना कम था कि वह दो महीने भी मुश्किल से चल सके। इतना ही नहीं, उनके पास घेरा डालने के काम में आने लायक तोपें तक न थीं।

इसके विपरीत बीजापुर-राज्य की दशा इस समय वैसी गिरी हुई नहीं थी, जैसी कि १९ वर्ष बाद स्वयं औरंगज़ेब द्वारा उस पर की गई चढ़ाई के समय हो गई थी। बीजापुर सुल्तान एक योग्य और कार्य-शील शासक था। अतएव उसके प्रयत्नों से बीजापुर के सरदार अपने आपसी झगड़ों को भुला कर जयसिंहजी के विरुद्ध लड़ने के लिये तैयार हो गये थे। इतना ही नहीं, कुतुबशाह आदि आस पास के कई जमींदार तक अपने सर्वसामान्य शत्रु (जयसिंहजी) को विफल मनोरथ करने पर तुल गये।

स्वयं जयसिंहजी ने सम्राट् को इस विषय पर लिखा था "आप जानते हैं कि शिवाजी का राज्य कितना छोटा सा है। तिसपर भी मुगल सेना को उससे कितने दिनों तक लड़ते रहना पड़ा था। सचमुच बीजापुर के समान राज्य के विरुद्ध युद्ध छेड़ने के पहले बड़े संगठन की आवश्यकता है।"

जयसिंहजी की सेना सिर्फ कम ही हो, सो बात नहीं थी। उसमें नियम-पालकता की भी कमी थी। उनकी सेना में ऐसे २ आदमी भी थे जो कि शत्रुओं से मिले हुए थे। जयसिंहजी के पास शत्रु की गति विधि का सन्देशा पहुँचाने वाले तमाम दूत दक्षिणी थे; जो कि पैसे के बड़े लोभी होते हैं। अतएव बीजापुर सुल्तान उनके द्वारा मुगल सेना की गति विधि को जान लिया करता था। ऐसी स्थिति में विजय प्राप्त कर लेना जयसिंहजी के लिये तो क्या किसी भी सेना-नायक के लिये असम्भव था। जयसिंहजी की राजनीतिज्ञता और युद्ध चातुर्यता के लिये हम इतनाही कह देना पर्याप्त समझते हैं कि स्वयं औरंगजेब अपनी समस्त शक्तियों को लगा कर भी—१८ महीने तक लगातार घेरा डाले रहने पर—बीजापुर को हस्तगत कर सका था। जयसिंहजी की मृत्यु के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न इतिहास लेखकों के भिन्न भिन्न मत हैं। सुप्रख्यात् इतिहास-वेत्ता टॉड साहब का कथन है कि "जयसिंहजी अपने पुत्र किरतसिंहजी द्वारा मारे गये" पर 'History of Aurangzeb' के लेखक यदुनाथ सरकार इससे मतभेद प्रगट करते हैं। उनका कहना है कि "जयसिंहजी की मृत्यु का आरोप उनके सेक्रेटरी उदयराज पर लगाया गया था।" मनुस्सी के कथनानुसार सम्राट् औरंगज़ेब ने जयसिंहजी को विष दिलवा दिया था। उक्त किंवदंतियों में कौनसी सत्य है और कौनसी झूठ है इसका निर्णय हम पाठकों पर ही छोड़ कर आगे बढ़ते हैं।

जयसिंहजी के बाद रामसिंहजी और रामसिंहजी के बाद बिशनसिंहजी आंबेर की राजगद्दी पर विराजे। पर ये दोनों ही नरेश शक्तिहीन थे। ई० सन् १६७७ में बिशनसिंहजी का स्वर्गवास हो गया। अब जयसिंहजी (द्वितीय) जो कि सवाई जयसिंहजी के नाम से प्रसिद्ध हैं, राज्य-सिंहासन पर विराजे।

सवाई जयसिंहजी (द्वितीय)

भारतवर्ष में ऐसे कई परम-कीर्तिशाली नृपति हो गये हैं जिन्होंने मनुष्य-जाति के ज्ञान के विकास में—विविध प्रकार के विज्ञान के अभ्युदय में—बड़ी सहायता पहुँचाई है। इन्होंने न केवल युद्ध-क्षेत्रों और राजनैतिक-क्षेत्रों ही में अपनी असाधारण प्रतिभा का परिचय दिया था, वरन् विश्व के अगाध ज्ञान समुद्र में—प्रकृति की विविध सूक्ष्मताओं में—गहरा गोता लगाया था। ऐसे नृपतियों की सम्माननीय पंक्ति में जयपुर के महाराज सवाई जयसिंहजी का आसन बहुत ऊँचा है। जब तक इस पृथ्वीतल पर ज्योतिर्विज्ञान की महिमा बखानी जायगी; जब तक मानव-हृदय में अनन्त आकाश-मण्डल के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की लालसा बनी रहेगी, तब तक जयपुर के महाराज सवाई जयसिंहजी का नाम अजर और अमर रहेगा। ज्योतिर्विज्ञान (Astronomy) में महाराज सवाई जयसिंहजी ने जो आविष्कार किये हैं, वे ही वास्तव में उनके अमर कीर्त्ति-स्तम्भ हैं। पत्थरों के बने हुए बड़े बड़े कीर्त्ति-स्तम्भ समय के प्रभाव से नेस्तनाबूद हो सकते हैं, पर ज्ञान का कीर्त्ति-स्तम्भ तब तक अजर और अमर रहेगा जब तक मनुष्य-जाति में ज्ञान की तनिक भी पिपासा रहेगी और उसके हृदय में सभ्यता और संस्कृति (Civilization and Culture) का थोड़ा सा भी अङ्कुर रहेगा। एक प्रख्यात् पाश्चात्य इतिहास-वेत्ता महाराज सवाई जयसिंहजी के ज्योतिर्विज्ञान सम्बन्धी आविष्कारों के विषय में लिखते हैं:—

"इस विशाल इतिहास कल्पद्रुम में पाठकों ने जिन राजाओं के चरित्रों को पढ़ा है, उन्होंने उन सब को जातीय क्षात्र धर्म पालन और तलवार के बल से चिरस्थायी कीर्ति को स्थापित करते देखा है, पर सवाई जयसिंहजी ने न केवल जाति धर्म और बाहुबल ही का प्रकाश किया, वरन्
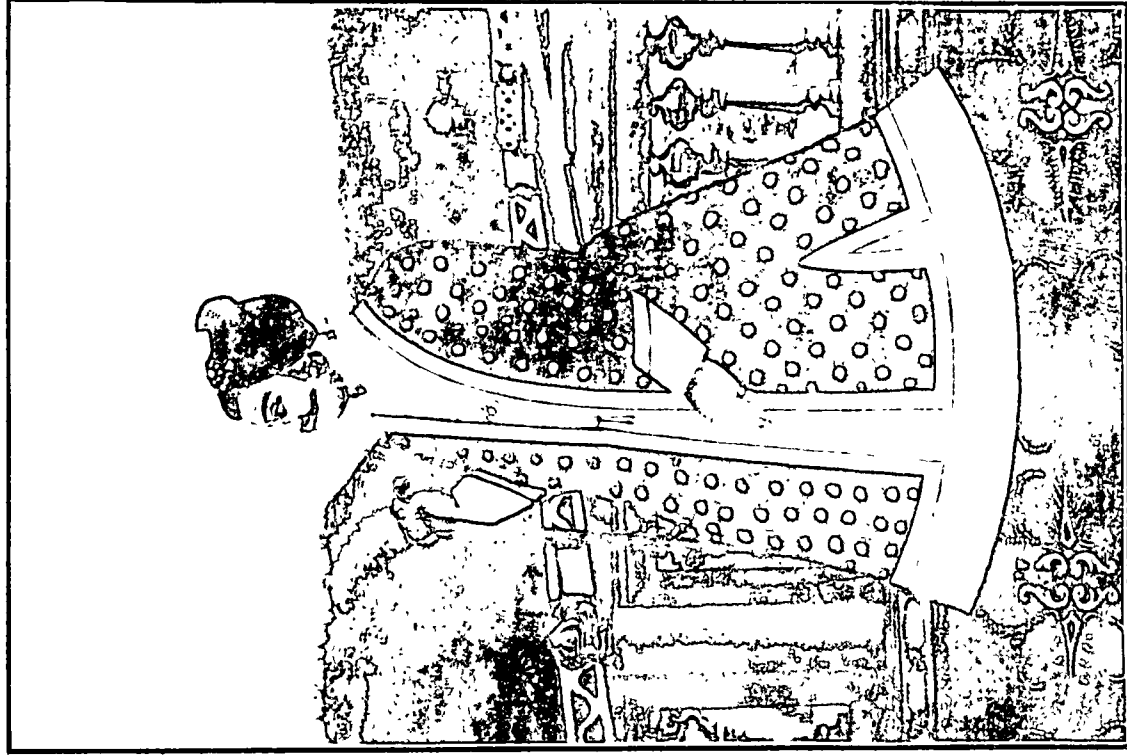
श्रीमान् महाराजा सवाई जयसिंह जी, जयपुर।

श्रीमान् महाराजा रामसिंह जी, जयपुर।

शास्त्रीय उत्कर्षमें भी अपना अनुपम योग देकर ज्ञान के विकास के इतिहास में अपनी चिरस्थायी कीर्त्ति छोड़ी है। वे अपने समय के ज्योतिष-शास्त्र की प्रगति के जीवन थे। ज्योतिष-शास्त्र की उन्नति के हेतु उन्होंने जिन ग्रंथों, वेधशालाओं तथा यंत्रों की सृष्टि की, वे उनकी अक्षय कीर्ति के योग्य स्मारक हैं। इस बात को ज्योतिष-शास्त्र-वेत्ता मुक्तकंठ से स्वीकार करते हैं। ज्योतिष-शास्त्र सम्बन्धी आविष्कारों के कारण सवाई जयसिंहजी के यश का सूर्य इतना ऊँचा होगया था कि उसने दूर दूर तक अपनी किरण-जाल का उज्ज्वल प्रकाश फैलाया था। सचमुच राजपूताने के इतिहास में महाराज सवाई जय-सिंहजी ने विज्ञान की प्रगति में जो बहुमूल्य सहायता पहुँचाई, वह अपूर्व है।

ग्रहों का वेध लेने के लिये उन्होंने दिल्ली, जयपुर, उज्जैन, बनारस, मथुरा प्रभृति बड़े बड़े नगरों में मान मन्दिर (Observatories) बनवाये। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि संसार के कितने ही प्रख्यात् ज्योतिषियों ने यहां आकर इन मान मन्दिरों के द्वारा ग्रहों के वेध लिये थे।

इनके अतिरिक्त महाराज जयसिंहजी ने ग्रहों की सूक्ष्म गतियों को जानने के लिये कई यंत्र भी बनवाये थे। इन यंत्रों द्वारा ग्रहों की गति का अनुमान निकालने में वे इतने सिद्ध–हस्त होगये थे कि बड़े बड़े ज्योतिषी भी दाँतों अँगुली दबाते थे।

जिस समय सवाई जयसिंहजी इस वैज्ञानिक आलोचना में प्रवृत्त थे, उस समय पुर्तगाल से इमानुएल नामक एक पादरी भारतवर्ष में आये थे और वे जयसिंहजी से मिले थे। परस्पर में बातचीत होते होते पुर्तगाल की ज्योतिर्विद्या सम्बन्धी बातचीत हुई। महाराज जयसिंहजी तो ज्ञान के बड़े पिपासु थे। उन्होंने अपने कुछ विश्वसनीय सेवकों को उक्त पादरी साहब के साथ पुर्तगाल भेजा था। इस पर पुर्तगाल के सम्राट् ने अपने यहां के सुप्र-ख्यात् ज्योतिषी जेवियर डिसिलवान को जयपुर नरेश की सेवा में भेज दिया था। उन्होंने, पुर्तगाल के ज्योतिषियों द्वारा निर्मित कितने ही यंत्र महाराज जयसिंहजी को भेंट किये थे। महाराज जयसिंहजी ने उन यंत्रों की परीक्षा

कर उन्हें सर्वांश में सन्तोष जनक नहीं पाया, क्योंकि उनके द्वारा उपलब्ध ग्रहपति की गणना में कुछ न कुछ फ़र्क रह जाता था।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि महाराज सवाई जयसिंहजी ने अपने समय में ज्योतिष-शास्त्र का पुनरुद्धार किया—नहीं, उसे नया जीवन दिया। वे केवल प्राचीन ज्योतिष-शास्त्र का संग्रह करके ही सन्तुष्ट नहीं हुए, उन्होंने विदेशों से भी इस सम्बन्ध के अनेक ग्रंथ मंगवाये थे। उन्होंने रेखागणित की त्रिकोणमिति का और नेपियर की बनाई हुई गणित की पुस्तकों का संस्कृत में अनुवाद किया था:—

इनके अतिरिक्त महाराज सवाई जयसिंहजी के प्रोत्साहन से निम्न लिखित ग्रंथों की सृष्टि हुई थी:—

(१) जयसिंह कल्पद्रुम।

(२) सम्राट् सिद्धान्त।

(३) सिद्धान्तसार कौस्तुभ। (यह टॉलमी के अलमजेस्ट्री ग्रंथ का संस्कृत अनुवाद है)

(४) रेखागणित (यह यूक्लिड के अरबी ग्रंथ का अनुवाद है)

(५) जयविनोद सारिणी।

(६) दृकपक्ष सारिणी।

(७) दृकपक्ष ग्रंथ।

(८) उकर।

(९) मिथ्या जीव छाया सारिणी।

(१०) विभाग सारिणी।

(११) तारा सारिणी (यह जीच उलुकबेगी नमक तैमूरलंग के पौत्र उलुकबेग के तारा गणित ग्रंथ का अंकों में कालान्तर संस्कार दिया हुआ अनुवाद है।)

(१२) जयसिंह कारिका (महाराज सवाई जयसिंहजी रचित यंत्र राज की रचना करने का प्रकार और उपयोग। इस विषय पर स्वयं सवाई जयसिंहजी का बनाया हुआ यह छोटा सा पर सर्वांग पूर्ण ग्रंथ है)

(१३) जयसिंह कल्पलता ।

इन सब बातों से पाठकों को महाराज सवाई जयसिंहजी के उत्कट-विद्या और कला-प्रेम का परिचय होगया होगा ।

सवाई जयसिंहजी के प्रशंसनीय कार्य

महाराज सवाई जयसिंहजी हिन्दू-धर्म के बड़े अभिमानी और हिन्दू जाति के बड़े हितैषी थे। सम्राट् महम्मदशाह के राज्य-काल में कुछ अनुकूल अवसर देख कर हिन्दुओं ने जिजियाकर के खिलाफ आवाज उठाई और उन्होंने अपनी दूकानें बन्द कर दीं। इस कार्य में महाराज जयसिंहजी ने हिन्दुओं की पूरी सहायता की। उन्होंने बड़ी राज-नीतिज्ञता और बुद्धिमानी के साथ यह प्रश्न सम्राट् की सेवा में उपस्थित किया और कहा कि हिन्दू इस देश के प्राचीन निवासी हैं और श्रीमान् हिन्दुओं ही के बादशाह हैं। श्रीमान् के प्रति हिन्दू और मुसलमान दोनों एक सी राज-भक्ति रखते हैं, बल्कि यों कहिये कि आप के प्रति हिन्दुओं की विशेष राज-भक्ति है। क्योंकि वे आपके सहधर्मियों से अपनी रक्षा आप ही के द्वारा करवाना चाहते हैं। जब आपके खिलाफ अब्दुल्लाखाँ ने बलवे का झगड़ा उठाया था, तब हिन्दुओं ने इकट्ठे होकर आपकी विजय के लिये ईश्वर से प्रार्थना की थी। ऐसी दशा में हिन्दुओं की प्रार्थना पर ध्यान देकर जिजियाकर उठा देना आपका कर्त्तव्य है। अवध के सूबेदार राजा गिरधर बहादुर ने भी सवाई जयसिंहजी का समर्थन करते हुए कहा था "मेरे दादा चबेलराम ने भी इसी प्रकार की प्रार्थना स्वर्गीय सम्राट् फरुखसियर से की थी। और उन्होंने उसे मंजूर कर जिजियाकर उठा दिया था। सम्राट् ने महाराज जयसिंहजी की बात मंजूर कर जिजियाकर उठा दिया और फिर यह कभी लगाया नहीं गया, यद्यपि इसके लगाने के लिये निजाम-उल-मुल्क ने पुनः कोशिश की थी।

सम्राट् फरुखसियर के जमाने में राजा जयसिंहजी मालवा के सूबे-

दार बनाये गये। और उन्हें यह आज्ञा हुई कि वे बाला बाला अपनी राजधानी से मालवा जाकर मुबरीज़ख़ाँ से सूबेदारी का चार्ज ले लें।*

सुप्रख्यात् जाट-नेता

जब बहादुरशाह और उनके भाई आजमशाह में परस्पर धोलपुर और आगरे में युद्ध ठना था, तब सुप्रख्यात् जाट-नेता चूड़ामणि ने बहुत से आदमियों को इकट्ठा कर यह निश्चय किया था कि इन दोनों में से जो हारे उसकी जायदाद लूट ली जाय। लड़ाई खतम होने के बाद इसने ऐसा ही किया और इसके हाथ बहुत सा माल लगा। अब इसने अपनी खासी धाक जमा ली। पर जब बहादुरशाह आगरे में था तब यह उनके पास आया और अपने किये कर्म का पश्चात्ताप करने लगा। इस पर वह १५०० जाट और ५०० घोड़ों पर सरदार बनाया गया। ई० सन् १७०८ में इसने बादशाही फौजदार राजाबहादुर को कामा के जमींदार अजितसिंह पर हमला करने में सहायता दी। इसने बादशाही फौज के साथ कई हमलों में बड़ी बड़ी बहादुरी के काम किये थे पर आखिर में किसी कारणवश सम्राट् इस पर नाराज हो गए। इसके कब्जे में जो मुल्क था, वह जरूरत से ज्यादा समझा जाने लगा। जागीरदारों को इससे जो तकलीफ होती थी वह सम्राट् को अच्छी न लगी। इसके जिम्मे बहुत सा बकाया निकाला गया। इसे समझाने बुझाने की कोशिश की गई, पर कोई फल नहीं हुआ। अब इस बात की आवश्यकता प्रतीत होने लगी कि इसके मुकाबले पर भेजने के लिये कोई जोरदार आदमी ढूँढ़ा जाय। इसने इस समय रक्षा के लिये एक मजबूत किला भी बना लिया था। ई० सन् १७१६ में राजा जयसिंहजी मालवा से लौट कर दरबार में पधारे। जब उन्हें यह मालूम हुआ कि बादशाह फरुख़सियर चूड़ामणि (Churamani) के होश-हवास ठीक

* Latter Mughals 262

करना चाहते हैं, तब उन्होंने यह कार्य अपने ऊपर लिया। ई० सन् १७१६ के सितम्बर मास से उन्हें चढ़ाई करने की आज्ञा मिल गई और २५ सितम्बर को वे रवाना हो गये, इसी दिन दशहरा था। इस समय कोटा के महाराज भीमसिंह, नरवारी के राजा गजसिंह, बूँदी के महाराव बुद्धसिंह हाड़ा भी जयसिंहजी की अधीनता में उक्त सेना में थे।

राजा जयसिंहजी सैनिक चतुराई में बड़े सिद्ध-हस्त थे। उन्होंने इस समय सैनिक हालचाल और व्यवस्था में बड़ी चतुराई का परिचय दिया। चाल करते करते ई० सन् १७१६ में किले पर घेरा डाला गया। इस किले की बड़ी बड़ी दीवारें थीं और इसके आसपास गहरी खाइयाँ खुदी हुई थीं, चारों तरफ भयानक जंगल थे। इस किले में इतना सामान था कि वह २० वर्ष के लिये काफी था। जब चूड़ामणि ने घेरे की सम्भावना देखी, तब उसने तमाम व्यापारियों को नगर छोड़कर चले जाने के लिये बाध्य किया और उनकी जायदाद की जिम्मेदारी अपने सर पर ले ली।

चूड़ामणि के लड़के मोकमसिंह और उसके भतीजे रूपसिंह ने किले से निकल कर खुले मैदान में लड़ने के लिये जयसिंहजी को आह्वान किया। लड़ाई हुई और २१ दिसम्बर सन् १७१६ में जयसिंहजी ने जो रिपोर्ट भेजी, उसमें उन्होंने अपनी विजय का प्रदर्शन किया। इसके बाद जयसिंहजी को और भी सैनिक सहायता मिल गई। उनके पास एक तोप जो एक मन गोला फेंकती थी, तीन सौ मन बारूद, पचास मन शीसा और ५ सौ छोटी तोपें भेजी गई। यह घेरा लगातार २० मास तक रहा। अन्त में उसने किसी तरह सम्राट् को बहुत सा द्रव्य देकर सुलह कर ली।

ज्ञान और कला के विकास में महाराज सवाई जयसिंहजी ने जो कुछ किया, उसका दिग्दर्शन हम ऊपर करा चुके हैं। एक पाश्चात्य विद्वान् का कथन है कि तत्वज्ञान और शास्त्र (Philosophy and Science) का विकास उसी समय में होता है, जब राष्ट्र में शान्ति का साम्राज्य होता है और लोगों के अन्तःकरण प्रायः निर्व्याकुल रहते हैं। साधारणतया यह बात ठीक

है पर इसमें कभी कभी आश्चर्यकारक अपवाद (Exception) भी मिलते हैं। महाराज सवाई जयसिंहजी इस बात के बडे अपवादी थे।

महामति टॉड अपने 'राजस्थान' में लिखते हैं "जिस समय भारतवर्ष में अविश्रान्त युद्ध की अग्नि प्रज्वलित हो रही थी; जिस समय मुग़ल सम्राट् की सभा में भयंकर षड्यंत्र का विस्तार हो रहा था; जिस समय महाराष्ट्र जाति ने प्रबलता से उदय होकर देश में घोर अराजकता फैला दी थी, उस समय महाराजा सवाई जयसिंहजी ने विज्ञान-शास्त्र की उन्नति में समुचित योग देकर तथा अपने राज्य की सम्पूर्ण रूपसे रक्षा और वृद्धि कर यह प्रकट किया था कि वे एक असाधारण मनुष्य थे।

सवाई जयसिंहजी और समाज सुधार

महाराज सवाई जयसिंहजी न केवल प्रथम श्रेणी के वैज्ञानिक और राजनीति-निपुण नरेश थे, वरन् वे समाज सुधारक भी थे। पाठक जानते हैं कि रजवाड़े में कन्या के विवाह के समय में और श्राद्ध आदि कार्यों में बहुत सा धन खर्च होता था। कई धन-हीन अभागे इस अधिक धन-व्यय के भय से छोटी छोटी कन्याओं को सूतिकागार ही में मार डालते थे। बहुत सी स्त्रियाँ इसीलिये आत्महत्या कर लेती थीं। जब महाराज जयसिंहजी ने देखा कि इस कुरीति के कारण समाज का बड़ा अनिष्ट हो रहा है, तब उन्होंने राज्य-घरानों के लिये तथा समस्त राजपूत जाति के लिये नियम बना दिये। और उन नियमों को अपने राज्य में प्रचलित कर दिया; जिनसे विवाह और श्राद्ध के समय में कम खर्च हो। इस कार्य से महाराज जयसिंहजी ने अनुकरणीय आदर्श उपस्थित कर राजपूत जाति की जो भलाई की, वह अवर्णनीय है। टॉड साहब लिखते हैं "इस महापुरुष ने समाज सम्बन्धी जो संस्कार किये, उनका अनुष्ठान करना अत्यन्त आवश्यक है। महाराज जयसिंहजी सभी जातियों पर एक से दयावान थे। क्या ब्राह्मण क्या मुसलमान, क्या जैन सभी को समान दृष्टि से देखते थे। जैनियों को ज्ञान शिक्षा में श्रेष्ठ जानकर जय-

सिंहजी उन पर अत्यन्त अनुग्रह रखते थे। ऐसा भी प्रकट होता है कि उन्होंने जैनियों के इतिहास और धर्म के सम्बन्ध में स्वयं शिक्षा प्राप्त की थी। उनके वैज्ञानिक तत्त्व की आलोचना में विद्याधर नामक जो पंडित सबसे अग्रगण्य था, और जिसके प्रभा-बल से जयपुर नगर की सृष्टि हुई, वह जैन-धर्मावलम्बी विख्यात् है।

सवाई जयसिंहजी का कला-प्रेम

महाराज सवाई जयसिंहजी कला-कौशल्य के बड़े प्रेमी थे। उन्होंने इसे बड़ा उत्तेजन दिया। वे इसके रहस्य को भी भली प्रकार जानते थे। वर्तमान जयपुर नगर जो भारतवर्ष में सब से अधिक सुन्दर है, इन्हीं महाराजा के कला-प्रेम का फल है। इसमें नगर-निर्माण-कला (Town planning) का उच्च आदर्श प्रगट होता है। संसार प्रख्यात् नगर-निर्माण विद् प्रो० गिडिज महोदय तो इस नगर को देखकर विमोहित हो गये थे। उन्होंने अपने (Town planning in India) नामक ग्रंथ में लिखा है "जयपुर न केवल नगर-निर्माण-कला के उच्चध्येय को प्रगट करता है, पर नागरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी वह अनुपम है"।

सवाई जयसिंहजी का राजनैतिक जीवन

अभी तक हमने महाराज सवाई जयसिंहजी के जीवन की विविध गति-विधियों पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है। अब हम उनके राजनैतिक जीवन पर दो शब्द लिखना उचित समझते हैं। राज्य-गद्दी पर बैठने के समय महाराजा जयसिंहजी की अवस्था केवल ग्यारह वर्ष की थी। आपने दक्षिण में बादशाह औरंगजेब के साथ कई युद्धों में रहकर अच्छी ख्याति प्राप्त की थी। इसीसे आपको "सवाई" की सम्मान-सूचक उपाधि मिली थी।

जब बादशाह औरंगजेब ने राजकुमार आज़मशाह के पुत्र बेदारबख्त को गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया था, उस समय उसने महाराज जय-

सिंहजी को उसके साथ भेजा था। ये दोनों हमउम्र थे इसलिये इनमें प्रगाढ़-प्रीति हो गई थी। संवत् १७६४ में औरंगजेब के मरने पर जब उसके पुत्रों में राज-सिंहासन के लिये बखेड़ा हुआ तब जयसिंहजी ने बेदारबख्त और उसके पिता आजमशाह का पक्ष ग्रहण किया था।

आजमशाह और बेदारबख्त ने राज्य-सिंहासन पाने की आशा से जब सेना सहित दिल्ली की ओर कूच किया था तब महाराज जयसिंहजी भी उनके साथ थे। उस ओर काबुल से औरंगजेब का बड़ा बेटा बहादुरशाह भी अपनी फौज के साथ दिल्ली जा रहा था। रास्ते में दोनों फोजों में मुटभेड़ हो गई। घमासान युद्ध हुआ। इसमें आजमशाह और बेदारबख्त दोनों मारे गये और जयसिंहजी भी घायल हुए। फिर क्या था! विजयी बहादुरशाह बेखटके होकर दिल्ली के सिंहासन पर बैठ गया। उसने बादशाही खिताब धारण करते ही जयसिंहजी से बदला लेने की ठानी। उसने आंबेर के राज्य को खालसा करने के लिये सेना भेजी, पर जयसिंहजी ने इस सेना के दाँत खट्टे कर इसे अपने राज्य से बाहर निकाल दिया। इसके थोड़ेही दिन बाद जब बादशाह बहादुरशाह कामबख्श पर चढ़ाई करने के लिये दक्षिण की ओर जा रहा था तब रास्ते में आंबेर पहुँच कर उसने उस पर खालसा बैठाना चाहा। कई कारणों से इस वक्त जयसिंहजी ने बादशाह का मुका-बला करना उचित नहीं समझा। वे खुद अपनी सेना सहित बादशाही फौज के साथ दक्षिण की ओर रवाना होगये। मार्ग में बादशाह ने धोखा देकर जोधपुर पर खालसा बैठा दिया और उसने वहाँ के तत्कालीन महाराज अजितसिंहजी को सेना सहित अपने साथ ले लिया।

महाराज सवाई जयसिंहजी और महाराज अजितसिंहजी नर्मदा नदी तक बहादुरशाह के साथ २ गये। अभी तक इन दोनों को यह आशा थी कि हम किसी तरह बादशाह को प्रसन्न कर लेंगे। पर जब उनकी इस आशा के फलवती होने के कुछ भी चिन्ह दिखलाई न देने लगे, तब वे बादशाह की अनुमति लिये बिना ही वहां से लौट पड़े और उदयपुर आ गये। उदयपुर

में महाराणा अमरसिंहजी ने इन दोनों नृपतियों का बड़ा सत्कार किया। अब इन तीनों ने मिलकर अपना सुसंगठित गुट बनाना चाहा। इन तीनों नृपतियों ने अपने सम्बन्ध को और भी सुदृढ़ करना चाहा। राणाजी ने जयसिंहजी के साथ अपनी पुत्री का और अजितसिंहजी के साथ अपनी बहिन का विवाह-सम्बन्ध स्थिर किया। इसके अतिरिक्त तीनों ने मिलकर यह निश्चय किया कि अगर किसी एक पर दिल्ली के बादशाह का दबाव पड़ेगा तो शेष दोनों उसकी मदद करेंगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस एकता का प्रभाव बहादुरशाह पर बहुत ही पड़ा।

महाराणा अमरसिंहजी ने दोनों महाराजाओं को अपना अपना राज्य वापस प्राप्त कर लेने के लिये सहायता दी और इसमें सफलता भी हुई। महाराज जयसिंहजी ने आंबेर और महाराज अजितसिंहजी ने जोधपुर पर फिर से अपना अधिकार कर लिया।

यह खबर सुनकर बादशाह बहादुरशाह बहुत क्रोधित हुआ और वह एक बड़ी सेना के साथ राजपूताने पर चढ़ आया। पर ज्योंही वह अजमेर पहुँचा त्योंही उसे यह खबर लगी कि उदयपुर, जयपुर और जोधपुर के राजा आपस में मिल गये हैं। इनकी संयुक्त शक्ति का मुकाबला करना जरा टेढ़ीखीर है। बस, बहादुरशाह ने जयपुर और जोधपुर पर चढ़ाई करने के विचार को त्याग दिया। इसी बीच में बादशाह को खबर लगी कि पंजाब में सिक्खों ने सर उठाया है, तब तो उसकी स्थिति और भी बेढब होगई। अब तो उसे जयपुर और जोधपुर के महाराजाओं को प्रसन्न करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। सम्बत् १७६७ में उसने दोनों महाराजाओं को अजमेर के डेरे पर बुलाये और उनकी बड़ी खातिर की।

ईश्वरीसिंहजी

सवाई जयसिंहजी के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र ईश्वरीसिंहजी राज्य के अधिकारी हुए। ५ वर्ष तक ईश्वरीसिंहजी ने शान्ति के साथ राज्य-कार्य चलाया पर उसके बाद एक झगड़ा खड़ा हो गया। स्वर्गीय महाराजा जयसिंहजी ने मेवाड़ की राजकुमारी से इस शर्त पर विवाह किया था कि यदि उसके गर्भ से पुत्र उत्पन्न होगा तो वही आंबेर-राज्य का उत्तराधिकारी होगा। मेवाड़ राजकुमारी के गर्भ से माधोसिंह नामक एक पुत्र का जन्म हुआ था। अतएव वह जयपुर की राजगद्दी पर अपना हक्क बतलाने लगा। इस कार्य में उनके मामा मेवाड़ के राणाजी ने उनका पक्ष समर्थन किया और ईश्वरीसिंहजी को लिख भेजा कि आप राज्य-गद्दी माधोसिंह को दे दें। यह बात सुनते ही ईश्वरीसिंहजी के सिर पर मानों वज्र टूट पड़ा। वे किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो गये। उन्हें मालूम नहीं होता था कि अब किसकी सहायता ली जाय। अन्त में उन्होंने ने महाराष्ट्र सेनापति आपाजी की सहायता से राणाजी के साथ युद्ध करना निश्चित् किया। राणाजी की सहायता पर भी कोटा और बूँदी के नरेश आ गये। राजमहाल नामक स्थान पर युद्ध हुआ। मराठी सेना के सामने राणाजी को पराजित हो जाना पड़ा। माधोसिंहजी की आशा का आकाश अंधकार से ढँक गया।

इस विजय से गर्वित होकर ईश्वरीसिंहजी ने कोटा और बूँदी के नरेशों पर चढ़ाइयाँ कर दीं और मराठों की सहायता के कारण उन्हें पराजित भी कर दिया। इस प्रकार अपने शत्रुओं को परास्त कर ईश्वरीसिंहजी निर्विघ्नता से राज्य कार-भार चलने लगे। पर शीघ्र ही घनघोर बादलों ने आकर उनके सौभाग्य सूर्य को ढँक लिया।
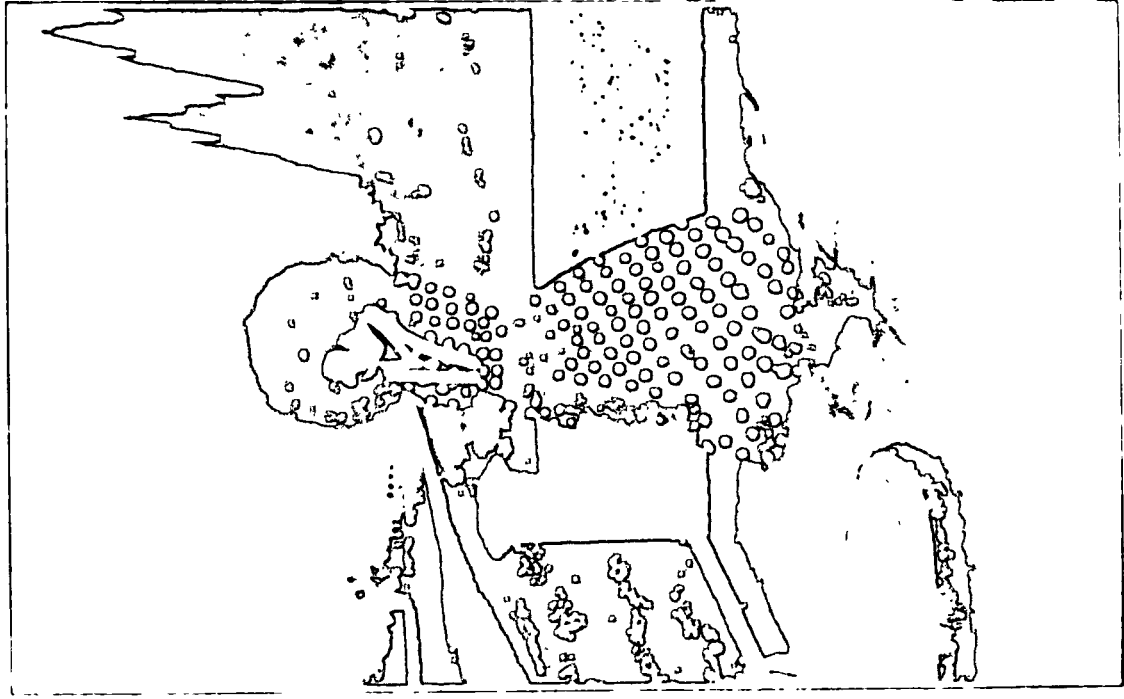
श्रीमान महाराजा सवाई मानसिंह जी, जयपुर।

भारत के देशी राज्य—
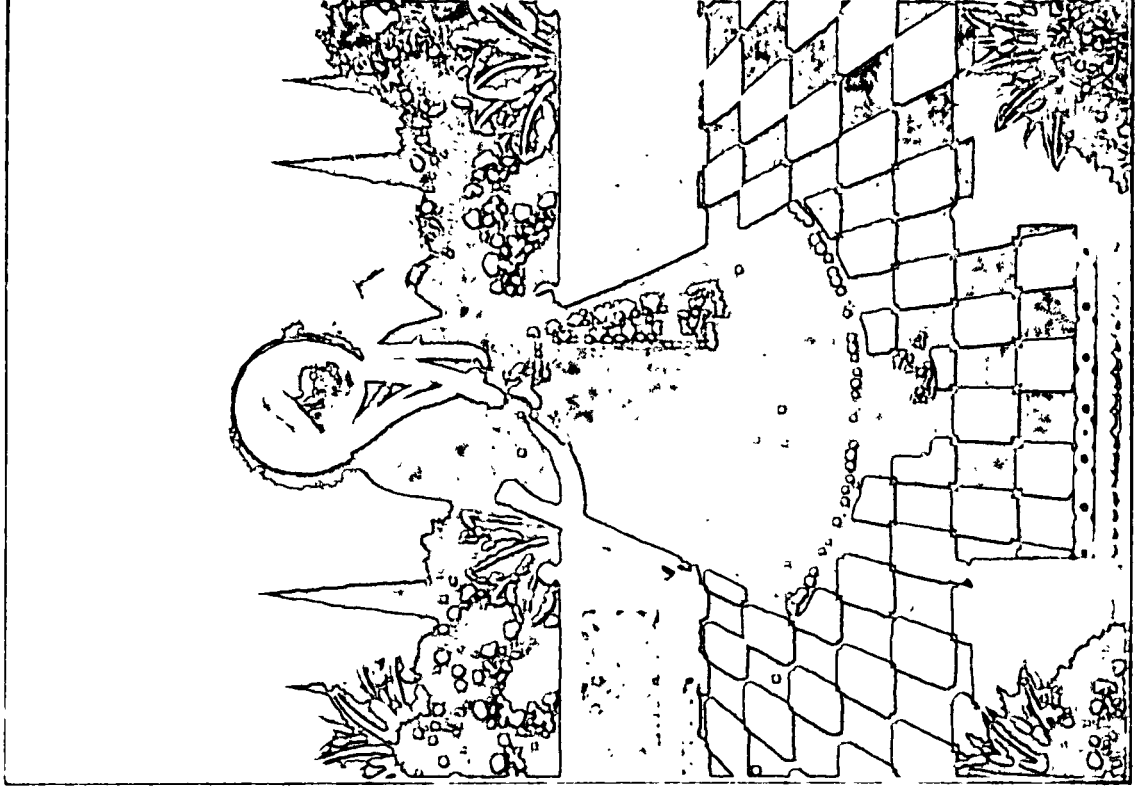
श्रीमान महाराजा पृथ्वीराज जी, जयपुर।

ईश्वरीसिंहजी के ही समान मेवाड़ के राणा जगतसिंहजी ने भी महाराष्ट्र-नेता होलकर की सहायता लेकर युद्ध की घोषणा कर दी। होलकर के सामने विजय प्राप्त करना असंभव जान ईश्वरीसिंहजी ने विषपान करके प्राण त्याग दिये।

माधोसिंहजी

अब माधोसिंहजी जयपुर के राज्य सिंहासन पर आरूढ़ हुए। होलकर ने आपका पक्ष समर्थन किया था अतएव उन्हें आपने इस सहायता के बदले रामपुरा, भानपुरा परगना दे दिया। माधोसिंहजी क्षत्रियोचित गुणों से विभूषित थे। साहस, वीरता, नीतिज्ञता, उच्चाभिलाषा और एकाग्रता आदि के बल से आपने शीघ्रही सामन्त और प्रजा के चित्त को आकर्षित कर लिया था। इस समय जाट-जाति बड़े उत्कर्ष पर थी। एक समय जाट राजा जवाहिरसिंह अपनी सेना सहित जयपुर-राज्य में से होकर पुष्कर चला गया। उस समय यदि कोई राजा बिना दूसरे राजा की आज्ञा के उसके राज्य में से होकर निकल जाता तो यह उसकी हिमाकत समझी जाती थी। अतएव महाराज माधोसिंहजी ने जवाहिरसिंह से कहलवा दिया कि वह भविष्य में ऐसा कभी न करे। पर जवाहिरसिंह ने इस बात पर बिलकुल ध्यान न देकर पुनः वैसा ही किया। अब की बार माधोसिंहजी ने भी तैयारी कर रखी थी; अतएव युद्ध छिड़ गया। जाट राजा को परास्त होकर चला जाना पड़ा। इस युद्ध में जयपुर-राज्य के कई नामी नामी सरदार काम आये। स्वयं माधोसिंहजी इतने घायल हो गये थे कि चौथे पाचवें ही दिन उनका स्वर्गवास हो गया।

पृथ्वीसिंहजी (द्वितीय)

माधोसिंहजी का स्वर्गवास हो जाने पर उनके पुत्र पृथ्वीसिंहजी (द्वितीय) राज्यासन पर विराजे। पर इस समय आप नाबालिग थे अतएव राज्य का भार आपके भाई प्रतापसिंहजी की माता चलाती थी। इस रानी का चरित्र अच्छा नहीं था। फिरोज़ नामक महावत को इसने अपना उपपति बना रखा था। रानी की कृपा से फ़िरोज़ राजसभा का सदस्य बन गया था। इससे समस्त सामन्त विरक्त हो राजधानी छोड़कर अपने आधीनस्थ गाँवों में चले गये। राज्य का भार फिरोज़ की आज्ञानुसार चलाया जाने लगा। ई० सन् १७७८ में पृथ्वीसिंहजी का घोड़े पर से गिर जाने के कारण देहान्त होगया। इस समय उनकी आयु १५ वर्ष की थी।
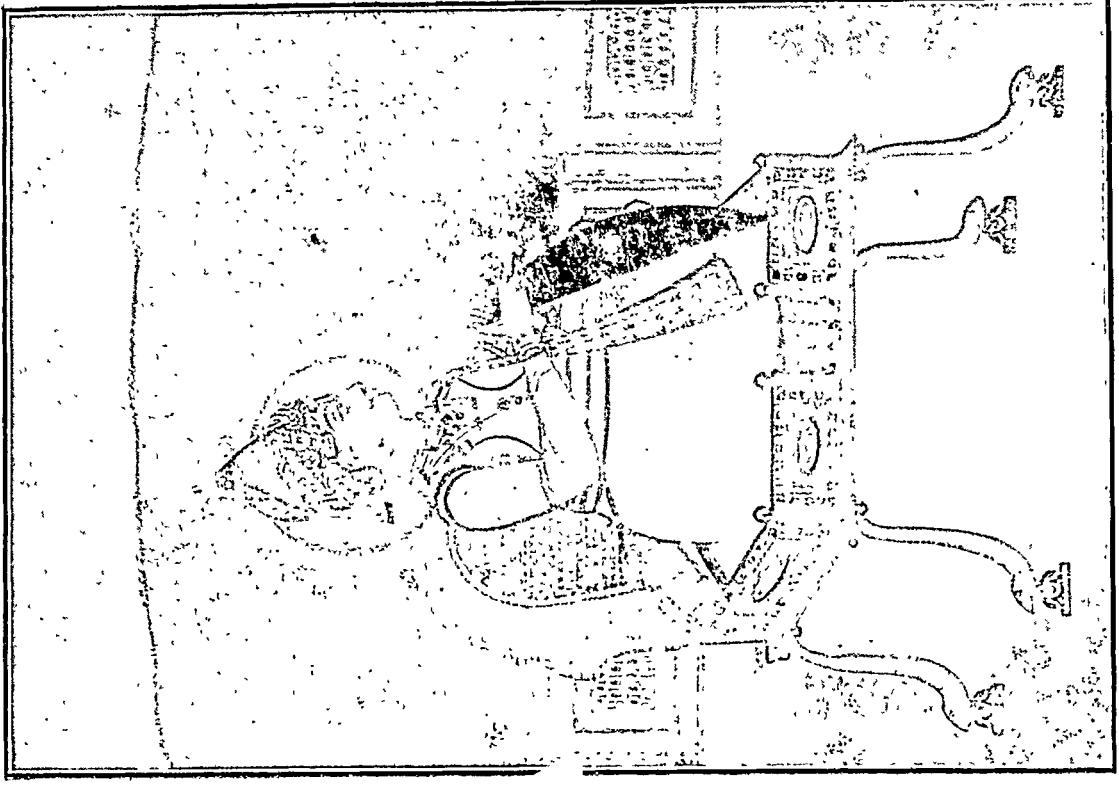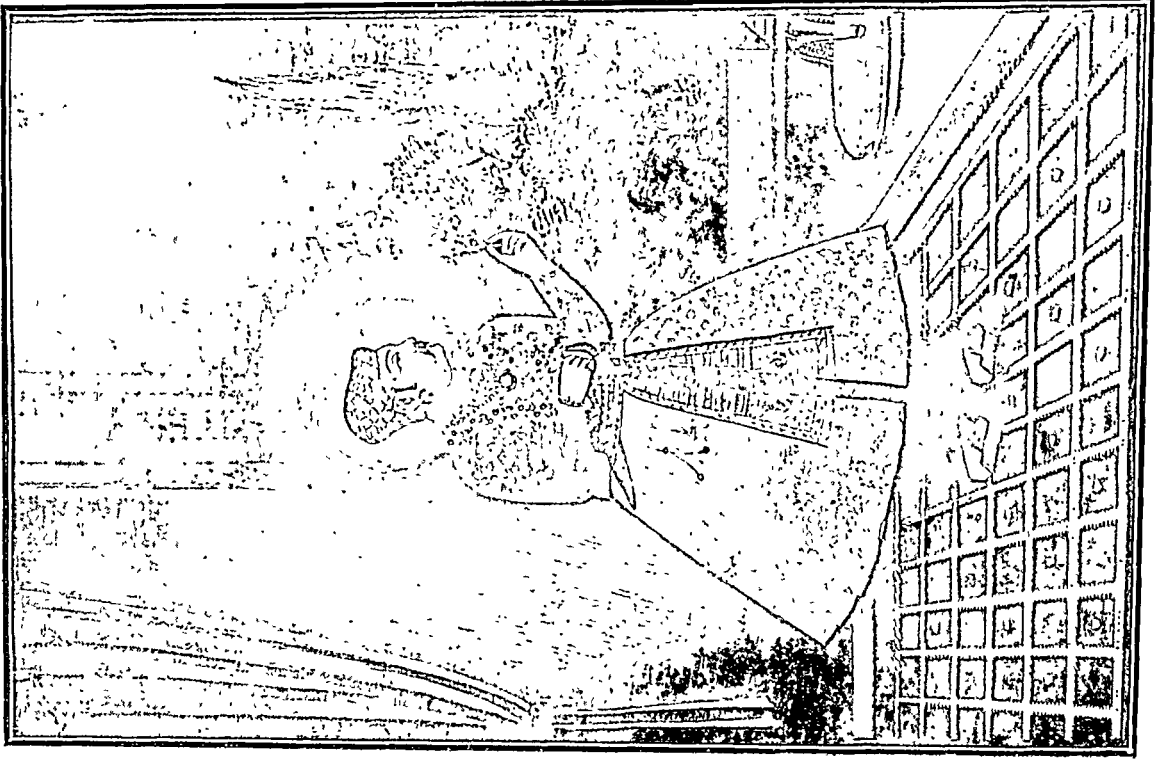
प्रतापसिंहजी

पृथ्वीसिंहजी का अकाल ही में देहान्त हो जाने पर उक्त रानी के पुत्र प्रतापसिंहजी राज्यगद्दी पर बिठाये गये। आपने बड़े होने पर उक्त रानी तथा महावत को जहर देकर मरवा डाला। आपके राज्य-काल में मरहठों ने खूब लूट मार चलाना शुरू की। इस लूट मार को बन्द करने के लिये आपने जोधपुर महाराज विजयसिंहजी से सहायता माँगी। उन्होंने भी सहायता देना स्वीकार किया और दोनों की संयुक्त शक्ति ने ई० सन् १७८७ में टोंक नामक स्थान पर मरहठों को पूर्ण रूप से पराजित किया। पर यह विजय क्षण स्थायी सिद्ध हुई। ई० सन् १७९१ में आपको पाटण और मीरत के पास सिन्धिया से पराजित होना पड़ा। इस पराजय के कारण जयपुर पर फिर मरहठों के हमले होने लग गये। होलकर ने तो इस राज्य पर चौथ तक बिठा दी। पीछे जाकर होलकर ने चौथ वसूल करने का कार्य अमीरखाँ नामक एक पिंडारी के सुपुर्द कर दिया था।

प्रतापसिंहजी एक साहसी और दूरदर्शी नरेश थे पर साथ ही साथ उनके सामने आपत्तियाँ भी इतनी थीं कि जिनके मुकाबले में उनकी वीरता कुछ भी कार्य न कर सकी। ई० सन् १८०३ में आपका स्वर्गवास हो गया।
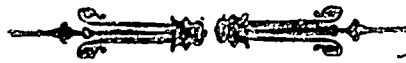
जगतसिंहजी

आपके बाद आपके पुत्र जगतसिंहजी गद्दी नशीन हुए। आपने १६ वर्ष राज्य किया। आपका चरित्र बड़ा निर्बल था, आपका सारा जीवन दुर्गुणों से भरा हुआ था। विषय-वासना के फेर में पड़कर आपने कई कुकृत्य किये।

मेवाड़ के राणा भीमसिंहजी के कृष्णाकुमारी नामक एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या थी। इस कन्या का पाणिग्रहण-संस्कार मारवाड़-नरेश भीमसिंहजी के साथ होना निश्चित हो चुका था पर बीच ही में उनका स्वर्गवास हो गया। अतएव महाराज जगतसिंहजी ने उसके साथ विवाह करने की इच्छा प्रदर्शित की। इधर भीमसिंहजी के बाद मारवाड़ की गद्दी पर मानसिंहजी बिराजे और उन्होंने कृष्णाकुमारी पर अपना हक बतलाया। वे कहने लगे कि कृष्णाकुमारी की माँग मारवाड़-गद्दी की ओर से हो चुकी है अतएव मारवाड़ नरेश ही के साथ उसका पाणिग्रहण होना चाहिये। बात यहाँ तक बढ़ गई कि जगतसिंहजी और मानसिंहजी दोनों ही युद्ध करने पर उतारू हो गये। जगतसिंहजी ने अमीरखाँ पिंडारी को अपनी सहायता के लिये बुला लिया। गींगोली नामक स्थान पर युद्ध शुरू हो गया। जब यह बात कृष्णाकुमारी तक पहुँची तो उसने इस युद्ध का अन्त करने के लिये जहर खाकर अपने प्राण विसर्जन कर दिये। इतना हो जाने पर भी उक्त लड़ाई बन्द नहीं हुई। अन्त में जोधपुर नरेश मानसिंहजी हार गये। पिंडारी तथा मराठी सेना ने उनका मुल्क लूटना शुरू किया। अमीरखाँ बड़ा चालाक था। पीछे जाकर उसने मानसिंहजी से मिलकर जयपुर को भी लूट लिया। इस प्रकार इस आपसी फूट से तीनों राज्यों का नुक्सान हुआ।

ई० सन् १८०३ में अंग्रेज सरकार और महाराज जगतसिंहजी के बीच एक तहनामा हुआ। इस तहनामे के अनुसार जयपुर-राज्य अंग्रेज सरकार के संरक्षण में आ गया। परन्तु महाराजा साहब इस तहनामे की शर्तों का पालन न कर सके अतएव लार्ड कार्नवालिस ने इस सम्बन्ध को तोड़ दिया।

यह सम्बन्ध तोड़ने के मामले में होम गवर्नमेन्ट को कुछ शक हुआ। अतएव उसने ई० सन् १८१३ में जयपुर-राज्य को पुनः अपने संरक्षण में ले लेने के लिये गवर्नर जनरल को लिखा। पर इस समय नेपाल युद्ध छिड़ा हुआ होने के कारण यह कार्य नहीं हो सका। अन्त में ई० सन् १८१७ में गवर्नर जनरल ने इस बारे में जयपुर सरकार को लिखा। कुछ आनाकानी के बाद उन्होंने भी यह बात स्वीकार कर ली। ई० सन् १८१८ के अप्रेल मास की २ री तारीख के दिन फिर नवीन तहनामा हुआ। जयपुर-राज्य अंग्रेज सरकार के संरक्षण में आगया।

उक्त सन्धि के अनुसार महाराज जगतसिंहजी ने अंग्रेज सरकार को प्रतिवर्ष ८ लाख रुपया देना स्वीकार किया। यह भी तय हुआ कि जयपुर-राज्य आवश्यकता पड़ने पर बृटिश सरकार को सैनिक सहायता दिया करेगा।

इस संधि के कुछ ही मास बाद अर्थात् ई० सन् १८१८ की २१ वीं दिसम्बर को महाराज जगतसिंहजी इस संसार से चल बसे।

मोहनसिंहजी

जगतसिंहजी को कोई सन्तति न थी और न उन्होंने अपनी मौजूदा हालत में राज्य का कोई वारिस ही नियुक्त किया था। अतएव इस बात का प्रश्न उठा कि राज्यगद्दी पर कौन बिठाया जाय। अन्त में नरवर नरेश के पुत्र मोहनसिंहजी इस पद के लिये चुने गये। यह चुनाव विधिवत् नहीं हुआ था अतएव राजघराने में अन्दर ही अन्दर लड़ाई की आग सुलगने लगी। पर यथा समय स्वर्गीय महाराज की एक रानी के सगर्भा होने के समाचार फैला देने के कारण वह अग्नि बुझ गई।

अप्रेल मास की पहली तारीख के दिन स्वर्गीय महाराज की १६ विधवा रानियों और दूसरे बड़े बड़े सरदारों की स्त्रियों ने मिलकर इस बात की जाँच शुरू की कि सचमुच रानीजी गर्भवती हैं या नहीं? अन्त में सब इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि रानीजी सचमुच गर्भवती हैं। इसपर से राज्य के सब कर्मचारियों ने मिलकर एक कौन्सिल की। कौन्सिल में सर्वसम्मति से निश्चित हुआ कि यदि उक्त रानीजी के गर्भ से पुत्र उत्पन्न होगा तो उसके सिवाय दूसरे को हम अपना महाराज न मानेंगे।

ई० सन् १८१९ के अप्रेल मास की २५ वीं तारीख के दिन अर्थात् जगतसिंहजी की मृत्यु के चार मास और चार दिन बाद उक्त रानी के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इन बाल राजा का नाम जयसिंहजी रखा गया। पुत्र हो जाने से मोहनसिंहजी गद्दी से अलग कर दिये गये।

जयसिंहजी (तृतीय)

मोहनसिंहजी के बाद राज्य की बागडोर जयसिंहजी की माता के हाथ में दी गई। पर रानीजी इस कार्य में असफल हुई। झूताराम नाम के एक मनुष्य ने रानीजी को अपने चंगुल में फँसाकर आंबेर-राज्य में अशान्ति की अग्नि प्रज्वलित कर दी। अतएव अंग्रेज सरकार को राज्य में हस्तक्षेप करने की आवश्यकता पड़ी। रेजिडेन्ट सर ऑक्टर लोनी ने वेरीसाल नामक सरदार को जयसिंहजी का प्रतिनिधि (Representative) नियुक्त किया। पर राजमाता ने झूताराम को दीवान के पद पर नियुक्त करके वेरीसाल के कार्यों में हस्तक्षेप करना शुरू किया। रेजिडेन्ट ने इस बात पर आपत्ति प्रगट की। पहले तो रानीजी ने रेजिडेन्ट की बात न मानी पर पीछे जाकर ऐसा करने में अपना ही विनाश समझ कर उन्होंने झूताराम को निकालना स्वीकार किया। ई० सन् १८३३ में रानीजी का देहान्त हो गया।

ई० सन् १८३४ में शेखावाटी प्रान्त में लुटेरों ने उपद्रव मचाया। इस उपद्रव को शान्त करने के लिये अंग्रेज सरकार ने अपनी सेना वहाँ भेजी। इस सेना के खर्च के बदले अंग्रेज सरकार ने साँभर झील पर अधिकार कर लिया। इसी बीच जयपुर में एकाएक युवक राजा जयसिंहजी का देहान्त हो गया। कहा जाता है कि इनकी मृत्यु का कारण झूताराम ही था। उसी ने राज-सत्ता के लोभ में आकर यह नीच कृत्य किया था। गवर्नर जनरल ने इस बात की जाँच करने के लिये अपने एजन्ट को जयपुर भेजा। झूताराम ने इन पर भी अपना हाथ साफ करना चाहा। पोलिटिकल एजेन्ट तो किसी तरह बच गये पर उनके सहायक को अपने प्राणों से हाथ धोना ही पड़ा। अन्त में हत्यारे पकड़ लिये गये और मार डाले गये। अपने कुछ साथियों के साथ झूताराम भी चुनार के किले में कैद कर दिया गया।

रामसिंहजी

जयसिंहजी के बाद उनके पुत्र रामसिंहजी गद्दी पर बिराजे। इस समय रामसिंहजी की आयु बहुत ही कम थी अतएव वे पोलिटिकल एजन्ट की निगरानी में रख दिये गये। शासन-सूत्र को संचालित करने के लिये पाँच बड़े बड़े सरदारों की एक रिजेन्सी कौन्सिल नियुक्त की गई। फौज कम कर दी गई और राज्य के प्रत्येक विभाग में सुधार किये गये। सती, गुलामगिरी और बाल-हत्याओं की प्रथाएँ रोक दी गईं। राज्य की ओर से दी जाने वाली खिराज उसकी आमदनी के प्रमाण से अधिक मालूम होती थी अतएव वह घटाकर सिर्फ चार लाख रुपये प्रतिसाल की कर दी गई। इसके अतिरिक्त ४६ लाख रुपये एक मुश्त वापस कर दिये गये।

ई० सन् १८५७ में महाराज रामसिंहजी ने सर्वगुण-सम्पन्न होकर सम्पूर्ण राज्य-शासन का भार गवर्नमेन्ट से अपने हाथ में ले लिया। फिर भी अल्पवयस्क होने के कारण राज्य-शासन के अनेक विषयों में आप पोलिटिकल एजन्ट की सम्मति लेते थे। इसी साल सुप्रसिद्ध सिपाही-विद्रोह हुआ। इस नाजुक अवसर पर आपने बृटिश सरकार की अच्छी सहायता की। इससे खुश होकर सरकार ने आपको कोट-कासिम का परगना दे डाला। ई० सन् १८६४ में आपको दत्तक लेने की सनद भी प्राप्त हो गई।

महाराज रामसिंहजी बड़े दूर दर्शी एवं बुद्धिमान् नरेश थे। अपनी प्रिय प्रजा की मंगल-कामना के हेतु आपने बहुत से अच्छे २ कार्य किये। आपने नये २ रास्ते बनवाये, रेलवे का राज्य में प्रवेश किया एवं विद्या की अभिवृद्धि की। ई० सन् १८६८ में जब जयपुर-राज्य में दुष्काल पड़ा तब आपने रियासत में आनेवाले अनाज पर का महसूल माफ कर दिया। आप दो बार वाइसराय की लेजिस्लेटिव कौन्सिल के सदस्य रह चुके थे। आपके अच्छे

चाल चलन से खुश होकर बृटिश गवर्नमेन्ट ने आपको जी. सी. एस. आई. का महत्व पूर्ण खिताब दिया था। ई० सन् १८७७ में होने वाले दिल्ली के दरबार में आप सम्मिलित हुए थे। इस अवसर पर आपकी सलामी में चार तोपों की वृद्धि कर दी गई अर्थात् अब आपकी सलामी २१ तोपों से ली जाने लगी। हिन्दुस्तान के लिये जो नई इम्पीरियल कौन्सिल नियुक्त हुई थी उसके सभासदों में से महाराज रामसिंहजी भी एक थे। महाराज रामसिंहजी बड़े बुद्धिमान, प्रजा-प्रिय और शिक्षित नरेश थे। आपने राज्य में बड़े बड़े प्रजा-कल्याणकारी सुधार किये। अपनी प्रजा को उन्नति की, घुड़दौड़ में आगे बढ़ाने के लिये प्रशंसनीय प्रयत्न किये। यद्यपि जयपुर जैसे भव्य और सुन्दर नगर को बसाने का श्रेय सवाई जयसिंहजी को है पर उसे सुसज्जित करनेवाले आप ही थे। आपने अंग्रेजी और संस्कृत कालेज खोले जिनकी ख्याति सारे भारतवर्ष में है। गर्ल्स स्कूल कला-भवन और मेयो हॉस्पिटल जैसी उपयोगी संस्थाओं के निर्माण करवाने का श्रेय आप ही को है। जगत् प्रसिद्ध रामनिवास बाग आपही के कला-प्रेम का आदर्श नमूना है। आपने प्रजा के लिये जल का जैसा आराम किया, उसे जयपुर की प्रजा कभी नहीं भूल सकती। आप एक आदर्श नृपति थे।

ई० सन् १८८१ में इन लोकप्रिय महाराज ने अपनी इहलोक-यात्रा समाप्त की। वेद और धर्मशास्त्र की आज्ञानुसार आपका अग्नि-संस्कार किया गया।

माधोसिंहजी (द्वितीय)

मृत्यु होने के कुछ ही पहले महाराज रामसिंहजी ने ईसरदा के युवक ठाकुर साहब कायमसिंहजी को दत्तक ले लिया था। कायमसिंहजी अपना नाम माधोसिंहजी रखकर जयपुर की राज्य-गद्दी पर बिराजे। इस समय आपकी आयु १९ वर्ष की थी पर फिर भी इतनी रियासत के राज्य-भार को सँभालने लायक शिक्षा आपको न मिली थी। अतएव राज्य का भार कौन्सिल के सुपुर्द किया गया और महाराज को शिक्षा दी जाने लगी। दो ही वर्ष में आपने शासन ज्ञान सम्पादित कर लिया और राज्य की बागडोर अपने हाथ में ले ली।

आपने ई० सन् १८८१ की २३ वीं अगस्त को जयपुर में एक "इकानमिक और इन्डस्ट्रियल म्युजियम" नामक शिल्प की द्रव्यशाला स्थापित की। महाराजा और बहुत से प्रतिष्ठित आदमियों के सामने कर्नेल वॉल्टर ने इसकी प्रति ा की। डॉक्टर हिंडली इसके अवैतनिक सम्पा० दक थे। महाराज मा   सहजी ने इस उपकारी कार्य में बहुत सा रुपया खर्च किया। इस म्युजिय की प्रतिष्ठा से जयपुर-राज्य की जनता का सविशेष उपकार हुआ है। ई० सन् १८८३ के जनवरी मास में महाराजा ने एक शिल्प प्रदर्शनी की भी स्थापना की। जयपुर–राज्य के वाणिज्य के लिये वह प्रदर्शनी कितनी लाभ-प्रद हुई है, यह बात किसी से छिपी नहीं है।

श्रीमान् महाराजा साहब का विद्या-प्रेम भी प्रशंसनीय था। आपने महाराजा कॉलेज को फर्स्ट ग्रेड कॉलेज में परिणत कर दिया। इस कॉलेज में संस्कृत की भी उच्च शिक्षा दी जाती है। इसके अतिरिक्त राज्य के प्रत्येक हिस्से में प्राइमरी और सेकंडरी पाठशालाओं का जाल सा बिछा हुआ है।। सब जगह शिक्षा मुफ्त में दी जाती है।

हिज़ लेट हाइनेस महाराजा साहिब सवाई माधवसिंह जी (जयपुर)

स्त्री-शिक्षा की ओर भी महाराज का समुचित ध्यान था। जयपुर शहर में एक विशाल कन्या पाठशाला है। ई० सन् १९११ में इस राज्य की प्रति दस लाख स्त्रियों में २-४ शिक्षिता थीं।

बीमारों के लिए राज्य में जगह २ अस्पताल खुले हुए हैं। खास जयपुर शहर में 'मेयो हॉस्पिटल' नामक एक विशाल अस्पताल है। इस अस्पताल में मरीजों के लिये अच्छा प्रबन्ध है। औज़ार भी सब तरह के हैं।

महाराजा साहब ने पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेन्ट को भी अच्छा संगठित किया था। इस विभाग के लिये आपने ४०००००० रुपये खर्च किये। आपने राज्य में जगह २ बाँध बँधवा दिये थे। अकाल के समय में ये बाँध बड़े ही उपयोगी सिद्ध होते हैं।

ई० सन् १९०० में सारे हिन्दुस्तान में भयङ्कर अकाल पड़ा था। जयपुर राज्य भी इससे छूटने नहीं पाया। पर श्रीमान् महाराज साहब ने इस समय प्रजा के कष्ट निवारण का समुचित प्रबन्ध किया। इतना ही नहीं, वरन् आपने एक 'सर्वभारतीय दुर्भिक्ष फण्ड' स्थापित किया। और २५००००० रुपये उसमें अपनी ओर से प्रदान किये।

श्रीमान् महाराजा साहब साम्राज्य सम्बन्धी मामलों में भी दिलचस्पी प्रकट करते थे। साम्राज्य की सहायता के हेतु आप एक इम्पीरियल सर्विस टान्सपोर्ट कोर रखते थे। बृटिश सरकार जब चाहे इस सेना का उपयोग ले सकती है। इस सेना में १२०० खच्चर, १६ तांगे, ५६० गाड़ियां और ७९२ आदमी हैं। यह कोर ५०० बीमारों को बात की बात में एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जा सकती है।

रियासत के भिन्न भिन्न व्यापारिक केन्द्रों का सम्बन्ध जोड़ने के लिये राज्य में से रेलवे लाइन निकाली गई है। राजपूताना मालवा रेलवे २४३ मील तक जयपुर रियासत में चलती है। ई० सन् १९०७ में रियासत की ओर से सांगानेर से सवाई माधोपुर तक एक रेलवे लाइन बनवाई गई। इतना ही नहीं, वरन् व्यापार के सुभीते के लिये जयपुर शेखावाटी रेलवे के लिये भी

मंजूरी दी गई। और भी दूसरे कई स्थानों में रेल लाइनें बनाई जाने वाली हैं।

रियासत के जितने भी प्राचीन मकानात थे, श्रीमान् महाराज साहब ने उन सब का जीर्णोद्धार करवा दिया है। महाराज सवाई जयसिंहजी द्वारा जयपुर, बनारस और दिल्ली प्रभृति स्थानों में बनाई गई वेधशालाओं का भी आपने जीर्णोद्धार करवाया।

श्रीमान् सम्राट् ऍडवर्ड (सप्तम) के राज्यारोहण के समय आप विलायत पधारे थे। इस समय समुद्र यात्रा के लिये आपने एक नवीन जहाज़ बनवाया था। उस जहाज़ में समस्त आवश्यकीय सामान यहां से रख लिये गये थे। यहां तक कि मिट्टी भी हिन्दुस्तान से ही ले ली गई थी। पीने के लिये गंगाजल के सैकड़ों डिब्बे जहाज में रखलिये गये थे। लंडन पहुँचने पर आपका यथोचित् स्वागत् हुआ। आप मोरे लॉज नामक स्थान में ठहराये गये। यहां आप तीन मास तक रहे। महाराज साहब यह देखकर बड़े खुश हुए कि अंग्रेज़ों का राज्यारोहण उत्सव हिन्दुओं से बहुत मिलता जुलता होता है। राज्यारोहण के समय यहां पर चार नाइट सम्राट् के ऊपर एक कपड़ा ताने हुए खड़े रहते हैं।

इंग्लैण्ड से लौटकर आप १९०२ और १९०३ में होनेवाले दिल्ली के दरबारों में सम्मिलित हुए। दिल्ली से लौटते ही आप श्रीमान् ड्यूक ऑफ कनाट के आगमन की तैयारी में लग गये। इस अवसर पर सम्राट् की ओर से महाराजा साहब को विक्टोरिया-क्रॉस प्रदान किया गया।

ई० सन् १९११ में भारत के वर्तमान सम्राट् अपनी पत्नी सहित जय-पुर पधारे। श्रीमान् महाराजा साहब ने रेलवे प्लेटफार्म पर पहुँच कर आपका यथोचित स्वागत् किया। सम्राज्ञी के आगमन की खुशी में महाराजा साहब ने किसानों की तोजी के ५०००००० रुपये माफ कर दिये।

ई० सन् १९१३ से महाराजा साहब नरेन्द्र मंडल के सदस्य बने। इस मंडल की बैठक में आप प्रति वर्ष पधारते थे और बड़ी दिलचस्पी के साथ साथ उसमें सहयोग देते रहते थे।

युरोपियन महासमर के समय भी अन्य नरेशों की तरह आपने बृटिश साम्राज्य की तन मन धन से सहायता की थी। दुःख है कि इन महाराजा का दो वर्ष पहले देहान्त हो गया।

श्रीमान् महाराजा साहब बड़ी ही उदार प्रकृति के नरेश थे। यद्यपि आप कट्टर हिन्दू थे तथापि अपनी उदारतावश आपने अपने राज्य में कई जगह मसजिदें और गिर्जे बनवाये हैं।

महाराजा साहब की पूर्ण पदवियाँ इस प्रकार थीं:—मेजर जनरल हिज़ हाइनेस सरमदी—राजाए—हिन्दुस्थान राज राजेन्द्र श्री महाराजाधिराज सर सवाई माधोसिंहजी बहादुर जी० सी० एस० आई०, जी० सी० आई० ई०, जी० सी० वी० ओ०, जी० पी० ई०, एल० एल० डी० (एडिन०)

मानसिंहजी (द्वितीय)

महाराजा माधोसिंहजी के बाद महाराज मानसिंहजी राज्य-सिंहासन पर विराजे। इस वक्त आप शिक्षा लाभ कर रहे हैं। महाराज जोधपुर के यहाँ आपका विवाह हुआ है। शासन-सूत्र कौन्सिल ऑफ रिजेन्सी संचालित कर रही है।

जयपुर शहर ई० सन् १७२८ में सवाई जयसिंहजी द्वारा बसाया गया था। कहना नहीं होगा कि यह शहर Paris of India कहलाता है। इस शहर का निर्माण बड़े ही उत्तम ढंग से किया गया है। दक्षिण दिशा को छोड़ कर इस शहर की तीनों बाजुओं पर पहाड़ियाँ हैं और इन पहाड़ियों के सिरे पर जगह २ किले बने हुए हैं।

श्रीमान् महाराजा साहब का महल देखने लायक है। यह महल सारे शहर के ⅓ हिस्से को घेरे हुए है। इसमें दिवाने-खास, दिवाने-आम, राज्य के भिन्न २ विभागों की कचहरियाँ, दो मंदिर और एक वेधशाला है।

चन्द्रमहलः—यह दो मंजिला महल है। इस पर से शहर के आस-पास का दृश्य बड़ी ही अच्छी तरह देखा जा सकता है। इस महल के अन्दर की दीवारों और छतों पर नकाशी व पुताई का काम बड़ी ही उत्तमता से किया हुआ है।

अल्बर्ट हॉल जो कि 'जयपुर म्युजियम' के नाम से प्रसिद्ध है, यहाँ के देखने लायक स्थानों में सबसे उत्तम है। यह अजायबघर रामनिवास पब्लिक पार्क के अन्दर स्थित है।

हवामहलः—यह भी अत्यन्त मनोहर महल है। कारीगरी का उत्कृष्ट नमूना है।

रामनिवास बागः—यह बाग स्वर्गीय महाराज रामसिंहजी द्वारा ई०

सन् १८६८ में बनवाया गया था। इस बाग के बनवाने में ४००००० रुपये खर्च हुए थे। इसके अतिरिक्त इस बाग के पीछे प्रतिवर्ष २६००० रुपये खर्च होते हैं।

महाराजा सवाई जयसिंहजी द्वारा बनवाई गई वेधशाला महल के अन्दर से उठवा कर रेसिडेन्सी के पास स्थापित कर दी गई है। इस शाला का फलाफल प्रतिदिन तार द्वारा भारत सरकार के दफ्तर में भेजा जाता है। बहुत दिनों से यह बेकार पड़ी हुई थी पर स्वर्गीय महाराजा साहब माधोसिंहजी ने इसका भी जीर्णोद्धार करवाया था।

आम्बेर:—यह स्थान जयपुर से उत्तर की ओर ८ मील की दूरी पर स्थित है। कछवाहों की यह प्राचीन राजधानी है। ई० सन् १०३७ में यह मीणाओं के पास से छीना गया था। इस शहर के बसानेवाले ने यहाँ पर एक अम्बिकेश्वर महादेव का मन्दिर भी बनवाया है। यहाँ का किला बड़ा मजबूत है। स्थान वास्तव में दर्शनीय है।

गलता:—यह रमणीक स्थान जयपुर से चार मील पूर्व की ओर स्थित है। यहाँ स्थान २ पर मन्दिर, तालाब व बगीचे लगे हुए हैं। यहाँ पर स्थित सूर्य का मन्दिर देखने लायक है।

घाट:—यह जयपुर आगरा रोड के बीच एक मील लम्बा मनोहर दर्रा है। यहाँ पर अम्बागढ़ का किला, कई मंदिर और बगीचे हैं।

जोधपुर-राज्य का इतिहास

[प्राचीन]

HISTORY OF THE JODHPUR STATE

[Preliminary]

जोधपुर राजवंश।

महाराजा जोधपुर विख्यात राठोड़-वंश के हैं। यह वंश अत्यन्त प्राचीन है। इस वंश की उत्पत्ति के लिये भिन्न २ इतिहासवेत्ताओं के भिन्न २ मत हैं। राठोंडों की ख्यात के लिखा है—इन्द्र की रहट (रीढ़) से उत्पन्न होने के कारण ये राठोड़ कहलाये। कुछ लोगों का कथन है कि उनकी कुल-देवी का नाम राष्ट्रश्यैना या राठाणी है, इसी से उनका नाम राष्ट्रकूट या राठोड़ पड़ा। कर्नल टाड साहब को नाडोर के किसी जैन-जाति के पास राठोड़ राजाओं की वंशावली मिली थी, उसमें उनके मूल पुरुष का नाम युवनाश्व लिखा था। इससे उक्त साहब ने यह अनुमान किया कि राठोड़ सिथियन्स की एक शाखा है; क्योंकि यवनाश्व शब्द यवन और असि नामक दो शब्दों से बना है और असि नामकी एक शाखा सिथियन्स की थी, अतएव राठोड़ सिथियन्स हैं। मिस्टर बेडन पावल ने Royal Asiatic Society of Great Britain and London नामक प्रख्यात् मासिक पत्र के सन् १८९९ के जुलाई मास के अंक में राजपूतों पर एक लेख लिखा था। उसमें आपने फरमाया था:—

"उत्तर की ओर से सिथियन्स कई गिरोह बनाकर हिन्दुस्थान में आये थे। पीछे जाकर उनकी हर एक शाखा का नाम अलग २ पड़ गया। शायद उन्हीं में से रट, राठी या राठोड़ भी हैं जो अपना असली नाम भूल गये और पाछे से भाटों ने उनके साथ राम, कुश, हिरण्यकश्यप आदि की कथाएँ जोड़ दीं।" सम्राट सिकंदर का हाल लिखने वाले प्राचीन यूनानी

लेखकों ने सिकंदर की चढ़ाई के समय में पंजाब-प्रान्त में अरट्ट नाम की एक जाति का उल्लेख किया है। शक संवत् ८८० में राष्ट्रकूट-राजा कृष्ण-राज तीसरे के करड़ा वाले दानपत्र में लिखा है कि यादव-वंश में रट नामक राजा हुआ। उसीके पुत्र राष्ट्रकूट के नाम से यह राष्ट्रकूट-वंश प्रसिद्ध हुआ।* इसी जाति की सहायता से प्रख्यात् मौर्यवंशीय सम्राट चन्द्रगुप्त ने पाटलिपुत्र का राज्य विजय किया था। कुछ विद्वान् 'अरट्ट' को रट्ट, राष्ट्रकूट आदि का पर्य्यायवाची नाम मानते हैं। दक्षिण के राठोड़ों के कितने ही ताम्र-पत्रों में इनका यादव-वंशी होना लिखा है। हलायुध पण्डित ने अपनी 'कविरहस्य' नामक पुस्तक में इन्हें चन्द्र-वंशी माना है। कन्नौज के अन्तिम राजा जयचन्द्र के पूर्वजों के कई ताम्र-पत्र मिले हैं, उनमें उन्हें सूर्य्य-वंशी लिखा है। वर्तमान राठोड़ प्राय: अपने आपको सूर्य-वंशी कहते हुए, आयोध्या के परम प्रतापी महाराजा रामचन्द्रजी के वंशज बतलाते हैं।

राठोड़ों की प्राचीनता

भारतवर्ष के अत्यन्त प्राचीन राजवंशों में से राठोड़-वंश भी एक है। महाभारत में जिन अराष्ट्रों" का उल्लेख है, कुछ विद्वानों के मतानुसार वह रट्ट, राष्ट्रकूट या राठोड़ों ही का प्राचीन नाम है। ई० सन् के २५० वर्ष पूर्व सम्राट् अशोक ने शिला-लेखों के रुप मे जो अनेक धार्मिक घोषणाएं प्रकट की थीं, उनमें जूनागढ़, मानसरा, शाहाबादगढ़ी आदि के शिला-लेखों में 'राष्ट्रिक' शब्द का उल्लेख आया है।

इनके अतिरिक्त बौद्ध-धर्म ग्रन्थ 'दीप वंश' में लिखा है कि बौद्ध-साधु 'मोगली पुत्र' महारट्ट लोगों को उपदेश देने गये थे। भांजा, बेड़सा और करली की गुफ़ाओं के लेखों में-जो इस्वी सन् की दूसरी की हैं—लिखा है कि मुख्य दानी महारट्ट या महारट्टानी थे।

* Indian Antiquary.

इन सब बातों से यह स्पष्टतया प्रकट होता है कि राठोड़-वंश एक प्राचीन-वंश है और एक समय इसका प्रताप दूर २ देशों तक फैला हुआ था।

प्राचीन समय में राठोड़ों का प्रताप

कई प्रख्यात् पुरातत्व--वेत्ताओं ने अनेक शिला-लेखों और ताम्र-पत्रों की सहायता से यह प्रकट किया है कि एक समय इनका प्रताप सारे भारतवर्ष में फैला हुआ था। ठेठ दक्षिण में एडम्सब्रिज से लेकर उत्तर में नेपाल तक तथा पश्चिम में मालवा, गुजरात से लेकर पूर्व में बिहार, बंगाल और हिमालय तक इनका प्रबल आतंक छाया हुआ था। अब सवाल यह उठता है कि राठोड़ उत्तर से दक्षिण में गये या दक्षिण से उत्तर में आये। अभीतक जितने शिला-लेख या ताम्रपत्र मिले हैं उन सब का अनुसंधान कर डा० फ्लिट ने पता लगाया है कि वे उत्तर से दक्षिण में गये और फिर दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़े। राष्ट्रकूट राजा कृष्णराज के पुत्र इन्द्रराज को चालुक्य वंशीय राजा जयसिंह ने विक्रम संवत् ५५० के लग भग शिकस्त देकर दक्षिण में अपना अधिकार जमाया। इतने पर भी राष्ट्रकूट वहीं बेलगांव आदि स्थानों में जमे रहे। इसके बाद राष्ट्रकूट गोविन्दराज के पोते और कर्कराज के पुत्र दूसरे इन्द्रराज ने चालुक्यवंशीय राज्य-कन्या से विवाह किया, जिससे दन्तिदुर्ग पैदा हुआ। यह बड़ा प्रतापी हुआ। इसने संवत् ८१० (ईस्वी सन् ७५३) से कुछ पहले सोलंकी राजा कीर्त्तिवर्मा (दूसरे) से उसके राज्य का बड़ा भाग छीन कर फिर से दक्षिण में राठोड़ों का राज्य स्थापित किया। इसने उत्तर में लाटदेश (दक्षिण गुजरात) तक का सारा प्रदेश विजय कर 'राजाधिराज' तथा 'परमेश्वर' की महान् सम्मान सूचक उपाधियाँ धारण कीं। दक्षिण के सोलंकियों की मुख्य सम्मान सूचक पदवी 'वल्लभ' थी। इस पदवी को भी राठोड़ों ने धारण कर ली। इसी से राठोड़ों के राज्य-काल में जो अरब मुसाफिर भारतवर्ष में आये थे उन्होंने राठोड़ों को 'बलहरा' लिखा है। यह 'वल्लभ राज के लौकिकरुप' बलहराय का बिगड़ा हुआ रुप है।

दन्तिदुर्ग (पांचवें) के निःसन्तान मरने पर उसका चाचा कृष्णराज उत्तराधिकारी हुआ। इसने सोलंकियों का रहा सहा राज्य भी विजय कर लिया। इसने राहप नामक राजा को भी पराजय किया था। सुप्रख्यात् इलोरा (दक्षिण) की गुफ़ा में पर्वत को काटकर 'कैलाश' नामक, जो भव्य मन्दिर बना हुआ है, वह इन्हीं के कला--प्रेम का आदर्श नमूना है।

कृष्णराज के बाद उनका पुत्र गोविन्दराज राज्याधिकारी हुआ। यह बड़ा विलास प्रिय था। इसलिये इसके छोटे भाई ध्रुवराज ने इसका राज्य छीन लिया।

ध्रुवराज ने 'निरुपम' और 'धारावर्ष' की पदवियाँ धारण कीं। इसने गौड़ों पर विजय प्राप्त करनेवाले वत्सराज पड़िहार को परास्त कर मारवाड़ में भगा दिया था। इसने उत्तर में अयोध्या और दक्षिण में काँची तक विजय प्राप्त की थी।

ध्रुवराज के बाद गोविन्दराज (तीसरा) राज्य-सिंहासन पर बैठा। इसने 'जगतुंग' और 'प्रभूतवर्ष' का ख़िताब धारण किया। यह महा प्रतापी था। इसने युवराज पद पर रहते हुए ही बहुत सी लड़ाईयों में विजय प्राप्त की थी। इसने दक्षिण के बारह राजाओं की संयुक्त सेना पर भी अपूर्व विजय प्राप्त की थी। दक्षिण के लाट-देश से लगाकर करीब २ रामेश्वर तक का सारा प्रदेश इसके अधिकार में था। ईस्वी सन् ८१५ तक इसने राज्य किया।

गोविन्द राज (तीसरे) के बाद उसका पुत्र अमोघ वर्ष राज्य-सिंहा॰ सन पर बैठा। 'वीर नारायण' 'नृप तुंग' आदि इसकी उपाधियाँ थीं। इसने बाल्यावस्था ही में राज्य पाया था। इसकी सोलंकी राजा विजयादित्य से कई लड़ाईयाँ हुई थीं। इसने मान्यखेट (मालखेड़, निजाम राज्य) को अपनी राजधानी बनाया था। इसने लग भग ६३ वर्ष तक राज्य किया। यह स्वयं बड़ा विद्वान था और विद्वानों का बड़ा सम्मान करता था। इसकी बनाई हुई 'प्रश्नोत्तर रत्न मालिका, नामक एक छोटीसी पुस्तिका होने पर भी 'रत्नमाला' के समान कंठ में धारण करने योग्य है। प्राचीन समय में इस

पुस्तक का तिब्बती भाषा में भी अनुवाद हुआ था। इसने 'कविराजमार्ग, नामक एक ग्रन्थ कनाड़ी भाषा में भी लिखा था। यह जैन विद्वानों का बड़ा सम्मान करता था। आदिपुराण तथा पार्श्वाभ्युदय आदि जैन ग्रन्थों के कर्ता जिनसेन सूरी का यह शिष्य भी था। ईस्वी सन् ९३४ तक इसका विद्यमान होना पाया जाता है।

अमोघवर्ष के बाद कृष्णराज दूसरा राज्य-सिंहासन पर बैठा। इसने गंगा तट के मुल्कों पर चढ़ाईयाँ कीं। ईस्वी सन् ९११ तक के इसके लेख मिलते हैं। इसके बाद इन्द्रराज, अमोघ वर्ष (दूसरा) गोविंद, अमोघवर्ष (तीसरा) आदि २ राजा क्रम २ से हुए। इनके समय में कोई विशेष घटनाएँ नहीं हुई। हाँ अमोघ वर्ष (तीसरा) का पुत्र कृष्णराज (तीसरा) प्रतापी हुआ। इसने दंतिग और वप्पुग को मारा। गंगा-वंशीय रायमल को पदच्युत कर उसके स्थान पर व्यूतग को राजा बनाया। पल्लव-वंशी अन्तिग को हराया। तकोल की लड़ाई में चोल के राजा राजादित्य को मारा और चेरी देश के राजा सहस्त्रार्जुन को जीता। इसके ईस्वी सन् ९४० से ९६१ तक के लेख मिलते हैं।

उपरोक्त वृतान्त से पाठकों को राठोड़ों के अपूर्व गौरव और अद्वतीय प्रताप का दिग्दर्शन हुआ होगा। अब हम राठोड़ों के उस प्राचीन प्रताप के विषय में अरब प्रवासियों के मत उद्धृत करते हैं। सुलेमान नामक एक अरबी प्रवासी ने 'सिल्सिलुत्तवारिख' नामक एक पुस्तक ई० स० ८५१ में लिखी है। उसमें उसने 'बलहराओं' के विषय में लिखा है—'पृथ्वी के चार बड़े राजाओं में से बलहरा (राठोड़) भी एक है, जो हिन्दुस्थान के राजाओं में सब से बढ़कर है। दूसरे राजा उसका आधिपत्य स्वीकार करते हैं और उसके वकीलों का बड़ा आदर करते हैं। वह अपनी फौज की तनख्वाह अरब लोगों की तरह बराबर चुकाता है। उसके पास बहुत से हाथी घोड़े और बेशुमार दौलत है। उसका सिक्का तातारी दिरम है, जो तोल में दिरम से ड्योढ़ा है। उसके सिक्कों पर वह संवत् लिखा है, जब कि उसने पहले पहल राज्य किया था। हर एक राजा अपना सन् अपने जुलूस से लिखते हैं। उन सब की

पदवी 'बलहरा' है जिसका अर्थ 'महाराजाधिराज' है। उसका राज्य चीन की सरहद्द से लेकर कोंकण तक समुद्र के किनारे २ है। बलहरा का पड़ोसी गुजरात का राजा है, जिसके पास सवारों की अच्छी फौज है।" यह वृत्तान्त राजा अमोघवर्ष प्रथम के समय का लिखा हुआ है। इब्निखुर्दाद ने ई० स० ९१२ में "किताबुल्म सालिक बुल ममालिक" नामक पुस्तक लिखी है। उसमें वह लिखता है—

"हिन्दुस्तान में सब से बड़ा राजा बलहरा है। इस की अँगुठी पर यह खुदा हुआ रहता है कि, "जो काम दृढ़ता के साथ प्रारंभ किया जाता है वह सफलता के साथ समाप्त होता है"। अलमसऊदी ने ईस्वी सन् ९४४ में 'मुरुजुल जहब' नामक ग्रन्थ लिखा था, उस में वह कहता है—

"इस समय हिन्दुस्तान के राजाओं में सब से बड़ा मानकेर (मान्य-खेट) नगर का राजा बलहरा (राठोड़) है। हिन्दुस्तान के बहुत से राजा उसे अपना स्वामी मानते हैं। उसके पास असंख्य हाथी और लश्कर है। लश्कर विशेष कर पैदल है, क्योंकि उस की राजधानी पहाड़ों में है।"

मध्य-प्रदेश के मुलताई गाँव में राष्ट्रकूट राजा 'युद्ध शूर' का एक लेख शक संवत ६३१ कार्तिक शुक्ला १५ का मिला है। मि० फ्लिट का मत है कि बारहवीं सदी के शुरु तक वहाँ राष्ट्रकूटों का राज्य था *।

हमने ऊपर राठोड़ों के प्राचीन गौरव पर ऐतिहासिक दृष्टि से प्रकाश डालने की चेष्टा की है। अब वर्तमान जोधपुर राठोड़ राज्य की उत्पत्ति और विकास पर कुछ लिखने की आवश्यकता है। जोधपुर के राजवंश का सीधा संबंध कन्नौज के राठोड़ों से था। जोधपुर राजवंश के मूल पुरुष कन्नौज से मारवाड़ आये थे। कन्नौज के राठोड़ों के कई शिला-लेख और ताम्र-पत्र, मिले हैं। उन्हीं के आधार से जोधपुर राज-वंश के प्राचीन पूर्वज कन्नौज के अधि-पतियों के इतिहास पर कुछ ऐतिहासिक प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है।

* Indian Antiquary Vol. 18 Pages 230

यशोविग्रह

कन्नौज के ताम्रपत्र में यशोविग्रह से लेकर हरिश्चंद्र तक के दस राजाओं के नाम लिखे हैं। वि० सं० ११४८ का (चन्द्रदेव के समय का) एक ताम्रपत्र चन्द्रावती में मिला है। उसमें लिखा है कि सूर्य्यवंश में कई राजाओं के हो जाने के बाद यशोविग्रह राजा हुए।

यशोविग्रह के बाद उनके पुत्र महिचन्द्र राजगद्दी पर बिराजे। इनका दूसरा नाम महितल अथवा महिपा भी था।
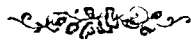
चन्द्रदेव

कन्नौज के तीसरे राठोड़ राजा का नाम चन्द्रदेव था। कहीं २ ये सिर्फ चन्द्र नाम से ही सम्बोधित किये गये हैं। अभी तक इनके समय के तीन ताम्र-पत्र (वि० सं० ११४८, ११५० और ११५६) प्राप्त हुए हैं। इन ताम्रपत्रों में लिखा है कि "चन्द्र बड़े न्यायी-नरेश थे। वे शत्रु के नाश करने वाले और दुष्टों के संहारक थे।" आपने अपनी प्रजा के अनेक कष्टों को दूर किया। काशी (बनारस) कुशीक (कन्नौज) उत्तरीय कोसल (अवध) और इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली) आदि प्रदेश आपके अधिकार में थे। आप हमेशा तीर्थयात्रा करते रहते थे और तीर्थ-स्थानों में अपने वजन के बराबर सुवर्ण दान दिया करते थे। आपने काशी में केशव की मूर्ति स्थापित की थी। पाञ्चालदेश पर भी आपने विजय प्राप्त की थी।

वि० सं० ११४८ के ताम्रपत्र से मालूम होता है कि उस समय चन्द्र राज्य-सिंहासन पर बैठ गये थे। अतएव यह मान लेना भूल न होगी कि उन्होंने वि० सं० ११४८ के पहले ही कन्नौज पर विजय प्राप्त कर ली थी।

बसाही नामक स्थान में वि० सं० ११६१ का एक ताम्रपत्र मिला है। उसमें लिखा है कि "चन्द्रदेव ने भोज और कर्ण की मृत्यु हो जाने के बाद कन्नौज पर अधिकार किया।" भोज और कर्ण क्रमशः परमार और हैहय राजवंश के नृपति थे। इन दोनों में आपस में चख-चख चला करती थी। कर्ण एक शक्तिशाली राजा था। उसने एक समय भोजराज पर चढ़ाई की थी। इसने गौड़ और गुर्जर प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया था। इसी समय कर्ण ने भी कन्नौज पर अपना अधिकार कर लिया होगा। कर्ण की मृत्यु हो जाने पर उसके राज्य में झगड़े-बखेड़े शुरू हो गये। इन आपसी झगड़ों से फायदा उठाकर चन्द्र ने कन्नौज पर अपना अधिकार कर लिया।
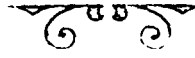
मदनपाल

मदनपाल का दूसरा नाम मदनदेव भी था। इन्होंने अपने कई शत्रुओं को पराजित किया। वि० सं० ११५४ का एक ताम्रपत्र मिला है। यह ताम्रपत्र चन्द्रदेव के समय का लिखा हुआ है पर इसमें मदनपाल का भी वर्णन है। इसमें लिखा है कि चन्द्रदेव ने अपने राज्य के अन्तिम समय में मदनपाल को राज्य के सम्पूर्ण अधिकार प्रदान कर दिये थे। इन्हें 'महाराजाधिराज' की उपाधि प्राप्त थी। ये बड़े विद्वान् थे। इन्होंने 'मदनपाल निघण्टु, नामक एक ग्रन्थ की रचना भी की थी।

गोविन्दचन्द्र

अभी तक इनके राज्यकाल के करीब ४० ताम्र-पत्र और कई सुवर्ण के सिक्के मिले हैं। आपने गौड़ पर चढ़ाई की थी। इसमें आपको बहुत अच्छी विजय मिली थी। इस समय मुसलमान लोग लाहोर तक आ पहुँचे थे। और वहाँ से दक्षिण की ओर बढ़ने की कोशिश कर रहे थे। अतएव गोविन्द्रचन्द्र जी को इन मुसलमान आक्रमणकारियों के विरुद्ध शस्त्र उठाने पड़े। आप अपनी वीरता और विद्वत्ता के लिये बड़े मशहूर थे। आप के समय के जो ताम्रपत्र मिले हैं उनमें आप "विविध विद्या विचार वाचस्पति" के सम्मानपूर्ण विशेषणों द्वारा सम्बोधित किये गये हैं। आप विद्वानों के आश्रयदाता थे। आपके समय के ताम्रपत्रों से आपका वि० सं० ११६१ से वि० सं० १२११ तक होना पाया जाता है। पर वि० सं० ११६६ का एक ताम्रपत्र मिला है जिसका आरंभ इस प्रकार होता है:—

"मदनपाल के विजयी राज्य में महाराज-पुत्र गोविन्दचन्द्र देव......।"
इस पर से यह ज्ञात होता है कि मदनपाल ने अपने जीते जी ही अपने पुत्र को राज्य के सम्पूर्ण अधिकार प्रदान कर दिये थे। गोविन्दचन्द्र को विजयचन्द्र, राज्यपाल, और आस्फोटचन्द्र नामक तीन पुत्र थे। आपकी रानी कुमारदेवी ने एक मन्दिर बनवा कर धर्मचक्र जिन शासन को दे दिया था। गोविन्दचन्द्र की आज्ञा से उनके प्रधान सचिव ने "व्यवहार समुच्चय" नामक एक ग्रन्थ की रचना की थी। इनके समय के कई स्वर्ण के सिक्के मिले हैं।

विजयचन्द्र

विजयचन्द्र का दूसरा नाम मल्लदेव था। इनके स्त्री का नाम चन्द्रलेखा था। चन्द्रलेखा विष्णु-भक्त थी। उसने विष्णु के कई मन्दिर बनवाये थे। विजयचन्द्रजी के समय (वि० सं० १२२४) के एक ताम्रपत्र से मालूम होता है कि उन्होंने अपने पुत्र जयचन्द्र को युवराज-पद प्रदान किया था।

जयचन्द्र

जयचन्द्रजी, जैत्रचन्द्र और जयन्तचन्द्र के नाम से भी प्रसिद्ध थे। आपके पितामह गोविन्दचन्द्रजी ने आपके जन्म के दिन दशार्ण देश पर विजय प्राप्त की थी। इसी कारण आपका नाम जैत्रचन्द्र पड़ा। वि० सं० १२२६ में जयचन्द्रजी राज्यसिंहासन पर विराजे। आपके पास बहुत बड़ती सेना थी अतएव आप 'दलपंगुल' भी कहलाते थे। आपने कालिंजर के राजा मदनवर्म्मा पर विजय प्राप्त की थी। इन मदनवर्म्मा का वि० सं० १२१९ का शिलालेख मिला है। जयचंद्रजी विद्वानों के आश्रयदाता थे। सुप्रसिद्ध पौराणिक काव्य "नैषध" के रचयिता श्रीहर्ष ने आपके दरबार की शोभा को बढ़ाया था। आपने इस कलिकाल में भी राजसूय यज्ञ किया था। इसी समय से दिल्ली के तत्कालीन चौहान नरेश पृथ्वीराज जी और आपके बीच वैमनस्य उत्पन्न हो गया जो कि आगे चलकर दोनों पक्षों के नाश एवम् मुसलमानों की विजय का कारण हुआ। मुसलमानों के यहाँ आने का एक दूसरा कारण यह भी था कि जयचन्द्रजी की रखेल सुहावदेवी ने उनसे अपने पुत्र

मेघचन्द्र को युवराज बनाने के लिये कहा था। महाराजा ने इस बात को नामंजूर कर दिया। इस पर सुहावदेवी ने मुसलमानों को अपनी सहायतार्थ आने के लिये निमंत्रित किया।

जयचन्द्रजी ने कई किले बनवाये थे। इनमें से एक तो कन्नौज ही में था। दूसरा इटावा ज़िले के असाई गाँव में और तीसरा गंगा के किनारे कर्रा नामक स्थान पर था। कर्रा के क़िले पर मुसलमानों और जयचंद्रजी के बीच घोर संग्राम हुआ था। इस लड़ाई में कई मुसलमान सरदार मारे गए। इस स्थान पर अब भी कई मुसलमान सरदारों की कब्रें इस बात का प्रमाण दे रही हैं।

मुसलमानों का प्रथम आक्रमण तो जयचंद्रजी ने विफल कर दिया, पर वि० सं० १२५० में शाहबुद्दीन ग़ोरी फिर चढ़ आया। चंदावल नामक स्थान पर युद्ध हुआ। जयचंद्रजी हार गये और गंगा को पार करते हुए उसमें डूब कर मर गये। कुछ इतिहास-लेखकों का कथन है कि उन्होंने युद्ध-क्षेत्र में अपने प्राण विसर्जन किये। जो कुछ भी हो, यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि उसी साल उनका देहान्त हो गया। जयचन्द्रजी की मृत्यु हो जाने से उत्तरीय हिन्दुस्थान के छोटे २ राज्य मुसलमानों के अधिकार में आ गये। हिन्दुओं के देश में मुसलमानों का झंडा फहराने लगा।

हरिश्चन्द्र (बरदाई सेन)

जयचन्द्रजी की मृत्यु हो जाने के बाद कन्नौज मुसलमानों के अधिकार में आ गया। राठौड़ सरदार इधर उधर बिखर गये। रामपुर, खेमसेदपुर और समसाबाद आदि स्थानों के प्राचीन इतिहास से पता चलता है

कि कन्नौज में मुसलमानों का अधिकार होते ही राठौड़ पहले पहल वहाँ से (खोड़) (समसाबाद) नामक स्थान में जाकर बसे। 'आईने अकबरी'* का लेखक इस बात की पुष्टि करता है। जयचन्द्र जी के पुत्र हरिश्चंद्र के समय का वि० सं० १२५३ का एक ताम्रपत्र मिला है। उसमें हरिचंद्रजी को निम्नलिखित उपाधियों से विभूषित किया गया है:—

"परम भट्टारक, महाराजाधिराज, परमेश्वर परम माहेश्वर, अश्वपति, गजपति, नरपति, राजत्रयाधिपति, विविध विद्या विचार वाचस्पति" आदि।

ये ही पदवियाँ जयचन्द्रजी के नाम के आगे भी लगाई जाती थीं। यह भी मालूम हुआ है कि हरिश्चंद्रजी ने ब्राह्मणों को कई गाँव जागीर में प्रदान किये थे। रामपुर के प्राचीन इतिहास से पता चलता है कि हरिश्चंद्र का राज्य खोड़ (वर्तमान समसाबाद) तक फैला हुआ था। खोड़ जिला जयचन्द्रजी ने भोर लोगों के पास से छीना था। खोड़ पर ई० स० ११९४ से १२१३ तक राठोड़ों का अधिकार रहा। ई० स० १२१४ में शमसुद्दीन अल्तमश ने खोड़ से राठौड़ों को निकालकर उस पर अपना अधिकार कर लिया। इसी समय से खोड़ का नाम समसाबाद रखा गया। शमसुद्दीन ने समसाबाद पर अपना सूबेदार नियुक्त कर दिया। समसाबाद से निकाल दिये जाने पर फिर राठौड़ इधर उधर बिखर गये। जिसे जहाँ आश्रय मिला वह वहीं चला गया। जयचन्द्रजी के पुत्र जयपाल के वंशज बदायूँ जिले के ऊसेट नामक स्थान पर चले गये जहां कि राष्ट्रकूटों की एक शाखा पहले ही से राज्य कर रही थी। ई० स० १२२३ में मुसलमानों ने उक्त स्थान पर भी हमला कर दिया। अब ये लोग बिलासड़ा नामक स्थान पर चले गये। इसके कुछ समय बाद राजा रामसहाय जी रामपुर में जाकर रहने लगे। कुछ समय व्यतीत हो जाने पर रामपुर वाले राठौड़ भी दो शाखाओं में विभक्त हो गये। इन दोनों शाखाओं के वंशज अब भी रामपुर (एटा जिला) और खिम-सीपुर (फर्रुखाबाद) के जागीरदार हैं।

---

* Bleekmans, editsion Vol. 11 Page 271.

हरिश्चंद्रजी के वंशज पहले तो खोड़ से फर्रुखाबाद गये और महुई नामक स्थान में रहने लगे। काली नदी के किनारे इन्होंने एक किला भी बनवाया। यहाँ से ये लोग मारवाड़ चले गये। श्रीयुत कालीरायजी अपने फतेहगढ़ के इतिहास में लिखते हैं कि हरिश्चंद्रजी को हरसु भी कहा करते थे। रामपुर आदि स्थानों के इतिहासों में हरिश्चंद्रजी प्रहस्त नाम से और मारवाड़ के इतिहास में बरदाईसेन के नामसे सम्बोधित किये गये हैं।

मारवाड़ का वर्तमान राठौड़ राजवंश

रावसीहाजी

रावसिहाजी जयचन्द्रजी के वंशज थे। बीकानेर नरेश रायसिंहजी के समय का एक शिलालेख मिला है, उसमें उन्हें जयचन्द्रजी का प्रपौत्र लिखा है। आइने अकबरी का लेखक सिंहाजी को जयचन्द्र जी का भतीजा बतलाता है। कर्नल टाड की सिहाजी के लिये कोई निश्चित राय नहीं है। कहीं वे सिहाजी को जयचन्द्रजी के भतीजे, कहीं पुत्र और कहीं पौत्र लिखते हैं। कुछ भी हो यह तो निर्विवाद हैं कि सिहाजी हरिचन्द्रजी और जयचन्द्र के खास वंशज थे। ऐतिहासिक अनुसंधान से इनका जयचंद्रजी का प्रपौत्र होना ही अधिक संभव जान पड़ता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यहाँ राव सिहाजी ही वर्तमान जोधपुर राजवंश के आदि पुरुष हैं। रावसिहाजी किस प्रकार मारवाड़ की ओर आये, इस पर कुछ ऐतिहासिक प्रकाश डालना आवश्यक है।

ई० स० १२११ में शमसुद्दीन अल्तमश दिल्ली के राज्य सिंहासन पर बैठा। इसके तीन साल बाद उसने खोड़ नामक स्थान पर आक्रमण किया

जहाँ पर कि जयचन्द्रजी के वंशज राज्य करते थे। तुमुल संग्राम के बाद राठौड़ों को हारकर खोड़ छोड़ना पड़ा। राव सिंहाजी और उनके पिता महुई नामक स्थान पर चले गये। यहाँ काली नदी के किनारे पर इन्होंने एक किला बनवाया था जिसका भग्नावशेष अब भी विद्यमान है। मालूम होता है कि मुसलमानों के लगातार आक्रमण के कारण सिहाजी को यह स्थान भी छोड़ना पड़ा। सिहाजी यहाँ से पश्चिम की ओर बढ़े। बिठू (मारवाड़) नामक स्थान से वि० सं० १३३० का राव सिहाजी का एक शिलालेख मिला है। इससे मालूम होता है कि सिहाजी ई० स० १२४३ (वि० सं० १३००) के करीब मारवाड़ गये। जब खोड़ उनके हाथ से निकल गया तब वे महुई नामक स्थान पर चले गये थे। यहाँ भी इन्होंने एक किला बनवाया था। अनुमान किया जा सकता है कि यहाँ वे २५ या ३० वर्ष के करीब रहे होंगे। इसके बाद ही वे मारवाड़ की तरफ रवाना हुए।

मारवाड़ में सिहाजी के वंशज कनौजिया-राठोड़ के नाम से प्रसिद्ध हैं। क्योंकि वे कन्नौज से वहाँ गये थे। जगमालजी द्वितीय के समय का वि० सं० १६८६ का एक शिलालेख नगारा नामक स्थान से मिला है। उसमें सिहाजी को सूर्यवंशी और कनौजिया राठोड़ लिखा है।

एक समय सिहाजी द्वारका की यात्रा के लिये जा रहे थे कि रास्ते में पुष्कर के पास उन्हें कुछ भीनमाल ब्राह्मण मिल गये। इन ब्राह्मणों को मुसल० मान आक्रमणकारी बहुत सताया करते थे। अतएव इन्होंने सिहाजी को शक्ति शाली जानकर उनसे सहायता माँगी। सिहाजी ने उनके साथ जाकर आक्रमणकारियों को भगा दिया। इस घटना पर उस समय की एक कविता पढ़ने लायक है।

"भीनमाल लीधी भड़े, सी है सेल वजाय।
दत दीधौ सत संग्रह्यो, जो जस कधे न जाय॥"

द्वारका में कुछ दिन ठहर कर सिहाजी अनहिलवाड़ा होते हुए मार-वाड़ आ गये। इस समय पाली के ब्राह्मणों को मीणा, मेर, आदि लोग बहुत
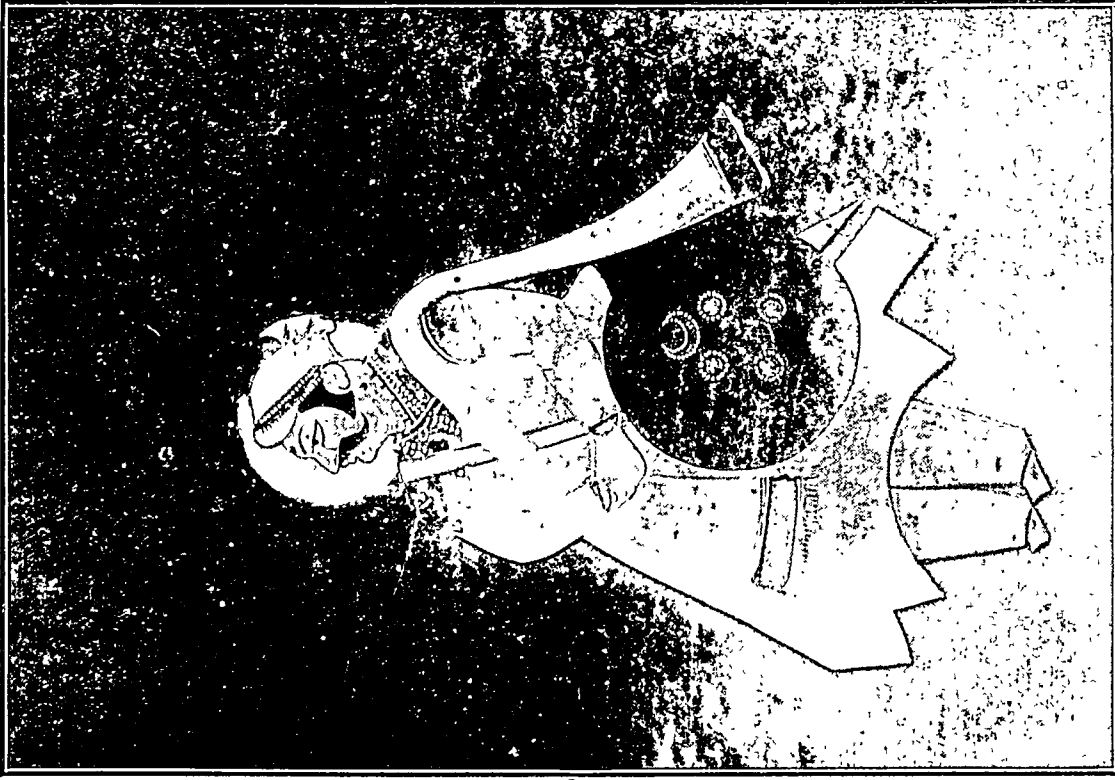
श्रीमान् राव सिहाजी, जोधपुर।
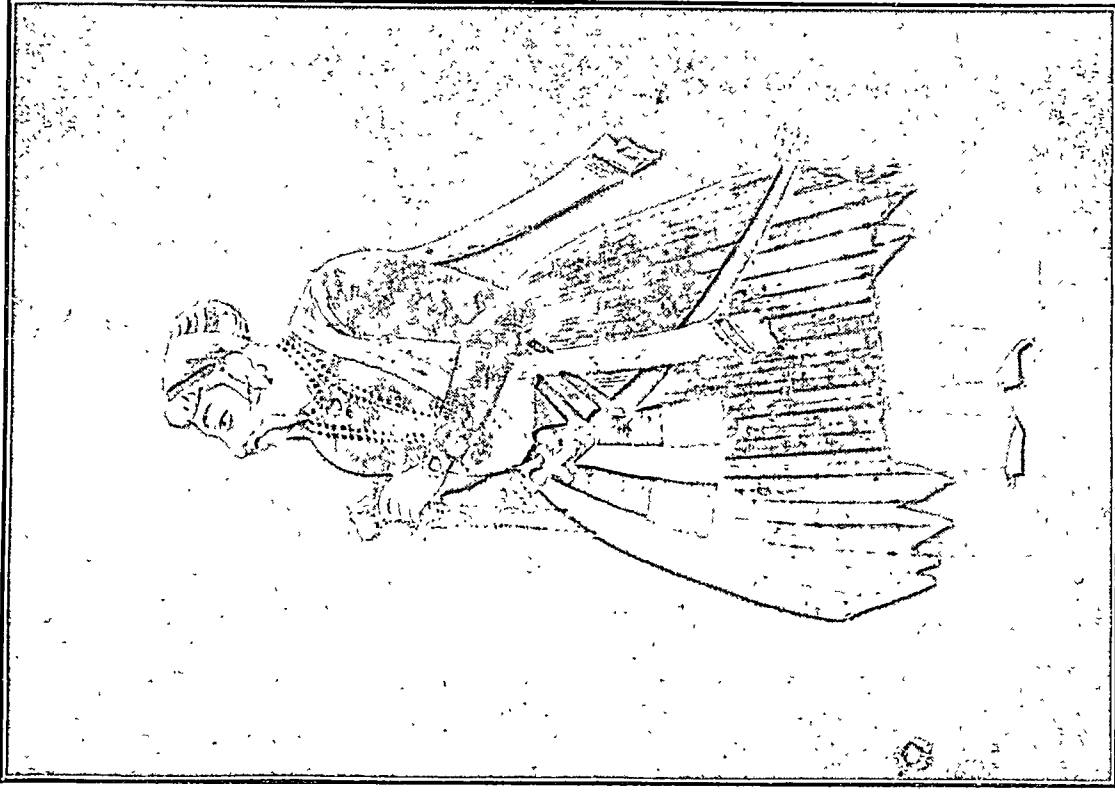
श्रीमान् राव चुंडाजी, जोधपुर।

सताया करते थे। ये ब्राह्मण सिहाजी की वीरता से भलि भाँति परिचित थे। अतएव उन्होंने सिहाजी से अपनी सहायता करने के लिये प्रार्थना की। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि यदि आप इन लुटेरों से बिलकुल मुक्त कर देगें तो हम आपको एक लाख रुपया नक़द देंगे। पाली इस समय व्यापार का केन्द्र था। अरब, परशिया आदि पश्चिमीय देशों और हिन्दुस्थान के बीच होने वाले व्यापार की सामग्री इसी स्थान से होकर गुजरती थी। सिहाजी ने जी जान से उन ब्राह्मणों की सहायता की। अतएव इन लोगों ने भी आपको कुछ गांव जागीर में दे दिये। इन गांवों की आमदनी से सिहाजी अपना और अपनी सेना का निर्वाह करने लगे। सिहाजी का विवाह सोलंकी राजकुमारी के साथ हुआ था। उससे आपको अष्टानजी, सोनागजी, और अजाजी नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए थे। कुछ समय व्यतीत हो जाने पर सिहाजी ने खोड़ के गुहिलों से कुछ गांव छीन लिये। इसी समय पाली पर मुसलमानों ने आक्रमण किया। सिहाजी ने न केवल मुसलमानों को पाली से भगा ही दिया वरन् बहुत दूर तक उनका पीछा भी किया। बिठू नामक स्थान पर लड़ाई हुई, जिसमें सिहाजी काम आये। आपकी स्त्री पार्वती आपके साथ सती हुई। इस घटना से संबंध रखने वाला एक शिला-लेख अभी हाल ही में मिला है। यह शिला-लेख जोधपुर राज्य के महकमा तवारिख के दफ्तर में मौजूद है। पाली में एक कुँए के पास सिहाजी का स्मारक अभी भी मौजूद है। एक स्मारक बिठू नामक स्थान में उस जगह भी है जहाँ पर कि आपका अग्नि-संस्कार किया गया था।

राव आसथानजी

राव सिहाजी के बाद उनके पुत्र राव आसथानजी राज्यासन पर बिराजे। ये अपने पिता की तरह वीर थे। इनके किस्मत चेतने का एक अवसर उपस्थित हुआ। वह यह कि खेड़ के गोहिल नरेश और उनके मंत्री के बीच किसी बात में अनबन हो गई। उस मंत्री ने आसथानजी के पास आकर उनसे खेड़ हस्तगत करने के लिये अनुरोध किया। शीघ्र ही परस्पर यह इकरारनामा हो गया कि जब कभी राठोड़ों और गोहिलों के बीच युद्ध छिड़े तब उक्त मंत्री अपनी सेना सहित गुहिलों का साथ छोड़ दे। वह गुहिलों की बायीं बाजू पर हो जाय जिससे कि राठोड़ गुहिलों को हरा सकें। इतना होने पर लड़ाई छेड़ने के लिये कोई बहाना खोजा जाने लगा। आसथानजी ने गोहिल नरेश के सामने यह प्रस्ताव पेश किया कि वे अपनी लड़की का विवाह उनके साथ कर दें। खेड़ के गुहिल राजा प्रतापसिंह जी इस प्रस्ताव से सहमत न हुए। इसी बहाने को लेकर खेड़ पर चढ़ाई कर दी गई। युद्ध शुरू हुआ। नियत समय पर प्रतापसिंहजी का उक्त कारभारी (मंत्री) चालाकी खेल गया। प्रतापसिंहजी अपने कई गुहिल सरदारों के साथ युद्ध में काम आये। उनके बचे हुए सरदार काठियावाड़ भाग गये। काठियावाड़ में गुहिलों ने फिर नवीन राज्यों की स्थापना की, जो कि अभी भावनगर, ध्रांगधरा के नाम से प्रसिद्ध हैं। खेड़ पर आसथान जी का राज्य हो गया।

इस समय ईडर साँवलिया नामक भील के अधिकार में थी। आसथानजी ने साँवलिया को लड़ाई में मारकर अपने भाई सोनाग को यह प्रान्त दे दिया।

आसथान जी एक वीर एवम् कुशल शासक थे। आपने अपने बाहुबल से खेड़ के समान शक्तिशाली-प्रान्त पर अपना अधिकार किया था। अपने दोनों भाइयों को भी अलग २ प्रान्त का शासक बना दिया था। ई० स० १२९१ में आपका स्वर्गवास हो गया। आपके आठ पुत्र थे।

राव दुहड़जी

राव दुहड़ जी आसथानजी के सब से ज्येष्ठ पुत्र थे। आप भी अपने पिता ही के समान पराक्रमी थे। आपने कुल मिलाकर १४० गाँवों पर विजय प्राप्त की। उन्हें अपने राज्य में मिला लिया। आपके राज्य-काल में लुम्बार्षि नामक एक सारस्वत ब्राह्मण कन्नौज से राठोड़ों की कुल-देवी चक्रेश्वरी की मूर्ति लाया था। दुहड़जी ने एक मन्दिर बनवाकर उसमें अपनी कुल-देवी को प्रस्थापित किया और उस ब्राह्मण को 'तीगड़ी' नामक गाँव जागीर में दिया। इसी गांव में दुहड़जी के समय का वि० सं० १३६६ का एक शिला-लेख मिला है। पर इसके अक्षर साफ़ नहीं हैं अतएव इसका मतलब निकालना बड़ा मुश्किल है। इसी गांव में दुहड़जी और पड़िहारों ❀ के बीच भयंकर युद्ध हुआ। इसमें दुहड़जी वीर-गति को प्राप्त हुए।

दुहड़जी के सात पुत्र थे। जिनमें से रायपालजी उनके उत्तराधिकारी हुए। ये न बड़े वीर ही थे और न दानी ही। पड़िहारों पर आक्रमण कर इन्होंने मन्डोर पर अधिकार कर लिया था तथा परमारों से इन्होंने बाड़मेर छीन लिया था। रायपालजी ने अकाल में अपनी प्रजा की अन्न-वस्त्रादिक वस्तुओं से बहु मूल्य सेवा की थी। इसके लिये आपको लोग 'माहिरेलण' के नाम से सम्बोधित करते थे।
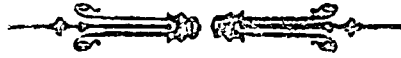
❀ एक स्थान में यह भी लिखा है कि उक्त लड़ाई दुहड़जी और चाहेमन नरेश भानाजी के बीच हुई थी।

राव कनपालजी

रायपालजी के बाद कनपालजी खेड़ की गद्दी पर बिराजे। आप मुसलमानों के साथ की लड़ाई में मारे गये। आपके तीन पुत्र थे। इन तीनों में से भीम बड़े योद्धा थे। वे वास्तव में भीम ही थे। काका नदी के किनारे इनके और भाटियों के बीच युद्ध हुआ था। इस युद्ध में यद्यपि भीमजी वीर-गति को प्राप्त हुए तथापि इसी समय से जैसलमेर और खेड़ के बीच की सीमा निश्चित हो गई। इस संबन्ध में एक कवि कहता है:—

"आधी धरती भींव आधी ला देखे धणी।
काक नदी छे सींव, राठोड़ा ने भाटियाँ॥"

अर्थात् काक नदी राठोड़ों और भाटियों के बीच की सीमा हो गई। उसके एक ओर जेसलमेर राज्य और दूसरी तरफ भीमसिंहजी का राज्य है।

राव कनपालजी के बाद राव जालनजी राज्यासीन हुए। इनके समय में ऐतिहासिक दृष्टि से कोई विशेष महत्वपूर्ण घटना नहीं हुई। ये मुसलमानों के साथ होने वाली लड़ाई में मारे गये।

अपनी मृत्यु के समय जालनजी अपने पुत्र छाड़ाजी को कह गये थे कि "उमर कोट के दुर्जनसालजी से खिराज के घोड़े ले लेना।" छाड़ाजी ने अपने पिता की अन्तिम इच्छा पूर्ण करने के लिये दुर्जनसालजी से चौगुने घोड़े वसूल किये। आपने जैलसमेर के भाटियों से खिराज वसूल किया। इतना ही नहीं जैसलमेर के भाटियों को उन्होंने लड़की देने के लिये भी बाध्य किया।

राव तीड़ाजी

राव छाड़ाजी के बाद राव तीड़ाजी राजगद्दी पर विराजे। इन्होंने महोबा प्रान्त पर विजय की। भीनमाल के सरदार सावंत सिंह को आपने अपने अधीन कर लिया। इसी समय मुसलमानों के आक्रमणों से त्रस्त होकर सातल और सोम नामक चौहान सरदारों ने तीड़ाजी से सहायता माँगी। इन्होंने इस प्रार्थना को स्वीकृत कर मुसलमानों पर आक्रमण कर दिया। अगणित मुसलमान आक्रमणकारी रावजी की सेना द्वारा धराशायी कर दिये गये। स्वयं रावजी भी इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए। आपके तीन पुत्र थे।

राव तीड़ाजी के बाद क्रमशः राव काल्हड़देवजी, राव त्रिभुवनसीजी, राज्यासीन हुए इनके समय में ऐतिहासिक दृष्टि से कोई महत्वपूर्ण घटना घटित नहीं हुई।

राव सलखाजी

राव त्रिभुवनसीजी के बाद राव सलखाजी राजगद्दी पर आसीन हुए। राव सलखाजी का विवाह मंडोर के पड़िहार राना रूपड़ा की कन्या के साथ हुआ था। राव सलखा जी अपने श्वशुर की सहायता से मंडोर को पुनः मुसलमानों द्वारा छीनने में समर्थ हुए। इसी बीच त्रिभुवनसीजी के पुत्र कान्हड़जी ने मुसलमानों को हराकर खेड़ पर अधिकार कर लिया। सलखाजी के ज्येष्ठ पुत्र मल्लीनाथ जी ने जालोर के मुसलमानों को कान्हण पर आक्रमण करने के लिये निमंत्रित किया। कान्हड़जी मुसलमानों द्वारा मार डाले गये। आठ वर्ष तक महोबा पर राज्य कर ई० सं० १३७३ में राव सलखा जी स्वर्ग-

वासी हो गये। आपके मल्लिनाथजी, जेतमालजी, बीरमजी और सोमिताजी नामक चार पुत्र थे।

राव सलखाजी का देहान्त हो जाने पर उनके ज्येष्ठ पुत्र मल्लिनाथजी महोवा का शासन करने लगे। राव सलखाजी एक साधु पुरुष गिने जाते थे। उनकी पवित्र स्मृति में एक मन्दिर बनवाया गया था जो अभी तक लूनी नदी के किनारे पर स्थित तलावड़ा नामक स्थान में मौजूद है। आपके पुत्र जगमालजी अपनी वीरता के लिये मशहूर थे। ये गुजरात के मुसलमान शासक की लड़की को बलपूर्वक छीन लाये थे। मल्लिनाथजी ने जेतमालजी को 'सिवाना' का शासक नियुक्त कर दिया था। बीरमजी खेड़ की गद्दी पर रहे। सोमिताजी ने ओसियाँ में परमारों को निकाल कर उस पर अपना अधिकार कर लिया।
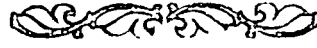
राव बीरमजी

हम पहले ही कह आये हैं कि खेड़ की गद्दी पर वीरमजी कायम रहे। एक समय की बात है कि जोईया लोग तत्कालीन दिल्ली-सम्राट् का बहुत सा सामान लूटकर मल्लिनाथजी की शरण में आये। इन जोईया लोगों के पास एक घोड़ी थी जो कि मल्लिनाथजी की आँखों में चढ़ गई। अतएव मल्लिनाथजी ने उन लोगों से वह घोड़ी माँगी। इन लोगों ने वह घोड़ी देने से साफ़ इनकार कर दिया। इसी बात को लेकर मल्लिनाथजी और जोईया लोगों के बीच अनबन हो गई। जोईया लोग मल्लिनाथजी का आश्रय त्याग कर वीरमजी के आश्रय में चले गये। कुछ समय बाद वीरमजी पर उन लोगों का इतना प्रेम बढ़ गया कि वह घोड़ी बिना माँगे ही उन्होंने वीरमजी के भेंट कर दी। मल्लिनाथजी के ज्येष्ठ पुत्र जगमालजी ने वीरमजी से उक्त घोड़ी माँगी पर वीरमजी ने ऐसा करने से इनकार कर दिया। इसी बात को

लेकर वीरमजी और मल्लिनाथजी के बीच अनबन हो गई। वीरमजी मल्लानी के रेगिस्थान में चले गये। वहाँ जाकर उन्होंने सेतरावा नामक गाँव बसाया। सेतरावा अपने पुत्र देवराज को देकर वीरमजी सिन्ध में चले गये। वहाँ पर उक्त जोईया लोगों ने उन्हें सावन नामक गाँव जागीर में दिया। पर जोईया लोगों के साथ भी वीरमजी की अधिक नहीं पटी। एक विस्तृत आकार का ढोल बनवाने के लिये वीरमजी ने एक पलाश के वृक्ष को कटवा डाला। यह वृक्ष जोईया लोगों द्वारा बड़ा पवित्र माना जाता था। अतएव वीरमजी और उनके बीच झगड़ा शुरू हो गया। इस कार्य में वीरमजी को अपने प्राण गवाने पड़े। राव वीरमजी के पाँच पुत्र थे।

राव चूंडाजी *

राव वीरमजी के पुत्र राव चूँडाजी बड़े शक्तिशाली राजा हुए। आपके समय में मारवाड़-राज्य का खूब विस्तार हुआ। आपने मंडोर, नागोर, डीडवाना, खाटू, अजमेर और सांभर आदि स्थानों को मुसलमानों से छीनकर अपने राज्य में मिलाया। वीरमजी की मृत्यु हो जाने पर उनकी स्त्री—चूंडाजी की माता—मांगलियाणी जी अपने पुत्रों सहित थली परगने में आल्हा नामक चारण के मकान में रहने लगी। चूंडाजी बचपन ही से होनहार मालूम होते थे। बड़े होने पर मल्लिनाथजी ने आपको सलोडी का थानेदर नियुक्त कर दिया। इसी समय की बात है कि ईंदा राजपूतों ने मंडोर का किला मुसलमानों से छीन लिया। पर उक्त किले की रक्षा करना ज़रा कठिन मालूम होने लगा। अतएव उन्होंने चूंडाजी से सहायता के लिये प्रार्थना की। चूंडाजी ने उनकी सहायता करना निश्चित कर लिया। कुछ समय व्यतीत हो जाने पर ईंदा राजपूतों के सरदार राय धवलजी ने चूंडाजी का विवाह अपनी कन्या के साथ

* कर्नल टाड साहब का कथन है कि राव चूंडाजी ई० स० १३९१ में गद्दी पर बिराजे।

कर दिया और मन्डोर उन्हें दहेज* में दे दिया। इस कथन की पुष्टि में किसी कवि का कहना है:—

"चूंडो चवरी चाढ, दीयो मन्डोवर दायजे।
ईंदा तणों उपकार कमधज कदै न वीसरे॥"

मंडोवर के स्वामी हो जाने के कारण चूंडाजी राजपूतों की दृष्टि में चढ़ गये। राजपूत लोग इन्हें बड़ी ऊँची निगाह से देखने लगे। इन्हीं राजपूतों की सहायता से आप नागोर, डीडवाना, खाटू और सांभर आदि स्थानों को मुसलमानों से छीनने में समर्थ हुए।

बीकानेर राज्य में स्थित 'चूंडासर' नामक गांव चूंडाजी ही का बसाया हुआ है। जोधपुर से १६ मील के अन्तर पर चामुण्डा नामक गांव है। इस गाँव में चामुण्डादेवी का एक मन्दिर है। कहते हैं कि यह मन्दिर भी चूंडाजी द्वारा ही बनाया गया था। राव चूंडाजी के सब मिलाकर चौदह पुत्र थे।
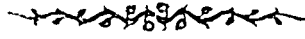
राव रणमलजी

राव रणमलजी, चूंडाजी के ज्येष्ठ पुत्र थे। एक समय राव चूंडाजा ने इनसे कह दिया था कि 'मेरे बाद मंडोर कान्ह के अधिकार में रहना चाहिये।' कान्ह चूँड़ाजी के छोटे पुत्र थे। अपने पिता की आज्ञानुसार रणमलजो मंडोर को अपने छोटे भाई के हाथ सौंप आप चित्तौड़ चले गये। चित्तौड़ की गद्दी पर इस समय राणा लाखाजी आसीन थे। इन्होंने रणमलजी से प्रसन्न हो कर उन्हें ४० गाँव दे दिये। इधर राव कान्हजी सिर्फ ११ माह राज्य कर परलोकवासी हो गये। कान्हजी की मृत्यु हो जाने पर चूंडाजी के दूसरे पुत्र

* कर्नल टाड साहब के मतानुसार चूंडाजी ने पड़िहार सरदार को मारकर मंडोर हस्तगत किया था। पर इस कथन की पुष्टि में अभी तक कोई प्रमाण नहीं मिला है।

सालाजी गद्दी पर बैठे। पर ये भी तीन या चार साल राज्य कर सके। सालाजी और उनके भाई रणधीरजजी के बीच अनबन हो गई। अतएव रणधीरजजी ने मेवाड़ जाकर अपने ज्येष्ठ बन्धु रणमलजी को समझाना शुरू किया। उन्होंने रणमलजी से कहा कि "आपने सिर्फ कान्हजी के लिये राज्य छोड़ा है न कि सालाजी लिये। अतएव सालाजी का राज्य पर कोई अधिकार नहीं है। यह बात रणमलजी के भी ध्यान में जम गई। उन्होंने मोकलजी की सहायता से मंडोर पर चढ़ाई कर दी। सालाजी को गद्दी से उतार कर उस पर रणमलजी बैठें। कुछ समय पश्चात् रणमलजी राणाजी की सहायता द्वारा नागोर से मुसलमानों को भगाने में समर्थ हुए। रणमलजी ने नागोर अपने राज्य में मिला लिया। महाराणा कुम्भ के समय की कुम्भलगढ़ की प्रशस्ति में भी इसका वर्णन आया है। इस प्रशस्ति से इस बात की पुष्टि होती है कि रणमलजी ने मोकलजी की सहायता से नागोर पर विजय प्राप्त की।

रणमलजी ने समय २ पर मेवाड़ के राणाओं की अच्छी सहायता की। ई० स० १४३३ में राणा खेताजी के चाचा और मेरा नामक दो औरस पुत्रों ने मोकलजी का खून कर डाला। जब यह खबर राव रणमलजी तक पहुँची तो वे तुरन्त मोकलजी के पुत्र कुंभाजी की सहायता पर आ डटे। उन्होंने हत्याकारियों को मारकर कुम्भाजी को राज्य-सिंहासन पर बैठाने में सहायता दी। इसके कुछ ही समय बाद चाचा के पुत्र आका और मोकलजी के ज्येष्ठ बन्धु ने मेवाड़ के सरदारों द्वारा राणा कुम्भाजी तक यह खबर पहुँचाई कि "वे सावधान रहें। कहीं ऐसा न हो कि मेवाड़ का राज्य-सिंहासन राठोड़ों के हाथ में चला जाय।" यह युक्ति काम कर गई। कुंभाजी, रणमलजी को सन्देह की दृष्टि से देखने लग गये, इतना ही नहीं प्रत्युत मौका पाकर उन्होंने रणमलजी को मरवा डाला।

रणमलजी के पुत्र जोधाजी इस समय मेवाड़ ही में थे। रणमलजी की मृत्यु होते ही जोधाजी के किसी हितैषी ने उनसे मेवाड़ छोड़ देने के लिये कहा। जोधाजी अपने सात सौ सिपाहियों को लेकर वहाँ से चल पड़े। चूँड़ाजी

शिशोदिया बड़ी भारी सेना के साथ जोधाजी के पीछे भेजे गये। मेवाड़ी सेना के चलते रास्ते आक्रमण करते रहने के कारण मारवाड़ पहुँचते २ जोधाजी के पास केवल सात सिपाही शेष रह गये । जोधाजी ने पहले तो मंडोर में रहने का विचार किया पर मेवाड़ी सेना के पीछे लगी रहने के कारण उन्हें अपना यह विचार स्थगित करना पड़ा। वे थली परगने के काहुनी नामक स्थान में जाकर रहने लगे, राणा कुम्भाजी ने समस्त मारवाड़ पर अपना अधिकार कर लिया। उन्होंने राव चूंडाजी के प्रपौत्र राघवदेव को राव की पदवी देकर सोजत के शासक नियुक्त कर दिया। मंडोर और चोकड़ी नामक स्थानों की रक्षा के लिये राणाजी ने अपनी बढ़िया से बढ़िया सेना नियुक्त की। राव रणमलजी के २६ पुत्र थे। इन सब में राव जोधाजी बड़े थे।

राव जोधाजी

जोधाजी बड़े शूरवीर और पराक्रमी राजा थे। काहुनी नामक स्थान से मन्डोर को प्राप्त करने के लिये आपने उस पर कई आक्रमण किये; पर सब विफल हुए। इसी बीच एक समय रावजी किसी जाट के मकान में चले गये। जाट वहाँ न था। जोधाजी ने उसकी स्त्री से खाने के लिये कुछ माँगा। उस दिन जाट के घर में बाजरी का खीच पकाया गया था। अतएव जाटनी ने उसी को थाल में परोसकर जोधाजी के सामने रख दिया। रावजी ने उस खीच में अपनी अगुलियाँ रखीं, खीच गरम था अतएव उनकी अँगु-लियाँ जल गईं। यह देख जाटनी ने कहा "मालूम होता है तुम भी जोधाजी ही के समान मूर्ख हो।" उसे क्या मालूम था कि ये ही राव जोधाजी हैं। रावजी ने उक्त जाटनी से जोधाजी को मूर्ख बतलाने का कारण पूछा। जाटनी
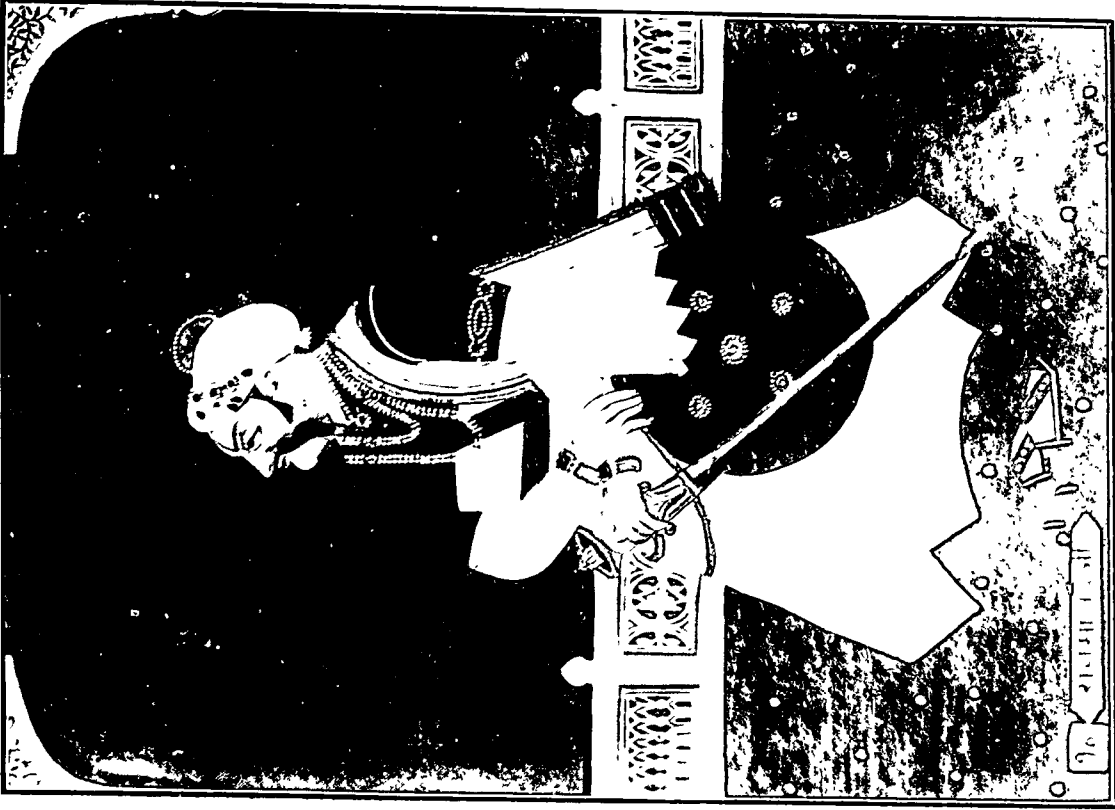
श्रीमान् राव मालदेवजी, जोधपुर ।
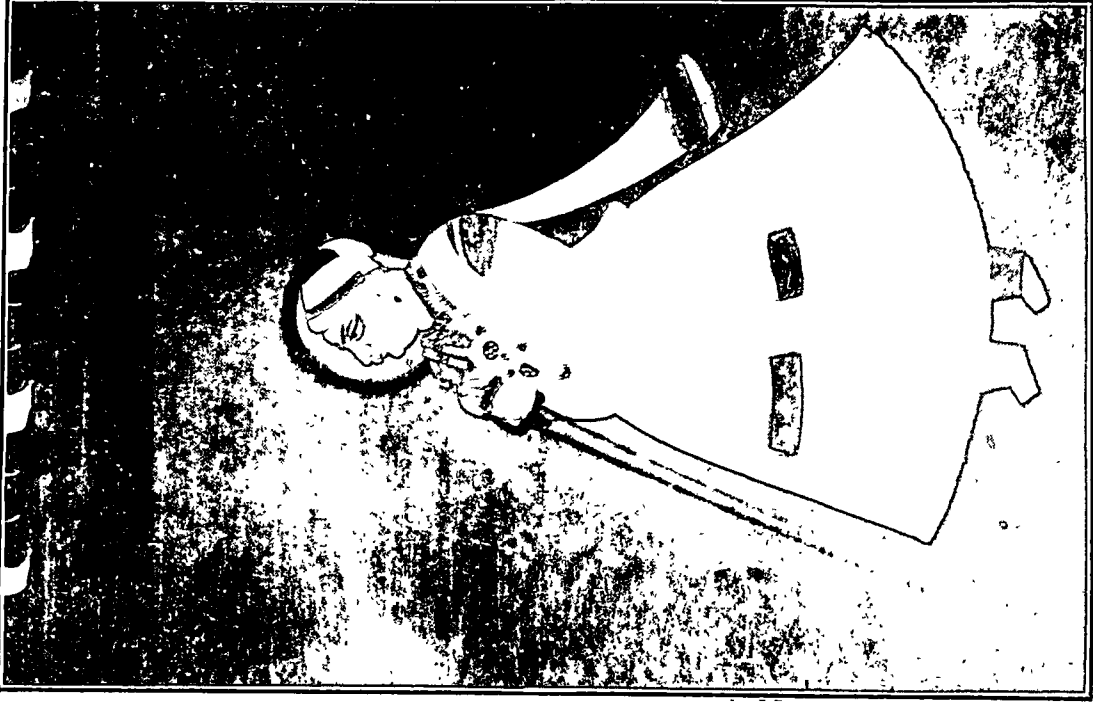
श्रीमान् राव जोधाजी, जोधपुर ।

ने कहा—"जोधाजी ने (एक मूर्ख आदमी के समान) एक दम मंडोर पर आक्रमण कर दिया। यही कारण था कि उन्हें उसमें असफलता हुई।" जाटनी की इस बात से जोधाजी को बड़ा उपदेश मिला। उन्होंने ई० स० १४५३ में सांकला हरबू, और भाटी जेसा की सहायता से मन्डोर पर आक्रमण किया और राणाजी की सेना को हराकर उस पर अपना अधिकार कर लिया। जब यह समाचार राणाजी के पास पहुँचा तो वे खुद सेना लेकर मारवाड़ पर चढ़ आये। राव जोधाजी ने भी सेना संगठित कर राणाजी का सामना करने के लिये कूच बोल दिया। यह देखकर कि राठोड़ सैनिक "कार्य साधयामि वा शरीरं पातयामि" पर तुले हुए हैं, राणाजी वापस मेवाड़ लौट गये। अब तो जोधाजी का उत्साह बढ़ गया। एक भारी सेना एकत्रित करके, उन्होंने अपने पिताजी की मृत्यु का बदला लेने के लिये मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। गोंड़वाड़ को लूटकर जोधाजी चित्तौड़ की तरफ बढ़े। उन्होंने वहाँ पहुँच कर किले के दरवाजों को जला डाला और शहर में घुस कर धूमधाम मचा दी।

राणाजी ने देखा कि शत्रु का सामना करना कुछ कठिन है तो झट अपने पुत्र उदयसिंह को जोधाजी के साथ सन्धि कर लेने के लिये भेज दिया। संधि में तय हुआ कि दोनों राज्यों की सीमाएँ आंवला और बंवल के झाड़ों द्वारा निर्धारित कर ली जायँ। उदयपुर की सीमा पर आंवले का झाड़ और मारवाड़ की सीमा पर बंवल का झाड़ लगा दिया गया। इसी समय से जोधाजी अत्याधिक शक्तिशाली होते गये। ई० स० १४५८ में जोधाजी ने मन्डोर से ३ तीन कोस के अन्तर पर की एक पहाड़ी पर किला बनवाया। इस किले के किवाड़ अभी भी जोधाजी के किवाड़ों के नाम से प्रसिद्ध हैं। उक्त पहाड़ी की सतह में जोधाजी ने अपने नाम से जोधपुर नामक शहर बसाया। किले के पास ही 'रानीसर' नामक एक तालाब है जो कि राव जोधाजी की रानी द्वारा बनाया गया था।

ई० स० १४७४ में जोधाजी ने छपरा, द्रोणपुर (वर्तमान बिदावती)

आदि के राजा को हरा कर मार डाला। फिर अपने पुत्र विदा को वहाँ का शासक नियुक्त कर दिया। इसी प्रकार आपने सांकला सरदार जेसाल को हरा कर उसका जांगल प्रान्त (वर्तमान बीकानेर) हस्तगत कर लिया। इस प्रान्त पर जोधाजी के पुत्र बीकाजी का अधिकार रहा। वर्तमान बीकानेर शहर इन्हीं बीकाजी का बसाया हुआ है।

इस समय अजमेर, मालवा-राज्य के आधीन था। राव जोधाजी ने इस प्रान्त के ३६० गावों पर अपना अधिकार कर लिया। ये गाँव मेड़ता जिले में मिला लिये गये। बरसिंहजी और दुदाजी वहाँ के शासक नियुक्त कर दिये गये।

एक समय राव जोधाजी गयाजी की यात्रा करने गये हुए थे। वहाँ पर आपने यात्रियों पर भारी टॅक्स लगा हुआ पाया। उस समय गया जौन-पुर के राजा के अधिकार में था। अतएव उससे कहकर यात्रियों पर का वह टॅक्स माफ़ करवा दिया।

ई० स० १४९८ में राव जोधाजी का स्वर्गवास हो गया। आपके २० बीस पुत्र थे। अपनी मृत्यु होने के पहले ही आप अपने पुत्रों को अलग२ जागीर प्रधान कर गये थे, ताकि वे आपस में झगड़ने न पावें। आपने अपने जीवन का अन्तिम समय बड़ी ही शान्ति के साथ व्यतीत किया। आप बड़े पराक्रमी, दानी एवं दूरदर्शी शासक थे।

राव सातलजी

जोधाजी का स्वर्गवास हो जाने पर उनके पुत्र सातलजी वि० सं० १५४७ में गद्दी पर विराजे। सातलजी ने तीन वर्ष राज्य किया। आपने अपने भतीजे नराजी को दत्तक ले लिया था। आपके भाई वरसिंहजी और दुदाजी ने–जिनको कि जोधाजी ने मेड़ता के शासक नियुक्त कर दिये थे–सांभर लूट ली। अतएव अजमेर का सूबेदार मल्लूखां बदला लेने के लिये चढ़ आया। राव सातलजी सुजाजी के साथ अपने भाइयों की मदद के लिये चले। मल्लूखां ने पीपाड़ के पास आकर अपना पड़ाव डाला। इस समय पीपाड़ गांव की स्त्रियाँ गौरी-पूजा के निमित्त बाहर गई थीं। मल्लूखाँ की दृष्टि इन पर पड़ी और उसने इन्हें पकड़ लिया। जब यह खबर चारों राठोड़ भ्राताओं को लगी तो उन्होंने मल्लूखाँ पर चढ़ाई कर दी। कोसाना नामक स्थान पर लड़ाई हुई। मुसलमानों का सेनापति घडूका मारा गया। मल्लूख भाग गया। इस युद्ध में राव सातलजी भी वीरगति को प्राप्त हुए। ई० स० १४९० में सातलजी की रानी फूलां ने फूलेलाव नामक तालाब बनवाया। फलौदी जिले के कोलू नामक गाँव में एक शिला–लेख मिला है। इसमें जोधाजी को महाराव और सातलजी को राव की पदवी से सम्बोधित किया गया है। इस पर से मालूम होता है कि सातलजी अपने पिता के जीते जी ही फलोदी के शासक नियुक्त हो गये थे।

राव सुजाजी

राव सातलजी के बाद राव सुजाजी ई० स० १४९१ में गद्दी पर विराजे।
सुजाजी को नाराजी नामक पुत्र सातलजी द्वारा दत्तक लिये गये थे। पर सातलजी का स्वर्गवास होते ही सुजाजी ने राज्य पर अधिकार कर लिया। नाराजी को सिर्फ पोकरन और फलोदी के जिले दे दिये गये। इस समय फलोदी एक छोटा सा गांव था। पोकरन मल्लिनाथजी के पौत्र हमीरजी के वंशजों के अधिकार में था। पर नाराजी ने उन्हें वहां से हटाकर पोकरन पर अधिकार कर लिया।

अजमेर के सूबेदार मल्लूखाँ ने सुजाजी के भाई वरसिंहजी को अपने यहाँ कैद कर रखे थे। यह बात जब सुजाजी को मालूम हुई तो उन्होंने अजमेर पर चढ़ाई कर दी। इनके अजमेर पहुँचने के पहले ही उनके भाई बीकाजी और दुदाजी ने उक्त स्थान पर चढ़ाई कर वरसिंहजी को लौटा देने के लिये मलूखाँ को बाध्य किया। इस प्रकार वरसिंहजी को छुड़ाकर तीनों भाई मेड़ता आ गये।

जेतारण पर बहुत समय से सिन्धल राठोड़ों का अधिकार था। यह प्रान्त इनको मेवाड़ के राणाजी की ओर से मिला था। जब जोधाजी ने गोड़वाड़ जिले का बहुत सा हिस्सा राणाजी से जीत लिया तो जेतारण के राठोड़ों ने भी उनकी आधीनता स्वीकार कर ली। पर सुजाजी ने गद्दी पर बैठते ही सिन्धल राठोड़ों को जेतारण से निकाल दिये। यह स्थान सुजाजी ने अपने पुत्र उदाजी को दे दिया। सुजाजी के सब से बड़े पुत्र का नाम बाघजी था। इनका देहान्त सुजाजी के जीते जी ही हो गया था। २३ वर्ष राज्य कर लेने पर राव सुजाजी का भी देहान्त हो गया।

जिस समय बाघजी मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए थे, उनके पिताजी ने उन्हें

अपनी अन्तिम इच्छा प्रदर्शित करने के लिये कहा। कुँवर बाघजी ने उत्तर दिया "मेरी अन्तिम इच्छा यह है कि आप के बाद मेरा पुत्र गद्दी पर बैठे।" राव सुजाजी ने यह बात मंजूर की और बाघजी के पुत्र वीरमजी को युवराज बना दिया। पर सुजाजी की मृत्यु हो जाने पर वीरमजी के हक्कों का बिलकुल खयाल न रखते हुए उनके छोटे भाई गांगाजी गद्दी पर बैठ गये।
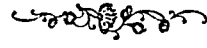
राव गांगाजी

राव सुजाजी के बाद वि० सं० १५७२ में राव गांगाजी राज्यासीन हुए। ये भी बड़े वीर थे। वि० सं० १५८२ में जब महाराणा संग्रामसिंह और बाबर के बीच युद्ध हुआ था, उस समय राव गांगाजी महाराणा की ओर से बड़ी ही वीरता पूर्वक लड़े थे। और भी कई छोटे बड़े युद्धों में इन्होंने भाग लिया था। ई० स० १५३१ में इनका स्वर्गवास हो गया।

राव मालदेवजी

राव गांगाजी के स्वर्गवासी होने के पश्चात् उनके पुत्र राव मालदेवजी राज्यगद्दी पर आसीन हुए। ये बड़े शक्तिशाली नरेश हो गये हैं। इन के पास ८०००० सेना थी। इनके समय में जोधपुर राज्य का विस्तार बहुत विस्तृत हो गया था।

जिस समय राव मालदेवजी गद्दी पर बैठे, उस समय उनके अधि-

कार में सिर्फ़ जोधपुर और सोजत जिला रह गया था। नागोर, जालोर, सांभर, डीडवाना और अजमेर पर मुसलमानों का राज्य था। मल्लानी पर मल्लिनाथजी के वंशज राज्य करते थे। गोड़वाड़ मेवाड़ के राणाजी के हाथों में था। सांचोर में चौहानों का अधिकार था। मेड़ता वीरमजी के आधिपत्य में था। पर कुछ ही समय में उक्त सब परगने मालदेवजी द्वारा हस्तगत कर लिये गये। इतनाही नहीं वरन् चाटसू, नरैना लालसोत, बोनली, फतेहपुर, झूझनूँ आदि २ स्थानों पर भी इन्होंने अपना अधिकार कर लिया था। आपने अपने राज्य के पश्चिम की ओर से छोहटन और पारकर परमारों से, और उमरकोट, सोढ़ाओं से जीतकर अपने राज्य में मिला लिये। दक्षिण में राधनपुर आदि पर भी आपने अधिकार कर लिया। बदनूर, मदारिया और कोसीथल नामक स्थान भी मेवाड़वालों से छीन लिये। पुरमंडल, केकड़ी, मालपुरा, अमरसर, टोंक और टोड़ा नामक स्थानों को आपने जीतकर अपने राज्य में मिला लिये। इन्होंने सिरोही पर भी अपना अधिकार कर लिया था, पर वहाँ के शासक उनके रिस्तेदार थे, अतएव सिरोही उन्हें वापस लौटा दी गई।

राव मालदेवजी ने बीकानेर-नरेश को वहाँ से हटाकर वह राज्य भी अपने राज्य में मिला लिया था। इस प्रकार सब मिलाकर ५२ जिलों और ८४ किलों पर मालदेवजी ने अधिकार कर लिया था।

चित्तौड़ के राणा उदयसिंहजी को भी मालदेवजी ने कई वक्त सहायता दी थी। राणा विक्रमादित्यजी की मृत्यु के बाद राणा सांगा का अवैध पुत्र बनवीर राज्य का अधिकारी बन बैठा। राणा सांगा के पुत्र उदयसिंह कुम्भलमेर भाग गये। वहाँ से उन्होंने राव मालदेवजी को सहायता के लिये लिखा। मालदेवजी ने तुरन्त अपने जेता और कुंपा नामक दो बहादुर सेनापतियों को सहायतार्थ भेज दिये। ई० स० १५४० में उन्होंने बनवीर को चित्तौड़ की गद्दी पर से उतारकर उसके स्थान पर उदयसिंहजी को बिठा दिये। इस सहायता के उपलक्ष में राणाजी ने ४०००० फ़िरोजी सिक्के और एक हाथी मालदेवजी को भेंट किया।

श्रीमान् महाराज भीमसिंहजी की पालकी की सवारी (जोधपुर)।

ई० स० १५४२ में मुगल सम्राट् हुमायूँ, के शेरशाह द्वारा तख्त से उतार दिये जाने पर वह मालवदेवजी की शरण में आया। तीन चार माह तक वह मन्डोर में रहा। किसी के समझा देने पर, कि मालदेवजी उसका खज़ाना लूटना चाहते हैं, वह मारवाड़ से चला गया।

हम ऊपर कह चुके हैं कि मेड़ता के सरदार वीरमजी और राव मालदेवजी के बीच अनबन हो गई थी। अतएव मालदेवजी ने मेड़ता से वीरमजी को निकाल दिया। वीरमजी शेरशाह के आश्रय में चले गये। वहाँ जाकर वे उसे मालदेवजी पर चढ़ाई करने के लिये उकसाने लगे। शेरशाह वीरमजी की बातों में आकर मालदेवजी पर चढ़ आया। अजमेर के सुमेला नामक स्थान पर आकर उसने अपनी छावनी डाल दी। मालदेवजी भी शत्रु का मुकाबला करने के लिये अपनी सेना सहित गिर्री नामक स्थान पर आ धमके। मालदेवजी की सेना को देख कर शेरशाह का धैर्य जाता रहा। वह भागने का विचार करने लगा। पर उस समय उसकी स्थिति ऐसी हो गई थी कि वह भाग भी नहीं सकता था। यदि वह भागता तो मालदेवजी की सेना द्वारा तहस नहस कर दिया जाता। डर के मारे उसने बालू के बोरे भरवा कर अपनी सेना के चारों ओर रखवा दिये। इस प्रकार दोनों ही ओर एक माह तक सेना पड़ी रही। फरिश्ता का कहना है कि "यदि शेरशाह को कुछ भी मौका मिल जाता तो वह अवश्य भाग जाता।" पर हम ऊपर कह चुके हैं कि उसकी स्थिति (Position) बड़ी खराब थी। सुरक्षितता से वह भाग भी नहीं सकता था। ऐसे समय में वीरमजी ने उसे बहुत कुछ ढाढ़स बँधवाया। इतना ही नहीं, उन्होंने एक चाल भी चली। उन्होंने मालदेवजी के सरदारों की ढालों में सम्राट् की सही करवा कर कुछ पत्र रखवा दिये। यह तो इधर किया और उधर मालदेवजी के पास कुछ दूत भेजे गये। इन दूतों ने मालदेवजी से जाकर कहा कि "आपके सरदार सम्राट् से मिल गये हैं। यदि आप को हमारा विश्वास न हो तो उनकी ढालें मंगवाकर आप स्वयं देख लें उनमें सम्राट् के हस्ताक्षरयुक्त पत्र मौजूद हैं।" मालदेवजी ने ऐसा ही किया।

जब उन्होंने समस्त सरदारों की ढालें मंगवा कर देखा तो सचमुच उन्हें उसमें सम्राट् द्वारा भेजे गये पत्र मिले। अब तो राव मालदेवजी हताश हो गये। विजय की आशा छोड़ कर वापस जालोर लौट आये। उनके सरदारों ने उन्हें बहुत कुछ समझाया पर सब व्यर्थ हुआ। अन्त में जेता और कुंपा नामक सरदार युद्ध-क्षेत्र में डटे ही रहे। सिर्फ १२००० राजपूत सैनिकों के साथ इन्होंने ८०००० मुसलमानों का सामना बड़ी ही वीरता के साथ किया। मुकाबला ही क्यों, यदि मुसलमानों की सहायतार्थ और सेना न आ गई होती तो इन्होंने उन्हें हरा ही दिया था। सहायता पा जाने से शेरशाह ने दूने उत्साह से राजपूतों पर हमला कर दिया। जेता और कुंपा अपने तमाम सैनिकों के साथ वीरगति को प्राप्त हुए। शेरशाह की विजय हुई। इस युद्ध के लिये शेरशाह ने कहा था कि, "एक मुट्ठी भर बाजरे के लिये मैंने हिन्दुस्तान का साम्राज्य खो दिया होता।"

इस लड़ाई के बाद ही से मालदेवजी का सितारा कुछ फीका पड़ गया। ई० स० १५४८ में यद्यपि रावजी ने अजमेर और नागोर पर पुनः अधिकार कर लिया था तथापि यह अधिकार बहुत दिनों तक नहीं रह सका। ई० स० १५५६ में हाजीखाँ नामक एक पठान ने मालदेवजी से अजमेर छीन लिया। इसी बीच ई० स० १५५४ में सम्राट् अकबर दिल्ली के तख्त पर आसीन हो गया था। उसने आंबेर नरेश भारमलजी को अपनी ओर मिला कर राजपूताने के कुछ जिले हस्तगत कर लिये थे। ई० स० १५५७ में अकबर ने शाहकुलीखाँ नामक जनरल को भेजकर हाजीखाँ को भगा दिया और अजमेर प्रान्त शाही सल्तनत में मिला लिया। इस युद्ध के द्वारा अजमेर, जेतारन और नागोर के जिले अकबर की अधीनता में गये। धीरे २ मारवाड़ के पूर्वीय भाग पर भी सम्राट् का अधिकार हो गया। राव मालदेवजी के अधिकार में बहुत थोड़ा सा प्रान्त रह गया। ई० स० १५६२ में अजमेर के सूबेदार शरफुद्दीन हुसेन मिर्जा और राठोड़ देवीदासजी तथा जयमलजी के बीच मेड़ता में युद्ध हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि मालदेवजी को मेड़ता प्रान्त से भी हाथ

धोना पड़ा। इस प्रान्त में सम्राट् की ओर से वीरमजी के पुत्र जयमलजी सूबेदार नियुक्त किये गये। इसी साल राव मालवदेवजी ने जोधपुर नगर में अपनी इहलोक यात्रा संवरण की।
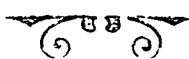
राजा उदयसिंहजी

मालदेवजी का स्वर्गवास हो जाने पर चन्द्रसिंहजी मारवाड़ की गद्दी पर बिराजे। इनके बाद ई० स० १५८४ में राव उदयसिंहजी सिंहासनारूढ़ हुए। आपने अपनी लड़की का विवाह शाहज़ादा सलीम से और अपनी बहिन का विवाह सम्राट् अकबर के साथ कर दिया था। सम्राट् अकबर ने खुश होकर आपको आपका सारा मुल्क लौटा दिया। हाँ, अजमेर को सम्राट् ने अपने ही अधीन रखा। राजपूत लोग उदयसिंहजी को मोटा राजा कह कर पुकारते थे। इनका शरीर इतना स्थूल हो गया था कि ये घोड़े पर भी नहीं चढ़ सकते थे। आपने १३ वर्ष राज्य किया। मारवाड़ के प्रायः समस्त भाट-ग्रन्थों में लिखा है कि राठोड़ कुल के राजकुमारों की नीति-शिक्षा उत्तम रीति से हुआ करती थी। उनकी नीति-शिक्षा का भार विश्वासी और बुद्धिमान सरदारों को सौंपा जाता था। सब से पहले सरदार लोग इन्हें इन्द्रिय-दमन की शिक्षा दिया करते थे। पर उदयसिंहजी में इस बात का नितान्त अभाव था। यद्यपि आपके २७ रानियाँ थीं पर फिर भी समय २ पर आप अपनी विषय-लोलुपता का परिचय दे ही जाते थे। इस सम्बन्ध की एक घटना को लिख देना आवश्यक समझते हैं।

एक समय उदयसिंहजी बादशाह के दरबार से लौट रहे थे कि रास्ते में बिलाड़ा नामक ग्राम में एक सुन्दरी ब्राह्मण कन्या पर इनकी दृष्टि पड़ी। उस बाला के अद्‌भुत सौंदर्य को देख कर उदयसिंहजी का मन हाथ से जाता

रहा। इन्होंने उसके पिता से उसे देने के लिये कहा। पर जब ब्राह्मण ने यह बात स्वीकार न की तो इन्होंने बलात्कार करना निश्चित किया। जब यह बात उक्त ब्राह्मण को मालूम हुई तो वह बड़ा क्रोधित हुआ। उसने निश्चय कर लिया कि प्राण भले ही चले जांय पर अपने जीते जी अपनी लड़की का इस प्रकार अपमान न देख सकूंगा। उसने अपने आंगन में एक बड़ा होम-कुंड खोदा। फिर उस कन्या के टुकड़े २ करके उस यज्ञ कुंड में डाल दिये। बहुतसी लकड़ियां और घृत भी उसमें डाला गया। दुर्गन्धिमय धूम्रराशि उसके आंगन में भर गई। ज्वाला की भयंकर लपटे धांय २ करती हुई आकाश-मंडल को चूमने लगीं। इसी समय उस ब्राह्मण ने खड़े होकर राजा को श्राप दिया "तुझको अब कभी शान्ति न मिलेगी। आज से तीन वर्ष, तीन माह, तीन दिन और तीन पहर के मध्य में मेरी यह प्रतिहिंसा अवश्य पूर्ण होगी।" यह कह कर वह ब्राह्मण भी उस जलते हुए अग्नि कुंड में कूद पड़ा। अग्नि की अगणित लपटों ने उसे भी वहीं भस्मीभूत कर दिया।

यह भयंकर और बीभत्स समाचार राजा उदयसिंहजी के कानों तक पहुँचा। कहा जाता है कि इसी समय से ये एक क्षण भरके लिये भी शान्ति प्राप्त न कर सके। उनका अन्तिम काल इसी प्रकार विषाद में व्यतीत हुआ।

राजा शूरसिंहजी

उदय सिंहजी की मृत्यु के पश्चात् इनके पुत्र शूरसिंहजी मारवाड़ के राज्य-सिंहासन पर बिराजे। शूरसिंहजी एक पराक्रमी और रण-कुशल नरेश थे। आपकी वीरता पर मुग्ध होकर सम्राट् अकबर ने आपको 'सवाई राजा' की उपाधि प्रदान की थी। शूरसिंहजी ने सिरोही के राव सुरतानजी को परास्त कर उनसे मुगल सम्राट् की अधीनता स्वीकृत करवाई थी। इसके बाद आपने गुजरात के मुजफ्फर शाह पर चढ़ाई कर उसे हराया और बहुत सा लूट का माल सम्राट् के पास भेजा। इस विजय में आपको भी बहुतसा द्रव्य प्राप्त हुआ था। इस द्रव्य से आपने जोधपुर नगर के कई दुर्गों और महलों का जीर्णोद्धार करवाया था। नर्मदा नदी के किनारे अमर नामक एक वीर राजपूत निवास करता था। इसने इस समय तक बादशाह की अधीनता स्वीकार नहीं की थी, अतएव इस बार शूरसिंहजी उस पर भेजे गये। इन्होंने उसे भी परास्त कर दिया। अमर युद्ध-क्षेत्र में काम आया। सम्राट् ने इस विजय से प्रसन्न होकर एक नौबत और धार का राज्य इन्हें दे दिया था। ई० स० १६२० में वीरवर शूरसिंहजी ने दक्षिण में अपने प्राण त्याग किये।

राजा गजसिंहजी

शूरसिंहजी के बाद आपके सुयोग्य पुत्र गजसिंहजी मारवाड़ की गद्दी पर बिराजे। बादशाह के प्रतिनिधी दारब खाँ ने आपका राज्याभिषेक किया। गद्दी पर बैठते समय सम्राट् की ओर से गुजरात का 'सप्त विभाग, ढूढार के अन्तर्गत फिलाप और अजमेर के निकटवर्ती मसूदा नामक नगर जागीर में मिला था। इसके अतिरिक्त सम्राट् ने आपको दक्षिण के सूबेदार के पद पर नियुक्त किया था। आपके राज्यकाल में कोई विशेष उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। ई० स० १६३९ में गुजरात के एक युद्ध में आपका प्राणान्त हुआ।

आपके बाद आपके पुत्र अमरसिंह गद्दी के वारिस थे पर ये अत्यंत उद्धत एवम् युद्ध-प्रिय थे। अतएव आपने अपने जीते जी ही उनका गद्दी का अधिकार छीन लिया था। इतना ही नहीं, अमर सिंहजी को एकान्तवास के लिये भी कहीं भेज दिया था। आपकी इस इच्छा के अनुसार आपके बाद गद्दी का अधिकार अमर सिंहजी के छोटे भाई जसवन्त सिंहजी को मिला।

महाराजा जसवन्तसिंहजी

ई० स० १६३८ में महाराजा जसवन्त सिंहजी मारवाड़ की गद्दी पर विराजे। आपका जन्म ई० स० १६२६ में बुरहानपुर नामक नगर में हुआ था। राज्य—गद्दी पर बैठने के समय आपकी उम्र १२ वर्ष की थी। सम्राट् आप पर बड़ा अनुग्रह करते थे। गद्दी पर बैठ जाने के बाद ५ हजारी

मनसबदार की इज्जत आपको मिली। काबुल के युद्ध में सम्राट् आपको साथ ले गये थे। जसवन्त सिंहजी की अनुपस्थिति में सम्राट् ने राजसिंह नामक कुमावत सरदार को मारवाड़ का राज्य-प्रबंध चलाने के लिये भेज दिया था। राजसिंहजी बड़े बुद्धिमान् और स्वामिभक्त थे। उन्होंने जसवन्त सिंहजी की अनुपस्थिति में जोधपुर राज्य का अच्छा प्रबंध किया।

ई० स० १६४५ में सम्राट् शाहजहाँ ने जसवन्तसिंहजी को ६ हजारी मनसबदार बना दिया। इतना ही नहीं, सम्राट् द्वारा एक भारी रकम पर्सनल अलाउन्स के बतौर आपको मिलने लगी। इसी साल आपको महाराजा का महत्व-पूर्ण खिताब भी मिला। इनके पहले किसी भी राजपूत-नरेश को यह खिताब प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था।

ई० स० १६४९ में पोकरन के शासक रावल महेशदासजी का स्वर्ग-वास हो गया। इसलिये पोकरन की जागीर सम्राट् ने महाराजा को प्रदान कर दी। जसवन्तसिंहजी ने अपनी सेना भेजकर पोकर पर अपना अधिकार जमा लिया।

ई० स० १६५७ में सम्राट् शाहजहाँ के बीमार हो जाने के कारण उसके पुत्रों में साम्राज्य के लिये झगड़े शुरू हुए। इन झगड़ों में महाराजा जसवन्तसिंहजी ने सम्राट् के ज्येष्ठ पुत्र दारा का पक्ष लिया था क्योंकि राज्य का वास्तविक अधिकारी यही था। अपने पिता की बीमारी का हाल सुनकर औरंगजेब और मुराद–जोकि दक्षिण की सूबेदारी पर नियुक्त थे अपनी सेना सहित दिल्ली पर अधिकार करने के लिये रवाना हो गये। ऐसे समय में सम्राट् ने महाराजा जसवन्तसिंहजी को कई मुगल सरदारों के साथ उक्त शाहजादों का दमन करने के लिये भेजा। इस अवसर पर सम्राट् ने महा-राजा को ७००० हजारी मनसबदार बनाकर मालवे का सूबेदार नियुक्त किया। इतना ही नहीं, सम्राट् ने आपको एक लाख रुपया इनाम में दिया और मुगल सेना का प्रधान सेनापति भी बनाया। इस समय महाराजा जसवन्तसिंहजी के हाथ के नीचे २२ उमराव थे जिनमें से १५ मुसलमान और बाकी ७ हिन्दू थे।

धूर्त औरंगजेब ने मुसलमान सरदारों को चालाकी से अपनी तरफ़ मिला लिया। उज्जैन के समीप फतेहाबाद नामक ग्राम के पास महाराजा जसवन्तसिंहजी और बागी शाहज़ादों का मुकाबला हुआ। ६ घंटे तक लड़ाई होती रही। अन्त में विजयलक्ष्मी ने औरंगजेब और मुराद को अपनाया। कारण और कुछ नहीं सिर्फ मुगल उमरावों का शाहज़ादा की तरफ़ मिल जाना था। फिर भी महाराजा जसवन्तसिंहजी अपने राठोड़ सिपाहियों को ही लेकर बड़ी बहादुरी के साथ लड़े। राठोड़ों ने बात की बात में १०००० मुगलों को धराशायी कर दिया। महाराजा साहब अपने प्रिय घोड़े महबूब सहित खून से शराबोर हो गये। वे भूखे बाघ की नाईं जिधर जाते थे उधर ही का रास्ता साफ़ हो जाता था। पर कहाँ तो अथाह मुगल सेना और कहाँ मुट्ठी भर राजपूत। जब बहुत कम राजपूत बच रहे और महाराजा जसवन्तसिंहजी के जीवन के धोखे में पड़ जाने का भय प्रतीत होने लगा, तब राजपूत सरदारों ने उनसे मारवाड़ लौट जाने का अनुरोध किया। महाराजा साहब मारवाड़ की ओर रवाना कर दिये गये। इतना हो जाने पर भी राजपूत समरक्षेत्र त्यागने को तैयार नहीं हुए। उन्होंने रत्नसिंहजी राठोड़ को महाराजा के स्थान पर नियुक्त करके फिर युद्ध शुरू कर दिया। रत्नसिंहजी ने तत्कालीन शाहपुरा-नरेश सुजान सिंहजी की सहायता से शत्रु के तोपखाने पर धावा बोल दिया और उसके जनरल मुर्शिदकुली खाँ तथा उसके सहायकों को कत्ल कर दिया। इस समय यदि औरंगजेब स्वयं उस स्थान पर नहीं पहुँचता तो शत्रुओं के तोपखाने पर रत्नसिंहजी का अधिकार होही गया होता। इतने ही में मुराद-ने जोकि अभी तक दाहिनी बाजू पर नियुक्त था बायीं बाजू पर आकर राजपूतों पर जोर का हमला किया। यद्यपि राजपूतों की संख्या मुगलों के सामने कुछ भी नहीं थी तथापि रत्नसिंहजी और सुजानसिंहजी मरते दम तक लड़ते रहे। मुगलों के पैर उखड़ गये और वे भाग खड़े हुए। कासीमखाँ आदि विश्वासघातक मुग़ल सेनापति भी आगरे की तरफ़ चले गये।

इधर महाराजा जसवंतसिंहजी खोजत होते हुए मारवाड़ जा पहुँचे।
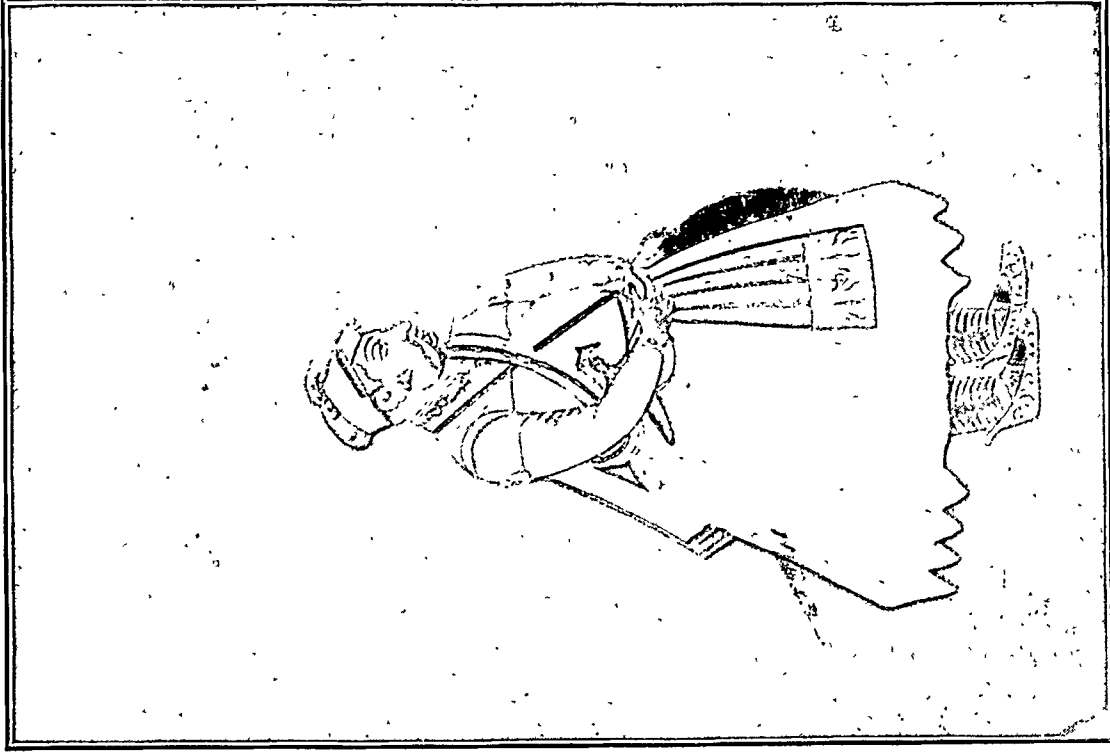
श्रीमान् महाराज जसवन्तसिंहजी, जोधपुर ।
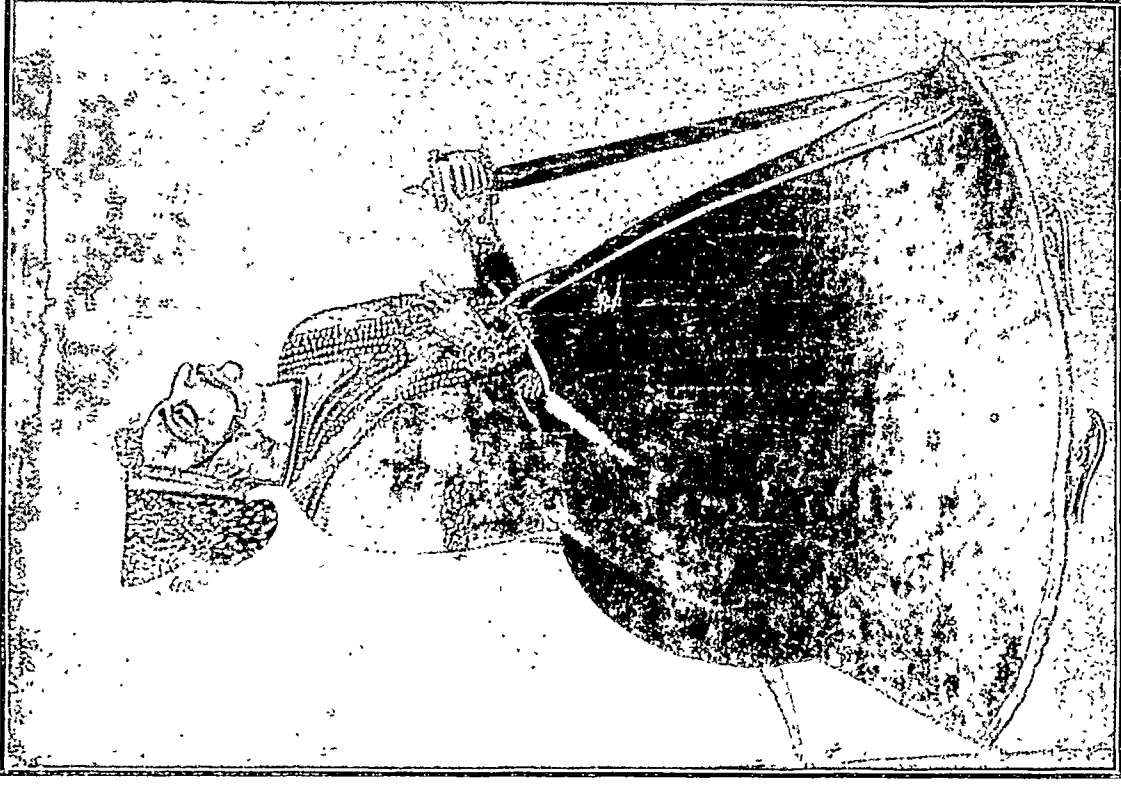
श्रीमान् महाराज अजीतसिंहजी, जोधपुर ।

इस हार से महाराजा को बड़ा सदमा पहुँचा। जब यह खबर आगरे पहुँची तो शाहजहाँ को भी बड़ा दुःख हुआ। उसे यह भी मालूम हो गया कि इस हार का कारण कासीम खाँ आदि मुगल सेनापतियों की विश्वासघातकता है। सम्राट् ने तुरन्त एक नया फरमान महाराजा के नाम जारी किया। उसमें लिखा था कि "५० लाख रुपया सांभर के खजाने से लेलो और अपनी सेना एकत्रित करके तुरन्त आगरे चले आओ।"

शाही फरमान के अनुसार महाराजा जसवन्तसिंहजी जोधपुर का शासन मुहणोत नेणसी के सुपुर्द कर आगरे की तरफ रवाना हुए। एक महीने तक आगरे में ठहर कर वे आगरा के पास दाराशिकोह से जा मिले। धौल-पुर के पास औरंगजेब से दूसरी लड़ाई हुई। इसमें सम्राट् की सेना हार गई और उसके रुस्तमखां, शत्रुसाल (बूंदी-राजा) और रूपसिंह (रूप नगर के राजा) आदि सेना-नायक भी वीरगति को प्राप्त हुए। विजय-माला औरं-गजेब के गले में पड़ी। जसवन्तसिंहजी मारवाड़ लौट गये। धौलपुर की विजय के बाद औरंगजेब ने अपने पिता सम्राट् शाहजहाँ को कैद में डाल दिया और आप तख्त पर बैठ गया। इतना ही नहीं, जिस मुराद की सहायता से वह इतने बड़े विशाल साम्राज्य का अधिपति हुआ था वह भी उसकी आँखों में खटकने लग गया। मौका पाते ही मुरार को भी जेल में ही नहीं, वरन जहन्नुम में भिजवा दिया।

उन तमाम आदमियों में से जो कि औरंगजेब के खिलाफ लड़े थे—सिर्फ जसवन्तसिंहजी ही एक ऐसे थे जो बचे हुए थे। पाठक इसका कारण यह न समझ लें कि जसवंतसिंहजी पर सम्राट् की कृपा थी अथवा उन्हें माफी प्रदान कर दी थी। बात दर असल में यह थी कि औरंगजेब उनकी शक्ति से परिचित था और इसी लिये वह उनसे डरता था। वह शान्तिमय उपायों से जसवन्तसिंहजी को अपनी ओर मिला लेना चाहता था। उसने आंमेर के मिर्जा राजा जयसिंहजी को भेजकर सम्मानपूर्वक जसवन्तसिंहजी को दिल्ली बुलवा लिये और उनके साथ समझौता कर लिया।

इसी समय शाहशुजा साम्राज्य प्राप्ति की आशा से या मृत्यु की प्रेरणा से बंगाल से रवाना होकर दिल्ली की तरफ आ रहा था। औरंगजेब ने उसका सामना करने के लिये अपने पुत्र सुलतान महमद और महाराजा जसवन्तसिंहजी को भेजे। औरंगजेब भी स्वयं साथ गया। खजुआ नामक स्थान पर महाराजा जसवन्तसिंहजी और शुजा का मुकाबला हुआ। इस अवसर पर जसवन्तसिंहजी ने अपने गुप्त दूत द्वारा शुजा से कहलवा भेजा कि मैंने युद्ध में भाग न लेने का निश्चय कर लिया है अतएव महमद के साथ तुम जो चाहो कर सकते हो। रात्रि के समय महाराजा जसवन्तसिंहजी ने केम्प को लूट लिया और जो कुछ मिला उसे लेकर वे मारवाड़ की तरफ़ रवाना हो गये। औरंगजेब ने भी शुजा पर हमला कर दिया। शुजा हार गया।

अब दारा शिकोह–जो सिन्ध की तरफ़ भाग गया था–अजमेर पहुँचा। उसका खयाल था कि जसवंतसिंहजी की सहायता से वह फिर औरंगजेब का सामना कर सकेगा। पर औरंगजेब ने पहले ही जसवंतसिंहजी को मिला लिया था। वह बखूबी जानता था कि अगर दारा और जसवन्तसिंहजी मिल गये तो अपनी स्थिति संकटापन्न हो जायगी। इसी विचार से उसने मिर्ज़ा राजा जयसिंहजी को जसवन्तसिंहजी के पास भेजा और कहला भेजा कि यदि जसवंतसिंहजी दारा को सहयोग न देंगे तो उनको मुगल सेना में फिर से अच्छा पद प्रधान कर दिया जायगा। जसवंतसिंहजी दारा से मिलने के लिये मेड़ता तक आ गये थे पर आखिर औरंगजेब की कूट-नीति-पूर्ण चाल काम कर गई। जसवन्तसिंहजी का विचार बदल गया। वे औरंगजेब द्वारा दिखलाये गये प्रलोभनों में फँस गये। वे उस समय शत्रु, मित्र की पहचान न कर सके। दारा से बिना मिले ही वे वापस जोधपुर चले गये।

ई० स० १६५९ में औरंगजेब ने जसवंतसिंहजी को फिर से ७००० हज़ारी मनसबदार का खिताब देकर गुजरात के सूबेदार नियुक्त कर दिये। इसके दो वर्ष बाद इन्हें शाईस्तखाँ के साथ प्रसिद्ध महाराष्ट्र वीर छत्रपति शिवाजी के विरुद्ध युद्ध में जाना पड़ा था। औरंगजेब की इच्छा शिवाजी को

समूल नष्ट कर डालने की थी पर यह बात महाराजा जसवन्तसिंहजी को न रुचती थी। वे नहीं चाहते थे कि शिवाजी का बाल भी बांका हो। उनको मराठों का भविष्य उज्जल प्रतीत होता था। उन्हें विश्वास था कि मराठों द्वारा फिर से हिन्दुओं का सितारा चमकेगा और हिन्दुस्थान में हिन्दुओं का साम्राज्य स्थापित होगा। अतएव महाराजा जसवन्तसिंहजी ने रणछोड़-दास नामक अपने एक विश्वासपात्र नौकर को शिवाजी के पुत्र के पास भेजा। शिवाजी का पुत्र जसवन्तसिंहजी के पास आया तो उन्होंने सम्राट् की तमाम कूट-नीति-पूर्ण चालें उसके सामने खोल दीं। यह खबर शाईस्ताखाँ को लग गई। उसने सम्राट् को लिख भेजा कि जसवन्तसिंहजी शिवाजी से मिले हुए हैं। इधर शिवाजी भी चुपचाप नहीं बैठे थे। जब उन्हें मालूम हुआ कि जसवंतसिंहजी मेरे पक्ष पर हैं तो उन्होंने एक रात को शाईस्तखाँ पर छापा मारा। शाईस्तखाँ प्राण लेकर बेतहाशा भागा। अन्त में औरंगजेब ने शाईस्तखाँ और जसवंतसिंहजी को वापस बुला लिये। वहाँ आँबेर के मिर्ज़ा राजा जय-सिंहजी और शाहज़ादा मुअज्जम को भेजा।

महाराजा जसवंतसिंहजी को एक बार और शाहज़ादा मुअज्जम के साथ दक्षिण में जाना पड़ा था। इस समय आप चार वर्ष तक लगातार यहाँ रहे। इस अर्से में शाहज़ादा मुअज्जम को अपने पिता औरंगजेब के खिलाफ़ उभारा, पर इस स्कीम के कार्यरूप में परिणत होने के पहले ही सम्राट् ने मुअज्जम की जगह महावतखाँ को दक्षिण का सूबेदार बनाकर भेज दिया। यह देख जसवन्तसिंहजी वापस मारवाड़ लौट आये। कुछ समय यहाँ रहकर फिर आप अपने पुत्र पृथ्वीसिंहजी के साथ शाही-दरबार में जा शामिल हुए।

ई० स० १६७० में महाराजा जसवन्तसिंहजी तीसरी बार गुजरात के सूबेदार हुए। यहाँ तीन वर्ष रहने के बाद आप पठानों का दमन करने के लिये काबुल भेजे गये। काबुल जाकर महाराजा ने अपनी रण-कुशलता से पठानों को परास्त कर दिया। आपके हमलों से पठान पीछे हट गये। इस

प्रकार अपने कर्तव्य का पालन कर महाराजा सीमान्त प्रदेश के जमरोज नामक स्टेशन पर रहने लगे। अपने जीवन के शेष दिन आपने इसी स्थान पर व्यतीत किये।

काबुल जाने के पहले महाराजा जसवंतसिंहजी अपने राज्य की तमाम शासन-व्यवस्था अपने पुत्र पृथ्वीसिंहजी को सौंप गये थे। एक दिन सम्राट् ने बड़ी क्षुद्रता का बर्ताव किया। उसने भरे दरबार में पृथ्वीसिंहजी के दोनों हाथ पकड़ लिये और उनसे कहा कि "अब तुम क्या कर सकते हो।" पृथ्वीसिंहजी ने जबाब दिया "ईश्वर आपकी रक्षा करे। जब प्राणि-मात्र का शासक (ईश्वर) अपनी गरीब से गरीब प्रजा पर रक्षा का एक हाथ फैला देता है तो उसकी सम्पूर्ण कामनाएँ सफल हो जाती हैं। आपने तो मेरे दोनों हाथ पकड़ लिये हैं। अब मुझे किस बात की चिन्ता है। अब तो मुझे विश्वास होता है कि मैं समस्त संसार को पराजित कर सकता हूँ।" इस पर सम्राट् ने कहा कि "यह दूसरा कुट्टन है।" कुट्टन शब्द का प्रयोग बादशाह जसवंतसिंहजी के लिये किया करता था। जो कि हमेशा उसकी (सम्राट् की) जाल से छूटकारा करने की कोशीस में लगे रहते थे। और थप्पड़ का बदला घूँसे से देने में तनिक भी नहीं हिचकते थे। औरंगजेब, पृथ्वीराजजी के उक्त जवाब से प्रसन्न हो गया और उसने उन्हें एक बढ़िया सिरोपाव पहिनने के लिये प्रदान किया। इस घटना के थोड़े ही दिन बाद पृथ्वीराजजी का देहान्त हो गया। कहा जाता है कि उनकी मृत्यु का कारण उक्त सिरोपाव था जोकि बादशाह की तरफ से उन्हें मिला था। इसी सरोपाव में जहर मिला हुआ था। पर कुछ इतिहास लेखकों का मत है कि पृथ्वीसिंहजी छोटी माता की बीमारी के कारण परलोकवासी हुए।

जब पृथ्वीसिंहजी की मृत्यु का समाचार उनके पिता जसवन्तसिंहजी के पास पहुँचा तो उन पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। वे दुःख-सागर में गोते मारने लगे। वे इतने अधीर हो उठे कि पृथ्वीराजजी की स्वर्गस्थ आत्मा को तर्पण देते समय वे कह उठे "हे पुत्र पृथ्वीसिंह यह अंजली तुझे ही

नहीं, वरन् मारवाड़ को भी देता हूँ।" इसका अर्थ यह था कि मैं अब मारवाड़ के राज्य-शासन में हाथ न डालूंगा।

काबुल का सूबेदार हमेशा पठानों के साथ युद्ध करने में लगा रहता था। इसका कारण यह था कि मुगलों द्वारा बार २ हराये जाने पर भी पठान लोग लूट-खसोट किया करते थे। इसी प्रकार की एक लड़ाई में एक शाही मनसबदार शत्रुओं द्वारा मार डाला गया। उसकी सेना भाग खड़ी हुई। जब यह खबर महाराजा को लगी तो वे खुद उस सेना की सहायता पर जा पहुँचे। फिर से युद्ध हुआ और पठान लोग भाग खड़े हुए। इस घटना से पठानों पर इतना आतंक छा गया था कि जसवंतसिंहजी का नाम सुनते ही वे काँपने लग जाते थे। महाराजा जसवंतसिंहजी ने पाँच वर्ष काबुल में रह कर वहाँ पूर्ण शांति स्थापित कर दी।

ई० स० १६७८ में जमरोज (काबुल) नामक स्थान पर महाराजा जसवंतसिंहजी का स्वर्गवास हो गया। आप दुरदर्शी, बुद्धिमान एवं राजनीतिज्ञ थे। साहित्य के तो आप बड़े प्रेमी थे। वेदान्त में भी आप अपना दखल रखते थे। आपने 'भाषा-भूषण' और 'स्वात्यानुभव' नामक पुस्तकें भी लिखी थीं।

आपके अन्तिम दिन हिन्दुस्थान के उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेश में ही बीते। कूटनीतिज्ञ औरंगजेब द्वारा महाराजा जसवंतसिंहजी को इतनी दूर भेजे जाने के कई कारण थे। औरंगजेब एक ही गोली में कई शिकार मारना चाहता था। उन दिनों सीमान्त प्रदेश पर पठान लोगों ने वैसा ही ऊधम मचा रक्खा था जैसा कि आज कल। अतएव जसवन्तसिंहजी के समान शक्तिशाली नरेश का वहां रहना मुगल साम्राज्य की रक्षा के लिये बड़ा आवश्यक था। दूसरे अगर इस कार्य्य में जसवन्तसिंहजी को अपने प्राणों से हाथ भी धोने पड़ते तो सम्राट् को कोई नुकसान न था बल्कि इस बात का फायदा ही था कि वह अपने साम्राज्य के एक शक्तिशाली सरदार से जो कि अवसर पाते ही बगावत शुरू कर सकता है--मुक्त हो जाता। तीसरे

इतनी दूर रहने के कारण जसवन्तसिंहजी के लिये बगावत करना नितान्त असंभव हो गयी थी। यदि वे चाहते तो भी बगावत नहीं कर सकते थे कारण कि अपने राजपूत भाइयों से वे बहुत दूर जा पड़े थे।

महाराजा जसवंतसिंहजी भी औरंगजेब की कूट-नीति से भली भाँति परिचित थे। वे हमेशा अपने आपको औरंगजेब से दूर रखते थे। वे अपने धर्म को हृदय से चाहते थे। एक समय औरंगजेब ने घमंडी होकर बहुत से मन्दिर तुड़वा डाले थे और उनके स्थान पर मसजिदें बनवा दी थीं। इस समय महाराजा जसवंतसिंहजी पेशावर में थे। जब उन्होंने यह समाचार सुने तो उन से न रहा गया। उन्होंने हिन्दु-मुसलमानों की एक सभा बुलवा कर, घोषणा की कि "यदि सम्राट् अपनी नीति से बाज न आयगा और हिन्दुओं के मन्दिरों को फिर भी नष्ट करेगा तो मजबूर होकर मुझे मसजिदों को तोड़ने का काम शुरू करना पड़ेगा।" इस पर महाराजा के किसी शुभाकांक्षी ने उनसे कहा कि यदि यह बात सम्राट् के पास पहुँच गई तो वह आप से बहुत नाखुश होगा। महाराजा ने जबाब दिया "मेरा आम सभा में यह बात प्रकाशित करने का उद्देश्य ही यह था कि सम्राट् तक यह बात पहुँच जाय।"

महाराजा अजीतसिंहजी

महाराजा जसवंतसिंहजी की मृत्यु के समय उनकी जादमजी और नारुकीजी नामक दो रानियाँ गर्भवती थीं। अतएव कुछ समय बाद उक्त दोनों रानियों से क्रमशः अजीतसिंहजी और दलथम्भनसिंहजी नामक पुत्रों का जन्म हुआ। पर औरंगजेब ने यह कहकर कि उक्त राजपुत्र राज्य के वास्तविक अधिकारी नहीं हैं। मारवाड़ की रियासत को जप्त कर

ली। इसके प्रतिवाद-स्वरूप राठोर सरदारों ने काबुल से एक पत्र भेजा। पर औरंगजेब ने उनकी एक न सुनी। सिर्फ यह कहकर कि वह अभी तीन मास का है, राज्य देने से इन्कार कर दिया। इतना ही नहीं, उसने अजितसिंहजी को बुलवा लिया जिससे कि राठोड़ सरदार उन्हें मारवाड़ न ले जा सकें। जब राठोड़ सरदारों ने जान लिया कि औरंगजेब जोधपुर-राज्य को किसी भी प्रकार से लौटाने में सहमत नहीं है तब वे दिल्ली पहुँचे। वहाँ जाकर क्या देखते हैं कि निःसहाय राजकुमार कड़े पहरे में रखे जाते हैं। यह हालत देख उन्होंने किसी प्रकार राजकुमार को भगा ले जाने की युक्तियां ढूँढना शुरू किया। इस समय बोरवाड़ के सरदार की स्त्री गंगा स्नान करके लौटकर दिल्ली आई हुई थीं। अतएव अपने विचारों को कार्य-रूप में परिणित करने का यह अच्छा अवसर पाया। राठोड़ सरदार दुर्गादास के आदेशानुसार दोनों राजकुमार उक्त सरदारजी के साथ मारवाड़ रवाना कर दिये गये। राजकुमार दलथम्भनसिंह का रास्ते ही में स्वर्गवास हो गया। अजीतसिंहजी को सुरक्षितता से बलूंदा नामक स्थान पर पहुँचा दिया। यहाँ से ये सिरोही भेज दिये गये। मुकुन्ददास नामक खीची सरदार भी साधु के वेष में आप के साथ आये थे। उक्त सरदार और जग्गू नामक एक ब्राह्मण पुरोहित की आधीनता में वे यहाँ रखे जाने लगे। जब सम्राट को महाराजकुमार के ले जाने की खबर मालूम हुई तो उसने उन्हें वापस लाने का हुक्म दिया। पर राठोड़ों ने इस बात को बिलकुल नामंजूर किया। इतना ही नहीं, उन्होंने अपने राजकुमार की रक्षा के लिये सम्राट् के खिलाफ़ लड़ने तक के लिये कमर कस ली। जब सम्राट् ने राठोड़ों को किसी भी प्रकार हाथ में आते नहीं देखा तो उसने उनके खिलाफ़ युद्ध की घोषणा कर दी। उसने स्वर्गीय महाराजा जसवंतसिंहजी की दोनों रानियों को मरवाकर उनकी लाशें जमुना में फिंकवा दीं। ई० स० १६७९ में दिल्ली में राठोड़ों और मुगलों के बीच युद्ध हुआ। इस युद्ध में राठोड़ों की तरफ़ से जोधा रणछोड़दास और भाटी रघुनाथदास नामक सरदार काम आये। प्रसिद्ध राठोर वीर दुर्गादास भी इस

युद्ध में जख़मी हुए। पर हाँ, किसी तरह उनके प्राण बच गये। इतना हो जाने पर जोधपुर की रियासत स्वर्गीय महाराज अमरसिंहजी के पौत्र इन्द्र-सिंहजी को दे दी। इन्द्रसिंहजी ने सम्राट् की सहायता मिल जाने के कारण मारवाड़ पर अधिकार कर लिया। दुर्गादास और सोनाग नामक चंपावत सरदारों ने अजीतसिंहजी का पक्ष लेकर इन्द्रसिंहजी का विरोध किया। पर आखिर उनकी एक न चली। वे जोधपुर छोड़कर मेवाड़ चले गये जहाँ महाराना राजसिंहजी ने उनको आश्रय दिया। इसी बीच औरंगजेब दक्षिण-विजय करने को गया। इस सुअवसर का फायदा उठा राठोड़ सरदारों ने मारवाड़ से शाही अधिकारियों को भगा दिया और उस पर पुनः अपना अधि-कार कर लिया। जब औरंगज़ेब के पास यह ख़बर पहुँची तो उसने अपने पुत्र अकबर को जोधपुर पर भेजा। दुर्गादासजी ने देखा कि शाही-सेना का मुकाबला नहीं किया जा सकेगा। अतएव उन्होंने कूट-नीति का सहारा लिया। उन्होंने अकबर को दिल्ली का सम्राट् बनाने का प्रलोभन दिया। राठोर वीर केशरी दुर्गादास ने जो सोचा था वही हुआ। अकबर प्रलो-भन में आ गया और दुर्गादासजी की तरफ़ मिल गया। अब दुर्गा-दासजी और अकबर ने मिलकर एक लाख सेना के साथ औरंगजेब पर हमला कर दिया। इस समय औरंगजेब अजमेर में था। उसके पास केवल १०००० सेना थी। अतएव वह बड़ा असमंजस में पड़ गया। पर औरंगजेब भी ऐसा वैसा आदमी नहीं था। उसने तुरन्त अपने दूसरे लड़के मुअज्जम को—जोकि इस समय उदयपुर था—अपनी सहायतार्थ बुलवा लिया वह इतना ही करके नहीं रह गया। उसने अकबर की तरफ़ के कई सरदारों को प्रलोभन देकर अपनी तरफ़ मिला लिये। यहाँ तक कि अक-बर का प्रधान सेनापति ताहिरखाँ तक सम्राट् की तरफ़ आ मिला। पर औरं-गजेब ने उसे मार डाला। अब शाहज़ादा अकबर के पास बहुत थोड़ी सेना रह गई। उसकी हिम्मत टूट गई। पर औरंगजेब इतना करके ही नहीं रह गया, उसने अकबर की सेना में निम्न लिखित अफ़वाह फैला दी।

श्रीमान् राय रायन भण्डारी रघुनाथ सिंहजी साहिब, जोधपुर

"अकबर बड़ी बुद्धिमानी के साथ राजपूतों को फांस लाया है, अब उसे चाहिये कि वह युद्ध के समय राजपूतों को सामने रखे और खुद पीछे रहे। युद्ध शुरू होते ही दोनों ओर से राजपूतों पर गोले बरसाना शुरू हो जाँयगे और इस प्रकार बहुत शीघ्र ही शत्रुओं का नाश किया जा सकेगा।"

यह बात विद्युत-वेग से राजपूत-सेना में फैल गई। औरंगजेब की कूटनीति काम कर गई। राजपूतों को विश्वास हो गया कि शाहजादा अकबर अपने पिता औरंगजेब से मिला हुआ है। अतएव राजपूत सैनिक अकबर का साथ छोड़ चले गये। अब अकबर के लिये युद्ध क्षेत्र से भाग निकल ने के सिवा कोई उपाय नहीं रह गया। सम्राट् ने शाहज़ादा मुअज्जम और अबुलकासिम को अकबर के पीछे भेजा। अकबर का तमाम सामान लूट लिया गया। उसके शरीर-रक्षक तक काम आये। इस भयंकर संकट के समय में अकबर को अपने बालबच्चों की फिक्र पड़ी। वह बड़े असमंजस में पड़ा कि अब बालकों की रक्षा किस प्रकार की जाय। किस सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देने से उनके प्राण बचेगें। ऐसे समय में दुर्गादासजी ने उनकी रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। उन्होंने उन बालकों को अपने कुटुम्बी-जनों की संरक्षता में रख दिया। अकबर को भी अपने साथ चलने के लिये कहा। अकबर को दुर्गादासजी में असीम विश्वास था अतएव वह उनके साथ हो लिया। ये दोनों राजपीपला के मार्ग से दक्षिण पहुँचे। यहाँ दुर्गादासजी ने संभाजी के साथ अकबर की मित्रता करवा दी। अब औरंगजेब का ध्यान दक्षिण की तरफ़ झुका।

इधर सोनाग और उसके अनुयायी अशरफखाँ के पुत्र एतिकादखाँ द्वारा मार डाले गये। दूसरे राठोड़ सरदारों ने पूर और मांडल नामक स्थानों को लूटना शुरू किया। यहां शाही-सेना का संचालन किशनगढ़ के राजा मानसिंहजी कर रहे थे। अंत में ये लोग सिरोही जा पहुँचे जहां पर कि अजितसिंहजी अज्ञातवास में थे। ई० स० १६८५ में राठोड़ों ने सिवना के किले पर डेरा डाल दिया। किले का रक्षक पुरदिलखाँ मेवाती मार डाला गया।

दो वर्ष बाद दुर्जन सिंहजी—जोकि बूंदी की गद्दी से उत्तार दिये गये थे—मार डाले गये।

ई० स० १६८८ में राठोड़ सरदारों के हृदयों में उनके बाल महाराजा के दर्शन करने की अभिलाषा उत्पन्न हुई। जिस स्वामी के हितके लिये वे प्राणों पर बाजी खेलकर लड़ रहे थे उनके दर्शन के लिये वे उत्सुक हो उठे। चंपावत उदयसिंह और सुर्जनसिंहजी के पुत्र मुकुन्ददासजी इस कार्य के लिये नियुक्त किये गये। इन दोनों सरदारों ने खीची मुकुन्ददास से महाराज कुमार अजीतसिंहजी के विषय में बतलाने के लिये कहा। इतना ही नहीं इसने उसे बहुत कुछ डराया धमकाया पर उसने एक न सुनी। इससे कुछ राठोड़ सरदारों को अपने स्वामी के आस्तित्व में शक होने लग गया। उनका यह खयाल होने लग गया कि शायद जिनके लिये हम इतने लड़ रहे हैं वे अब इस दुनिया में नहीं हैं। इधर खीची मुकुन्ददास को दुर्गादासजी ने कह रक्खा था कि वह महाराज-कुमार को बिलकुल अज्ञात स्थान में रखे और किसी को उनका पता न लगने दे। अतएव उसने उक्त राठोड़ सरदारों को दुर्गादसजी की अनुमति के लिये पूछा। पर चूंकि दुर्गादासजी सुदूर दक्षिण देश में थे और इधर सरदारगण महाराज कुमार को देखना चाहते थे अतएव खीची मुकुन्ददास को लाचार होकर राजकुमार को प्रगट में लाना पड़ा। उनके दर्शन करते ही सब राठोड़ सरदारों में स्फूर्ति आ गई। उनमें फिरसे नव-जीवन का संचार हो उठा। इस प्रकार अपने स्वामी को प्राप्त कर फिरसे राठोड़ों ने मुगलों के विरुद्ध युद्ध शुरू किया। लगातार १८ वर्ष तक वे बराबर मुगलों का मुकाबला करते रहे।

ई० स० १६९४ में उदयपुर के राणाजी की पुत्री के साथ महाराजा अजितसिंहजी का शुभ विवाह संपन्न हुआ। अब तक औरंगजेब को अजित सिंहजी के अतित्व में सन्देह था। उसका खयाल था कि अजितसिंहजी जीवित नहीं है। राठोर सरदार झूठमूठ उनके नाम से लड़ रहे हैं। पर अब उसका यह भ्रम जाता रहा। अब उसे विश्वास हो गया कि जब राणाजी ने

अपनी पुत्री उसे दे दी है, वह पुरुष अवश्यही असली अजितसिंह होगा। पर अब औरंगजेब को अकबर के उन बालबच्चों की फिक्र होने लगी जो कि दुर्गादास के कुटुम्बीजनों की अधीनता में थे। उसे इस बात का डर मालूम होने लगा कि कहीं राठोड़ सरदार उनका विवाह-संबन्ध किसी साधारण मुसलमान घराने के साथ न कर दें। यदि ऐसा हो जायगा तो सचमुच मेरी शान किरकिरी हो जायगी। अतएव उसने दुर्गादासजी से इन बच्चों को वापस लौटा ने के लिये कहा। दुर्गादासजी ने भी इस सुअसर को हाथ से नहीं जाने दिया। उन्होंने तुरंत गुजरात के सूबेदार सुजातखां के साथ उन्हें बादशाह के पास भिजवा दिया। दुर्गादास के इस व्यवहार से बादशाह बहुत खुश हुआ। उसने दुर्गादासजी को मेड़ता जागीर में दे दिया और उन्हें २५०० जाट और २५०० घुड़-सवारों का सेना-नायक बना दिये। दुर्गादासजी के कहने से उसने अजितसिंहजी को भी जालोर और सांचारे वापस लौटा दिये। इस समय जालोर मुजाहिदखाँ के अधिकार में था। अतएव इसके बदले में उसे पालनपुर दिया गया। पालनपुर के वर्तमान नवाब उक्त मुजाहिद खाँ ही के वंशज हैं।

ई० स० १७०२ में अजितसिंहजी के दो पुत्र हुए। इसके चार साल बाद औरंगजेब की मृत्यु हो गई। अतएव महाराजा अजितसिंहजी ने जोधपुर के मुगल सूबेदार नाजिमकुलि को हराकर फिर से अपना अधिकार लिया। अजितसिंहजी इतना करके ही नहीं रह गये। उन्होंने सोजत, सिवाना और पाली नाम स्थानों पर भी पुनः अधिकार कर लिया। औरंगजेब के बाद बहादुरशाह दिल्ली के तख्त पर बैठा। उसने अजितसिंहजी के अपनी पैत्रिक सम्पत्ति पर अधिकार कर लेने के कार्य को ग़ैर कानूनी समझकर उन पर चढ़ाई कर दी। उसे आंबेर के राजा जयसिंहजी को भी वश में करना था कारण कि उन्होंने भी औरंगजेब की मृत्यु हो जाने पर बहादुरशाह के खिलाफ़ उसके भाई को मदद दी थी। बहादुरशाह अजमेर आया। उसने आंबेर और जोधपुर की रियासतें जप्त कर लीं। और वहाँ के शासक जयसिंहजी और अजितसिंहजी को अपने साथ दिल्ली ले गया। वहाँ से उसने दोनों महाराजाओं

को अपनी दक्षिण विजय वाली फ़ौज के साथ जाने की आज्ञा दी। उक्त दोनों ही राजा यहाँ से तो मुगल-सेना के साथ हो लिये पर नर्मदा नदी के पास से वे वापस लौट आये। अब उक्त दोनों राजा उदयपुर पहुँचे। राणाजी की सहायता से पहले तो इन्होंने जोधपुर के मुगल सूबेदार को भगा कर उस पर अपना अधिकार कर लिया, फिर अवसर पाते हीं आँबेर को भी हस्तगत कर लिया। इस प्रकार अजितसिंहजी और जयसिंहजी फिर से अपने २ राज्य के स्वामी बन गये। इतना ही होकर रह गया हो सो बात नहीं थी। उक्त दोनों महाराजाओं और दुर्गादासजी ने मिलकर सांभर झील भी मुगलों से छीन ली। लूट का यह प्रदेश अजितसिंहजी और जयसिंहजी ने आपस में बाँट लिया। यद्यपि इसमें दुर्गादासजी का भी हिस्सा था तथापि जयसिंहजी ने यह कहकर कि "साँभर झील में हिस्सा लेने के लिये जसवंतसिंहजो के कुल में पैदा होने की आवश्यकता है।" उन्हें टाल दिया। सचमुच दुर्गादासजी को जिन्होंने कि अजितसिंहजी को बचाने के लिये अपनी जान तक जोखिम में डाल दी थी—उक्त अपमान-जनक वाक्य सुनकर बड़ा ही दुःख हुआ होगा।

ई० स० १७०९ में बहादुरशाह फिर से अजमेर आया। इस समय उसकी इच्छा युद्ध करने की नहीं थी। चूंकि पंजाब में जाकर सिक्खों के उपद्रव को शांत करना अनिवार्य था इसलिये वह इस समय राजपूताने में शांति रखना चाहता था। अतएव उसने अजितसिंहजी और जयसिंहजी के उक्त कार्य का विरोध नहीं किया। उसने बिना किसी प्रकार की चूंचपड़ के उन्हें अपने २ राज्य का राजा कबूल कर लिया। इस समय उदयपुर के महाराजकुमार अमरसिंहजी अपने पिता राणा जयसिंहजी के विरुद्ध षडयंत्र रच रहे थे। वे चाहते थे कि उदयपुर की राजगद्दी पर से उन्हें हटा कर मैं बैठ जाऊँ। राणाजी ने इस कार्य में अजितसिंहजी की सहायता माँगी। अजितसिंहजी ने दुर्गादासजी से स्वतंत्र होने का यह अच्छा सुअवसर देख उन्हें उदयपुर के झगड़े को शांत करने के लिये भेज दिया। दुर्गादासजी ने बड़ी
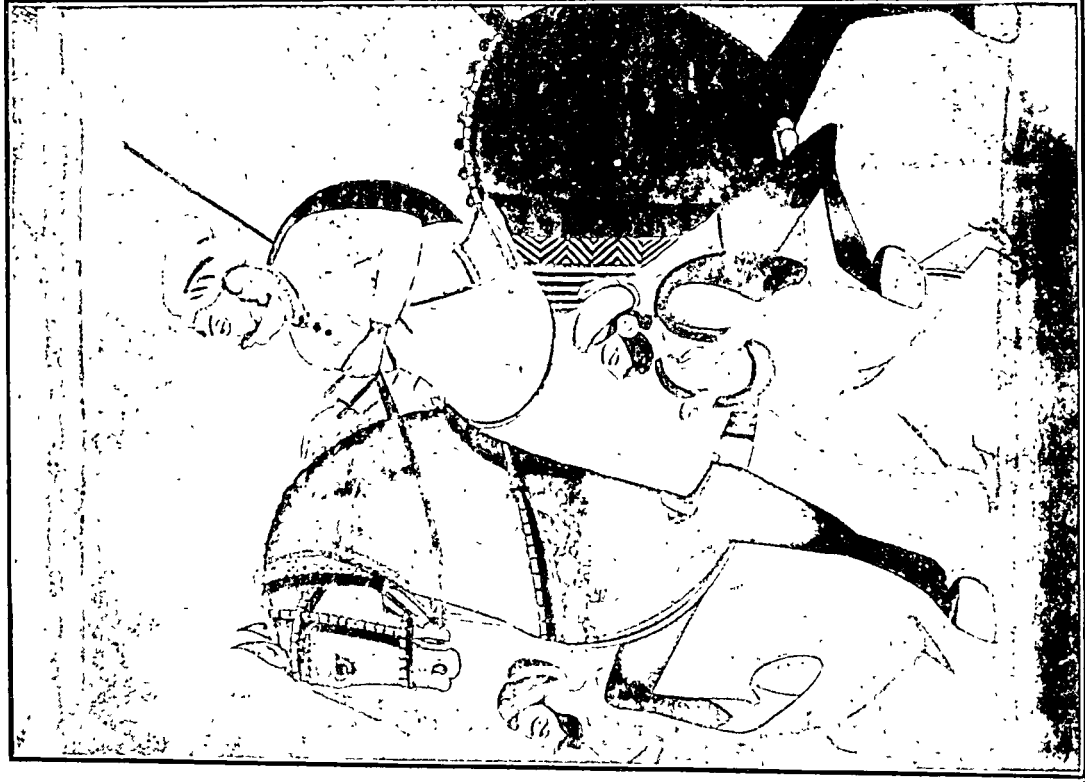
श्रीमान् सिंघी इंद्रराजजी, जोधपुर।
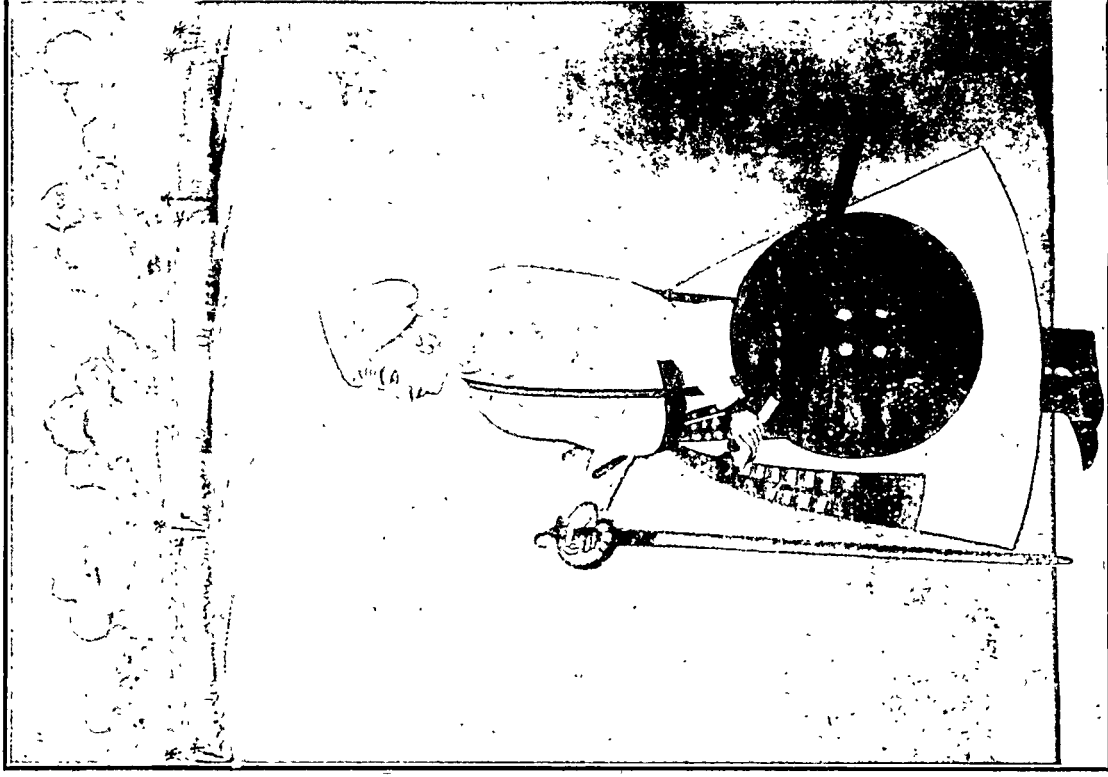
श्रीमान् भंडारी खिंवसीजी, जोधपुर।

योग्यता के साथ वहाँ जाकर झगड़े का निपटारा कर दिया। उन्होंने पालीताना तीन लाख रुपये की आमदनी का राज-नगर नामक जिला अमरसिंहजी को दिलवाकर झगड़ा शांत कर दिया। दुर्गादासजी के इस कार्य से महाराणा बहुत खुश हुए। उन्होंने दुर्गादासजी को फिर अपने पास से नहीं जाने दिया। अपनी मृत्यु के कुछ ही समय पहले से आप उज्जैन चले गये थे। वहीं पर क्षिप्रा नदी के किनारे आपका स्वर्गवास हुआ। आपकी स्मृति में वहाँ एक छत्री बनी हुई है। यह छत्री 'राठोड़ छत्री' के नाम से प्रसिद्ध है। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि महाराजा अजितसिंहजी ने दुर्गादासजी के समान स्वामिभक्त सरदार के मूल्य को नहीं पहिचाना। इस विषय में किसी कवि के निम्नलिखित उद्गार पढ़ने योग्य हैं:—

इण घर अहिज रीत, दुरगो सफरां दागियो ॥

अजीतसिंहजी के बाद महाराजा मानसिंहजी ने भी अपने सरदारों के प्रति ऐसा ही व्यवहार किया था। अतएव यह उक्ति उस समय की है। इसका आशय यह कि 'जोधपुर के राजघराने में यही रीति है। इसका प्रमाण यह है कि दुर्गादासजी का स्वर्गवास भी क्षिप्रा के किनारे हुआ था।"

ई० स० १७१२ में बहादुर इस संसार से चल बसा। उसके बाद क्रमशः जहांदार शाह, और फरुखसियर दिल्ली के तख्त पर बैठे। फरुखसियर के तख्त पर बैठते समय जो दरबार हुआ था उसमें अजीतसिंहजी सम्मिलित नहीं हुए। इस अपमान का बदला लेने के लिये सम्राट् ने अपने प्रधान सेनापति सैय्यदहुसेन को जोधपुर भेजा। पर महाराजा ने उससे सुलह कर ली। वे उसके साथ दिल्ली भी गये। यहाँ पर सम्राट् ने खुश होकर महाराजा को ६००० जाटों एवम् ६००० घुड़सवारों का सेना-नायक नियुक्त कर दिया। इतना ही नहीं वे गुजरात के सूबेदार भी नियुक्त किये गये। छः साल तक अजीतसिंहजी गुजरात में रहे। इस अर्से में आपका सय्यद भाईयों (सय्यद अब्दुल्ला खाँ और सय्यद हुसेन खाँ जो कि क्रमशः सम्राट् के वजीर और प्रधान सेना-नायक थे) से खूब परिचय हो गया। उक्त सैय्यद भ्राता इस

समय बड़े शक्तिशाली व्यक्ति थे। इतिहास में इनका नाम राजा को बनाने वाले (kingmakers) के नाम से प्रसिद्ध है। अजीतसिंहजी इनके षड्-यंत्र में शामिल हो गये और इस प्रकार तीनों ने मिलकर फरुखसियर को गद्दी से उतार दिया। इसके बाद रफिउद्दराजात दिल्ली के सिंहासन पर बैठाया गया। चार मास बाद ही यह भी गद्दी से उतार दिया गया।

अब शाही खानदान का रफिउद्दौला नामक पुरुष दिल्ली के तख्त पर बैठाया गया। ई० स० १७१८ में जब रफिउद्दराजात दिल्ली के तख्त पर बैठा था तो उसने अजीतसिंहजी के कहने से हिन्दुओं पर का जिज़िया कर माफ़ करवा दिया था। सैय्यद् बंधुओं से मित्रता हो जाने के कारण अजीत-सिंहजी की ताकत बहुत बढ़ गई थी। उस समय दिल्ली की बादशाहत इन तीनों के हाथ का खिलौना था। इन्होंने रफ़ीउद्दौला को भी गद्दी से उतारना चाहा क्योंकि उसके स्थान में ये औरंगजेब के पौत्र रौशनअख्तर को बैठाना चाहते थे। इनको तो इच्छा करने मात्र की देर थी। झट रौशनअख्तर गद्दी पर बैठा दिया गया। इस नवीन सम्राट् ने तख्त तर बैठकर अपना नाम महमद शाह रखा। इसने निज़ामउलमुल्क की सहायता से सैय्यद अब्दुल्ला को कैद कर लिया और सैय्यद हुसेन को मरवा डाला। अजीतसिंहजी बड़े बुद्धिमान् थे। वे इन झगड़ों में फँसे रहते हुए भी उनसे अलग रहते थे। इस समय आप मारवाड़ में थे। मुगल शासन की कमजोरी देखकर झट आपने अजमेर पर अपना अधिकार कर लिया और तत्कालीन निम्बाज के ठाकुर साहब अमर-सिंहजी को वहाँ के शासक नियुक्त कर दिया। पर सम्राट् ने सेना भेजकर फिर से अजमेर पर अपना अधिकार कर लिया। जोधपुर की रियासत इस समय बड़ी शक्तिशालिनी होती जा रही थी। उसकी यह शक्ति आंबेर-नरेश जयसिंहजी और सम्राट् से देखी न गई। अतएव जयसिंहजी ने महमदशाह को एक युक्ति बतलाई। उन्होंने सम्राट् से अजीतसिंहजी को उनके पुत्र अभय-सिंहजी द्वारा मरवा डालने के लिये कहा। उक्त विचार को कार्य रूप में परि-णत करने के विचार से एक समय महमदशाह अभयसिंहजी को जमुना

नदी पर ले गया। वहाँ एक नाव में बैठकर ये दोनों जब जल के मध्य में पहुँचे तब बादशाह ने उक्त बात उठाई। उसने अभयसिंहजी को हत्या करने के लिये समझाया। उसने यह भी कहा कि यदि तुम यह बात स्वीकार नहीं करोगे तो इसी समय जमुना में डुबो दिये जावोगे। प्राणभय के कारण अभयसिंहजी को उक्त बात स्वीकार करनी पड़ी। उन्होंने अपने छोटे भाई बखतसिंहजी पर इस बात का भार डाल दिया। बख़तसिंहजी ने वैसा ही किया। उन्होंने ई० स० १७२४ में अजितसिंहजी को इहलोक से बिदा कर दिया। किसी कवि ने इस घटना पर निम्नलिखित पद्य लिखा है:—

"बखता बखत बाहिरै, पै मार्यो अजमाल।
हिन्दवाणीरो सेवरो, तुरकाणी रो साल॥"

अर्थात् हे बखतसिंह तू समय सूचकता से बिलकुल अनभिज्ञ है। तूने अजितसिंह के समान व्यक्ति को मारा है। जोकि हिन्दुस्थान का भूषण और मुसलमानों के लिये शल्यबाण के समान था।

अपने जन्म दिन से लगाकर मृत्युपर्यन्त तक अजितसिंहजी के जीवन में कई उत्थान और पतन हुए। इस बीच उन्हें कई मुसीबतों का सामना करना पड़ा। आपका बाल्यकाल दुर्गादास एवम् दूसरे राठोड़ सरदारों की संरक्षितता में बीता। युवावस्था, आपको अपनी पैत्रिक सम्पत्ति के वापस लेने में, एवम् घोर युद्ध करने में बितानी पड़ी। जब आप गद्दी पर बैठे तो इतने शक्तिशाली हो गये थे कि फरुखसियर तक को आपने कैद कर लिया था! दिल्ली के चार बादशाहों को आपने अपने हाथ से तख्त पर बिठाया। एक अर्से तक आपकी वह ताकत थी कि आप जिसको चाहते उसे तख्त से उतार देते थे। इसके लिये निम्नलिखित कहावत बहुत मशहूर है।

"करोड़ां द्रव्य लुटायो, हौदां ऊपर हाथ।
अजौ दिलीरो पातशा, राजा तू रघुनाथ॥"

अर्थात् अजीतसिंहजी तो दिल्ली के बादशाह थे। और उनके सचिव रघुनाथसिंहजी भण्डारी राजा के समान शक्तिशाली थे। युरोपियन इतिहास-

लेखकों ने अजितसिंहजी को बादशाह बनानेवाले (kingmakers) के नाम से संबोधित किया है। अजितसिंहजी के १३ पुत्र थे। इनमें से अभय-सिंहजी राजगद्दी पर बैठे। आनंदसिंहजी नामक दूसरे पुत्र ईडर के शासक नियुक्त हुए।
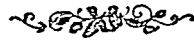
महाराजा अभयसिंहजी

ई० स० १६२४ में अभयसिंहजी जोधपुर की गद्दी पर विराजे। गद्दी पर बैठते समय आपको बादशाह महमदशाह की ओर से 'राज-राजेश्वर' की पदवी मिली। नागोर की जागीर इस समय अमरसिंहजी के पौत्र इन्द्रसिंहजी के अधिकार में थी। पर इस समय से वह भी बादशाह ने अभयसिंहजी को देदी। अभयसिंहजी ने नागोर बखतसिंहजी को दे दी और इन्द्रसिंहजी को भी एक दूसरी जागीर दे दी। सिरोही के रावजी और आपके बीच अनबन हो गई थी। अतएव आपने युद्ध करके उन्हें हराया। ई० स० १६२६ में दिल्ली के पास मरहठों और मुगलों के बीच जो लड़ाई हुई थी उसमें मुगलों की ओर से आप सम्मिलित थे। इस युद्ध में मरहठों को हारना पड़ा।

इस समय मुगल बादशाहत बड़ी कमजोर हालत में थी, अतएव ई० स० १७३० में अवध और दक्षिण के सूबेदार स्वतंत्र बन बैठे। गुजरात के सूबेदार सरबुलन्दखाँ ने भी इसका अनुकरण किया। महम्मदशाह ने अभय-सिंहजी को गुजरात का सूबेदार नियुक्त कर दिया। अतएव आपने अपने भाई बखतसिंह के साथ गुजरात पर चढ़ाई कर दी। अहमदाबाद के पास सरबुलंद खाँ के साथ आपका मुकाबला हुआ। पाँच दिन तक लड़ाई जारी रही।
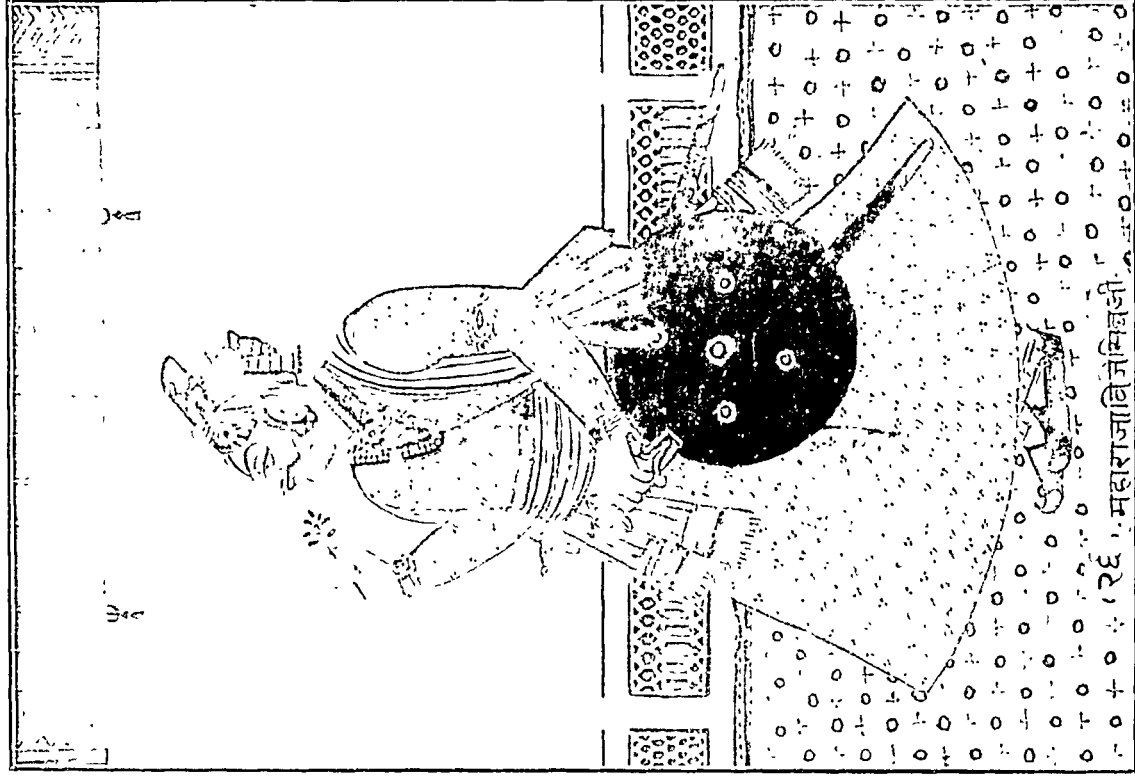
श्रीमान् महाराज विजयसिंहजी, जोधपुर ।
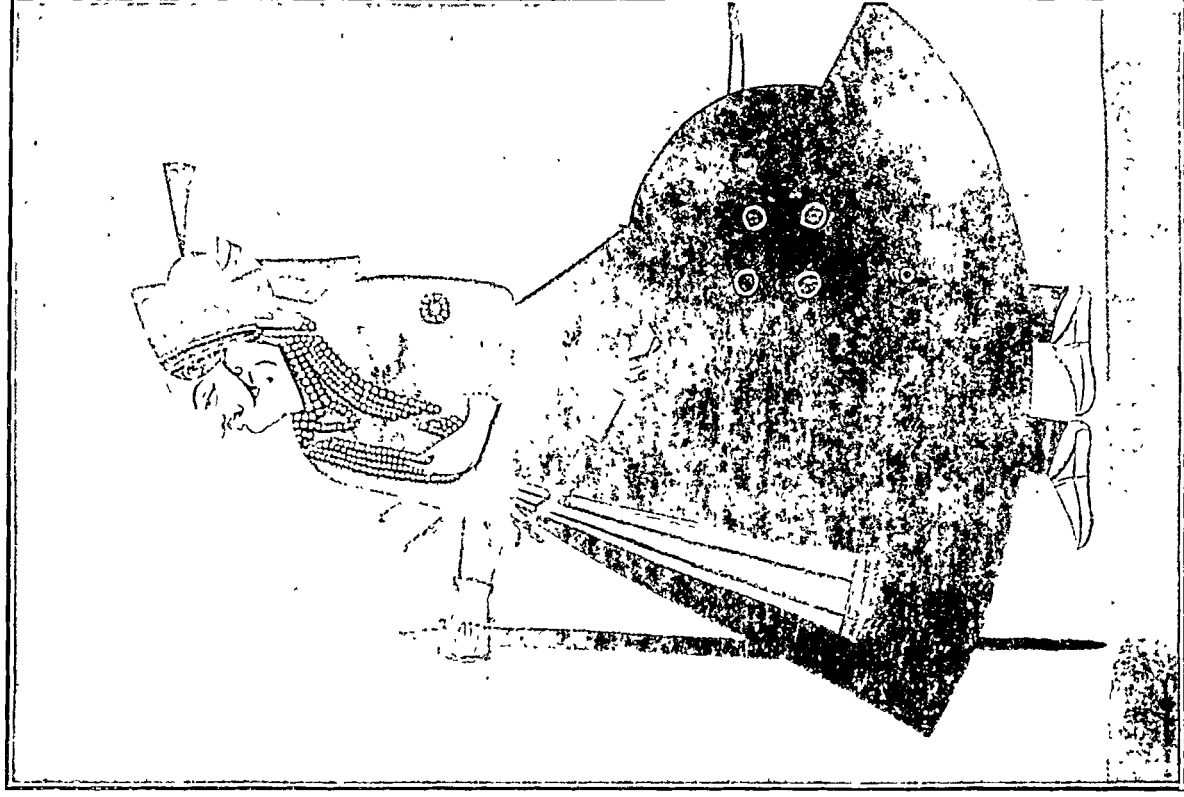
श्रीमान् महाराज अभयसिंहजी, जोधपुर ।

अन्त में सरबुलंदखाँ को हार माननी पड़ी। जब उसने हार मंजूर कर ली तो अभयसिंहजी ने उसे सकुशल दिल्ली लौट जाने दिया। वहां जाकर उसने फिर से झूठी सच्ची बातें बनाकर महम्मदशाह का विश्वास प्राप्त कर लिया। महम्मद-शाह ने उसे फिर काश्मीर का सूबेदार बना दिया। इस युद्ध में अभयसिंहजी को खूब लूट का सामान मिला। इस लूट का कुछ सामान अभी तक जोध-पुर के किले में मौजूद है। इसके एक साल बाद बाजीराव पेशवा गुजरात पर चढ़ आये। वे बड़ोदा तक आ गये थे पर अभयसिंहजी ने उन्हें वहाँ ही से वापस लौट जाने को बाध्य किया। अभयसिंहजी एक दीर्घ-काल तक गुज-रात में रहे। हम ऊपर कह आये हैं कि अभयसिंहजी को आनंदसिंहजी नामक एक छोटे भाई थे। पहले इन्हें कोई जागीर नहीं मिली हुई थी अतएव अभयसिंहजी की अनुपस्थिति में इन्होंने मारवाड़ में लूट-खसोट शुरू कर दी थी। अभयसिंहजी बुद्धिमान थे अतएव आपने उन्हें इडर का शासक नियुक्त कर झगड़े का फैसला कर दिया।

इसी बीच बखतसिंहजी और बीकानेर के तत्कालीन महाराजा जोरावर-सिंहजी के बीच 'खरबूजी' नामक जिले के लिये झगड़ा उत्पन्न हो गया। इस में बखतसिंहजी सफल हुए और उन्होंने खरबूजी जिले को अपने राज्य में मिला लिया। अपने भाई का पक्ष लेकर अभयसिंहजी ने भी बीकानेर पर चढ़ाई कर दी। जोरावरसिंहजी ने इसका प्रतिकार किया और कहा कि जिस खरबूजी जिले के लिये यह झगड़ा हुआ है वह तो मैं पहले ही बखतसिंहजी को दे चुका हूँ। जब किसी प्रकार अभयसिंहजी युद्ध बन्द करने को तैयार नहीं हुए तब जोरावरसिंहजी ने जयपुर-नरेश जयसिंहजी को अपनी सहायतार्थ बुला लिया। जयसिंहजी ने तुरन्त जोधपुर पर चढ़ाई कर दी। अभयसिंहजी बीकानेर छोड़ जोधपुर लौटने को बाध्य हुए। अब अभयसिंहजी ने अपने भाई बखतसिंहजी को अपनी सहायता के लिये बुलाया। बखतसिंहजी ने जय-पुर पर चढ़ाई कर दी। वे अजमेर के पास गगवाना नामक स्थान तक आ पहुँचे। इस स्थान पर जयपुरवालों से इनका मुकाबला हुआ। पहले तो जय-

पुरवाले भूखे शेर की तरह बखतसिंहजी की सेना पर टूट पड़े। उन्होंने बखत-सिंहजी की तमाम सेना को करीब २ घास-मूली की तरह काट डाला। बखतसिंहजी के पास सिर्फ ६० आदमी मुश्किल से रह गये थे। इन्हीं ६० आदमियों को लेकर बखतसिंहजी अब जयपुर के निशान की तरफ झपटे। उन्होंने अपनी सारी शक्ति इस ओर लगा दी। जयपुरियों के पाँव उखड़ गये। बखतसिंहजी के गले में विजय-माला पड़ी। इस प्रकार केवल मुट्ठी भर आद-मियों की सहायता से बखतसिंहजी ने जयपुर की विशाल सेना को परास्त कर दिया। अभयसिंहजी ने इस सहायता के बदले अनेकानेक धन्यवाद दिये और साथ ही इस प्रकार की अदूरदर्शिता के लिये भी बहुत कुछ भला बुरा कहा।

गगवाना के युद्ध के बाद राणाजी ने बीच में पड़कर जयपुर और जोधपुरवालों के बीच शांति स्थापित करवा दी। इसी साल अर्थात् १७३८ में नादिरशाह ने हिन्दुस्थान पर हमला किया था।

ई० स० १७४७ में सम्राट् महम्मदशाह का देहान्त हो गया। महम्मद-शाह के बाद अहमदशाह दिल्ली का सम्राट् हुआ। इस नवीन सम्राट् ने बखत-सिंहजी को गुजरात का सूबेदार नियुक्त किया। ई० स० १७४८ में २४ वर्ष राज्य कर अभयसिंहजी ने अपनी इहलोक-यात्रा संवरण की। आप बड़े पराक्रमी एवं युद्ध-विद्या में पारंगत थे। जिस युद्ध में आप सम्मिलित हो जाते थे उसमें आपकी विजय निश्चित थी। आपके रामसिंह नामक एक मात्र पुत्र थे।

महाराजा रामसिंहजी

आपने पिता की मृत्यु के पश्चात् ई० स० १७४९ में महाराजा रामसिंहजी गद्दी-नशीन हुए। आप बचपन से ही स्वभाव के बड़े ज़िद्दी थे। अतएव तमाम राठोड़ सरदार इन्हें छोड़ बखतसिंहजी से जा मिले। केवल मेड़ता के सरदार और जग्गू पुरोहित आदि कुछ इने-गिने ही सरदार इनकी तरफ़ रह गये। प्रजा भी इनसे बेतरह नाराज़ थी। ऐसी परिस्थिति में इनके चाचा बखतसिंहजी ने ज़ुल्फिकार जंग को अपनी सहायतार्थ बुलाकर मारवाड़ पर चढ़ाई कर दी।

जब रामसिंहजी को उपरोक्त समाचार मालूम हुए तो उन्होंने भी तत्कालीन जयपुर नरेश ईसरीसिंहजी को अपनी सहायतार्थ बुलवाये। पीपाड़ के पास भयानक संग्राम हुआ। बखतसिंहजी की हार हुई और उन्हें भागना पड़ा।

कुछ समय के पश्चात् फिर से बखतसिंहजी ने मारवाड़ पर कई चढ़ाइयाँ कीं, मगर सब असफल हुईं। लेकिन बखतसिंहजी फिर भी निराश नहीं हुए। कुछ समय के पश्चात् एक बार और चढ़ाई की। इस समय महाराजा रामसिंहजी मेड़ता में थे। इसलिये बखतसिंहजी ने पीछे से जोधपुर पर अपना अधिकार कर लिया। महाराजा रामसिंहजी के वापस लौटने पर दोनों ओर की सेना में युद्ध हुआ। रामसिंहजी की हार हुई। उन्होंने भाग कर जयपुर में विश्राम लिया। वहाँ से मराठों की सहायता से इन्होंने कई बार मारवाड़ पर आक्रमण किये। मगर सब निष्फल हुए। आखिर में बखतसिंहजी ने इन्हें सांभर का पर्गना जागीर में दे दिया। आखिर समय में मेड़ता, सोजत, आदि स्थानों पर भी रामसिंहजी का अधिकार होगया था। वि० स० १८२९ में आपका जयपुर ही में देहान्त हो गया।

महाराजा बखतसिंहजी

महाराजा रामसिंहजी के बाद वि० सं० १८०८ की श्रावण सुदी १२ को महाराजा बखतसिंहजी राजगद्दी पर बिराजे। आप बड़े न्याय-प्रिय और बुद्धिमान् नरेश थे। अजमेर पर आप्पाजी सिंधिया ने अधिकार कर लिया था। उसे फिर आपने ले लिया। आपका देहान्त वि० स० १८०९ की भादों सुदी १३ को जयपुर-राज्य के सिंघोलिया नामक स्थान पर हुआ। उसी स्थान पर इनके पुत्र विजयसिंहजी ने एक मन्दिर बनवाया था। राव मालदेवजी ने जोधपुर की शहरपनाह को बनवाना शुरू किया था उसे इन्होंने ६ माह में समाप्त करवा दी।
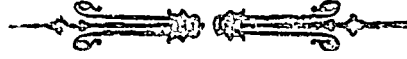
महाराजा विजयसिंहजी

महाराजा बखतसिंहजी के बाद ई० स० १७५३ में महाराजा विजयसिंहजी मारवाड़ की गद्दी पर बिराजे। आपके समय में एक अर्से तक मारवाड़ ने परम-सुख और शांति को भोगा था। पर दुर्दैव से यह सुख-शान्ति अधिक दिन तक न टिक सकी। इस समय मारवाड़ में मराठों के हमले होना शुरू हो गये थे। महाराजा विजयसिंहजी ने राजपूतों का संगठन कर अपने राजनैतिक अस्तित्व की रक्षा करने का आयोजन किया था। ई० स० १७८८ में जयपुर के तत्कालीन महाराजा ने आपके पास अपना
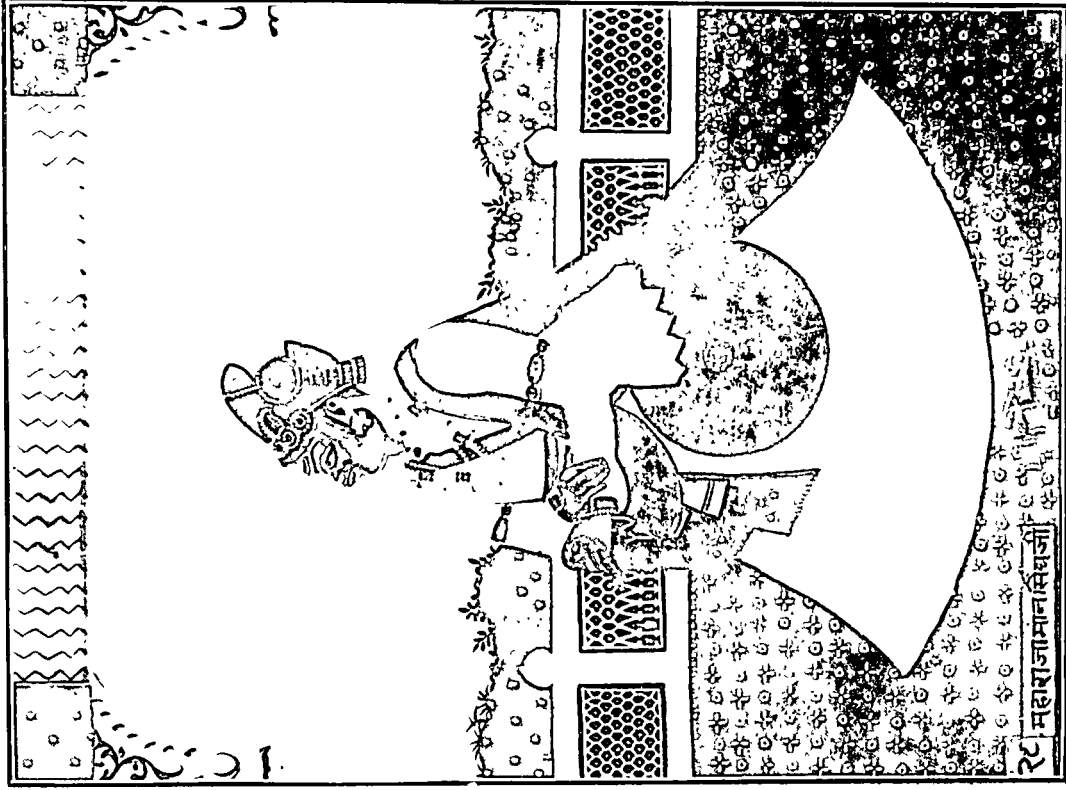
श्रीमान् महाराज मानसिंहजी, जोधपुर।

श्रीमान् राठौड़ दुर्गादासजी, जोधपुर।

एक दूत भेजकर प्रस्ताव किया था कि "अपन सब मिलकर मराठों का मुकाबला करें। महाराजा विजयसिंहजी इसके लिये तैय्यार ही थे। बस फिर क्या था। जयपुर-जोधपुर की सेना ने टोंगा नामक स्थान पर मराठों से मुकाबला किया। बड़ा भीषण युद्ध हुआ। इसमें राठोड़ों ने अपने अपूर्व वीरत्व का परिचय दिया। मराठी सेना पूर्ण-रूप से परास्त हुई। सिंधिया रण-क्षेत्र छोड़ भाग गये।

महाराजा विजयसिंहजी परम वैष्णव थे। आपने अपने समय में यह घोषणा प्रकट की थी कि राज्य भर में कोई हिंसा न करने पावे। इस आज्ञा का उलंघन करने वालों को आपने मृत्यु-दंड तक दिया था।

महाराजा विजयसिंहजी के बाद ई० स० १७९३ में भीमसिंहजी मारवाड़ की गद्दी पर बिराजे। इनके समय में ऐतिहासिक दृष्टि से कोई महत्व-पूर्ण घटना नहीं हुई। आपका देहान्त ई० स० १८०४ में हुआ।

महाराजा मानसिंहजी

महाराजा भीमसिंहजी के बाद ई० स० १८०४ में महाराजा मानसिंहजी गद्दी पर बिराजे। आप महाराजा भीमसिंहजी के भतीजे थे। युवावस्था में आपको अनेक विपत्तियों का सामना करना पड़ा था। एक समय तो भीमसिंहजी के भय से मारवाड़ छोड़ने की नौबत आई थी। जिस समय आप गद्दी पर बिराजे उस समय महाराजा भीमसिंहजी की एक रानी गर्भवती थी। कुछ सरदारों ने मिलकर उसे तलेटी के मैदान में ला रखा, वहीं पर उसके गर्भ से एक बालक उत्पन्न हुआ, जिसका नाम धोंकलसिंह रखा गया। इसके बाद उन सरदारों ने उसे पोकरण की तरफ भेज दिया। पर महाराजा

मानसिंहजी ने इस बात को बनावटी मान उसका राज्याधिकार अस्वीकार कर दिया।

महाराजा मानसिंहजी ने गद्दी पर बैठते ही अपने शत्रुओं से बदला लेकर, उन लोगों को जागीरें दीं जिन्होंने विपत्ति के समय सहायता की थी। इसके बाद इन्होंने सिरोही पर फौज भेजी। क्योंकि वहाँ के राव ने संकट के समय में इनके कुटुम्ब को वहां रखने से इनकार किया था। कुछ ही समय में सिरोही पर इनका अधिकार हो गया। घाणेराव भी महाराज के अधिकार में आगया।

वि० स० १८६१ में धोंकलसिंह की तरफ से शेखावत राजपूतों ने डिडवाना पर आक्रमण किया, पर जोधपुर की फौज ने उन्हें हराकर भगा दिया।

उदयपुर के राणा भीमसिंहजी की कन्या कृष्णाकुमारी का विवाह जोधपुर के महाराजा भीमसिंहजी के साथ होना निश्चय हुआ था। परन्तु उनके स्वर्गवासी हो जाने के पश्चात् राणाजी ने उसका विवाह जयपुर के महाराज जगतसिंहजी के साथ करना चाहा। जब यह समाचार मानसिंहजी को मिला तब उन्होंने जयपुर महाराजा जगतसिंहजी को लिखा कि वे इस सम्बंध को अंगीकार न करें। क्योंकि उस कन्या का वाग्दान मारवाड़ के घराने से हो चुका है। अतः भीमसिंहजी विवाह के पूर्व ही स्वर्ग को सिधार गये तौभी उनके उत्तराधिकारी की हैसियत से उक्त कन्या से विवाह करने का पहला हक्क उन्हीं (महाराज मानसिंहजी) का है।

बहुत कुछ समझाने पर भी जब जयपुर महाराज ने ध्यान नहीं दिया तब महाराजा मानसिंहजी ने वि० सं० १८६२ के माघ में जयपुर पर चढ़ाई कर दी। जिस समय ये मेड़ते के पास पहुँचे उस समय इनको पता लगा कि उदयपुर से कृष्णाकुमारी के विवाह का टीका जयपुर जा रहा है। यह समाचार पाते ही महाराजा ने अपनी सेना का कुछ भाग उसे रोकने के लिये भेज दिया। इससे लाचार हो टीका वालों को वापस उदयपुर लौट जान पड़ा।

इसी बीच जोधपुर महाराज ने जसवंतराव होल्कर को भी अपनी

सहायता के लिये बुला लिया था। जब राठोड़ों और मराठों की सेनाएँ अजमेर में इकट्ठी हो गई तब लाचार होकर जयपुर महाराज को पुष्कर नामक स्थान में सुलह करनी पड़ी। जोधपुर के इन्द्रराज सिंघी और जयपुर के रतनलाल (रामचंद्र) के उद्योग से होल्कर ने बीच में पड़कर जगतसिंहजी की बहिन का मानसिंहजी से और मानसिंहजी की कन्या का जगतसिंहजी से विवाह निश्चित करवा दिया। वि० सं० १८७३ के आश्वीन मास में महाराजा जोधपुर लौट आये। पर कुछ ही दिनों के बाद लोगों की सिखावट से यह मित्रता भंग हो गई। इस पर जयपुर महाराज ने धोंकलसिंहजी की सहायता के बहाने से मारवाड़ पर हमला करने की तैयारी की। जब सब प्रबंध ठीक हो गया तब जगतसिंहजी ने एक बड़ी सेना लेकर मारवाड़ पर चढ़ाई कर दी। मार्ग में खंडेले नामक ग्राम में बीकानेर महाराज सूरतसिंहजी, धोंकलसिंहजी और मारवाड़ के अनेक सरदार भी इनसे आ मिले। पिंडारी वीर अमीरखाँ भी मय अपनी सेना के जयपुर की सेना में आ मिला।

जैसे ही यह समाचार महाराजा मानसिंहजी को मिला वैसे ही वे भी अपनी सेना सहित मेड़ता नामक स्थान में पहुँचे और वहाँ मोरचा बाँधकर बैठ गये। साथ ही इन्होंने मराठा सरदार जसवंतराव होल्कर को भी अपनी सहायतार्थ बुला भेजा। जिस समय होल्कर और अंग्रेजों के बीच युद्ध छिड़ा था उस समय महाराज ने होल्कर के कुटुम्ब की रक्षा की थी। इस पूर्व-कृत उपकार का स्मरण कर होल्कर भी तत्काल इनकी सहायता के लिये रवाना हुए। परन्तु उनके अजमेर के पास पहुँचने पर जयपुर महाराज ने एक बड़ी रकम रिश्वत देकर वापस लौटा दिया।

इसके बाद गाँगोली की घाटी पर जयपुर और जोधपुर की सेना का मुकाबला हुआ। युद्ध के समय बहुत से सरदार महाराजा की ओर से निकल कर धोंकलसिंहजी की तरफ जयपुर सेना में जा शामिल हुए, इससे जोधपुर की सेना कमज़ोर हो गई। अन्त में विजय के लक्षण न देख बहुत से सरदार महाराजा को वापस जोधपुर लौटा लाये। जयपुरवालों ने विजयी होकर

मारोठ, मेड़ता, पर्वतसर, नागोर, पाली, और सोजत आदि स्थानों पर अधिकार कर जोधपुर घेर लिया। वि० सं० १८६३ की चैत्र बदी ७ को जोधपुर शहर भी शत्रुओं के हाथ चला गया। केवल किले ही में महाराजा का अधिकार रह गया।

यह घटना सिंघी इन्द्रराज और भंडारी गंगाराम से न देखी गई। उन्होंने महाराजा से प्रार्थना की कि अगर उन्हें किले से बाहर निकलने की आज्ञा दी जायगी तो वे शत्रु के दाँत खट्टे करने का प्रयत्न करेंगे। महाराजा ने इनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और इन्हें गुप्त-रूप से किले के बाहर करवा दिया। इसके बाद वे मेड़ते की ओर गये और वहाँ सेना संगठित करने का प्रयत्न करने लगे। उन्होंने एक लाख रुपैये की रिश्वत देकर सुप्रख्यात पिंडारी नेता अमीरखाँ को भी अपनी तरफ़ मिला लिया। इसी बीच बापूजी सिंधिया को भी निमंत्रित किया था और वे इसके लिये रवाना भी हो गये थे पर बीच ही में जयपुरवालों ने रिश्वत देकर उन्हें वापस लौटा दिया।

सिंघी इन्द्रराज और कूचामन के ठाकुर शिवनाथसिंहजी ने अमीरखाँ की सहायता से जयपुर पर कूच बोल दिया। जब इसकी खबर जयपुर महाराजा को लगी तब उन्होंने राय शिवलाल के सेनापतित्व में एक विशाल सेना उनके मुकाबले को भेजी। मार्ग में जयपुर, जोधपुर की सेनाओं में कई छोटी मोटी लड़ाईयाँ हुईं। पर कोई अन्तिम फल प्रकट न हुआ। आखिर में टोंक के पास फागी नामक स्थान पर अमीरखाँ और सिंघी इन्द्रराज ने जयपुर की फौज को परास्त किया और उसका सब सामान लूट लिया। इसके बाद जोधपुरी सेना जयपुर पहुँची और उसे खूब लूटा। जब यह खबर जयपुर के महाराज जगतसिंहजी को मिली तब वे जोधपुर का घेरा छोड़कर जयपुर की तरफ़ लौट चले।

जयपुर की सेना पर विजय प्राप्त कर जब अमीरखाँ आदि जोधपुर पहुँचे तब महाराजा मानसिंहजी ने उसका बड़ा आदर सत्कार किया। उसे तीन लाख रुपैये नगद दिये और भी बहुत कुछ देने का वायदा कर
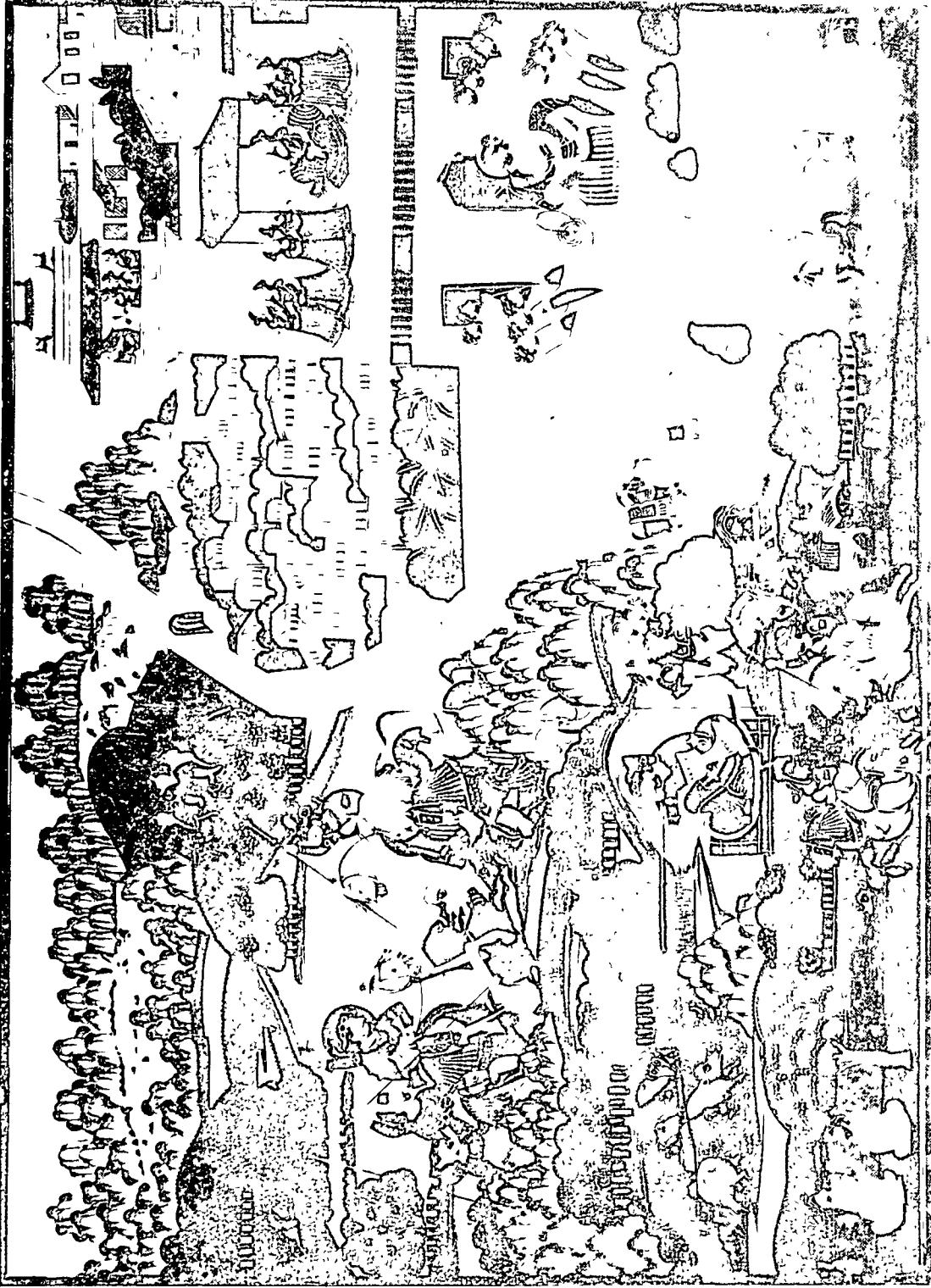
श्रीमान् महाराज मानसिंहजी का शिकार खेलना (जोधपुर)।

महाराज ने उसे नागोर पर भेजा। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस समय बीकानेर के महाराज सूरतसिंहजी, धोकलसिंहजी तथा पोकरण ठाकुर सवाई-सिंहजी आदि ससैन्य वहाँ पड़े हुए थे। अमीरखाँ की इनसे खुलकर मोरचा लेने की हिम्मत नहीं हुई। उसने कुरान की कसम खाकर पोकरण ठाकुर साहब से मित्रता कर ली और उन्हें अपने स्थान पर बुला धोखे से मार डाला। यह देख महाराज सूरतसिंहजी, धोकलसिंहजी और सवाईसिंहजी के पुत्र को लेकर बीकानेर चले गये। इस प्रकार अमीरखाँ ने नागोर पर अधिकार कर लिया। महाराजा मानसिंहजी ने उसे इस कारगुज़ारी के लिये दस लाख रुपैये नगद, तीस हज़ार रुपैये सालाना आमदनी की जागीर और १०० रु० रोज का परवाना कर दिया। इसी वर्ष अमीरखाँ की सहायता से जोधपुर की सेना ने बीकानेर पर धावा बोला। युद्ध हुआ और विजय-माला जोधपुर की सेना के गले में पड़ी।

सिंधी इन्द्रराज की सेवाओं से प्रसन्न होकर महाराजा मानसिंहजी ने उसे राज्य के सम्पूर्ण अधिकार सौंप दिये थे। इन्द्रराज की इस उन्नति से उनके शत्रु जल भुन कर खाक हो गये थे। वे सिंघीजी की इस उन्नति को न देख सके। उन्होंने इनके खिलाफ़ षड्यंत्र रचना शुरु किया। इसके लिये उन्हें अच्छा मौका भी हाथ लग गया। नबाब अमीरखाँ ने मुँडवा, कुचेरा, आदि अपने जागीर के गाँव के अलावा मेड़ता और नागोर पर भी अधिकार करने का विचार किया था। यह बात सिंघी इन्द्रराज को बुरी लगी। उन्होंने इस पर बड़ी आपत्ति प्रगट की। जैसा हम उपर कह चुके हैं कि मेहता अखै-चन्द आदि इन्द्रराज के शत्रुओं ने नबाब को भड़का दिया। वि० सं १८७३ की चैत सुदी ८ मी को नबाब ने अपनी फौज के कुछ अफ़सरों को किले पर भेजा। उन्होंने वहां पहुँच सिंघी इन्द्रराज को महाराज के गुरु देवनाथ से अपनी चढ़ी हुई तनख्वाह तुरन्त देने को कहा। बात ही बात में झगड़ा हो गया। अफ़गान सरदारों ने इन्द्रराज और देवनाथ को मार डाला। महाराजा मानसिंहजी को इस बात से वज्रपात का सा दुःख हुआ। वे विह्वल हो गये।

उनके हृदय में घोर विषाद छा गया और संसार से उन्हें विरक्ति सी हो गई। उन्होंने राज्य करना छोड़ दिया और मोती महल में एकान्तवास करने लगे। इस पर सरदारों ने महाराज-कुमार छत्रसिंहजी को गद्दी पर बिठा दिया। उन्होंने महाराजा को बहुत दुःख दिया। छत्रसिंहजी बुरी संगत में पड़ गये और उपदेश आदि रोगों से ग्रस्त होकर एक ही वर्ष में वे इस असार संसार को छोड़ चल बसे। इन्हीं छत्रसिंहजी के समय में ईस्टइंडिया कंपनी और जोधपुर दरबार के बीच एक अहदनामा हुआ। इस अहदनामे के अनुसार कंपनी ने मारवाड़ राज्य की रक्षा का भार अपने ऊपर लिया। इसके बदले में दरबार ने वह कर देना मंजूर किया जो सिंधिया को दिया जाता था। इस कर की रकम १०८००० थी। जोधपुर दरबार ने कंपनी के काम के लिये १५०० सवार रखना भी स्वीकार किया। इस प्रकार महाराज कुमार छत्रसिंहजी के शासनकाल में जोधपुर और अंग्रेज सरकार के बीच इस प्रकार का तहनामा होगया।

राजपूताने में तत्कालीन रेसीडेन्ट कर्नल अक्टरलोनी ने जोधपुर के राज्य बिगड़ने और महाराजा मानसिंहजी के बावले हो जाने की अफ़वाह सुनकर दिल्ली से अपने मुन्शी बर्कतअली को ठीक २ खबर लेने के लिये भेजा। महाराजा ने उसे एकान्त में बातचीत करते हुए कहा कि "हम हराम· खोरों के दुःख से बावले बन रहे हैं। ऐसी दशा में अंग्रेज सरकार से अहद-नामा होगया है। अब हम यह चाहते हैं कि जिस प्रकार प्रथम स्वतंत्रतापूर्वक राज्य करते थे उसी प्रकार अब भी करें और अंग्रेज सरकार को कुछ परवल न दें। यदि तुम इस बात का प्रबन्ध कर सकोगे तो हम तुम्हें बहुत खुश करेंगे।

कुछ दिनों के बाद उक्त मुंशी गवर्नर जनरल का खलीता लेकर आया और वह महाराजा से एकान्त में मिला। इस खलीते में महाराजा को विश्वास दिलाया गया था कि यदि आप फिर अपने राज्य का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लेगें तो गवर्नमेंट आप के भीतरी मामलों में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न करेगी।

इस पर वि० सं० १८७५ की कार्तिक शुक्ला ५ को फिर से महाराज ने राजसूत्र अपने हाथ में लिया। दो वर्ष तक महाराजा ने बड़ी शाँति के साथ राजकार्य किया। वि० सं० १८७० की वैशाख सुदी १४ को महाराजा ने मेहता अखेचंद और उसके ८४ अनुयायियों को कैद कर लिया। इनमें से अखैचन्द आदि ८ मुखियाओं को ज़बरदस्ती विषपान करवा कर मरवा डाला। इसके अतिरिक्त कई बागी सरदारों की जागीरें जप्त कर लीं। इससे राज्य में घोर अराजकता और अशान्ति छा गई। चारों ओर उपद्रव होने लगे। जिन लोगों की जागीरें जप्त कर ली गई थीं उन्होंने अंग्रेज सरकार के पास शिकायतें कीं। गवर्नर जनरल के एजंट ने महाराजा को सब बखेड़ा शांत करने की सलाह दी। इस पर महाराजा ने कुछ जप्त की हुई जागीरें वापस कर दीं।

हम ऊपर कह चुके हैं कि महाराजा मानसिंहजी की नाथों के प्रति अप्रतिहत भक्ति थी। जब इन्हें दुबारा राज्य अधिकार प्राप्त हुआ तब फिर से नाथों ने प्रजा पर भीषण अत्याचार करना शुरू किया। चारों ओर अनीति का साम्राज्य छा गया। बहुत से सरदार बागी हो गये। अंग्रेजी सरकार के पास बहुतसी फ़र्यादें पहुँचीं। अंग्रेज सरकार से जो खलीते आये उनके जवाब भी नहीं दिये गये। इस पर राजपूताने के रेसीडेन्ट कर्नल सदरलैंड को महाराजा के खिलाफ़ फौजकसी करने का हुक्म देना पड़ा। जोधपुर पर चढ़ाई की। बहुत से बागी सरदार भी इनके साथ थे। जब यह खबर महाहाजा के पास पहुँची तो उन्होंने अपनी राजधानी से आगे बढ़ कर कर्नल सदरलैंड से भेंट की। दोनों में समझौता होगया। उसी समय से जोधपुर में एजंसी कायम कर दी गई। फिर कुछ दिनों के बाद महाराजा ने जोग ले लिया। वे अपनी पुरानी राजधानी मंडोवर में जा रहे। वहाँ ही वि० सं० १९०० के भादों सुदी ११ को आप परलोकवासी हुए। रानी देवड़ाजी उनके पीछे मंडोवर में सती हुईं।

महाराजा मानसिंहजी बड़े विद्या-प्रेमी थे और संगीत विद्या के तो बड़े ही प्रेमी थे। दूर दूर से पंडितगण उनकी सेवा में उपस्थित होते थे। उनसे उदार आश्रय पाते थे। महाराजा मानसिंहजी के समय में बड़े २ संगीत

विद्या-विशारद, शास्त्रवेत्ता पंडित और कवीश्वरों की इतनी इज्जत होती थी कि वे पालकियों में बैठे २ फिरते थे। सोमवार के दिन उन्हें बड़े २ पारितोषिक मिला करते थे। इसी दिन पंडितों की सभा हुआ करती थी और महाराजा उनमें बैठकर शास्त्रार्थ किया करते थे। महाराजा की बुद्धि अति तीक्ष्ण थी। वे बड़े २ गहन विषयों को सहज ही समझ लेते थे। साथ ही अपने पक्ष का प्रतिपादन बड़ी ही विद्वत्ता के साथ करते थे।

महाराजा जसवन्तसिंहजी के बाद इन्हीं के समय में भाषा कविता का जीर्णोद्धार हुआ। डिंगल काव्य का पुनर्जन्म इन्हीं की कदरदानी का फल है। महाराजा स्वयं भी बहुत अच्छे कवि थे और उन्होंने कई सुमधुर वाक्यों की सृष्टि की थी। आपने भागवत के दशम स्कंध का पद्यमय अनुवाद भी किया था।
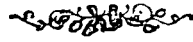
महाराजा तख्तसिंहजी

महाराजा मानसिंहजी के बाद महाराजा तख्तसिंहजी वि० सं० १९०० में राज्यासन पर बिराजे। महाराजा मानसिंहजी के कोई पुत्र न होने से इन्हें अहमदनगर से गोद लाये थे। आपने राज्याधिकार प्राप्त करते ही बहुत कुछ शाँति स्थापित कर दी। आप ही के समय में सन् ५७ का गदर हुआ था। इसमें आपने ब्रिटिश सरकार की बड़ी सहायता की थी। आपने अपने शरण में आये हुए कई अंग्रेजों की बड़ी सहृदयता के साथ रक्षा की थी। इसके उपलक्ष में भारत सरकार की ओर से जी० सी० एस० आई की उपाधि से विभूषित किये गये थे। आपने जोधपुर राज में होकर जानेवाली रेलवे के लिये बिना मूल्य जमीन प्रदान की थी। वि० सं० १९२५ के भयंकर अकाल में आपने भूखी प्रजा को अन्न दान कर बड़ा पुण्य उपार्जन किया था।

संवत् १९२७ में तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड मेयो ने अजमेर में एक दर्बार किया था। महाराजा तख्तसिंहजी भी इसके लिये अजमेर पधारे थे। पर उक्त दरबार में आपका मान मर्तबे के मुताबिक न होने से आप लौट आये। इस पर भारत सरकार ने नाराज़ होकर आप की सलामी २ तोपों की कम कर दी।

वृद्धावस्था हो जाने से महाराजा ने वि० सं० १९२८ ई० में अपने बड़े राजकुमार जसवंतसिंहजी को राज्याधिकार सौंप दिया। इसके बाद वि० सं० १९२९ की माघ सुदी १५ को आप क्षय रोग से परलोकवासी हुए।

आप विद्या-प्रेमी और समाज-सुधारक थे। आपने राजपूतों में होने-वाले कन्यावध के खिलाफ़ बड़ी ही कठोर आज्ञाएँ प्रकाशित की थीं। अजमेर के मेयो कालेज को आपने एक लाख रुपया प्रदान किया था।

महाराजा जसवंतसिंहजी (द्वितीय)

आप वि० सं० १९२९ (ई० स० १८७३) को राज्य–सिंहासन पर विराजे। आपके समय में जोधपुर राज्य ने बड़ी तरक्की की। आपने सुसंगठित न्यायालय स्थापित किये। रेल्वे, तार और सड़कें बनवाई। रेव्हेन्यु सेट्लमेन्ट की पद्धति जारी की। रियासत का हरएक विभाग सुसंगठित किया गया। आपने सम्राज्य सरकार की सेवा के लिये इम्पीरियल केव्हेलरी कोर कायम की। कहने की आवश्यकता नहीं कि इसी कोर ने गत महायुद्ध के समय में बड़ी बहादुरी दिखलाई थी। अपनी प्रजा को शिक्षित करने के लिये आपने दरबार हायस्कूल खोला। इसके कुछही समय बाद 'जसवंत कालेज' की स्थापना हुई। आप स्त्री-शिक्षा के भी पक्षपाती थे। आपने अपने

राज्य में कन्या-पाठशाला भी खोली थी। सरदारों की पढ़ाई के लिये आपने 'नोबल-स्कूल' भी स्थापित किया था। इन्हीं सब प्रजा-हित कार्यों के लिये भारतसरकार ने आपको जी० सी० एस आई की उच्च उपाधि से विभूषित किया था। ई० स० १८७७ के दिल्ली दरबार में आपकी सलामी की तोपें १७ से बढ़ाकर १९ कर दी गई। फिर एक साल बाद १९ से २१ कर दी गई।

महाराजा जसवंतसिंहजी बड़े उदार, दानी और बड़े विद्या-प्रेमी थे। विद्वानों की आप बड़ी कद्र करते थे। सुप्रख्यात कविराज मुरारदानजी को 'यशो भूषण' नामक पुस्तक लिखने पर एक लाख रुपयों का इनाम प्रदान किया था। आपका स्वर्गवास ई० स० १८९५ में होगया।

महाराजा सरदारसिंहजी

महाराजा जसवंतसिंहजी के बाद उनके पुत्र महाराजा सरदारसिंहजी ई० स० १८९५ में गद्दीनशीन हुए। पर इस समय आप नाबालिग थे। इससे राज्य सूत्र-संचालन का कार्य आपके चाचा सर प्रतापसिंहजी को सौंपा गया। ई० स० १८९८ में महाराजा सरदारसिंहजी को पूर्ण राज्याधिकार प्राप्त हुए। इनके एक साल बाद ही संवत् १९५६ (ई० स० १९००) में भयंकर अकाल पड़ा। सारे भारत में त्राहि २ मच गई। महाराजा सरदार सिंहजी ने इस समय प्रजा-कष्ट मिटाने का भरसक यत्न किया। आपकी सहायता के कारण हजारों मनुष्यों के प्राण बच गये। सहस्र २ मनुष्यों के लिये अन्नदान का प्रबंध किया।

ई० स० १९०३ में महाराजा सरदारसिंहजी दिल्ली दरबार में पधारे। ई० स० १९०२ में आप जी० सी० एस० आइ की उपाधि से विभूषित किये गये।

आपके समय में राज्य में कई उल्लेखनीय सुधार हुए। राज्य-संचालन-सूत्र बड़ी योग्यतापूर्वक चलाया गया। प्रजा-सुख के विशेष साधन उपस्थित किये गये। ई० स० १९११ में न्यूमोनियाँ से आपका शरीरान्त हो गया। इस समय प्रजा में जैसा घोर विषाद छा गया था, वह अवर्णनीय है। इस ग्रन्थ का लेखक उस समय जोधपुर ही में था। उस समय उसने प्रजा के उमड़ते हुए शोक का जो दृश्य देखा था, उसकी दुःखमय स्मृति उसके हृदय में अभी तक विद्यमान है।

महाराजा सुमेरसिंहजी

महाराजा सरदारसिंहजी के स्वर्गवासी होने के पश्चात् महाराजा सुमेरसिंहजी राज्यासन पर बिराजे। जिस समय आप गद्दीनशीन हुए उस समय आपकी अवस्था केवल १४ वर्ष की थी, अतएव मारवाड़ राज्य में फिर दुबारा रिजेंसी बैठने का अवसर आया। इस रिजेंसी के प्रेसिडेन्ट महाराजा प्रतापसिंहजी नियुक्त हुए।

महाराजा सुमेरसिंहजी विद्याभ्यास के लिये इंगलैण्ड पधारे थे। आप जिस समय विलायत में थे उस समय जोधपुर में राज्य-प्रबंध का नया ढंग किया गया। शहर में बिजली का कारखाना खोला गया। वकीलों की परीक्षाएँ नियत की गईं। चीफ़ कोर्टस् खोले गये।

संसार-प्रसिद्ध युरोपीय महाभारत में श्रीमान् महाराजा साहब ने अच्छी सहायता प्रदान की थी। आप स्वयं भी फ्रान्स के रण-क्षेत्र में पधारे थे। वहाँ ९ माह युद्ध में रहकर आप वापस जोधपुर लौट आये थे। ई० स०

१९१४ में आप गवर्नमेंट-सेना के आनरेरी लेफ्टिनेंट बनाये गये थे। ई० स० १९१५ में तीसरी स्किनर्स हौर्स सेना के अफिसर भी नियुक्त हुए थे।

आपने बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी को २ लाख रुपया प्रदान किया। साथ ही २४ हजार रुपया सालाना प्रोफेसर के वेतन के किये निश्चित किया, जिससे इंजिनियरिंग प्रोफ़ेसर का वेतन दिया जाता है।

१९ वर्ष की अवस्था हो जाने पर आपको राज्यका सारा कारोबार सौंप दिया गया। आपने अपने राज्यकाल में जोधपुर में एक सरदार-म्युजियम नामक अजायब घर खोला था। जोधपुर की प्रजा के लिये 'सुमेर-पबलिक-लायब्रेरी' नामक एक विशाल वाचनालय भी खोला था। ई० स० १९१८ में युद्ध की सेवाओं से प्रसन्न होकर महाराजा साहब को K. B. E. की उपाधि प्रधान की गई।

आपके राज्य-काल में जोधपुर में प्लेग की भयंकर बीमारी फैली थी। उस समय आपने लोगों के लिये नगर के बाहर सरकारी मकान खाली करवा दिये थे। अनाज़ की मँहगी के कारण सैकड़ों प्रजाजनों को तकलीफ होती थी अतएव सस्ता अनाज बिकवाने के लिये आपने सरकार की ओर से दूकानें खुलवाई थीं।

ई० स० १९१८ में इन्फ्लूएंजा की बीमारी के कारण आपका केवल २१ वर्ष की अवस्था में देहान्त हो गया। छोटी अवस्था में भी आप बड़े साहसी, निर्भीक, वीर एवं चतुर थे। प्रजा पर आपका बड़ा प्रेम था।

महाराजा उम्मेदसिंहजी

महाराजा सुमेरसिंहजी के कोई पुत्र न था अतएव आपके भाई महाराजा उम्मेदसिंहजी सिंहासनारूढ़ हुए। सिंहासन पर बैठते समय आपकी भी अवस्था केवल १६ वर्ष की थी। अतएव फिर तीसरी वक्त कौन्सिल आफ़ रीजेन्सी की स्थापना हुई। फिर भी महाराजा प्रतापसिंहजी ही कौन्सिल के प्रेसिडेन्ट मुक़र्रर हुए।

महाराजा उम्मेदसिंहजी की पढ़ाई अजमेर के मेयो कालेज में हुई थी। ई० स० १९२१ में गवर्नमेंट ने महाराजा की सलामी १७ तोपों से बढ़ाकर १९ कर दी। आपका विवाह ढींकाई के ठाकुर साहब की कन्या के साथ हुआ है। सन् १९२१ में ड्यूक आफ़ कनाट जोधपुर पधारे थे उस समय आपने उनका अच्छा सत्कार किया।

सन् १९२२ में महाराजा साहब ने कौन्सिल में बैठकर काम देखना शुरू किया और कुछ ही समय बाद कुछ महकमों का भी कार्य आप की देख-रेख में होने लगा। इसी वर्ष गवर्नमेंट सरकार ने आपको K. C. V O. की उपाधि प्रदान की।

सन् १९२३ में महाराजा साहब ने सम्पूर्ण राज्य-भार अपने ऊपर ले लिया। आपने अपने राज्य को सुचारु रूप से चलाने के लिये रीजेंसी कौन्सिल को बदल कर उसके स्थान पर स्टेट कौंसिल की नियुक्ति की। उसके चार मेम्बर बनाये गये। वही पद्धति इस समय भी चल रही है।

महाराजा साहब को पोलो और शिकार खेलने का बड़ा शौक है। मारवाड़ की पोलो-टीम ने अनेक स्थानों से कप प्राप्त किये हैं। यहाँ तक कि

इंग्लैण्ड में भी मारवाड़ की पोलो-टीम ने अच्छी ख्याति प्राप्त की है। मारवाड़ ही की टीम ने सन् १९२४ में कलकत्ते के प्रसिद्ध वाईसराय कप को जीता था।

आपके दो बहिनें एवम् एक छोटे भाई हैं। बहनों का विवाह क्रमशः रींवा के महाराजा गुलाबसिंहजी और जयपुर के महाराजा मानसिंहजी के साथ हुआ है। आपके छोटे भाई अजीतसिंहजी भी बड़े होनहार व्यक्ति हैं। आपका विवाह इसरदे के ठाकुर साहब की कन्या के साथ हुआ है। इनके सिवाय महाराजा साहब के दो राजकुमार भी हैं।

मारवाड़ राज्य का विस्तार ३५०१६ वर्गमील है। इस राज्य की मनुष्य संख्या १८,४१,६४२ है। इस राज्य में कोई नदी ऐसी नहीं है जो बारहों मास बहती हो। इस राज्य की आमदनी विस्तार के हिसाब से बहुत कम है। कारण इसका यह है कि इसका पश्चिमीय भाग बहुत बंजर और रेतीला है। फिर भी इसकी आमदनी १२००००००) रुपया है। खर्च सालाना ५२००००००) के करीब होता है।

गवर्नमेंट १०८०००) रुपया सालाना लेती है। इसके अलावा ऐरनपुरा रेजीमेंट, इम्पीरियल सर्विस रिसाले आदि के लिये क्रमशः ११५०००) और २५६४७२८) के करीब खर्च होते हैं।

महाराजा साहब बड़े उदार हैं। आपका प्रजा पर बड़ा प्रेम है। आप हमेशा उसके हित के कार्य करते रहते हैं।
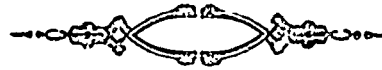
भरतपुर राज्य का इतिहास

HISTORY OF THE BHARATPUR STATE.

हिज हाइनेस महाराजा श्री ब्रजेन्द्र सवाई किशन सिंह बहादुर, बहादुर जङ्ग भरतपुर।

महाराजा भरतपुर जाट वंश के हैं। जाट वंश की उत्पत्ति के लिये भिन्न भिन्न विद्वानों की भिन्न भिन्न राय है। कुछ पाश्चात्य विद्वानों ने इनकी उत्पत्ति इन्डो सीथियन्स से बतलाई है और लिखा है कि कई विदेशी जातियों की तरह जाट भी मध्य एशिया से आकर हिन्दुस्तान में बस गये और धीरे २ हिन्दु जाति ने इन्हें अपने में मिला लिया। पर आधुनिक ऐतिहासिक अन्वेषणों ने उक्त मत को भ्रम पूर्ण सिद्ध कर दिया है। सुप्रख्यात् डॉक्टर ट्रम्प और बीम्स ने इनकी उत्पत्ति विशुद्ध आर्यवंश से मानी है (Memoirs of the races of North-Western Provinces of India) सर हर्बर्ट रिसली ने अपने People of India नामक ग्रंथ में ऐतिहासिक और भौतिक प्रमाणों के आधार पर जाटों को विशुद्ध आर्य्य जाति के सिद्ध करने की सफल चेष्टा की है। महामति कर्नल टॉड साहब ने शिलालेखों के आधार पर यह प्रगट किया है कि ईसवी सन् ४०९ में भारतवर्ष में जाट जाति के राज्यवंश का अस्तित्व था। महाभारत में जत्रि नामक लोगों का वर्णन है। सर जेम्स केम्बेल और ग्रियर्सन उक्त लोगों को जाट ही ख्याल करते हैं। और भी कितने ही विख्यात् विद्वानों ने जाटों को विशुद्ध आर्य वंश के स्वीकार किये हैं। अरब इतिहासकारों तथा भूगोलवेत्ताओं ने भारतीय ऐतिहासिक युग के प्रारम्भिक काल में जाटों को भारतवर्ष में बसते हुए पाया है (Elliots History of India)। यहाँ यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि भारतवर्ष में अरब लोगों का सब से प्रथम सम्बन्ध जाटों ही से पड़ा था और वे सारे हिन्दुओं के जाट ही के नाम से

सम्बोधित करते थे। कई फारसी तवारीखों में भी जाट जाति के विस्तार का और उसके वीरत्व का उल्लेख किया गया है। कहने का मतलब यह है कि जाट आर्य्यवंश के हैं और प्राचीनकाल में उनकी भारतवर्ष में बस्ती होने के ऐतिहासिक उल्लेख मिलते हैं। यह भी पता चलता है कि उस समय ये क्षत्रियों की तरह उच्च वंशीय माने जाते थे। पर सामाजिक मामलों में अधिक उदार होने के कारण ये ब्राह्मणों की आखों में खटकने लगे और उन्होंने इनका जातीय पद नीचे गिराने का यत्न किया। अब हम जाट जाति के प्राचीन इतिहास पर अधिक न लिखकर औरंगजेब के समय के जाटों की स्थिति पर ही कुछ प्रकाश डालना चाहते हैं क्योंकि वहीं से भरतपुर राज्य की उत्पत्ति का प्रारंभ है।

औरंगजेब के समय में जाट

पाठक जानते हैं कि दुर्दान्त मुगल सम्राट् औरङ्गजेब ने संसार को प्रकाशित करनेवाली आर्य्य सभ्यता और आर्य्य संस्कृति के नाश पर कमर बाँधी थी। उसने सारे भारतवर्ष को इसलाम धर्म में दीक्षित कर हिन्दू जाति और हिन्दू धर्म का नामोनिशान मिटा देने के लिये दृढ़ संकल्प कर लिया था। हिंन्दू-मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करना—हिन्दुओं के पवित्र ग्रन्थों को जला भुनाकर खाक़ करना उसका दूसरा स्वभाव सा पड़ गया था। हिंदुओं पर उसने जिजिया कर बैठाया। शाही हुक्म से उसने मूर्तियाँ तुड़वाईं। भव्य मंदिरों के स्थान पर उसने मसजिदें बनवाईं। उसने हिंदुओं को सरकारी नौकरियों से हटा दिया। उसने एक फर्मान निकाल कर अपने माल विभाग (Revenue Department) से सारे हिन्दू क्लर्कों को बर्खास्त कर दिया। हिन्दू धार्मिक मेलों को उसने कतई रोक दिया। हिंदुओं को अपने त्यौहार मनाने से मना कर दिया। मुसलमानों के लिये उसने सायर महसूल कतई माफ़ कर दिया और हिन्दुओं पर और भी अधिक बढ़ा दिया। वह इतने ही से सन्तुष्ट न हुआ। उसने इसलाम धर्म स्वीकार करने से इन्कार करने

वाले बहुत से हिन्दुओं को तलवार के घाट उतार दिया !! कितनों ही को हाथी के पैरों के नीचे कुचलवा दिया !! कितनों ही की आखें निकलवा लीं!! मतलब यह कि इस समय चारों ओर से हिन्दुओं पर अत्याचार और जुल्मों का दौर दौरा होने लगा। हाहाकार मच गया। इसका वही परिणाम हुआ जो होना चाहिये था। इसका वर्णन आगे चलकर पाठकों को मिलेगा।

भारतवर्ष में राष्ट्रीयता का उदय

एक दृष्टि से उक्त अत्याचारों के द्वारा औरंगजेब ने हिन्दू जाति पर बड़ा उपकार किया। वह सदियों से सोयी हुई थी। सम्राट् अकबर की कुशल नीति ने इस नींद को और भी गहरी करदी थी। औरंगजेब ने इस विशाल-काय जाति को जगा दिया। उसमें नवजीवन और स्फूर्ति पैदा करने का वही कारण हुआ। इन अत्याचारों के खिलाफ महाराष्ट्र में एक नवीन शक्ति का उदय हुआ। उसने सारे भारतवर्ष को अलोकित कर दिया। सारे महाराष्ट्र में नवजीवन की जाज्वल्यमान प्रकाश किरणें दिखने लगीं। उधर पंजाब में शांति प्रिय सिक्ख धर्मबीर धर्म में परिवर्तित हो गया। गुरु गोविंदसिंह की अधीनता में सिक्खों ने औरङ्गजेब के खिलाफ़ तलवार उठवाई। उन्होंने निश्चय किया कि उसे (औरङ्गजेब) जैसा का तैसा जवाब दिया जाय। धर्मोन्माद का मुकाबला धर्मोन्माद से किया जावे। इसी भावना को लेकर पंजाब में शान्तिप्रिय सिक्ख लोग एक प्रबल सैनिक और विशिष्ट जाति के रूप में परिवर्तित हो गये। उधर राज-पूत ज.ति की भी आँखें खुलीं क्योंकि उसने भी देखा कि औरङ्गजेब उन पर अपने क्रूर हाथ साफ़ करना चाहता है और महाराजा जसवन्तसिंहजो की रानी और नाबालिग पुत्र को कैद करने का प्रयत्न कर उसने इस बात का प्रमाण दे दिया है। इसी प्रकार बीभत्स अत्याचारों से तंग आकर भारतवर्ष की बहादुर जाट जाति ने भी मुगल सम्राट् के खिलाफ विद्रोह का झण्डा उठाया। मथुरा और आगरा के जाट किसान उक्त अत्याचारी सम्राट्

के कारण बेतरह तंग और परेशान हो गये थे । उन्हें उसके जुल्मों का बुरी तरह शिकार होना पड़ा था । उनकी औरतें और बच्चे उड़ाये जाने लगे थे । अनेक ललनाओं को मुसलमानों की काम-वासना का शिकार होना पड़ा था । मथुरा का सूबेदार मुर्शिदकुली खाँ गावों पर हमला कर सुन्दर ललनाओं को ले जाया करता था । दूसरी घृणित प्रथा यह थी कि जब कोई हिन्दू मेला लगता था तो यह मनुष्य-रूप-धारी राक्षस हिन्दु का वेष पहन कर मेले में घूमता और ज्योंही इसे चन्द्रमुखी सुन्दर हिन्दू रमणी दिखलाई दी कि वह उस पर झपट कर उसे उड़ा ले जाता था और पास ही यमुना नदी में नाव पर बैठकर आगरे भाग जाता था ।(Sarkar's History of Aurangzeb III 332)

इसके थोड़े ही दिनों के बाद औरंगजेब ने अकुलनबी नामक एक मुसलमान को मथुरा का शासक नियुक्त किया । इसने हिन्दुओं के मन्दिर नष्ट भ्रष्ट करना शुरू किया । उसने अपने मालिक औरङ्गजेब की तरह हिन्दुओं की मूर्तियों का नामो निशान मिटाने का निश्चय कर लिया । धर्म-प्राण जाट लोगों ने इसका मुकाबला किया । ईसवी सन् १६६६ में दोनों की लड़ाई हो गई । इस समय जाटों का नेता गोकल था । इसने सादाबाद का परगना लूट लिया । इसके बाद औरङ्गजेब ने और उसके हसनअली खां प्रभृति सेना-नायकों ने जाटों पर चढ़ाई करने के लिये एक अति प्रबल सेना के साथ कूच किया । हसनअली खाँ ने जाटों के तीन गांवों पर जोर के हमले किये। जाटों ने अद्भुत पराक्रम और वीरत्व के साथ शत्रु सेना का प्रतीकार किया । अल्प संख्यक वीर जाटों के मुकाबले में शत्रु सेना असंख्य थी । जब जाटों ने लड़ते लड़ते धैर्य्य और वीरत्व की पराकाष्ठा कर दी। जब उन्हें विजय की आशा न रही तब उन्होंने अपने स्त्री बच्चों को मारकर मुगलों पर जोर का हमला कर दिया । उन्होंने ४००० मुगलों को तलवार के घाट उतार दिया । पर आखिर में विशाल मुगल सेना के सामने इन्हें विजयश्री प्राप्त न हुई । जाट नेता गोकल पकड़ा गया । औरङ्-

जेब ने इसे जिस क्रूरता के साथ मरवाया उसे देखकर राक्षस भी सहम जावे। आगरे के पुलिस ऑफिस के प्लेटफार्म पर उसकी हड्डियां पसलियाँ एक एक करके तोड़ी गईं। उसकी बोटी बोटी कर दी गई। क्रूरता और अमानुषिकता की हद हो गई। पर वीरवर गोकल का यह खून व्यर्थ न गया। उसने वीर जाटों के हृदय में स्वाधीनता के सुमधुर बीज का रोपण कर दिया। इस बलिदान ने जाट जाति के दिल में अनुपम साहस और स्वार्थत्याग के सद्गुणों का अपूर्व विकास कर दिया। उसमें जागृति के प्रकाश-चिन्ह चमकने लगे।
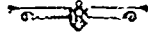
राजाराम

गोकल की मृत्यु के पन्द्रह वर्ष बाद एक अधिक शक्तिशाली और योग्य जाट नेता का उदय हुआ। इसका नाम राजाराम था। इसने जाटों की बिखरी हुई सेना को सुसङ्गठित किया। सेना में नियम-बद्धता का तत्व प्रयुक्त किया। उसे अच्छे और नये शस्त्रों से सुसज्जित किया। धीरे धीरे उसने अपनी ताकत अच्छी बढ़ा ली। इसका परिमाण यह हुआ कि उसने आगरा जिले में मुगल हुकूमत का एक तरह से अन्त कर दिया। उसने मुगल सलतनत के कई गांव लूट लिये। आगरे के मुगल गवर्नर शफीखां पर उसने घेरा डालकर बहुत तंग किया। धोलपुर के पास उसने सुविख्यात् तुराणी वीर अगरखाँ के मुकाम पर अकस्मात् हमला कर उसकी गाड़ियां घोड़े और सैनिक तथा सामान लूट लिया। खाँ ने हमला करने वालों का पीछा किया, जिसमें वह अपने अस्सी साथियों के साथ मारा गया।

ईसवी सन् १६८७

इसके बाद औरङ्गजेब ने विदारबख्त को राजाराम के खिलाफ भेजा। पर उसके अपने लक्ष्यस्थल पर पहुँचने के पहले ही राजाराम ने बहुत उधम

मचा दिया। ईसवी सन् १६८८ के आरंभ में हैदराबाद का मीर इब्राहीम (महावत खाँ) सम्राट् के प्रतिनिधि (Viceroy) की हैसियत से पंजाब जा रहा था। जमुना किनारे सिकन्दरा के पास उसने अपना मुकाम किया। राजाराम ने वहां पर हमला कर दिया। बड़ी भीषण लड़ाई हुई। इसमें राजाराम को कामयाबी नहीं हुई। इसके बाद उसने अकबर के मकबरा को लूटकर वहां का बहुत सा कीमती सामान लूट लिया। इमारत को भी हानि पहुँचाई। ईसवी सन् १६८८ की ४ जुलाई को शेखावतों और चौहानों की एक लड़ाई में हिस्सा लेते हुए वह मारा गया।

भाजासिंह

राजाराम के मारे जाने के बाद उसके बुड्ढे पिता भाजासिंह ने जाटों का नेतृत्व स्वीकार किया। इसी समय मुगल सम्राट् ने जाटों को नेस्त नाबूद करने के लिये आंबेर के नये राजा बिशनसिंह कच्छवा को नियुक्त किया। बिशनसिंह ने मुगल सम्राट् से जाटों का प्रख्यात् सिनसानी किला नष्ट भ्रष्ट करने की लिखित प्रतिज्ञा की थी। राजा बिशनसिंह की हार्दिक अभिलाषा यह थी कि वे अपने दादा मिर्जा राजा जयसिंह की तरह मुगल सम्राट् द्वारा सम्मानित हों और उन्हें भी ऊँचे दर्जे के मन्सब का सम्मान प्राप्त हो। कहना न होगा कि राजा बिशनसिंह को जाटों के देश पर हमला करने में अकथनीय कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। जाटों ने उन्हें बहुत तंग किया। कई तरह से जाट सेना मुगल सेना पर रात में आक्रमण करने लगी। समुचित खाद्य सामग्री न मिलने के कारण मुगल सेना को बड़ा कष्ट सहना पड़ा। क्योंकि जाटों ने मुगलों के लिये खाद्य सामग्री आने के मार्ग में बड़ी २ बाधाएं उपस्थित कर दी थीं। पर राजा बिशनसिंह हिम्मत न हारे। वे बड़ी

दृढ़ता से अपने उद्देश को पूरा करने में लगे रहे। कोई चार मास के अर्से में वे बढ़ते बढते किले के पास पहुँच गये। वहां उन्होंने अपनी खाइयाँ खोद लीं। तोपे चढ गई तथा सुरंगे लगादी गईं। आस पास का जंगल साफ कर दिया गया। मुगल सेना ने किले के दरवाजे के पास सुरंग को लगाया, पर जाटों ने उसके मार्ग को पत्थर से बन्द कर दिया था, इससे किले की हानि नहीं हुई। बहुत से मुगल सैनिक तथा अफसर जलकर खाक हो गये। इस पर फिर दूसरी सुरंग लगाई गई। इस किले की दीवार टूट गई और उस पर के जाट लोग बारुद से उड़ गये। तीन घण्टे के बाद मुगलों ने उस बर जोर का हमला कर दिया। जाटों ने बड़ी बहादुरी के साथ उसका प्रति-वार किया। एक एक इंच भूमि के लिये वे लड़े। इसमें सब मिलाकर उनके १५०० आदमी मारे गये। मुगल भी साफ न बचे। उनके भी ८०० सैनिक मारे गये। पर इस समय विशाल मुगल सेना के आगे जाटों को तितर बितर होना पड़ा।

इसके दूसरे साल अर्थात् ईसवी सन् १६९१ में राजा बिशनसिंह ने सागोर के सुदृढ जाट किले पर हमला किया। दुर्दैव से इसी समय खाद्य सामग्री आने के लिये उक्त किले का दरवाजा खुला रक्खा गया था। इससे आक्रमणकारी उसमें बड़ी आसानी से घुस गये और वहाँ उन्होंने बहुत से जाटों को अमानुषिक क्रूरता के साथ कत्ल कर डाला और लगभग ५०० को गिरफ्तार कर लिया। कहना न होगा कि इससे जाट शक्ति को बड़ा जबर्दस्त धक्का लगा। इससे कुछ समय तक जाट लोगों ने युद्ध-कार्य को छोड़कर शांतिप्रिय कृषि-कार्य्य स्वीकार किया।

चूड़ामण जाट

भजासिंह की मृत्यु के बाद उनका पौत्र और राजाराम का भतीजा चुड़ामण जाट ने जाटों का नेतृत्व स्वीकार किया। प्रो० यदुनाथ सरकार के मतानुसार इसमें संगठन करने की अद्भुत प्रतिभा शक्ति थी। यह प्राप्त अवसर से लाभ उठाना खूब जानता था। इसमें जाट जाति की सुदृढ़ता और मराठा जाति की राजनीतिक बुद्धिमता और चतुराई का अद्भुत सम्मेलन हुआ था। राजनीति में वह सरासर का विचार नहीं देखता था। किस तरह जाट जाति का प्रभुत्व बढ़े यही उसका ध्येय था। कहना न होगा कि इसने जाट शक्ति को जाज्वल्यमान किया। उसे ऐसा बना दिया, जिससे मुगल सम्राट् तक भय खाने लगे थे। उस समय सारे देश में इसका दबदबा छा गया था। इसने मुगल सेना को किस प्रकार तंग किया और वह किस प्रकार शक्ति-सम्पन्न हुआ इसका विस्तृत उल्लेख हम "जयपुर राज्य के इतिहास" में कर चुके हैं। पाठक वहाँ इसका वृतान्त पढ़ने की कृपा करें।

जाट शक्ति का विस्तार

भरतपुर राज्य घराने के मूल पुरुष
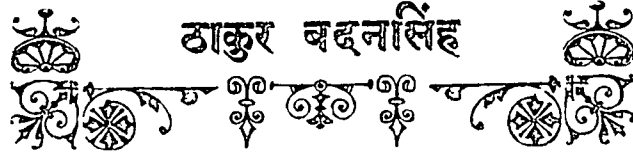
ठाकुर बदनसिंह

ठाकुर बदनसिंह चुड़ामण जाट के भतीजे थे। ये आँबेर के सवाई राजा जयसिंहजी के पास बतौर Feudatory chief के रहे थे। सवाई महाराजा जयसिंहजी ने इन्हें सम्राट् महम्मदशाह के जमाने में चुड़ामण जाट की जमीन और उपाधियाँ प्रदान की थीं। ये बड़े सत्य और शान्ति-प्रिय थे। लुटेरे सरीखा जीवन व्यतीत करना इनके स्वभाव के विरुद्ध था। इन्होंने एक नियमबद्ध शासक की तरह राज्य किया। इन्होंने बड़े सुसंगठित रूप से अपने राज्य का विस्तार और दृढ़ीकरण किया। ये जाट जाति की उच्छृंखल प्रकृति को बदल कर उसे नियमबद्ध बनाने में बहुत कुछ सफल हुए। इन्होंने नियमबद्ध शासन का आरंभ किया। विधायक कार्य्य-क्रम के द्वारा इन्होंने अपनी सत्ता को मजबूत किया और अपने आपको आँबेर की अधीनता से स्वतन्त्र कर दिया। इनकी बढ़ती हुई ताकत को देखकर आँबेर के तत्कालीन महाराजा ने १८ लाख रुपया प्रति साल आमदनी की जमीन देकर इन्हें प्रसन्न किया। सब से बड़ा और उल्लेखनीय कार्य आपने यह किया कि प्रायः सारे आगरा और मथुरा के जिलों में अपनी राज्यसत्ता स्थापित की। आपने उक्त जिलों के शक्तिशाली जाट कुटुम्बों के साथ अपना विवाह सम्बन्ध प्रस्थापित किया। इससे भी आपकी राजनैतिक सत्ता को बड़ी सहायता मिली। आपकी बढ़ती हुई शक्ति को देखकर भारतवर्ष के कई राजा आपको 'राजा' के नाम से सम्बोधित करते थे। महाराजा सवाई

जयसिंहजी ने आपको अपने इतिहास प्रसिद्ध 'अश्वमेध यज्ञ' में निमन्त्रित किया था।

राजा बदनसिंहजी का दरबार बड़ा आलीशान था। आपको कला-कौशल का बड़ा शौक था। सौन्दर्य परीक्षण की भावना आपमें बहुत जागृत थी। भव्य इमारतें बनवाने का आपको बड़ा शौक था। आपने कई भव्य महल और बगीचे बनवाये। आपने कई भव्य महलों के द्वारा डीग के किले को सुशोभित किया। बयाना जिले के वायर गाँव के किले में आपने एक महान उद्यान बनाकर उसके मध्य में एक बड़ा ही सुन्दर सरोवर बनवाया।

राजा बदनसिंहजी अपनी वृद्धावस्था में राजकार्य्य से अवसर ग्रहण कर ईश्वर भजन करने लगे। उनके वीर, सुयोग्य और प्रतिभाशाली पुत्र सूरजमलजी राज्य-कार्य्य देखने लगे। ईसवी सन् १७५६ की ७ जून को आपका परलोकवास हो गया।

राजा सूरजमलजी

राजा बदनसिंहजी के परलोकवास होने के बाद राजा सूरजमलजी भरतपुर के राज्य-सिंहासन पर बिराजे। ये महान वीर, राजनीतिज्ञ, दूरदर्शी और प्रतिभासम्पन्न महानुभाव थे। इनका नाम न केवल भरतपुर राज्य के इतिहास में नहीं वरन् भारतवर्ष के इतिहास में अपना विशेष महत्त्व रखता है। ये भारतवर्ष के एक ऐतिहासिक महापुरुष हैं। जिन महानुभावों ने अपने वीरत्व व चतुराई से भारतवर्ष के इतिहास को बनाया है, उनमें सुरजमलजी का आसन ऊँचा है।

सूरजमलजी लम्बे चौड़े और बदन से बड़े हट्टे-कट्टे थे। श्याम रंग के होने पर भी वे बड़े तेजस्वी दिखलाई पड़ते थे। आपको पुस्तक ज्ञान विशेष न था, पर संसार में सफलता प्रदान करनेवाले व्यवहारिक ज्ञान की आप में कमी न थी। एक सुप्रख्यात् इतिहास-वेत्ता लिखता है—"राजा सूरजमलजी की राज्यनैतिक क्षमता अद्भुत थी—उनकी बुद्धि बड़ी तीव्र और बड़ी साफ थी।" एक फारसी इतिहास-वेत्ता का कथन है;—"यद्यपि राजा सुरजमल किसानों की सी पोषाक पहनते थे और अपनी देहाती व्रजभाषा बोलते थे, पर वे जाट जाति के प्लेटो थे"। बुद्धिमत्ता और चतुराई में माल सम्बन्धी और दीवानी मामलों की व्यवस्था करने में सुरजमलजी अपना सानी न रखते थे। उनमें उत्साह था, जीवन-शक्ति थी, काम के पीछे लगने का दृढ़ आग्रह था और सबसे बड़ी बात यह थी कि उनका मन एक लोहे की दीवाल की तरह मजबूत था, जो हार खाना जानता ही न था। कूट-नीति और षड्यन्त्रों की सृष्टि में वे मुगलों और मराठों से आगे पैर रखते थे। अपने पिता राजा बदनसिंहजी की जीवितावस्था में सुरजमलजी ने सब से प्रथम जो साहस-पूर्ण कार्य्य किया, वह भरतपुर के किले पर अधिकार करना था। यह घटना ईसवी सन् १७३२ की है। इस समय यह किला मिट्टी का बना हुआ छोटा सा मकान था। सूरजमलजी ने उसे एक विशाल और सुदृढ़ किले में परिणित कर दिया। कहना न होगा कि इस किले के पास भरतपुर शहर बसाया गया। सूरजमलजी का शासन न्यायपूर्ण था, अतएव लोगों का उनकी ओर स्वाभाविक आकर्षण हुआ। अब हम सुरजमलजी की कारगुजारी पर दो शब्द लिखना चाहते हैं।

सूरजमलजी और जयपुर नरेश ईश्वरीसिंहजी

पाठक जानते हैं कि राजा बदनसिंहजी और सुरजमलजी के साथ जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंहजी का घनिष्ट संबन्ध था। जब महाराजा सवाई जयसिंहजी का देहान्त हो गया तो उनके बड़े पुत्र राजा ईश्वरीसिंहजी

राज्यासीन हुए। इस पर उनके छोटे भाई माधवसिंहजी ने झगड़ा उठाया और यह दावा किया कि सवाई जयसिंहजी की शिशोदिया वंश की रानी से उत्पन्न होने के कारण वे ही राज्य के असली हकदार हैं। कहना न होगा कि माधवसिंहजी का पक्ष और भी कई राजाओं ने लिया। इन्दौर के मल्हार-राव होलकर, गंगाधर ताँतिया, मेवाड़ के महाराणा, आदि ईश्वरीसिंह पर चढ़ आये। सुरजमलजी ईश्वरीसिंहजी ही को राज्य के असली वारिस समझते थे। अतएव उन्होंने अपनी जाट सेना सहित ईश्वरीसिंहजी का पक्ष ग्रहण किया। ई०सन् १७४९ में दोनों सेनाओं का बगेरू मुक़ाम पर मुकाबला हुआ। एक ओर तो सात राजा थे और दूसरी ओर केवल राजा ईश्वरीसिंहजी और सुरजमलजी। कहने का मतलब यह कि बराबरी की जोड़ न थी। आँबेर की फौज के अगले हिस्से के सेनापति सिकर के शिवसिंहजी थे। सुरजमलजी सेना के मध्य भाग को संचालित करते थे। पीछले भाग के सेनापतित्व का भार खुद राजा ईश्वरीसिंहजी ने लिया था। बड़ा घमासान युद्ध हुआ। पहले दिन कोई अंतिम निर्णय प्रकट नहीं हुआ। किसी पक्ष की हार-जीत न हुई। दूसरे दिन जयपुर की सेना के एक सेना नायक सिकर-अधिपति मारे गये। तीसरे दिन विजयोन्मत्त शत्रुओं ने फिर जोर से हमला किया। आँबेर की फौज भी मुकाबले के लिये तय्यार हो गई। इस दिन सेना के आगे के भाग का सेनाप-तित्व सुरजमलजी को दिया गया। निरन्तर घोर वर्षा होते रहने पर भी इस दिन बड़ा ही भीषण और घमसान युद्ध हुआ। इस दिन ईश्वरीसिंहजी बड़े निराश हो गये। उनकी सेना पर कई तरफ से जोर के हमले होने लगे। बड़ी कठिन परिस्थिति हो गई। ऐसे समय में राजा ईश्वरीसिंहजी ने राजा सुरजमलजी को गंगाधर तांतिया की फौज पर हमला करने के लिये कहा। सुरजमलजी ने एक क्षण की भी देरी न करते हुए गंगाधर की फौज पर अकस्मात् हमला कर दिया। दो घण्टे तक बड़ा भीषण युद्ध हुआ। खून की नदियाँ बह चलीं। बूँदी के कवि सुरजमल ने अपने 'वंश भास्कर' में लिखा है कि सुरजमलजी ने अपने अकेले हाथों से विपक्षी दल के ५० आदमियों को मारा

और १०८ को घायल किया। सुरजमलजी की विजय हुई। घोर निराशा में आशा की प्रकाशमान किरणें चमकने लगीं। बुँदी के सुरजमल कवि ने जाट नेता सुरजमलजी को इस विजय का श्रेय देते हुए लिखा है—

> "सह्यो भले ही जट्ठिनी, जाय अरिष्ट अरिष्ट।
> जाठर रस रविमल्ल हुव, आमेरन को इष्ट॥
> बहुरि जट्ट मलहार सन, लरन लग्यो हरवल्ल।
> अंगद है हुल्कर, जाट, मिहर मल्ल प्रतिमल्ल॥

चौथे दिन फिर युद्ध हुआ और दो दिन तक चलता रहा इस वक्त विपक्षी दल की सेनाएँ थक गईं। मराठों ने सुलह के लिये प्रस्ताव किया और माधवसिंहजी को इस वक्त अपने उन्हीं पांच परगनों से संतोष करना पड़ा, जो उन्हें दिये गये थे।

सूरजमलजी और मुगल

सम्राट् अहमदशाह के जमाने में सादतखाँ, अमीर-उल उमरा, जुल-फिकर-जंग आगरा और अजमेर का शासक (Governor) नियुक्त किया गया। यह आगरा के आसपास के जाट मुल्क पर फिर से अधिकार करना चाहता था। उसने १५००० सवारों की एक अच्छी सुसज्जित सेना के साथ कूच किया। वह यथा समय राजा सूरजजलजी के राज्य के उत्तरीय हिस्से तक पहुँच गया। सूरजमलजी भी बेखबर नहीं थे। वे मुगल सेना की गति-विधि को खूब गौर से देख रहे थे। मुगल सेना के कुछ लोगों ने एक छोटे से किले के सैनिकों के साथ झगड़ा खड़ा कर दिया और उन्हें वहाँ से निकाल दिया। सादतखाँ ने इसे अपनी भारी फ़तह मान ली। उसने विजयोत्सव तक मनाना शुरु कर दिया। इसके बाद फिर वह आगे बढ़ा। सुरजमलजी अपनी सुस-ज्जित सेना सहित मौके पर उपस्थित हो गये। मुगल सेना बेतहाशा भागी, उसका पीछा किया गया। कहना न होगा कि बहुत से मुगल बुरी तरह से

मारे गये। तत्कालीन एक फारसी इतिहासकार का कथन है—"जाट राजा ने अमीर-उल-उमरा को गिरफ्तार करने या मरवाने की दुष्कीर्ति प्राप्त करने की इच्छा प्राप्त न की। उसने मुगल केम्प को दो तीन दिन तक घेरे रहने में ही सन्तोष मान लिया। यह उसकी उदारता थी कि शक्ति के रहते हुए भी उसने अपने दुश्मन के साथ ऐसा अच्छा बर्ताव किया।" इसके पीछे दोनों दलों में सुलह हो गई। मुगल प्रतिनिधि को यह शर्त स्वीकार करनी पड़ी कि वे या उनके मातहत जाट-देश में कोई पीपल का पेड़ न काटने पावे और न वे हिन्दू मन्दिरों को तोड़ें या उनका अपमान करें। कहने की आवश्यकता नहीं कि मुगल साम्राज्य के अमीर-उल-उमरा पर विजय प्राप्त करने से राजा सूरजमलजी का बहुत दबदबा छा गया। उनका आत्म-विश्वास बहुत बढ़ गया। इसके थोड़े ही समय बाद सूरजमलजी विजय पर विजय प्राप्त करते रहे इससे उनकी राज्य विस्तार की महत्वाकांक्षाएँ बहुत बढ़ गई। वे अपने प्राप्त राज्य ही में सन्तुष्ट नहीं थे। वे दिल्ली के आसपास के प्रदेशों पर भी अपनी विजय पताका उड़ाना चाहते थे। इसके लिये वे उपयुक्त अवसर देख रहे थे।

बल्लमगढ़ के जाटों को फरीदाबाद का फौजदार बड़ा तंग करता था। इससे उन्होंने राजा सूरजमलजी की सहायता मांगी। यहां पर प्रसंगवशात् बल्लमगढ़ के जाट जमींदार के लिये दो शब्द लिख देना अनुपयुक्त न होगा। गोपालसिंह नामक एक जाट बल्लमगढ से तीन मील की दूरी पर सिही नामक ग्राम में आकर बसा था। यह मथुरा-दिल्ली सड़क पर लूट मार कर धनवान बन गया था। उसने तैगांव के गुजरों से सहायता प्राप्त कर आसपास के गावों के राजपूत चौधरी को मार डाला था। फरीदाबाद के मुगल शासक मुरतजाखां ने उसे इस अपराध में दण्ड देने के बदले उसे फरीदाबाद परगना का चौधरी नियुक्त कर दिया था। उसे उक्त परगनों की रेव्हेन्यू पर एक आना लेने का हक्क भी प्राप्त हो गया था। गोपालसिंह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र चरणदास उत्तराधिकारी हुआ। उसने जब यह देखा कि आसपास के जिलों

में मुगल सत्ता निर्बल हो रही है, तब उसने उन जिलों की आमदनी मुगल शासक के पास भेजना बन्द कर दिया। इतना ही नहीं उसने मुगल सत्ता को मानने से भी इन्कार किया। इस पर वह गिरफ्तार कर जेल में बन्द कर दिया गया। थोड़े ही दिन बाद उसके पुत्र बलराम ने उक्त मुगल शासक को कुछ दमपट्टी देकर धोखे से अपने बाप को छुड़ा लिया। इसके बाद दोनों बाप बेटे भगकर भरतपुर चले गये। उन्होंने सुरजमलजी जाट की सहायता प्राप्त कर मुगल शासक मुरतजाखां को मार डाला।

मुगल सम्राट के वजीर ने बलराम और राजा सूरजमलजी जाट को उक्त परगनों से अपना अधिकार हटा लेने के लिये बारम्बार लिखा। पर उसे हमेशा कोरा जवाब मिला। इस पर वह बहुत क्रोधित हुआ और उसने जाटों के नाश करने का दृढ़ संकल्प किया। ईसवी सन् १७४९ के जनवरी मास में वह जाटों के खिलाफ रण-मैदान में उतर पड़ा। राजा सूरजमलजी ने भी इसके लिये तैयारी कर ली। उन्होंने सिही के जाटों को शक्ति भर सहायता करने का निश्चय किया। उन्होंने डीग और कोहमीर के किलों को रक्षक स्थान बनाकर ईसवी सन् १७४९ में वजीर के खिलाफ कूच किया। कहना न होगा कि भाग्य ने राजा सूरजमलजी का साथ दिया। इसी समय वजीर को अवध के पास रुहिलों के जबर्दस्त बलवे का सामाचार मिला। इससे वह जाटों को ज्यों का त्यों छोड़कर उधर चला गया। उसने बलवा दबा कर रुहिलों से छिने हुए मुल्क पर निगरानी रखने के लिये अपने नायब नवलराय को नियुक्त कर दिया। इसके बाद वजीर ने जाटों के खिलाफ फिर फौज भेजी। जाटों को लड़ने के लिये प्रस्तुत पाकर खुद वजीर भी उनके खिलाफ रवाना हुआ। वह खिजिराबाद तक पहुँचा ही था कि उसे यह समाचार मिला कि अहमद खाँ बंगेश के हाथों से नवलराय मारा गया है। इससे वजीर ने इस समय राजा सुरजमलजी के साथ समझौता कर लेना ही ठीक समझा। एक मराठा वकील के मार्फत समझौता हो गया। राजा सुरजमलजी को वजीर की ओर से खिलत मिली। दोनों में इसी समय अच्छी मैत्री हो गई।

पहले जहाँ सुरजमलजी नवाब वज़ीर के शत्रु थे, अब वेही उसके मित्र बन गये। इतना ही नहीं उन्होंने नवाब वज़ीर की उस चढ़ाई में भी योग दिया, जो उसने अहमदखाँ बंगेश और रोहिलों के खिलाफ़ की की। ई० स० १७५० की २३ जुलाई को ७०००० अश्वारोही सेना के साथ नवाब वजीर, अहमदखाँ बंगेश और रोहिलों के खिलाफ़ रवाना हुआ। राजा सूरजमलजी ने अपनी जाट सेना की सहायता से अहमदखाँ की राजधानी फर्रुखाबाद पर अधिकार कर लिया। ई० स० १७५० की १३ सितंबर को पथारी मुकाम पर बड़ी भीषण लड़ाई हुई। वजीर ने हाथी पर बैठकर अपनी सेना का मध्य भाग सँभाला था। राजा सुरजमलजी सेना की बाँयी बाजू को सञ्चालित कर रहे थे। राजा सुरजमलजी ने शत्रु पर भीषण आक्रमण कर दिया। इसमें शत्रु पक्ष के कोई ६००० या ७००० पठान मारे गये। रुस्तमखाँ अफ्रीदी और अन्य रोहिले सेना-नायक बुरी तरह भागे। कहने की आवश्यकता नहीं कि राजा सुरजमलजी के कारण नवाब वज़ीर की विजय हुई। अहमद खाँ बंगेश इतने पर भी निराश न हुआ। उसने पलाश के झाड़ों के नीचे फिर अफगान सेना को जमा कर वजीर की सेना पर अकस्मात् रूप से हमला कर दिया। इस समय वज़ीर की एक गम्भीर सैनिक भूल के कारण अफ-गानों को कुछ सफलता मिल गई। नवाब वज़ीर सख्त घायल हुआ और उसी अवस्था में वह अपने केम्प में लाया गया। दूसरे ही दिन उसने मुगल राजधानी की ओर पीछे हटने की तैयारी की। इस समय अफगानों ने प्राय उसके सारे मुल्क पर अधिकार कर लिया। अलाहाबाद लूट लिया गया। अगर लखनऊ के नागरिक ज़ोर का मुकाबला न करते तो वह भी लूट लिया जाता। इस हार की खबर ज्योंही दिल्ली पहुँची कि नवाब वजीर के शत्रुओं ने उसके खिलाफ बादशाह के कान भरने शुरू किये। वे नवाब वज़ीर की बरख्वास्ती के लिये षडयंत्र करने लगे। पर यथासमय नवाब वजीर के दिल्ली पहुँच जाने पर इन षड्यन्त्रकारियों की तमाम कार्रवाई निष्फल हुई। नवाब वज़ीर ने राजा सुरजमल आदि अपने हितैषियों को रुहेलों पर फिर

से हमला करने के विषय पर विचार करने के लिये बुलाया। इतना ही नहीं उसने मल्हारराव होलकर की फौज को प्रति दिन २५०८० रुपया और सूरजमलजी की जाट सेना को प्रतिदिन १५००० रुपया वेतन पर ठीक कर लिया। इन सब तैयारियों के साथ उसने अहमदखाँ बंगेश पर चढ़ाई की। फ़र्रुखाबाद लूटा जाकर बहुत कुछ नष्ट भ्रष्ट कर दिया गया। सारा रुहेला देश तलवार और आग से बर्बाद कर दिया गया। कहने की आवश्यकता नहीं कि नवाब वजीर की विजय हुई। उसने इस विजय के समाचार बादशाह तक पहुँचाये।

नवाब वज़ीर के दिल्ली से रवाना होने के कोई एक मास बाद ही मुगल साम्राज्य को एक विपत्ति का सामना करना पड़ा। अहमदशाह अब्दाली ने पंजाब पर हमला किया। ईसवी सन् १८५१ की १८ फरवरी को उसने लाहौर में प्रवेश किया। दिल्ली पर भी उसका हमला होने का भय होने लगा। इसी समय मुग़ल सम्राट् ने राजा सूरजमलजी को ३००० जाट और २००० घोड़ों का मन्सब प्रदान कर उनकी इज्ज़त की। सम्राट् ने वज़ीर को मल्हारराव होलकर के साथ अतिशीघ्र दिल्ली आने के लिये कई सन्देश भेजे। वज़ीर की गैरहाजिरी में एक खोजा ने कमज़ोर दिल बादशाह के दिल पर कबज़ा कर रखा था। उसने बादशाह को अहमदशाह दुर्रानी की शर्तें स्वीकार करने को दबाया। बादशाह ने दुर्रानी को लाहौर और मुलतान देकर उसे वापस लौट जाने के लिये कहा। जब वज़ीर दिल्ली लौटा तो उसे बादशाह के इस कार्य्य पर बड़ा क्रोध आया। उसने बादशाह को इस कार्य्य में प्रवृत्त करने वालों को दण्ड देने का निश्चय किया। उक्त खोजा एक भोज के समय वज़ीर के यहाँ बुलाया गया और जहर देकर मार डाला गया।

यह बात सम्राट् अहमदशाह और उनकी माता को अच्छी न लगी। सम्राट् ने अपनी माता के अनुरोध से नवाब वजीर को अपने पद से खारिज़ कर दिया। इतना ही नहीं उसकी इस्टेट तक जप्त कर ली गई। इस पर बाद-

शाह और वजीर में झगड़ा होगया। बादशाह का अन्याय वजीर को बहुत अखरा और उसने दिल्ली पर घेरा डाल दिया। इसी समय उसने अपनी सहायता के लिये सूरजमलजी जाट को बुलवा भेजा। वजीर के दुष्मन अफगान नवयुवक गाजीउद्दीन की अधीनता में शाही फौज से जा मिले। इतने ही में सूरजमलजी जाट अपनी सेना सहित आ पहुँचे। उन्होंने उस समय दिल्ली की बहुत बुरी हालत कर डाली। वह बुरी तरह लूटी गई। अभी तक "जाट गर्दी" नाम से यह लूट मशहूर है। बादशाही सेना को भी इन्होंने शिकस्त दी। इसका परिणाम यह हुआ कि बादशाह के घुटने टिक गये। उसने नवाब सफदरजंग वजीर से सुलह का अनुरोध किया। उसे अवध और अलाहाबाद का फिर से वाइसरॉय बना दिया। कहने का अर्थ यह है कि सूरजमलजी ने अपने एक मित्र को नाश होने से बाल-बाल बचा दिया।

पानीपत का युद्ध

हिन्दुस्थान के इतिहास में परिवर्तन करनेवाले पानीपत के युद्ध के विषय में पाठकों ने बहुत कुछ पढ़ा होगा। मरहठों के सेनापति भाऊ साहबने उक्त युद्ध निश्चित करने के लिये आगरा में एक सभा की थी। इस सभा में राजा सूरजमलजी भी निमन्त्रित किये गये थे। इस समय राजा सूरजमलजी ने एक बड़ा ही महत्वपूर्ण भाषण दिया, उसका सारांश यह है:—

"मैं केवल जमीदार हूँ। आप एक महान् नृपति हैं। पर इस समय मुझे जो ठीक मालूम होता है, उसे मैं स्पष्ट रूप से कहता हूँ। आपको यह बात अवश्य ही स्मरण रखनी चाहिये कि यह युद्ध एक महान् मुसलमान सम्राट् के खिलाफ है। इसमें कई मुसलमान राजा उसके साथ हैं। शत्रु बड़ा चालाक और धूर्त है। आपको इस युद्ध के सञ्चालन में बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिये। युद्ध यह एक शतरंज का खेल है। पता नहीं पासा किस ओर उलट जावे। अतएव मेरी राय में आप अपनी महिलाओं को तथा अनावश्यक सामान को चंबल के उस पार झाँसी या गवालियर भेज दीजिये

और फिर आप कई अनावश्यक झंझटों से मुक्त होकर शत्रु का मुकाबला कीजिये। अगर अपनी विजय हो गई तो लूट का बहुत सा समान अपने को मिल जायगा। अगर युद्ध का परिणाम हम लोगों के विरुद्ध हुआ तो हम, स्त्रियों बच्चों के झंझट से बरी होने के कारण, आसानी से भाग सकेगें। अगर आप अपने स्त्री बच्चों को इतना दूर भेंजना अनुचित और अव्यवहार्य्य समझें तो मैं अपने लोहे जैसे मजबूत किलों को आपके लिये खाली कर दूँगा वहाँ आप उन्हें सुरक्षित रूप से रख दीजिये। वहाँ उनके लिये सब प्रकार का प्रबन्ध हो जायगा। आप अपने स्त्री बच्चों और अनावश्यक सामानों से मुक्त होकर शत्रु का मुकाबला कीजिये। युद्ध के संबंध में भी मैं एक बात सूचित करना आवश्यक समझता हूँ, वह यह कि आमने-सामने युद्ध करने के बजाय गनीमी लड़ाई से शत्रु को तंग कीजिये। उस पर इधर उधर से गुप्त हमले कीजिये। गुप्त आक्रमणों द्वारा उसे चारों ओर से तंग कीजिये। इससे शत्रु परेशान होकर अपने देश को लौट जायगा। उन्होंने महाराष्ट्र सेनापति भाऊ साहब को यह भी सूचित किया कि फौज की एक टुकड़ी पूर्व की ओर और दूसरी लाहोर की ओर भेजी जाय। इससे अहमदशाह दुर्रानी की फौज के लिये खाद्य सामग्री आने का मार्ग बन्द हो जावे।" राजा सूरजमलजी यह सलाह देकर बैठे न रहे, उन्होंने अब्दाली के कट्टर दुश्मन सिक्ख तथा बनारस के राजा बलवन्तसिंह से इस आशय का पत्र व्यवहार करना शुरू किया कि वे पंजाब और अवध से शत्रु-सेना के लिये आने वाली खाद्य सामग्री में बाधा डालने का प्रयत्न करें।

राजा सूरजमलजी ने महाराष्ट्र सेनापति सदाशिवराव भाऊ को युद्ध के सम्बन्ध में जो राय दी थी उसका एक स्वर से सब ने समर्थन किया। सब ने यह कहा कि शत्रु के दाँव को बचाकर भाग जाना और फिर मौका आते ही धोखे से शत्रु पर हमला कर " शठं प्रति शाठ्यं " की नीति को स्वीकार करना ही सफलता का राजमार्ग है। अभिमान में चूर होकर अनुपयुक्त अवसर में शत्रु का मुकाबला कर कठिन परिस्थिति उत्पन्न कर लेना

मूर्खता पूर्ण कार्य होगा।" यह बात सबको पसन्द आ गई। पर प्रधान सेना-पति भाऊ ने इस राय को ठुकरा दिया। उन्होंने अपने लिये—पेशवा के भाई के लिये—इस काम को शान के खिलाफ समझा। उन्होंने इस समय ताना मारकर मल्हारराव होलकर और सूरजमलजी आदि का अपमान किया। इससे सूरजमलजी को बहुत बुरा मालूम हुआ। पर कुछ महाराष्ट्र मुत्सद्दियों के समझाने बुझाने से उन्होंने लड़ाई में योग देना स्वीकार किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि राजा सूरजमलजी अपने मित्र गाज़ीउद्दीन और ८००० जाट सेना के साथ महाराष्ट्रों से मिल गये। ईसवी सन् १७६० में मित्र सेनाएँ दिल्ली पहुँची और उन्होंने उस पर घेरा डाल दिया। गाज़ीउद्दीन ने बड़ी सर गर्मी के साथ दिल्ली पर अधिकार कर लिया और मराठों ने नगर को लूटा। इस समय मराठों के हाथ इतनी लूट लगी कि उनमें कोई गरीब न रहा। गाजीउद्दीन ने बादशाही खानदान के एक आदमी को तख्त पर बैठा दिया और खुद वज़ीर का काम करने लगा। पर यह बात महाराष्ट्र सेनापति भाऊ को अच्छी न लगी। उन्होंने नारोशंकर नामक एक महाराष्ट्र को राजा बहादुर की उपाधि से विभूषित कर उसे वज़ीर के पद पर नियुक्त कर दिया। इसका राजा सूरजमलजी ने बड़ा विरोध किया। होलकर और सिन्धिया ने भी इनका साथ दिया। पर महाराष्ट्र सेनापति भाऊ ने इनकी एक न सुनी इससे सूरजमलजी को बहुत बुरा लगा। इस अपमानकारक स्थिति में ज्यादा दिन रहना उनके लिये असह्य हो गया। वे अब वहाँ से खिसकने की कोशिश करने लगे और आखिर मौका पाकर वहाँ से खिसक ही गये। इसके बाद पानीपत के युद्ध का जैसा परिणाम हुआ, पाठक जानते ही हैं। इसमें मराठों का पूर्ण पराभव हुआ। उनकी बढ़ती हुई शक्ति क्षीण हो गयी। समूची मराठी सेना नष्ट हो गई। उसके प्रायः सब बड़े २ वीर काम आये।

सूरजमलजी की उदारता

पानीपत के युद्ध से जब कुछ बचे बचाये मराठे सरदार या सैनिक

दक्षिण की ओर लौटे तो रास्ते में सूरजमलजी का मुल्क पड़ा। सूरजमलजी के साथ उन्होंने पहले जैसा व्यवहार किया था, उसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। पर उदार हृदय सूरजमलजी ने इस महा संकट के समय में विपत्तियों से जर्जरित महाराष्ट्र लोगों के साथ बड़ी ही सहृदयता का व्यवहार किया। उन्होंने उनका बड़ा आदरातिथ्य किया। उनके लिये अन्न, वस्त्र और औषधि प्रभृति का प्रबन्ध किया। इस वक्त यदि सूरजमलजी अपने बैर का बदला लेने में उद्यत हो जाते तो शायद पानीपत की दुःख कथा सुनाने के लिये एक आदमी भी न बचता। तमाम मुसलमान और महाराष्ट्र लेखकों ने सूरजमलजी की इस सहृदयता और उदारता को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। एक तत्कालीन फारसी लेखक लिखता है—

"मराठे जब सूरजमलजी के राज्य में घुसे तो उन्होंने हिन्दू-धार्मिक भावों से प्रेरित होकर उनकी रक्षा करने के लिये अपनी फौजें भेजीं। उन्हें अन्न वस्त्र बाँटकर उनके दुःखों को दूर किया। भरतपुर में रानी साहबा ने इन भागे हुए दुःखित मराठों के प्रति बड़ा ही दया-पूर्ण व्यवहार किया। आठ दिन तक कोई चालीस हजार आदमियों को भोजन दिया गया। ब्राह्मणों को दूध, पेड़े तथा अन्य मिठाइयाँ बाँटी गईं। आठ दिन तक सबका बड़ा सत्कार किया गया। सबके लिये आराम का काफी प्रबन्ध किया गया। सब नगर-निवासियों के नाम एक घोषणा प्रकट कर उनसे यह अनुरोध किया गया कि महाराष्ट्र सैनिकों के साथ अच्छा से अच्छा व्यवहार किया जावे और उन्हें हर तरह का आराम पहुँचाया जावे। किसी को किसी तरह की तकलीफ न होने पावे। इस प्रकार इस दिव्य कार्य्य में सूरजमलजी ने दस लाख रुपया खर्च कर अपनी उच्चाशयता और उच्च श्रेणी के मानवी भावों का परिचय दिया। उन्होंने हजारों आदमियों के प्राणों को बचा दिया। मराठी सेना का एक शमशेर बहादुर नामक सेनापति कुहमीर किले में घायल होकर आया था। सुरजमलजी ने उसकी बड़ी सेवा की, पर उसने भाऊ के वियोग के असह्य दुःख में 'हाय हाय' करके प्राण विसर्जन कर दिये। (सरदेसाई का

पानीपत प्रकरण २६५) सूरजमलजी ने मार्ग-व्यय के लिये रुपये बाँटकर महाराष्ट्र सैनिकों को गवालियर के लिये सुरक्षित रूप से रवाना कर दिया ।

सूरजमलजी और नरोशंकर

फ्रान्कालिन नामक एक इतिहास-वेत्ता ने लिखा है कि दिल्ली का मराठा शासक नरोशंकर वापस लौटते समय मार्ग में लूट लिया गया और इस लूट में राजा सूरजमलजी का गुप्त हाथ था, पर यह बात बिलकुल गलत है । श्रीयुत् सरदेसाई ने अपने "मराठी रियासत" नामक सुविख्यात् ग्रंथ में लिखा है:—

"नरोशंकर के एक मराठा साथी ने इस विषय पर समुचित प्रकाश डाला है । उसके कथनानुसार नरोशंकर तीन चार हजार फौज के साथ दिल्ली से भागा था। रास्ते में उसकी मल्हारराव होलकर के साथ भेंट हुई । मल्हारराव के पास इस समय कोई आठ दस हजार फौज थी । भरतपुर में सूरजमलजी ने नरोशंकर और उसके सब साथियों की बड़ी ही खातिर की । वे वहाँ पन्द्रह दिन तक ठहरे । सूरजमलजी ने बड़ी नम्रता के साथ यहाँ तक कहा कि यह राज्य आपका है—हम आपकी सेवा करने के लिये तैय्यार हैं। आप यहाँ खुशी से ठहरिये"। सूरजमलजी जैसे आदमी बहुत कम हैं । उन्होंने अपने विश्वासपात्र सरदारों के साथ नरोशंकर आदि सबको सकुशल गवालियर पहुँचा दिया ।" सुप्रख्यात् महाराष्ट्र मुत्सद्दी नाना फड़नवीस ने अपने एक पत्र में लिखा है:—

"सूरजमलजी के व्यवहार से पेशवा के हृदय को बहुत ही शांति-लाभ हुआ ।" उपरोक्त प्रमाणों से फ्रान्कलिन द्वारा सूरजमलजी पर लगाये गए झूठे कलंक का साफ साफ प्रक्षालन हो जाता है । दुःख है कि बिना किसी ऐतिहासिक प्रमाण के फ्रन्कलिन ने अक्षम्य धृष्टता की और सफेद को काले के रूप में दिखाने का नीच प्रयत्न किया है ।

सूरजमलजी की विजय

पानीपत के युद्ध में विजय प्राप्त कर अहमदशाह ने दिल्ली में प्रवेश किया। जब उसने सुना कि राजा सूरजमलजी ने पानीपत से लौटे हुए मराठों को आश्रय दिया तो वह क्रोध से आग बबूला हो गया। वह सूरजमलजी पर चढ़ाई करने का मनसूबा बाँधने लगा। जब सूरजमलजी ने यह बात सुनी तो उन्होंने नागरमल नामक एक विश्वासपात्र आदमी को अहमदशाह के पास उसका गुस्सा शांत करने के लिये भेजा। इसका कोई परिणाम न हुआ। सूरजमलजी ने भी शाह की विशेष पर्वाह न की। क्योंकि वे जानते थे कि युद्ध से थका हुआ शाह अब विशेष साहसिक प्रयत्न न करेगा। उन्होंने बड़ी हिम्मत के साथ पानीपत के प्रसिद्ध विजेता शाह के दिल्ली में होते हुए भी आगरा को पादाक्रान्त कर उस पर अधिकार कर लिया। यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह मुगल साम्राज्य की दूसरी राजधानी थी। यह विजय उन्हें बीस दिन में प्राप्त हुई। यहाँ उन्हें ५० लाख की लूट हाथ लगी। शाह के दिल्ली से रवाना होने के पाँच दिन पहले यह खबर मिली कि सूरजमलजी की फौजों ने अकबराबाद के किलेदार को क़िला खाली करने के लिये मजबूर किया और उन्होंने उसमें प्रवेश कर दिया। इस काम से शाह ज्यादा चींचपड़ न करे इसलिये सूरजमलजी ने उसके पास एक लाख रुपया और पाँच लाख का इकरारनामा भेज दिया। यह इकरारनामा धूर्त शाह को धोखा देने के लिये था। इसका सूरजमलजी ने अमल नहीं किया। "शठं प्रति शाठ्यं" की सफल राजनीति का उन्होंने अनुकरण किया।

हरियाना पर विजय

पानीपत के खूनी युद्ध के बाद कुछ समय के लिये उत्तरीय हिंदुस्तान में शांति छा गई थी। युद्ध की विभीषिका से घबराकर लोग कुछ समय तक दम लेना चाहते थे। सिक्खों की तेजी से बढ़ती हुई शक्ति ने अहमदशाह के

आक्रमण में जबर्दस्त बाधा उपस्थित कर दी थी। उधर दक्षिण में मराठे हैदरअली और निजाम के साथ युद्ध में लगे हुए थे। इस परिस्थिति का फायदा उठाकर राजा सूरजमलजी ने एक अति शक्तिशाली जाट राज्य स्थापित करने का विचार किया। उन्होंने रावी नदी से लगाकर जमना तक अपना विजय झण्डा फहराना चाहा। उन्होंने अब्दाली और रुहेलों के राज्य के बीच जाट राज्य की एक जबर्दस्त और मजबूत दिवाल खड़ी कर देना चाहा। इसवक्त दिल्ली के निकटस्थ हरियाना ग्राम पर जबर्दस्त मुसलमान जागीरदारों का अधिकार था। ये सूरजमलजी के पथ में कंटक रूप थे। इसका कारण यह था कि इनका मुकाम जाट और सिक्ख राज्यों के बीच होने से ये इन दोनों के मिल जाने में बाधक रूप होते थे। सूरजमलजी ने अपने पथ से इस जबर्दस्त कंटक को हटा देना चाहा। उन्होंने अपने बड़े पुत्र जवाहिरसिंह को हरियाना ज़िला विजय करने के लिये तथा अपने छोटे पुत्र नाहरसिंह को दुआब पर अधिकार करने के लिये भेजा। पर जवाहरसिंह को इसमें सफलता न हुई। तब खुद सूरजमलजी अपनी सेना और तोपखाने के साथ वहाँ आ पहुँचे। दो महीने के घेरे के बाद उन्होंने हरियाना जिले के फरुखनगर पर अधिकार कर लिया। वहाँ का बलूची जागीरदार गिरफ्तार कर भरतपुर भेज दिया गया। इस समय रेवाड़ी, हरसारु, रोहतक आदि पर सूरजमलजी की ध्वजा पताका फहराने लगी। ये स्थान राजा नवलसिंह के समय तक भरतपुर राज्य में थे। दुःख है कि बलूची लोगों से युद्ध करते हुए वीरवर सूरजमलजी ईसवी सन् १८२० में वीर गति को प्राप्त हुए।

सूरजमलजी की विशाल राज्य-सत्ता

सूरजमलजी ने अपने बाहुबल से विशाल राज्य सम्पादन कर लिया था। भरतपुर के अतिरिक्त आगरा, धौलपुर, मैनपुरी, हाथरस, अलीगढ़, एटा, मेरठ, रोहतक, फरुखनगर, मेवात, रेवाड़ी, गुरगाँव और मथुरा आदि ज़िलों पर आपका एक-छत्री राज्य था। इसके सिवाय आप अपनी मृत्यु के समय

लगभग १०,००००००० रुपया खजाने में छोड़ गये थे। आपकी सेना भी जबर्दस्त थी। उसमें ५२०० घोड़े, ६० हाथी, १५००० अश्वारोही सेना, २५००० पैदल सेना, और ३०० तोपें थीं।

सूरजमलजी जाट जाति के एक प्रकाशमान रत्न थे। उनकी प्रतिभा, उनकी दूरदर्शिता, प्राप्त अवसर से लाभ उठाने की उनकी अद्भुत तत्परता, उनका शौर्य्य आदि कितने ही गुण उनको महान् बनाने में सहायक हुए हैं। उन्होंने हिन्दुस्तान के इतिहास में निस्सन्देह अपना विशेष स्थान कायम कर लिया है।

राजा जवाहरसिंहजी

स्वर्गीय राजा सूरजमलजी के पाँच पुत्र थे; यथा:—जवाहरसिंह, नाहरसिंह, रतनसिंह, नवलसिंह, और रणजीतसिंह। इनमें सब से बड़े पुत्र जवाहरसिंह राज्यसिंहासन पर आसीन हुए। राजा जवाहरसिंहजी बड़े पराक्रमी वीर थे। पर साथ ही वे बड़े दुराग्रही और हठी स्वभाव के थे। आपने अपने पिता का राज्य उनकी जीवितावस्था ही में खूब बढ़ाया पर भीषण दुराग्रही स्वभाव के कारण इनकी इनके पिता के साथ नहीं पटती थी। राजा सूरजमलजी ने गुस्सा होकर इनसे उन्हें अपना मुंह न दिखलाने के लिये कह दिया था। इसके बाद तनातनी बढ़ते-बढ़ते दोनों में युद्ध होने तक की नौबत आ गई। जवाहरसिंहजी गोपालगढ़ और रामगढ़ के किलों से तोपें दागने लगे और राजा सूरजमलजी डींग और शाहबुर्ज के किलों से तोपों ही के द्वारा उत्तर देने लगे। इस लड़ाई में जवाहरसिंह के पैर में चोट लगी, जिसने उन्हें सदा के लिये लँगड़ा कर दिया। जब ये घायल

होकर विस्तरे पर पड़े थे, तब पितृ-प्रम से प्रेरित होकर सूरजमलजी इनके पास आये और दुःख प्रकट करने लगे। पर इस समय जवाहरसिंहजी ने कपड़े से अपना मुंह ढक लिया और कहा कि मैं आपकी आज्ञा ही का पालन कर ऐसा कर रहा हूँ।

राज्य सिंहासन पर बैठते ही जवाहरसिंहजी ने सब से पहले अपने पितृ-घातियों से सोलह आना बैर लेने की ठानी। इन्होंने सिक्खों की एक विशाल सेना, मल्हारराव होलकर की मराठी सेना और अपनी जाट सेना के साथ ईसवी सन् १७६४ में कूच किया। कहने की आवश्यकता नहीं की दिल्ली पर एक जबर्दस्त घेरा डाला गया। जवाहरसिंहजी की भारी विजय हुई। अगर मल्हारराव होलकर इस समय इनका साथ न छोड़ते तो निश्चय ही इसी समय मुगल राज्यधानी दिल्ली पर पूर्ण रूप से महाराजा जवाहरसिंहजी की ध्वजा फहराती।

ईसवी सन् १७६८ में जवाहरसिंहजी पुष्कर की यात्रा के लिये रवाना हुए। इस समय जयपुर में महाराजा माधोसिंहजी राज्य करते थे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि महाराजा माधोसिंहजी का भरतपुर के जाट घराने के साथ स्वाभाविक बैर था। इसके कई कारण थे। प्रथम तो यह कि राजा सूरजमलजी ने माधोसिंहजी के खिलाफ ईश्वरीसिंहजी की सहायता की थी। दूसरी बात यह थी कि जवाहरसिंहजी ने माधोसिंहजी से कामा प्रान्त देने के लिये अनुरोध किया था, वह माधोसिंहजी ने स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार और भी कई बातों से दोनों राज-घरानों में उस समय द्वेष की आग जल रही थी। थोड़े से बहाने से इसके और भी भभक उठने की पूरी संभावना थी। दुर्दैव से इसके लिये अवसर मिल गया। जवाहरसिंहजी जयपुर राज्य की सीमा से होकर पुष्कर गये। यही बात जयपुर के तत्कालीन राजा माधोसिंहजी के लिये जवाहरसिंहजी से अपनी दुश्मनी निकालने के लिये काफी थी। बिना इजाजत के राजा जवाहरसिंहजी जयपुर की सीमा से होकर कैसे निकल गये इस पर महाराजा माधोसिंह ने बड़ी आपत्ती की।

उन्होंने अपने सब विशाल सामन्तों को इकट्ठा कर एक विशाल सेना महाराजा जवाहरसिंहजी के खिलाफ़ भेजी। बड़ा भीषण युद्ध हुआ और इसमें जीत का पलड़ा कछवाओं की ओर रहा। पर इसमें जयपुर के राज्य को इतनी भारी हानि उठानी पड़ी कि उनकी विजय भी पराजय के समान हो गई। जयपुर के प्राय: सब नामी २ सामन्त काम आये। इस युद्ध के विषय में कर्नल टॉड साहब लिखते हैं;—

"A desaprate conflict ensued which though it terminated in favonr of the Khchwahas and in flight of the leader of the Jats, proved destructive to Amber, in the loss of almost every chieftain of note. अर्थात् भयंकर युद्ध हुआ और इसका फल कछवाओं के पक्ष में तथा जाट नेता के पलायन में हुआ। पर युद्ध आंबेर के लिये विनाशकारी सिद्ध हुआ, क्योंकि इसमें वहाँ के सब प्रसिद्ध सामन्त मारे गये।"

जवाहरसिंहजी पुष्कर से आगरा लौट गये और वहां वे ईसवी सन् १७६८ के जुलाई मास में शुज्ज़ात मेवात के हाथों से मारे गये। स्थानाभाव के कारण हम जवाहरसिंहजी के सब पराक्रमों पर यथोचित प्रकाश नहीं डाल सकते। वे एक सच्चे सिपाही थे। वीरत्व उनमें कूट-कूट कर भरा हुआ था। उनमें अपने पिता की तरह अद्भुत शासन-क्षमता भी थी। प्रजा-कल्याण की ओर भी उनका समुचित ध्यान था। उनका दरबार बड़ा भव्य और आलीशान था। बहादुर सिपाही को अपने वीरत्व प्रकाश करने का कोई स्थान था तो वह भरतपुर ही था।

महाराजा जवाहरसिंहजी ने देश की कला-कौशल को बड़ा उत्तेजन दिया। कवियों को बड़े पुरस्कार देकर उनकी काव्य प्रतिभा-को बढ़ाया।

आपने आगरे में गो-हत्या बिलकुल रोक दी। कसाइयों की दुकाने बन्द कर दी गईं। आपने और भी बहुत से ऐसे काम किये जिनकी वजह से एक सच्चे हिन्दू को योग्य अभिमान हो सकता है।

राजा रत्नसिंहजी

राजा जवाहरसिंहजी के बाद राजा रत्नसिंहजी भरतपुर के राज्य-सिंहासन पर बैठे। दुःख है कि ये राजा सूरजमलजी तथा राजा जवाहरसिंहजी की तरह वीर और पराक्रमी न थे। ये मन के बड़े कमजोर थे। विलासप्रियता ही इनके जीवन का ध्येय प्रतीत होता है। चार हजार नर्तिकाएँ इन्हें घेरे रहती थीं। ये बड़े फिजूल-खर्च थे और दुर्व्यसनों में धनका दुरुपयोग किया करते थे। इन्हें यन्त्र, मन्त्र और किमियागारी का भी बड़ा शौक़ था। ये ही बातें इनकी मृत्यु का कारण हुईं। वृन्दावन के एक गोस्वामी के साथ इनका विशेष परिचय हो गया। गोस्वामी ने आप से कहा कि हम मन्त्र के बल से निकृष्ट धातु को भी स्वर्ण कर सकते हैं। इस कार्य्य को सिद्ध करने के लिये आपने उस धूर्त गोस्वामी को बहुतसा रुपया दे डाला। गोस्वामी ने आपको विश्वास दिलाया कि अमुक दिन मैं सोना बनाकर दिखला दूँगा। जब वह निश्चित दिन नज़दीक आया, तब वह धूर्त गोस्वामी बड़ा घबराया। उसे घोर दण्ड मिलने का भय होने लगा। अन्त में उसने मौका पाकर राजा रत्नसिंहजी को हृदय में छुरी मारकर उनके प्राण ले लिये। राजा रत्नसिंहजी ने केवल नौ मास तक राज्य किया था।
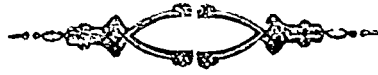
केहरीसिंहजी

राजा रत्नसिंहजी के बाद उनके पुत्र केहरीसिंहजी भरतपुर के राज्य-सिंहासन पर बैठे। इस समय इनकी अवस्था केवल २ वर्ष की थी। अतएव उनके चाचा नवलसिंहजी राज्य-कार्य्य देखने लगे। यद्यपि इस समय अधिकार-लालसा के कारण नवलसिंहजी और उनके भाई रणजीत-सिंहजी में मनोमालिन्य होगया था और इससे दोनों में युद्ध होगया था, पर इतनी घर की फूट होने पर भी दिल्ली के बादशाही दरबार में भरतपुर राज्य का बड़ा दबदबा था। तत्कालीन मुगल बादशाह इनसे इतना सशङ्कित था कि उसने इनके खिलाफ युद्ध करने के लिये ५,०००,००० की मंजूरी दी थी।

महाराजा रणजीतसिंहजी

महाराजा केहरीसिंहजी के बाद महाराजा रणजीत सिंहजी भरत-पुर के राज्यसिंहासन पर अधिष्ठित हुए। इनके समय में राज-नैतिक दृष्टि से कई महत्वपूर्ण घटनाएँ हुई, अतएव उनपर थोड़ा सा प्रकाश डालना आवश्यक है।

जिस समय महाराजा रणजीतसिंहजी राज्य-सिंहासन पर बैठे थे, उस समय अंग्रेज भारतवर्ष में अपनी सत्ता मजबूत करने के काम में लगे हुए थे। कहने की आवश्यकता नहीं कि होलकर, सिन्धिया प्रभृति कुछ

शक्तियों के द्वारा उनके इस कार्य में बड़ी-बड़ी बाधाएं उपस्थित की जा रहीं थीं। महाराजा रणजीत सिंहजी ने अंग्रेजों से सन्धि कर उनसे मैत्री का सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। इतना ही नहीं वरन् उन्होंने कुछ युद्धों में अंग्रेजों की अच्छी सहायता भी की थी। पर महाराजा रणजीतसिंह और अंग्रेजों का यह मैत्री पूर्ण सम्बन्ध अधिक दिन तक स्थिर न रह सका। एक घटनाचक्र ने इसमें विच्छेद उत्पन्न कर दिया।

महाराजा रणजीतसिंहजी के समय में इन्दौर के महाराजा यशवन्तराव होलकर का उदय हो रहा था। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन यशवन्तराव होलकर का आतङ्क उस समय सारे भारतवर्ष में छा रहा था। सारे राजपूताने के राजा इन्हें खिराज देते थे। अंग्रेजों पर भी इनका बड़ा दबदबा था। मुकन्दरा की घाटी पर यशवन्तराव ने जनरल मानसून की फौजों को हराकर उनका जिस प्रकार सर्वनाश किया था, उससे तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड मार्क्विस महोदय का दिल दहल उठा था। यह बात उनके एक प्राइवेट पत्र से प्रकट होती है। इसके बाद बनास नदी और सीकरी के पास बृटिश और होल्कर की फौजों का मुकाबला हुआ, पर इसमें किसी की हार जीत प्रकट नहीं हुई। इसके पश्चात् यशवन्तराव ने मथुरा की ओर से कूच किया। वहाँ भी बृटिश फौजी के साथ इनका युद्ध हुआ, पर कोई फल प्रकट नहीं हुआ। फिर यशवन्तराव ने वृन्दावन की ओर कूच किया। इसी समय अंग्रेज सेनापति लॉर्ड लेक मथुरा आ पहुँचे। दोनों सेनाओं में मुठभेड़ हो गई और यह कई दिन तक चलती रही। लॉर्ड लेक को हारकर दिल्ली की ओर पीछे हटना पड़ा। होलकर की फौजों ने उन्हें इतना तंग किया कि उनकी पीछे हटना भी मुश्किल हो गया। जनरल लेक बड़ी मुश्किल से दिल्ली पहुँच पाये। इसके बाद होलकर की फौजों ने दिल्ली पर आक्रमण किया यहाँ इन्हें सफलता न मिली। अंग्रेजों ने उनके आक्रमण को विफल कर दिया। वापस लौटते हुए यशवन्त-राव ने भरतपुर राज्य के डीग के किले में आश्रय लिया। हिन्दुओं की उच्च

संस्कृति और सभ्यता के अनुसार भरतपुर के तत्कालीन महाराजा रणजीत-सिंहजी ने यशवन्तराव का बड़ा सत्कार कर उन्हें आदरपूर्वक अपने यहाँ ठहराया। यह बात जनरल लेक को बहुत बुरी लगी और डीग पर उन्होंने आक्रमण कर दिया। भरतपुर की सेना ने बड़े ही वीरत्व के साथ बृटिश फौज का मुकाबला किया। २३ दिन के भीषण युद्ध के बाद डीग के क़िले पर अंग्रेजों का अधिकार हो गया। इसमें अंग्रेजों के २२७ आदमी मारे गये।

इसके बाद जनरल लेक ने ईसवी सन् १८०५ की ३ जनवरी को भरतपुर पर घेरा डाला। बृटिश फौजों ने भीषण गोलाबारी की। पर इसमें उन्हें सफलता न हुई। इस असफलता की बात को स्वयं जनरल लेक ने मार्किस वेलेस्ली के नाम लिखे हुए १० जनवरी के अपने एक पत्र में स्वीकार की है। पर इस पर भी अंग्रेज सेनापति निराश नहीं हुए। भरतपुर के वीर नरेश भी अपना वीरत्व प्रकट करते रहे। उन्होंने फिर बड़े जोर से आक्रमण किया पर इस वक्त भी उन्हें वीर जाट राजा के सामने परास्त होना पड़ा। इसके बाद जनरल लेक की सहायता पर कर्नल मरे की आधीनता में गुजरात से एक जबर्दस्त बृटिश फौज आ पहुँची। १२ फरवरी को जनरल लेक तथा कर्नल मरे की फौजों ने सम्मिलित होकर भरतपुर पर बड़ा ही भीषण आक्रमण किया, पर इसमें भी इन्हें उल्टे मुँह की खानी पड़ी। जब यह खबर तत्कालीन गवर्नर जनरल को पहुँची तो वे बड़े निराश हुए। ईसवी सन् १८०५ की ९ मार्च को मार्किस वेलेस्ली ने जनरल लेक को जो पत्र लिखा था उसमें उन्होंने लॉर्ड लेक से बड़े जोर से यह अनुरोध किया था कि वे भावी आक्रमण के विचार को बिलकुल त्याग कर राजा से सन्धि कर लें। इस पत्र में और भी कितनी ही ऐसी बातें लिखी थी जिससे यह प्रकट होता था मानों वे विजय से बिलकुल निराश हो गये हैं। वे किसी भी प्रकार की शर्तों पर सुलह करने के लिये उत्सुक हो रहे थे। इसके साथ ही यह प्रयत्न किया जा रहा था कि रणजीतसिंहजी को किसी न किसी प्रकार यशवन्तराव होलकर से अलग कर दिया जाय। मार्किस वेलेस्ली ने लिखा था,—"जब कि प्रधान

सेनापति भरतपुर के घेरे के लिये फिर तैयारी कर रहे हैं या घेरा डाल रहे हैं, क्या यह ठीक न होगा कि ऐसे समय में कुछ ऐसे प्रयत्न किये जायँ जिससे कि रणजीतसिंह को होलकर से फोड़ लिया जावे। यद्यपि अभी तक भरतपुर का पतन नहीं हुआ है तथापि रणजीतसिंह बहुत दुर्दशाग्रस्त हो गये हैं। और अगर रणजीतसिंह ने होलकर को त्याग दिया तो वह बिना आशा भरोसा का हो जायगा।"

इसका उत्तर देते हुए लॉर्ड लेक ने लिखा था:—

"इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है और आगे भी किया जायगा, जिससे रणजीतसिंह होलकर को परित्यक्त कर दें। दर असल रणजीतसिंह बहुत आपतिग्रस्त तथा भयभीत हो गये हैं और उन्होंने अगर होलकर को परित्यक्त कर दिया तो वे (होलकर) बिलकुल निस्सहाय हो जावेंगे।"

कहने का मतलब यह है कि रणजीतसिंह को होलकर से अलग करने के बहुत प्रयत्न किये गये पर इसमें कामयाबी न हुई। इस पर बृटिश राजनीतिज्ञों ने एक दूसरी चाल चली। उन्होंने होलकर के प्रधान साथी अमीरखाँ तथा उसके साथियों को फोड़ लेने के प्रयत्न किये। तत्कालीन गवर्नर जनरल ने अपने एक नोट में लिखा है:—

"मि० सेटान और जनरल स्मिथ को यह अधिकार दिया जाता है कि वे अमीर खाँ के साथियों को जमीन का लालच दिखलाकर उससे फोड़ लें। अगर अमीर खाँ होलकर का पक्ष त्याग कर बृटिश की ओर मिल जाने के लिये तैयार हो तो उसे एक अच्छी जागीर का प्रलोभन दिया जावे। उससे अनुरोध किया जावे कि वह एक निश्चित समय के अन्दर जनरल स्मिथ से उनके डेरे पर जाकर मिले।"

उपरोक्त नोट के जबाब में लॉर्ड लेक ने लिखा था:—

"अमीर खाँ के आदमियों को अवश्य ही जमीन का प्रलोभन दिया जावे।"

कहने का मतलब यह है कि राजा रणजीतसिंह और यशवंतराव

होलकर में फूट डालने के असफल प्रयत्न किये गये। आखिर में यद्यपि अंग्रेजों की विजय हुई, पर उन्हें महाराजा रणजीत सिंह जी का लोहा मुक्तकण्ठ से स्वीकार करना पड़ा। कर्नल मेलेसन अपने "Native States of India" नामक ग्रन्थ में लिखते हैं:—

"But though the Raja of Bharatpur lost by the time he had taken both money and territory, he gained in prestige and credit. His capital was the only fortress in India from whose walls British troops had been repulsed and this fact alone exalted him in the opinion of princess and people of India" कर्नल मेलेसन के इस अवतरण से महाराजा रणजीत सिंह जी की महत्ता स्पष्टतया प्रकट होती है। इन पराक्रमी महाराज रणजीतसिंह जी का देहान्त ईसवी सन् १८०५ में हो गया।

महाराजा रणधीरसिंहजी

महाराजा रणजीतसिंहजी के बाद महाराजा रणधीरसिंह जी भरतपुर के राज-सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। आप बड़े समर्थ और योग्य शासक थे। पिंडारी युद्ध में आपने ब्रिटिश सरकार की बड़ी सहायता की, जिसे मार्किस ऑफ हेस्टिंग्ज ने मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है।

महाराजा रणधीरसिंह जी के बाद महाराजा बलदेवसिंह जी प्रभृति एकाध नृपति हुए, जिनका समय ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण नहीं है। घरेलू तथा गद्दी-नशीनी के आपसी झगड़ों ही में इनका विशेष समय व्यतीत हुआ। इनके बाद महाराजा जसवन्तसिंह जी का राज्यकाल विशेष उल्लेखनीय रहा है। उसी पर हम यहाँ प्रकाश डालना चाहते हैं।

महाराजा जसवन्तसिंहजी

महाराजा बलवन्तसिंह जी के बाद उनके पुत्र महाराजा जसवन्त सिंह जी भरतपुर के राज्य सिंहासन पर विराजे। इस समय आप नाबालिग थे, अतएव आगरा के कमिश्नर मि० टेलर ने राज्य के शासन-सूत्र को सञ्चालित करने के लिए राज्य के सरदारों और माजी साहिबा की सलाह से धाऊ घासीराम जी को रिजेन्ट नियुक्त किया। भारत सरकार ने इस नियुक्ति का समर्थन किया। हाँ, उसने राज्य कारोबार पर देख-रेख रखने के लिये पोलिटिकल एजेन्ट की नियुक्ति कर दी।

उक्त घटना के चार वर्ष बाद महाराजा जसवन्तसिंह जी की माता का स्वर्गवास हो गया और इसी साल अर्थात् ईस्वी सन् १८८३ की ८ जुलाई को आपका राज्याभिषेक हुआ। कहने की आवश्यकता नहीं कि धाऊ घासीराम जी ने उक्त महाराजा की परवरिश बहुत ही अच्छे ढङ्ग से की।

जसवन्तसिंह जी के पिता महाराजा बलवन्तसिंह जी के राज्यकाल में राज्य-शासन का बहुत सा काम ज़बानी होता था। केवल राज्य-कोष का हिसाब और डिस्ट्रिक्ट ऑफिसरों को दिये जाने वाले हुक्म लिखे जाते थे। स्वर्गीय महाराजा खुले आम इजलास करते थे और मुकद्दमों के फैसले जबानी ही दे दिया करते थे। ईसवी सन् १८५५ में एजेन्ट टु दी गवर्नर जनरल कर्नल सर हेनरी लारेन्स भरतपुर आये और उन्होंने राज्यशासन को नियमबद्ध किया। कई नये महकमे खोले गये और उनपर जुदे जुदे आफिसरों की नियुक्ति हुई। जमीन की बाकायदा पैमाइश की गई। अच्छी तनख्वाह पर तहसीलदारों की नियुक्ति की गई। सब महकमों का बाकायदा रेकार्ड रखने की पद्धति जारी की गई।

ईस्वी सन् १८५७ का गदर

पाठक जानते हैं कि ई० सन् १८५७ में सारे भारतवर्ष में ब्रिटिश सरकार के खिलाफ विद्रोह की प्रचण्ड अग्नि प्रज्वलित हो गई थी। इस समय भारत में एक छोर से लगा कर दूसरे छोर तक अशान्ति की प्रबल लहर बह रही थी। ऐसे कठिन समय में, जब कि ब्रिटिश राज्य की नींव हिल रही थी, भरतपुर दरबार ने ब्रिटिश सरकार की बड़ी सहायता की। यहाँ से बहुत सी फौजें ब्रिटिश सरकार की सहायता के लिये भेजी गईं। कैप्टन निक्सन भरतपुर की फौजें और तोपखाना लेकर विद्रोह का झण्डा उठाने वालों का दमन करने के लिये दिल्ली पहुँचने वाले थे, पर रास्ते में मथुरा मुकाम पर उन्होंने दिल्ली की अति गंभीर स्थिति का हाल सुना, इससे आप मथुरा ही ठहर गये और वहाँ के डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेट तथा कलेक्टर मि० थॉर्नहिल को नगर-रक्षा के लिये बड़ी सहायता दी। जब उन्होंने सुना कि विद्रोही दल के मथुरा आने की सम्भावना नहीं है तब आपने दिल्ली की ओर कूच किया। केवल एक पल्टन इस आशय से मथुरा छोड़ते गये कि आवश्यकता पड़ने पर इसका उपयोग हो सके। मि० थॉर्नहिल केप्टन निक्सन के साथ काशी तक गये।

मि० थॉर्नहिल की अनुपस्थिति में तीन पल्टनों ने, जो मथुरा के खजाने की रक्षा के लिये तैनात थीं, बग़ावत का झण्डा उठाया और उन्होंने कई हिंसा-मय कार्यों के अतिरिक्त वहाँ के खजाने को भी लूट लिया। कहा जाता है कि इस समय इस खजाने में ११ लाख रुपये थे। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि मथुरा में रही हुई भरतपुर की सेना ने इस नाजुक मौके पर भी जितना उससे हो सका भारत सरकार की सहायता की। खुद केप्टन निक्सन ने इस फौज की "सैनिक आज्ञाकारिता" (Military obedience) की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की।

इसके पश्चात् केप्टन निक्सन भरतपुर की सेना को जयपुर राज्य के दोसा ग्राम में ले गये। इस समय तात्या टोपे, रावसाहब और फिरोजशाह

की सम्मिलित सेनाओं के साथ ईस्वी सन् १८५८ की १६ जनवरी को इसका मुकाबला हुआ। यहाँ तात्या टोपे आदि की पराजय हुई। उनके ३०० आदमी मारे गये। उन्हें बैराट और शेखावटी से भागना पड़ा। तत्कालीन एजेन्ट टु दी गवर्नर जनरल अपनी Mutiny report में लिखते हैं—"विद्रोह के समय में भरतपुर के जिलों में कोई बखेड़ा नहीं हुआ। ब्रिटिश सरकार के खिलाफ विद्रोह का झगड़ा उठाने में किसी जाट का नाम नहीं आया।"

महाराजा जसवन्तसिंहजी की शिक्षा

महाराजा जसवन्तसिंह जी की शिक्षा के लिये भी सुप्रबन्ध किया गया। सब-असिस्टेंट सर्जन बाबू भोलानाथ आपके अंग्रेजी भाषा के शिक्षक नियुक्त हुए। पण्डित बिहारीलाल और मौलवी गुलजारअली क्रम से आप के हिन्दी और फारसी के अध्यापक बनाये गये।

विवाह

ई० सन १८५९ में महाराजा का तत्कालीन पटियाला-नरेश महाराजा नरेन्द्रसिंहजी की राजकुमारी के साथ शुभविवाह सम्पन्न हुआ। ई० सन् १८६८ की ६ जनवरी को उक्त महारानी साहिबा से आपको एक पुत्र हुआ। इनका नाम महाराजकुमार भगवन्तसिंह रखा गया। दुर्भाग्य से ई० सन् १८६९ की ५ दिसम्बर को इन महाराजकुमार का देहावसान हो गया। ई० सन १८७० की ७ फरवरी को महारानी साहिबा का भी पटियाला में स्वर्गवास हो गया।

शासन-सूत्र में परिवर्तन

अब तक राज्य के शासन-सूत्र के प्रधान सञ्चालक पोलिटिकल एजेन्ट थे। कौन्सिल को नाम-मात्र के अधिकार थे। वह केवल उन्हीं मामलों का निर्णय करती थी जो पोलिटिकल एजेन्ट के द्वारा उसके पास भेजे जाते थे। तत्कालीन एजेन्ट टु दी गवर्नर जनरल की सलाह से भारत सरकार ने इतने अधिक हस्तक्षेप की नीति को पसन्द नहीं किया। ई० सन् १८६१ की

१६ मार्च को कैप्टन सी० के० एम० वॉल्टर पोलिटिकल एजेन्ट के स्थान पर नियुक्त किये गये। इसी समय से कौन्सिल को शासन सम्बन्धी बहुत कुछ अधिकार दिये गये।

ई० सन् १८६२ की ११ मार्च को भारतवर्ष के अन्य राजाओं की तरह श्रीमान् भरतपुर-नरेश को भी दत्तक लेने की सनद प्राप्त हुई।

ई० सन १८६५ में भरतपुर दरबार ने रेलवे बनाने के लिये भारत सरकार को मुफ्त में जमीन दी।

ई० सन् १८६७ को २८ दिसम्बर को भरतपुर दरबार और ब्रिटिश सरकार के बीच Extradition treaty हुई। इसमें अपराधियों के लेन-देन की शर्तों का खुलासा है।

महाराजा जसवन्तसिंहजी की शिक्षा-सम्बन्धी प्रगति

महाराजा जसवन्तसिंह जी ने शिक्षा सम्बन्धी प्रगति में बड़ी प्रतिभा का परिचय दिया। ई० सन १८६८–६९ में कैप्टन वॉल्टर ने आपके सम्बन्ध में निम्नलिखित विचार प्रकट किये थे:—

"आपने अपने समकक्ष और समस्थिति वाले अन्य नवयुवकों से अत्यधिक उदार शिक्षा प्राप्त की। आपने बहुत प्रवास किया। आपके विचार बहुत उन्नत हैं। विदेशों के सम्बन्ध में आपका ज्ञान उन सब राजाओं से, जिन्हें मैं जानता हूँ, अधिक व्यापक और विस्तृत है। आप शिष्टाचार के उन नियमों और बन्धनों के बड़े ही खिलाफ हैं जो उन जैसी उच्च-स्थिति के पुरुषों को जन-सधारण के संसर्ग से अलग रखने में कारणीभूत होते हैं। आप घोड़े के बड़े बढ़िया सवार हैं। कसरत का आपको बड़ा शौक है। आप रियासत के हर हिस्से से भले प्रकार परिचित हैं। आप उन लोगों की स्थिति और आवश्यकताओं को खूब जानते हैं जिन पर ईश्वर ने शासन करने की जिम्मेदारी डाली है।"

आगे चल कर इसी सिलसिले में कैप्टन वॉल्टर ने राजाओं की शिक्षा के लिये एक कॉलेज खोलने की आवश्यकता प्रदर्शित की। कर्नल कीटिंग्ज ने कर्नल वॉल्टर के उक्त विचारों की ओर भारत के तत्कालीन वॉईसराय लॉर्ड मेयो का ध्यान आकर्षित किया। तदनुसार लॉर्ड महोदय ने ई० सन् १८७० की २२ अक्टूबर को अजमेर में एक दरबार किया। इस दरबार में राजपूताने के बहुत से नरेश सम्मिलित हुए थे। बस, मेयो कॉलेज की नींव इसी समय से गिरी। महाराजा जसवन्त सिंह जी ने इस कॉलेज के लिये ५०००० पचास हजार रुपया प्रदान किया। भरतपुर के विद्यार्थियों के लिये छात्रालय बनवाने के लिये भी आपने ७१५० रुपये प्रदान किये।

ई० सन् १८६९ की १० जून को महाराजा जसवन्त सिंह जी को नियमित राज्याधिकार (Limited Ruling Powers) प्राप्त हुए। इन अधिकारों को महाराजा साहब ने इतना अच्छा उपयोग किया कि ई० सन् १८७१ में आपको पूर्ण राज्याधिकार प्राप्त हो गये। उक्त सन् की ७ वीं मार्च को भरतपुर में एक आम दरबार हुआ। जिसमें कई प्रतिष्ठित युरोपियन और भारतीय सज्जन उपस्थित हुए थे। इसी में बड़े समारोह के साथ महाराजा पूर्ण राज्याधिकारों से विभूषित किये गये। इस अवसर पर तत्कालीन पोलिटिकल एजेण्ट कैप्टन पौलेट और एजेण्ड टु दी गवर्नर जनरल कर्नल ब्रूक्स ने महाराजा की योग्यता, बुद्धिमत्ता, कार्य-कुशलता और शासन-पटुता की प्रशंसा की, और कहा कि आपको नियमित अधिकार प्राप्त होने के कुछ ही समय बाद राज्य के कई महकमों की स्थिति आशातीत-रूप से सुधर गई।

महाराजा का राज्यकार्य

महाराजा जसवन्तसिंह जी केवल शिकार तथा खेलकूद में अपना समय बर्बाद नहीं किया करते थे, वरन् राज्य-कार्य में भी वे बड़ी दिलचस्पी लिया करते थे। आप खुद मुकद्दमों की सुनवाई करते तथा उनका यथासमय निर्णय करते। कहा जाता है कि बड़ी गहरी जाँच और सूक्ष्म पर्य्य-

वेक्षण के बाद आप मुकद्दमों का फ़ैसला दिया करते थे, जिससे किसी पर अन्याय न हो ।

इसी समय भारत के तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड मेयो का अंदमान टापू में किसी क़ैदी ने खून कर डाला । लॉर्ड महोदय महाराजा जसवन्तसिंह जी के बड़े मित्र थे । आपकी मृत्यु का समाचार सुन कर महाराजा साहब को बड़ा दुःख हुआ । आपने आपके स्मृति-भवन के लिये ३०० रुपये प्रदान किये ।

ई० सन् १८७३ में जयपुर और अलवर में भीषण रूप से मुसलधार वृष्टि हुई । बाण-गंगा और रूपारेल नामक नदियों में बड़े जोर की बाढ़ आई । चारों ओर जल ही जल हो गया । भरतपुर के आस पास के तालाब फूट निकले, कई गाँव के गाँव बह गये । सड़कें बगटाढार हो गयीं । कोई ६००००० रुपयों का नुक़सान हुआ । नदी किनारे की सारी खरीफ फ़सल नष्ट हो गई । ऐसे कठिन समय में महाराजा जसवन्त सिंह जी ने बड़ा प्रजा-प्रेम प्रदर्शित किया । आपने अपने पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेन्ट के सारे आदमियों को तथा फौज और पुलिस को अपनी प्रिय प्रजा की जान और माल की रक्षा करने के लिये लगा दिया । इतना ही नहीं, खुद महाराजा दिन और रात शहर और आस पास के गाँवों में घूम २ कर अपनी प्रिय प्रजा की रक्षा का आयोजन करते और सरकारी अधिकारी इस कठिन समय में प्रजा की रक्षा के लिये कैसा काम कर रहे हैं, इसका निरीक्षण किया करते थे । इस प्रशंसनीय कार्य से भरतपुर की प्रजा के हृदय में महाराजा ने अपना विशेष स्थान प्राप्त कर लिया था ।

रूपारेल का मामला

रूपारेल नदी का उद्गम-स्थान अलवर राज्य में है । पुराने समय से इस नदी का जल भरतपुर राज्य की भूमि को सींचने (Irrigating) के काम में लाया जाता है । ई० सन् १८०५ की १४ अक्टूबर को अलवर दरबार ने लॉर्ड लेक के साथ जो इकरारनामा (Agreement) किया था, उसमें

उन्होंने स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया था कि आवश्यकतानुसार भरतपुर राज्य के लिये यह नदी खुली रहेगी। अलवर दरबार ने इस इकरारनामे का बराबर पालन नहीं किया। इससे कई बार भारत सरकार को इस मामले में हस्तक्षेप करना पड़ा। ई० सन् १८३७ की १५ फरवरी को भारत सरकार ने यह निर्णय किया कि उक्त नदी का आधा आधा जल दोनों रियासतें बराबर बाँट लें। यह हुक्म अलवर और भरतपुर दोनों रियासतों ने स्वीकार कर लिया, तथापि इसके अमलदरामद में कुछ न कुछ बखेड़ा होता ही रहा। इस पर ई० सन् १८५४ में कर्नेल सर हेनरी (एजेन्ट टु दी गवर्नर जनरल) ने एक नई व्यवस्था की। वह यह कि प्रत्येक वर्ष की १० अक्टूबर से ९ जून तक अर्थात् ८ मास तक नदी अलवर राज्य के लिये और शेष ४ मास तक भरतपुर राज्य के लिये खुली रहे।

इस व्यवस्था से १८ मास तक दोनों दरबारों के बीच शान्ति रही। पर इसके बाद अलवर राज्य भरतपुर के इस अधिकार पर अनुचित आक्रमण करने लगा। वह भरतपुर सरकार के खिलाफ ब्रिटिश सरकार के पास शिकायतें भी करने लगा। ई० सन् १८७३ में अलवर के पोलिटिकल एजेन्ट कैप्टन केडेल ने इस सम्बन्ध में एक लम्बा मेमोरेन्डम बना कर एजेन्ट टु दी गवर्नर जनरल के पास भेजा। जब महाराजा जसवन्त सिंह जी को इसकी खबर लगी तो उन्होंने इस मामले को फिर से उठाने के लिये ज़ोर दिया। भरतपुर के तत्कालीन पोलिटिकल एजेन्ट कैप्टन रॉबर्ट ने आपका समर्थन किया। तत्कालीन एजेन्ट टु दी गवर्नर जनरल सर ल्यूईस पेली ने अलवर राज्य के पक्ष की कमजोरी को बतलाते हुए यह मामला भारत सरकार के पास भेज दिया। भारत सरकार ने इसका निर्णय भरतपुर दरबार के पक्ष में किया। भरतपुर दरबार की विजय हुई। भारत सरकार के सेक्रेटरी ने राजपुताना के ए. जी. जी. को ई० सन् १८७४ की ७ वीं अक्टूबर को पत्र नंबर २२०० पी. भेजा था उसका सारांश यह है:—

"श्रीमान् वाइसराय का अपनी कौन्सिल सहित यह मत है कि इस प्रकार

के झगड़ों के निर्णय का जो कि इस सदी के आरम्भ से दो रियासतों के बीच चल रहे हैं, यही एक सुरक्षित मार्ग है कि मौजूदा व्यवस्था ही का अमल दरामद रखा जावे। अतएव आपसे अनुरोध किया जाता है कि आप दोनों दरबारों को यह सूचित कर दें कि निश्चय रूप से मौजूदा व्यवस्था ही का अमलदरामद रहेगा"।

"ई० सन् १८०५ में अलवर ने यह इकरार किया था कि लामखोरी नदी का बाँध भरतपुर राज्य के प्रान्तों के लाभ के लिये आवश्यकतानुसार हमेशा खुला रहेगा। ई० सन १८५४ में सर हेनरी लारेन्स ने जो व्यवस्था की और जिसका अमलदरामद अभी तक है, उसका आशय ही यह है कि भरतपुर की आवश्यकताओं की पूर्ति की जावे और गवर्नर जनरल इस व्यवस्था को नयी शुरू की हुई पैमाइश आदि के प्रश्नों की भित्ति पर मिटाने का कोई कारण नहीं देखते"।

बाणगंगा का मामला

ई० सन १८७३ में जयपुर दरबार ने बाणगंगा नदी के जल को रोकने के लिये जामवाई रामगढ़ के पास एक बाँध बँधवाने की योजना की थी। भरतपुर दरबार ने इसका विरोध किया इस नदी से न केवल भरतपुर राज्य के सैकड़ों गाँवों की आबपाशी होती है, वरन खास भरतपुर शहर भी पीने के जल के लिये इसी पर निर्भर है। महाराज के विरोध करने पर राजपुताना डिस्ट्रिक्ट आगरा के सुपरिन्टेन्डिंग इञ्जिनियर की अध्यक्षता में, इस मामले की जाँच करने के लिये एक कमेटी बनी और पूरी जाँच करने के बाद उसने पत्र नम्बर १२४ सी० तारीख २१ नवम्बर सन १८७३ को जो वक्तव्य लिख भेजा उसने बाँध न बाँधने देने का मत प्रदर्शित करते हुए उन हानियों को दर्शाया जो इस बाँध के द्वारा आसपास की रियासतों को हो सकती थीं। इस पर भारत सरकार ने जयपुर दरबार को सूचित किया कि इस प्रकार के बाँध से भरतपुर राज्य को जो हानि पहुँचेगी, उसकी क्षति की पूर्ति जयपुर दरबार

को करनी होगी। जयपुर दरबार ने यह शर्त मंजूर करना ठीक न समझा। इससे बाँध बँधवाने की योजना गर्भ ही में विलीन हो गई।

पोलिटिकल एजेन्सी

महाराजा जसवन्तसिंह जी ने कई कारण दिखला कर भारत सरकार से यह अनुरोध किया था कि वह भरतपुर से पोलिटिकल एजेन्सी उठाकर कहीं अन्यत्र उसकी स्थापना कर दे। भारत सरकार ने महाराजा की इस अभिलाषा को शुद्ध भाव से प्रेरित हुई समझ कर पोलिटिकल एजेन्सी को उस वक्त आगरे में बदल दिया। आगरे में पोलिटिकल एजेन्सी के लिये महाराजा ने बड़े खर्च से सुन्दर और सुसज्जित मकान की व्यवस्था कर दी थी।

दिल्ली-दरबार

श्रीमती सम्राज्ञी विक्टोरिया के सम्राज्ञी पद धारण करने के उपलक्ष्य में ई० सन् १८७७ में दिल्ली में जो आलीशान दरबार हुआ था, उसमें महाराजा जसवन्तसिंह जी भी पधारे थे। इस अवसर पर महाराजा के० सी० एस० आई० की उपाधि से विभूषित किये गये थे।

अकाल और महाराजा का प्रजा-प्रेम

ई० सन १८७७ में भयङ्कर अकाल पड़ा। यह अकाल "चौंतीस का अकाल" नाम से मशहूर है। क्योंकि यह विक्रम संवत् १९३४ में पड़ा था।

उक्त साल के सितम्बर मास में महाराजा जसवन्तसिंहजी शिमले में थे। जब आपने अकाल के कारण अपनी प्रजा की दुर्दशा का हाल सुना तो आपने शिमले की अधिक सैर करने के बजाय अपनी प्रिय प्रजा की सुध लेना अधिक उचित समझा। आप श्रीमान् वाइसराय से मिलते ही तुरन्त भरतपुर के लिये रवाना हो गये। भरतपुर आते ही आपने अपनी प्रिय प्रजा के कष्ट-निवारण के लिये प्रबन्ध करना शुरू किया।

सब से पहले महाराजा साहब ने अपने राज्य के तहसीलदारों को आज्ञा दी कि वे मौजो वसूली (भूमि कर की प्राप्ति) का काम कतई बन्द

कर दें और किसानों को परवरिश के लिये पेशगी रुपया (Advances) दें। साहूकारों को बुलाकर महाराजा ने उनसे अनुरोध किया कि वे ऐसे कठिन समय में किसानों को कर्ज दें। इतना ही नहीं, प्रजाप्रिय महाराजा ने इस कर्ज की सारी जिम्मेदारी अपने कन्धों पर ले ली। बाहर से आने वाले अनाज का सारा महसूल उठा दिया गया। व्यापारियों को खूब प्रोत्साहन दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि बाहर से बहुत सा अनाज आगया।

भरतपुर और डिग में गरीब-खाने खोले गये, जहाँ हजारों भूखे और अनाथों को मुफ्त भोजन मिलने का प्रबन्ध था। बीसों ऐसे काम शुरू किये गये जिनमें हजारों गरीबों को मजदूरी कर अपना पेट भरने के साधन मिल गये।

इसी समय राज्य के उच्चाधिकारियों ने महाराजा से निवेदन किया कि वे (महाराज) अपनी धनिक प्रजा एवं राज्याधिकारियों से चन्दा वसूल कर अकाल-निवारण के कार्य को सुसम्पन्न करें। पर उदार-चित्त महाराजा ने बड़ी घृणा के साथ इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया और कहा कि जब अकाल के कारण सब तकलीफ पा रहे हैं और सब लोगों के खर्च बढ़ रहे हैं ऐसी हालत में लोगों पर नया कर बैठाना या उन पर नया आर्थिक बोझ डालना अन्याय है मैं इसे कभी पसन्द नहीं करता। आपने किसी से चन्दा वसूल नहीं किया। सारा का सारा खर्चा राज्य पर डाल दिया। थोड़े दिनों के बाद वर्षा हो जाने से स्थिति सुधर गई, पर महाराज की दानशीलता, उनका अत्युच्च प्रजा-प्रेम, और अपने ऐशो-आराम से अधिक उनकी प्रजा कल्याणकारी प्रवृत्ति का जाज्वल्यमान चित्र प्रजा के हृदयों में अङ्कित हो गया।

ई० सन १८७७ के दिसम्बर मास में भारत-सरकार का निमन्त्रण पाकर महाराजा जसवन्तसिंह जी कलकत्ते पधारे। यहाँ आप वाईसराय के मेहमान होकर ठहरे। आपके अनेक शुभ कृत्यों से प्रसन्न होकर भारत सरकार ने आपको जी० सी० एस० आई० की उपाधि से विभूषित किया। इसी समय आप जगन्नाथ जी की यात्रा को भी पधारे।

नमक का मामला

भरतपुर राज्य के भरतपुर, कुम्हेर और डिग आदि स्थानों में प्रति-साल लगभग १५००,००० मन नमक निकलता था। इस पर ५०००० आदमियों की रोटी चलती थी। रियासत को इससे प्रति साल ३००००० रुपयों की और साम्राज्य सरकार को ५०,००,००० रुपयों की आमदनी थी। ई० सन् १८७९ में जब भारत सरकार ने जयपुर और जोधपुर राज्य से कुछ निश्चित रकम प्रतिसाल देकर साँभर नमक की झील पर अधिकार कर लिया, उसी समय भरतपुर दरबार और ब्रिटिश सरकार के बीच एक समझौता हुआ जिसके अनुसार भरतपुर राज्य से नमक निकालने का काम बिलकुल बन्द कर दिया गया। राज्य की इसमें बड़ी भारी क्षति हुई। हजारों आदमियों के पेट की रोज़ी गई। यह सब कार्रवाई क्यों और किस प्रकार हुई, इस पर यहाँ अधिक लिखने का अवसर नहीं है। भारत सरकार ने यह चाहा था कि महाराजा को कुछ क्षति-पूर्ति की रक़म दी जावे। पर महाराजा साहब ने इसे लेना उचित नहीं समझा। तब भी भारत सरकार ने अपनी खुशी से १५००० नकद और १००० मन सांभरी नमक देने का निश्चय किया। यह रक़म भारत सरकार की ओर से बराबर रियासत को दी जा रही है।

अपराधियों का लेन-देन

भारत सरकार की मंजूरी से भरतपुर दरबार और अलवर, करौली, धौलपुर तथा जयपुर रियासतों के बीच अपराधियों की गिरफ्तारी और उनके लेन-देन के सम्बन्ध में सन्धि हुई।

ई० सन् १८८४ में भरतपुर दरबार ने शराब, अफ़ीम और अन्य विषैली चीज़ों को छोड़ कर सब चीज़ों पर लगने वाला जावक महसूल उठा दिया।

ई० सन् १८८५ की [illegible] ली अगस्त को भारत सरकार की मंजूरी से अलवर और भरतपुर राज्य के बीच कुछ गाँवों का परिवर्तन हुआ।

महाराजा की उदारता

ई० सन १८८३-८४ में वर्षा की कमी के कारण खरीफ फसल को बड़ी हानि पहुँची। उदार-चित्त और सहृदय महाराजा ने इस समय भूमि-कर के १३९५३५० रुपये माफ कर अपने प्रजा-प्रेम का परिचय दिया। इतना ही नहीं, श्रीमान ने किसानों को बैल आदि खेती के जानवर खरीदने के लिये तथा कच्चे कुएँ खुदवाने के लिये तकावी दी।

ई० सन १८८३ में महाराजा जसवन्त सिंह जी भरतपुर पधारे और वहाँ आपने श्रीमान ड्यूक आफ कनाट तथा वाइसराय आदि महोदयों से मुलाक़ात की। इस के कुछ दिन पश्चात् श्रीमान् ड्यूक आफ कनाट डिग और भरतपुर में पधारे और श्रीमान महाराजा जसवन्तसिंह जी के अतिथि रहे।

ई० सन् १८८४ में भारत के तत्कालीन प्रधान सेनापति सर डोनल्ड स्टूअर्ट भरतपुर पधारे। महाराजा साहब ने आपका योग्य स्वागत किया।

ई० सन् १८८९ में भारत के तत्कालीन वाइसराय लार्ड डफरिन महोदय भरतपुर पधारे। यहाँ आपने राज्य के अनेक ऐतिहासिक स्थानों का निरीक्षण किया। महाराजा जसवन्तसिंह जी ने आपका बड़ा आदरातिथ्य किया।

ई० सन् १८९० में भारत सरकार ने महाराजा के अनेक कार्य्यों से प्रसन्न होकर आपकी तोपों की सलामी १७ से बढ़ा कर १९ कर दी।

ई० सन् १८९२ की १८ एप्रिल को श्रीमान् के द्वितीय पुत्र महाराजकुमार नारायण सिंह जी का देहावसान हो गया। आप पर महाराजा का बड़ा ही स्नेह था। अतएव आपकी मृत्यु से महाराजा के चित्त को बड़ा ही धक्का पहुँचा।

ई० सन् १८७३ में आस्ट्रिया के राजकुमार आर्च ड्यूक फर्डिनन्ड भरतपुर पधारे। महाराजा ने उनका बड़ा स्वागत किया।

ई० सन् १८९३ में महाराजा लार्ड लेन्सडाउन से मिलने के लिये

आगरा जाने की तैयारी कर रहे थे। अकस्मात् आप पर प्राण-घातक व्याधि का आक्रमण हो गया और उसीसे १२ दिसम्बर को आपका स्वर्गवास हो गया। प्रजा-प्रिय महाराजा जसवन्तसिंहजी के स्वर्गवास का समाचार विद्युत् वेग की तरह सारे राज्य में फैल गया। चारों ओर शोक का साम्राज्य छा गया। प्रजा को हार्दिक दुःख हुआ।

महाराजा जसवन्तसिंह जी के जीवन पर एक दृष्टि

भरतपुर के एक इतिहास-लेखक ने लिखा है—" अगर महाराजा सूरजमल जी के यशस्वी और प्रकाशमान कार्यों ने उन्हें भारतवर्ष के इतिहास में प्रसिद्ध कर दिया और भरतपुर राज्य को जन्म दिया तथा उसका विस्तार सुदूर प्रदेशों तक कर दिया; अगर महाराजा रणजीतसिंह ने अभूतपूर्व वीरत्व का प्रकाशन कर बड़ी चतुराई के साथ आत्म-रक्षा करने का यत्न किया और इतिहास में अपने नाम को गौरवान्वित किया तथा समय आने पर ब्रिटिश सरकार के साथ फिर से स्नेह-सम्बन्ध स्थापित कर लिया, वैसे ही महाराजा जसवन्तसिंह जी ने भरतपुर को समय की आवश्यकतानुसार उच्च श्रेणी का राज्य बनाने का यत्न किया।

महाराजा रामसिंहजी

महाराजा जसवन्तसिंह जी के बाद उनके पुत्र महाराजा रामसिंह जी राज्यसिंहासन पर बैठे। आप योग्य रीति से शासनसूत्र को सञ्चालित न कर सके। इससे भारत सरकार ने पहले तो आपके राज्याधिकार कम कर दिये और बाद में एक आदमी को गोली से मार देने के कारण आप राज्यच्युत कर दिये गये।

भरतपुर के वर्तमान महाराजा श्री विजेन्द्र सवाई किशनसिंह जी बहादुर हैं। आपको लेफ्टनंट कर्नल की उपाधि है। आपका जन्म ई० स० १८९९ की ४ थी अक्तूबर को हुआ था। आपके पिता महाराजा रामसिंह जी ई० स० १९०० की २७ वीं अगस्त को राज्यकार्य्य से अलग हुए। उस समय आपकी आयु लगभग १ वर्ष की थी। अतएव आपके बालिग होने तक राज्यशासन पोलिटिकल एजेंट एवं कौंसिल आफ रिजेन्सी के हाथों में रहा। आपने ई० स० १९१६ तक अजमेर के मेयो कॉलेज में विद्याध्ययन किया। इसके पश्चात् डिप्लोमा की परीक्षा उत्तीर्ण कर आप भरतपुर में शासन-कार्य्य सीखने लगे। दो वर्ष तक आप लगातार शासनव्यवस्था का अध्ययन करते रहे। ई० सन् १९१८ की २८ वीं नवंबर को आपको तत्कालीन वाइस॰राय लॉर्ड चेम्स फोर्ड द्वारा सम्पूर्ण शासनाधिकार प्राप्त हुए।

ई० स० १९१३ की ३ री मार्च को आपका विवाह फरीदकोट के स्वर्गीय महाराजा साहब की कनिष्ठ भगिनी के साथ सम्पन्न हुआ। ई० स० १९१४ में आप इंगलैंण्ड पधारे तथा वेलिंगटन कालेज में भरती हुए। वहाँ आपने उस वर्ष के नवंबर मास तक विद्याभ्यास किया। इसके पश्चात् आप वापस लौट आये। आपके युवराज का नाम महाराज कुमार विजेन्द्रसिंह जी है। इनका जन्म ई० स० १९१८ की ३० वीं नवंबर को हुआ था। ये ही भरतपुर राज्य के भावी महाराजा हैं।

श्रीमान् वर्तमान भरतपुर-नरेश प्रतिभा-सम्पन्न और बुद्धिमान महानुभाव हैं। आप बड़े ही सहृदय और मिलनसार हैं। इन पंक्तियों का लेखक

उनके सादे मिजाज और सौजन्य-पूर्ण वृत्ति को देखकर बड़ा प्रभावित हुआ। उनके व्यवहार में—वार्तालाप में—उसने एक प्रकार का आकर्षण देखा।

भरतपुर-नरेश और बेगार

श्रीमान् भरतपुर नरेश ने अपने राज्य में घोषणा द्वारा बेगार लेने की कतई मनाही कर दी है। राजपूताने के नरेशों में आप पहले ही हैं जिन्होंने इस सम्बन्ध में एक आदर्श उपस्थित किया।

समाज-सुधार

श्रीमान भरतपुर-नरेश समाज सुधार के बड़े पक्षपाती हैं। पुष्कर में जाट महासभा के सभापति की हैसियत से आपने जो भाषण दिया था, उससे आपके प्रगतिशील विचारों का पता चलता है। उसमें आपने शुद्धि और सङ्गठन पर भी बड़ा जोर दिया था।

श्रीमान् का साहित्य-प्रेम

श्रीमान का हिन्दी साहित्य पर बड़ा प्रेम है। हिन्दी के सुविख्यात् लेखक श्रीयुत जगन्नाथदास जी अधिकारी को आपही ने महन्त के पद पर अधिष्ठित किया है। भरतपुर में इस साल जिस अपूर्व समारोह के साथ हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, आर्य्य-सम्मेलन तथा सम्पादक-सम्मेलन आदि हुए उससे श्रीमान के उत्कृष्ट साहित्य-प्रेम की सूचना मिलती है। आपही की कृपा का फल है कि यह साहित्य-सम्मेलन अपूर्व था और जगद्विख्यात हो, रवीन्द्रनाथ, विश्वकीर्ति विज्ञानाचार्य्य जगदीशचन्द्र बसु, पूज्यवर्य्य पं० मदनमोहन मालवीय आदि विभूतियों ने इस सम्मेलन की शोभा को बढ़ाया था। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस सम्मेलन का सारा खर्च श्रीमान् ने दिया था।

कहने का अर्थ यह है कि श्रीमान् भरतपुर नरेश एक होनहार और प्रतिभासम्पन्न महानुभाव हैं। अगर आप के आस पास योग्य वायुमण्डल रहा तो आप भारतीय नृपतियों के लिये एक उच्च आदर्श उपस्थित कर सकेंगे।

HISTORY OF THE BIKANER STATE.

बीकानेर राज्य का इतिहास

बीकानेर राज्य के शासक उस पराक्रमी और सुप्रसिद्ध राठौड़ शाखा के हैं जिसके शौर्य्य, साहस तथा रणकौशल का वर्णन हम पहले कर आये हैं। ये उन्हीं शक्तिशाली राव जोधाजी के वंश के हैं, जिनका वर्णन हम जोधपुर के इतिहास में सविस्तर कर चुके है। इस राज्य के मूल-संस्थापक मारवाड़ के राजकुमार बीकाजी थे। ये मारवाड़ के प्रसिद्ध वीर महाराज जोधाजी के पुत्र थे। इन्हीं जोधाजी ने अपने राज्य की प्रचीन राजधानी मंडोर को छोड़कर ई० सन् १५१५ में जोधपुर में नवीन राजधानी स्थापित की थी।

राव बीकाजी

जिस समय जोधाजी अपनी नवीन राजधानी में आये, उस समय आपके वीर पुत्र कुमार बीकाजी अपने चचा काँधलजी के साथ तीन सौ राठौड़ों की सेना लेकर अपने पिता के राज्य की सीमा दूर २ तक फैलाने के लिये रवाना हुए। आपके इस दिग्विजय-प्रस्थान के पहिले आपके भाई बीदा ने भारत के प्राचीन निवासी मोहिलों पर आक्रमण कर उन्हें अपने आधीन कर लिया था। अपने भ्राता की इसी विजय से उत्साहित होकर कुमार बीकाजी ने एक छोटी सी राठौड़ सेना के साथ देश-विजय के लिये प्रस्थान किया। आप ने जाङ्गाल नामक स्थान पर साँखला नाम की प्राचीन जाति पर आक्रमण किया। घमासान युद्ध होने पर सांखला लोगों की पराजय हुई। इस विजय से आपका बल, विक्रम और

साहस मरू-भूमि की चारों दिशाओं में गूँज उठा। इस युद्ध में विजय प्राप्त कर आप भाटियों के पुंगल देश में पहुँचे। पुंगल-पति ने आपके प्रताप की महिमा सुन रखी थी। अतएव उसने अपनी कन्या का विवाह आपके साथ कर दिया। चतुर पुंगलपति को यह भली भाँति ज्ञात था कि वीर बीकाजी को युद्ध में दो २ हाथ दिखाने के बदले उनसे सम्बन्ध कर अपनी स्वाधीनता की रक्षा करना ही श्रेयस्कर हैं। इधर आपने देखा कि जब भाटी जाति के अधीश्वर पुंगल-पति ने अपने वंश में खुद होकर कन्या दी है तो उन्हीं के राज्य को दबा बैठना उचित नहीं। अतएव आपने भाटी जाति की स्वतंत्रता में किसी प्रकार का दखल नहीं दिया। आपने कोड़मदेसर नामक स्थान में एक किला बनवाया और आप वहीं रहने लगे। धीरे २ निकटवर्ती प्रदेशों को अपने अधीन कर आप अपने राज्य की सीमा बढ़ाते रहे। आपकी असीम-साहसी राठौड़ सेना के विरुद्ध किसी भी जाति के अधिपति की न चली। जिस २ जाति ने आपसे युद्ध करने का साहस किया, उसे उलटे मुँह खानी पड़ी तथा आप की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। इस प्रकार धीरे २ अपने राज्य को सुदृढ़ बनाकर आपने जाट जाति पर विजय प्राप्त करने का विचार किया। जाट जाति का विस्तृत वृतान्त हम भरतपुर के इतिहास में वर्णन कर आये हैं। यह जाति उस समय कृषि से अपनी जीविका उपार्जन करती थी। आप नेजिस जाट प्रान्त पर हमला करने का विचार किया था, वहाँ के जाट अथवा जेहियाण केवल पशुओं के पालन से अपनी जीविका निर्वाह करते थे। वे "गोहरा जाट" शाखा के थे। उसकी धन सम्पत्ति तथा उनका सर्वस्व केवल पशु ही थे। जिस समय आप नवीन राज्य स्थापना की-अभिलाषा से-इन जाट लोगों के देश को जीतने के लिये आगे बढ़े, उस समय आपके उद्देश की पूर्ति के लिये बहुत से उपयुक्त साधन आपको प्राप्त होगये। कहना न होगा कि जिस फूट से भारतवर्ष की राज्यशक्ति का विध्वंस होगया है, यदि उसी फूट का अंश जाटों के हृदय में प्रज्वलित न होता तो आपको बिना युद्ध किये इस जाति पर विजय प्राप्त न होती। जाटों की छः सम्प्रदायों में से

जाहिया और गोदरा नामक दो अत्यन्त सामर्थ्यवान शाखाओं में परस्पर अन-बन थी। बस, यही एक मुख्य कारण था कि आपको अखिल जाट जाति का आधिपत्य प्राप्त होगया। आपकी विजय का दूसरा कारण यह था कि क्रूर स्वभाव मोहिल जाति के साथ इन जाटों की भयंकर शत्रुता थी। आपके वीर भ्राता-कुमार बीदा ने, कुछ ही दिन हुए, तब अपनी राठौड़ों की प्रबल सेना द्वारा इस जाति का विनाश कर अपनी बीरता का परिचय दिया था। जाट लोगों के हृदय में उनकी बीरता पूर्ण रूप से अंकित थी। वे जानते थे कि बीर बीका का युद्ध में सामना करना बड़ी टेढ़ी खीर है। इसके अतिरिक्त जैस-लमेर के भाटी लोग इन जाटों पर बड़े अत्याचार करते थे। इनके अत्याचारों से बचने की सम्भावना न देख, जाट जाति ने आत्म सम्र्पण करने का निश्चय किया।

गोदरा जाट जाति की एक साधरण सभा हुई। इसमें निम्नलिखित तीन प्रस्ताव स्वीकृत करने की शर्त पर जाटों ने वीर बीकाजी के हाथ आत्म-समर्पण करने का निश्चय किया।

(१) जोहिया तथा जो अन्यान्य जाट, गोदरा जाति के साथ शत्रुता और अत्याचार करते हैं, उनके खिलाफ बीकाजी युद्ध करें।

(२) भाटी गण गोदरा जाति पर आक्रमण न करने पावें, इसलिये उनकी पश्चिमी सीमा की रक्षा बीकाजी करें।

(३) यहाँ के निवासियों के चिर प्रचलित स्वत्वों में बीका जी किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करें।"

सेखासर और रुनिया के दो जाट नेताओं ने बीकाजी के सन्मुख जाकर उपरोक्त तीनों प्रस्ताव उपस्थित किये। नीति-विशारद बीका ने इन प्रस्तावों में तुरन्त ही अपनी सम्मति प्रदर्शित की। आपके इस प्रकार सम्मति देते ही गोदरा लोगों ने आपको तथा आपके उत्तराधिकारियों को अपना अधीश्वर स्वीकृत कर लिया। आपने उक्त प्रस्ताव स्वीकृत करते हुए कहा था—"मैं तथा मेरे उत्तराधिकारी किसी भी समय तुम्हारे अधिकारों में हस्तक्षेप न

करेंगे। यह बात ज्वलन्त रहने के लिये मैं यह नियम बनाता हूँ कि मैं और मेरे उत्तराधिकारी राज्याभिषेक के समय में तुम और तुम्हारे दोनों नेताओं के वंशधरों से राजतिलक ग्रहण किया करेंगे और जब तक इस तरह राजतिलक न दिया जायगा, तब तक राजसिंहासन सूना समझा जायगा।"

गोदरा जाट जाति को इस प्रकार अपने अधीन कर आपने उनके अधिपति के निकट यह प्रस्ताव किया कि "आपका देश मुझे दे दो, मैं इस स्थान पर अपनी राजधानी स्थापित करूँगा।" इस अधिकारी का नाम 'नेरा' था। आपके प्रस्ताव के प्रत्युत्तर में नेराजी ने कहा कि, "मैं अपना देश आपको देने के लिये तैयार हूँ, परन्तु इस देश से मेरे सम्बन्ध की स्मृति कायम रखने के लिये आपको अपने नाम के साथ मेरा नाम जोड़ कर राजधानी का नाम रखना होगा।" यह बात भी आपने तुरन्त ही स्वीकार कर ली। यही कारण है कि आपने जो नगर बसाया उसका नाम बीकानेर रखा गया। कहने की आवश्यकता नहीं कि, आपने उपरोक्त प्रतिज्ञाओं का पूरी तौर से पालन किया। आज तक दिवाली और होली के समय में शेखासर और रूणिया के प्रधान जाट नेता बीकानेर के अधीश्वर तथा समस्त राठौर सामन्तों को तिलक करते हैं।

जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं जोहिया जाटों और गोदरा जाटों में जानी दुश्मनी थी और आपने जोहिया लोगों को परास्त करने का गोदरा जाटों को अभिवचन दिया था। अतएव अपने विजित प्रदेश की ठीक तौर से व्यवस्था कर लेने के पश्चात् आपने वीर राठौरों तथा नवजीत गोदरों के साथ जोहिया जाटों पर आक्रमण किया। जोहियों के सर्व प्रधान नेता का नाम शेरसिंह था। यह मरूपाल नामक स्थान में निवास करता था। इसने अपनी समस्त सेना सहित आपके खिलाफ़ युद्ध करने की तैयारी कर रखी थी। बराबर कई युद्धों में विजयी होकर भी आप इस युद्धों में सरलता से विजय प्राप्त न कर सके। शत्रुगण अद्भुत पराक्रम दिखाकर आपके छक्के छुड़ाने लगे। अन्त में विजय की कोई सूरत न देख, आपने षड्यंत्र द्वारा शेरसिंह

को मार डाला तथा मरूपाल स्थान पर अपना अधिकार कर लिया। विवश होकर जोहिया जाट जाति भी आपके अधीन हो गई।

इस प्रकार एक के बाद एक प्रान्त जीत कर आपने एक विस्तृत प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया। भाटी लोगों को भी आपने पूर्ण शिकस्त दी। ई० स० १४८९ की १५ मई को आपने बीकानेर में अपनी राजधानी स्थापित की।

राजधानी स्थापन करने के पश्चात् आप अधिक दिन तक राज्य न कर सके। संवत् १५५१ में आपका स्वर्गवास हो गया।

राव लूणकरणजी

पाठक जानते हैं कि बीकाजी ने पुँगल-निवासी भाटियों के अधीश्वर की कन्या के साथ विवाह किया था। इन पुँगल पति की कन्या से बीकाजी को लूणकरण और घड़सी नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। बीकाजी के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र लूणकरणजी अपने पिता के सिंहासन पर विराजे। आप अपने पिता के समान ही साहसी एवं वीर नृपति थे। राजपद पर अभिषिक्त होकर आपने अपने राज्य की पश्चिमी सीमा को बढ़ाने के लिये एक एक कर भाटियों के अनेक स्थान जीत लिये। जिस समय आपने अपने बाहुबल से अपने राज्य की सीमा बढ़ा ली, उस समय आपके चारों पुत्रों में से सबसे ज्येष्ठ पुत्र ने महाजन नामक देश और १४४ दूसरे ग्राम लेकर स्वतन्त्र रूप से राज्य करने की इच्छा प्रकट की। आपने तुरन्त ही अपने राजकुमार की अभिलाषा पूरी कर, अपने द्वितीय पुत्र जैतसी को राज्य का उत्तराधिकारी नियुक्त किया। सम्वत् १५६९ में आपकी मृत्यु हो गई।

राव जैतसिंहजी

लूणकरण जी के पश्चात् उनके द्वितीय पुत्र जैतसिंहजी राज्य गद्दी पर बैठे। आपके दो छोटे भाई और थे। इन्होंने भी आपसे दो स्वतन्त्र देश और

थोड़ी सी जमीन ले ली और स्वतन्त्रतापूर्वक राज्य करने लगे। आपमें अपने पराक्रमी पूर्वजों के सभी गुण विद्यमान थे। आप बीकाजी ही के समान वीर थे। आपके तीन पुत्र थे, जिनका नाम क्रमशः कल्याणमल, शिवजी और अश्वपाल था। आपने नारनौल नामक देश के अधिनायक को युद्ध में परास्त कर उस पर अपना अधिकार कर लिया तथा अपने दूसरे पुत्र शिवाजी को उसका अधिपति नियुक्त किया। बीकाजी के दिग्विजय प्रस्थान के पहिले ही उनके भाई वीर बीदाजी ने अपनी सेना सहित नारनौल में आकर वहाँ अपनी छावनी स्थापित की थी। इस समय तक बीदाजी के वंशजों का इस छावनी पर अधिपत्य था। आपने उन्हें युद्ध में परास्त कर अपने अधीन कर लिया तथा उन्हें प्रति वर्ष निश्चित 'कर' देने के लिये भी बाध्य किया। संवत् १६०३ में आप परलोकवासी हो गये।

राव जैतसिंह जी के परलोकवासी होने पर ज्येष्ठ पुत्र कल्याणमलजी पिता के सिंहासन पर विराजे। यद्यपि आपके शासनकाल में बीकानेर राज्य की सीमा में कुछ भी वृद्धि न हुई और न कोई उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ, तथापि आपने एक दीर्घकाल तक अपने पूर्वजों द्वारा अधिकृत किये हुए राज्य का निर्विघ्नता से उपभोग किया। आपके तीन पुत्र हुए—पहिले रायसिंह, दूसरे रामसिंह और तीसरे पृथ्वीसिंह। आपने संवत् १६३० में इहलोक की यात्रा संवरण की।

महाराजा रायसिंहजी

स्वर्गीय कल्याणमल जी के पश्चात उनके ज्येष्ठ पुत्र रायसिंह जी राज-सिंहासन पर बैठे। आपके शासन-काल में बीकानेर राज्य के गौरव की सीमा बढ़ने लगी। आपके राजपद पर अभिषिक्त होने के पहले बीकानेर एक छोटासा राज्य गिना जाता था। यद्यपि एक के बाद एक वीर एवं साहसी राजाओं ने इस राज्य की सीमा को दूर २ तक फैलाया था, तथापि मानमर्यादा में यह राज्य एक सामान्य राज्य की श्रेणी में गिना जाता था। आपने सिंहासनारूढ़ होकर राजनैतिक रंगभूमि में पदार्पण किया। आपकी राजनीतिज्ञता एवं दूरदर्शिता ने बीकानेर राज्य को गौरव के इतने ऊँचे शिखर पर पहुँचा दिया कि थोड़े ही समय में उसकी गणना एक महान शक्तिशाली राज्य में की जाने लगी। आपके शासन-समय में दिल्ली के सिंहासन पर सम्राट् अकबर विद्यमान थे। अधिकांश राजपूत राजा दिल्ली के मुगल बादशाह की अधीनता स्वीकार कर अपने राज्यों की सीमा-वृद्धि कर रहे थे। आपने निश्चय किया कि केवल बीकानेर के शासनकार्य्य से ही सन्तुष्ट होकर समय बिताना उचित नहीं है, वरन ऐसे स्वर्णावसर से उचित लाभ उठाकर अपनी बराबरी वाले अन्यान्य राजाओं की तरह नाम और यश पाने की चेष्टा करना योग्य है। आप इस बात को भली भाँति जानते थे कि अवश्य ही एक दिन ऐसा आवेगा जब कि दिल्ली के बादशाह बीकानेर पर अधिकार करके हमें अधीन करने का प्रयत्न करेंगे। जब एक के बाद एक अनेक राजपूत राजा अकबर की अधीनता स्वीकार करने लगे तब विवश होकर, आपने भी उसे स्वीकार कर लिया।

अपने पिता के परलोकवासी होने पर आप खुद उनकी भस्म डालने

के लिये गंगाजी को गये। पिता की भस्म और अस्थियों को गंगा जी में डाल कर आप अपने ध्येय की पूर्ति के लिये बादशाह की राजधानी को चले गये। आँबेर के महाराजा मानसिंहजी ने (जिनकी उस समय अकबर की सभा में विशेष ख्याति थी) आपका परिचय सम्राट् अकबर से करा दिया। सम्राट् ने आपको अपने एक हिन्दू आत्मीय समझ कर बड़े आदर के साथ आपका स्वागत किया तथा चार हजार अश्वारोही सैन्य के नेता के पद पर आपको नियुक्त किया। आपको महाराज की उपाधि तथा हिसार देश के शासन का भार भी इसी समय अर्पण किया गया। जिस प्रकार वीर बीकाजी ने एक सामान्य राव की उपाधि धारण कर एक नवीन राज्य की प्रतिष्ठा की थी, उसी प्रकार आप भी सबसे पहले महाराजा की उपाधि प्राप्त कर बीकानेर राज्य का गौरव बढ़ाने को अग्रसर हुए। इसी समय सम्राट् ने मारवाड़ के नागौर प्रदेश को जीत कर उसका भी अधिकार आपको दे दिया। बीकानेर वापिस लौट आने पर आपने अपने छोटे भाई रामसिंह को एक सेना सहित भेज कर भाटियों के प्रधान स्थान भटनेर पर बड़ी सरलता से अपना अधिकार कर लिया।

यद्यपि वीर बीकाजी ने जोहिया जाटों को परास्त कर उन्हें अपने अधीन कर लिया था, तथापि वे बड़े स्वाधीनता-प्रिय थे और अपनी हरण की हुई स्वाधीनता को फिर प्राप्त कर लेने का प्रयत्न कर रहे थे। अतएव आपने अपने भाई रामसिंह के संचालन में एक प्रबल राठौर सेना, उनका दमन करने के लिये भेजी। इस सेना ने वहाँ पहुँच कर भयंकर काण्ड उप· स्थित कर दिया। प्रबल समराग्नि प्रज्वलित हो गई, हजारों जोहिया जाट गण स्वाधीनता के लिये संग्राम-भूमि में प्राण विसर्जन करने लगे। वीर राठौर भी अपने ध्येय से न हटे। उन्होंने इस देश को यथार्थ मरुभूमि के समान कर दिया। इस प्रकार जोहिया लोगों को सब भाँति दमन कर रायसिंह जी अपनी विजयी सेना के साथ पूणिया जाट जाति को परास्त करने के लिये अग्रसर हुए। घमासान युद्ध होने पर यह जाति भी आपके अधीन हो गई।

विजेता रायसिंहजी ने इस नवीन अधिकृत देश में राज्य स्थापित कर वहीं निवास करने का विचार किया। परन्तु दुःख है कि वीरश्रेष्ठ रायसिंह जी कुछ ही दिनों में पूर्णिया जाटों द्वारा मारे गये। यद्यपि पूर्णिया जाटों ने आपके प्राण हर लिये, तथापि वीर राठौरों की सेना ने उन पर अपना अधिपत्य कायम रखा। इस प्रकार पूर्णिया जाति की स्वाधीनता हरण कर वीर रायसिंह जी ने समस्त जाट जाति को अपने अधीन कर लिया था।

यद्यपि वीर बीका जी के वंशधर रायसिंह जी ने यवन सम्राट् की अधीनता स्वीकार कर समयानुसार राजनैतिक क्षेत्र में विचरण करना शुरु किया था तथापि वे बल और विक्रम में बीकाजी से किसी प्रकार कम न थे। आपके शासन-काल में वीरतामय कार्यक्षेत्र जितना ही विस्तरित होता था, उतना ही आपका कार्यक्षेत्र भी बढ़ता गया। आप भारत के अनेक प्रान्तों में समय २ पर अपने तथा अपने वीर राठौरों की सेना के बाहुबल का परिचय देने लगे। आपने अहमदाबाद के शासनकर्ता मिरजाहुसेन के साथ युद्ध करके उसे परास्त कर दिया और अहमदाबाद पर शीघ्रता से अपना अधिकार कर लिया। सम्राट् अकबर ने आपके शासन समय में जिस २ प्रान्त में युद्ध उपस्थित किया उसी २ युद्ध-क्षेत्र में पहुँच कर आपने असीम साहस के साथ अपने बाहुबल की पराकाष्ठा दिखलाई। आप बादशाह के सम्मुख बड़े वीर गिने जाते थे तथा आपका सम्मान भी सब से अधिक होता था। आपकी वीरता पर बादशाह अकबर बड़े मुग्ध थे। ई० स० १६३९ में आपने इस मायामय शरीर को त्याग दिया।
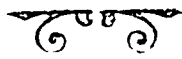
महाराजा करणसिंहजी

महाराज रायसिंह के स्वर्गवासी हो जाने पर उनके एक मात्र पुत्र करणसिंह जी पिता के सिंहासन पर विराजमान हुए। अपने पिता की जीवित अवस्था में ही सम्राट् की अधीनता में आप दौलताबाद के शासन-कर्ता के पद पर नियुक्त हुए थे। आप दाराशिकोह के विशेष अनुगत थे और आपने उसको बादशाह के दरबार में प्रवेश करने के लिये विशेष सहायता दी थी। इस कारण दारा के प्रतिद्वंदी मुगल सम्राट् के प्रधान-सेनापति, जिनकी अधीनता में आप काम करते थे, आपसे चिढ़ गये। इन्होंने आपके प्राण-नाश करने का गुप्त षड्यंत्र रचा। परन्तु बूँदी के तत्कालीन महाराज ने आपको पहले से ही सावधान कर दिया। इससे आपने सहज ही में शत्रुओं की उस पाप-कामना को निष्फल कर दिया। कई वर्षों तक प्रबल प्रताप के साथ राज्य शासन कर आपने इस नश्वर शरीर को त्याग दिया।

आपके चार पुत्र थे—पद्मसिंह, केशरीसिंह, मोहनसिंह और अनूपसिंह। इनमें से दो पुत्र तो सम्राट् की ओर से असीम साहस दिखा कर बिजापुर युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए थे। तीसरे पुत्र मोहनसिंह के जीवन के वियोगान्त अभिनय का वृत्तान्त सुप्रख्यात् फारसी इतिहासकार फरिश्ता ने अपने दक्षिण के इतिहास में इस प्रकार किया—"जिस समय बादशाह की सेना दक्षिण को विजय करने के लिये जा रही थी, उस समय करणसिंहजी के चारों कुमार भी राठौरों की सेना के साथ गये थे। एक समय कुमार मोहनसिंह शाहजादे मोअज्जम के डेरों में उनके साले के साथ बातचीत कर रहे थे। उनका एक मृग के बच्चे के लिये आपस में झगड़ा हो उठा। यह झगड़ा इतना बढ़ गया कि दोनों क्रोध से उन्मत्त होकर कमर से

तलवारें निकाल कर परस्पर युद्ध करने लगे। इस युद्ध में मोहनसिंहजी को मुअज्जम के साले ने मार दिया। जब यह समाचार उनके ज्येष्ठ भ्राता पद्म सिंह के कानों तक पहुँचे तो वे क्रोधित सिंह के समान कंपायमान होते हुए, नंगी तलवार हाथ में ले अपने कितने ही राठौर सेवकों के साथ उसके डेरे में पहुँचे। वहाँ पहुँच कर उन्होंने देखा कि भाई करणसिंह पृथ्वी पर अचेत पड़े हैं। उनका सारा शरीर रुधिर से सन रहा है और उनके प्राण पखेरू प्रयाण कर गये हैं तथा ऐसी अवस्था में भी शत्रु उनकी छाती पर बैठा है। यह दृश्य देखकर उनकी आँखों से अग्नि की चिनगारियाँ निकलने लगीं। आपकी उस विकराल आकृति को देखकर यवन लोग अपने प्राणों के भय से कायर पुरुषों की तरह डेरों से भाग जाने की चेष्टा करने लगे। शाहजादे मुअज्जम को घटना स्थल पर उपस्थित देखकर भी आप तनिक शंकित न हुए। सिंह के समान गर्जना कर अपने भ्राता के प्राणघातक को अपनी तलवार का जौहर दिखाने के लिये आप उसके पीछे चले। आपने क्रोध से उन्मत्त होकर अपनी तलवार का एक ऐसा प्रहार किया जिससे एक स्तंभ के दो टुकड़े हो गये और उसके साथ ही साथ करणसिंह की हत्या करने वाले यवन की देह के भी दो खंड होकर एक ओर को जा पड़े। अपने भ्राता के प्राणघातकी को उचित दण्ड देकर आप अपने डेरे में चले आये तथा जयपुर, जोधपुर और हाड़ौती आदि देशों के राजाओं को यवनों को किसी भी प्रकार से रण में सहायता न देने के लिये उकसाने लगे। आपकी सलाह के अनुसार इन सब राजाओं ने शाह-जादे मुअज्जम की छावनी छोड़ कर अपने २ राज्य को प्रस्थान किया। ये लोग शाहजादे की छावनी से २० मील की दूरी तक निकल आये। इस अवधि में शाहजादे ने अपने होशियार वकीलों द्वारा आपको तथा इन राजाओं को बहुत कुछ समझाया बुझाया, किन्तु ये अपने ध्येय से न डिगे। अन्त में एक महान विपत्ति को सम्मुख आई देख जब शाहजादे ने खुद जाकर आपको आश्वासन दिया तथा आपकी क्षति-पूर्ति करने की प्रतिज्ञा की, तब आप वापस युद्ध में सम्मिलित हुए।

राजा अनूपसिंहजी

महाराजा करणसिंह जी के तीन पुत्रों की मृत्यु तो उपरोक्त अध्याय में बतलाये मुताबिक हो ही चुकी थी। केवल चौथे पुत्र अनूप सिंहजी बच गये थे। अतएव ई० स० १७६४ में राजा की उपाधि धारण कर आप राजसिंहासन पर बैठे। आप एक महावीर और असीम साहसी पुरुष थे। बादशाह ने आपको पाँच हजार अश्वारोही सेना की मनसब तथा बीजापुर और औरंगाबाद आदि प्रान्तों के शासन का भार अर्पण किया। जिस समय काबुल के अफगान दिल्ली के बादशाह से विद्रोही हो गये थे, उस समय उस विद्रोह को दमन करने के लिये आप बादशाह द्वारा काबुल भेजे गये थे। आपने वहाँ पहुँच कर इस विद्रोह को दमन करने में विशेष सहायता की थी। इसके बाद भी आपने कई युद्धों में अपना पराक्रम दिखाया था। आपके मृत्यु-स्थान के विषय में मतभेद है। फारसी इतिहासकार फरिश्ता लिखता है कि-"आपने दक्षिण में प्राण त्याग किये।" परन्तु राठौरों के इतिहास से यह मालूम होता है कि जिस समय आप दक्षिण में सेना सहित गये थे, उस समय मार्ग में अपने डेरा जमाने के स्थान पर बादशाह के सेना-पति के साथ आपका कुछ झगड़ा हो गया। इससे आप अत्यंत विरक्त होकर अपने राज्य में वापस लौट आये। कुछ ही दिनों बाद आपने शरीर त्याग दिया। आपके स्वरूपसिंह और सुजानसिंह नामक दो पुत्र थे।

राजा अनूपसिंह जी के पश्चात्

महामति टॉड महोदय लिखते हैं कि—"स्वरूपसिंह जी संवत् १७६५ (ई० स० १७०९) में अपने पिता के सिंहासन पर बैठे, परन्तु आपने

श्रीमान् महाराजा अनूप सिंहजी, बीकानेर

अधिक दिन तक राज्यशासन नहीं किया। आपने अपने जीवन की शेष दशा में बादशाह की सेना से अपना सम्बन्ध भी त्याग दिया था। इसीसे आपको दिया हुआ ओड़नी देश भी बादशाह ने वापस ले लिया था। इस देश पर अपना अधिकार करने के लिये आपने उस पर आक्रमण किया और इसी आक्रमण में आप मारे गये।

स्वरूपसिंह जी की मृत्यु के पश्चात् उनके छोटे भाई सुजानसिंह जी गद्दी पर बिराजे। आपके शासन-काल में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। आपकी मृत्यु हो जाने पर संवत् १७९३ में राजा जोरावरसिंह जी बीकानेर के अधीश्वर के नाम से विख्यात हुए। आपका शासनकाल भी सुजानसिंह जी की तरह स्मरणीय नहीं था। दस वर्ष राज्य करने के पश्चात् आपका देहान्त हो गया।

जोरावरसिंह जी की मृत्यु के पश्चात् वीरश्रेष्ठ गजसिंह जी राज-गद्दी पर बैठे। आपका शासन कई उल्लेखनीय घटनाओं से परिपूर्ण था। आप वास्तव में एक यथार्थ राठौर वीर थे। आपने इकतालीस वर्ष तक राज्य किया आपने अपने राज्यकाल में राज्य की सीमा बढ़ाई। बीकानेर की सीमा में स्थित भाटियों के साथ तथा भावलपुर के मुसलमान राजाओं के साथ आपने बराबर कई युद्ध करके अपने बाहुबल का परिचय दिया। राजासर, कालिया, रानियार, सत्यसर, मुतालाई आदि कितने ही छोटे २ प्रदेश जीत कर आपने अपने राज्य में मिला लिये। भावलपुर के अधिनायक दाऊ खाँ के साथ युद्ध करके आपने अपने राज्य की सीमा में स्थित अत्यन्त महत्वपूर्ण अनूपगढ़ नामक किले पर अधिकार कर लिया।

महाराजा गजसिंह जी के ६१ पुत्र थे। परन्तु इनमें से केवल छः पुत्र विवाहिता रानियों से उत्पन्न हुए थे। उनके नाम ये हैं:—

(१) छत्रसिंह, (२) राजसिंह, (३) सुरतानसिंह, (४) अजबसिंह, (५) सूरतसिंह, (६) श्यामसिंह।

इन छः पुत्रों में से छत्रसिंह की मृत्यु के पश्चात् राजपूत रीति के

अनुसार ई० सन् १७८७ में राजसिंह जी राज्य के अधीश्वर हुए, परन्तु आपकी सौतेली माता तथा सूरतसिंह की माता के हृदय में हिंसा और द्वेष की अग्नि प्रबल होने से आप पन्द्रह दिन तक भी राज्यसिंहासन को शोभायमान न कर सके। सूरतसिंह की माता ने स्वयं अपने हाथ से विष देकर आपके जीवन को समाप्त कर दिया। माता जैसी पिशाचिनी थी ठीक वैसे ही सूरतसिंह भी थे। अतएव भयभीत होकर सुरतानसिंह और अजबसिंह ने भी बीकानेर राज्य को छोड़ दिया और वे जयपुर में निवास करने लगे। श्यामसिंह जी भी बीकानेर के अन्तर्गत एक छोटे से राज्य का अधिकार पाकर वहीं निवास करने लगे।

प्रतापसिंह जी

महाराजा राजसिंह के दो पुत्र थे। सूरतसिंह की माता की इच्छा राजसिंह के प्राण हरण कर अपने पुत्र को राज्य सिंहासन पर बैठाने की थी। किन्तु सूरतसिंह ने देखा कि वीर सामन्त तथा कार्य कुशल अमात्यगणों के सम्मुख इस शोचनीय हत्याकाण्ड के पश्चात् सिंहासन पर बैठना महा विपत्ति-कारक है। अतएव प्रकट रूप में अपने सौतेले भाई की मृत्यु पर शोक प्रकट कर वे भविष्य में उससे भी अधिक लोमहर्षण कार्य करने के लिये प्रवृत्त हुए। इन्होंने राज्य के सामन्तों की सलाह के अनुसार स्वर्गीय राजसिंह जी के बालपुत्र प्रतापसिंह को गद्दी पर बैठाया तथा आप स्वयं राज-प्रतिनिधि रूप से राज्यशासन करने लगे। आपने अठारह वर्ष तक विशेष चतुराई और सावधानी के साथ राज्य किया। आप इस अवधि में प्रधान-प्रधान सामन्तों तथा अमात्यगणों को खुश करने के लिये समय २ पर उन्हें

हिज हाइनेस महाराजा साहिब श्री गंगासिंह जी बहादुर G. C. S. I., G. C. I. E., A. D. C.

कीमती उपहार देते रहे। जब आपने देखा कि अपनी बाह्य दया और नम्रता से सब सामन्तगण सन्तुष्ट हैं तो पहले पहल आपने अपने विशेष अनुगत महाजन और भादरां के दोनों सामन्तों से अपने हृदय में अठारह वर्ष तक छिपाये हुए पापी अभिप्राय को कह सुनाया। आपके अभिप्राय को सुनकर उक्त दोनों सामन्त भयभीत और दुःखी हुए किन्तु आपने उन्हें अधिक अधिक जमीन देने का प्रलोभन देकर अपना सहायक बना लिया। इस समय बीकानेर के दीवान का कार्य बख्तावरसिंह जी करते थे। आप बड़े स्वामि-भक्त थे। जब आपको सूरतसिंह के अभिप्राय का भेद मालूम हुआ तो आपने अपने सुकुमार राजा के जीवन की रक्षा करना उचित समझा। परन्तु अत्यंत दुःख का विषय है कि सूरतसिंह जी को इनका अभिप्राय ज्ञात होते ही उन्होंने इन्हें क़ैद कर लिया।

इसके बाद सूरतसिंह ने एक बड़ी सेना एकत्रित कर अपने राज्य के सभी सामन्तों को निमंत्रित किया। बहुत से सामन्तगण आपकी पापलिप्सा जानते हुए भी उसमें बाधा डालने में अग्रसर न हुए और चुपचाप अपने किलों में बैठे रहे।

जब सूरतसिंह ने देखा कि अधिकांश सामन्तगण मेरा स्वत्व स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं तो उन्होंने अपनी एकत्रित की हुई सेना की सहायता से उनका दमन करने का निश्चय किया। वे पहले पहल नौहर नामक स्थान में पहुँचे और भूकरका देश के सामन्तों को छल-कपट और बड़ी चतुराई से अपने सम्मुख बुलाकर उनको नौहर के किले में बन्द कर दिया। इसके बाद इन्होंने अजितपुर नामक स्थान को लूट कर साँखू नामक स्थान पर आक्रमण किया। साँखू के सामन्त दुर्जनसिंह ने असीम साहस और वीरता के साथ अपनी रक्षा की, किन्तु उसकी अल्पसंख्यक सेना का नाश हो जाने पर उसने आत्म-हत्या कर ली। इसके बाद सूरतसिंह ने बीकानेर के प्रधान वाणिज्य-स्थान चुरू को जा घेरा। छः महीने तक इस नगर को घेर कर भी वे अभि-लाषा पूरी न कर सके। किन्तु इस समय एक दूसरी ओर से उनके सौभाग्य

का द्वार खुल गया। भूकर के सामन्त जो कि नौहर स्थान में क़ैद थे बीकानेर राज्य में बड़े प्रबल और सामर्थ्यवान ठाकुर गिने जाते थे। उन्होंने देखा कि सब सामन्तगण केवल अपने २ किलों की रक्षा में नियुक्त हैं और एकमत होकर सूरतसिंह के खिलाफ़ युद्ध नहीं करते हैं तो एक दिन अवश्य ही उसकी विजय हो जायगी। अपने प्राण और स्वाधीनता खो बैठने के भय से ये सामन्त सूरत सिंह को राज्य सिंहासन पर बैठाने को राजी हो गये। सूरत-सिंह ने इनकी प्रतिज्ञा पर विश्वास कर इन्हें बंधन मुक्त कर दिया और दो लाख रुपये लेकर चुरू नगर की लूट भी छोड़ दी।

इस प्रकार सूरतसिंह अपने बाह्य बल की सहायता से प्रत्येक प्रान्त के सामन्तों को अपने अधीन कर राजधानी बीकानेर लौट आये और बाल-महाराज प्रतापसिंह को संसार से सदैव के लिये विदा करने के लिये उपाय खोजने लगे। किन्तु उनकी इस घृणित आशा की पूर्ति में अनेक विघ्न उप-स्थित होने लगे। सूरतसिंह और उनकी माता यद्यपि घोर हिंसक पशु-बुद्धि के थे, तथापि उनकी भगिनी कोमल हृदय वाली, दया और ममता-रस से परिपूर्ण थीं। वह इस बात को भली भाँति जानती थी कि भाई सूरतसिंह एक दिन अवश्य ही बाल महाराज के प्राण ले निष्कंटक होकर राज्य करेंगे। इस कारण वह प्रतापसिंह को सदैव अपने पास रखती थीं। आप अब तक अविवाहिता थीं। सूरतसिंह ने अपने उद्देश की पूर्ति में इनका हस्तक्षेप देख कर इनके विवाह का प्रस्ताव उपस्थित कर दिया। इन्होंने नरवर के दरिद्री राजा के यहाँ कहला भेजा कि हमारी बहन के साथ आप विवाह करने के लिये तैयार हो जाइये। नरवर के नृपति भारतवर्ष के विख्यात महाराजा नल के वंशधरों में से थे। महाराजा सिंधिया ने नरवर के किले पर अपना अधि-कार कर तथा इनकी धन सम्पत्ति लूट कर, इन्हें दरिद्रता की घोर अवस्था में पहुँचा दिया था। अतएव ये सूरतसिंह के प्रस्ताव से शीघ्र ही सहमत हो गये। सूरतसिंह की भगिनी ने इस समाचार को सुनकर सूरतसिंह के सम्मुख अपने अविवाहित रहने की इच्छा प्रकट की। वह बहुत गिड़गिड़ाई, उसने

बहुत कुछ प्रतिवाद किया, परन्तु उसकी किसी ने न सुनी। अन्त में उसका विवाह सूरतसिंह ने उक्त नरवर नृपति के साथ कर ही दिया। उसके ससुराल चले जाने के कुछ ही दिन पश्चात् पाखंडी सूरतसिंह ने महाजन के सामन्तों को बीकानेर के बाल-नृपति की हत्या करने की आज्ञा दी, परन्तु वे इस कार्य में हस्तक्षेप करने को सहमत न हुए। अन्त में उसने स्वयं अपने पापी हाथों से अपने भतीजे बीकानेर के बालक महाराजा के गले पर तलवार चला कर उनका जीवन नष्ट कर दिया।
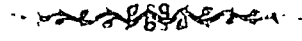
महाराजा सूरतसिंह जी

यह दुखद समाचार राज्य में चारों ओर फैल गया, किन्तु कोई भी सामन्त सूरतसिंह को इस अत्याचार का समुचित दण्ड देने के लिये अग्रसर न हो सका। जब यह बात स्वर्गीय महाराजा राजसिंह के दोनों भाई सुरतानसिंह और अजबसिंह को (जो अपने प्राणों के भय से पहले ही जयपुर राज्य में चले गये थे) मिली तो वे शीघ्र ही भटनेर नामक स्थान में आ उपस्थित हुए और भटनेर के तथा बीकानेर के समस्त असन्तुष्ट सामन्तों को बुलाकर युद्ध की तैयारी करने लगे। यद्यपि भटनेर के सभी भाटीगण इनकी आज्ञा का पालन करने को तैयार हो गये, तथापि बहुतेरे राठौर सामन्तगण सूरतसिंह के खिलाफ युद्ध करने में हिचकिचाने लगे। इधर सूरतसिंह ने भी घूँस देकर अनेक सामन्तों को अपने अधीन कर लिया। उसने विचार किया कि शत्रु पर काफी सेना एकत्रित करने के पहले ही आक्रमण करना ठीक होगा। अतएव जोश में भर कर तुरन्त ही उसने एक विशाल सेना सहित उपरोक्त दोनों कुमारों पर आक्रमण कर दिया। बागोर नामक स्थान में भयंकर संग्राम हुआ, जिसमें तीन हजार आदमियों की

सेना के नाश हो जाने पर सूरतसिंह ने विजय प्राप्त की। अपनी इस विजय की स्मृति में उन्होंने इस रणभूमि में जयदुर्ग (फतहगढ़) नाम का एक किला बनवाया था।

इसके पश्चात् इन्होंने भावलपुर राज्य के कई सुप्रसिद्ध किले जीत कर अपने राज्य में मिला लिये। उस समय भावलपुर-राज्य में नवाब भावलखाँ राज्य करते थे। इनके बहुत से बलशाली सामन्त—जिनमें किरणी जाति का खुदाबख्श नामक सामान्त मुख्य था—महाराजा सूरतसिंह से जा मिले थे। नवाब भावलखाँ ने खुदाबख्श पर आक्रमण किया था और इसी से चिढ़ कर वह सूरतसिंह से मिल गया था। नवाब भावलखाँ ने बड़ी चतुराई से अपने असन्तुष्ट सामन्तों को धन तथा जमीन का प्रलोभन देकर सूरतसिंह की सेना से फोड़ लिया। इस कारण राठौरी सेना का बल धीरे २ घटने लगा। तब सूरतसिंह के सेनापति ने भावलपुर के नवाब को धमका कर तथा उससे बहुत सा धन लेकर उस राज्य पर आक्रमण करना छोड़ दिया।

भावलपुर राज्य पर आक्रमण करने के पश्चात् भी राजा सूरतसिंह जी निर्विघ्नता से अधिक समय तक शान्ति न भोग सके। बागोर के युद्ध में पराजित भाटिया लोगों ने युद्ध के लिये सर उठाया। समराग्नि भड़क उठी, फिर से रणक्षेत्र वीर भाटियों के रुधिर से भींग गया। सूरतसिंह ने इस बार उनकी आशालता को बिलकुल छिन्न भिन्न कर दिया। महामति टॉड साहब लिखते हैं कि यद्यपि भाटिये लोग इस द्वितीय युद्ध में भी पराजित होगये थे, तथापि वे संवत् १७६१ तक मौका पाकर राजा सूरतसिंह से संग्राम करते रहे थे। उक्त संवत् में महाराजा सूरतसिंह ने उनकी राजधानी भटनेर पर आक्रमण कर उसे अपने राज्य में मिला लिया।

इस घटना के बाद राजा सूरतसिंह ने अपने बल विक्रम को प्रकाश कर राज्य की सीमा बढ़ाने की इच्छा से फिर भी रणभूमि में पदार्पण किया। इस समय पोकरन के ठाकुर सवाईसिंह जी ने जयपुर के महाराज की सहायता से धौकलसिंह को मारवाड़ के सिंहासन पर बैठाने के लिये समस्त राठौर

सामन्तों के साथ मानसिंह से युद्ध करने का विचार किया। सूरतसिंह जी भी सवाईसिंह जी की प्रार्थनानुसार इस युद्ध में सम्मिलित हुए। प्रथम तो आपने अपना बल विक्रम प्रकाश कर मारवाड़ के अन्तर्गत फलोदी देश पर अपना अधिकार कर लिया। परन्तु जब अन्त में आपने देखा कि धौकलसिंह के पक्ष में रह कर विजय प्राप्त करना कोई साधारण बात नहीं है, तब आप शीघ्र ही उनका पक्ष छोड़कर अपनी राजधानी में चले आये। जब राजा मानसिंह अपनी शासन-शक्ति को प्रबल कर तथा फलोदी पर अपना अधिकार कर बीकानेर पर आक्रमण करने के लिये तैयार हुए तब इन्होंने अत्यंत भय-भीत होकर उनसे संधि कर ली और क्षतिपूर्ति के बहुत से रुपये देकर अपनी रक्षा की। इन्होंने धौकलसिंह की रक्षा के लिये अपने राज्य की प्रायः पाँच वर्ष की आमदनी खर्च कर दी थी। इस असफलता से सूरतसिंह जी को अत्यंत मानसिक वेदना हुई। इस से ये कठिन रोग से पीड़ित हो गये। अप-मान, आत्मघृणा और धन के नाश से आप मृतप्राय हो गये थे किन्तु थोड़े दिनों के बाद आपने फिर आरोग्यता प्राप्त कर ली।

आरोग्यता प्राप्त कर ये अपने राज्य में फिर से कठोर शासन-करने के लिये अग्रसर हुए। उन्होंने अपने सामान्तों के प्रति कठोर व्यवहार तथा प्रजापर अत्याचार करना प्रारंभ कर दिया। राज्य के प्रत्येक भाग में फिर असंतोष की भयंकर अग्नि प्रज्वलित होगई। खाली खजाने को परिपूर्ण करने के लिये अधिकता से कर की वृद्धि की जाने लगी। इस से समस्त सामन्तों में असन्तोष फैल गया। इन सामन्तों का दमन करने के लिये सूरतसिंह जी ने उस समय भारत में एक मात्र ब्रिटिश गवर्नमेण्ट को प्रबल बलशाली जान कर ई० स० १८०० में उनसे सन्धि करने का प्रस्ताव कर दिया। भारत सर-कार उस समय अपनी शक्ति का विस्तार कर रही थी। अस्तु उसने तत्कालीन राजनीति के अनुसार इनका प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। इधर समस्त सामन्त यदि चाहते तो एकमत होकर सूरतसिंह जी को सहज ही में पदच्युत कर सकते थे, किन्तु वे उनके असंख्य तथा असह्य अत्याचारों को स्मरण कर डर

जाते थे। इसी कारण सूरतसिंह जी के सभी अत्याचारों को वे सहन करते थे।

सूरतसिंहजी ने अपने जीवन को अनेक प्रकार के पापों से कलङ्कित कर लिया था। ये पाप उनके चित्त को हमेशा कोसते रहते थे। इन पापों को नाश करने की इच्छा से वे प्रायः ब्राह्मणों को बहुत सा धन देते थे तथा दरिद्र ब्राह्मणों को अपने यहाँ आश्रय देकर उनका विशेष सम्मान करते थे। देश-सेवा तथा धर्म-कार्य में भी वे अधिक लिप्त रहते थे। यह सुअवसर पाकर उनके बचपन के साथियों ने तथा प्रेम-पात्रों ने राज्य कारभार अपने हाथ में ग्रहण कर मनमाने उपद्रव मचाने शुरू कर दिये थे। इसीसे राज्यमें अराजकता फैल गई। चोरों और डाकुओं का उपद्रव इतना फैल गया कि प्रजा अपने धन और प्राण बचाने के लिये व्याकुल हो गई। अन्त में सब सामन्तगण भी अधिक अत्याचार सहन न कर सके तो वे प्रकट रूप से सूरतसिंह के विरोधी हो गये। राज्य में चारों ओर प्रबल असन्तोष की अग्नि प्रज्वलित होती हुई देख कर तथा समस्त सामन्तों को अपने खिलाफ़ देखकर, सूरतसिंह जी अपने प्राण तथा सिंहासन की रक्षा के लिये व्याकुल हो गये। वे चारों ओर आश्रय पाने की चेष्टा करने लगे। इसी समय पिंडारियों से युद्ध करने के लिये ब्रिटिश सरकार राजपूताने के सभी राजाओं के साथ सन्धि बंधन करने में अग्रसर हुई। सूरतसिंह जी भली भाँति जानते थे कि अँग्रेजों की सहायता से अवश्य ही हम अपनी प्रजा को तथा अपने विद्रोही सामन्तों को वश में कर लेंगे। अतएव ब्रिटिश सरकार से उन्होंने शीघ्र ही बड़े आग्रह के साथ संधि कर ली। इस सन्धि-पत्र के अनुसार अंग्रेज सरकार ने आपके राज्य में शान्ति स्थापन करने का भार अपने ऊपर लिया। आपने भी अफ़गानिस्तान, काबुल आदि देशों से आने वाले वाणिज्य द्रव्य की, अपने राज्य के मार्ग से भली भाँति रक्षा करने का अभिवचन दिया तथा ब्रिटिश सरकार को जरूरत पड़ने पर योग्य सहायता देना स्वीकार किया। इस सुलहनामे में आपने और भी दूसरी शर्तें स्वीकार कीं।

राजा रायसिंह जी ने अपने इच्छानुसार मुग़ल बादशाह की अधी-

नता स्वीकार करके अपनी राज्यश्री की वृद्धि की थी, किन्तु आपने अपनी प्रजा और सामन्तों से अप्रिय होकर बलशालिनी ईस्ट इंडिया कंपनी से सन्धि कर ली। यहाँ यह उल्लेख करना अनुपयुक्त न होगा, कि मारवाड़, मेवाड़ तथा आँबेर आदि के प्रबल राजाओं को उक्त कंपनी के साथ सन्धिबन्धन कर जो वार्षिक कर देना पड़ता था, वह आपको न देना पड़ा। आपके कर देने से छुटकारा पाने का एकमात्र कारण यह था कि मरहठों के दल से व्याकुल हो उपरोक्त राजाओं ने उनको चौथ स्वरूप में कर दिया था, अतएव ईस्ट इंडिया कंपनी ने भी इन राजाओं से सन्धि करते समय उनसे वही कर लेने का निश्चय किया। किन्तु बीकानेर राज्य पर न तो कभी मरहठों ने आक्रमण किया और न सूरतसिंह जी ने उन्हें किसी प्रकार का कर दिया। इसी कारण उक्त कम्पनी भी सूरतसिंह जी से कर न ले सकी। यद्यपि उक्त सन्धि-पत्र के अनुसार बीकानेर महाराज ब्रिटिश गवर्नमेंट के अधीन गिने जाते हैं, तथापि आज तक उनसे किसी प्रकार का कर नहीं लिया जाता।

ब्रिटिश गवर्मेंट के साथ महाराज सूरतसिंह जी की सन्धि होते ही जो सामन्त इनके विरुद्ध खड़े हुए थे, वे इस समय बड़े भयभीत हुए। शीघ्र ही अंग्रेजी सेना ने बीकानेर में जाकर सूरतसिंह जी की आज्ञानुसार शान्ति स्थापन की और चोर डाकुओं के उपद्रवों को निवारण करके वह वापस चली गई। यद्यपि राज्य में बाहरी शान्ति हो गई थी, तथापि समस्त सामन्तों और प्रजा के हृदय में भीतर ही भीतर पहले के समान असन्तोष की प्रबल अग्नि प्रज्वलित होती रही। अंग्रेजी सेना के वापस लौट जाने पर इन असन्तुष्ट सामन्तों में फिर से अराजकता का साम्राज्य हो गया। ई० स० १८२४ में महाराजा सूरतसिंह जी की मृत्यु हो गई।

महाराजा रत्नसिंहजी
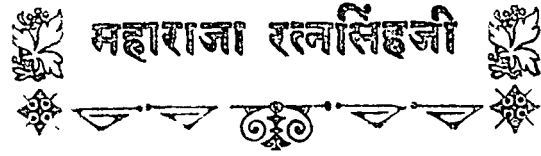
महाराज सूरतसिंह जी के परलोकवासी होने पर उनके पुत्र रत्नसिंह जी राजसिंहासन पर विराजमान हुए। आपके सिंहासन पर बैठने के साथ ही बीकानेर के सामन्त और समस्त प्रजा के मन का भाव भी सहसा बदल गया। महाराज सूरतसिंह जी की मृत्यु के पहले राज्य में जिस प्रकार अशान्ति, उत्पीड़न और अत्याचारों की वृद्धि हो रही थी, चोर डाकुओं के उपद्रव से जो राज्य में अराजकता फैली हुई थी, वह सब इस नवीन शासन के प्रारम्भ में शान्त हो गई। आपके सिंहासन पर बैठते ही जैसलमेर की प्रजा ने तथा राज-कर्मचारियों ने बीकानेर राज्य की प्रजा के ऊपर घोर अत्याचार करना शुरू कर दिया। उन्होंने बीकानेर राज्य की सारी धन सम्पत्ति लूट ली। जब यह समाचार आपको मालूम हुए तो आपने जैसलमेर महाराज के पास युद्ध करने का प्रस्ताव भेजा। आपके युद्ध के प्रस्ताव को सुन कर जैसलमेर के महाराज कुछ भी भयभीत न हुए। आपने जयपुर और मेवाड़ आदि के राजाओं से सहायता मांगी। युद्ध की तैयारियाँ हो जाने पर आपने जैसलमेर पर आक्रमण कर दिया। अंग्रेजों के साथ संधि करते समय महाराज सूरतसिंह ने स्वीकार किया था कि बीकानेर के अधीश्वर किसी देशी राज्य पर आक्रमण न करेंगे। अतएव बृटिश गवर्नमेंट ने आपसे कहला भेजा कि आप उक्त संधि-पत्र के अनुसार आक्रमण नहीं कर सकते। आपने गवर्नमेंट की आज्ञा पाते ही युद्ध रोक दिया। इसके बाद भारत सरकार की अनुमति से मेवाड़ के महाराणा ने इस झगड़े में मध्यस्थ होकर दोनों राजाओं का समझौता करा दिया। इसलिये विवादाग्नि कुछ काल के लिये शान्त हो गई।

ई० सन् १८३० में आपके राज्य में भीतरी झगड़े हो गये। जिस प्रकार सूरतसिंह जी के शासन-काल में इस राज्य के प्रमुख २ सामन्तों ने

उपद्रव खड़ा किया था, उसी प्रकार इन्हीं सामन्तों ने फिर राज्यद्रोही होकर भयंकर कांड उपस्थित कर दिया। इन सामन्तों के उपद्रव से आप अत्यंत भयभीत हो गये। इनका दमन करने के लिये आपने भारत सरकार से सहायता माँगी, किन्तु उसने आपके राज्य के अन्दरूनी झगड़ों में हस्तक्षेप करने से इन्कार कर दिया। गवर्नमेंट ने सहायता देने से इन्कार कर देने पर आपने अपनी सेना की सहायता से विद्रोही सामन्तों को वशीभूत करने की चेष्टा की। परन्तु आपकी यह चेष्टा सफल ही न होने पाई थी कि जैसलमेर महाराज के साथ आपका किसी कारणवश फिर से झगड़ा उपस्थित हो गया। ई० सन् १८४५ में यह विवाद इतना प्रबल हो गया कि ब्रिटिश गवर्नमेंट को शान्ति स्थापना करने के लिये एक अंग्रेज राज्य पुरुष को मध्यस्थ करके भेजना पड़ा। उस अंग्रेज राज-पुरुष ने आप तथा जैसेलमेर के राजा के मनोमालिन्य का सन्तोषदायक निपटारा कर दिया।

कर्नल मालिसन साहब लिखते हैं कि आपने इन उपद्रवों के बीच में ही हिसार की ओर तक अपने राज्य की सीमा का विस्तार करने के लिये दृढ़ प्रयत्न किया था, किन्तु बृटिश सरकार ने इस कार्य में असन्तोष प्रकाश कर कठोर नीति का अवलम्बन किया जिससे आपकी अभिलाषा पूरी न हो सकी।

जो अफगानिस्तान तथा काबुल का वाणिज्य द्रव्य आपके राज्य से होकर सिरसा और भावलपुर में जाया करता था उन सभी द्रव्यों पर बीकानेर राज्य की ओर से अधिक महसूल लिया जाता था, अतएव आपके शासन-काल में बृटिश गवर्नमेंट नें यह महसूल घटा देने का प्रस्ताव किया था।

पच्चीस वर्ष तक राज्य करके ई० स० १८५२ में आप परलोक-वासी हो गये।

महाराज सरदारसिंह जी

महाराज रत्नसिंहजी के स्वर्गवासी हो जाने पर ई० स० १८५२ में उनके पुत्र सरदारसिंह जी सिंहासन पर विराजमान हुए। आपके राज्याभिषेक के समय से बीकानेर की राज्य-शक्ति मानो क्रमशः हीन होने लगी थी। जो बल, विक्रम, शूरता, साहस आदि गुण राठौर राजाओं के भूषण थे, वे सब अँग्रेज सरकार के साथ सन्धि करने से एक बार ही निर्जीव से हो गये थे। युद्धों से शान्ति मिलने से राजपूत जाति की वीरता का मानों एक बार ही लोप हो गया था।

आपको राज्य करते हुए केवल पाँच ही वर्ष हुए थे कि भारतवर्ष में सिपाही-विद्रोह का काण्ड उपस्थित हो गया। इस समय आप बड़े आग्रह के साथ अपनी सेना सहित ब्रिटिश गवर्नमेंट की सहायता के लिये तैयार हुए। आपने इस समय हजारों अंग्रेजों के प्राणों की रक्षा करके उन्हें अपनी राजधानी में आश्रय दिया।

विद्रोह शान्त हो जाने पर आपकी इन बहुमूल्य सहायताओं के उपलक्ष्य में हिसार देश के चौदह हज़ार दो सौ बानबे रुपये की आमदनी वाले ४१ गाँव ब्रिटिश सरकार ने आपको प्रदान किये। इसी समय महारानी विक्टोरिया की ओर से आपको सन्मान-सूचक खिलअत तथा दत्तक रखने की सनद भी प्राप्त हुई।

ईसवी सन् १८६१ में मारवाड़ और बीकानेर राज्य में सीमा सम्बन्धी झगड़े फिर उपस्थित हो गये। अन्त में बृटिश गवर्नमेंट ने मध्यस्थ होकर सब उपद्रव शान्त कर दिये।

आपने अपने शासन-काल में सामन्तों से लिये जाने वाले कर में बहुत वृद्धि कर दी। भारत सरकार ने प्रदान किये हुए ४१ ग्रामों में भी आप कर बढ़ाने की चेष्टा करने लगे। इस पर वहाँ की प्रजा बिगड़ खड़ी हुई। अन्त में भारत सरकार के अनुरोध से आपने इन ग्रामों के कर में किसी प्रकार की बढ़ती नहीं की।

ई० स० १८७२ के जनवरी मास में आपका देहान्त हो गया।

महाराज डूँगरसिंह जी

महाराज सरदारसिंह जी की पुत्रहीन अवस्था में मृत्यु होने से बीकानेर का राज्य-सिंहासन सूना हो गया। इसी कारण से बृटिश गवर्नमेंट की आज्ञानुसार मंत्रि-मण्डल की सृष्टि करके उसके हाथों में शासन का भार सौंपा गया। प्रधान राजनैतिक कर्मचारी इस मंत्रि-मण्डल के सभापति होकर राज्य करने लगे। इस प्रकार कुछ काल तक राज्य-कार्य चलने के पश्चात् राज-रानी और सामन्तों ने नवीन महाराज नियुक्त करने का विचार किया। अतएव राज्य-घराने के लालसिंह नामक एक बुद्धिमान मनुष्य के पुत्र डूँगरसिंह को दत्तक ग्रहण करने का प्रस्ताव किया गया। ब्रिटिश गवर्नमेंट ने स्वर्गीय महाराज सरदारसिंह जी को दत्तक लेने की सनद प्रदान कर दी थी, अतएव उसने बिना कुछ आपत्ति किये डूँगरसिंह जी के राज्याभिषेक के प्रस्ताव में शीघ्र ही अपनी अनुमति दे दी। अल्पावस्था ही में डूँगरसिंह जी राजा की उपाधि धारण कर बड़ी धूमधाम के साथ बीकानेर के राज्य-सिंहासन पर विराजे।

आप अल्पवयस्क होने के कारण राजकार्य को कुछ नहीं जानते थे, इसीसे आपके हाथ में सम्पूर्ण राज्य-शासन का भार देना असम्भव जानकर

भारत गवर्नमेंट की नीति के अनुसार एक मंत्रि-मण्डल नियुक्त हुआ। आपके पिता इस मण्डल के सभापति पद पर नियुक्त हुए तथा महाराव हरिसिंह, राव यशवन्तसिंह और मेहता मानमल आदि सदस्य पद पर नियुक्त हुए।

महाराज डूँगरसिंह जी बालिग होने पर भी मंत्रि-मण्डल की सहायता से राज्य-शासन करते थे। ई० स० १८७६ में आप हरिद्वार और गया तीर्थ को गये। वहाँ से लौटते समय आपने तत्कालीन प्रिंस ऑफ वेल्स से आगरे में भेंट की।

आपने अपने शासन-काल में सामन्तों से लिये जाने वाले कर में बहुत वृद्धि कर दी। प्रायः सभी सामन्तों पर दूना कर लाद दिया। सामन्तों ने मिलकर आप से प्रतिवाद किया। किन्तु आपने किसी की न सुनी। आपके कर-वृद्धि के प्रस्ताव में बीकानेर राज्य के तत्कालीन पोलिटिकल एजंट ने भी आपका पक्ष ग्रहण किया। इससे बहुत से बड़े २ सामन्त डर गये। वे वर्द्धित करके देने में सहमत भी हो गये। यद्यपि बड़े २ सामन्तों ने भयभीत होकर वर्द्धित कर देना स्वीकार कर लिया था, तथापि बहुतेरे सामन्तों ने असन्तोष प्रकट किया। इसी समय महाराज डूँगरसिंह जी ने बीदावाटी के सामन्तों से जो ५००००) रुपया 'कर' लिया जाता था उसे भी बढ़ाकर ८६००० रुपया कर दिया। इससे राज्य में धीरे २ उपद्रव होने लगे। इसके कुछ दिनो बाद कप्तान टालबट बीकानेर के पोलिटकल एजंट के पद पर नियुक्त हुए। आपने असन्तुष्ट सामन्तों को बुलाकर बहुत कुछ समझाया और धमकाया किन्तु सामन्तों पर उनके कहने का कुछ भी असर न हुआ। वे राजधानी छोड़कर अपने २ निवासस्थान को चले गये।

जब सब सामन्त असन्तुष्ट होकर अपने २ निवासस्थानों को चले गये तब महाराज डूँगरसिंह जी ने अत्यन्त क्रोधित हो उनका दमन करने के लिये अपने प्रधान सेनापति हुकमसिंह के सञ्चालन में एक सेना भेज कर उन पर आक्रमण करने का विचार किया। ब्रिटिश एजंट ने भी आपके इस प्रस्ताव का

समर्थन किया। अतएव हुकमसिंह अपनी सारी सेना साथ ले विद्रोही सामन्तों पर आक्रमण करने के लिये रवाना हुए। यह सुन कर सभी सामन्त अपने २ स्वार्थ की रक्षा के लिये अपनी २ सेना तथा कुटुम्बियों को साथ ले महाजन नामक स्थान में एकत्र हुए। जब सामन्तों ने देखा कि महाराज की सेना के साथ मुकाबला करने में वे असमर्थ हैं तो उन्होंने बीदावाटी देश के बीदासर नामक किले में आश्रय लेकर हुकुमसिंह से सामना करने का विचार किया। बीदावाटी के सामन्तों ने भी वर्द्धित 'कर' देना स्वीकार नहीं किया था, अतएव उन्होंने विद्रोही सामन्तों का नेतृत्व स्वीकार किया।

सामन्तों की इस प्रकार से युद्ध की तैयारी देख कर महाराज डूँगरसिंह जी ने पूर्ण रूप से उनका दमन करने के लिये कप्तान टालबट साहब से अंग्रेजी सेना भेजने का प्रस्ताव किया। बृटिश गवर्नमेंट की अज्ञानुसार जनरल जिलेस्पि के सञ्चालन में १८०० अँग्रेजी सेना बीकानेर में आ पहुँची। राज्य की सेना और अँग्रेजी सेना ने मिलकर बीदासर के किले को घेर लिया। कप्तान टालबट भी अँग्रेजी सेना के साथ ही युद्ध-स्थल पर पहुँचे थे। उन्होंने विद्रोही सामन्तों से कहला भेजा कि वे शीघ्र ही बीदासर के किले को छोड़ दें। इस पर सामन्तों ने कहला भेजा कि जब तक उनसे लिये जाने वाले कर का विचार भली भाँति न किया जायगा तब तक वे निर्विघ्नता-पूर्वक किले में ही रहेंगे।

सामन्तों से यह धृष्टतापूर्ण उत्तर पाकर कप्तान टालबट साहब भली भाँति जान गये कि राठौर सामन्त अँग्रेजी सेना को आया हुआ देख कर कुछ भी भयभीत नहीं हुए हैं। अतएव उन्होंने उक्त किले के मुँह पर गोलों की वर्षा करने का हुक्म दिया। बहुत समय के पश्चात् फिर एक वक्त समरानल ने प्रज्वलित होकर विचित्र दृश्य दिखाया। निरन्तर गोलों की वर्षा करके अँग्रेजी सेना ने बीदासर के प्राचीन किले को विध्वंस कर दिया। अन्त में सामन्तों ने ई० स० १८८३ की २३ वीं दिसंबर को अँग्रेजी सेना को आत्म-समर्पण कर दिया। अँग्रेजी सेना ने बीदासर के किले के अतिरिक्त और भी कई एक किले तोड़-फोड़ डाले।

बीदासर के सामन्तों के आत्म-समर्पण करते ही वे राजनैतिक कैदी के रूप से देहली के किले में भेज दिये गये। अन्य विद्रोही सामन्त भी बन्दी भाव से कारागार में रखे गये।

इस प्रकार राज्य में शान्ति स्थापन कर अँग्रेजी सेना वापिस चली गई।

महाराजा गंगासिंह जी

बीकानेर के वर्तमान महाराजा साहिब का नाम श्री गंगासिंह जी साहिब है। आपका जन्म ई० सन् १८८० की ३ री अक्टूबर को हुआ था। आप राठौड़ राजपूत हैं तथा स्वर्गीय महाराजा डूंगरसिंह जी के गृहीत पुत्र हैं। आप तथा स्वर्गीय महाराजा भाई २ थे। आप महाराज लालसिंह के पुत्र हैं। ई० सन् १८८७ की ३१ वीं अगस्त को आप इस राज्य की गद्दी पर बैठे। उस समय आप नाबालिग थे, अतएव आपको शासनाधिकार प्राप्त न हुए। बाद में बालिग हो जाने पर ई० सन् १८९८ की १६ वीं दिसम्बर को आप सम्पूर्ण अधिकारों से सम्पन्न हुए। आपके शासन-भार गृहण करने के कुछ ही दिनों पश्चात् राज्य भर में भयंकर अकाल पड़ा। इस समय आपने अपनी प्रजा को अकाल से बचाने के लिये बहुत कोशिश की, जिसके पुरस्कार में आपको भारत सरकार की ओर से प्रथम श्रेणी के कैसर ए-हिन्द का सम्मान मिला। ई० सन १९०२ की १३ वीं जून को आप इन्डियन आर्मी के ऑनरेरी मेजर के पद पर नियुक्त हुए। आपका विवाह प्रतापगढ़ के महाराजा साहिब की कन्या के साथ हुआ था। ई० सन् १९०० के अगस्त मास में आप अपने गंगारिसाला सहित चीन के समर में उपस्थित हुए और युद्ध खतम होने पर दिसम्बर मास में वापस लौट आये। इस सहायता के पुरस्कार-स्वरूप आपको के० सी० आइ० ई० की उपाधि प्राप्त हुई। इसके दो वर्ष पश्चात्

आपको एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिनका नाम महाराज कुमार श्री शार्दूलसिंह जी है। ये ही बीकानेर राज्य के भावी महाराजा हैं। इसके पश्चात् ई० सन् १९०६ में आपकी उपरोक्त महारानी साहिबा परलोक सिधारीं। ई० सन् १९०४ में आपको भारत सम्राट् के जन्म दिवस के उपलक्ष्य में के० सी० आइ० ई० की उपाधि मिली थीं। इसके तीन वर्ष पश्चात् आपका जी० सी० आय० ई० की उपाधि भी मिल गई। ई० सन् १९०८ की ३ री मई को आपका विक्रमपुर के ताज़िमी पट्टेदार साहब की कन्या के साथ द्वितीय विवाह सम्पन्न हुआ। इसके दूसरे वर्ष की २९ वीं मार्च को इन महारानी से आपके विजयसिंह जी नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। कुमार विजयसिंह जी को अपने आपने पिता लालसिंह जी की जागीर पर दत्तक रख दिया है।

ई० सन १९१० की ३ री जून को अर्थात् सम्राट् पञ्चम जॉर्ज के राज्याभिषेकोत्सव के दिन आपको कर्नल की उपाधि मिली तथा आप सम्राट् के ए० डी० सी० के पद पर नियुक्त हुए। इसके एक वर्ष पश्चात् सम्राट् के राज्यारोहणोत्सव में सम्मिलित होने के लिये निमन्त्रित किये जाने पर आप इँग्लैंड पधारे। इस समय आपको कॅम्ब्रिज यूनिवर्सिटी की ओर से एल० एल० डी० की उपाधि मिली। इसी वर्ष के दिसम्बर मास में आप देहली दरबार में जी० सी० एस० आइ० की उपाधि से विभूषित किये गये।

जिस समय यूरोप में भयंकर युद्ध की ज्वाला प्रज्वलित हुई, उस समय आपने अपने राज्य की समस्त सेना एवं अन्य सामान भारत सरकार को अर्पण कर दिये। इतना ही नहीं, आपने युद्ध में सम्मिलित होने की अनुमती माँगी। अनुमति मिलने पर आप अपनी सेना सहित भारत सरकार की ओर से फ्रांस और इजिप्त के युद्ध-क्षेत्रों में सम्मिलित हुए। आप अधिक दिनों तक रण-क्षेत्र में न ठहर सके, क्योंकि आपकी पुत्री श्री महाराज कुमारी बड़ी अस्वस्थ थीं। अतएव आप ई० सन् १९१५ के फरवरी मास में वापस लौट आये। ई० सन् १९१७ में युद्ध कांफरेन्स में सम्मिलित होने के लिये आप भारतीय नरेशों के प्रतिनिधि मनोनीत किये जाने पर फिर इंग्लैण्ड पधारे।

इस समय आपको मेजर-जनरल की उपाधि प्राप्त हुई। एडिनबर्ग यूनिवर्सिटी ने भी इस समय आपको एल० एल० डी० की ऑनररी उपाधि प्रदान की। ई० सन् १९१८ में आप फिर इँगलैंड पधारे तथा व्हारसेलीज़ के सुलह कांफरन्स में सम्मिलित हुए। इसके दूसरे वर्ष की १ली जनवरी को आपको जी० सी० वी० की उपाधि मिली। इसके दो वर्ष पश्चात् अर्थात् ई० सन् १९२१ की १ जनवरी को आप जी० सी० वी० ई० की फौजी उपाधि से विभूषित किये गये। इसी वर्ष आप नरेन्द्र-मण्डल के प्रथम चॉन्सलर के पद पर चुने गये। आपका सम्पूर्ण नाम निम्न प्रकार है:—

"मेजर जनरल हिज़ हायनेस महाराजा राजराजेश्वर शिरोमणि श्री सर गङ्गासिंह बहादुर, जी० सी० एस० आय०, जी० सी० आइ ई०, जी० सी० वी० ओ०, जी० बी० ई०, के० सी० बी०, ए० डी० सी०, एल० एल० डी०"।

आपको १९ तोपों की सलामी का सम्मान है। आपके आप्त-गणों के नाम महाराज श्री सर भैरोसिंह जी बहादुर के० सी० एस० आइ० तथा महाराज श्री जगमंगलसिंह जी आदि हैं।

पटियाला-राज्य का इतिहास

HISTORY OF THE PATIALA STATE.

(१) महाराजा बाबा अल्लासिंह साहिब बहादुर (२) हिज हाईनेस महाराजा अमरसिंह साहब बहादुर (३) हिज हाईनेस महाराणा साहिबसिंह साहिब बहादुर (४) हिज हाईनेस महाराजा कर्मसिंह साहिब बहादुर (५) हिज हाईनेस महाराजा सर नरेन्द्र सिंह साहब बहादुर

पटियाला की रियासत सिख रियासतों में सबसे बड़ी है। यह तीन भागों में विभक्त है, जिनमें से सब से बड़ा हिस्सा दक्षिणी किनारे पर है, दूसरा शिमला के पास के पर्वतीय प्रदेश में और तीसरा राजधानी से १८० मील की दूरी पर है। इस तीसरे हिस्से का नाम नारनोल परगना है। इस राज्य का क्षेत्रफल ५४९२ वर्गमील है। ई० स० १९११ की की मर्दुमशुमारी के अनुसार यहाँ की मनुष्य-गणना १४,१०,६५९ थी। राज्य में उर्दू और पंजाबी भाषा बोली जाती है। रियासत की कुल वार्षिक आमदनी १,१७,०००,०० के करीब है।

पटियाला रियासत की स्थापना ईस्वी सन् की अठारहवीं शताब्दी में हुई है। इसके संस्थापक सुप्रसिद्ध आलासिंहजी थे।

राजा आलासिंहजी

इस राजवंश के मूल-पुरुष की उत्पत्ति जयसलमेर के राजवंश से हुई थी। उन्होंने दिल्ली के अंतिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज के समय में जयसलमेर छोड़कर हिसार, सिरसा और भटनेर के आसपास के प्रदेश में पदार्पण किया। कुछ शताब्दियाँ बीत जाने पर उनके खेवा नामक एक वंशज ने नाइली के जाट जमींदार की पुत्री के साथ विवाह कर लिया। इस जोड़े से सिधू नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई। सिधू की

सन्तान इतनी बढ़ी कि जिससे सिधू-जाट नाम की एक जाति खड़ी हो गई। धीरे २ यह जाति इतनी समृद्धिशाली हो गई कि सतलज और जमुना के बीच के प्रदेश की जातियों में वह प्रमुख गिनी जाने लगी। इस जाति में फूल नामक एक व्यक्ति हुआ और फूल के वंश में आलासिंह उत्पन्न हुए। आलासिंह बड़े प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। अपनी प्रतिभा ही के बल पर आपने इतने बड़े राज्य की स्थापना की थी। कोट और जगराँव के मुसलमान सरदारों, मालेरकोटला के अफगानों और जलन्दर दुआब के शाही फौजदार की संयुक्त शक्ति पर उन्होंने एक समय बड़ी ही मार्के की विजय प्राप्त की थी। इस विजय के कारण आलासिंहजी की कीर्ति दूर २ तक फैल गई थी।

ई० स० १७४९ में आलासिंह ने धोदन (भवानीगढ़) का किला बनवाया। इसके कुछ ही समय बाद इस राज्य की वर्तमान राजधानी पटियाला बसाई गई। आलासिंहजी ने भटिंडा नरेश पर चढ़ाई करके उनके कई गाँव अधिकृत कर लिये। ई० स० १७५७ में आपने भट्टी लोगों पर विजय प्राप्त की। इसी बीच अहमदशाह अब्दाली ने पंजाब के रास्ते से दिल्ली तक आकर सुप्रसिद्ध पानीपत के युद्ध में मरहठों को पराजित किया। इस समय आलासिंहजी ने अब्दाली से मित्रता कर ली। अब्दाली ने खुश होकर आपको उस प्रान्त का एकछत्र राजा स्वीकार किया। इतना ही नहीं, उसने आपको सिरोपाव एवं राजा की पदवी भी प्रदान की। सिख लोग शाह को अपना जानी दुश्मन मानते थे, अतएव उन्होंने शाह के साथ बारनाला-स्थान पर युद्ध किया। इस युद्ध में २०,००० सिक्ख वीरगति को प्राप्त हुए। पर आलासिंहजी अब्दाली के हाथों अपने मनुष्यों का काटा जाना बुद्धिमानी नहीं समझते थे। वे उन्हें विदेशी आक्रमणों से बचाये रखना चाहते थे। इसका यह परिणाम हुआ कि ई० स० १७६४ में अहमदशाह ने आपको सरहिंद प्रान्त दे दिया।

इस घटना के कुछ ही समय बाद राजा आलासिंहजी का स्वर्गवास हो गया। आपका अपनी प्रजा पर बड़ा प्रेम था। यही कारण है कि अभी भी प्रजा में आपका नाम गौरव के साथ स्मरण किया जाता है।

राजा अमरसिंहजी

आलासिंह के बाद उनके पौत्र अमरसिंहजी पटियाला की गद्दी पर बैठे। आपमें एक योग्य शासक और वीर सिपाही के गुण विद्यमान थे। ई० स० १७६७ में जब अहमदशाह अन्तिम बार पंजाब में आया तब उसने अमरसिंहजी को 'राजये-राजगान' की पदवी प्रदान की। ई० स० १७६६ में अमरसिंहजी ने मालेरकोटला नरेश से पायल और इसरू नामक स्थान जीत लिये। इसके बाद आपने अपने जनरल को पिन्जोर नामक स्थान पर अधिकार करने के लिये भेजा। ई० स० १७७१ में अपने भटिंडा पर अधिकार कर लिया और ई० स० १७७४ में अपने रिश्तेदार आटियों पर चढ़ाई करके बेघरन नामक स्थान पर उन्हें पराजित किया। आपने उनसे फतेहाबाद और सिरसा परगने छीन लिये तथा आपके दीवान नन्नूमल ने हाँसी के अधिकारी को परास्त कर हिसार जिले को पादाक्रान्त कर डाला। इस प्रकार अमरसिंहजी ने कई प्रदेश जीतकर सतलज और जमुना के बीच पटियाला स्टेट को महान् शक्तिशाली राज्य बना डाला था। ई० स० १७८१ में आपकी मृत्यु हो गई।
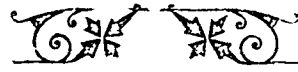
महाराजा साहबसिंहजी

अमरसिंह के बाद उनके पुत्र साहब सिंहजी के गद्दी पर विराजे। इस समय उनकी उम्र ६ वर्ष की थी। साहिबसिंहजी के गद्दी होने पर सम्राट् शाहआलम ने आपको 'महाराजा' का खिताब बख्शा। दीवान नन्नूमल ने साहबसिंहजी की नाबालिगी में कुछ दिनों तक बड़ी चतुराई से राज्यकार्य किया। इनका जनता पर बड़ा प्रभाव था। किन्तु जब इन्होंने राज्य के कुछ अन्दरूनी झगड़ों को दबाने के लिये मरहठों की मदद माँगी, तब ये अपने पद से हटा दिये गये और बाल महाराजा की बहिन बीबी साहिब कौर दीवान का काम करने लगी। आप में राजपूती जोश और धैर्य दोनों विद्यमान थे। जिस समय ई० स० १७९४ में मरहठों ने पटियाला राज्य पर फिर चढ़ाई की थी, तो आप स्वत: सेना सहित युद्ध क्षेत्र में पहुँची थीं और अपनी वीरता का परिचय दिया था।

ई० स० १८०४ में लॉर्ड लेक महाराजा जसवन्तराव का पीछा करते हुए पटियाला राज्य से गुजरे, उस समय साहिब सिंहजी ने उन्हें अच्छी सहायता पहुँचाई। इस सहायता के प्रतिफल में लॉर्ड लेक ने आपसे इकरारनामा किया जिसमें उन्होंने आपको विश्वास दिलाया कि जब तक आप साम्राज्य सरकार से मित्रभाव रखेंगे तब तक वह आप से किसी भी तरह का कर नहीं लेगी।

ई० स० १८०५ में दुलद्दी गाँव के स्वामित्व-संबंधी में झगड़ा पड़ा। यह झगड़ा इतना बढ़ा कि इसके कारण बहुत सा रक्तपात हुआ। नाभा और झिंद के नरेशों ने इस झगड़े में दखल देने के लिये महाराजा रणजीतसिंह का आह्वान किया। महाराजा रणजीतसिंह के सतलज नदी

पार करने पर पटियाला की फौज से उनका सामना हुआ। पटियाला की फौज ने उनसे इतना भीषण युद्ध किया कि विवश हो पंजाब-केसरी महाराजा रणजीतसिंह को उनसे सुलह करना पड़ी। वे पटियाला राज्य छोड़-कर मार्ग में दूसरे राजाओं को पराजित करते हुए लाहौर वापिस लौट गये। प्रबल महाराजा रणजीतसिंह के आक्रमण के भय से साहिबसिंहजी तथा सतलज नदी निकटस्थ दूसरे सिक्ख सरदारों ने मिलकर अंग्रेजों से सहायता चाही। अंग्रेजों ने उन्हें न केवल सहायता देने का अभिवचन ही दिया परन्तु महाराजा रणजीतसिंहजी को सतलज नदी के दक्षिणी तट पर बसे हुए सारे मुल्क से अपना कब्जा हटा लेने के लिये भी बाध्य किया।

पटियाला में आपसी कलह का अभी तक पूरी तौर से दमन नहीं हुआ था। इस समय वहाँ एक शक्तिशाली शासक की बड़ी आवश्यकता थी। अतएव लुधियाना के ब्रिटिश एजेंट के अनुरोध से रानी कौर रिजेंट के पद पर नियुक्त की गई। रानी साहिबा बड़ी सुयोग्य महिला थीं। उन्होंने राज्यकार्य बड़ी योग्यता से सँभाला।

महाराजा साहिबसिंहजी चिरकाल तक राज्योपभोग न ले सके। ई० स० १८१३ में उनकी मृत्यु हो गई।
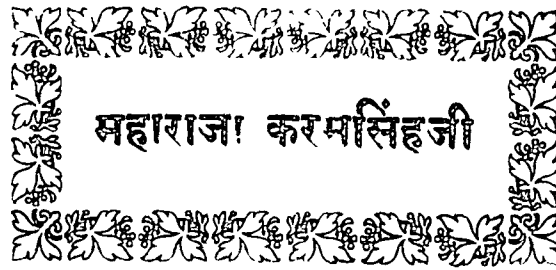
महाराजा करमसिंहजी

साहिबसिंहजी के पश्चात् महाराजा करमसिंहजी राज्यासन पर बैठे।

आपने भारत-सरकार को कई युद्धों में बड़ी सहायता दी। पंजाबीय युद्ध खतम होने पर आपकी सहायता के उपलक्ष में अंग्रेज सरकार की

ओर से आपको शिमला के आसपास सोलह परगने मिले। प्रथम अफगान युद्ध-खर्च के लिये ई० स० १८३० में आपने भारत सरकार को २५,००,०० रुपये दिये। ई० स० १८४२ में भी आपने द्वितीय अफ़गान युद्ध में ५,००,००० रुपये दिये। इसके दूसरे ही वर्ष आपने अपनी १००० अश्वारोही सेना और दो तोपें भेजकर ब्रिटिश सरकार को कैंथाल रियासत में होनेवाले आन्दोलन को शान्त करने में सहायता दी थी। प्रथम सिक्ख-युद्ध में आपने अपनी २००० अश्वारोही सेना, २००० पैदल सेना तथा उनके परिचारक-गण आदि से ब्रिटिश सरकार की सहायता की। युद्ध में अधिकांश रसद इन्तजाम का जिम्मा भी आपने लिया। आप उक्त युद्ध खतम होने के पहिले ही इस लोक से कूच कर गये। आपकी बहुमूल्य और सामयिक सेवाओं के उपलक्ष्य में बृटिश सरकार ने पटियाला राज्य से नजर वसूल करना बन्द कर दिया।

महाराजा नरेन्द्रसिंहजी

आपके पश्चात् आपके पुत्र महाराजा नरेंद्रसिंहजी राज्यासीन हुए। आपने बृटिश सरकार के साथ दृढ़ मित्रभाव रखा। द्वितीय सिक्ख-युद्ध में आपने बृटिश सरकार को ३०,००,००० रुपया कर्ज दिया था। आपने अपनी सेना भी युद्ध में भेजने का अभिवचन दिया था, किन्तु भारत सरकार को उसकी आवश्यकता न हुई।

ई० स० १८५७-५८ में आपने भारत सरकार को जितनी सहायता दी थी, उतनी शायद ही कोई दूसरे नरेश ने उस अवसर पर दी होगी। जिस समय भारतवर्ष में चारों ओर विद्रोह की ज्वाला प्रज्वलित हो रही थी, जिस समय चारों ओर अराजकता फैली हुई थी, उस समय सिक्ख जाति ने श्रीमान् को अपना प्रमुख नेता स्वीकृत किया था। यदि आप चाहते

ता सारी सिक्ख जाति उस समय साम्राज्य सरकार के विरुद्ध आन्दोलन करने को उद्यत हो जाती। आपकी सत्ता, आपकी स्थिति उस समय इतनी ऊँची थी कि यदि आप शस्त्र उठाते, तो बलवाइयों में सबसे प्रबल नेता बन जाते और बृटिश सरकार को आपका सामना करने में कई कठिनाइयाँ उठानी पड़तीं। किन्तु श्रीमान् ने बृटिश सरकार के प्रति अपना मित्रभाव कायम रखा और ऐसे भयंकर प्रसंग में भी आपने उनकी अच्छी सहायता की।

गदर के शुरू से अन्त तक अपनी आठ तोपें, २१५६ अश्वारोही सेना, २८४६ पैदल फ़ौज तथा १५६ अफसर बृटिश सरकार की अधीनता में रखकर आप उन्हें सहायता करते रहे। ई० स० १८५८ में बलवा शान्त हो जाने पर भी आपने अपनी २ तोपें, २९३० पैदल फ़ौज, और ९०७ सवार बृटिश सरकार की मदद के लिये रखे थे।

उपरोक्त सहायता के मुआवजे में बृटिश सरकार ने आपको नारनौल परगना प्रदान किया। आपने इसके बदले अंग्रेज सरकार को आन्दोलन तथा संकट के समय में धन तथा जन से सहायता करना स्वीकार किया। ई० स० १७४८ तथा गदर के समय दिये हुए कर्ज के बदले भारत सरकार ने अपना कन्नौद परगना और खामगाँव तालुका आपके अधिकार में दे दिया। आपको निम्न लिखित पदवियाँ भी प्राप्त हुईं:—

"फरजन्दि-इ-खास, दौलत-इ-इंग्लिशिया, मन्सूर-इ-जमान, अमीर-उल-उमरा श्री"।

ई० स० १८६१ में आप के० सी० एस० आय० की उपाधि से विभूषित किये गये। हिन्दू नरेशों में यह उपाधि पहिले पहल आप ही को प्राप्त हुई थी। आप लॉर्ड केनिंग के शासन-काल में कायदे कानून बनाने वाली कौंसिल के भी मेम्बर बनाये गये थे। ई० स० १८६२ में आप परलोक सिधारे।
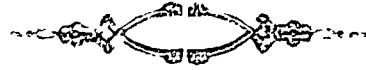
महाराजा महेन्द्रसिंहजी

महाराजा की मृत्यु के पश्चात् आपके ज्येष्ठ पुत्र राजा महेन्द्रसिंहजी १० वर्ष की अवस्था में राजगद्दी पर बैठे। आपका २६ वर्ष की उम्र में देहान्त हो गया। आपके शासन-काल में सरहिन्द नामक नहर निकालने का काम शुरू हुआ। आपने इस नहर के बनवाने में १,२३,०००,०० रुपये प्रदान किये थे। कूका-विद्रोह दमन करने में आपने बृटिश सरकार को अच्छी सहायता पहुँचाई थी। आपने लाहौर में विश्व-विद्यालय स्थापन करने के लिये ७०,००० रुपये प्रदान किये तथा अपने राज्य में भी महिन्द्र कॉलेज की स्थापना की। आपको जी० सी० एस० आइ० की उपाधि भी प्राप्त हुई तथा आपकी सलामी १५ से बढ़ाकर १७ तोपें कर दी गई। ई० स० १८७३ में बंगाल के अकाल पीड़ित लोगों की सहायता के लिये आपने १०,०००,०० रुपये प्रदान किये।

ई० स० १८७५ में तत्कालीन प्रिन्स ऑफ वेल्स (स्वर्गीय सप्तम एडवर्ड) से आपकी राजपुरा मुकाम पर मुलाकात हुई। इस भेट के स्मृति-स्वरूप इस ग्राम में 'अल्बर्ट महेन्द्रगंज' बसाया गया।

महाराजा राजेन्द्रसिंहजी

आप अपने चार वर्षीय उत्तराधिकारी पुत्र राजेन्द्रसिंहजी को छोड़कर ई० स० १८७६ में इस लोक से चल बसे। बृटिश सरकार ने बाल महाराजा को राजगद्दी पर बैठाकर शासन का भार एक कौंसिल के

हिज़ हाईनेस महाराजा साहिब, पटियाला (वर्तमान)

सुपुर्द कर दिया। कौंसिल ई० स० १८७५ तक राज्य कार्य चलाती रही। ई० स० १८०७ में महाराजा राजेन्द्रसिंहजी बालिग हो गये, इससे आपको सर्वावष समस्त शासनाधिकार प्राप्त हो गये। कौंसिल ऑफ रेजन्सी के शासनकाल में ई० स०१८८७ के अन्त में पटियाला राज्य की सेना उत्तर-पश्चिमीय युद्ध में सम्मिलित हुई थी। इसके दो वर्ष पश्चात् इसी सेना ने तिराह और महमनद के आक्रमण में अच्छी वीरता दिखाई थी। चीन के युद्ध में भी इस सेना ने भाग लिया था। दक्षिणी आफ्रिका के युद्ध में महाराजा साहब ने ब्रिटिश अश्वारोही सेना के उपयोग के लिये अपने शिक्षित नूतन अश्व भेजे थे। आपके शासन-काल में भटिंडा और राजपुरा के दरम्यान १०८ मील लंबी रेल्वे लाइन बनाई गई। आपने अमृतसर खालसा कॉलेज को १,६४,००० रुपये, पंजाब विश्वविद्यालय को ५५,००० रुपये तथा इम्पीरियल इंस्टिटयूट लंडन को ३०,००० रुपये प्रदान किये। ई० स० १९०७ में आपकी मृत्यु हो गई।

महाराजा भूपेन्द्रसिंहजी

महाराजा राजेन्द्रसिंहजी के देहान्त के समय वर्तमान महाराजा भूपेन्द्रसिंहजी नाबालिग थे। अतएव आप राज-गद्दी पर बिठाये गये और राज्यकार्य चलाने के लिये एक कौंसिल स्थापित की गई। महाराज भूपेन्द्रसिंहजी का जन्म ई० स० १८९१ में हुआ है। लाहौर के एटकिन्सन चीफ कॉलेज में आपने शिक्षा पाई। आपकी नाबालिगी में रिजेन्सी कौन्सिल द्वारा राज्य कार्य चलता रहता रहा। ई० स० १९०३ के कॉरोनेशन दरबार में आप स्वयं अपने संचालन में अपनी सेना को 'ग्रेंड रिव्यू' दिखाने ले गये थे। इस समय आपकी उम्र केवल १२ वर्ष की थी। उसी वर्ष आपकी भारतवर्ष के तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्जन के साथ मुलाकात हुई।

ई० स० १९०५ में आपने वर्तमान् भारत सम्राट् से लाहौर में भेंट की। उस समय सम्राट् भारत में प्रिन्स ऑफ वेल्स की हैसियत से पधारे थे। इस शुभ अवसर पर पटियाला नरेश ने अमृतसर खालसा कॉलेज से विदेश में शिक्षा प्राप्त करने के लिये जाने वाले विद्यार्थियों की सहायता के लिये १,००,००० रुपये प्रदान किये। ई० स० १९०८ में आपका भिन्द राज्य के सेनापति की पुत्री के साथ विवाह हुआ। ई० स० १९०९ की ३० वीं सितंबर को आपने १८ वर्ष की उम्र में शासन-सूत्र धारण किया। इसके दूसरे वर्ष नवंबर मास में लॉर्ड मिन्टो पटियाला पधारे, उस समय पटियाला के जल-कारखाने का उद्घाटन किया गया। आपके शासन-काल में पटियाला राज्य ने बहुत उन्नति पाई है। आपका अपने प्रजा की शिक्षा एवं आरोग्य पर विशेष ध्यान है। राज्य में प्राथमिक तथा कॉलेज सम्बन्धी शिक्षा निःशुल्क दी जाती है।

आपने समय २ पर निम्न रकमें पृथक् २ कार्यों में प्रदान की हैं:—

(१)	मिन्टो मेमोरियल फन्ड	५,०००)
(२)	व्हिक्टोरिया मेमोरियल हॉल	१,००,०००)
(३)	काँग्रा रिलीफ फंड	१०,०००)
(४)	किंग एडवर्ड मेमोरियल	२,००,०००)
(५)	खालसा कॉलेज अमृतसर एन्डौमेंट फंड.	६,००,०००)
(६)	लेडी हॉर्डिंज मेमोरियल	१,२५,०००)
(७)	,, मेडिकल कॉलेज	२,००,०००)
(८)	सिक्ख कन्या महाविद्यालय, फिरोजपुर	१०,०००)
(९)	सिक्ख धर्मशाला, लन्दन	१,२०,०००)
(१०)	तिब्बिया कॉलेज, देहली	२५,०००)
(११)	हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस	५,००,०००)

आप बनारस यूनिवर्सिटी को २०,००० रुपया वार्षिक प्रदान करते हैं। आपकी यह उदारता अति प्रशंसनीय है।

श्रीमान को क्रिकेट के खेल से विशेष अभिरुचि है। आप ई० स० १९११ में भारतीय क्रिकेट टीम के कैप्टन बनकर इंग्लैंड पधारे थे। आप इसी वर्ष वर्तमान भारत सम्राट् के राज्यारोहण उत्सव के समय निमन्त्रित किये जाने पर उक्त उत्सव में सम्मिलित हुए थे। ई० स० १९११ के देहली दरबार में भी आपने महत्वपूर्ण भाग लिया। इसी दरबार में आपको श्रीमान सम्राट् महोदय ने जी० सी० एस० आइ० की उपाधि से विभूषित किया।

आपकी महारानी साहिबा ने इसी दरबार में भारतीय स्त्री-समाज की ओर से श्रीमती सम्राज्ञी को एक अभिनन्दन-पत्र दिया।

यूरोपीय युद्ध शुरू होते ही आपने अपनी सारी सेना ब्रिटिश सरकार को समर्पण कर दी। ई० स० १९१८ में आपने देहली वार कॉन्फ्रेन्स में प्रमुख भाग लिया था। इसी वर्ष आप इम्पीरियल युद्ध कान्फ्रेन्स तथा कैबिनेट के भारत की ओर से प्रतिनिधि मनोनीत किए गए। आपने बेलजियम, फ्रान्स, इटली और पेलेस्टाइन आदि स्थानों में पहुँचकर युद्ध-क्षेत्र में भ्रमण किया तथा वहाँ की सरकार से उच्च सम्मान तथा उपाधियाँ प्राप्त कीं। आपकी सेवाओं के उपहार में श्रीमान सम्राट् महोदय ने आपको 'सी० ओ० बी० ई० की उच्च उपाधि से विभूषित किया है तथा आपको मेजर जनरल की रैंक का भी सम्मान प्राप्त है। महाराजा करमसिंहजी के शासनकाल में ब्रिटिश-सरकार को किसी प्रकार की नजर न देने का जो विशेष अधिकार आपको प्राप्त था, वह आपके युद्ध में दी हुई सहायता के उपलक्ष में पुश्तैनी कर दिया गया। आपकी सलामी भी १७ से बढ़ाकर १९ तोपों की कर दी गई।

उपरोक्त युद्ध में पटियाला नरेश ने कुल २५००० मनुष्यों से भारत सरकार को सहायता की थी। युद्ध में पराक्रम दिखाने के उपलक्ष में आपकी सेना को १०५ से अधिक सम्मानप्रद पदक मिले हैं।

सैनिक सहायता के अतिरिक्त आपके राज्य की ओर से वार-लोन फंड में भी ३५,०००० रुपये एकत्रित हुए थे। आपने इस युद्ध में पृथक् २ कार्यों में दी हुई सहायता १,५०,००,००० रुपयों के लगभग है।

गत अफगान युद्ध में भी आपने अपनी सेना सहित भारत सरकार की सहायता करने की इच्छा प्रकट की, जो कि सहर्ष स्वीकृत की गई। आपने इस युद्ध में 'नॉर्थ वेस्टर्न फ्रांटियर फोर्स' के स्पेशल सर्व्हिस ऑफिसर का पद स्वीकृत किया था। आप भारतीय नरेन्द्र-मंडल के प्रमुख सदस्यों में से हैं तथा आप उसकी कार्यवाही में विशेष दिलचस्पी रखते हैं। अपनी प्रजा को राज्य-कार्य में विशेष अधिकार देने के हेतु से आपने म्यूनिसिपॅलिटी तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में प्रतिनिधि निर्वाचन करने की प्रथा प्रचलित की है।

इस राज्य का बहुतसा हिस्सा एक दूसरे से विशेष दूरी पर होने से कृषि व्यवसाय प्रत्येक भाग में विभिन्न प्रकार से होता है। यहाँ की अधिकांश जमीन समथल है किन्तु वर्षा की कमी के कारण उपज सब जगह एकसी नहीं होती। यहाँ मुख्यत: गेहूँ, ज्वार, कपास, चना, मकई, सोंठ चाँवल, आलू और गन्ने की खेती की जाती है। यहाँ जंगल का क्षेत्रफल भी काफी है, जिनमें इमारती लकड़ी बहुतायत से होती है। घास के लिये भी काफी जमीन है। कृषि तथा दूसरे कामों के लिये ढोर भी अच्छी तादाद में हैं। यहाँ विभिन्न जिलों में घोड़े भी अच्छे मिलते हैं।

पटियाला नगर में कुछ ही वर्ष हुए, लग भग ८०,००० रुपया लगाकर विक्टोरिया मेमोरियल पुअर हाऊस स्थापित किया गया है। विक्टोरिया गर्लस्कूल, लेडी डफरिन हॉस्पिटल और दाई तथा नर्सों की पाठशाला आदि भी वर्तमान नरेश ही ने बनवाये हैं।

शासन-सम्बन्धी कार्यों के लिये राज्य में चार विभाग मुख्य हैं—अर्थ विभाग, फॉरेन विभाग, न्याय विभाग और सेना विभाग। इन सब विभागों के कार्यों की देख रेख स्वयं महाराजा साहब अपने कान्फिडेन्शियल सेक्रेटरी के जरिये करते हैं। यह राज्य करमगढ़, पिंजोर, असरगढ़, अनहद-गढ़, और महिन्द्रगढ़ नामक ५ भागों में विभाजित है, जिन्हें यहाँ निजामत कहते हैं। प्रत्येक निजामत एक नाजिम के अधीन है।

ई० स० १८६२ के पहले भूमिकर फसल का $\frac{1}{3}$ हिस्सा लिया जाता था।

पीछे यह नक़द रुपयों में वसूल किया जाने लगा। ई० स० १९०१ में यहाँ नई पद्धति के अनुसार बन्दोबस्त कायम किया गया है। भूमि-कर के अतिरिक्त इरिगेशन वर्क, रेल्वे, स्टाम्प्स तथा एक्साइज ड्यूटी आदि से भी राज्य को अच्छी आमदनी होती है।

प्रधान न्यायालय को सदर कोर्ट कहते हैं, इसे दीवानी और फौजदारी मामलों के कुल अधिकार प्राप्त हैं। सिर्फ प्राण-दंड के मामलों में इस कोर्ट को महाराजा साहब की मंजूरी प्राप्त करना होती है।

पटियाला राज्य में "भादौड़ के सरदार" नामक बहुत से जमींदार हैं। इन जमीदारों की वार्षिक आय लगभग ७०,००० रुपये हैं। खामामन गाँवों के जागीरदारों को भी राज्य से प्रतिवर्ष ९०,००० रुपये दिये जाते हैं।

पटियाला राज्य में सिक्का

पटियाला नरेशों को अपना सिक्का जारी करने का अधिकार अहमद-शाह दुर्रानी ने ई० स० १७६७ में प्रदान किया था। यहाँ तांबे का सिक्का कभी नहीं जारी हुआ। एक बार महाराज नरेन्द्रसिंह ने अठन्नी और चवन्नी चलाई थी। रुपये और अशर्फियाँ ई० स० १८९५ तक राज्य की टकसाल में ढलती रहीं। अन्त तक सिक्कों पर वही पुरानी इबारात खुदी रहती थी कि "अहमदशाह की आज्ञानुसार जारी हुआ।" पटियाले का रुपया राज-शाही रुपया कहलाता था। नानकशाही रुपये अब भी ढाले जाते हैं। यह केवल दशहरे या दिवाली पर ही काम आते हैं। इस रुपये पर यह शेर छपा रहता है—"देग तेगो फतह नसरत बेदरंग, याफ्त अज नानक गुरु गोविन्दसिंह।"

इसका मर्मांश यह है कि देग और तेग अर्थात् तलवार तथा विजय यह सब गुरु गोविंदसिंह को नानक से प्राप्त हुई।

शिल्प व्यापार

सुनाम नगर में सूती कपड़े और पटियाला में रेशमी कपड़े अच्छे

रींवा-राज्य का इतिहास

[प्राचीन]

HISTORY OF THE REWAH STATE

[Preliminary]

महाराजा रींवा मूलतः सु-प्रख्यात् सोलंकी वंश की बघेला शाखा के हैं। गुप्तों के गौरवशाली साम्राज्य के अन्त होने पर भारतवर्ष में जो अनेक राज्यवंशों के स्वतंत्र राज्य स्थापित हुए, उनमें सोलंकियों के समान प्रभावशाली और विस्तृत राज्य दूसरा कोई नहीं था। एक समय था जब कि महाप्रतापी सोलंकियों के सौभाग्य सूर्य से प्रायः सारा भारतवर्ष आलोकित था। चारों ओर इनका प्रबल प्रताप और आतंक छाया हुआ था। भारतवर्ष के इतिहास को जिन २ राज-वंशो ने विशेष-रूप से आलोकित किया है, उनमें महाप्रतापी सोलंकियों का अतिउच्च आसन है। उनका इतिहास भारतवर्ष के गौरव की चीज़ है। उनके प्राचीन वैभव पर उचित अभिमान किया जा सकता है।

इस प्रतापी वंश की उत्पत्ति के विषय में इतिहास-वेत्ताओं के भिन्न २ मत हैं—

पश्चिमी सोलंकी राजा विक्रमादित्य छटे के समय के (वि० सं० ११३३ और ११८३ के बीच के) शिला-लेख में लिखा है "चालुक्य (सोलंकी) वंश भगवान ब्रह्मा के पुत्र अग्नि के नेत्र से उत्पन्न होने वाले चन्द्र वंश के अन्तर्गत है।" उक्त राजा के एक दूसरे शिलालेख में भी ऐसा ही लिखा है।

पूर्वीय सोलंकी राजा राजराज प्रथम के समय के (वि० सं० १०७९-११२०, ई० स० १०२२—१०६३) एक ताम्र-पत्र में लिखा है "भगवान पुरुषोत्तम के नाभि-कमल से ब्रह्मा हुए। उनसे क्रमशः अत्रि, सोम, बुद्ध, पुरुरवा, आयु, नहुष, ययाति, पुरु, जनमेजय, प्राचीष, सैन्ययति, हयपति,

सार्वभौम, जयसेन, महाभोम, देशानक, क्रोधानन, देवकी, ऋभुक, ऋभक, मतिवार, कात्यायन, नील, दुष्यन्त, भरत, भूमन्यु, सूहोत्र, हस्ति, विरोचन, अजामील, संवरण, सुधन्वा, परिक्षित, भीमसेन, प्रदीपन, शांतनु, विचित्रवीर्य, पाण्डु, अर्जुन, अभिमन्यु, परिक्षित, जनमेजय, क्षेमुक, नरवाहन, शतानीक, और उदयन हुए। उदयन से लगाकर ५९ चक्रवर्ती राजा अयोध्या में और हुए। फिर उस वंश का राजा विजयादित्य, विजय की इच्छा से दक्षिण में गया जिसका वंशज राजराज था।" उक्त राजा के ३२ वें राज्य-वर्ष (शक सम्वत् ९७५, वि० सं० ११९०, ई० सन् १०५३) के ताम्र-पत्र में भी इसी तरह वंशावली दी है।

सोलंकी राजा कुलोत्तुंग चोड़देव दूसरे के (शक सं० १०६५ वि० सं० १२००, ई० स० ११४३) समय के ताम्रपत्र में सोलंकियों का चन्द्रवंशी, मानव्यगौत्री और हारीतिका वंशज होना लिखा है। पर ये मानव्य और हरीति कौन थे इस विषय में कुछ भी नहीं लिखा है। हां, पश्चिमीय सोलंकी राजा जयसिंह दुसरे के समय के वि० सं० १०८२ (शक सं० ९४७, ई० स० १०२५) के लेख में उनका परिचय इस प्रकार दिया है। "ब्रह्मा से स्वयं भुवमनु उत्पन्न हुआ, जिसके पुत्र मानव्य के वंशज मानव्यगौत्री कहलाये। मानव्य का पुत्र हरीत, उसका पंचशिखिहारिति हुआ। उसके पुत्र चालुक्य से जो वंश चला वह चालुक्य (सोलंकी) वंश कहलाया।"

सोलंकी राजा राजराज (प्रथम) के वंशज विजयादित्य और पुरुषोत्तम के दो शिला-लेखों में सोलंकियों का चन्द्रवंशी होना लिखा है। ये शिला-लेख क्रमशः वि० सं० १३३० और १३७५ (शके सं० ११९५—१२४०, ई० स० १२७३ से १३१८) के हैं।

सोलंकी राजा राजराज (प्रथम) के दानपत्र में जहां उसका राज्याभिषेक वि० सं० १०७९ (शके सं० ९४४, ई० स० १०२२) में होना लिखा है, वहाँ इसको 'सोमवंश तिलक' कहा है।

सोलंकी राजा कुलोत्तुंग चोड़देव (राजेन्द्रचोल) प्रथम के इतिहास

क संबंधी 'कलिंगतुपरणी' नामक तामिल भाषा के काव्य में उक्त राजा का चन्द्रवंश में उत्पन्न होना लिखा है।

उपर्युक्त ताम्रपत्र (वीरचोड़) संवत् ११४० (शके १०१२, ई० स० १०९०) में उसके दादा राजराज को सोमकुल (चन्द्रवंश) का भूषण लिखा है।

सोलंकी राजा कुलोत्तुंग चोड़देव (दूसरे) के सामन्त बुद्धराज के वि० सं० १२४८ के दान-पत्र में कुलोत्तुंग चोड़देव के प्रसिद्ध पूर्वज कुब्जविष्णु का चन्द्रवंशी होना लिखा है।

प्रसिद्ध जैनाचार्य हेमचन्द्राचार्य वा रचित 'द्वयाश्रम महाकाव्य' के नवमें सर्ग में गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव के दूत और चेदि-देश के राजा कर्ण के वार्तालाप का विस्तार से वर्णन है। इसमें भीमदेव का चन्द्रवंशी होना लिखा है। उक्त वर्णन का सारांश यह है कि दूत ने राजा कर्ण से पूछा कि "राजा भीमदेव आपसे यह जानना चाहते हैं कि आप हमारे मित्र हैं या शत्रु ? इसके उत्तर में कर्ण ने कहा था कि कभी निर्मूल न होनेवाला सोम-(चन्द्र) वंश विजयी है। इसी वंश में जन्म लेकर पुरुरवा ने पृथ्वी का पालन किया। इन्द्र के प्रभाव से भयभीत बने हुए स्वर्ग का रक्षण करनेवाला मूर्तिमान क्षात्र-धर्मरूप नहुष इसी वंश में उत्पन्न हुआ था। इसी वंश के राजा भरत ने निरंतर संग्राम करके, अनीति के मार्ग पर चलनेवाले दैत्यों का संहार कर अतुल यश प्राप्त किया था। इसी वंश में जन्म लेकर युधिष्ठिर ने उद्धत् शत्रुओं का संहार किया था। जनमेजय तथा अन्य अक्षय यशवाले तेजस्वी राजा इसी वंश में हुए और इन सब पर्व के राजाओं की समानता करनेवाला वीर भीम (भीमदेव) विजयी है। सत्पुरुषों में मैत्री हो जाना स्वाभाविक है अतएव हमारी मैत्री के विरुद्ध कौन कुछ कर सकता है। मेरी तरफ़ से ये उपायान की वस्तुएँ ले जाकर भीम को भेंट करना और मुझ को उनका मित्र समझना।"

जिनहर्षमणि रचित 'वस्तुपाल चरित्र' में गुजरात के सोलंकी राजा भीमदेव को चन्द्रवंश की शोभा बढ़ानेवाला (चंद्रवंशी) लिखा है।

काश्मीरी पंडित विल्हण ने अपने रचे हुए 'विक्रमांकदेव चरित' नामक काव्य में लिखा है "एक समय जब कि ब्रह्मा संध्या वंदन कर रहे थे, इन्द्र ने आकर पृथ्वी पर धर्म-द्रोह बढ़ने और देवताओं को यज्ञ विधान न मिलने की शिकायत कर उसके निवारण के लिये एक वीर पुरुष उत्पन्न करने की प्रार्थना की। इस पर ब्रह्मा ने संध्या जल से भरे हुए अपने चुलुक (अंजली) की एक ओर ध्यानमयी दृष्टि दी, जिससे उस चुलुक के त्रैलोक्य की रक्षा करनेवाला एक वीर पुरुष पैदा हुआ। उसके वंश में क्रमशः हरित और मानव्य हुए। इन क्षत्रियों ने पहले अयोध्या में राज्य किया। वहाँ से विजय करते हुए वे दक्षिण में गये।"

गुजरात के सोलंकी राजा कुमारपाल के समय के वि० सं० १२०८ के बड़नगर के तथा प्रसिद्ध चितौड़ के किले के लेखों में और ई० स० की तेरहवीं शताब्दि के खम्बात के कुन्तनाथ के मन्दिर के लेख में भी इसी आशय के उल्लेख हैं।

सुप्रख्यात् पुस्तक 'पृथ्वीराज रासो' में सोलंकियों को अग्निवंशी कहा है। वर्तमान सोलंकी अपने आपको अग्निवंशी बतलाते हैं और वसिष्ठ ऋषि द्वारा आबू के अग्निकुण्ड से अपने मूल पुरुष चालुक्य का उत्पन्न होना मानते हैं।

ऊपर हमने सोलंकियों की प्राचीन उत्पत्ति पर प्रकाश डालने की चेष्टा की है। अब इसके गौरव-मय प्राचीन इतिहास पर भी दो शब्द लिखना आवश्यक प्रतीत होता है।

सोलंकियों के अनेक ताम्र-पत्र और शिला-लेख मिले हैं। उनसे यह पता चलता है कि उनका राज्य पहले अयोध्या में था। वहाँ से वे दक्षिण में गये। 'विक्रमांक चरित' से भी इसी बात का निष्कर्ष निकलता है। भाट ग्रंथों से भी सूचित होता है कि पहले उनका राज्य गंगातट पर था। मतलब यह है कि प्राचीन सोलंकियों की ऐतिहासिक सामग्री के अनुसंधान से यह प्रगट होता है कि, पहले इनका राज्य उत्तर में था। पीछे ये दक्षिण में गये और वहाँ से गुजरात, राजपूताना, बघेलखंड आदि प्रान्तों में इनका विस्तार

हुआ। येवुर का शिला-लेख तथा मीरज के ताम्र-पत्र में निम्न लिखित आशय के भाव प्रगट किये गये हैं।

"उदयन के पश्चात् ५९ राजाओं ने अयोध्या में और उनके पीछे १६ राजाओं ने दक्षिण में राज्य किया। इसके पश्चात् सोलंकियों की राजलक्ष्मी दूसरों के अधीन रही। इसके पीछे राजा जयसिंह ने सोलंकी राज्य की स्थापना की।"

दक्षिण के सोलंकियों का परिचय

हम ऊपर कह चुके हैं कि सोलंकी उत्तर से दक्षिण में गये और वहीं से गुजरात, राजपूताना आदि विभिन्न स्थानों में फैले। दक्षिण ही में इनका सौभाग्य उदय हुआ। वहीं से ये प्रकाशमान सूर्य की तरह चमकने लगे और वहीं से इनके प्रबल-प्रताप की छाप पड़ी। पाठकों की जानकारी के लिये हम दक्षिण के सोलंकियों का भी यहाँ थोड़ा सा परिचय दे देना आवश्यक समझते हैं। इससे यह प्रकट होगा कि प्राचीन काल में इस भारत-भूमि पर कैसे २ प्रतापशाली राजवंश हो गये हैं।

दक्षिण में सोलंकियों का राज्य फिर से स्थापित करने का श्रेय राजा जयसिंह को है। ये 'वल्लभ' और वल्लभेन्द्र' आदि उच्च उपाधियों से विभूषित थे। येवुर के शिला लेख से पता चलता है कि इन्होंने प्रबल-प्रतापी राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण के पुत्र इन्द्र पर विजय की थी। इस राठोड़ राजा के पास ८०० हाथी और असंख्य सेना थी। इसी शिला-लेख में यह भी लिखा है कि इन्होंने ५०० राजाओं को नष्ट करके सोलंकियों की राज्य-लक्ष्मी को फिर से प्राप्त की। इससे अनुमान होता है कि राजा जयसिंह ने राष्ट्रकूट और अन्य वंश के राजाओं का राज्य छीन कर अपना राज्य जमाया। उसके पीछे उसका पुत्र रणराग राज्यासीन हुआ। यह शरीर से बड़ा प्रचंड, युद्ध-रसिक और शिव-भक्त था।

जयसिंह और रणराग का समय

जयसिंह और रणराग के समय का अभी तक कोई लेख नहीं मिला। इससे उनके समय का ठीक २ मालूम करना बड़ा कठिन कार्य है। पर अनुमान से इनके समय पर कुछ प्रकाश डाला जा सकता है। रणराग के पुत्र पुलकेशी के राज्य की समाप्ति वि० सं० ६२४ में हुई। यदि प्रत्येक राजा का राजत्व-काल २० वर्ष गिना जावे तो जयसिंहजी के राज्य-काल का प्रारम्भ वि० सं० ५६४ और रणराग की गद्दी-नशीनी वि० सं० ५८४ के लगभग होना स्थिर होगी।

पुलकेशी

दक्षिण के सोलंकियों में पुलकेशी प्रथम बड़े पराक्रमी हुए। वे 'महाराज', 'रणविक्रम', 'श्रीवल्लभ' और 'वल्लभ' आदि उच्च और सम्मानीय उपाधियों से विभूषित थे। वि० सं० ६९१ के 'एहोले' के लेख से मालूम होता है कि इन्होंने वातापी* (बादामी) नगरी को अपनी राजधानी बनाया। येवुर के शिला-लेख से यह भी प्रगट होता है कि इन्होंने अश्वमेध, अग्निष्टोम, अग्निचयन, वाजपेय, बहुसुवर्ण और पेंडरिक नामक यज्ञ कर ऋत्विजों को बहुत से गाँव दिये। नेरूर के एक दानपत्र में लिखा है कि पुलकेशी, मनुस्मृति, पुराण, रामायण, महाभारत, इतिहास, और नीति के बड़े पण्डित थे। इनके कीर्तिवर्मा और मङ्गलीश नामक दो पुत्र थे।

* यह नगर बीजापुर जिले के बदामी विभाग का एक मुख्य नगर है।

कीर्तिवर्मा

पुलकेशी के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र कीर्तिवर्मा राज्यासन पर आरूढ़ हुए। इन्हें पृथ्वी वल्लभ, महाराज, पुरूरण पराक्रम, और वल्लभ की गौरव सूचक उपाधियाँ प्राप्त थीं। एहोले के लेख से प्रकट होता है कि इन्होंने नल, मौर्य्य और कदम्ब वंशियों को नष्ट किया। शत्रुओं की लक्ष्मी को लूटा और कदम्ब-वंशियों के वड़े समूह को तोड़ने में बड़ा पराक्रम बतलाया। इनके समय में नलवंशी राजा नलवाड़ी (बम्बई प्रेसिडेन्सी का एक अंश) प्रदेश के, मौर्य्य कोकण के और कदम्बवंशी राजा उत्तरीय कनाड़ा के मालिक थे। कीर्तिवर्मा ने इन सब पर विजय प्राप्त कर उक्त प्रान्त अपने आधीन कर लिया।
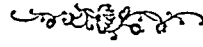
मंगलीश

कीर्तिवर्मा के पश्चात् उनके छोटे भाई मंगलीश राज्य के उत्तराधिकारी हुए। इन्होंने 'उरुरण—विक्रान्त,' 'रणविक्रान्त', और पृथ्वी वल्लभ की उच्च उपाधियाँ धारण कीं। एहोले के लेख से प्रकट होता है कि इन्होंने पूर्वीय और पश्चिमीय समुद्र तटों पर अपना अश्व-सैन्य रखा था। इसका आशय यही है कि दोनों समुद्र तटों पर इनका अधिकार था। इन्होंने कलचुरी के हैहयवंश के राजा पर विजय प्राप्त की थी। और उसकी बहुत सम्पत्ति लूट लाये थे। इन्होंने रेवती द्वीप पर भी विजय प्राप्त की थी। ये

बड़े विष्णु-भक्त थे। इन्होंने विक्रमी संवत् ६३५ में (ई० स० ५७८) बादामी का पहाड़ कटवाकर एक बड़ा ही सुन्दर मन्दिर बनवाया था। इन्होंने अपने बड़े भाई के पुत्र को राज्याधिकार से वंचित रख अपने पुत्र को राज्य दिलवाना चाहा था। इसी झमेले में इन्हें अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। संभवतः यह घटना वि० सं० ६६७ (ई० सन् ६१०) के करीब की है।
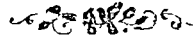
पुलकेशी (द्वितीय)

मंगलीश के पश्चात् उनके बड़े भाई के जेष्ठ पुत्र द्वितीय पुलकेशी राज्यासन पर विराजे। ये परम राजनीतिज्ञ, उत्साही, वीर और बुद्धिमान् थे। इन्होंने अपना खोया हुआ राज्य वापस प्राप्त किया। अपने राज्य में होनेवाली अराजकता को बड़ी बुद्धिमानी और चतुराई के साथ दबाया। इन्होंने तत्कालीन महा पराक्रमी सम्राट् हर्षवर्धन पर अपूर्व विजय प्राप्त की।

ये 'सत्याश्रय' पृथ्वी वल्लभ, वल्लभ राज, महाराज, महाराजाधिराज, भट्टारक और परमेश्वर आदि कई उपाधियों से विभूषित थे। ये शिव के बड़े भक्त थे। वि० सं० ६९१ के शिला-लेख में उस समय तक के राज्य के (पुलकेशी के) पहले के २४ वर्ष का हाल इस प्रकार दिया है:—

"छत्र भंग होने (मंगलीश के मारे जाने) के समय राज्य पर शत्रुरूप अंधकार छा गया। उसे उन्होंने प्रताप रूप प्रकाश से मिटाया। ऐसे समय में अवसर पाकर अप्पायिक और गोविंद अपने हस्तिसैन्य सहित भीमरथी नदी के उत्तर प्रदेश पर चढ़ आये। इनसे एक तो हारकर भाग गया और दूसरे ने मैत्री कर लाभ उठाया। अपनी महान् सेना से कनाड़ा प्रदेश के अति

समृद्धिशाली बनवासी किले पर घेरा डालकर उसे विजय किया। गंगावंशी और अलूपवंशी राजाओं ने उनकी आधीनता स्वीकार की। उनकी प्रबल सेना ने कोकण के मौर्यवंशी राजा को परास्त किया। उन्होंने लाट, मालव और गुर्जर देश के राजाओं को अपने आधीन किया। उन्होंने अपरिमित समृद्धि-शाली अनेक सामंतवाले राजा हर्ष के हस्तिसैन्य का संहार कर उसका हर्ष मिटाया। विंध्याचल पर्वत के निकट रेवा नदी के तट पर उसने प्रबल सैन्य रख छोड़ा था और उससे उसने ९९००० गाँव वाले महाराष्ट्र देश का स्वामित्व संपादन किया। कोसल और कलिंग देश के राजा उसकी सेना को देखकर भयभीत हो गये। पिष्टपुर (मद्रास जिला) को कुचलकर उन्होंने वहाँ के किले पर अधिकार कर लिया × × × ×। इस प्रकार चहुँ ओर विजय प्राप्त कर पीछे वातापी में राज्य करने लगे।"

पुलकेशी का अन्तर्राष्ट्रीय महत्व

पुलकेशी के प्रताप का आतंक न केवल भारतवर्ष में ही वरन् हिन्दुस्थान के बाहर के अनेक देशों में भी छाया हुआ था। कई बड़े २ सम्राट् पुलकेशी के साथ मैत्री करने में अपना गौरव समझते थे। तबरी नामक इतिहास-लेखक अपनी अरबी भाषा की पुस्तक में लिखता है:—"ईरान के बादशाह खुस्रो दूसरे के सन् जुलुम (राज्यवर्ष) ३६ वें में उसका राजदूत पत्र और तुहफा (सौगात की चीजें) लेकर उसके पास आया था। खुस्रो के राजदूत ने अपने बादशाह की ओर का तुहफा पुलकेशी के नजर किया। इस दृश्य का एक सुन्दर चित्र अब तक अजन्टा की गुफा में मौजूद है। पुलकेशी के राज्य-काल में प्रसिद्ध चीनी यात्री हुएनसंग आया था। उसने उसके (पुलकेशी के) प्रबल प्रताप और राज्य विस्तार का सु-मधुर वर्णन किया है।

इस महान् नृपति के अन्त समय में पल्लव वंशी राजा नृसिंहवर्मा ने चोल, पांड्य, केरल आदि देशों के राजाओं को अपने पक्ष में मिलाकर पुलकेशी के राज्य पर चढ़ाई की थी। शिला-लेखों से प्रतीत होता है कि इसबार

पुलकेशी को कुछ दबना पड़ा था। कुछ भी हो, महाराजा पुलकेशी भारत में एक महान हिन्दू सम्राट् थे। भारतीय इतिहास में उनका नाम स्वर्णाक्षरों से लिखने योग्य है। उन्होंने अपने छोटे भाई विष्णुवर्धन को अपने राज्य का पूर्वीय हिस्सा अर्थात् वेंगी देश (दक्षिण कृष्णा और गोदावरी के बीच से पूर्वी समुद्र तट तक का प्रदेश) जागीर में दिया था। पुलकेशी के चार पुत्र थे। जिनका नाम क्रमशः चन्द्रादित्य, आदित्य वर्मा, विक्रमादित्य और जयसिंह था।
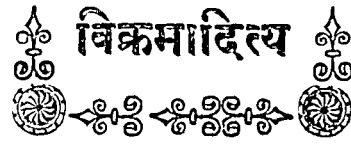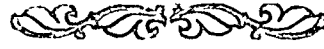
विक्रमादित्य

महाराजा पुलकेशी के बाद उनके तृतीय पुत्र विक्रमादित्य राज्य सिंहासन पर विराजे। ये भी बड़े पराक्रमी थे। "सत्याश्रय, वल्लभ, श्री वल्लभ, महाराजाधिराज, परमेश्वर, भट्टारक, राजमल और रण-रसिक आदि कई सम्माननीय उपाधियों से विभूषित थे। कर्नूल के ताम्र-पत्र में उनके यश का वर्णन करते हुए लिखा है:—

"उसने चित्रकंठ नामक एक उत्तम अश्व पर सवार होकर तलवार के बल से अपने पिता की राज्य-लक्ष्मी, जिसे तीन राजाओं ने मिलकर नष्ट की थी, फिर से प्राप्त की। इसने स्थान २ पर शत्रुओं को पराजित किया था। हैदराबाद के ताम्र-पत्र में लिखा है:—

"उसने (विक्रमादित्य ने) नृसिंह का यश मिटा दिया। महेन्द्र का प्रताप नष्ट किया और नीति से ईश्वरपोत वर्मा को जीतकर पल्लवों को कुचल डाला।"

विक्रमादित्य बड़ा प्रतापी और रण-विजयी हुआ। इसीसे उसे "रण-रसिक" कहते थे। उसने अपने प्रतापी पिता का विस्तीर्ण राज्य फिर से प्राप्त किया। इतना ही नहीं चोल, पांड्य, केरल तथा अनमी के राजाओं को जीतकर सारे दक्षिण हिन्दुस्थान का स्वामी बन बैठा। विक्रम संवत् ७३७ (ई० स० ६८०) में इसका देहान्त हुआ।

विनयादित्य
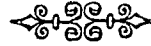
विक्रमादित्य के बाद विनयादित्य राज्यगद्दी पर बैठे। बचपन ही से ये युद्ध-विद्या के बड़े रसिक थे। इन्होंने केरल, मालवा, चोल, पांड्य आदि देशों के राजाओं पर विजय प्राप्त की। वि० सं० ७५३ (ई० स० ६९६) में इनका देहान्त होगया। महाराजा विनयादित्य के बाद क्रम से विजयादित्य, विक्रमादित्य (दूसरा) कीर्तिवर्मा (दूसरे) कीर्तिवर्मा (तीसरा) तैल, विक्रमादित्य (तीसरा), भीम, अय्यन, विक्रमादित्य (चतुर्थ) आदि नृपति हुए। इनके समय में कोई विशेष ऐतिहासिक घटना नहीं हुई।
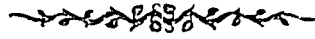
तैल (दूसरा)

ये चतुर्थ विक्रमादित्य के पुत्र थे। इनका दूसरा नाम तैलप था। इन्होंने वि० सं० १०३० (ई० स० ९७३) में राठोड़ राजा कर्कराज को मारकर अपने पूर्वजों के सारे राज्य पर फिर से अधिकार कर लिया। इन्होंने मालवे के सुविख्यात् महाराजा मुंज को कैद कर उन्हें मरवा डाला था। इन्होंने चोल और चेदी देश के राजाओं को कैद किया था। इनके नाम क्रमशः सत्याश्रय और दशवर्मा थे। वि० सं० १०५४ में इनका देहान्त हुआ।

सत्याश्रय

महाराजा तैल (दूसरे) के पश्चात् महाराज सत्याश्रय राज्यासन पर आरूढ़ हुए। ये चोल देश के राजा केशरीवर्मा से लड़े थे। इन्होंने वि० सं० १०५४ से १०६५ (ई० स० ९९७ से १००९) तक राज्य किया।

विक्रमादित्य पाँचवें

ये दसवर्मा के पुत्र थे। महाराज सत्याश्रय के बाद ये राज्यगद्दी पर बिराजे। इनके समय में कोई उल्लेखनीय बात नहीं हुई।

जयसिंह दूसरे

जयसिंहजी महाराज विक्रमादित्य पाँचवें के छोटे भाई थे। इसलिये इनके बाद येही राज्यासन पर सुशोभित हुए। इनकी प्रसिद्ध उपाधि 'जगदेकमल्ल' थी। ये वि० सं० ११०० (ई० स० १०४३) में मालवे के परमार राजा भोज के साथ होनेवाली लड़ाई में मारे गये।

सोमेश्वर

महाराज जयसिंहजी के बाद सोमेश्वर गद्दी नशीन हुए। इनका दूसरा नाम आहवमल्ल भी था। ये बड़े प्रतापी एवम् पराक्रमी राजा थे। ये चोलदेश के राजाओं से कई बार लड़े। चोलदेश के राजा राजेन्द्रदेव इनके हाथ से युद्ध-क्षेत्र में परलोकवासी हुए। इन्होंने अपने पिता के अपमान का बदला लेने के लिये मालवे के परमार राजा भोज पर चढ़ाई कर उसे धारा-नगरी से भगा दिया था। चेदी देश के राजा कर्ण को भी युद्ध-क्षेत्र में परास्त किया था।

इन्होंने कल्याण नगर (कल्याणी-निजाम हैदराबाद) को अपनी राजधानी बनाया था। वि० सं० ११२५ के वैशाख मास में इन्होंने तुंगभद्रा नदी में जल-समाधी ली। इनके सोमेश्वर, विक्रमादित्य, जयसिंह और विष्णुवर्धन नामक चार पुत्र थे।

सोमेश्वर (दूसरा)

अपने पिता की मृत्यु के पश्चात ये बड़े पुत्र होने से राज्य-सिंहासन पर बैठे। पर कुछ समय पश्चात् इनके छोटे भाई विक्रमादित्य ने इन्हें कैद कर लिया और आप स्वयं राज्य-सिंहासन पर बैठ गये।

विक्रमादित्य (छठे)

ये अपने बड़े भाई को कैद कर आप स्वयं राज्यगद्दी पर बैठे। इन्होंने अपने राज्याभिषेक से अपने नाम का एक सम्वत चलाया था। जो चालुक्य विक्रम संवत् कहलाया। यह करीब सौ वर्ष तक चलने के बाद बन्द हो गया। ये बड़े प्रतापी राजा हो गये हैं। प्रसिद्ध काश्मिरी पण्डित विल्हण कवि तथा याज्ञवल्क्य स्मृति पर मिताक्षरा नामक टीका बनाने वाला विज्ञानेश्वर पण्डित, दोनों इन्हीं के आश्रय में रहते थे।

वि० सं० ११८३ (ई० स० ११२६) में करीब सौ वर्ष की अवस्था में इनका देहान्त हुआ। इनके सोमेश्वर और जयकर्ण नामक दो पुत्र थे।

सोमेश्वर (तीसरे)

महाराज विक्रमादित्य छठे के बाद सोमेश्वर तीसरे राज्य-सिंहासन पर विराजे। ये बड़े विद्वान् थे। इन्होंने वि० सं० ११८६ में 'मानसोल्लास' नामक एक संस्कृत का ग्रन्थ रचा था जिसको 'अभिलाषितार्थ चिन्तामणी' भी कहते हैं। वि० सं० ११९५ में इनका देहावसान हुआ।

इनके बाद क्रमशः जगदेकमल्ल, तैल (तीसरा) सोश्वमेर (चतुर्थ) आदि २ नृपति हुए। इनके समय में सोलंकी महा राज्य की उतरती कला शुरू हो गई थी। बहुत सा देश दूसरों के अधीन चला गया था।

गुजरात के सोलंकी

हम ऊपर दक्षिण के सोलंकियों के जाज्वल्यमान प्रताप, उनके अतुलनीय ऐश्वर्य और उनके सुविशाल राज्य पर प्रकाश डाल चुके हैं। यहाँ यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि आरंभ में सोलंकियों का राज्य अयोध्या में था। वहाँ से वे दक्षिण में गये और विशाल राज्य प्राप्त किया। इसके बाद गुजरात, काठियावाड़, राजपूताने और बघेलखण्ड में उनके राज्य स्थापित हुए। रीवाँ राज्य बघेलखण्ड में है। वर्तमान रीवाँ नरेश के पूर्वजों ने गुजरात से आकर बघेलखण्ड में अपना राज्य स्थापित किया। अतएव इनके गुजरात स्थित महापराक्रमी पूर्वजों के अतुलनीय गौरव पर कुछ प्रकाश डालना अनुपयुक्त न होगा।

• ॐ •

मूलराज

ये गुजरात के अनहिलवाड़े (पाटण) के सर्व प्रथम [illegible] नृपति हुए। इन्होंने अपने मामा चावड़ावंशीय सामंतसिंह को मारकर वहाँ का राज्य प्राप्त किया। सांभर के चौहान राजा विग्रहराज (दूसरे) ने इन पर चढ़ाई की। इसी समय कल्याण के सोलंकी राजा तैलप का सेनापति बारप भी, जिसको उसने (तैलप ने) लाट देश जागीर में दिया था, इस पर चढ़ आया। इससे यह (मूलराज) अपनी राजधानी छोड़कर कच्छदेश के कंथकोट नामक किले में चला गया। विग्रहराज इसका मुल्क लूटकर वापस चला गया। बारप लड़ाई में मारा गया। सोरठ देश (दक्षिणी काठियावाड़) के चुड़ासमा (यादव) राजा ग्रहरिपु पर इन्होंने चढ़ाई की। उस समय उसका (ग्रहरिपु का) मित्र कच्छ का जाड़ेजा (यादव) राजा लाखा फूलाणी

उसकी सहायता के लिये आया। इस लड़ाई में मूलराज ने ग्रहरिपु को कैद किया और लाखा फूलाणी मार डाला गया। इन्होंने सिद्धपुर में प्रसिद्ध 'रुद्रमहालय' नामक शिवालय बनाया और कई ब्राह्मणों को दूर २ से बुलवा कर कितने ही गाँव दान में दिये। इन्होंने वि० सं० १०१७ से १०५२ (ई० स० ९६१ से ९९६) तक राज्य किया।
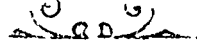
चामुण्डराज

मूलराज के बाद चामुण्डराज राज्यासीन हुए। इन्होंने वि० सं० १०५२ से १०६६ तक राज्य किया। ये व्यभिचारी थे। इनकी इस प्रवृत्ति के कारण इनकी बहिन वाचिणी देवी (चाचिणी देवी) ने इन्हें पदच्युत कर इनके पुत्र वल्लभराज को गद्दी पर बिठा दिया। चामुण्डराज के वल्लभराज, दुर्लभराज और नागराज नामक चार पुत्र थे।
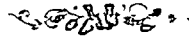
वल्लभराज

चामुण्डराज के बाद वल्लभराज राजगद्दी पर बैठे। इन्होंने राज्य पाने के कुछ ही समय बाद मालवे पर चढ़ाई की। परन्तु बीमारी के कारण मार्ग ही में इनका देहान्त हो गया। इन्होंने करीब छः माह तक राज्य किया।

दुर्लभराज

वल्लभराज की मृत्यु होने के बाद इनके छोटे भाई दुर्लभराज राज्यासीन हुए। इनका विवाह नाडौल के चौहान राजा महेन्द्र की बहिन दुर्लभदेवी से हुआ था। इन्होंने वि० सं० १०६६ से १०७८ (ई० स० १०१० से १०२२) तक राज्य किया।

भीमदेव

ये दुर्लभराज के छोटे भाई नागराज के पुत्र थे। दुर्लभराज के पश्चात् यही राज्यासन पर बैठे। ये विशेष पराक्रमी राजा हुए। इन्होंने सिंध देश पर चढ़ाई कर वहाँ के राजा हम्मुक को परास्त किया। इन्होंने चेदी देश के हैहयवंशी राजा पर भी चढ़ाई की थी। जब ये सिन्ध की चढ़ाई पर गये हुए थे उस समय मालवे के परमार राजा भोज के सेनापति कुलचन्द्र ने अनहिलवाड़े पर चढ़ाई कर उसे लूट लिया था। इसका बदला लेने के लिये इन्होंने राजा भोज पर चढ़ाई की। उसी समय राजा भोज रोग-ग्रस्त होकर मर गये। इन्होंने आबू के परमार राजा धुंधराज पर अपने दंडनायक (सेनापति) विमलशाह महाराज को भेजा, जिसने धुंधराज को अधीन कर वहाँ पर अपने नाम से एक 'विमल-वसही' नामक बहुत सा सुन्दर मन्दिर बनवाया। भीम के राज्यकाल में गजनी के सुल्तान महम्मूद ने ई० स० १०२४

(वि० सं० १०८०) में सोमनाथ पर चढ़ाई कर उक्त मन्दिर को तोड़ा था। इस राजा ने वि० स० १०७८ से ११२० (ई० स० १०२२ से १०६४) तक राज्य किया। इनके क्षेमराज और कर्ण नामक दो पुत्र थे। भीमदेव ने अपने अन्तिम समय में क्षेमराज को राज्य देकर वानप्रस्थ होना चाहा, परन्तु क्षेमराज को राजा होने की अपेक्षा तप करने की विशेष रुचि थी, इससे उसने अपने छोटे भाई कर्ण को राज दिलवा दिया और आप सरस्वती नदी के तट पर मंडिकेश्वर नामक तीर्थ में जाकर तपस्या करने लगा।

राजा कर्ण भीमदेव का छोटा पुत्र था। अपने पिता के बाद यही राज्य-गद्दी पर बैठा। इसने कोली और भीलों को अपने वश में किया था। ये भील और कोली समय २ पर बहुत उपद्रव किया करते थे। वि० सं० ११२० से ११५० (ई० स० १०६४ से १०९४) तक इसने राज्य किया।
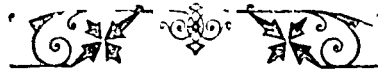
जयसिंह

राजा कर्ण के बाद उनका पुत्र जयसिंह राज-गद्दी पर बैठा। गुजरात के सोलंकियों में यह बड़ा ही प्रतापी राजा हुआ। इसका प्रसिद्ध ख़िताब "सिद्धराज" था। इससे यह सिद्धराज जयसिंह के नाम से अधिक विख्यात है। जिस समय यह सोमनाथ की यात्रा को गया हुआ था, मालवे के परमार राजा नरवर्मा ने गुजरात पर चढ़ाई कर दी। इस चढ़ाई का बदला लेने के लिये इसने भी मालवे पर चढ़ाई कर दी। इस युद्ध में नरवर्मा परलोक वासी हुआ और उसके पुत्र यशोवर्मा के समय इस युद्ध की समाप्ति हुई। आखिर में यशोवर्मा हारा, कैद हुआ और मालवा गुजरात-राज्य के अन्तर्गत कर लिया गया। इसके साथ ही साथ चितौड़ का किला तथा उसके आस पास का प्रदेश एवं वागड़ प्रान्त पर भी जयसिंह का अधिकार होगया। यह अधिकार कुमारपाल के पुत्र अजयपाल के समय तक ज्यों का त्यों बना रहा। आबू के परमार तथा नाडोल के चौहान भी पहले से गुजरात के राजाओं की अधीनता में चले आते थे। जयसिंह ने महोबा के चन्देल राजा मदनवर्मा पर चढ़ाई की थी। पर उसमें उसे विजय प्राप्त हुई या नहीं इस बात में सन्देह है। इसने सोरठ पर चढ़ाई कर गिरनार के यादव राजा खंगार (दूसरे) को कैद किया। बर्बर आदि जंगली जातियों को अपने आधीन किया। अजमेर के चौहान राजा आना (अर्णोराज, अन्नाक, आनल्लदेव) पर विजय प्राप्त की। पीछे से सुलह हो जाने के कारण उसने अपनी पुत्री कांचनदेवी का विवाह आना के साथ कर दिया। कांचनदेवी से सोमेश्वर का जन्म हुआ। सिद्धराज सोमेश्वर को बचपन में ही अपने यहां ले आया था। इसका देहान्त हो जाने पर भी इसके पुत्र कुमारपाल ने उसका पालन-पोषण किया था।

सिद्धराज बड़ा ही लोकप्रिय, न्यायी, विद्या-रसिक और जैनियों का विशेष सम्मान करने वाला था। प्रसिद्ध विद्वान् जैनाचार्य हेमचन्द्र (हेमाचार्य) का यह बड़ा सम्मान करता था। इसके दरबार में कई विद्वान् रहते थे। जैसे कि "विरोचनपराजय" का कर्ता श्रीपाल, 'कवि-शिक्षा' का कर्ता जयमंगल (वाग्भट्ट), 'गणरत्न महोदधि' का कर्ता वर्द्धमान तथा सागरचन्द्र आदि २। श्रीपाल तो उसके दरबार का मुख्य कवि था। यह कुमारपाल के समय तक बराबर उसी पद पर नियुक्त रहा। वर्द्धमान ने 'सिद्धराज वर्णन' नामक एक ग्रन्थ लिखा था। सागरचन्द्र ने भी सिद्धराज के विषय में कोई काव्य लिखा था ऐसा "गणरत्न महोदधि" में उससे उद्धृत किये हुये श्लोकों से पाया जाता है। वि० सं० ११५० से ११९९ (ई० स० १०८३ से ११४२) तक सिद्धराज ने राज्य किया। इसके कोई पुत्र न था।

सिद्धराज जयसिंह बड़ा विद्या-प्रेमी, शूर वीर, वीर्य्यवान् और साहसी था। गुजरात के इतिहास लेखकों ने उसे "गुजरात देश का शृंगार और चालुक्य-वंश का दीपक" कहा है। भारतवर्ष के महान् प्रतापी ऐतिहासिक नृपतियों में इसका आसन बहुत ऊँचा है। सुविख्यात जैन कवि मेरुतुंग लिखते हैं:—

"वह सर्व गुणों का भाण्डार था। जिस प्रकार वह युद्ध में महान् था उसी प्रकार सेवकों के लिये वह कल्पवृक्ष था। उसका उदार हाथ सबके लिये सदा एकसा खुला रहता था। रण-क्षेत्र में वह सिंह के समान था।"

हिज हाइनेस महाराजा गुलाब सिंह जी बहादुर रीवाँ।

रीवाँ का आधुनिक इतिहास

गत पृष्ठों में हम रीवाँ राज्य के प्राचीन इतिहास पर प्रकाश डाल चुके हैं। अब हम उसके आधुनिक इतिहास पर कुछ पंक्तियाँ लिखना चाहते हैं। यहाँ यह भूल न जाना चाहिये कि इस राज्य के आधुनिक शासक पूर्वोक्त सोलंकी राजपूतों के वंशज बाघेला राजपूत हैं। कहा जाता है कि ईसा की १३ वीं शताब्दी में गुजरात के तत्कालीन सोलंकी नरेश के भाई व्याघ्रदेव ने उत्तर हिन्दुस्थान में प्रवेश किया और कालञ्जर दुर्ग से उत्तर-पूर्व की ओर १८ मील पर बसे हुए मारफा के किले को हस्तगत कर लिया। इनके पुत्र का नाम कर्णदेव था। इन कर्मदेव ने मण्डला के राजा की कन्या के साथ विवाह किया। इन्हें मण्डला राजा की ओर से दहेज में बन्धवगढ़ का किला मिला। यह किला ई० सन् १५९७ तक इनके वंशजों की राजधानी रहा, किन्तु इस वर्ष इसे सम्राट् अकबर ने जीत कर ध्वंस कर डाला।

मुसलमानी सल्तनत के समय के कागजपत्रों से भी बाघेला राजपूतों के पूर्व इतिहास पर अच्छा प्रकाश डाला जा सकता है। उनसे हमे पता लगता है कि ई० सन् १२९८ में अलाउद्दीन खिलजी के कर्मचारी उलुघखाँ ने गुजरात के तत्कालीन नरेश कर्णदेव को निकाल दिया था। जिससे क्रमशः बहुत से बाघेल राजपूत गुजरात से भाग कर बन्धवगढ़ में आ बसे थे। पन्द्रहवीं शताब्दी तक ये लोग अपने राज्य की अभिवृद्धि में लगे रहे और तब तक किसी मुसलमान सुल्तान का इनको ओर ध्यान न गया। किन्तु ई० सन् १४८८ में पन्ना के तत्कालीन बाघेला राजा ने जौनपुर के सरदार हुसेन खाँ को बहलोल लोदी के आक्रमण से बचने में सहायता दी। ईस्वी सन् १८९४ में यहाँ के तत्कालीन राजा 'भीरा' ने जौनपुर के तत्कालीन सूबेदार मुबारिक खाँ को कैद कर लिया। अतएव सिकंदर लोदी ने इन पर आक्रमण किया। राजा भीरा सिकन्दर के साथ लड़ते हुए युद्ध में काम आये। इनके पश्चात् इनके पुत्र शालिवाहन गद्दी पर बैठे। सिकन्दर लोदी ने इन्हें

अपनी लड़की का विवाह उसके साथ कर देने के लिये कहा। किन्तु जब इन्होंने इन्कार कर दिया तब उसने ई० सन् १४९८-९९ में इन पर आक्रमण कर दिया। उसने बन्धवगढ़ किले पर अधिकार कर लेने के लिये बहुत प्रयत्न किये किन्तु वे सब विफल हुए। अन्त में क्रोधित हो उसने बान्धवगढ़ से बंदा तक के मुल्क को ध्वंस कर डाला।

शालिबाहन के पश्चात् राजा वीरसिंहदेव ने बन्धवगढ़ पर राज्य किया। इन्होंने अपने शासन में वीरसिंहपुर नामक नगर बसाया था, जो कि आज तक पन्ना राज्य में स्थित है। इनके पश्चात् इनके पुत्र वीरभान और वीरभान के पश्चात् राजा रामचन्द्र इस राज्य की गद्दी पर बैठे। राजा रामचन्द्र जी के जीवनकाल में सम्राट् अकबर दिल्ली के तख्त पर आसीन थे। इनके पास तानसेन नामक एक कुशल गवैया था। इन तानसेन के गायन की तारीफ सुन कर सम्राट् ने रामचन्द्र जी को अपने गवैये सहित उसके दरबार में हाजिर होने के लिये निमन्त्रित किया। किन्तु रामचन्द्र जी ने जाने से इन्कार कर दिया। इसके पश्चात् इन्हीं के पुत्र वीरभद्र (जो कि उन दिनों सम्राट् के दरबार में थे) की सलाह से सम्राट् की ओर से राजा बीरबल और जैन खाँ नामक सरदार इन्हें दिल्ली लिवा ले गये। वहाँ इनका सम्राट् ने बड़ा सत्कार किया। ई० सन् १५९२ में इनकी मृत्यु हो गई।

राजा रामचन्द्र जी के पश्चात् इनके पुत्र वीरभद्र जी गद्दी पर बैठे। इसके कुछ ही दिनों पश्चात् एक पालकी पर से गिर जाने के कारण इनका स्वर्गवास हो गया। इनके पश्चात् विक्रमादित्य नामक एक बालक राज्य के स्वामी हुए। विक्रमादित्य के गद्दी पर बैठने से राज्य में अव्यवस्था छा गई। अतएव सम्राट् अकबर ने बन्धवगढ़ घेर लिया और आठ महीने के पश्चात् उसे हस्तगत कर ध्वंस कर डाला।

ई० सन् १६४० से १६६० तक इसी वंश के राजा अनूपसिंह जी ने रीवाँ पर राज्य किया। इन्हें ओरछा के बुन्देला राजा पहाड़सिंह ने रीवाँ से निकाल दिया। इस पर ये देहली सम्राट् के दरबार में पहुँचे और वहाँ से

इन्हें बाँधू और उसके आसपास का छोटा सा प्रदेश वापस मिल गया। ई० सन् १६९० से १७०० तक यहाँ राजा अनिरुद्धसिंह ने राज्य किया। ई० सन् १७०० में इन्हें माऊगंज के सेनगार ठाकुर ने कत्ल कर डाला। इनके पश्चात् इनके बालक पुत्र अवधूत सिंह रह गये। इस समय पन्ना के हिर्देसिंह जी ने भी इस राज्य पर आक्रमण कर अपना अधिकार जमा लिया था।

भारत का राजनैतिक पट परिवर्तन करने वाली बसीन की सुलह के पश्चात् ई० सन् १८०३ में भारत सरकार ने तत्कालीन रीवाँ नरेश से संबंध स्थापित करने का प्रस्ताव किया, किन्तु उन्होंने इन्कार कर दिया। ई० सन् १८१२ में राजा जयसिंह के शासनकाल में पिण्डारियों के एक दल ने रीवाँ पर आक्रमण कर लूट-खसोट की। इस पर भारत सरकार ने राजा जयसिंह को ब्रिटिश संरक्षण में आ जाने के लिये मजबूर किया। तदनुसार इन्होंने भारत सरकार की अधीनता स्वीकार की और ब्रिटिश फौजों को अपने राज्य के मार्ग से निकलने की तथा अपने राज्य में मुकाम करने देने की शर्त मंजूर की। यह अन्तिम शर्त राजा जयसिंह जी पूरी तौर से न निबाह सके। इस-लिये ई० सन् १८१३ में फिर एक नई सुलह हुई।

राजा जयसिंह जी एक विद्वान् पुरुष थे। आपने अपनी लेखनी से कई ग्रन्थ लिखे थे। आपके दरबार में विद्वानों को भी अच्छा आश्रय मिलता था। आपके तीन पुत्र थे—विश्वनाथसिंह, लक्ष्मणसिंह और बलभद्र सिंह। अतएव आपकी मृत्यु के पश्चात् पाटवी कुमार विश्वनाथसिंह जी गद्दी पर बैठे। आप अपने पिता के जीवन-काल में राज्य-कार्य देखते थे। इससे आपको शासन-पद्धति की अच्छी जानकारी थी। अपने पिता की भाँति आप भी बड़े विद्वान् राजा थे। आपके यहाँ विद्वानों की अच्छी कदर होती थी और उनको प्रोत्साहन देने के लिये आप काफी रुपया खर्च करते थे। आपके पश्चात् आपके पुत्र महाराजा रघुराजसिंह जी गद्दी पर बैठे। आपके शासन-सूत्र धारण करने के तीन ही वर्ष पश्चात् भारत में सिपाही विद्रोह फैला। इस समय आपने समीपस्थ ब्रिटिश प्रान्त की रक्षा के लिये अपने २००० आदमी भेजे। आपने

विद्रोहियों के कई आक्रमण विफल कर देने में भी अच्छी मदद दी। इससे प्रसन्न होकर भारत-सरकार ने आपको सोहागपुर और अमरकंटक नामक दो परगने प्रदान किये। ई० सन् १८६३ में आपने माल पर लिया जाने वाला महसूल माफ कर दिया। इसके पश्चात् आपने ग्वालियर के सुप्रसिद्ध दीवान राजा सर दिनकरराव को अपने राज्य की स्थिति सुधारने के लिये बुला लिया। आपको ई० सन् १८६० में जी० सी० एस० आइ० की उपाधि प्राप्त हुई। ई० सन् १८७० में आप आगरे के दरबार में सम्मिलित हुए। ई० सन् १८७५ में आपने अपना शासन-भार भारत सरकार की जिम्मेदारी पर छोड़ दिया। इसके पाँच वर्ष पश्चात् ई० सन् १८८० में आपका स्वर्गवास हो गया।

महाराजा रघुराजसिंह जी की मृत्यु के पश्चात् उनके बालक पुत्र व्यंकट रमणसिंह जी रीवाँ राज्य की गद्दी पर बैठे। आपका जन्म ई० सन् १८७६ में हुआ था। ई० सन् १८९५ में आपको शासन के सम्पूर्ण अधिकार प्रदान किये गये। ई० सन् १८९७ में आपने राज्य के अकाल पीड़ितों की रक्षा के लिये बहुत प्रयत्न किया। इससे प्रसन्न होकर भारत सरकार ने आपको जी० सी० एस० आइ० की उपाधि से विभूषित किया। ई० सन् १९०३ में आप बड़ी शान के साथ देहली दरबार में सम्मिलित हुए। ई० सन् १९०५ में आपने तत्कालीन प्रिन्स ऑफ वेल्स से इन्दौर में भेंट की थी। ई० सन् १९१८ में आपका इन्फ्लुएन्ज़ा से स्वर्गवास हो गया।

आपके पश्चात् आपके पुत्र महाराजा गुलाबसिंह जी राजसिंहासन पर बिराजे। आपने इंदौर के डेली कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की है। हिन्दी-साहित्य से आपका विशेष अनुराग है। महाराजा जोधपुर की भगिनी से आपका शुभ विवाह सम्पन्न हुआ है। आप बड़े मिलनसार हैं।

रामपुर राज्य का इतिहास

HISTORY OF THE RAMPUR STATE
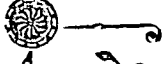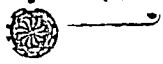
हिज़ हाईनेस नवाब साहिब, रामपुर (वर्तमान)

रोहिलखण्ड में रामपुर सब से बड़ी और प्रधान रियासत है। यह बृटिश सरकार को किसी प्रकार का नजराना नहीं देती। इस का क्षेत्रफल ८९२ वर्गमील है। इसकी मनुष्य-गणना ५३१२०० है। इसमें अधिकांश मुसलमान हैं। यहाँ की जमीन बड़ी उपजाऊ है। रियासत में राम गंगा, कोसी आदि कई नदियाँ होने के कारण जलकी बड़ी विपुलता है।

रामपुर का इतिहास कई दृष्टि से बड़ा मनोरंजक है। यह प्राचीन रोहिला राज्य का अवशेष है। मुगल बादशाह के प्रारम्भिक समय में रोहिलखण्ड का वह अंश जहाँ आज कल रामपुर राज्य है, देहली, बरेली जिले के अन्तर्गत था। रामपुर उस समय एक छोटासा गाँव था। इसका नाम भी कोई दूसरा ही था। यह प्रदेश पहले कटहेर के नाम से मशहूर था। अब भी कुछ लोग रोहिलखण्ड के ऊपरी हिस्से को इस नाम से पुकारते हैं। यहाँ पहले कटहरिया राजपूतों का अधिकार था। अब भी रामपुर में कई कटहरिया राजपूत मिलते हैं। ये राजपूत बड़े लड़ाके और बहादुर थे। दिल्ली के प्रारम्भिक बादशाहों के साथ इनके हमेशा दो दो हाथ हुआ करते थे। ई० स० १२५३ में नासीरुद्दीन महम्मद ने इन पर इस इरादे से एक जबर्दस्त सेना भेजी थी कि वह इनके कटहेर प्रदेश को नेस्तनाबूद कर दे और इन्हें ऐसा सबक दे कि ये जिन्दगी भर याद रखें। ई० स० १२६६ में फिर दुबारा इसी बादशाह ने इन लोगों पर सेना भेज कर हमला किया। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन राजपूतों को बहुत जबर्दस्त धक्का लगा पर धीरे धीरे ये

सम्हल गये। ई० स० १३७९ में इन्होंने बदाऊँ के मुगल गवर्नर को मार डाला। इससे तत्कालीन मुगल सम्राट फिरोजशाह इतना नाराज हुआ कि उसने सारे देश को बुरी तरह से बर्बाद कर उजाड़ डाला। इतने पर भी राजपूतों ने हिम्मत न हारी। कुछ वर्षों के बाद वे फिर सम्हल गये। मुगल बादशाहों के साथ इनकी कटाकटी बराबर चलती रही। बादशाह हूमायूं के तख्त-नशीन होने पर उसने बरेली के नये किले पर अपना झंडा उड़ाया और इन क्षत्रियों पर विजय प्राप्त की।

औरंगजेब के मरने पर इन राजपूत रईसों ने फिर जोर पकड़ा। यहीं से रामपुर के आधुनिक इतिहास का आरंम्भ होता है। इस देश में इस वक्त बहुत से अफगान आकर बस गये थे। इन्हें फौजी सेवाओं के बदले में जागीरें भी मिली हुई थीं। बहुत से ऐसे भी अफगान थे जो नौकरी की तलाश में रहते थे। ये अफगान लोग रोहिले के नाम से मशहूर थे। बादशाह महम्मद मुअज्जमशाह के समय में अफगानिस्तान से दाऊद खाँ नामक एक बहादुर अफगान इस कटहेर प्रदेश में आकर बसा। यह कन्दहार के एक उच्च कुल के पठान शाहआलम का लड़का था। दाउद खाँ बड़ा बहादुर और महत्वाकांक्षी था। इतना ही नहीं वह समय को पहचाननेवाला और आये हुए वक्त से फायदा उठाने वाला था। औरंगजेब के मरने के बाद जो अराजकता और गड़बड़ फैल गई थी उसका इस बहादुर अफगान सरदार ने फायदा उठाया। उसने कुछ और बहादुर आदमियों को इकट्ठा कर इधर उधर हमले करना शुरू किया और अपना खासा दबदबा जमा लिया।

नवाब अली महम्मद खाँ

एक समय जब बाँकोली मुकाम पर गहरी लड़ाई हो रही थी तब सय्यद महम्मदअली नामक एक छः वर्ष के लड़के से दाऊद खाँ की मुलाकात हुई। उसने इसे गोद ले लिया। कुछ अर्से के बाद मुगल दरबार की रीति के अनुसार इसका नाम बदल कर नवाब अली महम्मद रक्खा गया और मुगल सम्राट् ने इसे रामपुर के नवाब के तौर पर स्वीकार कर लिया। यह लड़का मूलतः सय्यद खानदान का था और इसके पूर्वज अफगानिस्तान से आकर बाँकोली में बसे थे। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' वाली कहावत इस पर पूर्णरूप से चरितार्थ हुई। इसने आगे चल कर रोहिलों का इतिहास बनाया और राज्य प्राप्त करने का गौरव प्राप्त किया। जब यह १४ वर्ष का था तब इसके पिता सरदार दाऊद खाँ को कुमाऊँ के राजा ने मार डाला। इसके बाद इसने अफगानों की बहुत बड़ी फौज जमा की और कटहेर प्रान्त में यह एक बड़ा शक्तिशाली पुरुष गिना जाने लगा। हम पहले कह चुके हैं कि इस समय दिल्ली की सल्तनत अन्तिम श्वास ले रही थी। उसकी सत्ता बहुत ही छिन्न भिन्न हो गई थी। इसका फायदा उठा कर कई राजा रईस स्वतंत्र हो गये थे। अलीमहम्मद खाँ ने बड़ी चतुराई से अपनी ताकत बढ़ाकर स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। इसके बाद उसने अपना राज्य बढ़ाना शुरू किया। उसने बदाऊँ में स्थित दाऊद खाँ की स्टेट पर कब्जा कर लिया और उसकी सेना का सञ्चालन भी अपने हाथों में ले लिया। इसके अतिरिक्त उसने मुरादाबाद के गवर्नर अजमतउल्ला और बरेली के गवर्नर मुईउद्दीन से मित्रता का सम्बन्ध स्थापित कर आनला परगना अपने अधिकार में कर लिया। यह घटना ई० स० १७१९ की है। इसके दूसरे ही साल उसे शाहजहाँपुर परगने का स्वामित्व भी प्राप्त हो

गया। ई० स० १७३७ में उसे दिल्ली सम्राट् महम्मदशाह से नवाब का खिताब और पंच हजारी मन्सब का मान मिला। नूतन नवाब को कटहेर प्रदेश का बहुत अंश भी सम्राट् की ओर से पुरस्कार में मिला। ई० स० १७३९ में इन्होंने रीछा, बरेली और आसपास के कुछ परगनों पर अपनी तलवार की ताकत से अधिकार कर लिया। इनकी बढ़ती हुई शक्ति की ओर मुगल सम्राट् का ध्यान आकर्षित हुआ। सम्राट् ने मुरादाबाद के तत्कालीन गवर्नर को लिखा कि वे रोहिलों को उक्त प्रदेश से निकाल दें। इस पर मुरादाबाद के तत्कालीन गवर्नर राजा हरनंद ने बरेली के गवर्नर अब्दुलनबी की सहायता लेकर ५०००० सेना के साथ नवाब पर चढ़ाई कर दी। नवाब भी मुकाबले के लिये चल पड़े। दोनों पक्षों में घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में नवाब की विजय हुई। इस समय प्रायः सारा रोहिलखण्ड नवाब के अधिकार में आ गया। वे अब आमतौर से रोहिलखंड के नवाब घोषित हो गये। उन्होंने शाही धूमधाम के साथ बरेली नगर में प्रवेश किया। इसके बाद नवाब साहब ने ई० स० १७४३ में पीलीभीत के बंजारा जाति के राजा पर विजय प्राप्त की और उस पर अधिकार कर लिया। इसी साल उन्होंने कुमाऊँ पर भी अपना झण्डा फहराया। उन्होंने कुमाऊँ राज्य को गढवाल के राजा को बतौर इजारे के दे दिया। कहने का मतलब यह कि नवाब अली महम्मदखाँ की ताकत का सितारा खूब जोर से चमकने लगा। यह बात अवध के तत्कालीन नवाब से न देखी गई। उसका हृदय द्वेष से जलने लगा। उसने दिल्ली के तत्कालीन मुगल सम्राट् को रोहिलों पर चढ़ाई करने के लिये उभारा। अली-महम्मद खाँ ने किसी तरह बादशाह को समझा बुझा दिया। बादशाह इन्हें दिल्ली ले गया। इसके बाद उसने इन्हें सरहिन्द का गवर्नर बनाकर भेज दिया। ई० स० १७४८ में जब अहम्मदशाह अब्दाली ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया, तब अलीमहम्मद खाँ उपयुक्त अवसर देख कर रोहिलखण्ड को लौट आये। यहाँ उन्होंने अपने कुछ पुराने साथियों की मदद से अपने राज्य पर फिर से अधिकार कर लिया। इस वक्त अवध के नवाब के अधि

कार में धमपुर और शेरकोट के परगने भी आ गये। दिल्ली के सम्राट् ने फिर से इन्हें रोहिलखण्ड का शासक स्वीकार कर लिया। इन्होंने इस वक्त अवध के नवाब वजीर के साथ भी समझौता कर लिया। ई० स० १७४९ में नवाब अलीमहम्मद खाँ की मृत्यु हो गई।

नवाब अलीमहम्मदखाँ के बाद

नवाब ने मृत्यु के पहले अपने सब प्रधान सरदारों को जमा कर सबके सामने अपने तीसरे पुत्र सादुल्ला खाँ को इस शर्त पर अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था कि जब तक उनके बड़े दो पुत्र वापस न आ जावें तब तक यही राज्य के मालिक रहें। सब सरदारों ने वक्त पड़ने पर नवाब के पुत्र का साथ देने की शपथ खाई। नवाब अलीमहम्मद ने मरते वक्त फौज की तनख्वाह का सब बकाया चुका दिया था। इतना ही नहीं उन्होंने फौज को लगभग २५ लाख रुपया आगामी भी दे दिया। इससे फौज के प्रत्येक सिपाही ने यह लिखित प्रतिज्ञा की कि वक्त पड़ने पर वे नवाब साहब के लड़कों के लिये तन मन से हाजिर रहेंगे। कुछ भी हो नवाब साहब दुनिया से कूच कर गये। उनकी कब्र मुकाम आँनला में अब तक बनी हुई है।

नवाब अलीमहम्मदखाँ के मरते ही राज्य में अंधाधुन्धी शुरू हो गई। रोहिले सरदारों में परस्पर ही षड़यन्त्रों की सृष्टियाँ होने लगीं। यह दशा देखकर अवध के वजीर नवाब आदि कुछ लोगों ने बाहर से हमले करने शुरू किये। ई० स० १७५० मे अवध के नवाब ने रोहिलखण्ड पर हमला किया, पर स्वर्गीय नवाब के बहादुर सेना-नायक हाफिजखाँ ने उसे उल्टे मुँह चने चबवाये। उसे जोर की शिकस्त दी। इसके बाद ही फर्रुखाबाद के बंगेश जाति के राजा ने हमला किया, पर इसकी भी वही दशा हुई।

इसके बाद अवध के नवाब सफदरजंग ने रोहिलों के खिलाफ मराठों को निमंत्रित किया। मराठे बड़ी फौज के साथ रोहिलखण्ड पर चढ़ आये। अवध का नवाब भी इनके साथ था। ई० स० १७५१ में सफदरजंग और

मराठी सेना ने आँवला ग्राम पर अधिकार कर लिया। कहने की आवश्यकता नहीं कि रोहिलों की सेना वहाँ से भग कर उत्तर के पहाड़ी प्रदेश की ओर चली गई। सफरजंग और मराठों ने वहाँ जाकर भी रोहिलों का छीपा किया पर यहाँ उन्हें विशेष सफलता नहीं हुई। इसी बीच में अहमदशाह अब्दाली के भारतवर्ष पर आक्रमण करने के समाचार आने लगे। बस इसी से मराठों और रोहिलों में सन्धि हो गई। रोहिलों ने मराठों को युद्ध हानि के लिये ५० लाख रुपये नगद और ५ लाख प्रतिसाल देने की प्रतिज्ञा की।

अहमदशाह अब्दाली मराठों पर विजय पाने के बाद शीघ्र ही हिन्दुस्तान से लौट गया। वह दिल्ली की ओर विशेष आगे न बढ़ा। वह रोहिलों के स्वर्गीय नवाब अलीमहम्मद खाँ को अच्छी निगाह से देखता था, अतएव उसने उनके दोनों बड़े * लड़कों को वापस रोहिलखंड भेज दिया और लिखा कि इनके लिये इनके पिता ने अपने विल में जैसी व्यवस्था की है वह अमल में लाई जावे। हम पहले कह चुके हैं कि स्वर्गीय नवाब ने इन दोनों भाइयों के वापस आ जाने पर इन्हें राज-सत्ता देने की व्यवस्था कर रखी थी। यह बात रोहिला सरदारों को अच्छी नहीं लगी। इससे उन्हें अपने हाथ से ताकत निकल जाने का अन्देशा होने लगा। इसलिये उन्होंने स्वर्गीय नवाब के विल को अमल में लाने का इस प्रकार ढंग रचा, जिससे इन भाइयों में आपस में फूट हो जावे और इन सरदारों के हाथ से अधिकार न जाने पावे। उन्होंने राज्य के तीन हिस्से किये और एक एक हिस्सा दो दो भाइयों में तकसीम कर दिया। इस प्रकार स्वर्गीय नवाब का सब से बड़ा पुत्र अब्दुल्ला खाँ और सब से छोटा मुरतजाखाँ को आँवला का परगना मिला, फैजउल्लाखाँ और महम्मदयारखाँ को बरेली मिला, सादुल्लाखाँ और अलयारखाँ को मुरादाबाद मिला। यह हिस्सेदारी इस तरह की गई थी कि जिससे झगड़ों का होना स्वाभाविक ही था। बस झगड़े बखेड़े शुरू हुए और सरदारों की खूब बन

---

* ये दोनों बड़े लड़के दिल्ली के बादशाह के यहाँ बतौर Hostage के रखे गये थे। वहाँ से ये अब्दाली के हाथ लगे थे।

आई। उन्हें फिर से हाथ डालने का मौका मिला। फिर से नई व्यवस्था की गई, उसमें नवाब सादुल्लाखाँ नाम मात्र के लिये राज्य के मालिक बनाये गये। नवाब अब्दुल्ला के हिस्से में बदाऊं जिले का एक बड़ा हिस्सा आया, नवाब फैजाउल्लाखाँ के हिस्से में बरेली जिले का रामपुर और कुछ अन्य परगने आये, मुरतजाखाँ ने नफरत खाकर देश छोड़ दिया और महम्मदयारखाँ का इस समय क्या हुआ इसका पता बराबर नहीं चलता। अलयारखाँ इसी साल अर्थात् ई० स० १७५४ में इस दुनिया से कूच कर कये।

नवाब फैजुल्लाखाँ

नवाब फैजुल्लाखाँ के समय से रामपुर राज्य के वास्तविक इतिहास का आरंभ होता है। इन्हें अन्य सरदारों के साथ साथ अपने शत्रुओं से निरंतर युद्ध करने पड़े थे। अहमदशाह अब्दाली के तीसरी बार हिन्दुस्थान से वापिस लौट जाने पर मराठों ने पंजाब पर फिर हमले किये। और दूसरे ही वर्ष में उन्होंने दुआब में प्रवेश कर नजीबुद्दौला के सहारनपुर प्रान्त को नष्ट कर डाला। इसके पश्चात् गंगा नदी पार कर उन्होंने बिजनौर और मुरादाबाद के सारे प्रान्त की भी वही हालत कर डाली। रोहिले सरदार मराठों के सामने न टिक सके और उन्हें तराई में वापिस लौटना पड़ा। यहां उन्हें नवाब शुजाउद्दौला की सहायता मिलने पर दोनों ओर की सेना ने मराठों पर फिर आक्रमण किया और उनको गंङ्गा के पार भगा दिया। इस युद्ध में मराठों की बहुत हानि हुई। इसके कुछ ही समय पश्चात् अहमद शाह अब्दाली ने फिर हिन्दुस्तान पर चढ़ाई की। मराठे भी अहमदशाह का सामना करने के लिये आगे बढ़े। इधर रोहिले भी मराठों से बदला लेने के लिये सेना एकत्रित

करके अहमदशाह से जा मिले । युद्ध में अहमदशाह की ओर से समरांगण के दाहिने भाग में रोहिलों की ही सेना सजाई गई थी । पानीपत के युद्ध में मराठों का पराभव हुआ। रोहिलों को बहुत सा प्रान्त पुरस्कार में मिला। शिकोहाबाद नवाब फैजुल्लाखाँ को मिला और नवाब सादुल्लाखाँ को जलेसर तथा फैजाबाद दिया गया । ईस्वी सन् १७६४ में नवाब सादुल्लाखाँ की आँवला मुकाम पर मृत्यु हुई । ईस्वी सन् १७६५ में जनरल करनॅक ने प्रसिद्ध वीर रहमतखाँ को, जो कि अत्यंत अप्रसन्नता से अंग्रेजों के विरुद्ध जा मिला था, कोरां में पराजित किया । सन् १७६५ ईस्वी के अगस्त महीने में शुजाउद्दौला ने अंग्रेजों से सुलह कर ली । इस सुलह के पश्चात् पाँच वर्ष शांति से गुजरे, पर सन् १७७० ईस्वी में रोहिला शक्ति पर फिर आपत्तियाँ आने लगीं । इससे उनकी सारी सत्ता लुप्त हो गई । ईस्वी सन् १७७० में मराठों ने रहमत खाँ से दुआब व एटा का प्रान्त छीन लिया । दुंदेखाँ, जो कि नवाब अली-महम्मद खाँ के समय में रोहिलों का मुख्य सेनापति था, इसी समय परलोक-वासी हो गया । नजीबुद्दौला खाँ की मृत्यु भी इसी साल हो गई । रोहिलों के प्रसिद्ध वीरों की मृत्यु हो जाने से मराठों ने ईस्वी सन् १७७१ में बिजनौर प्रान्त पर धावा किया । किन्तु रोहिले इस समय मराठों का सामना न कर सके । वे तराई के जंगलों में जा छिपे । मराठों के आक्रमण से बचने के लिये उन्होंने अवध के नवाब से फिर नई सुलह करने की प्रार्थना की । परन्तु नवाब का उद्देश रोहिलखंड को हड़प करने का था इसलिये उन्होंने सुलह करने से इन्कार कर दिया और यह जबाब दिया कि जब तक रहमतखाँ उनसे सुलह की शर्तें निश्चित न करले तब तक सुलह नहीं हो सकती । रोहिलों की ऐसी दशा देखकर अंग्रेजी फौज के सेना-नायक सर रॉबर्ट बारकर ने अवध के नवाब से उनकी सहायता करने के लिये अनुरोध किया, और हाफिज रहमतखाँ को लाने के लिये कैप्टेन हारपर को भेजा । उनके आने पर ईस्वी सन् १७७२ की प्रंद्रहवीं जून को दोनों में, सर रॉबर्ट हारपर की उपस्थिति में, सुलह हुई । इस सुलहनामे में नवाब शुजाउद्दौला ने

यह वादा किया कि अगर उन्हें रहमतखाँ चालीस लाख रुपया देगा तो वे मराठों को रोहिलखंड से भगा देंगे।

यह सुलहनामा रोहिलों के इतिहास में बड़ा महत्व रखता है। सरदारों में अपसी झगड़ों के कारण इस सुलहनामे की शर्तों का पूरा २ पालन न होसका। इससे कुछ ही दिनों में रोहिलों की सत्ता का सर्वनाश होगया। अवध के वजीर ने मराठों से सुलह करने की बात चीत शुरू की और उपरोक्त सुलह के अनुसार उनपर धावा करने का प्रयत्न तक नहीं किया। इतना ही नहीं बल्कि रोहिलों को मराठों का शिकार बनने के लिये निराश्रित छोड़कर वह फैज़ाबाद की ओर वापस लौट गया। हफिज़ रहमतखाँ ने भी वज़ीर को चालीस लाख रुपया देने से इन्कार कर दिया और आक्रमण से बचने के लिये मराठों से संधि कर ली। इसके पश्चात् उसने गवर्नरजनरल वॉरन हेस्टिंग्ज से पत्र द्वारा पार्थना की कि वे अपनी बहुत दिनों की मित्रता कायम रखें तथा ऐसे समय में उसे अवश्य सहायता पहुँचावें। इस प्रार्थना पत्र पर अंगरेजों की ओर से कुछ भी विचार नहीं किया।

वज़ीर शुजाउद्दौला ने रहमतखाँ से अपने चालीस लाख रुपयों की मांग जारी रखी। अंग्रेजों की सहायता मिलने पर उन्होंने रोहिलों पर आक्रमण किया। शाहजहाँपुर के नजदीक दोनों दलों में युद्ध हुआ और रोहिलों की पूर्ण पराजय हुई। हफीज़ रहमतखाँ इस युद्ध में मारे गये। नवाब फैजुल्लाखाँ को भी आँवला भागना पड़ा। यहां से भी उसे अपने परिवार व खजाने सहित बिजनौर प्रान्त के उत्तरी कोने लालधंग में आश्रय लेना पड़ा। किन्तु नवाब और अंग्रेज़ी सेना ने यहाँ भी उसका पीछा किया। आखिर सन् १७७४ ई० में अंग्रेज सेनापति कर्नल चंपियन के अनुरोध पर फैजुल्लाखाँ और अवध के वज़ीर में संधि होगई। इस संधि से सिर्फ रामपुर राज्य का प्रान्त नवाब फैजुल्लाखाँ के अधिकार में रहा।

सन् १७७८ ई० में इस सुलहनामे का नया संस्करण हुआ और उसे अंग्रेज सरकार की ओरसे गेरंटी मिल गई। इसके कुछ ही समय पश्चात्

जब अंग्रेजों और फरासीसियों में युद्ध की घोषणा हुई तब नवाब फैजुल्लाखाँ ने अपनी सारी अश्वारोही सेना तथा २००० सिपाहियों को अंग्रेजी की सहायता के लिये रण-क्षेत्र में भेजने के लिये ब्रिटिश सरकार से अनुरोध किया। यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि संधि के अनुसार नवाब फैजुल्ला खाँ यह सहायता देने के लिये बाध्य नहीं थे। यह सबसे पहिला अवसर था कि एक देशी नरेश अंग्रेजों को सहायता देने के लिये आगे बढ़ा। कहना न होगा कि नवाब फैजुल्लाखाँ की सन्तानों ने भी उनका अनुकरण किया। गवर्नर जनरल साहेब ने नवाब महोदय की यह सहायता सहर्ष स्वीकार की और तारीख ८ जनवरी सन् १७७९ ई० को उन्हें एक पत्र लिखकर साम्राज्य सरकार की ओर से इस सहायता के उपलक्ष्य में धन्यवाद प्रदान किया।

ईस्वी सन् १७७८ के सुलहनामे की शर्त के अनुसार सन् १७८० ई० में अवध के वज़ीर ने नवाब फैजुल्लाखाँ से ५००० सेना मांगी किन्तु उन्होंने नहीं दी। सेना के बदले फे नवाब फैजुल्लखाँ ने अवध के वज़ीर को १५ लाख रुपया देना स्वीकार किया और तारीख १७ फरवरी सन् १७८३ ई० को एक इकरारनामा लिखा गया जिससे उपरोक्त पाँच हज़ार सेना देने की शर्त रद्द कर दी गई।

ईस्वी सन् १७९३ में नवाब फजुल्लाखाँ की मृत्यु हुई। उन्होंने बीस वर्ष तक राज्य किया। वे एक बहादुर सिपाही, मुत्सद्दी और योग्य शासक थे। मराठों के आक्रमणों से अपने राज्य की रक्षा करने में इन्होंने बड़ी चतुराई और बुद्धिमत्ता से काम लिया।

नवाब गुलाम महम्मदखाँ

नवाब फैजुल्लाखाँ की मृत्यु के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र नवाब महम्मद अलीखाँ गद्दी पर बैठे। इस समय इनकी उम्र ४३ वर्ष की थी। ये बड़ी उतावली एवं असंयत प्रकृति के पुरुष थे। इससे इनसे सारे रोहिले सरदार बिगड़ खड़े हुए और उन्होंने इनके छोटे भाई गुलाम महम्मद खाँ को नवाब बनाने का निश्चय किया। इन सरदारों ने ५०० आदमियों के साथ नवाब महम्मद अलीखाँ के महलपर चढ़ाई की और उनसे गद्दी छोड़ने के लिये अनुरोध किया। महम्मद अली ने तलवार निकाल कर इनका सामना किया किन्तु कुछ ही देर में उसे इनके हाथ आत्म-समर्पण करना पड़ा। सरदारों ने नवाब गुलाम महम्मदखाँ को राज्य-सिंहासन पर बैठाया और महम्मद अलीखाँ को नगर से दो मील की दूरी पर डोंगरपुर के किले में रखा। यहाँ एक दिन रात्रि को सोते समय किसी ने उन्हें गोली से मार डाला। नवाब महम्मदअली की कब्र मद्रासा मोहल्ला में अभी मौजूद है और उसकी मरम्मत भी कुछ ही समय के पूर्व की गई है।

इस समय इस राज्य का कारोबार अंग्रेजों की गॅरंटी में चलता था इससे ज्योंहीं नवाब महम्मद अलीखाँ के पदच्युत होने की खबर अंग्रेजों की कानों तक पहुची तो उन्होंने पदच्युत नवाब के पुत्र अहमद अलीखाँ को गद्दी पर बैठाने का निश्चय किया और वज़ीर आसफुद्दौला को इस काम में सहायता देने के लिये सर रॉबर्ट अबरकॉम्बी को फर्रुखाबाद ब्रिगेड के साथ भेजा। वजीर आसफुद्दौलाखाँ ने अंग्रेजों की मदद मिलने के पहिले ही नवाब गुलाम महम्मदखाँ को यह संदेशा भेजा कि वे अहमदअलीखाँ के निर्वाह के लिये २५००० रुपया मासिक वेतन नियत करें, और इस प्रकार अनाधिकार

रूपसे गद्दी पर बैठने के दण्ड-स्वरूप २४ लाख रुपये भी दें। गुलाममहम्मद खाँ को अपनी भयावह परिस्थिति का पूरा खयाल था। इससे वे वजीर की दोनों शर्तें स्वीकार करने को सहमत हो गये पर उनके सरदारों ने उन्हें ऐसा न करने दिया और उन्हें युद्ध करने के लिये प्रोत्साहित किया।

नवाब गुलाम महम्मद खाँ ने २५००० सेना एकत्रित करके बरेली की ओर कूच किया तथा उन्होंने भितौड़ा स्थान पर मुकाम किया। इस स्थान से दो मील की दूरी पर बृटिश सेना पड़ी थी। यहाँ दोनों सेनाओं में युद्ध हुआ। रोहिलों ने इस युद्ध में अद्भुत पराक्रम दिखाया परन्तु सुसंचालित बृटिश सेना के सामने उनके पैर उखड़ गये और उन्हें हार खानी पड़ी। इस युद्ध में रोहिलों ने बहुत सी अंग्रेजी सेना काट डाली। इसमें चौदह अंग्रेज ऑफिसिर भी काम आए। मृत मनुष्यों की कब्रों के पास ही एक स्मारक बनाया गया और उस स्थान का नाम भितौड़ा से बदल कर फतहगंज रक्खा गया।

युद्ध बन्द हो गया और नवाब आसफुद्दौला भी जनरल अबरक्रोम्बी से आ मिले। दोनों सेनाओं ने फिर रामपुर राज्य में प्रवेश किया और राजधानी से दो मील की दूरी पर अजितपुर मुकाम पर अपना कैम्प डाला। यहाँ उन्होंने महम्मद अलीखाँ के नवाब बनाये जाने की घोषणा की। इसके बाद नवाब गुलाम महम्मदखाँ मक्का की यात्रा के लिये रवाना हो गये। मार्ग में ईस्वी सन् १८२८ में पंजाब प्रदेश में काँगड़ा के नजदीक नदौन गाँव में उनकी मृत्यु हो गई।

नवाब महम्मद अलीखाँ

ग़ुलाम महम्मदखाँ के पश्चात् नवाब अहमद अलीखाँ रामपुर राज्य के स्थायी नवाब बनाये गये और रामपुर नगर तथा उसके आस पास का करीब १० लाख का प्रदेश उनके अधिकार में रहा। शेष सारा प्रान्त अवध के वज़ीर को दे दिया गया। ईस्वी सन् १७९४ की २९ वीं नवंबर को एक नया सुलहनामा लिखा गया। इसकी शर्तों के अनुसार नवाब अब्दुल्ला खाँ के पुत्र नवाब नसरुल्लाखाँ, नाबालिग नवाब अहमद अलीखाँ के संरक्षक बनाये गये। रामपुर राज्य की देखरेख का भार भी इन्हीं को सौंपा गया।

नसरुल्लाखाँ ने रिजेंट का काम सोलह वर्ष तक किया। इनसे प्रजा अत्यंत संतुष्ट थी। नवाब अहमद अलीखाँ ने इनके शासन में किसी प्रकार का दखल नहीं दिया। हिजरी सन् १२२५ में इनकी मृत्यु होगई।

ईस्वी सन् १८०१ में अंग्रेज सरकार को रोहिलखंड दे दिया गया। नवाब अहमद अली बड़ी सरल प्रकृति के पुरुष थे। शिकार और दूसरे बहादुरी के कामों में इनका बड़ा अनुराग था। ये बड़े उदार और साहसी थे। अतएव रोहिलखंड प्रान्त अंग्रेज सरकार को दे दिया जाने पर भी इनकी मान-मर्यादा में किसी प्रकार का अन्तर नहीं हुआ। पूरे चालीस वर्ष राज्य करके ये ईस्वी सन् १८४० में स्वर्गवासी हुए। इनकी मृत क्रिया शहर से दो मील दूरी पर नन्कर गाँव में की गई। इनके सिर्फ एक कन्या को छोड़कर कोई वारिस न था जिसे राज्य दिया जावे।
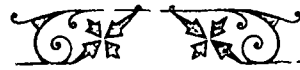
नवाब महम्मद सईद खाँ

स्वर्गीय नवाब अली महम्मद खाँ के बाद रोहिलखंड के कमिश्नर रॉबिन्सन साहेब ने गवर्नर जनरल लॉर्ड विलियम बेंटिक से नबाब नसीरुद्दौला के पुत्र महम्मद सईदखाँ को राज्याधिकार देने की खिफारिश की। इस समय महम्मद सईदखाँ बदायूँ जिले के डिप्टी कलक्टर का काम करते थे। गवर्नर जनरल ने रॉबिन्सन साहब की सिफारिश मंजूर की और इससे तारीख ८ अगस्ट सन् १८४० ई० को महम्मद सईदखाँ रामपुर राज्य के नबाव बनाये गये। अंग्रेज सरकार ने इनसे अपने राज्य में न्यायालय स्थापन करने के लिये अनुरोध किया। इसी प्रकार उन्हें फ़ौजी सुधार करने तथा अन्यान्य प्रजा-हित की बातों में विशेष ध्यान देने के लिये कहा। नबाब महम्मद सईदखाँ ब्रिटिश प्रान्तों में डिप्टी कलक्टर रह चुके थे इसलिये उनका अनुभव राज्य-शासन में बहुत उपयोगी हुआ। उनके समय में राज्य की आय में भी बहुत वृद्धि हुई। ये एक शूर सिपाही और विद्वान् पुरुष थे। इससे ये अपने राज्य की अन्दरूनी कमजोरियों को सुधारने में अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक सफल हुए। पन्द्रह वर्ष राज्य करके ७५ वर्ष की आयु में ईस्वी सन् १८५५ की पहिली अप्रैल को आपने देह त्याग किया। इनकी कब्र किले के नये राज्य-प्रासाद में अब तक मौजूद है। इनके पाँच पुत्र थे।
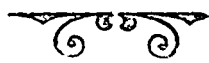
नवाब महम्मद यूसूफअलीखाँ

इनके बाद सबसे बड़े पुत्र महम्मद यूसूफअलीखाँ साहब नवाब बनाये गये। इस समय इनकी उम्र ४० वर्ष की थी। इनमें अपने पिता के सब गुण विद्यमान थे। इतना ही नहीं, बल्कि ये अपने पिता से भी अधिक राज-नीतिज्ञ थे। ब्रिटिश राज्य के प्रति इन्होंने भी अपने पिता की तरह मित्रभाव रखा। गदर के समय इन्होंने बड़ी वीरता से अपने राज्य की रक्षा की। ब्रिटिश सरकार के मुरादाबाद प्रान्त को भी इन्होंने बचाया। ईस्वी सन् १८५७ में चारों ओर गदर फैला हुआ था तथा रोहिलखंड में चारों दिशाओं से आपत्तियों का तूफान आ रहा था। ऐसे समय में अंग्रेज ऑफिसरों को कहीं से भी सहायता न मिलती थी तथा उनके पास अपनी विपत्तियों के करुणा-जनक समाचार इधर उधर पहुँचाने तक के साधन नहीं थे। ऐसे कठिन समय में नवाब साहब रामपुर ने इन्हें मुक्त-हस्त से सहायता दी। ब्रिटिश ऑफिसरों के खाने पीने की योग्य व्यवस्था करने अतिरिक्त नवाब साहब ने उन्हें धन से भी बहुत सी सहायता पहुँचाई। बागियों के गुप्तचरों पर निगाह रखकर ये उनका गुप्त भाव अंग्रेजों पर प्रकट कर दिया करते थे। बागियों के पठान सरदार तथा उनके बरैली, बिजनौर और मुरादाबाद प्रान्त के रिश्तेदारों में इस समय खलबली मची हुई थी। इस समय नवाब की प्रजा में भी उनके धर्म-भ्रष्ट होने की अफवाहें फैली हुई थीं। नवाब साहब को इसकी भी शान्ति करना पड़ी। इन सब आपत्तियों का सामना करके नवाब ने अपने राज्य में कोई खुला गदर न होने दिया। ये अंग्रेजों की बराबर सहायता करते रहे। गदर दमन करने तथा राज्य में शांति रखने के लिये उन्होंने यथाशक्ति प्रयत्न किया। कहना न होगा कि अविश्रान्त परिश्रम करने से उनके स्वास्थ्य पर भी बहुत बुरा असर पड़ा। गदर के समय में इन्होंने जो अंग्रेज राज्य की बहुमूल्य सेवाएँ

की थीं उनके लिये रोहिलखंड के कमिश्नर साहब मिस्टर अलेक्जेंडर ने अपने तारीख १८ अप्रैल सन् १८५८ ई० के पत्र में बड़ी तारीफ की है। गदर जारी रहने तक आपने बड़ी चतुराई के साथ अपने राज्य की रक्षा की और बृटिश सरकार को भी अच्छी सहायता देते रहे। नवाब साहब ने इस विद्रोह के महान् विपत्ति के समय में कई अंग्रेज महिलाओं, बच्चों और पुरुषों की प्राण रक्षा की। नैनीताल में बहुत से अंग्रेजों ने आश्रय लिया था। वहाँ नवाब साहब ने उनकी हिफाजत और सेवा के लिये अपने विश्वसनीय आदमी रखे। विद्रोह की शांति होने पर कुमाऊँ में जनरल सर विलियम रिचार्डस् के सभापतित्व में एक सभा हुई जिसमें बहुत से अंग्रेज सज्जन उपस्थित हुए थे। इसमें नवाब साहब को उनके असंख्य उपकारों के प्रति हार्दिक धन्यवाद दिया गया। इसी सभा में एक चाँदी का जेवर बनाकर नवाब साहब को नजर करने का निश्चय हुआ।

नवाब साहब ने इस समय बृटिश राज्यान्तर्गत मुरादाबाद तथा दूसरे आसपास के प्रदेश का शासन-भार भी अपने ऊपर ले लिया। आपने बड़ी चतुराई से यह कार्य किया। फतहगढ़ में भी अंग्रेजों की ओर से एक दरबार हुआ जिसमें नवाब साहब को, उस बहुमूल्य सहायता के लिये, जो उन्होंने गदर के समय दी थी, धन्यवाद दिया गया। इसी समय इन्हें मुरादाबाद तथा बरेली डिस्ट्रिक्ट का १,२८,५२७ रुपयों की आय का इलाका भी दिया गया। इतना ही नहीं २०००० रुपयों की 'खिल्लत' देकर 'फर्जंद-ई-दिलपिजिर' की उपाधि भी दी गई।

ई० सन् १८६१ में श्रीमती सम्राज्ञी विक्टोरिया महारानी ने इन्हें के० सी० आई० ई० की उपाधि प्रदान की। ई० सन् १८६२ में आप-लॉर्ड एलजिन् की कौंसिल के मेम्बर बनाये गये। इन्होंने दस वर्ष तक राज्य किया। आप ई० सन् १८६५ की अप्रैल को परलोकवासी हुए।
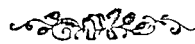
नवाब क़लब अली खाँ

आपके तीन पुत्र थे। इनमें से सब से ज्येष्ठ पुत्र कलबअलीखाँ को राज्यगद्दी दी गई। इस समय आपकी उम्र ३७ वर्ष की थी। ये फारसी तथा अरबी के बड़े शायर थे। इनकी कविताओं की तेहरान में भी बड़ी प्रशंसा की जाती थी। आपने भी अंग्रेजों के प्रति वंशपरंपरागत प्रेम-भाव रखने का अभिवचन दिया तथा अपने पिता के समान बृटिश साम्राज्य की सहायता करते रहे। ये बड़े विद्या-प्रेमी थे। इनके समय में रामपुर राज्य में विद्या का अच्छा प्रचार हुआ। इतना ही नहीं, आप एक बड़े योग्य शासक थे। आपके समय में राज्य की आय में भी अच्छी वृद्धि हो गई थी। इनके पिता की तरह ये भी लॉर्ड लारेंस की कौंसिल के मेम्बर बनाये गये। किन्तु कलकत्ता में इनका स्वास्थ्य अच्छा न रह सका इस से इन्हें वापस रामपुर आना पड़ा। इनकी निर्णय-शक्ति बड़ी विशुद्ध थी। इन्होंने बड़ी बुद्धिमानी के साथ अपने ऑफिसरों का चुनाव किया। इनके समय में अली अस्गरखाँ तथा उस्मानखाँ क्रमशः राज्य के सेनापति तथा दीवान के पद पर नियुक्त किये गये। ईस्वी सन् १८७२ में नवाब साहब ने मक्का और मदीना की यात्रा की। इनके अनुपस्थिति में उस्मानखाँ राज्य का कारोबार देखते थे। किन्तु जामा मसजिद में एक धार्मिक सभा के समय उन्हें किसी ने क़त्ल कर डाला। इनके दहन-स्थान पर नवाब कलबअली खाँ ने मकबरा बनाया। वर्तमान् नवाब साहब ने इस मक़बरे को ३,००,००० रुपया लगाकर अधिक भव्य एवं सुंदर बनवा दिया है।

ईस्वी सन् १८७५ में नवाब साहब ने तत्कालीन प्रिंस ऑफ वेल्स से आगरे में मुलाक़ात की। इस भेंट के समय आप "जी० सी० एस० आई०" की उच्च उपाधि से विभूषित किये गये। ई० सन् १८७७ में आपकी सलामी

तेरह से बढ़ाकर पन्द्रह तोपें कर दी गई। ईस्वी सन् १८७८ में आपको "सी० आई० ई० की उपाधि प्रदान की गई।

ईस्वी सन् १८७५ के बाद नवाब साहब सदा रोग-ग्रस्त रहा करते थे। इसके पश्चात् उनके शासन-काल के सारे समय में उन्हें कई बीमारियों ने आ घेरा था। किन्तु इन्होंने राज्य-शासन से हाथ नहीं मोड़ा। ये स्वयं राज-काज देखते थे। ईस्वी सन् १८७८ में इनके सेनापति अली असगरखाँ की मृत्यु हो गई। उनके स्थान पर अजीमउद्दौला खाँ मुख्य सेनापति बनाये गये। साढ़े बाईस वर्ष राज्य करने के पश्चात ईस्वी सन् १८८७ की तेवीसवीं मार्च को नवाब कलबअली खाँ साहब को मृत्यु हुई। इस समय आपकी उम्र ५३ वर्ष की थी। हाफिज़ जमाल उल्लाह की विशाल कब्र में इनकी अन्त-क्रिया की गई। इनकी कब्र पर अब तक सौ आदमी प्रतिदिन कुरान शरीफ़ पढ़ते हैं।

नवाब मुश्ताक अली खाँ

इनके पाँच पुत्र हुए थे। इनमें से दो ज्येष्ठ पुत्र तो बचपन ही में इस लोक से चल बसे थे। ईस्वी सन् १८७१ में इनके तीसरे पुत्र जुल्फिकार अली खाँ की भी १६ वर्ष की उम्र में मृत्यु हो गई थी। इससे ईस्वी सन् १८८० में इनके चौथे पुत्र साहबजादा मुश्ताकअलीखाँ हिन्दुस्थान सरकार की मंजूरी से राज्य के उत्तराधिकारी बनाये गये थे। अतएव नवाब कलबअली खाँ की मृत्यु के पश्चात् युवराज मुश्ताकअली खाँ नवाब घोषित किये गये। इस समय इनकी उम्र ३१ वर्ष की थी। शासन-सत्ता प्राप्त होने के पूर्व ही उन्हें लकवा हो गया था। इस रोग से बचने के लिये बहुत कुछ औषधोपचार किया गया परन्तु वे तन्दुरुस्त न हुए। स्वास्थ्य ठीक न होने से इन्होंने जनरल अजीमुद्दीन खाँ को दीवानके पद पर नियुक्त किया। इस नियुक्ति

म नवाब साहब के कई कुटुम्बी अप्रसन्न हो गये और वे रामपुर छोड़कर मुरादाबाद रहने लगे। यहाँ से उन्होंने पश्चिमोत्तर प्रान्त की बृटिश सरकार से नवाब के विरुद्ध शिकायत की। इन शिकायतों के फल स्वरूप लार्ड ऑकलैंड साहब की इच्छानुसार राज्य-शासन के लिये एक कौंसिल नियुक्त की गई। नवाब साहब इस कौंसिल के अध्यक्ष थे। जनरल अजीम उद्दीन खाँ इसके उपाध्यक्ष बनाये गये। पश्चिमोत्तर प्रान्त के डिप्टी कलेक्टर सय्यद अली हसन खाँ साहब रेव्हेन्यू तथा फाईनन्स डिपार्टमेंट के मेम्बर नियुक्त किये गये। न्याय-विभाग कुंवर लुत्फ अलीखाँ के आधीन किया गया। कुंवर लुत्फ अलीखाँ ने कुछ ही दिनों में इस्तीफा दे दिया इससे हैदराबाद राज्य के न्याय-विभाग के मुख्य अधिकारी नवाब पारजंग इनकी जगह मुकर्रर किये गये। नवाब साहब व्याधिग्रस्त होने से कौंसिल के कार्य में पूरा भाग नहीं ले सकते थे। किन्तु दूसरे अन्य मेम्बरों के राज्य-कार्य-पटु होने से शासन-सूत्र अच्छे ढंग से चला था।

कौंसिल के समय में सबसे पहले लैंड रेव्हेन्यू तथा फाईनन्स की शैली में सुधार किया गया। सरकारी खजाने में इस समय बहुत सा रुपया जमा था, उसके प्रॉमेसरी नोट खरीद लिये गये, जिससे छ: लाख रुपया सालाना आमदनी होने लगी। सेनापति अजीम उद्दीन खाँ ने फौजी विभाग में भी योग्य सुधार किया। कौंसिल के समय में मिस्टर डब्ल्यू० सी० राइट राज्य के चीफ इंजीनियर नियुक्त किये गये।

ईस्वी सन् १८८९ की जनवरी के अन्त में लकवे ने फिर नवाब साहब को आ घेरा। इस समय वे निरोग न हो सके और तारीख २५ फरवरी को उनकी मृत्यु हो गई।

ई० स० १८९३ के मार्च महिने में आपने राजनीति व सुशासन का ज्ञान संपादन करने के लिये समस्त भूमंडल के प्रसिद्ध २ देशों में प्रवास किया। इस यात्रा में आपने सामाजिक तथा आर्थिक विषयों का भी अध्ययन किया। इंग्लैंड पहुँचने पर आपने स्वर्गीय भारत सम्राज्ञी विक्टोरिया महारानी से भेंट की। यूरोप के कई प्रदेशों में भ्रमण कर वहाँ के अनेक मुकुटमणि राजाओं से परिचय किया।

ई० स० १८९४ की ४ थी अप्रैल को कौंसिल ऑफ रिजेन्सी तोड़कर राज्य शासन के लिये एक कौंसिल नियुक्त की गई जो कि ई० स० १८९६ तक नवाब साहब की देख रेख में राज्य कार्य करती रही। ई० स० १८९४ में जावरा के नवाब इस्माइल खाँ साहब की ज्येष्ठ पुत्री से आपका विवाह हुआ तथा ई० स० १८९६ के जून मास में आपको राज्य-शासन के पूर्ण अधिकार प्राप्त हुए।

इसके पश्चात् नवाब साहब के शासन-काल की मुख्य घटनाओं का आरंभ होता है। आप ई० स० १९०३ में देहली कॉरोनेशन दरबार में आमन्त्रित किये गये तथा आपको वहाँ सुवर्ण पदक मिला। ई० स० १९०५ में तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड कर्जन रामपुर में पधारे। इसी साल दिसंबर मास में आपने तत्कालीन प्रिंस ऑफ वेल्स तथा वर्तमान् भारत सम्राट् से लखनऊ में मुलाकात की और उनके साथ आप कई उत्सवों में सम्मिलित हुए। ई० स० १९०७ में अफ़गानिस्तान के अमीर साहब आगरा पधारे उस समय आपने उनसे मुलाकात की। ई० स० १९०८ की पहली जनवरी को भारत-सम्राट् की ओर से आप जी० सी० आई० ई० की उपाधि से विभूषित किये गये। इसी समय अप्रैल मास में स्वर्गीय लॉर्ड किचनर साहब रामपुर तशरीफ लाये और उन्होंने नवाब साहब के अश्वारोही सेना तथा पैदल फौज का निरीक्षण किया। ई० स० १९०९ में आप "भारत सेना" के ऑनररी लेफ्टिनंट कर्नल बनाये गये तथा दूसरे ही वर्ष भारत सम्राट् ने आपको अपना ए० डी० सी० बनाने की घोषणा की और कर्नल की उपाधि से सम्मा-

नित किया। ई० स० १९११ में आपके ज्येष्ठ पुत्र साहब जादा हसनअली खाँ की शोचनीय मृत्यु हुई। इस समय इनकी उम्र ११ वर्ष की थी। अपने प्रिय पुत्र की मृत्यु से आपके अन्तःकरण को बड़ा धक्का पहुँचा।

ई० स० १९११ के जनवरी मास में वर्तमान भारत सम्राट् के राज्यारोहण उत्सव में सम्मिलित होने के लिये आप निमंत्रित किये गये किन्तु स्वास्थ्य अच्छा न होने से आप इंग्लैंड न जा सके। ई० स० १९११ के दिसंबर मास में आप देहली दरबार में सम्मिलित हुए। आप श्रीमान् सम्राट् के ए० डी० सी० थे इससे आपको सम्राट् के साथ भी रहना पड़ता था। इसी दरबार में आप स्वयं सम्राट् के हाथों से जी० सी० वी० ओ० की उच्च उपाधि से सम्मानित किये गये।

ई० स० १९१२ में आप लॉर्ड हार्डिंज के समय देहली दरबार में सम्मिलित हुए। इसी वर्ष आपने सितंबर तथा अक्टूबर मास में सर जॉन हेवेट तथा सर जेम्स मेस्टन का आतिथ्य-सत्कार किया। दूसरे वर्ष के जून मास में आपने अपने पूर्वजों की जन्मभूमि 'जनसद' की यात्रा की। आपने यह यात्रा नवाब की हैसियत से नहीं वरन् बहेड़ा के सैय्यदों के बन्धु की हैसियत से की।

ई० स० १९१४ के अगस्त मास में जब यूरोप में भीषण युद्ध की ज्वाला धधकी थी तब नवाब साहब ने आगे बढ़कर अंग्रेज सरकार की सेवा में अपना सर्वस्व समर्पण करने की इच्छा प्रकट की। आपने युद्ध में सब प्रकार से धन जन की उल्लेखनीय सहायता पहुँचाई। इंडियन रिलीफ़ फंड में आपने १०,००० रुपये प्रदान किये। उसी तरह प्रिंस ऑफ वेल्स फंड में भी ७,५०० रुपये प्रदान किये। दूसरे राजाओं के साथ २ युद्ध में सुप्रसिद्ध 'लॉयलटी' नामक अस्पताली जहाज का भी बहुत सा खर्चा आपने उठाया था। घायलों के लिये मोटर आदि की व्यवस्था करने के लिये आपने "यू० पी० स्पेशल वॉर फंड" में २५,००० रुपये प्रदान किये। युद्ध-कर्ज में आपने कुल सात लाख रुपया दिया। इम्पीरियल रिलीफ फंड में आपने २५,००० रुपये

प्रदान किये तथा इस फंड के आप संरक्षक बने । युद्ध में फौजी सहायता पहुँचाने में आपने २,२८,८१३ रुपये खर्च किये । सुलह हो जाने पर हिन्दुस्तान सरकार ने यह रकम वापस लौटा देने की इच्छा प्रकट की किन्तु आपने यह रुपया लेना स्वीकार नहीं किया । इस तरह आपने युद्ध में १२५०००००० रुपयों से भारत-सरकार की सहायता की । आपने इम्पीरियल सर्व्हिस ट्रूप्स के वेतन में भी वृद्धि कर दी ।

आपने पूर्वीय अफ्रीका में बृटिश सरकार की ओर से युद्ध करने के लिये अपनी इम्पीरियल सर्व्हिस इन्फेन्ट्री के ३७३ पैदल सिपाही भेजे, तथा अश्वारोही सेना से भी कुछ रंगरूटों को शस्त्र चलाने का अभ्यास कराने के लिये औरंगाबाद तथा बरेली भेजे । नवाब साहब की पैदल फ़ौज को युद्ध में अच्छी सफलता प्राप्त हुई । ई० स० १९१८ के मार्च मास में वह युद्ध से वापस लौटी । युद्ध में वीरता दिखाने के पुरस्कार में इनकी सेना के अधिकारीगण तथा दूसरे पुरुषों को भारत-सरकार की ओर से पदक प्रदान किये गये थे ।

आपने अपनी सेना के सब घोड़े युद्ध में भेजने के लिये हिन्दुस्तान सरकार से अनुरोध किया था । इस पर आपकी अश्वारोही सेना के सौ से अधिक घोड़े बृटिश फौजी ऑफिसरों की पसन्दगी से युद्ध में भेजे गये । नवाब साहब द्वारा युद्ध में दी गई सहायता के उपलक्ष्य में वाइसराय साहब ने आपके प्रति बड़ी कृतज्ञता प्रकट की । इतना ही नहीं ई० स० १९१९ की ३० वीं जून को नवाब साहब को एक खरीता लिख भेजा जिसमें वाइसराय महोदय ने उक्त विपुल तथा उदार सहायता के लिये श्रीमान् भारत सम्राट् तथा हिन्दुस्तान सरकार की ओर से हार्दिक धन्यवाद प्रदान किया । आपकी सैनिक सहायता तथा "लॉयलटी" नामक जहाज के खर्च में मदद पहुँचाने के कार्य की भी बड़ी प्रशंसा की गई । इसी खरीते में वाइसराय महोदय ने यह भी प्रकट किया कि आपने इस तरह सत्य तथा स्वतंत्रता के युद्ध में भाग लेकर बृटिश साम्राज्य एवं भारत सम्राट् के प्रति रामपुर राज्य की निष्ठा तथा निस्सीम प्रेम-मय दृढ़ सम्बन्ध का परिचय दिया है ।

नवाब साहब स्वयं राज-कार्य देखते हैं। प्रत्येक मुख्य विभाग के लिये एक २ मंत्री नियुक्त किया गया है। ये सब अपने २ विभाग का काम श्रीमान् नवाब साहब की देख रेख में करते हैं। आपके शासन-काल में राज्य की आय दिन २ बढ़ती जा रही है। इस समय रामपुर राज्य की कुल आमदानी ५२ लाख रुपयों के करीब है। राज्य में कुल ८१ मदरसे हैं, जिनमें निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। राजधानी में भी ३० पाठशालाएं हैं तथा अरबी पढ़ाने के लिये भी एक विद्यालय है। इस विद्यालय में भारत के कई प्रान्तों के विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते हैं। भारत के बाहरी प्रदेशों के विद्यार्थी भी इस विद्यालय में विद्याध्ययन करते हैं। बुद्धिमान विद्यार्थियों को नवाब साहब की ओर से छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं।

राज्य के पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट का काम भी सुसंचालित रूप से चल रहा है। इमारतें, सड़कों तथा नहरों की देख रेख पी० डब्ल्यू० डी० की ओर से होती है। नगर में तथा आस पास कई सुन्दर इमारते हैं। इनमें से अधिकांश वर्तमान नवाब साहब के समय में ही बनाई गई हैं। यहाँ की "जामा मसजिद की गणना भारत की सुन्दर मसजिदों में की जाती है। नगर में बिजली की रोशनी का उत्तम प्रबन्ध है। यहाँ कई कारखाने भी हैं।

राज्य के सेना-विभाग का कार्य स्वयं नवाब साहब देखते हैं तथा सेना-पति महोदय भी आपके कार्य में योग्य प्रकार से सहायता करते हैं। आपकी अश्वारोही सेना में ५०६ आदमी हैं। पैदल फौज, बंड और तोपखाने के सिपाहियों की संख्या २१७५ है। पंजाब के बृटिश ऑफिसर भी समय २ पर आपकी फौज का निरीक्षण करते हैं।

नवाब साहब की पूरी उपाधि निम्न लिखित है:—

"कर्नल हिज़ हाइनेस अलीजाह फरजन्दि-इ-दिल पिजिर-इ-दौलत-इ-इंग्लिशिया, मुखलिस-उद्दौला, नासिर-उल-मुल्क, अमीर-उल-उमरा, नवाब सर सैय्यद महम्मद अली खाँ बहादुर, मुस्तैद जंग, जी० सी० आई० ई०, जी० सी० व्ही० ओ०, ए० डी० सी० टू हिज़ इम्पीरियल मेजेस्टी दी किंग एम्परर।"

"अलीजाह, मुखलिस-उद्दौला, नासिर-उल-मुल्क, अमीर-उल-उमरा, नवाब तथा मुस्तैद-जंग" इत्यादि उपाधियाँ आपके वंश में मुग़ल सल्तनत से चली आती हैं। भारत सरकार ने भी इन उपाधियों के लिये अपनी स्वीकृति दी है।

नवाब साहब के तीन पुत्र हैं। इनमें सबसे ज्येष्ठ पुत्र का नाम कर्नल सैय्यद रजा अली खाँ बहादुर है। आप ही रामपुर राज्य के युवराज हैं। आपका जन्म ई० स० १९०६ की १७ वीं नवंबर को हुआ था।

रामपुर राज्य का पुस्तक-संग्रह उल्लेखनीय है। इस संग्रहालय की गणना भारत के विशाल पुस्तकालयों में की जाती है। इसमें २३,००० मुद्रित और ९,००० हस्तलिखित पुस्तकें हैं। इसमें कई ऐसी पुस्तकें हैं जिनकी दूसरी प्रति भारत में नहीं मिल सकती।

नवाब साहब को १५ तोपों की सलामी का सम्मान है। आप लंडन के मलबरो क्लब के सदस्य भी हैं।

भावनगर-राज्य का इतिहास

HISTORY OF THE BHAVNAGAR STATE

हिज हाइनेस महाराजा साहब भावनगर।

भावनगर के महाराजा साहब गोहिल जाति के राजपूत हैं। आप काठियावाड़ स्थित समस्त गोहिल सरदारों के शिरोमणि हैं। आप ही की जाति पर से काठियावाड़ के पूर्वीय हिस्से का नाम गोहिलवाड़ पड़ा। प्राचीन भाटों ने आपको चन्द्रवंशी लिखा है परन्तु टॉड साहब के मतानुसार आप सूर्यवंशी हैं। आप सुप्रख्यात् शालिवाहन के वंशज हैं, जिनके नाम से शक संवत् चला। शालिवाहन के कुछ वर्षों बाद उनके वंशज मारवाड़ में आ गये। यहाँ पर उन्होंने खैरगढ़ के तत्कालीन भील राजा को परास्त कर उसका राज्य छीन लिया। इसके बाद २० पीढ़ियों तक खैरगढ़ पर इसी राज्य-वंश का अधिकार रहा। पर अन्त में जयचन्द राठोड़ के पुत्र शिओजी द्वारा इनको पराजित होकर खैरगढ़ छोड़ देना पड़ा।
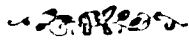
सेजकजी

भावनगर राज्य के मूल संस्थापक सेजक जी थे। खैरगढ़ से निकल कर आप काठियावाड़ में आ गये। यहाँ पर आपने वर्तमान भावनगर राज्य की स्थापना की। इतिहास से पता चलता है कि ई० स० ८१२ में सौराष्ट्र देश में गोहिल लोगों का राज्य था। समुद्र के किनारे पर स्थित घोघो से लेकर

माँगरोल तक के प्रान्त पर भी उस समय गोहिलों का ही अधिकार था। इस समय सोरठ में महिपाल नामक राजा राज्य करता था। इसने सेजकजी का यथोचित आदर किया। इतना ही नहीं इसने सेजकजी को कुछ गाँव भी जागीर में दे दिये और आपस में विवाह सम्बन्ध भी स्थापित कर लिया। सेजकजीने भी अपने बाहुबल से आस-पास के और भी बहुत से गाँव जीत लिये। इस प्रकार सेजक जी धीरे २ एक स्वतन्त्र राज्य के अधिकारी बन गये। आपने अपने नाम पर से सेजकपुर नामक एक गाँव भी बसाया था।

ई० स० १२९० में सेजकजी का देहान्त हो जाने पर उनके पुत्र राणोजी भावनगर की गद्दी पर बैठे। आपने राणपुर नामक शहर बसाकर वहीं अपनी राजधानी कायम की। ई० स० १३०९ में आपका मुसलमानों के साथ युद्ध हुआ। इस युद्ध में आप वीरगति को प्राप्त हुए एवं राणपुर पर मुसलमानों का आधिपत्य हो गया।

मोखड़ाजी

राणोजी की मृत्यु के बाद उसके पुत्र मोखड़ाजी ने लीमड़ाद और उमराद्रा नामक स्थानों पर अधिकार किया। उन्होंने उमराद्रा में अपनी राजधानी कायम की। खीखा और घोघा नामक स्थानों से आपने मुसलमानों को मार भगाया और कोली लोगों को हराकर पेरिम द्वीप पर भी अपना अधिकार कर लिया। जब तत्कालीन दिल्ली के बादशाह को यह खबर लगी कि मोखड़ाजी ने घोघा पर अधिकार कर लिया है तो उसने तुरन्त उनके साथ युद्ध करने का निश्चय किया। इस समय मोखड़ाजी पेरिम द्वीप में थे। बादशाह ने उन पर वहीं आक्रमण किया। बहुत दिनों तक युद्ध होता रहा पर

मुसलमान मोखड़ाजी का कुछ न बिगाड़ सके। अन्त में मोखड़ाजी ने मैदान में आकर लड़ने का निश्चय किया। उन्होंने अपने तमाम राजपूत सरदारों को केसरिया बाना धारण करवा कर मुसलमानों पर एकदम आक्रमण कर दिया। तीर लग जाने के कारण मोखड़ाजी का स्वर्गवास हो गया, इस लड़ाई में यद्यपि मोखड़ाजी की हार हुई तथापि मुसलमानों के भी बहुत से आदमी काम आये।

मोखड़ाजी के बाद

मोखड़ाजी के बाद क्रमशः डूंगरसिंहजी, वीसोजी, कानोजी, सारंगजी, शिवदासजी, जेठाजी, रामदासजी, सरतानजी, वीसाजी, धुनोजी, रतनजी, हरभमजी, गोविंदजी, छत्रसालजी और रतनसिंहजी गद्दी पर बिराजे। इनके राज्य-काल में कोई विशेष महत्व पूर्ण घटनाएं नहीं हुईं।

भावसिंहजी

ई० स० १७०३ में जब राव रतनसिंहजी का स्वर्गवास हो गया तो उनके बाद उनके पुत्र भावसिंहजी राज्यासन पर बिराजे। इस समय मुगल साम्राज्य बिलकुल शक्तिहीन हो चला था। उसके अधीनस्थ सूबे बादशाह से अपना २ सम्बन्ध तोड़ कर स्वतन्त्र होने लग गये थे। ऐसे समय में भावसिंहजी की भी इच्छा हुई कि, इस अवसर का लाभ उठा सिहोर के इस छोटे से राज्य को बढ़ा लूं।

ई० स० १७२२—२३ में कंथाजी कदम बांडे और पिलाजी गायकवाड़ की आधीनता में मरहठों ने सिहोर के किले को घेर लिया। भावसिंहजी ने बड़ी ही बहादुरी के साथ उनको घेरा उठाने के लिये मजबूर किया पर मरहठों

की शक्ति भी जबरदस्त थी अतएव वे फिर आक्रमण न कर दें इस खयाल से भावसिंहजी ने वडवा नामक स्थान में रहना शुरू कर दिया। ई० स० १७२३ में भावसिंहजी ने भावनगर नामक शहर बसाया और वहीं अपनी राजधानी कायम की। यह शहर व्यापार की दृष्टि से बड़ी ही अच्छी जगह बसाया गया था। इसके कुछ ही समय बाद सूरत के मुगल सूबेदार सोहराब खाँ के साथ भावसिंहजी की मैत्री हो गई। सोहराब खाँ की सहायता से भावसिंहजी ने भावनगर में बन्दरगाह भी बनवा लिया। ई० स० १७३९ में भावनगर के व्यापार की रक्षा के लिये भावसिंहजी ने सूरत के तत्कालीन अधिकारियों के साथ कुछ शर्तें तय कर लीं। पश्चात् जब ई० स० १७५९ में सूरत पर अंग्रेजों की अमलदारी हो गई तो वे ही शर्तें अँग्रेजों के साथ तय कर ली गई। भावसिंहजी ६१ वर्ष राज्य कर ई० स० १७६० में ७१ वर्ष की अवस्था में परलोक वासी हुए।

अखेराजजी

भावसिंहजी के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र अखेराजजी गद्दी पर बिराजे। इस समय तलाजा का किला वारिया कोली लोगों के अधिकार में था। ये लोग सौराष्ट्र देश के किनारे पर लूट मार मचाया करते थे और कभी २ अंग्रेज जहाजों को भी लूट लिया करते थे। इससे वहाँ के व्यापार को बड़ा धक्का पहुँचता था। अतएव बृटिश सरकार ने इस उपद्रव को शान्त करने के लिये सेना भेजी। अखेराजजी ने भी इस कार्य में खूब सहायता दी। तलाजा का किला अंग्रेजों ने जीत लिया।

बखतसिंहजी

ई० स० १७७२ में अखेराजजी का देहावसान हो गया। आपके बाद बखतसिंहजी भावनगर की राज्य-गद्दी पर बिराजे। बखतसिंहजी ने चालीस वर्ष तक राज्य किया। आपका सम्पूर्ण राज्य-काल लड़ाई झगड़ों ही में व्यतीत हुआ। ई० स० १७६५ में शिवाराम गारदी गायकवाड़ सरकार की ओर से काठियावाड़ के राजाओं से कर वसूल करने के लिये आया। मोटी धराई नामक स्थान पर अपना पड़ाव डाल कर उसने सिहोर पर चढ़ाई करने का इरादा किया। लगातार की लड़ाइयों के कारण इस समय बखतसिंहजी के पास रुपयों की कमी आ गई थी। अतएव उन्होंने शिवाराम से कहला भेजा कि इस समय मैं कर देने में असमर्थ हूँ। इस पर शिवाराम बड़ा क्रोधित हुआ। उसने कहला भेजा कि "इस साल का और साथ ही पिछले दस सालों का कर अगर तुम जमा नहीं करोगे तो मैं भावनगर पर अधिकार करके वहाँ पर अपना थाना बिठा दूँगा।" जब किसी प्रकार शिवाराम समझौता करने पर उतारू न हुआ तो बखतसिंहजी ने भी उसका सामना करने का निश्चय किया। लोलियाणा नामक स्थान के पास उभय पक्ष की फौजों का सामना हुआ। तीन दिन तक घमासान युद्ध हुआ पर किसी की हार जीत नहीं हुई। अन्त में शिवाराम ने यह जानकर कि अगर मैं हार जाऊँगा तो मुझे कोई कर न देगा, युद्ध बन्द कर दिया।

ई० स० १८०२ में अंग्रेज सरकार और पेशवा के बीच बसई नामक स्थान पर सन्धि हो गई। इस सन्धि के अनुसार गुजरात प्रान्त अंग्रेजों के अधिकार में आ गया। इसके दूसरे ही साल अंग्रेजों और बखतसिंहजी के बीच मैत्री का सम्बन्ध हो गया। अंग्रेज सरकार ने भावनगर राज्य की रक्षा

करने का आपको अभिवचन दिया, अतएव राज्य-प्रबन्ध से कुछ समय के लिये निश्चित हो बखतसिंहजी तीर्थ-यात्रा करने के लिये रवाना हो गये।

ई० स० १८०४ में गायकवाड़ सरकार के दीवान बाबाजी आपाजी बड़ी भारी सेना के साथ सिहोर पर चढ़ आये। पहले उन्होंने अपने वकील के मार्फत बखतसिंहजी को कर देने के लिये कहला भेजा पर बखतसिंहजी ने इन्कार कर दिया। अतएव दीवान ने भी सिहोर पर तोपों चलाने का हुक्म दे दिया। पर जब इन तोपों का उन लोगों पर कोई असर न होता देखा तो दीवान साहब वापस लोट गये। दूसरे साल वे फिर भावनगर पर चढ़ आये। अब की बार बखतसिंहजी ने पिछला तमाम बकाया चुका कर दीवान साहब के साथ सन्धि कर ली।

बखतसिंहजी के बाद

बखतसिंहजी के बाद क्रमशः बजेसिंहजी, अखेराजजी (द्वितीय) और जसवन्तसिंह जी राज्य-गद्दी पर बिराजे।

ई० स० १८५७ के गदर के समय महाराजा जसवन्तसिंहजी ने बृटिश सरकार की अच्छी सहायता की। आपकी सेवाओं से प्रसन्न होकर बृटिश सरकार ने आपको के० सी० एस० आई० की पदवी प्रदान की थी। काठियावाड़ के नरेशों में इस पदवी को प्राप्त करनेवाले आप पहले ही नरेश थे। आपके समय में कई सुधार हुए। सुन्दर २ अस्पताल, स्कूल और दूसरी लोक-हितैषी संस्थाएँ कायम की गईं।

महाराजा तख्तसिंहजी (द्वितीय)

ई० सन् १८७८ में श्रीमान महाराजा जसवन्तसिंहजी का स्वर्गवास हो गया। आपके बाद आपके बड़े पुत्र श्रीमान तख्तसिंह जी राज्य-सिंहासन पर बिराजे। इस वक्त आप नाबालिग थे। अतएव बृटिश सरकार ने आपके बालिग होने तक राज्य-कार्य करने के लिये एक अंग्रेज अधिकारी और वहाँ के चीफ मिनिस्टर को नियुक्त किया।

श्रीमान महाराजा तख्तसिंहजी ने राजकोट के राजकुमार कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की। इसके अतिरिक्त कई सुयोग्य और विद्वान अध्यापक भी आपकी शिक्षा के लिये रखे गये थे। ईसवी सन् १८७८ में आपको राज्याधिकार प्राप्त हुए। सन १८८१ में आपको श्रीमती सम्राज्ञी विक्टोरिया की ओर से के० सी० एस० आई० की उपाधि प्राप्त हुई। सन १८८६ में आप जी० सी० एस० आई० भी हो गये। आपको व्यक्तिगत रूप से (Personal) 'महाराजा' का उच्च सम्मान भी मिला।

ई० सन् १८७७ में महारानी विक्टोरिया के सम्राज्ञी पद ग्रहण करने के उपलक्ष्य में जो दिल्ली में आलिशान दरबार हुआ था, उसमें महाराजा साहब भी पधारे थे। उसमें आपको एक शाही झण्डा भेंट किया गया और आपकी तोपों की सलामी ११ से बढ़ा कर १५ कर दी गई। इसके बाद आपने यूरोप की यात्रा की। इस यात्रा में आप कैंब्रिज विश्व विद्यालय में भी पधारे। उक्त विश्व विद्यालय ने आपको एल० एल० डी० की उच्च उपाधि प्रदान कर आपका सम्मान किया। दुःख है कि, ये प्रतापशाली महाराजा साहब अधिक दिनों तक इस संसार में न रह सके। इसवी सन् १८९६ में आप अपने प्रिय कुटंबियों को और पुत्रतुल्य प्रजा को बिलखता हुई छोड़ कर इस क्षणभंगुर संसार से चल बसे।

महाराजा भावसिंहजी (द्वितीय)

महाराजा तख्तसिंहजी की मृत्यु के बाद महाराजा भावसिंहजी (द्वितीय) गद्दी पर बिराजे। श्रीमान् का जन्म ईसवी सं० १८७५ में हुआ था। आपने प्रधानतया राजकुमार कालेज राजकोट में प्रथम श्रेणी की शिक्षा प्राप्त की। आप उक्त कॉलेज में चार वर्ष तक रहे। इस बीच में आपने अपनी तीव्र बुद्धि, अपूर्व प्रतिभा और साधु स्वभाव से अपने अध्यापकों और सहपाठियों पर बड़ा ही सुप्रभाव डाला। सब के सब आपसे बड़े प्रसन्न रहते थे। कॉलेज छोड़ने के बाद आप अपने स्वीर्गीय पिताजी की इच्छानुसार चार वर्ष तक महाराजा कोल्हापुर के साथ मि० एस० एम० फ्रेज़र सी० आय० ई० आई० सी० एस० के पास अध्ययन करते रहे।

ईसवी सन् १८९० में श्रीमान् ने उत्तर हिन्दुस्तान की यात्रा की। इस समय आपने उत्तर हिन्दुस्तान में स्थित हुई महत्वपूर्ण स्थानों का निरीक्षण किया। इसके दूसरे साल अर्थात् ई. स. १८९१ में आपने दक्षिण भारत की सैर की। कोल्हापुर, बीजापुर, हैदराबाद, मद्रास, पांडेचेरी, तंजौर, कोलंबो, केन्डी, बंगलोर आदि कई स्थानों में आपने परिभ्रमण किया। आप जैसे प्रतिभाशाली और तीक्ष्ण बुद्धि नरेश को इस यात्रा से जो फ़ायदा होना चाहिए था, वह हुआ। भारत के विभिन्न प्रान्तों के रीति-रिवाज, लोक-भाषा धर्म, सामाजिक और आर्थिक स्थिति से आपका खासा परिचय हो गया।

ई० सन् १८९३ में देवगढ़ बरिया के राजा मानसिंहजी की सुयोग्य राजकुमारी देवकुँवर बा के साथ आपका शुभ विवाह संपन्न हुआ। इसी साल के जून मास में आप सैनिक शिक्षा ग्रहण करने के लिए पूना पधारे। ईसवी सन् १८९४ में आप नगर की इम्पीरियल फौज के कमांडर नियुक्त हुए।

सन् १८९४ में नवयुवक राजकुमार के जीवन में एक महत्व पूर्ण घटना हुई। इस साल आपके पिता जी ने एक घोषणा पत्र निकाल कर प्रकट किया "मेरा पुत्र, जो राज्य का वारिस है, राज्य-शासन के भिन्न २ विभागों का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, अतएव वह भावनगर की कार्यकारिणी (Executive) और फौजो कौन्सिल के अतिरिक्त-मेम्बर (Extra-member) के पद पर नियुक्त किया जाता है।" इसके अतिरिक्त इस बात की भी व्यवस्था की गई कि राजकुमार भावसिंहजी को विभिन्न विभागों की कार्य्य संचालन पद्धति के निरीक्षण करने का अवसर मिले। आपने शीघ्र ही पोलिटिकल, ज्युडिशियल, रेव्हेन्यू आदि कई विभागों में बड़ा अच्छा अनुभव प्राप्त कर लिया। आपने दीवानी और फौजदारी कानून के ज्ञान में भी अच्छी प्रगति कर ली।

इसी बीच में भावनगर रियासत पर मानों वज्र गिर पड़ा। आपके पूज्य पिताजी श्रीमान् महाराजा तख्तसिंहजी जी. सी. एस. आई. एल. एल. डी. का ई० सन् १८९६ की २९ जनवरी को अकस्मात् देहान्त हो गया। सारे राज्य में शोक का घनघोर अन्धकार छा गया। श्रीमान् वाईसराय, भारत वर्ष के स्टेट सेक्रेटरी और बम्बई के गवर्नर ने महाराजा की मृत्यु पर गहरा शोक प्रकट किया। इतना ही नहीं खुद भारत सम्राज्ञी विक्टोरिया ने स्टेट सेक्रेटरी के मार्फत महाराजा के कुटुम्ब को उनके इस दुःख में अपनी संवेदना और सहानुभूति का सन्देश भेजा। ई० सन् १८९६ की १० फरवरी को नये महाराजा श्रीभावसिंहजी राज्य-सिंहासन पर बिराजे। इस समय अनेक युरोपीय और भारतीय सज्जन उपस्थित थे।

श्रीमान् महाराजा भावसिंहजी अपने पूज्य पिताजी की मृत्यु का शोक भूलने भी न पाये थे कि आपको अपने परम सम्माननीय गुरु--राजकुमार कॉलेज के लोक-प्रिय प्रिन्सिपल मि० चेस्टर मेक के स्वर्गवास होने का दुःख पूर्ण संवाद मिला। नवयुवक महाराजा के चित पर इससे गहरा धक्का लगा, कारण कि उक्त प्रिन्सिपल महोदय आपके साथ सहृदयता का व्यवहार रखते थे।

ई० स० १८९७ में वर्षा की कमी के कारण भारतवर्ष के अन्य प्रान्तों

की तरह भावनगर में भी अन्न की पैदावार कम हुई। इससे जीवन के लिये अन्न प्रभृति आवश्यक पदार्थों की दर बहुत चढ़ गई। गरीबों की दुर्दशा होने लगी। दयार्द्र हृदय महाराजा श्री भावसिंहजी से अपनी प्रजा की यह दुःख-स्थिति न देखी गई। आपने राज्य में ऐसे बहुत से काम शुरू करवा दिये, जिनसें गरीब प्रजा मजदूरी कर अपना पेट भर सके। आपने रियासत की ओर से इस समय गरीब प्रजा की खूब सहायता की। आपने दुःखी प्रजा के लिये गाँव २ में दौरा किया और उसके दुःखों को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया। गरीबों की सहायता करने के लिए भावनगर में एक विराट् सभा हुई जिसमें आपने सभापति का आसन सुशोभित किया था। लगभग १६००० हजार गरीब आदमी काम पर लगाये गये। अन्य हजारों भूखों को अन्नदान दिया गया।

इसी अर्से में आपने अपने परम पूज्य सम्माननीय पिता स्वर्गीय महाराजा तखतसिंहजी का स्मारक खोलने का निश्चय किया। यह स्मारक मूर्ति के रूप में बड़े धूमधाम के साथ वहाँ के पोलिटिकल एजन्ट कर्नल हेटर के द्वारा उद्घाटित किया गया।

ई० स० १८९९–१९०० में सारे भारतवर्ष में अत्यन्त विक्राल अकाल पड़ा। आज भी भारत के लाखों मनुष्य गहरे दुःख के साथ इस अकाल का स्मरण करते हैं। 'छपन्या के अकाल' के नाम से यह मशहूर है। इस अकाल ने मनुष्य-जाति के संहार का जैसा भीषण रूप दिखलाया था, मानवी इतिहास में वैसा मिलना कठिन है। अन्यत्र भारत की तरह भावनगर पर भी इस अकाल का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक था। वहाँ भी हजारों लोग इस अकाल की भेंट होने लगे। कोमल हृदय और कर्तव्य परायण महाराजा से अपनी प्रजा की यह दुर्दशा नहीं देखी गई। आपने अपनी प्रिय प्रजा की रक्षा का यथाशक्ति समुचित प्रबन्ध किया। आपने विविध प्रकार के कार्य्य खोल दिये जिसमें गरीब प्रजा मजदूरी कर उदर निर्वाह कर सके। कई नये तालाब और कुए बनवाये गये तथा पुरानों की

मरम्मत करवाई गई। भूखों को अन्न बाँटने का स्थान २ पर प्रबन्ध किया गया। जगह २ गरीबखाने खोले गये, जिनमें भूखों को मुफ्त भोजन मिलता था। अनाज की सस्ती दुकानें खोली गईं। पशुओं के लिये चराई का काफी प्रबन्ध किया गया। उस साल के सितम्बर मास तक इन कार्य्यों में रियासत ने कोई २३०००००) रुपये खर्च किये। फिर भी इस अकाल ने लोगों को इतना दरिद्री बना दिया कि भूमि-कर के करीब १४०००००) रुपये लोगों की तरफ बकाया लेने रह गये।

ई० स० १९०२ में श्रीमान दिल्ली दरबार में पधारे जो श्रीमान सम्राट् सप्तम एडवर्ड के राज्यारोहण के उपलक्ष्य में हुआ था।

हम पहले कह चुके हैं कि सन् १९०० के भयंकर अकाल ने लोगों की आर्थिक अवस्था पर बहुत ही बुरा प्रभाव डाला था। लोग अत्यन्त दरिद्र हो गये थे। अतएव लोगों में मितव्ययिता की आदत डालने के लिये–उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिये–श्रीमान् ने "दरबार सेविंग बेंक" नामक एक बेंक खोला। जिससे कि लोग अपनी बचत को फजूल खर्च न कर इसमें जमा करवा दें। इस बेंक द्वारा लोगों को व्याज और उद्योग-धन्धों को उत्तेजन मिलता था। इसी बेंक के द्वारा लोगों को बड़ा लाभ पहुँचा। ईसवी सन १९२०–२१ के आखिर में इस बेंक में ८३०००००) रुपये जमा थे।

ईसवी सन् १९०३ में श्रीमान को अपनी प्रिय धर्म-पत्नी रानी साहिबा श्री देवकुँवर बा के स्वर्गवास हो जाने के कारण बड़ा दुःख हुआ। इस मृत्यु का सदमा आपको बहुत दिनों तक रहा।

ईसवी सन् १९०४ में श्रीमान् सम्राट् सप्तम एडवर्ड ने आपको के० सी० एस० आई० की उपाधि से विभूषित किया।

ईसवी सन् १९०५ की २३ अगस्त को श्रीमान् का खैरगढ़ा के राणा की कन्या नंदकुँवर बा के साथ दूसरा विवाह हुआ।

ईसवी सन १९०८ में भारत के तत्कालीन प्रधान सेनापति लॉर्ड किचनर भावनगर आए। उनका श्रीमान ने योग्य स्वागत किया।

ईसवी सन् १९११ में श्रीमान् सम्राट् पंचम जार्ज के राज्यारोहण के उपलक्ष्य में दिल्ली में जो दरबार हुआ था, उसमें श्रीमान् पधारे। आप उस समय श्रीमान् सम्राट् से मिले थे। इसी साल आपकी रानी साहिबा को 'इम्पीरियल ऑर्डर ऑफ दी काऊन' की उच्च उपाधि मिली।

ई० सन् १९१२ की १९ मई को श्रीमान् के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह समाचार सारे राज्य में बड़े आनन्द से सुना गया। राज्य में चारों ओर खुशी मनाई गई। इसी साल श्रीमान् की पुत्री मनहर कुँवरी बाई का विवाह पन्ना के वर्तमान महाराजा श्रीमान् यादवेन्द्र साहिब बहादुर के साथ बड़ी धूमधाम से हुआ।

इस साल और एक घटना हुई, वह यह कि, बम्बई के गवर्नर ने श्रीमान् महाराजा साहब से कार्य्यकारिणी कौन्सिल के मेम्बर के पद के लिये भावनगर के सुयोग्य दीवान सर प्रभाशङ्कर पटनी की मांगनी की। श्रीमान महाराजा साहब ने इस बात को अपने लिये गौरव समझा, और अपने योग्य दीवान सर पटनी महोदय को उक्त पद स्वीकार करने के लिये अनुमति दे दी।

ईसवी सन् १९१८ में रानी साहबा श्री नंदकुँवर बा को न्यूमोनिया हो गया। रुग्णावस्था में श्रीमती का अच्छे २ डॉक्टरों द्वारा इलाज करवाया गया, पर "मर्ज बढ़ता ही गया, ज्यों २ दवा की" की कहावत पूर्णरूप से चरितार्थ हुई। इस दुःखपूर्ण घटना के कारण महाराजा के हृदय पर बड़ी चोट पहुँची।

ईसवी सन् १९१९ की १७ जुलाई को इन अत्यन्त लोक-प्रिय महाराजा सर भावसिंहजी ने भी अपने प्रिय कुटुम्ब और लाखों प्रजाजनों को शोक-सागर में डुबाकर इहलोक यात्रा संवरण की। आपके स्वर्गारोहण के समाचार से सारे राज्य में शोक की गहरी घटा छा गई !! प्रजाजनों में हाहाकार मच गया !!
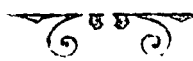
महाराजा कृष्ण कुमारसिंहजी

आपके बाद आपके पुत्र महाराज कृष्ण कुमारसिंहजी राज्य-सिंहासन पर बिराजे। इस वक्त आप नाबालिग हैं। अतएव शासन-सूत्र चलाने का भार एक सुयोग्य सदस्यों की कौन्सिल के हाथों में है। सर प्रभाशङ्कर पट्टनी राज्य के दीवान हैं। आपके कारण इस समय मैसूर ट्रावनकोर और राजकोट की तरह भावनगर का शासन आदर्श शासन माना जाता है। वहाँ की प्रजा में एक प्रकार की अद्भुत जीवन-शक्ति दिखलाई देती है।

भावनगर रियासत का क्षेत्रफल लगभग २८६० वर्गमील है। वह दस जिलों में बँटा हुआ है। सन १९२१ की मनुष्य गणना के अनुसार वहाँ की लोक-संख्या ४२६४०४ है। इनमें ८६ फी सदी हिन्दू और ८ फी सदी मुसलमान हैं। वहाँ २०:०० जैनी, ३०० पारसी, १६३ ईसाई और १४ यहूदी भी बसते हैं।

इस राज्य में करीब १२००००० एकड़ जमीन खेती के लायक है। सन् १९२०-२१ में इस राज्य की आमदनी ३८१५३६०) रुपये हुई थी।

किसानों की स्थिति सुधारने के लिए श्रीमान् भूतपूर्व महाराजा साहब स्वर्गीय सर भावसिंहजी साहब ने सहकारी समितियाँ (Co-operative societis) खोली थीं। इनसे किसानों को बड़ी सहायता मिली। महाजनों की लूट से उन्हें बहुत कुछ बचने का मौका मिला। द्रव्य बचाने की उनकी आदत पड़ने लगी। ये बड़ी उपयोगी सिद्ध हुई और यही कारण है कि इनकी बड़ी शीघ्र उन्नति होती गई। सन् १९२१-२२ के साल में भावनगर के विभिन्न जिलों में करीब ३३९ सहकारी समितियाँ थीं। उसी साल इन के सदस्यों की संख्या ११६३३ थी।

भावनगर में दो मील हैं। जिनमें ३३७ कर्घे और १९६०० स्पिन्डल्स

हैं। तीन फेक्टरियाँ भी हैं जो बिजली की ताक़त से चलती हैं। भावनगर राज्य के विभिन्न जिलों में १६ जीनिंग फेक्टरियाँ हैं।

भावनगर में शिक्षा की भी खूब प्रगति हो रही है। ईसवी सन् १९२०-२१ में वहाँ १ कालेज, एक हायस्कूल, १२ मिडल स्कूल, १६८ प्राईमरी स्कूल्स (इनमें २४ कन्या पाठशालाएँ भी शामिल हैं) थे। वहाँ ११ ऐसे प्राईव्हेट स्कूल हैं जिनमें सरकार की ओर से सहायता मिलती है। वहाँ मिशन स्कूल भी है। कई विद्यार्थी बाहर पढ़ते हैं, जिन्हें सरकार की ओर से सहायता मिलती है।

वहाँ एक सुन्दर पुस्तकालय भी है, जिसमें करीब १०००० ग्रन्थ हैं। यह बार्टन लायब्रेरी के नाम से मशहूर है। इसमें इतिहास, तत्वज्ञान, साहित्य, विज्ञान आदि कई विषयों पर अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। इसमें कई प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों का भी अच्छा संग्रह है।

भावनगर शहर में ३ अस्पताल और चार डिस्पेन्सरियाँ हैं। राज्य के विभिन्न जिलों में १४ डिस्पेन्सरियाँ और हैं।

सन् १९२०-२१ में राज्य की आमदनी सरासरी तौर से ६९४१९५५) और खर्च ५२९८२२९), रुपये था।

यहाँ १० म्युनिसिपालिटियाँ है। ये सब सरकारी संस्थाएँ है। इनका खर्च दरबार से होता है। खास भावनगर की म्युनिसिपालिटी के लिये लगभग ७०००) प्रतिसाल खर्च होता है। प्रजा को शुद्ध और साफ़ किया हुवा जल मिलने का इन्तजाम है।

यह रियासत १२८०६०) रुपये प्रतिसाल ब्रिटिश सरकार को बतौर खिराज़ के देती है। इसके अतिरिक्त उसे ३०८१८) रुपये बड़ौदा सरकार को बतौर पेशकशी के और २२८५८) रुपया जुनागढ़ नवाब को बतौर जोर-तलबी के देना पड़ते हैं।
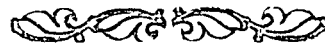
भावलपुर-राज्य का इतिहास

HISTORY OF THE BHAWALPUR STATE.

आवलपुर पंजाब और राजपूताने के मध्य म बसा हुई एक मुसलमानी रियासत है। यहां के राजा को नवाब कहते हैं। ये नवाब "अब्बासी दाऊद पुत्र" के वंशज है। कहा जाता है कि ये नवाब इजिप्ट के अब्बासी खलिफा के खानदान के है। यह भी किम्वदन्ती प्रचलित है कि अब्बास के वंशज खोरसान तथा माकरान की राह से सिंध प्रदेश के रोहिरी बाखर प्रान्त में आये। पुराने ज़माने के लेखों से भी उपरोक्त वदन्ती की पुष्टि होती है। उनसे हमें मालूम होता है कि इनके पूर्वज पहले पहल सिन्ध प्रदेश में आकर बसे थे। वे खेती करके अपनी जीविका उपार्जन करते थे। सिंध सरीखे सूखे प्रदेश में खेती की उन्नति के लिये इन लोगो ने सिन्ध नदी से नहरें निकाली थी। अब्बास वंशीय छत्तीसवें राजा अमीर चावनीखाँ के दो पुत्र थे। उनमें से बड़े पुत्र का नाम दाऊद खाँ था। इन्हीं दाऊद खाँ के वंशीय अब्बासी दाऊद पुत्रों ने वर्तमान भावलपुर राज्य की स्थापना की थी।

नवाब सादिक महम्मद खाँ

यों तो भावलपुर राज्य चिरकाल से चला आता है; किन्तु हमारा वर्तमान इतिहास ई० स० १८६६ से शुरू होता है। इस वर्ष भावलपुर राज्य के तत्कालीन नवाब की मृत्यु हुई थी। अतएव उनके चौदह

वर्षीय पुत्र सादिक महम्मद खाँ तख्त पर बैठे। इस समय आप नाबालिग थे अतएव बालिग होने तक राज्य-कार्य अंग्रेजों के हाथ में आया।

अंग्रेजों ने पहले इस राज्य का शासन-कार्य मुल्तान के तत्कालीन कमिश्नर को सौंपने की व्यवस्था की थी, किन्तु थोड़े ही दिनों पश्चात् यह कार्य एक पोलिटिकल एजंट के अधीन किया गया। ई० स० १८६७ में कर्नल मिन्चन इस राज्य के पोलिटिकल एजंट बनाये गये। इस समय राज्य की स्थिति बड़ी खराब थी। चारों ओर अव्यवस्था फैली हुई थी। अतएव कर्नल मिन्चन साहब को शासन-सुधार के लिये राज्य के प्रत्येक मामलों में हाथ डालना पड़ा था। कहा जाता है कि, उस समय राज्य में दो से अधिक प्रभावशाली पुरुष भी नहीं थे। यहाँ तक कि महत्व के कार्य करने के लिये योग्य अधिकारी भी नहीं मिलते थे। खजाना खाली था, नौकरों को कई महिनों से वेतन नहीं मिला था, सेना बलवा करने को उद्यत हो रही थी तथा बहुत से कृषक इनका राज्य छोड़कर आसपास के दूसरे प्रान्तों में जा बसे थे।

उपरोक्त नवाब साहब के बालिग होने तक पोलिटिकल एजंट साहब ने अपने शासन-काल में बहुत से सुधार किए, जिनसे थोड़े ही दिनों में राज्य की उन्नत दशा हो गई। नवाब सादिक महम्मद खाँ साहब को ई० स० १८७९ के नवम्बर मास में राज्य-शासन-सूत्र सौंपा गया। इनके राज्यारोहण के समय पंजाब के लेफ्टिनंट गवर्नर महोदय भी उपस्थित थे।

ई० स० १८७९-८० में अंग्रेजों ने अफगानिस्तान पर चढ़ाई की, उस समय नवाब साहब ने अंग्रेजों को योग्य सहायता पहुँचाई। इस सहायता के उपलक्ष्य में उन्हें भारत सरकार की ओर से धन्यवाद प्रदान किया गया। ई० स० १८८० में तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड रिपन साहब भावलपुर पधारे। उस समय उन्होंने नवाब साहब को जी० सी० एस० आइ० की उपाधि से विभूषित किया।

बीस वर्ष राज्य करके ई० स० १८९९ में नवाब सादिक महम्मद खाँ

परलोक सिधारे। इनके शासन-काल के कुछ दिन तो अच्छे बीते थे, किन्तु आखिरी दिनों में इन्होंने बहुत सा कर्ज कर लिया था।

नवाब महम्मद भावल खाँ

इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके पुत्र पञ्चम महम्मद भावल खाँ १६ वर्ष की उम्र में गद्दी पर बैठे। उस समय आप नाबालिग थे। इसलिये कर्नल एल० जे० एच० ग्रे० सी० एस० आई० भावलपुर राज्य के सुपरिंटेंडेंट नियुक्त किये गये। ये नवाब महम्मद भावल खाँ के बालिग होने तक राज्य-कार्य देखते रहे। ये महोदय के समय राज-कार्य योग्य रीति से चला था। इतना ही नहीं, उस समय मृत नवाब का किया हुआ बहुत सा कर्ज भी चुका दिया गया था।

नवाब महम्मद भावल खाँ ने चार वर्ष तक लाहौर के एटकिन्सन कॉलेज में शिक्षा ग्रहण की। इसके पश्चात् उन्होंने राज-कार्य अच्छे ढंग से चलाने के लिये शासन-संबंधी कार्यों का ज्ञान संपादन किया। साम्राज्य सरकार की ओर से ई० स० १९०३ की १५ वीं नवंबर को इन्हें राज्याधिकार प्रदान किये गये।

ये महोदय के शासन-काल में राज्य की आय २४,००,००० रुपये हो गई थी। नवाब महम्मद भावल खाँ ने शासन-कार्य बड़ी कुशलता और उत्साह से किया। इनसे प्रजा संतुष्ट थी। ई० स० १९०७ के फरवरी मास में मक्का की यात्रा से वापस लौटते समय अडन मुकाम पर आपकी मृत्यु हो गई।
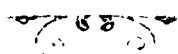
नवाब हाजी सादिक मुहम्मद खाँ

नवाब आवल खाँ की अकाल मृत्यु के पश्चात् उनके बालपुत्र हाजी सादिक महम्मद खाँ बहादुर, रुकन-उद्दौला, नसरत-जंग, मुखलिस उद्दौला, हाफिज-उल्-मुल्क, गद्दी पर बिठाये गये। इनका जन्म ई० स० १९०४ की ३० वीं सितंबर को हुआ था। इस समय अंग्रेज सरकार ने शासन-भार एक कौंसिल ऑफ रेजन्सी के अधीन किया। इस कौंसिल के अध्यक्ष के स्थान पर मौलवी हाजी सर रहीमबक्ष खाँ, के० सी० आइ० ई० की नियुक्ति की गई। नवाब इज्जत निशान खुदाबक्श खाँ ओ० बी० ई०, सी० आइ० ई० रेव्हेन्यू मेम्बर बनाये गये। दीवान आसानाऊद खाँ बहादुर अर्थ-विभाग के मेम्बर बनाये गये। खान बहादुर जनरल महम्मद अब्दुल-रहमान खाँ की नियुक्ति सेना-विभाग के मेम्बर के स्थान पर हुई।

नवाब हाजी सादिक महम्मद खाँ साहब लाहौर के एट्किन्सन कॉलेज में शिक्षा ग्रहण करने लगे। मि० एटकिन्सन इनके संरक्षक बनाये गये थे। आपने ई० स० १९१३ में पंजाब के भतपूर्व पोलिटिकल एजंट एटकिन्सन के साथ इंगलैंड की यात्रा की। आपने हिन्दुस्थान से पहले इजिप्ट की ओर प्रयाण किया, तथा इटली और फ्रान्स होते हुए आप इंगलैण्ड पहुँचे। आपने लन्दन के बकिंगहम महल में भारत-सम्राट् से भेंट की। इंगलैंड में कुछ दिन ठहर कर आप वापस लौटे, किन्तु कुछ ही सप्ताह के पश्चात् आपने फिर इंग्लैंड की यात्रा की। आप इस समय २ वर्ष तक इंग्लैंड में रहे। आपने वहाँ रहकर पश्चिमीय सभ्यता, आचार-विचार, रीति-रिवाज, तथा राजनीति का अनुभव प्राप्त किया। आप ई० स० १९११ में देहली में कॉरोनेशन दर-बार के समय भी उपस्थित थे। वर्तमान भारत-सम्राट् ने आपसे इस समय भी मुलाकात की थी।

पंजाब के नरेशों की श्रेणी में नवाब साहब का स्थान दूसरे नम्बर का है। आपको सत्रह तोपों की सलामी का सम्मान है।

भावलपुर राज्य के उत्तर-पूर्व में फिरोजपुर डिस्ट्रिक्ट; पूर्व और दक्षिण में बिकानेर व जैसलमेर की रियासतें; दक्षिण-पश्चिम में सिन्ध प्रदेश तथा उत्तर पश्चिमी सीमा में सतलज और सिन्ध नदी हैं। इस राज्य का क्षेत्रफल १७,८७५ वर्गमील है। इस क्षेत्रफल का दो-तिहाई से अधिक हिस्सा मरु-भूमि में स्थित है, इससे यहाँ की भूमि अधिक उपजाऊ नहीं है। केवल एक-तिहाई हिस्सा सिन्ध तथा सतलज नदी के बीच में बसा हुआ है। इस हिस्से में अच्छी उपज होती है।

राज्य में गेहूँ, चना, चावल और ज्वार आदि पैदा होते हैं, किन्तु राज्य की आमदनी का अधिकांश हिस्सा खजूर की पैदावार से प्राप्त होता है। सरकारी बगीचों से भी काफी आमदनी होती है। यहाँ के जंगल का क्षेत्रफल ३,९४,६५५ बीघे हैं।

खेती की उन्नति के लिये यहाँ की सरकार सतलज नदी से एक नहर निकालने का विचार कर रही है। संभव है कि यह नहर निकल जाने पर राज्य की आय में वृद्धि हो जाय। राज्य के पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट के चीफ इन्जीनियर मि० जे० सी० डेविहम हैं। आप इमारतें, महल, खेतों को पानी देने के ज़रिये (जैसे कुएँ, तालाब, नहर इत्यादि) तथा स्टेट वर्क-शॉप सम्बंधी कार्य बड़े उत्साह से कर रहे हैं। ई० स० १९२०-२७ में यहाँ पी: डब्ल्यू० डी० के लिये कुल ५,२७,७४६ रुपये खर्च किये गये थे।

खानपुर से काचरान तक स्टेट की ओर से एक रेल्वे लाइन है। इसकी लंबाई ८३ मील है। इस रेल्वे लाइन का उद्घाटन ई० स० १९१० में हुआ था। रेल्वे लाइन की आमदनी इतनी काफी नहीं है जिससे कि राज्य को काफी फायदा पहुँच सके।

यहाँ ऊँटों की काफी सेना है। पहरे आदि दूसरे कामों के लिये भी अलग सेना रखी गई है। बृटिश सरकार ने जिस समय ई० स० १९१७ में

गीसा-प्रान्त पर चढ़ाई की थी, उस समय आपकी ऊँटों की फौज ने बड़ा काम किया था। मरी जाति के विरुद्ध आक्रमण में भी आपकी सेना ने अच्छी सहायता दी। गत यूरोपीय युद्ध के समय मेसोपोटामिया तथा पूर्वीय अफ्रिका में भी आपकी सेना भेजी गई थी। बृटिश सेना में भावलपुर राज्य के लगभग ३,००० रंगरूट हैं।

भावलपुर और खानपुर में खूबसूरत पगड़ियाँ और उम्दा रेशम के कपड़े तैयार किये जाते हैं। अहमदपुर और खैरपुर में चीनी मिट्टी के बरतन, जूते और रंगीन कपड़े अच्छे बनाये जाते हैं। स्टेट में बहुत सी जिनिंग फेक्ट-रियाँ हैं। यहाँ से गेहूँ, चना, खजूर, आम, तथा दूसरी जाति के फल, कलमी शोरा, ऊन आदि बाहर देशों को भेजे जाते हैं। विदेशों से मुख्यतः शक्कर तथा कपड़े यहाँ मँगाये जाते हैं।

राज्य में सादिक इगरटन नाम का एक कॉलेज है। यहाँ एफ० ए० तक शिक्षा दी जाती है। यह कॉलेज पंजाब विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है। यहाँ अंग्रेजी, गणित, इतिहास, अरबी, फारसी, संस्कृत तथा तत्वज्ञान आदि विषयों की शिक्षा दी जाती है। भावलपुर में एक हाइ स्कूल भी है। राज्य में पाँच ऐंग्लो वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल, छ वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल, एक ऐंग्लो वर्नाक्यूलर प्राइमरी स्कूल तथा प्राथमिक शिक्षा देने के लिये १०० पाठशालाएँ हैं। अरबी सिखाने के लिये आठ मदरसे हैं। कन्याओं को शिक्षा देने के लिये भावलपुर में एक पाठशाला है। उपरोक्त विद्यालयों के अतिरिक्त एक मिशन स्कूल भी है, जिसमें वर्नाक्यूलर मिडिल श्रेणी तक की शिक्षा दी जाती है। राज्य की ओर से शाला के विद्यार्थियों को उत्साह दिलाने के लिये छात्र-वृत्तियाँ दी जाती हैं।

साधारणतः नवाब साहब एक कौंसिल की सहायता से राज्य-शासन करते हैं जिसमें ११ सदस्य हैं। राज्य के वजीर या मशीर-ई-आला इसके अध्यक्ष हैं। फॉरेन विभाग, रेव्हेन्यू विभाग, अर्थ विभाग, न्याय विभाग तथा अन्य दूसरे प्रत्येक मुख्य विभाग के लिये एक २ मिनिस्टर नियुक्त है।

राज्य में तथा भावलपुर नगर में मिलकर कुल १५ म्युनिसिपालिटियां हैं। इनमें ई० स० १९२० में १,८५,९६८ रुपयों की आय हुई थी। उसी साल का इन संस्थाओं का खर्च १,८४,०६१ रुपया हुआ था। यहाँ के कई नगरों की आबहवा अच्छी है। कमिटी के सदस्यों को आमद व खर्च के मामलों में पूरा अधिकार है। बृटिश सरकार तथा भावलपुर राज्य के बीच मे ई० स० १८७८ की १ली अक्टूबर को एक तहनामा हुआ है, जिसके अनुसार राज्य में विदेश से आनेवाली तथा यहाँ से विदेश भेजी जानेवाली वस्तुओं पर महसूल नहीं लिया जाता। राज्य में एक बड़ा चिकित्सालय है सुदूरवर्ती जिलों में भी कई अस्पताल हैं।

न्याय विभाग चीफ जज्ज के आधीन है। ये जज्ज साहब सदर अदालत के अध्यक्ष हैं। इनके अतिरिक्त तीन डिस्ट्रिक्ट जज्ज तथा पाँच फर्स्ट क्लास और तीन सेकंड क्लास मुंसिफ हैं।

राज्य की मनुष्य-संख्या ७,२१,००० है। इनमे से ८० प्रति सैकड़ा मुसलमान हैं। राज्य में पश्चिमीय पंजाबी, सिन्धी तथा मारवाड़ी राठी भाषाएँ मुख्यतः बोली जाती हैं। इस समय राज्य की आय ३४,००,००० रुपया से अधिक है।

यूरोप के भीषण समर में भावलपुर नरेश ने अंग्रेज सरकार की अच्छी सहायता की। आपकी ऊँट सेना तथा आरक्षित सेना ने यूरोपीय समर में बड़ा नाम प्राप्त किया था। स्टेट की ओर से 'युद्धऋण' में ८२,०००,०० से अधिक रुपया एकत्रित हुआ था। घायल सैनिकों की शुश्रूषा के लिये राज्य की ओर से 'रिलीफफंड' में ४००० रुपये दिये गये थे। लेडी ओडवायर फंड तथा इंगलैंड में ब्राइटन स्थान पर भारतीय सैनिकों का स्मारक बनाने के लिये क्रमशः ६००० तथा २००० रुपये प्रदान किये। फ्रांस में भेजी गई भारतीय सेना के आराम तथा उपयोग के लिये आपने 'वाइ० एम० सी० ए०' फंड में ५००० रुपये दिये। लाहौर में भावलपुर-राज्य के स्वामित्व का एक विशाल भवन सैनिक अस्पताल के लिये अर्पण किया गया था तथा कई खेमे भी दिये

उपयोग के लिये दिये गये थे। ई० स० १९१७ में भावलपुर 'सेंट जॉन एम्बुलन्स सुसाइटी' का केंद्र बनाया गया।

भावलपुर राज्य का मुख्य नगर है। यह सिन्धु नदी के दक्षिणी तट पर बसा हुआ है। नगर के चारों ओर मिट्टी की दीवारें बनी हुई हैं, जिनकी परीधि ४ मील है।

नगर में कई सुन्दर इमारतें हैं, जैसे इगरटन सादिक कॉलेज, हाइ स्कूल, नूर महल आदि। नूर महल ई० स० १८७५ में उद्घाटित किया गया है। इसके बनाने में १२,०००० रुपये लगे थे। यह भारतीय शिल्पकला के ढंग पर बनाया गया है। यह सुन्दर-भवन अतिथि सत्कार के उपयोग में आता है। इसका उपयोग दरबार-भवन के लिये भी होता है। नवाब साहब का राज-प्रासाद ई० स० १८८२ में बनाया गया था। यह बड़ा विशाल है। इसके चारों कोनों पर चार बुर्ज हैं जिनसे बीकानेर राज्यान्तर्गत बहुत दूरी तक की मरुभूमि का दृश्य दिखाई देता है। राज्य-प्रासाद का स्वागत-भवन ६० फीट लंबा और ५६ फीट ऊँचा है।

भावलपुर नगर राज्य के व्यापार का केंद्र है। यहाँ से ५ मील की दूरी पर सतलज नदी पर एक विशाल पुल है, जिसे 'एम्प्रेस ब्रिज' कहते हैं। इसकी लम्बाई ४२५० फीट से अधिक है। इस पुल में १६ कमानियाँ हैं, जो कि प्रत्येक २५० फीट लम्बी हैं। भावलपुर से ३८ मील की दूरी पर दक्षिण-पूर्व में 'हव' नामक एक कस्बा है। यह ऐतिहासिक और पुरातात्विक दृष्टि से बड़े महत्व का है। कई सुप्रसिद्ध यात्री इस बात को सप्रमाण कहते हैं कि यह नगर पंजाब की अनेक नदियों के सङ्गम स्थान पर अलेक्जेंडर ने बसाया था। इस नगर का अब ध्वंसावशेष न रहा। इस समय यहाँ २,३ गाँव बस गये हैं। इस नगर के आसपास बहुत सी कब्रे हैं, जिससे मुसलमान लोग इसे अब तक बड़ा पवित्र स्थान मानते हैं।

भावलपुर कृषि व्यवसाय का मुख्य केंद्र है। यहाँ बहुत सी शाल निकालने की मशीनें तथा जिनिंग फैक्टरियाँ है।

नशाहरा तहसील में 'पट्टन मुनारा' नामक एक भग्न स्थान है। यहाँ एक बुद्ध मठ की बारहदरी के चार बुर्जों के कुछ निशान ई० स० की अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक मौजूद थे। दन्त-कथाओं से ज्ञात होता है कि किसी समय में इस नगर का क्षेत्रफल १०० वर्गमील था। यह भी कहा जाता है कि उस समय यह नगर मौसिकॅन्यूस के राज्य का मुख्य शहर था। यह वही मौसिकॅन्यूस है, जिसने कि अलेक्जेंडर की स्वाधीनता स्वीकार कर लेने पर भी उस पर आक्रमण किया था और जो ईस्वी सन् के ३२५ वर्ष पहले शूली पर चढ़ाया गया था।

देवास-राज्य का इतिहास

[प्राचीन]

HISTORY OF THE DEWAS STATE.

[Preliminary]

भारतवर्ष के इतिहास में अनेक ऐसे गौरवशाली राज्य-वंश हो गये हैं जिनका नाम मानव जाति के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है। इन्हीं पराक्रमशील वंशों में मालवा के परमारों का स्थान भी बहुत ऊँचा है। महाराज विक्रमादित्य, भोजराज, परम पराक्रमी मुञ्ज आदि अनेक सुविख्यात नृपतियों ने इसी राज्य-वंश को सुशोभित किया था। भारतवर्ष की संस्कृति और सभ्यता के विकास में इस राज्य-वंश ने जो २ महान् कार्य किये थे, वे न केवल भारतवर्ष के इतिहास में वरन् संसार की सभ्यता के विकास में भी अपना विशेष महत्व और गौरव रखते हैं। इस राज्य-वंश का गौरव-मय इतिहास देने के पहले उसकी उत्पत्ति पर दो शब्द लिखना आवश्यक है।

परमार-वंश की उत्पत्ति

परमारों की उत्पत्ति के विषय में भिन्न २ लोगों के भिन्न २ मत हैं। राजा शिवप्रसाद अपनी 'इतिहास तिमिर-नाशक' पुस्तक के प्रथम भाग में लिखते हैं कि "जब विधर्मियों का अत्याचार बहुत बढ़ गया तब ब्राह्मणों ने अर्बुद-गिरि (आबू) पर यज्ञ किया और मंत्र-बल के द्वारा 'अग्निकुण्ड' में से चार नये वंश उत्पन्न किये। परमार, सोलंकी, चौहान और पड़िहार।" अबुल फजल ने अपनी आईने अकबरी में लिखा है कि "जब नास्तिकों का उपद्रव बढ़ गया तब आबू पहाड़ पर ब्राह्मणों ने अपने अग्निकुण्ड से परमार, सोलंकी, चौहान और पड़िहार नाम के चार वंश उत्पन्न किये"। पद्मगुप्त (परिमल) ने अपने

रामकृष्ण भण्डारकर के इस मत का भी खण्डन किया है कि अग्नि-कुल के क्षत्रिय गूजर थे। आप दोनों के मतानुसार चारों अग्निवंशी माने जानेवाले राजपूत प्राचीन क्षत्री जाति के ही वंशधर हैं।

विक्रम संवत् १०२८ से १०५४ (ई० सन् ९७१ से ९९७) के आस पास होनेवाले मालवे के परमार राजा मुञ्ज के दरबार के पण्डित हलायुध ने 'पिंगल-सूत्रवृत्ति' में मुञ्ज को 'ब्रह्मक्षेत्र-कुल' का कहा है। इस पर विद्वानों ने तरह २ के तर्क बांधे हैं। किसी का कहना है कि ब्राह्मण वसिष्ठ को युद्ध के क्षतों या प्रहारों से बचनेवाला वंश समझ कर ही इस शब्द का प्रयोग किया गया है। कुछ लोगों का मत है कि ये लोग ब्राह्मण और क्षत्रिय-मिश्र सन्तान थे। अथवा ये विधर्मी थे और ब्रा णों ने सत्कार द्वारा शुद्ध करके इनको क्षत्रिय बना लिया। इसी कारण इनको 'ब्रह्मक्षत्र-कुलीनः' लिखकर उनकी उत्पत्ति के लिये अग्नि-कुण्ड की कथा बनाई गई। परन्तु ओझाजी का मत है कि 'ब्रह्मक्षत्र' शब्द का प्रयोग प्राचीन-काल में उन राज्यवंशों के लिये होता रहा, जिनमें ब्रह्मत्व और क्षत्रत्व दोनों गुण विद्यमान हों, या जिनके वंशज ब्राह्मण से क्षत्रिय हुए हों। मुञ्ज के समय से पीछे के शिला-लेखों से परमारों के मूल पुरुष का आबू पर वसिष्ठ के अग्नि-कुण्ड से उत्पन्न होना अवश्य मिलता है; परन्तु यह कल्पना भी इतिहास के अन्धकार में पीछे से की हुई प्रतीत होती है। 'पृथ्वीराज रासो' के बाद से अग्निवंश की कथा इतनी फैल गई है कि खुद परमार आदि चारों वंश के लोग भी अपने आपको अग्निवंशी मानने लग गये और आज तक मानते चले आ रहे हैं। टाड साहब ने इसी के आधार पर अपने 'राजस्थान' के इतिहास में इनको अग्निवंशी लिखा है। बूंदी के सूरजमल भाट ने तो हद कर दी। अपने 'वंश-भास्कर' में उसने पांच वंशों को स्थान दिया है। उसने अग्नि-वंश की उत्पत्ति की तिथि भी लिख मारी है। ईसा पूर्व ६६३२ वर्ष अर्थात् कलियुग से पहले ३५३१ साल। रा० ब० वैद्य कहते हैं कि १२०० ई० में जो कविता थी वह १७०० ई० में जाकर एक तर्क-सिद्ध स्थिति स्वीकृत हो गई! मराठे, परमार-पँवारों की वंशावली में वे

अब तक 'सूर्य्य-वंशी' कहे जाते हैं। ओझाजी लिखते हैं कि परमारों के शिला-लेखों में उक्त वंश के मूल पुरुष का नाम धूमराज मिलता है। धूम अर्थात् धुवाँ अग्नि से उत्पन्न होता है। शायद इसी से परमारों के मूल पुरुष का अग्नि-कुण्ड से निकलना और उनके अग्नि-वंशी कहलाने की कथा पीछे से प्रसिद्ध की गई हो तो आश्चर्य नहीं।

मालवे में परमार-राज्य की स्थापना

प्राचीन परमार राज्य-वंश की जो वंशावली मिली है उसमें उपेन्द्रराज का नाम सब से प्रथम है, ये बड़े पराक्रमी और धर्मात्मा थे। उदयपुर की प्रशस्ति में लिखा है कि "उनने कई यज्ञ किये और उन्हें अपने ही पराक्रम से बड़े राजा होने का सम्मान प्राप्त हुआ"। 'नव साहसांक चरित्र' नामक पुस्तक में लिखा है कि उसका यश समुद्र को लंघन कर गया। ये बड़े शूरवीर और साहसी थे। इन्होंने उत्तर में गंगा नदी तक और दूसरी तरफ समुद्र के किनारे तक चढ़ाईयाँ कर विजय प्राप्त की थी। इन्होंने ३९ वर्ष तक राज्य किया। इन्होंने अपना अन्तिम समय अपनी रानी कमलावती के साथ वानप्रस्थ-आश्रम में बिताया था।
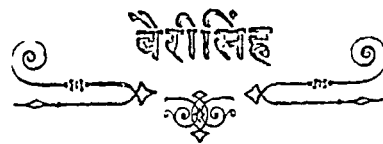
बैरीसिंह

उपेन्द्रराज के पश्चात बैरीसिंह राज्यासन पर बैठे। इतिहास में इनका नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पहले पहल इन्होंने ही धार-राज्य का स्वामित्व संपादन किया और उसे अपनी राजधानी बनाया। इन्होंने २७ वर्ष राज्य-कार्य किया। ७१ वर्ष की अवस्था में ये इस असार संसार को छोड़कर स्वर्ग सिधारे।

सीयक

वैरीसिंह के बाद सीयक राज्य-सिंहासन पर बैठे। इन्हीं के समय से परमार राज्यवंश का विश्वसनीय इतिहास मिलता है। इन्होंने कितने ही राजाओं पर चढ़ाइयाँ कीं। इन्होंने दक्षिण के मान्यकूट (मालखेड़) के राष्ट्रकूट वंशीय राजा खोट्टिगदेव पर ई० सन ८७१ में पूर्ण विजय-प्राप्त की। इन्होंने उक्त राजा को अपना माण्डलिक भी बनाया। इन्होंने हूणों पर भी विजय प्राप्त की। इसी वर्ष इनके राज्य के धनपाल नामक कवि ने अपनी विदुषी बहन सुन्दरी के लिये 'पाई अलच्छी नाम माला' नामक एक प्राकृत भाषा का कोष बनाया था। उपरोक्त विजय (ई० सन् ६७१) से सीयक (हर्षदेव) को अतुलनीय सम्पत्ति प्राप्त हुई थी। इनके बाद इनके जेष्ठ पुत्र वाक्पतिराय (मुञ्जदेव) राज्य-सिंहासन पर विराजे।
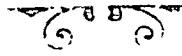
वाक्पतिराय (मुञ्जदेव)

वाक्पतिराय का दूसरा नाम मुञ्जदेव भी था। मालवे के इतिहास में इनका नाम गौरव पूर्ण शब्दों में स्मरण किया गया है। उदयपुर (गवालियर) की प्रशस्ति में इनके अतुलनीय पराक्रम का बड़े गौरव-मय शब्दों में उल्लेख किया गया है। इन्होंने कर्नाटक, गुजरात, केरल आदि देशों के राजाओं पर विजय प्राप्त की थी और कितने ही राजाओं को अपना माण्डलिक भी बनाया था।

दक्षिण के कल्याणपुर के चालुक्यवंशीय राजा तोलपदेव (द्वितीय) मुञ्जराज के समकालीन थे। मुञ्जराज ने उन पर १६ बार चढ़ाइयाँ कीं। आखिर की लड़ाई में (ई० सन् ९७५) तोलपदेव हार गये, और मुञ्जदेव द्वारा कैद कर उज्जैन लाये गये। पर मुंजराज ने अपनी सहृदयता और उदारवृत्ति के कारण इन्हें छोड़ दिया। लेकिन तोलपदेव ने बदला लेने की ठानी, उन्होंने युद्ध की तैय्यारी की। वे बड़ी भारी फौज़ लेकर मालवे पर चढ़ आये। पर मुंजदेव के मंत्री रुद्रदेव ने उन्हें हराकर गोदावरी के पार उतार दिया और अपने स्वामी मुंजदेव से उनके राज्य पर चढ़ाई न करने का आग्रह किया। मुंजदेव ने शक्ति के नशे में चूर हो कर अपने मंत्री की बात नहीं मानी। उन्होंने गोदावरी से आगे बढ़कर अपने शत्रु का पीछा किया। तोलपदेव ने अवसर पाकर मुंजदेव को कैद करलिया। शुरू २ में मुंजदेव के साथ अच्छा व्यवहार किया गया, इतना ही नहीं उन्होंने (तोलपदेव ने) अपनी बहन मृणालवती की शिक्षा का भार भी मुंजदेव को सौंप दिया। कुछ ही समय में ये दोनों प्रेमपाश में बद्ध हो गये। इसी समय मुंजराज के मंत्री रुद्रादित्य ने अपने स्वामी को बन्धन मुक्त करने का प्रयत्न शुरू किया जो कि मुंजदेव को मालूम भी हो गया था। इस कार्य में मृणालवती की सहायता प्राप्त करने के लिये उन्होंने उससे भी अपने साथ चलने के लिये कहा। परन्तु मृणालवती ने यह सोचकर कि ये (मुंजदेव) अपनी राजधानी में जाकर मेरा निरादर न करें, सारा रहस्य अपने भाई के सामने प्रगट कर दिया। इससे तोलपदेव बड़ा क्रोधित हुआ और उसने अपनी बहन के मना करने पर भी मुञ्जदेव का शिरच्छेद कर डाला।

मुंजराज के समान महा पराक्रमी राजा का इस प्रकार शोचनीय अन्त होना, इसे दुर्भाग्य न कहें तो और क्या कहें ?

मुंजराज जिस प्रकार महा पराक्रमी और महावीर थे वैसे ही वे संस्कृत के अद्वितीय पण्डित, कवि, और ग्रन्थकार भी थे। वे बड़े विद्या-रसिक और सरस्वती के सेवक थे। उनकी राज-सभा में संस्कृत के बड़े २ पण्डित थे। गुणी जनों और विद्वानों का आदर करना वे अपना परम कर्त्तव्य और

धर्म समझते थे। इसी कारण वे 'कवि-मित्र' और 'कवि-बन्धु' के नाम से अब तक प्रख्यात हैं।

पद्मगुप्त कवि ने अपने सुप्रख्यात् काव्य-ग्रन्थ 'नव साहसांक चरित्र' में मुंजदेव की विद्वत्ता और गुण-ग्राहकता की प्रशंसा बड़ी ही मनोहर भाषा में की है। इस राजा का दरबार क्या था? वह भारतवर्ष के विद्वानों का एक मण्डल था। इस राजा के आश्रय में बड़े २ कवियों और विद्वानों का विकास हुआ। इसके लिखे हुए जो ग्रन्थ मिलते हैं उन से मुंजदेव की विद्वत्ता और गुण-ग्राहकता का स्पष्ट परिचय मिलता है। अधिक क्या कहें, यह विद्व-प्रिय और सरस्वती-सेवक राजा सरस्वती कल्प-लता का आधार माना जाता था। इसी से मुंजराज की मृत्यु पर एक कवि के हृदय से अपने आप ये उद्गार निकल पड़े थे—"गते मुञ्जे यशः पुञ्जे निरालम्बा सरस्वती"। मुञ्जराज के समय में पद्मगुप्त, धनपाल, शोभन, धनंजय, भट्ट हलायुद, अमित गति आदि बड़े २ कवि और विद्वान् हो गये हैं।

मुंजराज ने विद्वानों को आश्रय देकर भारतीय संस्कृति और सभ्यता के विकास करने का जैसा प्रशंसनीय कार्य किया था, वैसे ही उन्होंने कला-कौशल की वृद्धि को भी बड़ा प्रोत्साहन प्रदान किया था। उन्होंने कई सुन्दर और मनोहर महल आदि बनवाकर कुशल कारीगरों का उत्साह बढ़ाया था। उन्होंने कई सरोवर, कुण्ड, घाट और धर्मशालाएँ आदि लोक-हितकारी कार्यों में अपने द्रव्य का सद्व्यय किया था। यह महान् पराक्रमी, विद्या-प्रेमी, और प्रजा-हित-चिन्तक राजा केवल २५ वर्ष राज्य कर अन्त में शोचनीय दशा को प्राप्त हुआ।

सिन्धुराज

मुञ्जदेव को कोई पुत्र न था इसलिये उनके छोटे भाई सिन्धुराज राज-सिंहासन पर बैठे। मुंजदेव की यह इच्छा थी कि उनका भतीजा और सिन्धुराज का पुत्र भोजदेव राज्य-सिंहासन का अधिकारी हो, पर भोजदेव की उम्र कम होने से सिन्धुराज ही गद्दी पर बैठे। कहने की आवश्यकता नहीं की सिन्धुराज भी बड़े पराक्रमी और वीर थे। इनके समय में परमार राज्य का सितारा खूब चमका। उसका विस्तार भी बढ़ा। उनकी प्रायः आसपास के राजाओं से हमेशा लड़ाई होती रही। प्राचीन ग्रन्थों में लिखा है कि, हूणों के साथ भी इनके अनेक युद्ध हुए। इनके समय में परमारों का राज्य दक्षिण में केरल और कोकण तक तथा उत्तर में दूर २ तक फैला हुआ था। पश्चिम में गुजराज के कुछ मुल्कों पर भी इनका अधिकार था। मुंजराज की तरह इन्होंने भी कई विद्वानों और कवियों को आश्रय दिया था।

सिन्धुराज का देहान्त कब और कैसे हुआ इस बात का पता अभी तक ठीक २ नहीं चला है। परमारों के शिला-लेखों, दान-पत्रों तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों में इसका कुछ भी उल्लेख नहीं है। सुप्रख्यात जैन-साधु जयसिंह सूरि ने अपने 'कुमारपाल चरित्र' में गुजराज के सोलंकी राजा चामुण्डराय के वृत्तान्त में लिखा है:—"चामुण्डा के वर से प्रबल हो कर चामुण्डराय ने मन्दोन्मत्त हाथी के समान सिन्धुराज को युद्ध में मारा।" बड़नगर से प्राप्त सोलंकी राजा कुमारपाल की प्रशस्ति में भी—जो विक्रम संवत् १२०८ आश्विन शुक्ला ५ मी की है—चामुण्डराय के द्वारा सिन्धुराज के मारे जाने का उल्लेख है। सुप्रख्यात् पुरातत्वविद् राय बहादुर गौरीशंकरजी ओझा ने उपरोक्त घटनाओं को असत्य सिद्ध किया है और अनेक प्रमाण देकर उन्होंने सिन्धुराज की मृत्यु का समय ई० सन् ९९३ और ९९७ के बीच में निश्चित किया है।
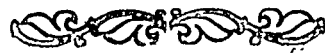
भोजदेव

महाराज सिन्धुराज के बाद भोजदेव राज्य-सिंहासन पर बिराजे। परमार वंश के ये सब से महान् नृपति थे। उदयपुर के शिला-लेख में पाया जाता है कि इन्होंने कैलाश से लगाकर मलय पर्वत (दक्षिण) तक के सब देशों पर राज्य किया। इनके समुज्वल यश की पताका आज भी बड़े जोरों से उड़ रही है। मानव-जाति की संस्कृति और ज्ञान के इतिहास में महाराजा भोज का आसन बहुत ऊँचा है। भारतवर्ष के इतिहास में महाराजा विक्रमादित्य की तरह महाराज भोज का नाम भी अमर रहेगा। लोग बड़े आदर के साथ इनका स्मरण करेंगे। जिस समय महाराजा भोज का जन्म हुआ था उस समय इनके पिता सिन्धुराज कैद में थे। इनकी माता रत्नवती मुंजराज के महल में निवास करती थी। मुंज को कोई सन्तान नहीं थी इससे भोज के जन्म पर उनको बड़ी खुशी हुई। उन्होंने खूब आनन्दोत्सव मनाया। पर इस के पश्चात् एक ज्योतिषी ने मुंजदेव से कहा कि भोज तुम्हारे नाश का कारण होगा। इसे सुनकर मुंजदेव भयभीत हुए। उन्होंने अपने पास से भोजदेव को हटाने की आज्ञा दी। इसके कुछ ही समय पश्चात् एक दूसरे ज्योतिषी ने आकर मुंज से कहा:—

पंचाशत्पंच वर्षाणि सप्त मासं दिन त्रयम्।
भोजराजेन भोक्तव्यः सगौड़ो दक्षिणा पथः॥

अर्थात् ५५ वर्ष ७ मास और तीन दिन तक गौड़ और दक्षिण देश पर भोजराजा का राज्य रहेगा।

ज्योतिषी के मुंह से उपरोक्त श्लोक सुनते ही मुंजराज ने अपना पहले का हुक्म रद्द कर भोज को फिर से अपने पास बुला लिया। इसके बाद विद्वान

मुंजराज ने भोजराज की शिक्षा का उचित प्रबंध किया। अपनी कुशाग्र बुद्धि और अपूर्व स्मरण-शक्ति के कारण भोजराज कुछ ही दिनों में चमकने लगे। उनका प्रताप इतना छा गया कि वे चक्रवर्ती महाराजा भोज गिने जाने लगे। इस प्रकार कुछ दिन तक तो मुंजराज और भोजराज में परस्पर प्रेम भाव बना रहा परन्तु आगे चलकर किसी कारण वश उन दोनों में फिर अनबन हो गई। अब की बार मुंजराज ने भोजराज को मार डालना ही उचित समझा। इसके लिये उन्होंने वत्सराज नामक एक व्यक्ति से भोज को जंगल में ले जाने के लिये कहा। राजाज्ञा को शिरोधार्य कर वत्सराज, भोज को मार डालने के लिये जंगल में ले गया। इस समय भोज ने वत्सराज से कहा कि "मेरा एक अन्तिम अनुरोध है और वह यह है कि मैं एक कविता लिख देता हूँ उसे पहले तुम मुञ्जराज के पास पहुँचा दो और फिर मुझे मारो" यह बात जब वत्सराज ने स्वीकार की तो भोजराज ने निम्नलिखित कविता लिख कर उसको दी—

मान्धाता स महीपतिः कृत युगालंकार भूतोगतः।
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः॥
अन्येचापि युधिष्ठिर प्रभृतयो याता दिवं भूपते।
नैकेनापि समंगता वसुमति नूनं त्वया यास्यति।

अर्थात् महाराजा मान्धाता—जो कि कलयुग के अलंकार थे—चले गये हैं। महाराजा रामचन्द्र—जिन्होंने समुद्र पर पुल बाँधकर दश सिर वाले रावण को मारा था—इस दुनिया में नहीं हैं। युधिष्ठिर के समान महान् पराक्रमी राजा भी स्वर्ग को सिधार गये हैं लेकिन यह पृथ्वी किसी के भी साथ नहीं गई। हे मुंज, मालूम होता है इस कलिकाल में यह पृथ्वी तुम्हारे साथ अवश्य जायगी।

इस विद्वत्तापूर्ण श्लोक का आशय मुंजदेव समझ गये और उन्होंने भोजराज को पुनः वापस बुला लिया।

यह तो हुई दन्त-कथा। अब हम इतिहास की ओर झुकते हैं। राज्य-

सिंहासन पर बैठते समय राजा भोज की उम्र केवल १५ वर्ष की थी। जिस समय महाराज भोज राज्य-सिंहासन पर विराजे वह समय भारतवर्ष के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण और क्रान्तिकारक था। इसी समय भारतवर्ष पर मुहम्मद गजनी ने चढ़ाइयाँ कर मथुरा, सोमनाथ, और कलंजर आदि स्थानों पर अधिकार किया था। दूसरे शब्दों में यों कह लीजिये कि इस समय भारतवर्ष से राजनैतिक आकाश में काले बादल मंडराने लग गये थे और चारों ओर अशान्ति सी छा गई थी।

इतना ही नहीं उस समय भारतीय राजा महाराजा एक गुट्ट होकर अपने सर्व सामान्य शत्रु (Comman enemy) का मुकाबला करने के बजाय आपस ही में लड़ झगड़ रहे थे। अगर वे एक दिल होकर अपनी शक्तियों को मुसलमान-आक्रमणकारी के मुकाबले में लगा देते तो आज भारतवर्ष के इतिहास का रूप दूसरा ही नज़र आता।

कहने की कोई आवश्यकता नहीं कि भोजराज को भी कई परिस्थितियों के फेर में पड़कर कितने ही भारतीय-नरेशों के साथ लड़ना पड़ा था।

हम पहले ही कह चुके हैं कि, दक्षिण के चालुक्यवंशीय राजाओं के साथ परमार राजाओं की हमेशा छनती रहती थी। वे एक दूसरे पर वार करने ही में हमेशा लगे रहते थे। मुंजराज ने इन चालुक्य-राजाओं को कितनी ही बार पराजय दी थी पर अन्तिम बार की लड़ाई में मुंजराज हार गये। उसी समय वे शत्रु के हाथ कैद हुए और बुरी तरह मार डाले गये। इस बात से चालुक्य और परमार-राजवंश में स्वाभाविक बैर हो गया। सिन्धुराज भी चालुक्य-नरेश से अपने भाई की मृत्यु का बदला लेना चाहते थे। पर वे अपने मनोरथ में सफल न हो सके। महाराजा भोज के दिल में भी बदला लेने की आग सुलग रही थी। उन्होंने इसके लिये ज़बरदस्त सैनिक तैयारी कर चालुक्य-नरेश पर चढ़ाई कर दी। इस समय चालुक्य की राजगद्दी पर विक्रमादित्य (पंचम) था। वह महाराज भोज के सामने टिक न सका; उसकी पूर्ण पराजय हुई। वह कैद कर मार डाला गया। इसके कुछ दिन बाद तक इन दोनों राज्य

वंशों में छनती रही। विक्रमादित्य के बाद चालुक्य की राजगद्दी पर क्रमशः जयसिंह और सोमेश्वर बैठे। इनके और भोजदेव के बीच में कई छोटी बड़ी लड़ाईयाँ हुई। इन लड़ाईयों में कभी एक पक्ष की तो कभी दूसरे पक्ष की विजय होती थी। परन्तु कहा जाता है कि पीछे जाकर सोमेश्वर के समय में इन दोनों राज-वंशों में मैत्री हो गई।

त्रिपुरी के कलचुरी अथवा चेदि-वंश के राजाओं से भी परमारों की नहीं बनती थी। इन दोनों राजघरानों में भी एक मुद्दत से विरोध चला आता था। इस समय त्रिपुरी की राजगद्दी पर चेदिराज गांगेयदेव अधिष्ठित था। यह बड़ा महत्वाकांक्षी था। इसने विक्रमादित्य का वैभव सूचक नाम धारण किया था। यह महाराजा भोज और आस-पास के राजा-महाराजाओं को बड़ी तकलीफ़ दिया करता था। अन्त में महाराजा भोज और इसके बीच में एक घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में विजय की माला भोजदेव के ही गले में पड़ी। चेदिराज ने पूर्णतया घुटने टेक दिये। वह बड़ा विनम्र होकर महाराज भोजदेव की शरण आया। इसके बाद कुछ दिनों तक फिर इन दोनों राजवंशों में मेल रहा। गांगेयदेव के पश्चात् कर्णदेव त्रिपुरी की गद्दी पर बैठा। यह गांगेयदेव से अधिक पराक्रमी, कीर्तिवान और बलवान था। शुरू २ में तो इसके और महाराज भोज के बीच में मैत्री रही यहाँ तक कि एक समय तो महाराज भोज ने कर्णदेव को एक सुवर्ण-निर्मित पालकी भी प्रदान की थी। पर यह सुसंबंध अधिक दिन तक स्थायी न रह सका।

गुजरात के अनहिल पट्टण के चालुक्यवंशीय राजा परमारों के पुश्तैनी शत्रु थे। हाँ बीच २ में इनमें अस्थाई मैत्री भी हो जाया करती थी। इस समय चालुक्य की राजगद्दी पर भीमदेव (प्रथम) आसीन था। एक समय यह राजा सिंध-देश पर चढ़ाई करने गया हुआ था कि महाराज भोजदेव ने अपने जैन मंत्री कुलचन्द्र को अपनी फौज के साथ गुजरात पर भेजा। इसने चालुक्य राजधानी पट्टण पर हमला करके उसे लूट लिया और अनहिलवाड़ के अधिकारी से विजय-पत्र लिखवा लिया।

जब यह समाचार भीमदेव ने सुना तो वह क्रोध में आग बबूला हो गया। वह भोजदेव से बदला लेने की तरकीबें सोचने लगा। उसने चेदिराज से मिलकर महाराजा भोज पर संयुक्त चढ़ाई करने का षडयंत्र रचा। कर्नाटक का राजा भी महाराजा भोज के खिलाफ़ इनसे आ मिला। बस, फिर क्या था। ई० स० १०५५ के लगभग इन तीनों ने तीनों बाजुओं से महाराज भोज की राजधानी पर चढ़ाई की। इस समय महाराज भोज अस्वस्थ थे। इसके अतिरिक्त अन्तर्कलह से भी वे हैरान थे। इससे इस लड़ाई में महाराज भोजदेव की पराजय हुई। इसके कुछ ही दिन बाद अद्वितीय विद्या-प्रेमी महाराज भोजदेव ने अपनी इहलोक-यात्रा संवरण की। आपकी मृत्यु हो जाने से सारा मालव-साम्राज्य घोर अंधकार में लीन हो गया।

महाराजा भोज बड़े विद्या-प्रेमी, पराक्रमी, वीर, और सरस्वती-सेवक थे। केवल भारतवर्ष के इतिहास ही में नहीं वरन संसार के इतिहास में भी महाराजा भोज जैसे दिव्य नृपति का उदाहरण मिलना मुश्किल है।

प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में महाराजा भोज को "त्रिविध वीर चूड़ामणि" के महापद से सम्बोधित किया गया है। इसका अर्थ यह है कि वे रणवीर, विद्यावीर, और दानवीरों के शिरोमणि थे। अनेक संस्कृत कवियों और पंडितों को आश्रय देने के लिये महाराजा मुंज की बड़ी ख्याति थी, पर भोजदेव तो इस सम्बंध में उनसे भी बढ़कर थे। उनके समय में मालवा में विद्या का जैसा प्रचार था वह एक दम अद्वितीय था। उनकी सभा में १४०० पंडित थे। बहुत से ग्रन्थकारों ने महाराज भोजदेव की विद्वत्ता, उदारता तथा गुणज्ञता के विषय में बड़ी प्रशंसा की है। भोजदेव के समकालीन पण्डित अलबेरूनी (यह महम्मद गजनी का कवि था) ने अपने ग्रन्थ में महाराज भोजदेव की बड़ी प्रशंसा की है। महाराज भोज कवियों और विद्वानों के प्रति जिस प्रशंसनीय उदारता का परिचय देते थे, उसके विषय में एक संस्कृत कवि ने कहा है:—

"यद्विद्वद्भवनेषु भोज नृपते स्तत्याग लीलायितम्।"

अर्थात् महाराजा भोज के आश्रित विद्वानों के यहाँ जो कुछ द्रव्य,

ऐश्वर्य दिखलाई देता है वह सब भोजदेव की दानलीला ही का फल है। इस पर से भोजदेव की असाधारण दानशीलता, महान् उदारता एवम् अगाध विद्या-प्रेम का परिचय मिलता है।

भोजदेव बड़े विद्वान और ग्रन्थकार भी थे। उन्होंने कई भिन्न २ विषयों पर अनेक गम्भीर और अन्वेषणात्मक ग्रन्थ लिखे हैं। इन ग्रन्थों का विद्वानों में बड़ा सम्मान है। महाराज भोज द्वारा लिखित निम्नांकित ग्रन्थ वर्तमान में उपलब्ध हैं—

(१) ज्योतिष-शास्त्र—'राज मृगांक करण' 'राजमार्तण्ड' 'विद्वज्जन-वल्लभ-प्रश्न ज्ञान' और आदित्य-प्रताप सिद्धान्त।

(२) अलंकार-शास्त्र—'सरस्वती कंठाभरण'।

(३) योग-शास्त्र—'राज्य-मार्तण्ड' नामक पातंजली प्रणीत योग-सूत्र की विद्वन्मान्य टीका।

(४) धर्म-शास्त्र—'पूर्त-मार्तण्ड' 'दण्डनीति', 'व्यवहार समुच्चय' और चारु चर्य्या'।

(५) शिल्प-शास्त्र—'समरांगण सुत्रधार' व 'युक्ति कल्पतरु'।

(६) काव्य—'चम्पू रामायण काण्ड' 'महाकाली विजय' 'विद्या-विनोद' और 'शृंगार-मंजरी' आदि।

इसके अतिरिक्त प्राकृत भाषा में भी आपने बहुत से काव्यों की रचना की है। कोई १५ या १६ वर्ष पहले धार की भोज-शाला में शीला पर कोरे हुए कई काव्य मिले थे। इनमें एक दो तो पूर्ण हैं और शेष सब खण्डित हैं।

(७) व्याकरण—इस विषय पर श्रीमहाराज भोज ने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं।

(८) वैद्यक—'विश्रान्त विद्या-विनोद' और 'आयुर्वेद सर्वस्व'।

(९) संस्कृत कोष—'नाम माला'।

(१०) इन ग्रन्थों के अतिरिक्त शालिहोत्र, शब्दानुशासन, सिद्धान्त संग्रह आदि कई ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

जर्मन पंडित आऊफ्रेक्ट (Aufrect) ने अपनी संस्कृत ग्रन्थों की सूची में भोजदेव कृत २३ ग्रन्थों के नाम दिए हैं। पाश्चात्य पंडित भोजदेव को 'भारतीय आगस्टस' के नाम से संबोधित करते हैं।

जयसिंह

महाराजा भोज के बाद जयसिंह गद्दी पर बैठे। नागपुर आदि की प्रशस्तियों में भोज के उत्तराधिकारी का नाम उदयादित्य लिखा है पर हाल ही में ई० सन् १०५५ का लिखा हुआ जो दानपत्र मिला है, उससे स्पष्टतया प्रगट होता है कि जयसिंह ही भोज के उत्तराधिकारी हुए। ये जय-सिंह सिर्फ चार ही साल तक (ई० सन् १०५५–५९) राज्य कर सके। इन्होंने धारा-नगरी में 'कैलाश' नामक एक महल बनवाया था। इसके सिवाय जयसिंह ने अपने राज्यकाल में कोई विशेष उल्लेखनीय कार्य नहीं किये।

महाराज उदयादित्य

(१०६०–१०८१)

इनके पश्चात् महाराजा उदयादित्य राज्य-सिंहासन पर विराजे। महाराजा भोज की मृत्यु के समय मालवे की हीन दशा होगई थी उसको आपने फिर से सुधारा। फिर यहाँ की प्रजा सुखी और समृद्धिशालिनी हुई। आपने साँभर के चौहान राजा दुर्लभ (तृतीय) की सहायता से गुजरात के राजा कर्ण पर विजय प्राप्त की थी। सरस्वती के भी आप सच्चे सेवक थे। आपने अपने

पुत्रों को भी विद्या-व्यसनी बना दिया। आपके पुत्रों के नाम क्रमशः लक्ष्मीदेव और नरवर्म देव था। आपकी मृत्यु के पश्चात क्रमशः इन दोनों ने ही राज्य किया। महाराज उदयादित्य के एक पुत्री भी थी, जिसका शुभ विवाह मेवाड़ नरेश विजयसिंहजी के साथ हुआ था। आपने अपने नाम से उदयपुर नामक एक नगर बसाया था। यह नगर इस समय गवालियर रियासत में है। इस नगर में आपने एक शिवालय बनवाया था जो कि अभीतक विद्यमान है। इस शिवालय में से जो प्रशस्तियाँ मिली हैं उनसे मालूम होता है कि यह मन्दिर वि० स० ११११६ में बनने लगा था और वि० स० ११३७ में बन-कर तैय्यार हुआ।
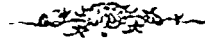
महाराज-लक्ष्मीदेव

(१०८१-११६४)

महाराज उदयादित्य के बाद उनके जेष्ठ पुत्र महाराज लक्ष्मीदेव राज्य सिंहासन पर आरुढ़ हुए। परमारों के पिछले ताम्र-पत्रों और शिला-लेखों में तो आपका बिलकुल वर्णन नहीं है। परन्तु नागपुर की प्रशस्ति में आपका उल्लेख है। इस प्रशस्ति में आपकी गौड़, बंगाल, चेदि और सिलोन पर की गई चढ़ाईयों का सुन्दर वर्णन है। परन्तु इनमें से चेदि और तुरुष्कों पर की चढ़ाईयों के सिवा दूसरी घटनाओं के होने में संदेह है। इस सन्देह के कई कारणों में से एक यह भी है कि यह प्रशस्ति इनके भाई नरवर्म देव द्वारा लिखवाई गई थी।

नरवर्म देव

(११०४–११३३)

लक्ष्मीदेव के बाद नरवर्म देव राज्यासन पर विराजे। आप महाराज भोज के समान दानी, विद्वान, और विद्या–व्यसनी थे। आपकी बनाई हुई बहुत सी प्रशस्तियाँ मिली हैं। नागपुर में जो प्रशस्ति मिली है वह आप ही के द्वारा बनवाई गई थी। उज्जैन के महाकाल के मन्दिर में से जो प्रशस्ति का टुकड़ा मिला है वह भी आप ही का बनवाया हुआ मालूम होता है। इनके अतिरिक्त और भी कई शिला–लेख मिले हैं जो आपही के द्वारा बनवाये गये थे। आपने गौड़ और गुजरात देश पर चढ़ाइयाँ करके विजय प्राप्त की थी। आपका विवाह चेदिराज–कन्या मोमला देवी के साथ हुआ था। उससे आपको यशोवर्मा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।

यशोवर्म देव

(११३४ ११४४)

नरवर्म देव के बाद यही यशोवर्म देव राज्यासन पर बैठे। महाराज उदयादित्य ने जो सम्मान और ऐश्वर्य प्राप्त किया था वह इस समय लुप्तप्राय सा होगया। इस समय गुजरात का राजा सिद्धराज–जयसिंह बड़े जोरों पर था। उसने मालवे पर अपना अधिकार कर लिया।

एक समय सिद्धराज जयसिंह राज्य–कार्य का प्रबंध अपने मंत्री सान्तु को सौंपकर अपनी माता के साथ तीर्थ-यात्रा करने गये हुए थे। पीछे से यशोवर्म देव

ने उनके राज्य पर चढ़ाई कर दी। मंत्री सान्तु ने घबरा कर यशोवर्म देव से वापस लौट जाने की प्रार्थना की। इस यशोवर्म देव ने कहा कि अगर तुम जयसिंह जी की यात्रा का पुण्य मुझे दे दो तो मैं वापस लौट सकता हूँ। यह सुन उस मंत्री ने हाथ में जल लेकर जयसिंह जी की यात्रा का पुण्य यशोवर्म को दे दिया। यशोवर्म लौट आये। परन्तु जब सिद्धराज अपनी यात्रा समाप्त कर वापस घर लौटे तो वे इस कार्य के लिये अपने मंत्री पर बहुत क्रोधित हुए और उससे कहने लगे कि तुमने ऐसा क्यों किया। चतुर मंत्री सान्तु ने उत्तर दिया कि यदि मेरे कहने से आपका पुण्य लिया दिया जा सकता है तो मैं आपका वह पुण्य और साथ ही दूसरे महात्माओं का पुण्य भी आपको देता हूँ। मंत्री का यह बुद्धिमत्ता-पूर्ण उत्तर सुनकर जयसिंहजी को संतोष होगया। परन्तु बदला लेने की भयंकर अग्नि उनके हृदय में प्रज्वलित हो रही थी इसी लिये कुछ दिन बाद उन्होंने मालवे पर चढ़ाई कर ही तो दी। बहुत दिन तक लगातार युद्ध करते रहने पर भी वे शत्रुओं को पराजित नहीं कर सके। इससे निराश हो उन्होंने एक दिन प्रतिज्ञा कर ली कि "जब तक मैं इन पर विजय प्राप्त न कर लूंगा तब तक अन्न-जल ग्रहण न करूगा"। यह समाचार उनकी सेना में विद्युत्-वेग से फैल गया जिससे उस दिन उनके सैनिक बड़ी ही वीरता के साथ लड़े। बात की बात में ५०० परमार वीर धाराशायी कर दिये गये परन्तु फिर भी विजय-लक्ष्मी उनके हाथ न आई। निदान निराश होकर उन्होंने परमारों की धान की राजधानी बनाकर उसे तोड़ विजय श्री प्राप्त कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। मुंजाल नामक इनका एक मंत्री था। वह बड़ा चतुर था। उसने गुप्त सहायता प्राप्त करके हाथियों द्वारा राजधानी का दक्षिणी दरवाजा तुड़वा डाला। इससे सहज ही में जयसिंहजी ने परमारों की राजधानी पर आधिकार कर लिया। वे यशोवर्म को कैद करके अपनी राजधानी में ले गये। परन्तु अजमेर के चौहान राजा की कृपा से यशोवर्म देव शीघ्र ही मुक्त हो गये।

उपरोक्त कथा की कल्पना जैनियों द्वारा की गई मालूम होती है।

इसका कारण यह मालूम होता है कि हिन्दू-धर्म वालों को ऐसा विश्वास है कि एक का धर्म दूसरे को दिया जा सकता है और इसी विश्वास की हँसी इस कथा में उड़ाई गई है।

अब तक यशोवर्म देव के दो दान-पत्र मिले हैं। इनमें से एक में तो धनपाल नामक ब्राह्मण को बड़ौदा नामक गांव देने का ज़िक है और दूसरे में मोमला देवी की मृत्यु के समय संकल्प की हुई पृथ्वी के दान का वर्णन है। यशोवर्म के प्रधान मंत्री राजपुत्र श्री देवधर थे। यशोवर्म देव के बाद ऐसा मालूम होता था कि कुछ समय के लिये मालवे पर से परमारों का राज्य उठ सा गया है। इस समय मालवे की सत्ता गुजरात के चालुक्य राजा के हाथ में चली गई थी। यशोवर्म देव के बाद उनके दोनों पुत्र जयवर्म और अजयवर्म में आपस में फूट हो गई, जिससे परमार-वंश दो शाखाओं में विभक्त हो गया था। इनमें से जयवर्मा वाली शाखा का अधिकार तो भेलसा और नर्मदा नदी के बीच के प्रदेश पर था और अजयवर्मा वाली शाखा के अधिकार में धार और उसके आस-पास का प्रदेश था।

अजयवर्म (ई० सन् ११४४-११६०) के बाद क्रमशः विंधवर्म (ई० सन ११६०-११८०), सुभटवर्म (ई० सन ११८०-१२१०), और अर्जुन वर्म (१२१०-१२१६) मालवे के राज्य-सिंहासन पर आरूढ़ हुए। इनमें से विंधवर्म देव ने गुजरात के आधिपत्य से मुक्त होने का प्रयत्न किया। उन्होंने अपना बहुत सा प्रदेश पुनः प्राप्त कर लिया था तथापि गुजरात के आधिपत्य से वे पूर्णरूप से मुक्त नहीं हो सके थे। विंधवर्म विद्या के बड़े अनुरागी थे। बिल्हण नामक प्रसिद्ध कवि उनके मंत्री थे। आशाधर नामक एक जैन पंडित भी आपके आश्रम में रहते थे।

सुभटवर्म ने अनहिलवाड़े के राजा भीमदेव पर विजय प्राप्त की थी।

अर्जुनवर्म देव ने पाँवागढ़ नामक स्थान के नज़दीक गुजरात के तत्कालीन राजा जयसिंह को हराया था। 'पारिजात-मंजरी' नामक नाटक में इस युद्ध का पूरा २ वर्णन है। इस नाटक के रचयिता का नाम बाल-सरस्वती-

मदन है। अर्जुनवर्म देव ने अमरु शतक पर 'रसिक संजीवनी' नामक टीका बनाई थी। यह टीका काव्य-माला में छप चुकी है। 'प्रबंध-चिन्तामणी' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि भीमदेव (दूसरे) के राज्यकाल में अर्जुनवर्म देव ने गुजरात को बर्बाद किया था।
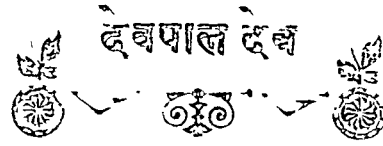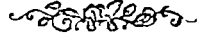
(१२१६-१२४०)

अर्जुनवर्म के बाद देवपाल देव राज्य के उत्तराधिकारी हुए। इनका दूसरा नाम साहसमल्ल भी था। इनके नाम के साथ निम्न विशेषण पाये जाते हैं—

"समस्त प्रशस्तोपेत समधिगत पञ्च महा शब्दालंकार विराजमान।" आपके समय में मालवे पर मुसलमानों के हमले होना शुरू हो गये थे। ई० सन् १२३२ में दिल्ली के बादशाह शमसुद्दीन अल्तमश ने ग्वालियर ले लिया और इसके तीन ही वर्ष बाद अर्थात् ई० सन् १२३५ में उसने भेलसा और उज्जैन पर चढ़ाई करके वहाँ के मन्दिरों और महलों को बरबाद किया। कहा जाता है कि इन्दौर से तीस मील उत्तर की ओर देपालपुर नामक ग्राम के पास राजा देवपाल ने एक विशाल तालाब बनवाया था।

देवपाल देव के बाद उनके पुत्र जयसिंह देव (द्वितीय) राज्य के उत्तराधिकारी हुए। इनके समय में कोई विशेष उल्लेखनीय घटना नहीं हुई।

जयवर्मा (द्वितीय)

(१२५६-१२६१)

इनके बाद इनके छोटे भाई जयवर्मा गद्दी पर बैठे। वि० सं० १३१४ का एक लेख मोड़ी नामक गाँव में मिला है। यह गाँव इन्दौर राज्य के रामपुरा भानपुरा नामक जिले में है। इस लेख में लिखा है कि माघ वदी प्रतिपदा के दिन जयवर्मा द्वारा निम्नलिखित दान दिये गये। परन्तु लेख खण्डित होने से इस बात का पता नहीं चलता कि क्या २ दान दिये गये थे। इन्हीं राजा का एक और ताम्रपत्र मान्धाता नामक ग्राम में मिला है। यह ताम्रपत्र अमरेश्वर-क्षेत्र में दिये हुए दान का सूचक है। इस पर परमारों की मुहर स्वरूप गरुड़ और सूर्य का चिन्ह है।

जयसिंह देव (तृतीय)

जयवर्म देव के बाद ई० सन १२६१ में राज्यगद्दी जयसिंहदेव (तृतीय) को मिली। इन्होंने मुसलमानों के हमलों से तंग आकर माडू को अपनी राजधानी बनाया। पृथ्वीधर नामक एक जैन महाजन आपके मंत्री थे। ये पृथ्वीधर पेथड़ कुमार के नाम से प्रसिद्ध थे। इनका राजा पर बड़ा प्रभाव था। इन मंत्री महाशय ने अपने पैसे से भिन्न २ स्थानों में कुल मिलाकर ८८ जैन मंदिर और धर्मशालाएँ बनवाई थीं।

भोजदेव (द्वितीय)

जयसिंहदेव के बाद भोजदेव (द्वितीय) ई० सन् १२८० में राज्यासन पर विराजे। ये भोजदेव बड़े पराक्रमी और कवियों तथा विद्वानों के पोषक थे। आपके राज्यकाल में रणथम्भोर के राजा हमीर ने धारा नगरी पर चढ़ाई की थी। आपने ई० सन् १३१० तक राज्य किया।

जयसिंह देव (चतुर्थ)

महाराज भोजदेव (द्वितीय) के बाद जयसिंह देव (चतुर्थ) राज्य के उत्तराधिकारी हुए। परमार राजाओं में आप अन्तिम राजा थे । आप ही के समय में मालवे पर मुसलमानों का अधिकार हुआ । यों तो भोजराज (द्वितीय) के ही समय में मालवे में मुसलमानों की सत्ता प्रबल होने लग गई थी । परन्तु आप के समय में तो मुसलमानों का अधिकार पूर्ण रूप से हो गया । 'तारीख फरिश्ता' में लिखा है कि "हिजरी सन ७०४ अर्थात ई० सन १३०५ में एक लाख चालीस हजार पैदल सेना लेकर कौक ने एनुलमुल्क का सामना किया परंतु वह टिक न सका। इसलिये शीघ्र ही एनुलमुल्क ने उज्जैन, मांडु, धार और चन्देरी आदि स्थानों पर अपना अधिकार कर लिया ।" बस इसी समय से मालवे पर मुसलमानों की सत्ता स्थापित हो गई और धीरे २ मजबूत होती गई ।

'मिराते सिकंदरी' नामक ग्रन्थ को पढ़ने से मालूम होता है कि ई० सन् १३४४ के लगभग मालवे का इलाका महमद तुगलक ने हजीज हिमार नामक व्यक्ति के सुपुर्द कर दिया । इससे पता चलता है कि मुहम्मद तुगलक ही ने पहले पहल मालवे के परमार राज्य का अन्त किया ।

मालवे पर इस प्रकार मुसलमानों का अधिकार हो गया। यह देख तत्कालीन परमार-नरेश जयसिंह जी के वंशज मेवाड़ चले गये। वहाँ उन्हें बिजोलिया नामक इलाका जागीर में मिल गया ।

हिज हाइनेस महाराजा सर तुकोजीराव पँवार K. C. S. I. देवास (सीनियर)

देवास (सीनियर) का आधुनिक इतिहास

परम कीर्तिशाली परमार-वंश का ऐतिहासिक उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। कहा जाता है कि विक्रम संवत् के आविष्कर्ता चक्रवर्ती महाराजा विक्रमादित्य ने इसी गौरवशाली वंश को सुशोभित किया था। महाराजा मुंज, सुविख्यात विद्या-प्रेमी महाराजा भोज आदि अमरकीर्ति नृपतियों ने इसी वंश का गौरव बढ़ाया था। कहने की आवश्यकता नहीं कि साहित्य में, ललित-कलाओं के विकास में, सरस्वती-सेवा में और प्रजा के अति उच्च कल्याण में इस वंश ने जैसी ख्याति लाभ की है वैसी शायद ही संसार के किसी राज-वंश ने की होगी। एक समय इस वंश के दिव्य प्रकाश से सारा भारतवर्ष जगमगा रहा था। पर संसार में उदय के बाद अस्त होने का नियम सनातन काल से चला आ रहा है। जो आज उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर चढ़ा हुआ है, वही कल अवनति के गड्ढे में गिर सकता है। इस परिवर्तन-शील और अस्थिर संसार का इतिहास ऐसी घटनाओं से परिपूर्ण है। उत्थान के बाद पतन और पतन के बाद उत्थान का प्राकृतिक नियम इस परमार-वंश पर भी लागू हुआ। तेरहवीं सदी में गौरव के अत्युच्च शिखर पर चढ़ा हुआ परमार वंश पतन के अभिमुख हुआ। घटना-चक्र के परिवर्तन से विश्व-विख्यात् चक्रवर्ती महाराजा विक्रमादित्य और विद्वज्जनशिरोमणि महाराजा भोज के वंशजों को यवनों से परास्त हो कर इधर उधर जाना पड़ा। मालवा के अन्तिम परमार राजा के वंशज मेवाड़ चले गये। वहाँ उन्होंने बिजोलिया पर अधिकार कर लिया। जिन सज्जन ने बिजोलिया पर अधिकार कर लिया था, उनकी अपने भाई शम्भूसिंह के साथ नहीं बनी। इससे शम्भूसिंह अपने कुछ साथियों को लेकर वहाँ से चल दिये और दूसरे स्थान पर अपना राज्य स्थापित करने का विचार करने लगे। ई० स० १६२२ के लगभग इन्हें अपने कार्य में सफलता हुई। उन्होंने पूना और अहमदनगर के पास के बहुत से

प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया; पर ये अधिक दिनों तक राज्य न कर सके। क्योंकि पास ही के एक रईस ने इन्हें धोखा देकर मार डाला।

शंभूसिंह के नाबालिग पुत्र कृष्णाजी का महाराष्ट्र साम्राज्य के जनक छत्रपति शिवाजी के दरबार में किसी तरह प्रवेश हो गया। इन्होंने इन्हें अपने पिता का राज्य वापस दिया। बस इसी समय से इस घराने का संबंध महाराष्ट्र साम्राज्य के साथ हो गया। कृष्णाजी के बुवाजी, रायाजी और केरोजी नामक तीन पुत्र थे। इन्होंने महाराष्ट्र सेना में अपनी बहादुरी के कारण उच्च पद प्राप्त किये थे। बुवाजी "विश्वासराव" की उपाधि से विभूषित किये गये थे। यह उपाधि अब तक उनके वंशजों को प्राप्त है।

बुवाजी के कालुजी और सम्भाजी नामक दो पुत्र थे। इन्होंने कई महाराष्ट्र चढ़ाइयों में मार्के का भाग लिया था। कहने की आवश्यकता नहीं कि इनके समय में महाराष्ट्रीय सेना ने कई बार मालवे पर हमले किये थे। ई० स० १६९६ में ये लोग मालवा पहुँचे और इन्होंने अपने गौरवशाली पूर्वजों की भूमि पर फिर से अपना राज्य स्थापित किया।

महाराज तुकोजीराव
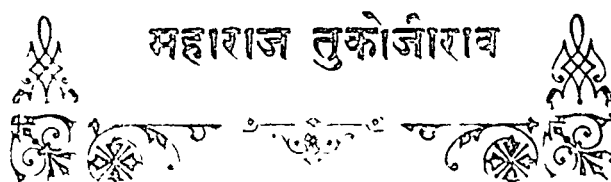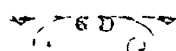
कालूजी के चार पुत्र थे, जिनका नाम क्रमशः कृष्णाजी, तुकोजी, जीवाजी और मानाजी था। कृष्णाजी और मानाजी तो दक्षिण में बस गये और तुकोजी तथा जीवाजी ने प्रबल पराक्रमी महाराष्ट्र सेना में प्रवेश किया। उपरोक्त तुकोजी देवास राज्य (सीनियर) के मूल जनक हैं। तुकोजी का जन्म कब हुआ, इसका ऐतिहासिक अनुसंधान अभी तक नहीं लगा है। पर ई० स० १७१९ में इन्होंने तिरला की लड़ाई में भाग लिया था। यह

लड़ाई मालव-विजय के लिये मराठे और बादशाही सूबेदार दयाबहादुर के बीच हुई थी। इसमें तुकोजी ने बड़े पराक्रम का परिचय दिया था। इन्होंने बड़ी बहादुरी के साथ हाथी पर बैठे हुए बादशाही सूबेदार दयाबहादुर का सिर उतार लिया था। इन सेवाओं के बदले में इन्हें बड़ा मान मिला था। इन्हें जरी पटका (A standard of gold lace) साथ रखने का तथा सेना सप्त सहस्री का उच्च-सम्मान प्राप्त हुआ था।

तत्कालीन महाराष्ट्रदल की गति-विधि में तुकोजीराव का खास हाथ था। प्रथम बाजीराव ने ई० स० १७४० की ५५ मई को अपने भाई चिमणाजी आप्पा को दिल्ली से जो चिट्ठी लिखी है उसमें तुकोजीराव के पराक्रम का विशेष रूप से उल्लेख है। मराठों ने पोर्चुगिजों से बेसिन छीनने में जो युद्ध किया था, उसमें तुकोजी ने अपनी अद्भुत वीरता का परिचय दिया था। ई० स० १७३९ में चिमणाजी अप्पा ने पेशवा को जो चिट्ठी लिखी थी, उसमें उन्होंने इनके अलौकिक वीरत्व की बड़ी सराहना की थी। ई० स० १७३८ में भोपाल में मराठों और निजाम-उल-मुल्क के बीच जो युद्ध हुआ था और जिसमें निजाम ने औंधे मुंह की खाई थी, उसमें तुकोजी ने अपनी तलवार के जौहर अच्छी तरह दिखलाये थे। तुकोजी ने ब्रह्मेन्द्र स्वामी को मुकाम गनेगांव से जो चिट्ठी लिखी थी, उसमें उन्होंने उन चढ़ाइयों का हाल लिखा है, जो उन्होंने मकसुदाबाद पर की थीं। इसी समय उन्होंने अपनी सारी सेना के साथ बनारस और गया की यात्रा भी की थी।

तुकोजी ने मराठों की कई चढ़ाइयों में वीरत्वपूर्ण भाग लिया था। पेशवा के साथ आपका घनिष्ठ सम्बन्ध था। राजा शाहू आपकी धर्म-पत्नी सावित्रा बाई को बहन की तरह मानते थे। इससे उन्होंने उन्हें बतौर चोली के गनेगांव में जागीर दी थी। अनेकों वीरोचित कार्य करने के बाद और महाराष्ट्र सम्राज्य के निर्माणकर्त्ता की सूची में अपना विशेष स्थान प्राप्त कर ई० स० १७५३ में तुकोजी मारवाड़ के एक युद्ध में मारे गये। आपके भाई जीवाजी ने पुष्कर में आपकी अन्तिम क्रिया समाप्त की।

महाराज कृष्णाजीराव

तुकोजी के बाद उनके भाई के पौत्र कृष्णाजी राव उनके उत्तराधिकारी हुए। उन्हें तुकोजीराव की रानी सावित्री बाई ने गोद लिया था। नाबालिग होने से कृष्णाजीराव अपने पिता के कुटुम्ब के पास सुपा में रहने लगे और सावित्री बाई गनेगांव से राज्य का कारोबार देखने लगीं। पर यह व्यवस्था सफलीभूत नहीं हुई। कुछ समय पश्चात् बालिग हो जाने पर कृष्णाजीराव ने शासन-सूत्र अपने हाथ में लिया। आप जनकोजी सिन्धिया के साथ बहुत रहते थे। पानीपत के युद्ध में भी आप मौजूद थे।

ई० स० १७२२ में माधवराव की मृत्यु हो जाने पर कृष्णाजीराव उस दल में दाखिल हुए जिसके मुखिया सरदार सुविख्यात् महादजी सिंधिया थे। महादजी सिंधिया और कृष्णाजी ने मिलकर दिल्ली के तत्कालीन मुगल सम्राट् को मराठों की ओर से बारह वर्ष तक कैद रक्खा था। इस कार्य के लिये कृष्णाजीराव को १२ वर्ष तक मथुरा में रहना पड़ा था।

ई० स० १७२२ में कृष्णाजी ने अपने छोटे भाई के पुत्र विट्ठलराव को गोद लिया। ये विट्ठलराव पीछे जाकर द्वितीय तुकोजीराव के नाम से राज्यासीन हुए। कृष्णाजीराव ने देवास में एक महल बनवाया। गंगा बावली और कई मन्दिर भी आपके बनवाये हुए हैं।

जब उत्तरीय भारत में सिंधिया के साथ रहते हुए कृष्णाजीराव बीमार पड़ गये थे और उन्हें पूने की यात्रा करना कठिन जान पड़ रहा था, तब उन्होंने अपने दत्तक पुत्र तुकोजी राव को गद्दीनशीनी के लिये नाना फड़नवीस को लिखा था। इस संबंध में उन्होंने महादजी सिंधिया और अहल्याबाई होलकर की भी सहायता प्राप्त की थी। इन महानुभावों ने इस

सबंध में पेशवा को लिखा था। ई० स० १७८९ में बरहानपुर मुकाम पर इनका शरीरान्त होगया।

ई० स० १७८९ की १३ जुलाई को सिंधिया ने पेशवा को एक चिट्ठी लिखकर यह दर्शाया था कि तुकोजी राव द्वितीय के पिता कृष्णाजी राव ने महाराष्ट्र साम्राज्य की बड़ी सेवा की है। अतएव उनके दत्तक पुत्र के अधिकारों को रक्षित रखना आवश्यक है। इसका बड़ा असर पड़ा और तुकोजी राव द्वितीय राजा होगये। माधवराव पेशवा ने उन्हें खिलअत भेंट करते हुए कृष्णाजीराव का उत्तराधिकारी स्वीकार किया।
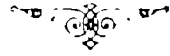
महाराजा तुकोजीराव (द्वितीय)

कृष्णाजी की मृत्यु के बाद द्वितीय तुकोजी राज सिंहासन पर बैठे।

इस समय धार और देवास जूनियर के राजाओं ने अपने एजंट भेज कर पेशवा से यह निवेदन करवाया कि तुकोजी का दत्तक-विधान नियमानुसार नहीं हुआ है, अतएव ये कृष्णजी के उत्तराधिकारी नहीं हो सकते। इस समय महादजी सिंधिया और अहल्याबाई होलकर ने द्वितीय तुकोजी राव की बड़ी सहायता की थी।

नारायणराव पेशवा की मृत्यु के बाद ई० स० १७७३ में भारतवर्ष में जो अव्यवस्था—गड़बड़—शुरू हुई थी और जिसका दौरदौरा ई० स० १८१८ तक रहा, उस समय देवास राज्य का बहुतसा मुल्क हाथ से चला गया।

होल्कर और सिंधिया के साथ की लड़ाई में पेशवा ने द्वितीय तुकोजीराव पँवार को जनरल वेलस्ली की सहायता करने के लिये भेजा। यही पहला अवसर था कि द्वितीय तुकोजीराव पँवार का अंग्रेजों के साथ संबन्ध

हुआ। पिंडारी युद्ध में भी इन्होंने देश में अंग्रेजों की बड़ी सहायता की थी। ई० स० १८१८ में तत्कालीन एजंट टू दी गवर्नर जनरल ने एक पत्र लिख-कर इनकी प्रशंसा की थी। साथ ही यह भी लिखा था कि उक्त राज्य से गुजरते समय हरएक अंग्रेज अफ़सर पँवार राजा की इच्छा का पूरा २ खयाल रखे। क्योंकि ये मालवा के सर्वप्रथम राज-कुटुम्ब के हैं और अंग्रेजों के प्रति इनका बड़ा सद्भाव है।

ये अपने राज्य में बहुत सुधार करना चाहते थे। शासन को ये सुव्य वस्थित करने में लगे ही थे कि ई० स० १८२७ में इनका परलोक-वास होगया।

महाराज रुकमनगढ़राव

आपके बाद आपके पुत्र रुकमनढ़राव राज-सिंहासन पर विराजे। इस समय आपकी अवस्था केवल ९ वर्ष की थी। आपकी नाबा-लिग अवस्था में आपकी माता भवानीबाई साहिबा ने दीवान की सहायता से राज्यकार्य संचालित किया। आपके समय में राज्य का नया बन्दोबस्त (Settlement) हुआ। ई० स० १८२२ में रुकमनगढ़राव ने महाराजा सयाजीराव गायकवाड़ की पुत्री से विवाह किया था। पर इनसे इन्हें कोई सन्तान नहीं हुई।

रुकमनगढ़राव की माता भवानीबाई साहिबा का ई० स० १८३५ में परलोकवास होगया। आपमें प्रशंसनीय शासन-योग्यता थी। राज्य-कार्य की व्यवस्था में आपने अपने पूज्य पति का अनुसरण किया। आपकी मृत्यु के बाद तत्कालीन देवास नरेश और उनके दीवान गोविन्दराव आप्पा में वैम-नस्य होगया। गोविन्दराव देवास की दोनों शाखाओं के दीवान थे। इस

वैमनस्य का परिणाम यह हुआ कि वे देवास की (सीनियर) दीवानगिरी से हटा दिये गये। इसी समय देवास की दोनों शाखाओं में कुछ झगड़ा हो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि जूनियर शाखा के राजा हैबतराव बापू साहब ने सारंगपुर में अपनी राजधानी रखना स्वीकार किया, पर दोनों में मेल होजाने के कारण उक्त व्यवस्था छोड़नी पड़ी।

ई० स० १८१८ में देवास राज्य की बृटिश सरकार के साथ जो सन्धि हुई थी उसमें यह तय हुआ था कि देवास की दोनों शाखाओं के राजा बृटिश सरकार की सर्विस में ५० सवार और ५० पैदल सिपाही अपने २ खर्च से रक्खें। इस समय इस व्यवस्था के बदले में १४२४०) रुपया देना तय हुआ।

ई० स० १८५६ में राजा रुकमनगढ़ राव ने सुपा के माधवराव के तीसरे पुत्र बुवाजीराव को गोद लिया। इस दत्तक विधान को भारत सरकार ने स्वीकार कर लिया। इनके समय में अर्थात् सन् १८५७ में भारतवर्ष में जोर की विद्रोहाग्नि प्रज्वलित हुई। इस समय विद्रोहियों के हाथ से राज्य का बहुत कुछ नुकसान हुआ, पर महाराजा साहब ने अंग्रेजों की अच्छी सहायता की। बृटिश सरकार ने इसके बदले में खिलअत प्रदान की। ई० स० १८६० की २६ जुलाई को आपका बड़ोदे में स्वर्गवास हो गया।

महाराजा कृष्णाजीराव (द्वितीय)

आप के बाद आपके पुत्र बुवाजी राव, कृष्णाजीराव (द्वितीय) का नाम धारण कर राज्यसिंहासन पर विराजे। नाबालिग होने के कारण आपकी विधवा माता यमुनाबाई साहिबा, जो राज्य की रेजिडेन्ट नियुक्त की गई थीं, राज्यकार्य देखने लगीं। आपने सात वर्ष तक बड़ी अच्छी

तरह राज्य किया। महाराजा कृष्णाजीराव ने गवालियर के महाराजा जयाजी-राव की पुत्री के साथ विवाह किया था। इस समय गवालियर नरेश ने आप को ४ लाख का दहेज दिया था। गवालियर में यह विवाह बड़े धूमधाम के साथ हुआ था। ई० स० १८६७ में आपको पूर्ण राज्याधिकार प्राप्त हुए। आपने राज्य में सब से प्रथम रेग्युलर कोर्ट स्थापित किए। ई० स० १८७२ में लार्ड नार्थब्रूक ने बड़वाह में जो दरबार किया था उसमें आप पधारे थे। आपके समय में राज्य में कई मार्के के सुधार हुए। ई० स० १९०० में हृदय-क्रिया बंद हो जाने से अकस्मात् आपका देहावसान हो गया।
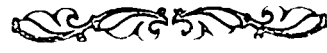
महाराजा तुकोजीराव (तृतीय)

आपके बाद आपके भतीजे देवास के वर्तमान महाराजा साहब सप्त-सहस्त्र सेनापति प्रतिनिधी सर श्री तुकोजीराव (तृतीय) राज्य-सिंहासन पर बिराजे। आपका जन्म ई० स० १८८८ में देवास में हुआ था। आपकी प्रारंभिक शिक्षा "विक्टोरिया हाई स्कूल" देवास में हुई। इसके बाद आप इन्दौर के डेली कालेज में दाखिल हुए। पश्चात् आप अजमेर के मेयो कालेज में शिक्षा प्राप्त करने लगे। आपने अपनी तीक्ष्ण बुद्धि से अध्या-पकों के हृदय में अच्छा प्रभाव जमा लिया था। आपने ई० स० १९०५ में मेयो कालेज में डिप्लोमा परीक्षा पास की। आपको कई पुरस्कार मिले। उस समय देवास के वर्तमान दीवान साहब दीवान बहादुर सरदार पंडित नारायण प्रसादजी आप के गार्जियन थे। आपने महाराजा साहब को योग्य शासक बनाने की ओर पूरा २ ध्यान दिया। श्रीमंत महाराजा साहब इस समय भी आप पर बड़ा सम्माननीय भाव रखते हैं। आप उनका गुरु के जैसा आदर करते हैं।

महाराजा साहब को न केवल स्कूली ही तालीम दी गई, पर शासन सम्बन्धी आवश्यक व्यवहारिक ज्ञान भी आपको करवाया गया।

विभिन्न मनुष्य-प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करने के लिये कई प्रकार के सांसारिक अनुभव प्राप्त करने के लिये—आपने बर्मा, सिलोन और हिन्दुस्थान के कई प्रान्तों की यात्रा की। आप इस समय कई ऐसे महानुभावों से मिले, जिन्होंने राजनैतिक सामाजिक, और व्यापारिक क्षेत्रों में विशेष ख्याति प्राप्त की है।

ई० स० १९०९ में श्रीमान को पूर्ण राज्याधिकार प्राप्त हुए। इसी समय से आपने राज्य के तमाम विभागों का सुधार करना शुरू किया। आपने राज्य के आय-व्यय को भी सुसंगठित किया।

श्रीमान इस समय से प्रजा की सुख-समृद्धि के लिये विशेष रूप से ध्यान देने लगे। आपने अपने राज्य का पैमाइश करवाई और नया बन्दोबस्त कायम किया। आपके समय में राज्य का आय भी बढ़ी। इस समय राज्य की आमदनी लगभग ७ लाख की है। इसके अतिरिक्त दो लाख की जागीरें दी हुई हैं।

ई० स० १९०९ में श्रीमान अपने दीवान महाशय तथा सेनापति सहित शिमला पधारे और वहाँ अपने मित्र मि० एम० एल० डार्लिंग के यहां १५ दिन तक ठहरे। मि० डार्लिंग ने आपका बड़ा आतिथ्य स्वीकार किया। इसी समय श्रीमान ने तत्कालीन वाईसराय लार्ड मिन्टो, पंजाब के लेफ्टिनेंट गवर्नर, वाइसराय की कौन्सिल के सदस्य आदि से मुलाकात की तथा उनसे अपना परिचय बढ़ाया।

ई० स० १९१४ में जब युरोप में महा-युद्ध की भीषण ज्वाला सुलग रही थी तब श्रीमान् ने बृटिश सरकार की सेवा में अपना सर्वस्व अर्पण करने की तत्परता दिखलाई। युद्ध के समय में श्रीमान् ने बृटिश सरकार को जो बहुमूल्य सहायता पहुँचाई थी उसकी साम्राज्य सरकार ने मुक्त-कंठ से प्रशंसा की है।

श्रीमान गत वर्ष से इन्दौर के डेली कालेज की मैनेजिंग कमेटी के मेम्बर

सभापति हैं। आप दो बार मराठा कान्फरेन्स के सभापति के आसन को भी सुशोभित कर चुके हैं।

ई० स० १९११ में श्रीमान् सम्राट् पंजम जार्ज के राज्यारोहण के समय दिल्ली में जो अभूतपूर्व दरबार हुआ था उसमें श्रीमान् पधारे थे। उसी समय श्रीमान् सम्राट् ने आपको के० सी० आई० ई० की उच्च उपाधि से विभूषित किया था।

देवास में शासन-सुधार

सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक महामति डार्विन साहब का कथन है कि बदलती हुई परिस्थिति के अनुकूल जो जीव अपने आपको बना लेते हैं वे ही चिरकाल तक अपने जीवन और अपनी सत्ता को कायम रख सकते हैं। जो जीव ऐसा करने में अपनी अक्षमता प्रगट करते हैं वे संसार में अल्पस्थायी रहते हैं। जीव-सृष्टि का (animal creation) यही नियम विभिन्न मानवीय संस्थाओं को (Human institutions) भी लागू होता है। शासन-संस्थाएँ भी इस नियम से बची हुई नहीं हैं। शासन में भी समयानुसार परिवर्तन करने की आवश्यकता होती है। क्योंकि शासन संस्था भी अन्य संस्थाओं की तरह प्रगतिशील (Progressive) है। और यही कारण है कि बुद्धिमान् राजकर्ता समयानुसार शासन-सुधार करने में सब के आगे पैर रखते हैं। हम देखते हैं कि देवास के सुयोग्य महाराजा साहब उनके प्रियबन्धु और उनके दूरदर्शी दीवान साहब ने इस तत्व को अच्छी तरह समझा है। हमें इस बात का दिग्दर्शन "Permanent Constitution of Dewas state" नामक पुस्तिका पढ़ने से होता है। आपने इस पुस्तिका में एकतन्त्रीय शासन के साथ २ प्रजा-सत्ता को भी स्वीकार किया है। इस पुस्तिका में आपने दिखलाया है कि इस समय शासन-कार्य में लोकमत को सम्मिलित करने की कितनी बड़ी आवश्यकता है। पुस्तिका के प्रथम पृष्ठ पर लिखा है "यह बड़ी ही अदूरदर्शी और अबुद्धिमत्तापूर्ण नीति होगी अगर तब तक ठहरा जायगा

जब तक कि लोग दरवाजे के किवाड़ खटखटा कर शासन में हिस्सा मांगने लगें। इससे यही अच्छा है कि शासन-कार्य में उनको क्रमशः सम्मिलित किया जाय। इससे बहुत सी भावी आफ़तें बच जावेंगी और प्रजा को अपनी उचित आकांक्षाओं की पूर्ति करने के साधन मिल जायंगे। अतएव सर्व साधारण के हित में और रियासत की मज़बूती के लिये लोगों को राज्य-कार्य में भाग दिया जाना चाहिये। हाँ, अंतिम अधिकार कुछ नियमित लोगों के हाथ में रहना चाहिये।" आगे चलकर आप ने इसी पुस्तिका में इस बात को स्वीकार किया है कि सुशासन के लिये उसमें राजनीति की आधुनिक कल्पनाओं के समावेश करने की कितनी बड़ी आवश्यकता है। और इसी के अनुसार महाराजा साहब ने नई स्कीम बनाई है।

इस नई स्कीम के अनुसार देवास का शासन निम्न विभागों में विभाजित किया गया है।

(१) शासक याने अधिपति (महाराज साहब) राज्य के सब अधिकार इनके हाथ में रहेंगे।

(२) लोक-सभा—यह लोक प्रतिनिधियों की राज्य भार सभा होगी।

(३) स्टेट कौन्सिल—यह सर्वोपरि कानून बनाने वाली और कार्यकारिणी (Legislative and Executive body) सभा होगी। इस कौन्सिल में भी प्रजा के प्रतिनिधियों का काफी हिस्सा रखा गया है। इसका संगठन निम्न प्रकार है:—

(१) इसमें महाराज संस्थान गूपा- जामगोड़ स्थायी सदस्य रहेंगे। (२) जागीरदार और सरदारों का चुना हुआ एक प्रतिनिधि भी इसमें रहेगा। (३) कानून बनानेवाली प्रतिनिधि सभा में कस्बों की तरफ़ से जो प्रतिनिधि रहेंगे उनकी ओर से भी एक सदस्य निर्वाचित होकर इसमें जायगा। हाँ, पर इस सदस्य का सुशिक्षित होना जरूरी है।

(५) वेतन भोगी अधिकारी वर्ग की ओर से महाराज द्वारा नामज़द किया हुआ एक सदस्य भी इसमें रहेगा।

(६) इसमें हाउस होल्ड आफिसर भी रहेंगे, जो महाराज द्वारा मनोनीत किये जावेंगे।

कोई भी नया कानून इसी कौन्सिल द्वारा निर्मित किया जायगा। जो काम किसी मेम्बर के अधिकार के बाहर का है वह फैसले के लिये कौन्सिल के सामने जायगा। कौन्सिल के प्रत्येक सदस्य को अपने कार्यक्षेत्र के संबंध में या उन लोगों के संबंध में, जिनका कि वह प्रतिनिधि है, कौन्सिल में प्रवेश करने का अधिकार होगा।

अगर महाराजा साहब किसी भी विचार से अपने राजघराने के किसी सदस्य को इसमें रखना चाहेंगे तो या तो वे उसे हाउस होल्ड मेम्बर बनाकर रख सकेंगे या उसे वेतनभोगी अधिकारियों की तरफ से नामज़द कर सकेंगे।

यह स्टेट कौन्सिल अपने कार्यों के लिये लोक प्रतिनिधि सभा और महाराजा साहब के सामने जिम्मेदार होगी।

लोक-प्रतिनिधि सभा

लोक-प्रतिनिधि सभा में निम्न लिखित सज्जन होंगे—

(१) महाराज संस्थान सूपा-जामगोड़ बशर्ते कि इनकी उम्र १८ साल की हो गई हो।

(२) महाराजा साहब या महाराज संस्थान सूपा-जामगोड़ के सब पुत्र गण जिनकी उम्र १८ वर्ष की हो।

(३) प्रथम श्रेणी के सब सरदार।

(४) द्वितीय श्रेणी के या साधारण श्रेणी के सरदारों द्वारा चुने हुए सदस्य।

(५) तृतीय श्रेणी के सरदार या खास २ इस्तमुरारदारों और जागीरदारों के चुने हुए सदस्य। इनमें से १० में से १ सज्जन रहेंगे।

(६) मानकारी, जागीरदार, इस्तमुरारदार, माफ़ीदार आदि द्वारा चुने हुए सदस्य। इनमें २० सज्जनों में से १ चुना जायगा।

(७) हाउस होल्ड मेम्बर, महाराजा साहब के चीफ सेक्रेटरी और सरकार के चीफ सेक्रेटरी भी इसके सदस्य रहेंगे।

(८) वेतन-भोगी सरकारी अफ़सरों की ओर से इसमें १२ सदस्य रहेंगे। इन्हें महाराजा साहब नामजद करेंगे।

(९) इसमें कसबे की ओर से भी प्रतिनिधि रहेंगे। तीन हज़ार लोगों के पीछे एक प्रतिनिधि रहेगा।

(१०) कसबों की तरह देहातों के भी इसमें प्रतिनिधि लिये जावेंगे। अन्तर केवल यही रहेगा कि जहाँ कसबों में तीन हज़ार लोगों के पीछे १ सदस्य रहेगा उसके स्थान पर यहां ६००० के पीछे एक।

(११) महाराजा साहब द्वारा मनोनीत चार सदस्य भी इसमें रहेंगे।

(१२) हर पांच वर्ष में इस प्रतिनिधि सभा का नया चुनाव होगा।

लोक-प्रतिनिधियों के चुनाव के नियम

सरदारों और जागीरदारों के चुनाव और 'वोट' देने वालों के लिये इस बात की आवश्यकता है कि चुने जाने वाले और वोट देने वाले दोनों व्यक्ति परिष्कृत मन के हों और वे १८ वर्ष से कम उम्र के न हों।

कस्बे में रहने वाले वे ही सज्जन वोट देने के एवम् चुनाव के अधिकारी हो सकते हैं, जिनकी उम्र २१ वर्ष की हो चुकी हो। जो (Sound-mind) गहरे विचारशील हों और जो या तो फाईनल परीक्षा पास हों या स्थायी जायदाद रखते हों या जिनके नाम पर खाता हो। स्त्री और पुरुष दोनों को चुनाव के लिये खड़े होने और वोट देने का अधिकार है।

जो सरकारी नौकर इस चुनाव के लिये खड़ा होना चाहेगा, उसे अपने पद का इस्तिफ़ा पेश करना होगा।

लोक-प्रतिनिधि सभा का महत्वपूर्ण अधिकार

गत पृष्ठों में हम स्टेट कौन्सिल और लोक-प्रतिनिधि सभा के संगठन के विषय में कुछ प्रकाश डाल चुके हैं। हम देखते हैं कि इस लोक-प्रतिनिधि सभा को कुछ ऐसे भी अधिकार प्राप्त हैं, जो बड़े महत्वपूर्ण हैं और जिनसे देवास के महाराजा साहब और उनके सुयोग्य दीवान साहब की उदार भावनाओं का दिग्दर्शन होता है। हम एक-आध ऐसे अधिकार का यहां उल्लेख करते हैं:—

अगर किसी मामले में श्रीमान् महाराजा साहब और स्टेट कौन्सिल का मत-भेद हो जाय, तो वह मामला लोक-प्रतिनिधि सभा के सामने रखा जायगा और वह $\frac{3}{4}$ बहुमत से जो फैसला करेगी, वह सबको मान्य करना होगा। अगर इतना बहुमत न होगा तो श्रीमान् महाराजा साहब के मतानुसार कार्य होगा।

राज्य की आमदनी में वृद्धि

हम पहले कह चुके हैं, कि जब से देवास के वर्तमान नरेश ने राज्य-शासन की डोर अपने हाथों में ली, तब से राज्य की बराबर उन्नति होती जा रही है। ईसवी सन् १९०८ के पहले अर्थात् महाराजा साहब को पूर्ण राज्याधिकार प्राप्त होने के पहले राज्य की आमदनी चार लाख से भी कम थी, वही बढ़कर अब नौ लाख तक पहुँच गई है। इसके अतिरिक्त राज्याधिकार प्राप्त करने के समय श्रीमान् ने अपनी प्रजा को एक लाख का बकाया भी माफ़ कर दिया था। रियासत के सर पर २५०००० का कर्ज था, वह भी अदा किया गया।

इसके अतिरिक्त श्रीमान् ने किसानों को भूमि स्वत्व-विक्रय कर दिया, जिससे उनका जमीन के प्रति स्वाभाविक लगाव हो जाय, और वे ज़मीन पर अच्छा परिश्रम कर उसे अधिक उपजाऊ बनाने का यत्न करें। मध्यभारत में

जहाँ तक हमारा खयाल है, वर्तमान देवास नरेश ही प्रथम हैं जिन्होंने इस अत्यन्त उपयोगी प्रथा का सूत्रपात किया। श्रीमान् के इस शुभ कृत्य से राज्य के किसान हृदय से आपके कृतज्ञ हैं।

श्रीमान् के शासन-काल में राज्य की सब ओर से उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। राज्य की लोकसंख्या में खासी वृद्धि हुई है। कई नई जीनिंग फेक्टरियाँ खुल गई हैं। घरू उद्योग धन्धे भी खूब तरकी कर रहे हैं। खेती की पैदावार में भी उन्नति हुई है।

ज्युडिशल पुलिस और फौजी विभागों में भी आवश्यक सुधार किये गये हैं। जरायम-पेशा जातियों को, जिनमें खास तौर से सांसी होते हैं, जमीन देकर उनसे चोरी डकैतियों के कुकर्म छुड़वा दिये हैं। इस वक्त वे राज्य में एक शान्ति-प्रिय जाति की तरह रहते हैं। श्रीमान महाराजा साहब के इस कार्य से राज्य में लूट खसोट नाम मात्र को न रही; और प्रजा का जान-माल अधिक सुरक्षित हो गया।

राज्य में शिक्षा का भी बढ़िया प्रबन्ध है। वहाँ प्रति मनुष्य के पीछे प्रति साल चार आना शिक्षा के लिये खर्च किये जाते हैं। वहाँ एक हाई स्कूल है जिसमें मेट्रिक्यूलेशन तक शिक्षा दी जाती है। राज्य में कई ए० व्ही० स्कूल और हिन्दी मराठी पाठशालाएँ भी हैं।

रोगियों की चिकित्सा का भी वहाँ समुचित प्रबन्ध है। हरएक जिले में अस्पताल या डिसपेन्सरी है। खास देवास शहर में एक बढ़िया अस्पताल है। श्रीमान् देवास नरेश ने तथा उनके सुयोग्य दीवान साहब ने शासन-कार्य्य में किस प्रकार प्रजा को हिस्सा दिया है, इसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। आपका ध्यान ग्राम पंचायतों की ओर भी आकर्षित हुआ है। सुयोग्य दीवान साहब राय बहादुर सरदार पण्डित नारायणप्रसाद जी ने २ जनवरी सन १९२२ को देवास का नया शासन सङ्गठन आरम्भ करते समय जो भाषण दिया था, उसमें आपने फरमाया था. "प्रतिनिधि शासन का सर्वोत्कृष्ट उपयोग ग्राम पञ्चायतों पर निर्भर है। इसके साथ साथ शिक्षाका—हो सके तो

अनिवार्य्य प्राथमिक देशी भाषाओं की शिक्षा का प्रचार आदि २ बातें प्रति-निधि-शासन की सफलता के जीवन हैं।"

इस प्रकार श्रीमान् देवास नरेश का और उनके सुयोग्य दीवान साहब के शासन सुधार सम्बन्धी जो विचार हैं वे उच्च श्रेणी के हैं। श्रीमान् की कृपा से देवास भारत की समुन्नत देशी रियासतों में गिना जाता है। अगर ईश्वर की कृपा हुई तो हम देवास को एक दिन इससे भी अधिक ऊँची श्रेणी में देखेंगे। क्योंकि उसके राज्यकर्ताओं की राज्य सम्बन्धी भावनाएँ दिव्य और ऊँची हैं।

धार राज्य का इतिहास

HISTORY OF THE DHAR STATE.

हिज लेट हाइनेस सर उदाजी राव पँवार बहादुर K. C. S. I, धार
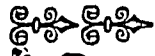
किसी गत अध्याय में हम परम पराक्रमी परमार-वंश के समुज्वल इतिहास का संक्षिप्त वर्णन कर चुके हैं। इस अध्याय में उन्हीं के वंशज धार के आधुनिक राजवंश के इतिहास का संक्षिप्त परिचय रहेगा। हम दिखला चुके हैं कि ९ वीं सदी से तेरहवीं शताब्दी के अन्त तक धार में प्रबल पराक्रमी परमार वंश का राज्य रहा। १३ वीं सदी में मुसलमानों के हमले शुरू हुए और १४ वीं शताब्दी के आरम्भ तक धीरे २ सारा मालव-प्रान्त परमारों के हाथ से निकल कर मुसलमानों के अधिकार में चला गया। परमार तितर बितर होकर इधर उधर चले गये। इनमें से एक दल ने बिजोलिया (मेवाड़) में जाकर अपना राज्य स्थापित किया। बिजोलिया में आपस में मत-भेद हो जाने के कारण इस दल के कुछ लोग दक्षिण में चले आये। यहाँ आकर उन्होंने दक्षिण के रीतिरिवाज इख्तियार कर लिये। इससे वे राजपूत से मराठे बन गये। १७ वीं सदी में साबूसिंह उर्फ शिवाजी या शंभाजी राव पवाँर अपनी अद्भुत कर्तबगारियों के कारण बड़ी नामवरी पर चढ़ गये। छत्रपति शिवाजी को इन्होंने अपने अनेक वीरोचित गुणों के कारण मुग्ध कर लिया। कहा जाता है कि ई० स० १६४६ में जब छत्रपति शिवाजी ने दक्षिण के तोरणा किले पर अधिकार कर वहाँ स्वराज्य का तोरण बाँधा था, ठीक उसी समय धार राज्य के मूल पुरुष साबूसिंह का उदय हुआ था। छत्रपति शिवाजी महाराज और साबूसिंहजी समानशील प्रकृति के थे। अतएव उनकी खूब

पट गई। छत्रपति महाराज शिवाजी ने इन्हें अपने आश्रय में रख लिया। इसके कुछ ही दिन बाद छत्रपति शिवाजी महाराज ने कल्याण का सूबा हस्तगत कर लिया। इस समय साबूसिंह ने जो अद्भुत वीरता और पराक्रम दिखलाया, महाराज शिवाजी के अन्तःकरण पर उसका बड़ा ही अच्छा प्रभाव पड़ा। इस समय शंभुसिंह ने आँबेगाँव की घाटी पर शत्रु के छक्के छुड़वा दिये थे। इस युद्ध में शंभुसिंह के हाथ में जख्म आया था। इसके बाद इन्होंने सूपा नामक गाँव में अपना मुकाम कायम किया और उस गाँव का नाम सुखाबाड़ी रखा। छत्रपति शिवाजी का आश्रय मिल जाने के कारण शंभुसिंह का उत्कर्ष दिन दूना और रात चौगुना बढ़ने लगा। यह बात सुपागाँव के पास के हुंगेगाँव के सरदार से नहीं देखी गई। वह शंभुसिंह से द्वेष करने लगा। इन दोनों में कितनी ही बार झटापटी हो गई। अन्त में एक रात को उक्त सरदार ने शंभुसिंह पर धोखे से वार कर दिया। जिससे उनका प्राणान्त हो गया।

जिस समय वीरवर शंभुसिंह शत्रु के हाथ से मारे गये उस समय उनको कृष्णजी नामक एक पाँच छः वर्ष का पुत्र था। शंभुसिंहजी के विश्वसनीय सेवकों ने उसे उसके ननिहाल पहुँचा दिया। जब वह १६ या १७ वर्ष का हुआ तब उसने एक दिन अपनी माता के मुख से अपने पिता के मारे जाने का सब हाल सुना। यह सुनकर वह आग बबूला हो गया। उसके रोम २ में क्रोधाग्नि प्रज्वलित होने लगी। वह अपने पिता के घातक से बदला लेने का विचार करने लगा। इसी उद्देश्य को लिये हुए वह छत्रपति महाराजा शिवाजी के पास पहुँचा। महाराज शिवाजी ने सब वृत्तान्त सुनकर उसे अपने आश्रय में रख लिया। इसके कुछ ही दिन बाद महाराजा शिवाजी ने उसे कुछ सरंजाम देकर सूपा याने सुखावाड़ी को भेज दिया। वहाँ उसने उक्त गाँव के लोगों को अपने अनुकूल कर अपना मुकाम कायम कर दिया। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि जिस सरदार ने शंभुसिंह को धोखे से मार डाला था वह इस समय जीवित नहीं था।

ई० स० १६५९ में महाराज शिवाजी ने अफ़ज़लखाँ के षड्यन्त्र से परिचित हो कर जिस प्रकार उसका वध किया, उसे इतिहास के पाठक जानते ही हैं। अफ़ज़लखाँ का लड़का फजलखाँ बीजापुर के मुसलमान बादशाह के यहाँ नौकर था। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि छत्रपति शिवाजी और बीजापुर के मुसलमान राजा के बीच में हमेशा छनती रहती थी। फजलखाँ शिवाजी से अपने बाप के वध का बदला लेना चाहता था, पर वह उस कार्य में सफल न हो सका। वीरवर कृष्णजी और पेशवा मोरोपन्त पिंगले ने पंढरपुर के पास फजल पर हमला कर उसे घेर लिया था। हमले में कृष्णाजी ने शत्रु के दाँत खट्टे कर अपने मालिक की सेवा की। महाराजा शिवाजी ने बीजापुर पर जो अनेक चढ़ाइयाँ कीं, उनमें कृष्णजी का बड़ा हाथ रहा था।

कृष्णाजी की मौजूदगी ही में उनका बड़ा पुत्र बुवाजी छत्रपति की सेना में दाखिल होकर अपने वीरत्व का परिचय देने लगा था। कृष्णजी और बुवाजी ये दोनों पिता-पुत्र छत्रपति के दरबार में नामाङ्कित सरदार माने जाते थे।

कृष्णजी के पीछे उनके तीन पुत्र बुवाजी, रायाजी और केरोजी वैभव के ऊँचे शिखर पर चढ़ गये थे। छत्रपति राजाराम महाराज के समय इन तीनों बन्धुओं ने मराठा-साम्राज्य के विस्तार में बड़ा काम किया था। इनके कार्यों से प्रसन्न होकर छत्रपति राजाराम महाराज ने इन्हें "विश्वासराव" और "सेना सप्त-सहस्री" की उच्च उपाधियों से विभूषित किया था। इन तीनों बन्धुओं के तीन घराने अबतक विद्यमान हैं। इनमें से बुवाजी के घराने का विस्तार खूब बढ़ा है। इसी सम्माननीय घराने से देवास और धार के राज्य-कुलों की उत्पत्ति हुई है।

बुवाजी को दो पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्र का नाम कालोजी और छोटे का नाम संभाजी था। संभाजी ने जिंजी के घेरे में बड़ा पराक्रम दिखलाया था इससे इनका दर्जा भी बढ़ गया था।

ई० स० १६९४ से १७०० तक मराठे सरदारों ने मालवा पर जो

चढ़ाइयाँ की थीं उनमें बुवाजी के बन्धु रायाजी और केरोजी तथा बुवाजी के पुत्र कालोजी और सम्भाजी ने बड़ा भाग लिया था। ई० स० १६९६ में परमार सरदारों ने मांडवगढ़ पर जो चढ़ाई की थी उसका उल्लेख देवास ग्याजेटियर में किया गया है। देवास राज्यान्तर्गत आलोट के ठाकुर ने देवास ग्याजेटियर के लिये जो कागज पत्र भेजे थे, उनमें कालोजी का मालवे पर चढ़ाई करने का उल्लेख है। रत्नसिंह चौधरी के पास के कागज-पत्रों में भी कालोजी का मालवे में आने का उल्लेख पाया जाता है। शाहू महाराज की डायरी से पता चलता है कि संभाजी पँवार ने भी मालवे पर चढ़ाइयाँ की थीं।

उदाजी राव

सम्भाजी को तीन पुत्र थे। (१) आनन्दराव (२) उदाजीराव, और (३) जगदेवराव। मराठी साम्राज्य के इतिहास में उदाजी राव ने ई० स० १६९८ से मालवा और गुजरात पर कई चढ़ाईयाँ कर वहाँ के कई स्थानों पर अपना अधिकार कर लिया। ई० स० १६९८ में इन्होंने माण्डवगढ़ में अपनी छावनी डाली थी।

इसके बाद भी मालवा पर जो अनेक चढ़ाइयाँ हुई उनमें उदाजी का हाथ रहा था, ऐसा कई इतिहास-वेत्ताओं का अनुमान है।

सुप्रख्यात् इतिहास-वेत्ता मालकम साहब ने लिखा है कि ई० स० १७०९ में उदाजी ने माण्डवगढ़ पर अपना पूर्ण अधिकार प्रस्थापित किया। यहां यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि मालव-राज्यधानी का सम्मान प्राप्त किये हुए माण्डवगड़ पर सब से पहले उदाजीराव ही ने मराठों का विजयी

झण्डा उड़ाया। यह बात मराठों और खास कर पँवारों के इतिहास में विशेष संस्मरणीय है।

ई० स० १७१८ में छत्रपति शाहू महाराज ने दिल्ली के सैय्यद बन्धुओं की सहायता के लिये बालाजी विश्वनाथ के साथ जो विशाल सेना भेजी थी उसके मुख्य सरदारों में से उदाजीराव भी एक थे।

ई० स० १७१९ में पूर्व गुजरात के कुछ स्थानों पर उदाजीराव ने अधिकार कर लिया था। उन्हें वापस प्राप्त करने के लिये बड़ोदा राज्य के संस्थापक पिलाजी गायकवाड़ ने बड़ा प्रयत्न किया, पर वे असफल हुए।

ई० स० १७२२ के दिसम्बर मास में बाजीराव ने उदाजीराव को मालवा और गुजरात प्रान्त के मुकासे का आधा हिस्सा सरंजाम कर दिया।

ई० स० १७२३ के अन्त में अंबाजीपंत पुरंदरे, सिन्धिया, होल्कर और पँवार ने मिलकर मालवे के मुसलमान सूभे को नेस्तनाबूद कर दिया।

ई० स० १७२४–२५–२६ में उदाजीराव की मालवा प्रान्त पर कई चढ़ाइयाँ हुईं। वे मालवे में अपनी हक्क-वसूली का काम करते थे। इस समय मालवे का बादशाही सूबेदार राजा गिरधर था। उसकी मराठों के साथ अनेकों लड़ाइयाँ हुईं। आखिर ई० स० १७२६ में वह सारंगपुर की लड़ाई में मारा गया। इस समय उदाजीराव और चिमणाजी दामोदरराव ने सारंगपुर से १५००० रु. खिराज के वसूल करके भेजे थे।

गुजरात प्रान्त में उदाजीराव की तरह पिलाजी गायकवाड़ और कदमबांडे के सरदार भी अपना अधिकार जमाने का प्रयत्न कर रहे थे। इससे गुजरात में उदाजीराव के प्रयत्न में उक्त दोनों सरदारों की ओर से बड़ा विरोध उपस्थित किया जा रहा था। कितनी ही बार तो इन दोनों में चखचख भी हो गई थी। कितनी ही बार उदाजीराव को सफलता प्राप्त हुई थी, पर अन्त में इन्हें डभोई और बड़ोदे का किला पिलाजी के स्वाधीन करना पड़ा। इतने पर भी उदाजीराव निराश नहीं हुए। वे अपना प्रयत्न बराबर करते रहे। ई० स० १७२६ में उदाजीराव और महाराजा छत्रपति शाहू के बीच जो

इकरारनामा हुआ उसमें उदाजीराव को चौथ और सरदेशमुखी का अधिकार देने का स्पष्ट उल्लेख है।

ई० स० १७२८-२९-३० के साल में उदाजीराव के नाम पर जो १५० से अधिक परवाने जारी हुए थे, वे धार दरबार के दफ्तर में मौजूद हैं। उनमें मालवा, गुजरात, नेमाड़, खानदेश, सोंदवाड़ा, काठियावाड़, मेवाड़, मारवाड़, सोरठ, कच्छ और सिन्ध आदि प्रान्तों से पूर्व वर्षों की तरह मोकासबाबी नामक एक विशेष प्रकार की खिराज वसूल करने का हक उदाजीराव को दिये जाने का स्पष्ट उल्लेख है।

ई० स० १७३१ में उदाजीराव के अनेक वीरोचित कार्यों से प्रसन्न हो बाजीराव ने सिरोपाव और हाथी भेंट कर उनका सन्मान किया।

ई० स० १७३५ के आरम्भ में उदाजीराव और मल्हारराव होल्कर ने बड़वानी राज्य में धूम मचाई थी। इसके बाद छत्रपति शाहू महाराज ने उदाजीराव को कुछ और भी सनदें प्रदान की थीं।

इसके बाद न मालूम किस कारण से उदाजीराव पर छत्रपति की नाराजगी हो गई। इससे उन्हें बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। उनका मुल्क जप्त कर लिया गया। पर हाल में मिले हुए ऐतिहासिक कागज़-पत्रों से पता चलता है कि उदाजीराव ने छत्रपति की मर्जी सम्पादन कर ली थी। वे पुनः अपने अधिकार प्राप्त कर मालवा चले आये। इसका प्रमाण यह है कि ई० स० १७३६ में उनके द्वारा बड़वानी राज्य में गड़बड़ मचाये जाने का तथा इसके लिये शाहू महाराजा की तरफ़ से मनाई होने का उल्लेख मिलता है।

शाहू महाराज की डायरी (तारीख २२-१२-१७४७) को देखने से पता चलता है कि ई० स० १७४७ तक खरगोन जिले में 'मोकासबाब' नामक कर वसूल करने का अधिकार उदाजीराव की ओर था।

इस प्रकार मराठा-साम्राज्य के विस्तार में उदाजीराव ने अनेक बड़े २ कार्य किये। मालवा और गुजरात में मराठों का दबदबा बैठाने में सिन्धिया और होल्कर की तरह उदाजीराव का भी प्रधान हाथ था।

उदाजीराव में विलक्षण धैर्य, रण-शूरता आदि अनेक लोकोत्तर गुण थे। मराठा-साम्राज्य के संगठन-कर्ताओं में उदाजीराव का आसन भी बहुत ऊँचा है। पेशवा सरकार के ब्रह्मेन्द्र स्वामी आपको बड़े आदर से सम्बोधित करते थे। वे पत्र में उदाजीराव को "सहस्रायु चिरंजीव विजयीभव रणधीर रणशूर उदाराव पँवार" लिखते थे। इससे पाठक समझ सकते हैं कि उदाजीराव का कितना आदर था और वे कितनी ऊँची दृष्टि से देखे जाते थे।

इस महा शूरवीर सरदार का कब स्वर्गवास हुआ, इसका ठीक २ पता नहीं चलता। सुप्रख्यात इतिहास-वेत्ता मालकम साहब के मतानुसार वे ई० स० १७३१ के थोड़े ही दिन बाद परलोकवासी हो गये। पर मराठा इतिहास के मर्मज्ञ श्रीयुत काशीनाथ कृष्ण लेले महोदय ने अनेक प्रमाणों का अन्वेषण कर यह नतीजा निकाला है कि उदाजीराव ई० स० १७५१ के कुछ समय बाद तक जीवित थे।

आनन्दराव

उदाजीराव के भाई आनन्दराव थे। ये भी उदाजीराव ही की तरह वीर, पराक्रमी और राजनीतिज्ञ थे। इनका स्वभाव बड़ा धीर और गम्भीर था। मराठा इतिहास के लेखक ग्रेंट डफ साहब ने भी उनके इन गुणों की बड़ी प्रशंसा की है।

कहने की आवश्यकता नहीं कि मराठा-साम्राज्य के संगठन में आनन्दराव ने भी बड़ा महत्वपूर्ण भाग लिया। उन्होंने भी बड़े २ काम किये। पेशवा सरकार ने आपको धार-राज्य की सनद प्रदान की। उस समय धार-राज्य का विस्तार बहुत बढ़ा हुआ था। धार के आसपास के मुल्क के सिवाय बर्सिया (इस समय भोपाल-राज्य में है), आगर (इस समय ग्वालियर-राज्य

में), सुनेल (इस समय इन्दौर-राज्य में), तालमण्डावल (इस समय जावरा-राज्य में) और गंगराड (इस समय झालावाड़-राज्य में) आदि कितने ही जिले इस समय धार-राज्य में थे । होलकर और सिन्धिया की तरह एक समय धार-राज्य का भी बड़ा विस्तार और महत्व रहा है । ई० स० १७३५-३६ में आनन्दराव का उज्जैन में देहान्त हो गया । वहाँ आपकी छत्री बनी हुई है ।

उदाजीराव के तीसरे बन्धु जगदेवराव भी मराठी सेना में एक खास सरदार थे । कहा जाता है कि इन्होंने ही तिरला की लड़ाई में हाथी पर चढ़-कर बादशाही सूबेदार दयाबहादुर का सर काटा था ।
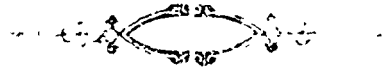
यशवन्तराव

आनन्दराव के बाद उनके पुत्र यशवन्तराव का उदय हुआ । जिन सरदारों ने मालवा के बाहर मराठी राज्य का विस्तार करने में मार्के की कर्तबगारियां दिखलाकर उसे साम्राज्य का स्वरूप प्रदान किया था, उनमें मल्हारराव होलकर, राणोजी सिन्धिया, पिलाजी जाधव और यशवन्तराव पँवार मुख्य थे । अपने पिता की मौजूदगी ही में यशवन्तराव मराठों की चढ़ाइयों में भाग लेने लग गये थे । ये बड़े पराक्रमी और वीर थे । इन्होंने विविध युद्धों में बड़े वीरत्व का परिचय दिया था ।

ई० स० १७३६ के नवम्बर मास में बाजीराव ने दिल्ली पर जो चढ़ाई की थी उसमें सिन्धिया, होलकर तथा धार और देवास के पँवार भी शामिल थे । भील तालाब के पास की लड़ाई में यशवन्तराव पँवार ने बड़ा पराक्रम दिखलाया था ।

ई० स० १७३७ के दिसम्बर मास में भोपाल में जो लड़ाई हुई और

जिसमें निजाम को पूरी तौर से नीचा देखना पड़ा, उसमें यशवंतराव पँवार के वीरत्व की बड़ी प्रशंसा हुई थी।

ई० स० १७३९ के जनवरी मास में चिमणाजी आपा ने बसई पर चढ़ाई की थी उसमें भी यशवन्तराव पँवार मौजूद थे। इसके बाद यशवन्त-राव पँवार मालवा को चले आये।

ई० स० १७४१ के दिसम्बर मास में पेशवा बालाजी बाजीराव उत्तर हिन्दुस्तान की चढ़ाई के लिये रवाना हुए थे। उसमें यशवन्तराव पँवार भी थे।

इसी समय के लगभग किसी कारणवश जयपुर के महाराज सवाई जयसिंहजी और जोधपुर के महाराज अभयसिंहजी में अनबन हो गई थी। यशवन्तराव ने बीच में पड़कर इन दोनों का मेल करवा दिया।

ई० स० १७४२ में यशवन्तराव और नाना साहब पेशवा की भेंट हुई। इसमें पेशवा ने यशवन्तराव को अपनी ओर से धार में कायम किया।

ई० स० १७५१ में सिन्धिया और होलकर ने वजीर सफदरजंग की सहायता कर उसके शत्रु अहमदखाँ पठान को फर्रुखाबाद में पूरी शिकस्त दी। इसके बदले में सिन्धिया और होलकर ने पेशवा के नाम से दिल्ली के तत्कालीन बादशाह से एक फरमान प्राप्त किया। इस फरमान से पेशवा को मुलतान, पंजाब, राजपूताना और रुहेलखंड आदि प्रान्तों से चौथ वसूल करने का हक्क प्राप्त हुआ था। इन सब कामों में यशवन्तराव और देवास के तुकोजीराव पँवार का भी पूरा २ हाथ था। फर्रुखाबाद की लड़ाई में उक्त दोनों पँवार एक २ हजार फौज के साथ शामिल हुए थे। इस सहायता के बदले में सूरजमल जाट की तरफ से जो खिराज वसूल हुई थी उसका हिस्सा यशवन्तराव और तुकोजीराव पंवार दोनों को मिला था।

ई० स० १७५१ के अगस्त मास में जब पेशवा निजामउल्मुल्क के पुत्र गाजीउद्दीन की सहायता के लिए रवाना हुए थे, उस समय उन्होंने यशवन्तराव को दस हजार फ़ौज के साथ खुदावन्द के खिलाफ़ भेजा था। इसमें यशवन्तराव को बड़ा यश मिला था।

ई० स० १७५३ में श्रीमंत पेशवा ने कर्नाटक पर चढ़ाई की। इस समय होलीहुन्नूर और धारवाड़ के किले हस्तगत किये गये। इस चढ़ाई में यशवन्तराव का भी मुख्य भाग था।

ई० स० १७५४ में पेशवा रघुनाथराव दादा ने उत्तर हिन्दुस्तान पर जो चढ़ाई की थी उसमें भी यशवन्तराव पँवार शामिल थे।

ई० स० १७५५ के सितम्बर मास में यशवन्तराव पँवार और समशेर बहादुर दस हजार फ़ौज के साथ राजपूताने की चढ़ाई पर भेजे गये। इस समय मराठों ने नागोर पर घेरा डाल रखा था। आखिर में मारवाड़ के राजा विजयसिंहजी मराठों के साथ सुलह करने के लिये मजबूर किये गये।

ई० स० १७५६ में बालाजी ने सावनूर पर जो चढ़ाई की थी उसमें भी यशवन्तराव थे या नहीं इसका ठीक २ ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। पर ई० स० १७५७ के फरवरी मास में नाना साहब पेशवा और सदाशिव राव भाऊ आदि ने साठ हजार फ़ौज के साथ श्रीरंगपट्टण पर जो चढ़ाई की थी, उसमें यशवन्तराव थे। इसके बाद वे सिन्दखेड़ के युद्ध में सिन्धिया की सहायता के लिये भेजे गये थे। इस युद्ध में उन्होंने बड़ी बहादुरी के साथ निजामअली की अग्रगति रोक दी थी।

ई० स० १७६० में उदगिरी मुकाम पर युद्ध हुआ इसमें यशवन्तराव ने बड़ा पराक्रम दिखलाया था। इसमें उन्हें विजय मिली थी। इस विजय की स्मृति में उस स्थान पर उन्होंने एक महादेव का देवालय बनवाया है।

इस प्रकार यशवन्तराव ने अपने स्वामी के लिये अनेक महत्वपूर्ण और पराक्रमशाली कार्य किये। उन्होंने बड़ी ईमानदारी से अपने स्वामी की सेवा की। ये बड़े ही दयालु और वीर थे। सुप्रख्यात् इतिहास-लेखक मालकम साहब अपने इतिहास में लिखते हैं:—"यशवन्तराव पँवार ने मराठे लोगों में बड़ी ख्याति प्राप्त की थी। वे जैसे वीर थे वैसे ही सदय अन्तःकरण के भी थे। मालवे के लोग अपनी दन्त-कथाओं में उनकी कीर्तिका स्मरण करते हैं।"

खण्डेराव

जिस समय यशवन्तराव पानीपत के युद्ध में मारे गये, उस समय उनके खण्डेराव नामक एक ढाई वर्ष का लड़का था। वह नाबालिग था इसलिये धार-राज्य की सारी व्यवस्था माधवराव औंढेकर नामक एक दक्षिणी ब्राह्मण करते थे। इस समय के शासन में बड़ी अव्यवस्था उपस्थित हो रही थी। इस अव्यवस्था का फायदा उठा कर आसपास के राजाओं ने धार पर हमले करना शुरू कर दिया। धार-राज्य इस समय बड़े कष्ट में पड़ गया। इतने में एक और घटना हो गई जिससे धार की आपत्ति और भी बढ़ गई। राघोबा दादा ने अपने कुटुम्ब को आश्रय के लिये धार में रखा था। इससे राघोबा के शत्रुओं ने धार पर हमला कर दिया और उसे घेर लिया। इसी समय राघोबा दादा की धर्मपत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया। यह पुत्र अन्तिम बाजीराव पेशवा के नाम से प्रसिद्ध है। राघोबा दादा की धर्मपत्नी किले में रहती थी। उक्त घेरा डालनेवालों की इच्छा राघोबा दादा की धर्मपत्नी और उनके पुत्र को हस्तगत करने की थी। खण्डेराव खुले तौर से राघोबा दादा के तरफ मिल गये थे इससे राघोबा के विपक्षियों ने धार जप्त कर लिया। निदान जब खण्डेराव ने राघोबा की पत्नी और पुत्र को घेरा डालनेवालों के सुपुर्द कर दिया तब धार की जप्ती खोल दी गई। विपक्षी-सेना राघोबा की पत्नी और पुत्र को कैद कर दक्षिण की ओर ले गई।

खण्डेराव पँवार का विवाह गोविंदराव गायकवाड़ की पुत्री के साथ हुआ था। इनसे एक पुत्र हुआ था जिसका नाम आनन्दराव था। आनन्द-राव सत्रह वर्ष की उम्र तक अपने ननिहाल बड़ौदे में रहे थे। फिर ये धार आ गये। दिवान रंगराव औंढेकर के बहुत तरह के अड़ंगे लगाने पर भी ये धार की राजगद्दी पर बैठ गये। आनन्दराव का राज्य दुर्दैव और विपत्तियों

की एक लंबी माला थी। इनके समय में धार पर बड़ी २ आपत्तियाँ आईं। इन्हीं विपत्तियों का सामना करते २ ई० स० १८०७ में आनन्दराव की मृत्यु हो गई।

महारानी मैनाबाई

आनन्दराव की धर्म-पत्नी मैनाबाई बड़ी पतिव्रता, प्रजापालन में दक्ष, धैर्यवती और ईश्वर-भक्त थीं। आनन्दराव की मृत्यु के बाद राज्य का सब कारभार इन्हीं मैनाबाई पर पड़ा। इस समय देश में चारों तरफ अशान्ति फैली हुई थी। आसपास के राजाओं ने इनके राज्य में बड़ी धूम मचा दी थी। परन्तु मैनाबाई ने परमेश्वर पर भरोसा रख कर बड़े साहस और युक्ति-प्रयुक्तियों से राज्य की रक्षा करना शुरू किया।

भारतवर्ष में अब तक जितने आदर्श रमणी-रत्न हो गये हैं उनमें से मैनाबाई भी एक थीं।

मनाबाई बचपन ही से बड़ी पराक्रमी और दयाशीला थीं। पति के साथ इनकी खूब पटती थी। अपने गुणों के कारण इन्होंने समस्त परिजन और प्रजाजनों के हृदयों को जीत लिया था।

अपने पतिदेव की मृत्यु के समय मैनाबाई ने सती होने का विचार किया था, परन्तु उस समय ये गर्भवती थीं। इससे अपने सुख के लिये प्राण-नाश और भावी पुत्राशा को नष्ट करके प्रजा को और भी दुःख-सागर में डुबा देना उचित न समझ उन्होंने बड़े धैर्य के साथ सती होने के विचार को रोका।

सचमुच मैनाबाई पर कठिन क्लेश का पहाड़ टूट पड़ा था। पहले तो युवावस्था में वैधव्य और तिस पर भी राज्य चलाने का कठिन कर्तव्य

उन पर आ पड़ा था। इनको अबला देख कर आसपास के राजाओं ने धार-राज्य को हड़प कर लेना चाहा। उधर दीवान रंगराव औंढ़ेकर और आनन्दराव की बहिन ने अलग ही षड्यन्त्र शुरू कर रखे थे। परन्तु मैनाबाई ने अपनी हिम्मत और चतुराई से इन सबके उद्योगों को विफल कर दिये।

मुरारिराव नामक यशवंतराव पँवार का एक दासी पुत्र था। वह भी राज्य पर अपना हक्क बतलाता था। इसने मैनाबाई को जान से मारने तक का इरादा किया था, लेकिन मैनाबाई प्राणों के डर से नहीं वरन् अपनी गर्भस्थ सन्तान की रक्षा के लिये धार छोड़ कर मांडू के किले में रहने लग गईं। यहाँ पर उनके गर्भ से रामचन्द्रराव नामक पुत्र का जन्म हुआ। जब रामचंद्रराव के जन्म की खबर मुरारिराव को मिली तब वह बड़ा निराश हुआ। परन्तु फिर भी वह अपनी दुष्टता से बाज नहीं आया। अब उसने एक युक्ति सोच निकाली। उसने मैनाबाई को लिखा कि "मुझे रामचन्द्रराव के जन्म से बड़ी खुशी हुई है। अब मुझे अपने पहले के कृत्यों पर पश्चात्ताप होता है। आप मेरी माता हैं और मैं आपका पुत्र हूँ, इसलिये अब मेरा आप से यह अनुरोध है कि आप किसी तरह की शंका न करते हुए वापस धार में आकर राज्य-व्यवस्था संभालें।"

शुद्ध-हृदया मैनाबाई ने मुरारिराव के इन कपट-पूर्ण शब्दों पर विश्वास कर लिया और अपने विश्वासपात्र सेवकों के मना करने पर भी वापस धार को लौट आईं।

धार पहुँचते ही विश्वासघाती मुरारिराव ने युवराज समेत मैनाबाई को एक मकान में कैद कर दिया। वह इतने पर ही सन्तुष्ट नहीं हुआ। जिस मकान में मैनाबाई कैद थीं उसमें उसने आग लगा देना चाहा।

अब मैनाबाई को अपने वृद्ध सेवकों की बात न मानने का बड़ा पश्चात्ताप हुआ। परन्तु ऐसे संकट के समय में भी उन्होंने बड़ी ही बुद्धिमानी के साथ काम लिया। उन्होंने अपनी एक विश्वासपात्र दासी को बुलाकर उसके पुत्र को अपने पास रख लिया और युवराज को उसके साथ चुपके से

किले में भेज दिया। साथ ही किले के जमादार से नम्रतापूर्वक कहला भेजा कि "यह राजकुमार तुम्हारा मालिक है परन्तु इस समय इसको अपना लड़का जानकर अपने पुत्र के समान इसकी रक्षा करो।" शुद्ध-हृदया मैनाबाई के ये शब्द किलेदार के हृदय पर जादू का सा काम कर गये। उसने अपने प्राणों पर खेल कर राजकुमार रामचन्द्रराव के प्राण बचाने का अभिवचन दिया।

यद्यपि युवराज बड़ी गुप्त रीति से किले में भेजे गये थे तथापि मुरारि-राव को यह बात मालूम हो गई। तब तो वह आग बबूला हो गया। उसने मैनाबाई से कहला भेजा कि "तुमने गुप्तरीति से युवराज को किले में भेज दिया है लेकिन इसका बदला मैं तुम से जरूर लूंगा। घर जला कर तुम्हारा प्राण लूंगा और किलेदार को दण्ड देकर युवराज को भी सजा दूंगा।" इस समय मैनाबाई ने मुरारिराव को जो जवाब दिया है वह पढ़ने योग्य है। मैनाबाई ने कहला भेजा था कि "राजकुमार ही राज्य का सच्चा वारिस है, इसलिये तू उसको अपना मालिक समझ। अब वह तेरे हाथ नहीं आने का। उसे सुरक्षित स्थान में देखकर मेरा चित्त बहुत प्रसन्न है। अब तू भले ही मजे से मुझे तकलीफ दे। मैं सब संकटों को सहर्ष सहन करूँगी और तेरा बड़ा उपकार मानूँगी।"

अब मुरारिराव किले की तरफ झपटा। परन्तु स्वामि-भक्त किलेदार ने उस राज्य-विद्रोही का गोलों से स्वागत किया। मुरारिराव ने अनेक युक्ति-प्रयुक्तियों से किलेदार को समझाना चाहा परन्तु उसके सब प्रयत्न विफल हुए। तब तो उसने किले को घेर लिया और उसके अन्दर अन्न-सामग्री का जाना रोक दिया। यह देख मैनाबाई फिर घबराई। उन्होंने आसपास के राजा महाराजाओं से सहायता के लिये प्रार्थनाएं कीं परन्तु सहायता तो अलग रही, किसी ने जवाब तक नहीं दिया। सब तरफ से निराश हो उस रमणी ने अपने बन्धुओं के सामने अपना दुःख समाचार कह सुनाया। निदान गायक-वाड़ महाराज ने सखाराम चिमणाजी की अध्यक्षता में कुछ फौज सहायता के लिये भेजी। इस सेना को आती देख मुरारिराव तो भाग गया परन्तु एक दूसरी ही विपत्ति सर पर आ पड़ी। गायकवाड़ सरकार धार को अपने वश

म कर लेना चाहते थे। इसके लिये उन्होंने सखाराम को समझा दिया था। इसलिए सखाराम ने यहाँ आकर तदनुरूप प्रयत्न शुरू कर दिये। परन्तु मैनाबाई के सामने उसकी दाल नहीं गली। बाई साहब ने ऐसी बुद्धिमत्तापूर्ण-नीति का उपयोग किया कि सखाराम पड़ा २ कर्जदार हो गया और अन्त में थोड़े ही दिनों में मर भी गया। सखाराम की जगह बाबू रघुनाथ सेनापति नियुक्त होकर आया। बाई ने इस पर भी ऐसी जादू की लकड़ी फेरी कि वह आया तो था गायकवाड़ के काम पर और करने लग गया मैनाबाई साहबा का। मुरारिराव के हृदय से राज्य-तृष्णा निकल नहीं गई थी इसलिये उसने एक दो बार फिर धार पर हमले किये परन्तु मैनाबाई के सामने उसे उल्टे मुँह की खानी पड़ी।

इन उपरोक्त झगड़े बखेड़े से राज्य का बहुत सा नुकसान हुआ। आमदनी कम और खर्च अधिक हो जाने के कारण फौज में फाके पड़ने लग गये। अब बाई साहबा ने फौज का खर्च चलाने के लिये राजपूताने की रियासतों पर चढ़ाइयाँ शुरु कर दीं। इस प्रकार लूट-खसोट से सेना का निर्वाह होने लगा। इस समय रतलाम, अमझरा, बड़वानी और अलीराजपुर आदि स्थानों के राजाओं पर बाई साहब ने विजय प्राप्त की। घर और बाहर के झगड़ों से बाई साहबा अभी निवृत्त हुई ही नहीं थीं कि उन पर दारुण कोप हुआ। उनके बालपुत्र रामचन्द्रराव का स्वर्गवास हो गया। इस घटना ने मनाबाई के हृदय को टुकड़े २ कर दिया। जिसके लिये उन्होंने इतने कष्ट सहन करके राज्य की रक्षा की थी वह भी दुःखिनी माता को अकेली छोड़ कर चल बसा। अब संसार उनको असार मालूम होने लगा। उन्होंने सब काम-काज छोड़ दिया। परन्तु मन्त्रियों के दिलासा दिलाने पर राज्य के हितके लिये अपने दुःख को दुःख न समझ उन्होंने फिर से राज-कारभार चलाना शुरू कर दिया। मन्त्रियों की सलाह से उन्होंने अपनी बहिन के लड़के को दत्तक ले लिया और उसका नाम रामचंद्रराव रख कर उसे गद्दी पर बिठा दिया। इस समय रामचंद्रराव बालक थे इसलिये राज्य-कारभार बाईसाहबा का ही

चलाना पड़ता था। वे मुरारिराव से भी लड़ती थीं और राज्य-कारभार भी चलाती थीं। निदान मुरारिराव धार से निकल गया और कुछ दिनों बाद मर भी गया।

अब देश में कुछ शान्ति स्थापित हुई। परन्तु यह शान्ति बहुत कम दिन तक रही। मुजफ्फर नामक एक मकरानी धार-राज्य में अव्यवस्था देख वहाँ लूट खसोट करने लग गया। धीरे २ उसने कुक्खी पर भी अधिकार कर लिया। इधर गायकवाड़ सरदार भी वापस बड़ौदा चले गये। उनके जाते ही महाराज दौलतराव सिंधिया की फौज खिराज वसूल करने के लिये आ धमकी। मौका पाकर महाराजा होलकर ने भी धार पर चढ़ाई कर दी। इस प्रकार धार राज्य पर अशान्ति के काले बादल मँडराने लग गये। बाई साहबा किले में जा बैठीं। इस समय धार-राज्य में सिर्फ ३५००० रुपये की आमदनी का मुल्क रह गया था।

इसी अर्से में सर जॉन मालकम की अध्यक्षता में अंग्रेजी फौज मालवे की लूट-खसोट का इन्तज़ाम करने आई। बाई साहबा ने अपने दीवान बाबू रघुनाथ के द्वारा उनके पास सब सन्देश भेजा। निदान चैत सुदी १ संवत् १८७६ को अंग्रेज सरकार और मैनाबाई के बीच अहदनामा हो गया। मालकम साहब ने बदनावर, बेरछा और कुक्खी के परगने भी बाई साहबा को वापस दिलवा दिये। इस प्रकार धार में जो अशान्ति की ज्वाला धधक रही थी उसका शमन हुआ।

अब बाई साहबा ने अपने दत्तक पुत्र रामचन्द्रराव का विवाह महाराज दौलतराव सिन्धिया की पुत्री अन्नपूर्णाबाई के साथ कर दिया। परन्तु दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि ये रामचन्द्रराव भी ई० स० १८३३ के अक्टूबर मास की ७ वीं तारीख को अपनी दुःखिनी माता और पत्नी को रोती बिलखती छोड़कर इस संसार से चल बसे। चिर दुःखिनी मैनाबाई के भाग्य में सुख नहीं बदा था इसलिये यह दुःख भी उनको भोगना पड़ा। अब उनको बृटिश गवर्नमेंट की मंजूरी लेकर फिर एक लड़का गोद लेना पड़ा। इसका नाम

यशवन्तराव रखा गया और यह अन्नपूर्णा बाई की गोद बिठाया गया। यह लड़का भी नाबालिग था इसलिये राज्यकारभार मैनाबाई ही के हाथों में रहा। परन्तु कुछ लोगों के बहका देने से अन्नपूर्णाबाई ने इसका विरोध करना शुरू किया। उन्होंने बाल राजा यशवन्तराव को अपनी तरफ मिलाकर मैनाबाई के खिलाफ एक दल तैयार किया। उधर पुराने नौकर राज्यकारभार मैनाबाई ही के हाथ में रखना चाहते थे। इसलिये दोनों पक्षों में खूब तनातनी चलने लगी। बात यहाँ तक बढ़ी कि दोनों तरफ से मारपीट का मौका आ गया। इस झगड़े में कई आदमी मारे भी गये। ज्योंहीं यह खबर रेसिडेण्ट तक पहुँची कि उन्होंने बापू रघुनाथ को बुलाकर इसका बन्दोबस्त करने के लिये कहा। तब तो बापू रघुनाथ ने फौज को अपनी तरफ मिला कर अन्नपूर्णा बाई के तमाम सलाहकारों को गिरफ्तार कर लिया। निदान अन्नपूर्णाबाई हार खाकर बैठ गई। तत्पश्चात् रेसिडेन्ट साहब ने धार आकर यशवन्तराव को राजा होने का और बापू रघुनाथ को अच्छा खिलअत दिया।

यशवन्तराव के पढ़ लिख कर होशियार हो जाने पर मैनाबाई ने (ई० स० १९३७ में) सब राज्यकारभार उनको सौंप दिया। इसके बाद बाई साहबा ने अपना शेष जीवन ईश्वर-भजन में व्यतीत किया। ई० स० १८४६ में इस वीर, बुद्धिमती, धर्म-परायण और शुद्ध-हृदया रमणी का स्वर्गवास हो गया। धार के छत्री बाग में इनकी स्मारक स्वरूप एक छत्री बनी हुई है।

महाराजा आनंदराव
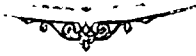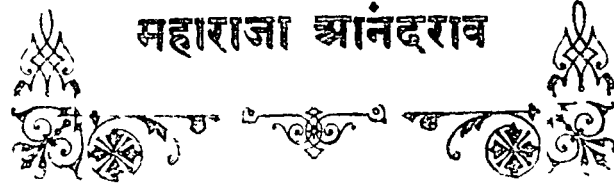
ई० स० १८५७ में यशवन्तराव का हैजे के कारण देहान्त हो गया। मरते समय इन्होंने अपने चचेरे भाई अनिरुद्धराव पँवार को दत्तक ले लिया था। ये अनिरुद्धराव आनन्दराव तृतीय के नाम से गद्दीपर बैठे। गद्दी पर बैठते समय आपकी उम्र सिर्फ तेरह वर्ष की थी। इसी साल हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने अंग्रेजों के खिलाफ़ बलवा खड़ा किया था। धार के मुसलमान सिपाहियों ने भी अन्य अन्य विद्रोहियों का अनुकरण किया। वे आपे से बाहर हो गये। महाराजा साहब नाबालिग थे, ऐसी स्थिति में वे इस विद्रोह को दबाने के लिये कर ही क्या सकते थे। पर इन सब परिस्थितियों पर यथोचित विचार न कर इस विद्रोह के लिये ई० स० १८५८ की १९ वीं जनवरी को धार जब्त किया गया। धार का शासन भी बृटिश सरकार ने अपने हाथ में ले लिया। इस कारवाई के खिलाफ़ बृटिश पार्लियामेन्ट में आवाज़ उठी। अन्त में बासिया परगने को छोड़कर सारा राज्य ई० स० १८६० में महाराजा आनन्दराव को वापस लौटा दिया गया। इस समय धार में बड़ा आनन्द छा गया।

इसके बाद महाराजा आनन्दराव ने बड़ी ही योग्यता के साथ राज्य कारभार चलाया। पहिले राज्य की आमदनी ५ लाख थी परन्तु आपके प्रयत्नों से वह ९ लाख तक पहुँच गई। आपकी राज-भक्ति से खुश होकर साम्राज्य सरकार ने आपको ई० स० १८६२ में दत्तक लेने की सनद प्रदान कर दी। ई० स० १८७७ के दिल्ली दरबार में भी आप पधारे थे। उस समय आपको

महाराजा और के० सी० एस० आई० की उच्च उपाधि भी मिल गई। इसके ६ साल बाद श्रीमान् सी० आई० ई० की उपाधि से विभूषित कर दिये गये और ई० स० १८८६ में गवर्नमेंट ऑफ इन्डिया ने धार रियासत के ठाकुरों पर भी आपकी सत्ता कबूल कर ली। अपने राज्यकाल के अन्तिम सात वर्षों में आप लगातार अस्वस्थ और काम करने में असमर्थ रहे। ई० स० १८९८ के जुलाई मास की १५ वीं तारीख के दिन आपने इहलोक यात्रा संवरण की। आप बड़े लोक प्रिय, उदार और दानी थे। अपनी मृत्यु के पहिले ही दिन आपने अपने भतीजे भागोजीराव पँवार को दत्तक ले लिया था।

महाराजा उदाजीराव (द्वितीय)

महाराजा आनंदराव के पश्चात् भागोजीराव, उदाजीराव (द्वितीय) के नाम से राज्यासन पर आरूढ़ हुए। धार के वर्तमान महाराजा साहब आप ही हैं। आप संभाजीराव उर्फ आबा साहब के पुत्र हैं। आपका जन्म ई० स० १९८६ के सितम्बर मास की ३० वीं तारीख को हुआ था। ई० स० १९०३ में होने वाले दिल्ली दरबार में आप पधारे थे। उस समय आपको सम्राट् की तरफ से एक तमगा (Coronation medal) मिला था। ई० स० १९०५ में तत्कालीन प्रिन्स और प्रिन्सेस आफ वेल्स के आगमन के उपलक्ष्य में इन्दौर में जो दरबार हुआ था उसमें भी श्रीमान् तशरीफ ले गये थे। ई० स० १९०७ तक राज्य का कारभार भोपावर के पोलिटिकल एजेन्ट की देख रेख में चलाया जाता था परन्तु इस साल से सब राज्य कारभार महाराजा ने अपने हाथों में ले लिया है।

महाराजा साहब धार बड़े लोकप्रिय हैं और प्रजा की उन्नति के लिये आपका सविशेष ध्यान रहता है। आपके समय में राज्य की शिक्षा सम्बन्धी और औद्योगिक उन्नति बहुत कुछ हुई है। इस समय राज्य में करीब ७० पाठशालाएँ हैं जिनमें से एक हिन्दी मिडल तक की, तीन में ६ ठें क्लास तक की, १२ में तीसरे क्लास तक की और शेष में दूसरे क्लास तक की शिक्षा दी जाती है। राज्य में "आनन्द हाइ स्कूल" नाम का एक स्कूल है जहाँ एंट्रेंस तक की शिक्षा दी जाती है। इस स्कूल में लगभग ३५० विद्यार्थी हैं। इस स्कूल में एक अच्छी प्रयोग-शाला भी है। औद्योगिक दृष्टि से भी आपके शासन काल में धार ने अच्छी तरक्की की है। यहां कई जिनिंग फैक्टरियाँ हैं। यहाँ का अजवायन के फूल बनाने की फैक्टरी ने तो बड़ी ही तरक्की की है। कहा जाता है कि युद्ध के समय में इस फैक्टरी में बने हुए अजवायन के फूल हिन्दुस्तान में चारों तरफ जाते थे। यहाँ का मेडिकल डिपार्टमेंट भी बहुत अच्छे ढंग से सुसंगठित है। इसके राज्य की आमदनी लगभग १६ लाख है और ई० स० १९२१ की गणनानुसार लोक-संख्या २१०३३३ है।

धार राज्य का राजनैतिक महत्व

यद्यपि इस समय मालवा में कई घटनाओं के संघर्ष के कारण धार राज्य एक छोटा सा राज्य रह गया है तथापि इससे उसका राजनैतिक महत्व कम नहीं किया जा सकता। चक्रवर्ती महाराजा भोज, महाराजा मुञ्ज जैसे महापराक्रमी और अमर-कीर्ति नृपति यहां हुए हैं, जिन्होंने भारतीय संस्कृति के विकास में बड़ी ही अमूल्य सहायता पहुँचाई थी और जिनका विजय-झंडा दूर दूर तक फहराता था। उस समय के राजनैतिक गगन-मंडल में धार प्रकाशमान सूर्य की तरह चमक रहा था। उस समय भारतवर्ष में जो दो एक महान् राज्य थे उनमें धार का आसन बहुत ऊँचा था। यहाँ यह भी

न भूलना चाहिये कि धार को मालवा की राजधानी होने का गौरव प्राप्त था। इसके बाद जब हम धार के वर्तमान राजवंश की तरफ झुकते हैं तो हमें प्रतीत होता है कि वर्तमान धार राज्य के संस्थापक उदाजीराव पँवार ने सबसे पहिले मालवा के सुप्रख्यात इतिहासप्रसिद्ध "माण्डु" नामक स्थान में महाराष्ट्र साम्राज्य का झंडा उड़ाया था। महाराष्ट्र विजय में उदाजीराव का जैसा कुछ हिस्सा रहा है उससे पाठक परिचित ही हैं। धार राज्य की सीमा पहिले बहुत दूर २ तक फैली हुई थी पर घटना—चक्र के कारण उसका विस्तार इस समय बहुत कम रह गया है किन्तु धार राज्य का राजनैतिक महत्व उसके प्राचीन गौरव के कारण इतिहासज्ञों की दृष्टि में अधिक जँचता है।
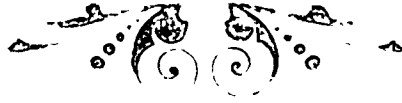
दतिया राज्य का इतिहास

HISTORY OF THE DATIYA STATE.
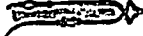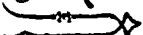
हिज़ हाईनेस महाराजा साहिब, दतिया

दतिया मध्य-भारत के बुन्देलखंड एजंसी की एक महत्तपूर्ण रियासत है। इसका विस्तार ९११ वर्गमील है और जन-संख्या लगभग १,५,५००० है। बीच २ में ग्वालियर राज्य तथा दूसरे राज्यों की हद आ जाने के कारण इस रियासत की सीमा एकसी नहीं है। इसके उत्तर में जालौन जिला और ग्वालियर-राज्य का कुछ हिस्सा, दक्षिण में झाँसी जिला और ग्वालियर रियासत, पूर्व में समथर और झाँसी जिला और पश्चिम में ग्वालियर रियासत है।

भगवानराव
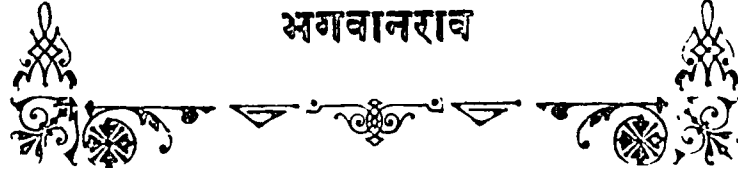
[१६२६-५६]

इस राज्य के प्रारम्भिक इतिहास को जानने के लिये हमें ओरछा के स्वर्गीय महाराजा वीरसिंह देव के शासनकाल की ओर जाना होगा। ई० स० १६०५ में मुगल सम्राट् जहाँगीर ने अपने पिता सम्राट् अकबर के सुप्रसिद्ध विद्वान् मंत्री अबुल फज़ल को कत्ल कर डालने के उपलक्ष्य में वीरसिंहजी को ओरछा की जागीर दी थी। वीरसिंहजी के पाँच पुत्र थे। इनमें से एक पुत्र हरदौल को उनके दूसरे पुत्र जुझारसिंह ने विष-प्रयोग कर मार डाला था। कुँवर हरदौल के छोटे भाई का नाम भवगानराव था। ई० स० १६२५ में जिस समय महावतखाँ ने सम्राट् जाँहगीर को, काबुल जाते समय

मार्ग में पकड़ कर कैद कर लिया था, उस समय वीरसिंहजी ने अपने पुत्र भगवानराव को उनकी सहायता करने के लिये भेजा था। बादशाह ने भगवानरावजी की राज्य-भक्ति से मुग्ध होकर उनका बड़े आदर के साथ स्वागत किया था और एक बड़ी भारी खिल्लत नियुक्त कर दी थी। कहा जाता है कि भगवानरावजी इसके पश्चात् देहली भी पधारे थे। वहाँ से वापस ओरछा लौट आने पर आपको मालूम हुआ कि, ओरछा का सारा राज्य-कार्य जुझारसिंह के हाथों में चला गया है और वीरसिंहजी अपने वृद्धापकाल की कमजोरियों के कारण राज्य-कार्य सँभालने में असमर्थ हैं। यद्यपि जुझारसिंहजी भगवानरावजी से उम्र में बड़े थे, तथापि भगवानरावजी बड़ी रानी के पुत्र होने से राज्य पर विशेष हक्क रखते थे। इससे वे जुझारसिंहजी की राज्य हथियाने की चेष्टा को सहन न कर सके। इसलिये वे अपने हक्क का निपटारा शाहंशाह से करा लेने के लिये देहली जाने लगे। राजा वीरसिंहजी ने उन्हें मार्ग में कैद करने की बहुत सी चेष्टायें कीं, किन्तु वे विफल हुईं। वीरसिंहजी को यह मालम था कि भगवानराव का बादशाह के दरबार में अच्छा दबदबा है। अतएव उन्होंने अपनी जागीर अपने चारों पुत्रों में बाँट दी। यह समाचार सुनकर भगवानरावजी वापस लौट आये। इसके पश्चात् क्या हुआ यह जानने को कोई साधन नहीं है। तथापि जहाँ तक पता लगता है, हमें मालूम होता है कि, भगवानरावजी की अनुपस्थिति में उनके हिस्से में आई हुई जागीर का उपभोग उनके दोनों पुत्र करते रहे। भगवानरावजी के ओरछा आने पर वीरसिंहजी ने उन्हें दतिया नगर और वहाँ का राजमहल प्रदान किया। इसके साथ ही बारोनी तहसील का लगान वसूल करने का हक्क भी आप ही को प्राप्त हुआ। ई० स० १६२६ की २० वीं अक्तूबर से आप यहीं रहने लगे। मुगल सम्राट् की ओर से आपको बहुत सा पुरस्कार भी प्रदान किया गया था।

आपने कई आक्रमणों में मुगलों की सहायता की। ई० स० १६२९-३० में जब खानजहाँ लोदी ने बलवे का झंडा उठाया, तब उसके विरुद्ध

मुगल सम्राट् द्वारा शाइस्ताखाँ के आधिपत्य में भेजी हुई सेना के साथ आप युद्ध में गये थे। ई० स० १६३० में खानजहाँ के पराजय और मृत्यु के पश्चात् वापस आप दतिया आए। इसके दूसरे ही वर्ष आप मुगल सेना के साथ बीजापुर युद्ध में सम्मिलित हुए। आपकी इन बहुमूल्य सेवाओं से प्रसन्न होकर भारत सम्राट् ने आपको भण्डेर परगना प्रदान किया।

ई० स० १६५६ में आपका देहान्त हो गया। आपकी छत्री दतिया में बनी हुई है, जो कि सुराही-छत्री के नाम से प्रसिद्ध है।
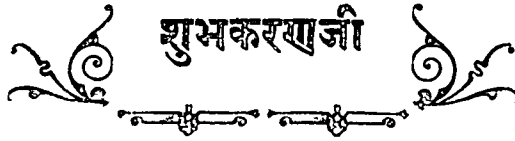
शुभकरणजी

[१६५६-७३]

आपके पश्चात् आपके पुत्र शुभकरणजी गद्दी पर बिराजे। गद्दी पर बैठने के पूर्व ही आपने मुगलों की सेना के साथ रहकर उन्हें बल्ख और बद्कशां के युद्धों में सहायता दी थी, जिसके प्रतिफल स्वरूप आप को खिल्लत भी प्राप्त हुई थी। इसके अतिरिक्त आप औरंगजेब और मुराद की ओर से चम्पतराय आदि बुन्देले सरदारों के साथ और मुगल सम्राट् शाहजहाँ के पाटवी पुत्र दारा के खिलाफ़ भी लड़े थे। खजवा के युद्ध में भी आपने औरङ्गजेब की ओर से युवराज शुजा़ का सामना किया था। आपकी इन सहायताओं के उपलक्ष्य में औरङ्गजेब ने उसे बादशाही अधिकार प्राप्त होने पर, आपको बुन्देलखंड का सूबेदार नियुक्त किया और पञ्च हज़ारी की मनसब प्रदान की। औरङ्गजेब का आपको इस तरह सन्मानित का एक उद्देश और था। उससे इस समय सुप्रख्यात् चम्पतरायजी बुन्देला विरुद्ध हो गये थे, और वे कुछ उपद्रव खड़ा करने के उद्योग में थे। अतएव उसने आपकी सहा०

यता से चम्पतरायजी को पराजित करने का निश्चय किया। शाहंशाह की आज्ञानुसार आपने चम्पतरायजी को कुछ ही दिनों के पश्चात् पहाड़ों में आश्रय लेने के लिये मज़बूर किया और वहाँ भी पहुँचकर आपने उन्हें पूर्ण पराजित किया। ई० स० १६६६ में आप आराकान युद्ध में लड़े थे। इसके पश्चात् ई० स० १६६७ से १६७० तक आप अपने पुत्र दलपतराव और भतीजे छत्रसाल के साथ दक्षिण के युद्धों में जुटे रहे। आप व आपके पुत्र दलपतराव ने इन युद्धों में वीरता का अच्छा परिचय देकर बड़ी ख्याति प्राप्त की थी। दलपतरावजी को ई० स० १६८१ में अत्तर की लड़ाई में गहरी चोट लगी। इसके उपलक्ष्य में आपको ३०० की मनसब भी प्राप्त हुई थी।

ई० स० १६८२ में आप दिलेरखाँ की फौज के साथ २ दक्षिण में गये। पर अस्वस्थ होने के कारण आप वहाँ से बहादुरगढ़ लौट आये। आपका यहीं देहान्त हो गया। आप बड़े बहादुर और साहसी व्यक्ति थे। आपकी मृत्यु पर प्रजा ने बहुत शोक प्रकट किया।
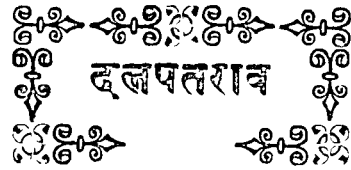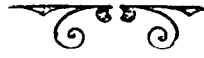
दलपतराव

[१६७३ १७०७]

जब आपकी मृत्यु का समाचार औरङ्गजेब के पास पहुँचा तो उसने अपनी समवेदना प्रकट करने के लिये कासिमखाँ नामक एक सरदार को दलपतराव के पास भेजा। इसके साथ ही उसने एक फर्मान भेजकर उन्हें राज्य का उत्तराधिकारी भी स्वीकार किया था। आपको इस समय उसने पञ्च हजारी मनसब तथा बहुमूल्य उपहार भी प्रदान किये थे। आप बड़े साहसी व्यक्ति थे और अपने समय में होनेवाले प्रायः सब युद्धों में आप

सम्मिलित होते थे। बीजापुर और गोलकुंडा के युद्ध-क्षेत्र में भी आप अवतीर्ण हुए थे। बीजापुर के युद्ध में आपको एक बाण भी लग गया था।

बहुत से युद्धों में सम्मिलित होकर आपने औरङ्गजेब की प्रसन्नता सम्पादन कर ली थी। आपको समय २ पर उचित सन्मान भी प्राप्त हुए थे। मुगलों के सेनापति जुल्फिकारखाँ के साथ आपने जिंजी के आक्रमण में अपने वीरत्व का अच्छा परिचय दिया था।

ई० स० १६९८ में आपके पुत्र रामचन्द्रजी नमूनागढ़ के मुख्य अधिकारी बनाये गये। आपने अपने पिता की अनुपस्थिति में दतिया पर अपना अधिकार जमा लेने का प्रयत्न किया, किन्तु औरङ्गजेब को इसका पता लगजाने से उसने अपने अधिकारियों द्वारा आपको इस कार्य से रोका।

ई० स० १७०० में दलपतरावजी जुल्फिकारखाँ की सेना के कमाण्डर नियुक्त किये गये। आपने परनाला और वाकिनखेड़ा की लड़ाइयों में दो २ हाथ दिखलाये थे। शाह आलम बहादुरशाह, और आजमशाह के बीच में जिस समय झगड़ा हुआ, उस समय आप आजमशाह की सहायता पर रहे। एक प्रसिद्ध इतिहासज्ञ का कथन है कि आजमशाह के सेनापति जुल्फिकारखाँ को केवल आपकी तथा आपके प्रिय मित्र कोटा के राजा रामसिंहजी की ही वीरता के भरोसे पर विजय की आशा थी। ई० स० १७०७ की १९ वीं जुलाई के दिन झजाऊ स्थान पर दोनों दलों में युद्ध हुआ, जिसमें रामसिंहजी काम आये। आपको भी भयंकर चोट आई और उसीके कारण आपका कुछ दिनों के पश्चात् देहान्त हो गया। आपकी छत्री जझाऊ में अबतक मौजूद है।

रामचन्द्रराव

[१७०७–३६]

दलपतरावजी की मृत्यु के पश्चात् आपके द्वितीय पुत्र भारतीचंद ने अपने कुछ आदमी एकत्रित करके राज्य के लिये झगड़ा खड़ा किया, किन्तु पाटवी पुत्र रामचन्द्ररावजी ने ओरछा के महाराजा उदोतसिंहजी से सहायता प्राप्त कर राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् भी भारतीचंद अपनी मृत्यु (ई० स० १७११) तक झगड़े बखेड़े उठाते रहे किन्तु फिर उनकी कुछ न चली।

राव रामचन्द्रजी ने देहली पहुँच कर शाहंशाह बहादुरशाह से भेंट की। इस समय आपको सम्राट् की ओर से खिलत और मनसब प्रदान की गई। सम्राट् फर्रुखशियर ने भी शासन-सूत्र धारण करने पर आपको खिलत, तलवार तथा बहुमूल्य उपहारों से सन्मानित किया। ई० स० १७१४ में आप बादशाह से भेंट करने के लिये फिर देहली तशरीफ ले गये, उस समय बादशाह ने सब अधिकारियों को दरबार में अशस्त्र सम्मिलित होने की आज्ञा की। किन्तु आप दरबार में अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित होकर पहुँचे। आपके इस साहस से बादशाह इतने प्रसन्न हुए कि आपके राजाज्ञा उल्लंघन के अपराध की ओर ध्यान न देकर उसने उलटी आपकी प्रशंसा की। अपने पूर्वजों की भाँति आप में भी एक साहसी सिपाही के गुण विद्यमान थे। आप भी कई युद्धों में दो दो हाथ दिखा चुके थे। ई० स० १७२३ में आपने जाट सरदार बदनसिंहजी पर भी आक्रमण किया था।

ई० स० १७३२ में आपने जेतपुर के बुन्देला राजा जगतराज को अहम्मदखाँ बंगेश का आक्रमण विफल करने में सहायता दी। ई० स० १७३६ में बुरहान-उल्-मुल्क सादतखाँ ने कोराँ-जहाँबाद पर चढ़ाई की। इस आक्रमण

में आप भी उनके साथ थे। कोराँ-जहाँबाद उस समय भगवन्तसिंह खिची के अधीन था। इसके पिता ने यहाँ के मुगल अधिकारी जन्निसारखाँ को मार डाला था। बुरहान-उल्-मुल्क जिस समय गङ्गा नदी पार कर रहे थे और अभी उनके २००० से अधिक घोड़े भी नदी पार न कर पाये थे कि एकाएक भगवन्तसिंह ने उन पर आक्रमण कर उन्हें मार डाला। इस युद्ध में आपके भी प्राण-घातक चोट लगी जिससे अपने कोराँ ही में प्राण विसर्जन कर दिये। आपका स्मारक अबतक वहाँ मौजूद है।

आपके पाटवी कुंवर का नाम रामसिंह था। आपका अपने पिता की मृत्यु के पहले ही ई० स० १७३० में स्वर्गवास हो गया था। अतएव आपके पौत्र तथा स्वर्गीय राव रामचन्दजी के प्रपौत्र इन्द्रजीतसिंहजी गद्दी पर बैठाये गये। आप इस समय बालक थे। स्वर्गीय महाराजा रामचन्द्रजी की एक प्रेम-पात्री स्त्री ने जिसका नाम राधा था, अपने पुत्र रघुनाथसिंह को गद्दी पर बैठाने का प्रयत्न किया। किन्तु उन्हीं की विधवा पटरानी 'सिताजू' ने ओरछा के महाराजा उदोतसिंहजी से इसके विरुद्ध सहायता माँगी। आपकी सहायता मिलने पर बाल-राव इन्द्रजीतसिंहजी गद्दी पर बैठाये गये और रघुनाथसिंह को नदीगाँव जागीर में दिया गया।

इन्द्रजीतसिंहजी की बाल्यावस्था में राज्य-कार्य रानी सिताजू ने सँभाला। नौनेशाह गुजर को ओरछा सरकार ने इन्द्रजीतसिंहजी को गद्दी पर बिठाने में सहायता देने के लिये भेजा था। इसको रानी साहबा ने ५ गाँव जागीर में दिये और राजधर की पदवी प्रदान की। इस उपाधि के नाम पर दतिया में एक बाजार बनवाया गया, जिसका भी नाम 'राजधर का बाजार' रखा गया। इसके पश्चात् समथर दुर्ग की किलेदारी भी नौनेशाह के पुत्र मदनसिंह को सौंपी गई।

कुछ दिन बीत जाने पर पृथ्वीसिंह सौंधा के पुत्र बहादुरजू ने राज्य में झगड़ा बखेड़ा खड़ा किया। इसका दमन करने के लिये मदनसिंहजी भेजे गये। उन्होंने बड़ी चतुराई से बहादुरजू को अपने अधीन कर लिया। इस

वीरता के उपलक्ष्य में उन्हें इस राज्य की ओर से समथर और उसके आस-पास के ५ गाँवों की जागीर प्रदान की गई।

ई० स० १७६० में तत्कालीन मुगल सम्राट् शाह आलम बुन्देलखंड तशरीफ लाये। ओरछा और दतिया के शासकों ने भी उनसे उस समय भेंट की। उन्होंने इस समय इन्द्रजीतसिंहजी को राजा की उपाधि प्रदान की और एक तख्त दो राज-छत्र और अरबी बाजे आदि दिये।

ई० स० की अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मराठे क्रमशः बुन्देलखण्ड प्रान्त पर अपना आधिपत्य जमा रहे थे। ई० स० १७३२ में पन्ना के राजा छत्रसाल ने उन्हें अपना ३९ लाख का मुल्क दे दिया था और वे इस समय बुन्देलखंड के झाँसी, काल्पी, सिरोंज और दूसरे स्थानों के अधिपति हो गये थे।

ई० स० १७५२ में मराठों की ओर से नारूशंकर नामक एक सरदार ने ओरछा राज्य पर चढ़ाई कर उसका बहुत सा भाग विजय कर लिया। उसने दतिया और दमोह का भी बहुत सा हिस्सा अपने अधीन कर लिया। इसी वर्ष मालवा के सूबेदार आजम-उल्ला-खाँ ने भी दतिया नरेश से ७,००,००० रुपये वसूल कर लिये। ई० स० १७४७ में पेशवा और बुन्देले सरदारों में सुलह हो गई। इस सुलह के अनुसार बुन्देला सरदारों ने १६½ लाख रुपयों की वार्षिक आय का अपना मुल्क पेशवा को दे दिया। ई० स० १७५७ में पेशवा ने नारूशंकर को बुन्देलखण्ड से वापस बुला लिया और उसके स्थान पर महादजी गोविंद पंथ को नियुक्त किया।

ई० स० १७७० में यहाँ का तत्कालीन मराठा गवर्नर रघुनाथराव, पेशवा से स्वतंत्र हो गया। उसने झाँसी राज्य की स्थापना की और २५ वर्ष तक राज्य करता रहा। इस समय बुन्देला सरदारों के हाथों में कुछ भी सत्ता नहीं रही थी और सारे बुन्देलखंड पर मराठों का विजयी झंडा फहराने लगा था।

ई० स० १७६२ में इन्द्रजीतसिंहजी का दतिया में स्वर्गवास हो गया।
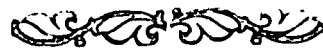
शत्रुजीतजी

[१७६२—१८०१]

श्री रामचन्द्रराव के पश्चात् आपके पुत्र शत्रुजीतजी राज्यगद्दी पर बैठे।

आपके शासन-काल में ओरछा के तत्कालीन राजा हरेसिंहजी का ई० स० १७६८ में देहान्त हो गया। इनकी मृत्यु के पश्चात् विधवा रानी ने अपने भ्राता को गद्दी पर बैठाना चाहा। स्वर्गीय हरेसिंहजी ने अपनी जीवितावस्था में कुँवर दुलाजू नामक एक लड़के को दत्तक रख लिया था और वे उसे अपने राज्य का भावी अधिकारी बनाना चाहते थे। इसलिये कुँवर दुलाजू दतिया पहुँचे और आपकी सहायता माँगी। आप स्वयं दुलाजू के साथ ओरछा गये और विधवा रानी के भाई को मार भगाया। इस वीरता के उपलक्ष्य में कुँवर दुलाजू की ओर से आपको १७ गाँव प्राप्त हुए।

ई० स० १८०० में महाराजा दौलतराव सिंधिया ने अपने लखवा दादा नामक सरदार को बरखास्त कर दिया। इससे उसने बलवा करना शुरू किया और जोधपुर के राजा से जा मिला। इसी वर्ष के नवम्बर मास में महादजी सिंधिया की विधवा रानियों के साथ उसने मेल कर लिया और सिंधिया के विरुद्ध खुले तौर पर बलवे का झंडा उठाया। सिंधिया के सेनापति मि० पेरोन उस समय जयपुर के राजा प्रतापसिंहजी के विवाह में गये हुए थे। वे वहाँ से ई० स० १८०१ के जनवरी मास तक न लौट सके। इस अवधि में लखवा दादा ने बहुत सी सेना एकत्रित कर दतिया राज्य में अपना डेरा डाला। वह अपनी सेना सहित सेंवधा के किले के पास ठहरा और युद्ध की तैयारियाँ करने लगा। महादजी सिंधिया ने भी अपने सेनापति मि० पेरोन के संचालन में एक सेना उसका सामना करने के लिये भेजी। अम्बाजी

इंग्लिया भी सिंधिया सरकार की ओर से ५००० घुड़-सवार लेकर पहुँचे। ई० स० १८०१ के मार्च में दोनों दलों का सामना हुआ। घमासान युद्ध हुआ, जिसमें सिंधिया-सैन्य की बहुत क्षति हुई। दतिया के राजा शत्रुजीत जी इस युद्ध में लखवा दादा की ओर से लड़े थे। आपने युद्ध में सिंधिया के कप्तान मि० ब्राइम्स के छक्के छुड़ा दिये थे और उसकी सेना को मार भगाई थी। अपनी फौज की यह दुर्दशा देखकर सेनापति पेरोन ने स्वयं आपका सामना किया। इस युद्ध में पेरोन महाशय को भाले की गहरी चोट लगी, किन्तु वे युद्ध में बराबर डटे रहे। दतिया नरेश शत्रजीतजी को भी इस युद्ध में इतनी गहरी चोट लगी कि शीघ्र ही वे इहलोक यात्रा संवरण करने में बाध्य हुए।

परिक्षितजी
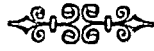
[१८०१—१८३९]

आपकी मृत्यु के पश्चात् आपके पाटवी कुँवर राजा परिक्षित जी गद्दी पर बैठें। आपने अपना खोया हुआ मुल्क मराठों से विजय करने का बहुत कुछ प्रयत्न किया तथा उनका भण्डार लूट लिया। ई० स० १८०३ की १५ वीं मार्च को कुंजन घाट में भारत सरकार और आपके बीच में सुलह की शर्तें निश्चित हुईं। ई० स० १८१८ में तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड हेस्टिंग्ज दतिया पधारे, उस समय आपको चोरासी इलाक़ा में शान्ति कायम रखने के उपलक्ष्य में इन्द्रगढ़ तथा उसके आसपास की जमीन प्रदान की गई।

ई० स० १८२४ में आपने कानपुर में लॉर्ड एमहर्स्ट से भेंट की। इसके दूसरे वर्ष लॉर्ड कॉम्बरमीअर दतिया तशरीफ लाये। आपके सन्मानार्थ दतिया में एक दरबार किया गया।

आपको कोई पुत्र न था। अतएव आपने विजयबहादुर नामक एक सुशिक्षित लड़के को गोद लिया। आपने भारत सरकार से अपने दत्तक पुत्र को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने की स्वीकृति भी प्राप्त करली। ई० स० १८३५ के दिसंबर मास में कर्नल स्लीमन ने आप से भेंट की। कर्नल साहब ने आपके स्वास्थ्य का बड़ा रोचक वर्णन किया है। आपकी उस समय ६५ वर्षकी उम्र थी। ई० स० १८२९ में लॉर्ड विलियम बेन्टिन्क ने कायथा में एक दरबार किया था, उसमें भी आप सम्मिलित हुए थे।

ई० स० १८३९ में आपकी मृत्यु हो गई। इस समय आपकी आयु ७० वर्ष की थी।

राजा परिक्षितजी के पश्चात् विजय बहादुरजी ने राज्य-सूत्र धारण किया। आपकी धर्म में बड़ी प्रवृत्ति थी। आपको विद्वानों से बड़ा अनुराग था। वृन्दावन और बनारस आदि तीर्थ-स्थानों में आपने बहुत सा रुपया दान किया। आपके शासन-काल में कोई महत्वपूर्ण घटना न हुई। ई० स० १८५७ में आप स्वर्गवासी हो गये।

भवानीसिंहजी
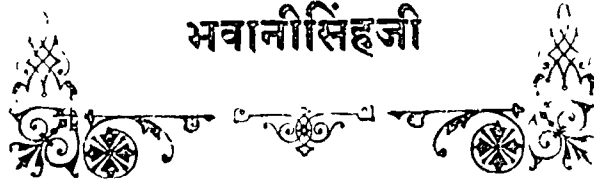
[१८५७–१९०७]

विजय बहादुरजी को कोई पुत्र न था, अतएव भसनाई परिवार के भवानीसिंहजी नामक एक कुमार दत्तक लिये गये और आपकी मृत्यु के पश्चात् गद्दी पर बैठाये गये। भसनेर परिवार की उत्पत्ति ओरछा राज्य के अधिष्ठाता राजा वीरसिंहदेव के भाई हरसिंहदेव से हुई थी। आप इस समय नाबालिग थे, इसलिये स्वर्गीय विजय बहादुरजी की पाटवी रानी रिजेंट का कार्य करने लगीं। आपने सिपाही-विद्रोह के समय भारत सरकार की

अच्छी सहायता की। आपकी मृत्यु होने पर ई० स० १८५८ में स्वर्गीय महा-राज की द्वितीय रानी प्रानकुँवर साहबा रिजेंट का कार्य देखने लगीं।

ई० स० १८५८ में सिपाही-विद्रोह शान्त होगया। भारत में चारों ओर अमन-चैन होगया। स्वर्गीय विजयसिंहजी के एक दासी पुत्र था, जिसका नाम अर्जुनसिंह था। रानी प्रानकुँवर की इच्छा उसको राज्य-पद दिलाने की थी। इससे दोनों दलों में झगड़े बखेड़े शुरू हो गये। यह मुआमला यहाँ तक बढ़ा कि रानी और उसके अनुयायियों ने सेंवधा का किला घेर कर राजा भवानीसिंहजी को युद्ध के लिये आव्हान किया। बाल राजा की यह स्थिति देख कर, भारत सरकार की ओर से एक सेना दतिया पहुँची। उस सेना ने सेंवधा के किले पर अपना अधिकार कर लिया। रानी भी उनके अधीन होगईं। अर्जुनसिंह बनारस भाग गये। वहां से भी वे नौगाँव चले गये, जहाँ उनकी ई० स० १८८७ में मृत्यु होगई। रानी प्रानकुँवर हिरासत में रखी गईं और राजा भवानीसिंहजी के बालिग होने तक दतिया का राज्य-कार्य चलाने के लिये एक ब्रिटिश ऑफिसर नियुक्त किया गया।

ब्रिटिश अधिकारी के समय में यहां की शासन-प्रणाली में बहुत कुछ सुधार हुआ। बहुत से पुराने मुकदमों का तस्फिया किया गया। इसी समय दतिया में एक हाइ स्कूल खोला गया तथा न्यायालय भी स्थापित किये गये। ई० स० १८६५ में भवानीसिंहजी को शासनाधिकार प्राप्त होगये।

ई० स० १८७५ में आपने स्वर्गीय सप्तम एडवर्ड से भेंट की। ईस्वी सन् १८७७ में आपको लोकेन्द्र का पुश्तैनी खिताब प्राप्त हुआ। आपको इस समय एक झंडा और एक सुवर्ण पदक भी प्राप्त हुआ। ई० स० १८८० में आपने अपनी राजधानी में रामलीला का वार्षिक मेला शुरू किया। इस मेले में प्रतिवर्ष बहुत से साधु एकत्रित होते हैं। ये साधु यहाँ लगभग एक मास तक ठहरते हैं। इनका खर्चा दतिया रियासत उठाती है।

ई० स० १६९४–९५ में आपने अपने पुत्र राजा बहादुर गोविंदसिंह जी के साथ बनारस तथा दूसरे तीर्थ-स्थानों की यात्रा की। ई० स० १८९७

के भयंकर दुष्काल में आपने अपनी प्रजा की बड़ी चतुराई के साथ रक्षा की। उसके उपलक्ष्य में भारत सरकार ने आपको के० सी० आइ० की उपाधि प्रदान की। ई० स० १९०३ में आप युवराज गोविंदसिंहजी के साथ देहली-राज्यारोहण दरबार में सम्मिलित हुए। इस समय भी आपको एक सुवर्ण-पदक मिला।

ई० स० १९०५ में आपने तत्कालीन प्रिन्स ऑफ वेल्स से इन्दौर में भेंट की।

ई० स० १९०७ की ४ थी अगस्त को आपका स्वर्गवास होगया।
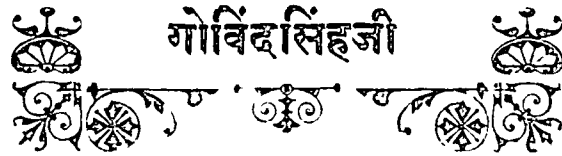
गोविंदसिंहजी

[१९०७......]

राजा भवानीसिंहजी की मृत्यु के पश्चात् उनके एक मात्र पुत्र राजा-बहादुर गोविंदसिंहजी गद्दी पर बिराजे। आप ही वर्तमान दतिया-नरेश हैं। आपको हिज़ हाइनेस, महाराजा तथा लोकेन्द्र की उपाधि का सम्मान है। आपको १५ तोपों की सलामी दी जाती है।

दतिया की रियासत बेतवा और सिन्ध नदी के बीच में स्थित है। यहाँ की जमीन सपाट है। सिर्फ सेंवढा तहसील में छोटी २ पहाड़ियाँ हैं। ये पहाड़ियाँ समुद्र की सतह से १००० फीट से ज्यादा ऊँची नहीं हैं। रियासत में सिन्ध और पहुज नामक दो मुख्य नदियाँ हैं। ये दोनों नदियाँ राज्य में करीब २ पचास मील तक बहती हैं। यहाँ की आब-हवा अति शीतोष्ण है। राज्य की औसतन वृष्टि ३८ इंच के लगभग है।

राज्य के प्रतिशत ४० आदमी कृषक हैं। जिस साल वृष्टि कम होती है, उस साल खेती भी कम होती है। हाँ, जल की कुछ कमी नहरों द्वारा पूरी कर ली जाती है। साधारण साल (Normal year) में राज्य की कुल

जमीन में से १०० एकड़ पीछे ४९ एकड़ जमीन बोयी जाती है। कुल जमीन में से करीब ६६००० एकड़ में जुआर, १०००० एकड़ में बाजरा, ८५००० एकड़ में गेहूँ, ३००० एकड़ में चाँवल, ७५००० एकड़ में चने, ५३००० एकड़ में कपास और थोड़े से हिस्से में गन्ने बोये जाते हैं। बोई हुई जमीन में से १०० एकड़ पीछे दो एकड़ में कुवों और तालाबों से पानी लिया जाता है। बाकी की ज़मीन में नहरों का पानी काम में लाया जाता है। पहले जमीन का लगान उसकी उपज-शक्ति के अनुसार लिया जाता था और वह भी फ़सल के रूप में। यह बहुधा पैदावार का $\frac{1}{2}$ या $\frac{1}{3}$ हिस्सा होता था। किन्तु अब जमीन की उपज-शक्ति के अनुसार उसकी दर निश्चित कर दी गई है। लगान की यह रकम दो किश्तों में ली जाती है।

रियासत में कहीं २ खादी और कम्बल बुने जाते हैं। व्यापार की दृष्टि से राज्य भर में दतिया ही एक महत्वपूर्ण स्थान है। रेलवे लाइन के खुल जाने से तो इस शहर के व्यापार में और भी वृद्धि होगई है। अनाज, तिलहन, कपास और शक्कर इस राज्य से बाहर भेजे जाते हैं। चमड़ा, मिट्टी का तेल, नमक और धातु का सामान आदि यहाँ बाहर से मंगाया जाता है। जी० आइ० पी० रेल्वे की एक शाखा इस रियासत के दतिया और सोनगीर नामक स्थानों से होती हुई निकलती है। इस लाइन के खुल जाने से राज्य के व्यापार में खासी वृद्धि हुई है।

राज्य में कुल मिलाकर ५१६० पैदल सेना और ९२५ घुड़सवार हैं। इस सेना में राज्य के भिन्न सरदारों और जागीरदारों के १७० लड़के भी शामिल हैं। इनके रिसाले को 'राजकुमार रिसाला' कहते हैं। राज्य में शान्ति कायम रखने के लिये दरबार ने २७० पुलिस के आदमी भी रखे हैं। इनके अतिरिक्त ९०० चौकीदार और हैं, जो भिन्न २ गाँवों में नियुक्त हैं।

दतिया में एक हाइ स्कूल है जहां अलाहाबाद यूनिवर्सिटी की एन्ट्रेंस तक की शिक्षा दी जाती है। राज्य के विभिन्न गाँवों में मिलाकर कुल ३० प्राइमरी स्कूल भी हैं, फ़ारसी, हिन्दी, संस्कृत और उर्दू पढ़ाई जाती है।

श्रीमान् महाराजा साहब राज्य के सर्वोपरि अधिकारी हैं। दीवानी और फौजदारी मुआमलों की तमाम अपीलों पर आपही फैसला देते हैं। श्रीमान् की निगरानी में दीवान साहब सब विभागों पर देख-रेख रखते हैं। राज्य-प्रबन्ध निम्न-लिखित विभागों में बटा हुआ है।

(१) दरबार, (२) रेव्हेन्यू, (३) अर्थ-विभाग, (४) जंगल खाता, (५) पुलिस और जेल, (६) विद्याखाता और शिक्षा-विभाग।

शासन के सुभीते के किये सारा राज्य दतिया, इन्द्रगढ़, नदीगाँव और सेंवघा नामक चार तहसीलों में विभक्त है। हरएक तहसील में अलग २ अधिकारी नियुक्त हैं। राज्य में कोई कायदे कानून बनाने वाली अलग संस्था नहीं है। महाराजा साहब खुद अपने दीवान की सलाह से समयानुकूल कायदे-कानून बनाते रहते हैं। फौजदारी मुकदमों में 'इन्डियन पिनल कोड' का उपयोग किया जाता है और दीवानी मुआमलों को तय करने में देश के रीति-रिवाजों का काफी ध्यान रखा जाता है। हाइकोर्ट के अन्तिम अधिकार भी श्रीमान् महाराजा साहब के ही हाथों में हैं। प्राण-दंड और कालेपानी की सजा भी श्रीमान् ही दे सकते हैं। राज्य की वार्षिक आमदनी १०,००,००० रुपये हैं, जिनमें से ६,००,०?० रुपये जागीरदारों द्वारा प्राप्त होते हैं।

दतिया यह राज्य को राजधानी है। यह शहर समुद्र की सतह से ९८० फीट की ऊँचाई पर बसा हुआ है। यहीं से राज्य का धान्य बाहर के प्रदेशों में भेजा जाता है। झाँसी और गवालियर के बीच में होने के कारण इस नगर का व्यापार अच्छी तरक्की पर है। इस नगर में बढ़िया पत्थरों के बहुत से सुन्दर मकान हैं। इन मकानों में बहुधा रियासत के उच्च अधिकारी और सरदार लोग ही रहते हैं। तारघर, अस्पताल, हाइस्कूल और जेल आदि और भी कई बड़ी २ इमारतें इस शहर में हैं। वीरसिंहदेवजी का महल भी देखने लायक है। यह महल हिन्दुस्थान की कारीगिरी का एक बढ़िया नमूना है। दतिया बम्बई से ७१८ मील और झाँसी से १६ मील के अन्तर पर है।

दतिया से करीब ५ मील के अन्तर पर "सोनागीर" की पहाड़ी है।

इस पहाड़ी पर करीब एक सौ जैन मन्दिर हैं। यह पहाड़ी अपने वक्षःस्थल पर जहाँ तहाँ मन्दिरों को लिए हुए बड़ी ही सुहावनी मालूम होती है। दतिया से १० मील के अन्तर पर उनाव अथवा बरामजी नामक एक गाँव है। इस गाँव में भी सूर्य्य का एक अच्छा मन्दिर है। इस मन्दिर को ब्रह्मण्यदेव का मन्दिर भी कहते हैं। यह फज नदी के किनारे पर बना हुआ है।

सेंवधा यह इसी नाम की तहसील का 'हेडक्वार्टर' है और सिन्ध नदी के किनारे पर बसा हुआ है। कंच नामक रेल्वे स्टेशन से यह गाँव २२ मील के अन्तर पर है। यहाँ पर प्राचीन इमारतों के बहुत से भग्नावशेष दृष्टि-गोचर होते हैं जो पुरातत्व की दृष्टि से बड़े महत्व के हैं और जिनसे मालूम होता है कि अति प्राचीनकाल में भी यहाँ पर लोग बसते थे। पुरातत्व-वेत्ताओं का कहना है कि ये अवशेष उस सारना के किले के हैं जो कि ई० स० १०१८ में महम्मद गजनवी द्वारा हस्तगत कर लिया गया था।

HISTORY OF THE GONDAL, JHALAWAR, & KARAULI STATES.

गोंडल, झालावाड़ और करौली राज्यों का इतिहास
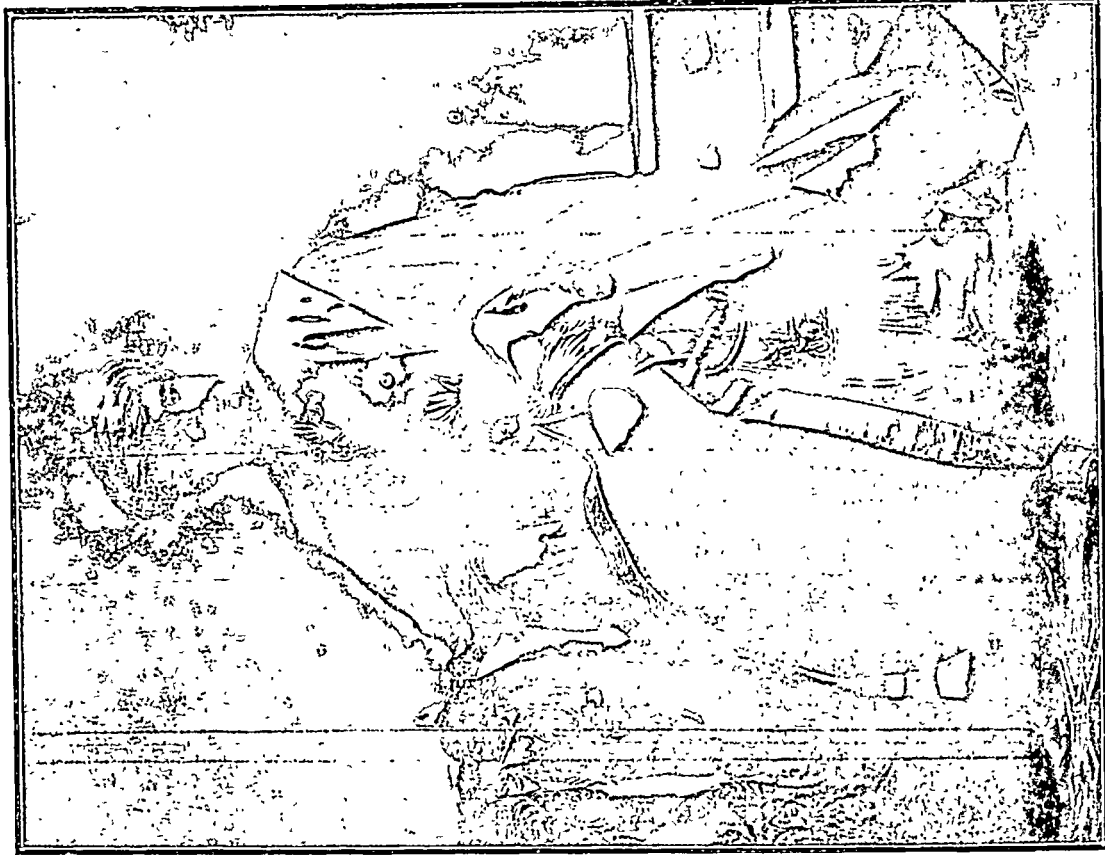
हिज़ हाइनेस ठाकुर साहिब गोंडल

भारत के देशी राज्य—

हर हाइनेस रानी साहिबा गोंडल

गोंडल राज्य का इतिहास

ठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सी में गोंडल प्रथम श्रेणी की रियासत है। गांडल के वर्तमान ठाकुर साहब चन्द्र वंशीय जाड़ेजा राजपूत हैं। कहा जाता है कि आरम्भ में आप के पूर्व्वज सिन्ध में आकर बसे और उसके बाद उन्होंने कच्छ पर विजय प्राप्त की। इस वंश की एक शाखा काठियावाड़ के 'हालार' प्रदेश में आकर बसी और उसने 'जाम' की पदवी धारण की। जैसे २ इस राज के वंश-सदस्यों की संख्या बढ़ती गई, वैसे २ नये राज्यों की उत्पत्ति होती गई। गोंडल, ध्रोल और राजकोट राज्य की उत्पत्ति इसी प्रकार हुई। इस राज-वंश के मूल-पुरुष कुम्भाजी प्रथम हुए, जो ई० सन् १७३४ के लगभग कोई २० ग्रामों के शासक हो गये। इनकी राजधानी अरदोई थी। कुम्भाजी प्रथम के बाद संग्राम जी प्रथम ई० सन् १६४९ में राज-सिंहासन पर बैठे। आप बड़े वीर और योद्धा थे। आपकी सैनिक योग्यता बहुत बढ़चढ़ कर थी। आपने जूनागढ़ के सूबेदार को जो सैनिक सहायता पहुँचाई थी उसी के उपलक्ष में आपको गोंडल के छेयासी ग्राम प्राप्त हुए। आपही ने ई० सन् १६५३ में गोंडल को अपनी राजधानी बनाया।

इसके पश्चात् द्वितीय कुम्भाजी बड़े ही शक्तिशाली नरेश हुए। आपने भी जूनागढ़ के शासक की सहायता की। इसके उपलक्ष में आपको और भी बहुत सा प्रदेश प्राप्त हुआ। आपके बाद मूलजी, सांगाजी और देवोजी क्रम से गोंडल की राजगद्दी पर बैठे। ई० सन् १८१२ के लगभग देवजी के

पौत्र संग्रामजी द्वितीय ने गोंडल के राज्य-सिंहासन को सुशोभित किया। आपके समय में राज्य ने बड़ी तरक्की की। आप बड़ा ही सादा जीवन व्यतीत करते थे। आपने अपने को एक बड़ा ही योग्य और उदार शासक सिद्ध किया। ई० सन् १८५९ में आपका देहावसान हो गया।

संग्राम जी द्वितीय के पश्चात् वर्तमान ठाकुर साहब भगवतसिंहजी राज्य-सिंहासन पर बिराजे। इस समय आपकी अवस्था केवल ४ वर्ष की थी। अतएव राज-शासन का प्रबन्ध कुछ वर्ष तक ब्रिटिश सरकार को करना पड़ा। आप योग्य उम्र में राजकुमार कालेज राजकोट में भरती किये गये। वहाँ आपने अपनी अपूर्व प्रतिभा का परिचय दिया। कालेज के अध्यापकगण आपके उज्वल भविष्य का सुखदाई स्वप्न देखने लगे। सुप्रख्यात शिक्षा-विशारद मेंकनकटन और संलबी ने आपके भविष्य के लिये अच्छी आशा प्रगट की। कालेज में शिक्षा समाप्त कर श्रीमान ई० सन् १८८३ में यूरोपयात्रा के लिये पधारे। इस प्रवास में आपको जो अनुभव हुए, वे आपने "Journal of a visit to England in 1883" नामक ग्रंथ में ग्रंथित किये हैं। लंडन के संसार-विख्यात समाचार-पत्र ने इस ग्रन्थ की बड़ी ही प्रशंसा की। बम्बई के "The Times of India" नामक पत्र ने आपके ग्रन्थ की प्रशंसा करते हुए आपको संसार के सर्वोच्च लेखक की श्रेणी में बैठने योग्य बतलाया। बुडापेस्ट के प्रोफेसर वेम्बरी ने इस राज-लेखक की प्रशंसा के पुल बाँधे।

विलायत से वापस लौटने पर ये नवयुवक नरेश कर्नल नट के साथ राज-कार्य्य देखने लगे। ई० सन् १८८४ की २५ अगस्त को आपको राजकीय सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गये। उस समय जो आपने व्याख्यान दिया था उसमें आपने शासक के आदर्श और कर्तव्य का विवेचन किया था। ई० सन १८८४ में आप बम्बई विश्व-विद्यालय के फेलो हुए।

ई० सन् १८८६ में गोंडल के उत्साही नवयुवक नरेश एडिनबरो के विश्वविद्यालय में औषधि विज्ञान का अनुभव करने के लिये दाखिल हुए और वहाँ आप १५ मास तक ठहरे। उक्त विश्वविद्यालय से आपको एल० एल०

डी० की सर्व्वोच्च उपाधि दी। सन् १८८७ की स्वर्ण जुबिली में आप काठिया-वाड़ नरेशों के प्रतिनिधि की हैसियत से उपस्थित हुए। इसी समय आपको महाराणी विक्टोरिया ने के० सी० आई० ई० की पदवी से विभूषित किया। सन् १८०७ के अगस्त में आप स्वदेश को लौटे। आपकी प्रजा ने बड़े ही उत्साह से आपका स्वागत किया। गोंडल राज्य के उन्नत शासन के कारण भारत सरकार ने इसे प्रथम श्रेणी की रियासत के रूप में स्वीकार किया। इसी साल से ठाकुर साहब की स्थायी रूप से ११ तोपों की सलामी कर दी।

इसके कुछ वर्ष बाद श्रीमती महारानी साहबा श्रीनन्द कुंवरबा के अस्वस्थ हो जाने से आप युरोप के लिये रवाना हुए। उस समय आप बहुत समय तक एडिनबरा में रहे। वहाँ आपने औषधि विज्ञान का और भी अध्ययन किया। आप एडिनबरा के "Royal College of Physicians" के सदस्य और फेलो हुए। आपने उक्त विद्यालय से एम० बी० सी० एम० और एम. डी. की उच्च उपाधियाँ भी प्राप्त कीं। ई० सन १८९२ में सुविख्यात आक्सफर्ड विश्वविद्यालय ने आपको डी० सी० एल० की उपाधी से विभूषित किया। श्रीमान् की बौद्धिक प्रतिभा का उनकी प्रजाजनों पर बड़ा ही अच्छा असर पड़ा। और उन्होंने सार्वजनिक चन्दा कर श्रीमान् की पीतल की मूर्ति स्थापित का। इस मूर्ति का उद्घाटन बड़ोदा के सुशिक्षित महाराज के हाथों से हुआ था। उधर विलायत में महारानी साहबा आरोग्य हो गईं और उन्हें श्रीमती सम्राज्ञी विक्टोरिया ने सी० आई० की पदवी से विभूषित किया। उस समय श्रीमान् ने महारानी साहबा सहित सारे संसार में परिभ्रमण किया। यूरोप के विभिन्न देश, अमेरिका, जापान, चायना, आस्ट्रेलिया और सिलोन आदि देशों में प्रवास करते हुए आप ई० सन् १८९३ में स्वदेश को लौट आये। उसी साल कलकत्ते में मेडिकल कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। उसमें श्रीमान् "Royal college of Physician" के प्रतिनिधि की हैसि-यत से सम्मिलित हुए। बुडापेस्ट नगर में जो अन्तर-राष्ट्रीय वैद्यकीय कांग्रेस हुई था उसके एक महत्व-पूर्ण विभाग के आप अध्यक्ष चुने गये थे। ई०

सन् १८९६ में श्रीमान् का लिखा हुआ A short History of Aryan Medical Science नामक अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ सुविख्यात मेकमीलियन कंपनी के द्वारा प्रकाशित हुआ। इस ग्रंथ ने भारतीय सभ्यता के साहित्य में बड़ा ही प्रकाश डाला। इस ग्रन्थ-रत्न में श्रीमन् ने यह दिखलाया कि आर्य्य जाति ने प्राचीन काल में वैद्यक विज्ञान में कितना अपूर्व विकाश कर लिया था। इस ग्रन्थ की यूरोप, अमेरिका और भारतवर्ष के विद्वानों ने बड़ी प्रशंसा की।

इ० सन् १८९६-९७ में श्रीमान् फिर युरोप यात्रा के लिये पधारे और आप उस समय मास्को नगर में रूस सम्राट् निकोलस ज़ार के अभिषेकोत्सव में सम्मिलित हुए। उसी साल आपने लण्डन नगर में श्रीमती सम्राज्ञी विक्टोरिया के 'डायमन्ड ज्युबिली' उत्सव में भाग लिया और उसी समय आपको श्रीमती सम्राज्ञी विक्टोरिया ने जी० सी० एस० आई० की पदवी से विभूषित किया। रायल एशियाटिक सोसाइटी की बम्बई की शाखा का जो शताब्दी उत्सव हुआ था उसमें आप रायल सोसाइटी आफ एडिनबरो और रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ लण्डन के प्रतिनिधि रूप से सम्मिलित हुए थे।

श्रीमान् गोंडल नरेश एक सुशिक्षित और प्रजाप्रिय महानुभाव हैं। आपने अब तक अनेक प्रजोपकारी कार्य्य किये हैं। आपने अपने राज्य में बहुत बड़ी नींव पर आबपाशी का आयोजन किया है। इस आबपाशी से राज्य की कोई ४० हजार एकड़ भूमि जल ग्रहण करती है।

कुवें खुदवाने के लिये किसानों को हजारों रुपया बतौर तकावी में दिया गया। बेरी और पनेली के तालाबों की वाटर वर्क की स्कीम के लिये आपने १५ लाख रुपया खर्च किया। इसके अतिरिक्त आपने आवक महसूल बिलकुल माफ कर दिया। आपके उत्साह-दान से राज्य में कई जीनिंग फेक्टरियाँ, काटन प्रेस और आयर्न फेक्टरीज़ स्थापित हुई। इसके अतिरिक्त रूई, ऊन और रेशम के कपड़े बनाने के लिये १२०० हेन्ड लूम्स काम कर रहे हैं। कहा जाता है कि श्रीमान् गोंडल नरेश ने इस प्रकार के जन-हित कार्य्य के कामों में कोई डेढ़ दो करोड़ रुपया खर्च किया है।

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं श्रीमान् गोंडल नरेश एक शिक्षित नरेश हैं; और इससे शिक्षा-प्रचार के कार्य्य में आप बड़ी दिलचस्पी ले रहे हैं। राज्य में लगभग सवा सौ स्कूल, दो हाई स्कूल जिनमें से एक लड़कियों के लिये है और कई वर्नाक्यूलर और संस्कृत स्कूल हैं। विद्यार्थियों के लिये होस्टेल आदि की भी अच्छी व्यवस्था है। जमीदारों के लड़कों के लिये एक कालेज भी खोला गया है, जिसका नाम 'ग्रासिया' कालेज है। योग्य विद्यार्थियों को छात्र-वृत्तियाँ भी दी जाती हैं। जो विद्यार्थी विदेश में अध्ययन करना चाहें, उनके लिये रियासत ने डेढ़ लाख रुपये का दान दिया है।

श्रीमान् गोंडल नरेश वैद्यक विज्ञान के पारदर्शी विद्वान् हैं। इससे आपने अपने राज्य में कई अच्छे २ अस्पताल और डिस्पेंन्सरियाँ खोल रखी हैं। आप ही पहले नरेश हैं जिन्होंने अपने राज्य में चलते फिरते अस्पतालों की योजना की थी, जिससे दूरवर्ती ग्रामों में बसनेवाले गरीब किसानों को भी वैद्यकीय सहायता मिल सके। इस कार्य्य की प्रशंसा करते हुए लार्ड हेरिस ने कहा था, कि श्रीमान् के कार्य्य का अनुकरण न केवल देशी राज्यों में, वरन् ब्रिटिश भारत में भी होना चाहिये। गरीब और दुर्बलों के लिये श्रीमान् ने एक अस्पताल भी खोल रखा है। गोंडल में एक अनाथालय भी है जिसमें अनाथ बच्चों के लिये खाने-पीने का प्रबन्ध है। यहाँ पर श्रीमान् की धर्म्म-पत्नी श्रीमती रानी साहिबा का परिचय देना भी आवश्यक है। आप भी बड़ी विदुषी हैं। आपने 'भूमण्डल परिक्रमा' नामक एक अतीव महत्व-पूर्ण ग्रन्थ गुजराती भाषा में लिखा है। ई० सन् १९०९ के २८ अक्तूबर को राजकोट में जो गुजराती साहित्य परिषद् हुई थी, उसकी आप अध्यक्षा थीं। ई० सन् १९०९ में गोंडल राज्य की प्रजा ने आपकी 'सिल्व्हर जुबिली' मनाई। इस कार्य्य के लिये प्रजा ने एक लाख रुपया इकट्ठा किया था और उन्होंने श्रीमान् को एक अभिनन्दन पत्र दिया था; जिसमें उनके शिक्षा और प्रजा-प्रेम की बड़ी सराहना की गई थी।
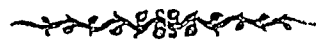
झालावाड़ राज्य का इतिहास

राजपूताना के दक्षिण-पूर्व में यह रियासत स्थित है। इसका क्षेत्रफल ८१० वर्ग-मील और लोक-संख्या ९६२१५ है। इसमें ४१० कस्बे तथा ग्राम हैं। इसमें चम्बल और काली-सिन्ध जैसी बड़ी २ नदियाँ बहती हैं। यहाँ का जल-वायु आरोग्यकारक है, और वर्षा का औसत ३३ इंच है। रियासत की आमदनी लगभग ६००००० है। यहाँ फी सदी ८७ हिंदू और शेष में अन्य जातियाँ हैं। मारवाड़ी और हाडोती की जबान यहाँ पर प्रधान रूप से बोली जाती है। आबपाशी के लिये खास तौर से कुएँ काम में लाये जाते हैं। यहाँ जवार, मक्का, रुई, चना और गेहूँ अधिकता से होते हैं। यहाँ पर साल में दो मेले होते हैं, जिनमें दूर २ से पशु बिक्री के लिये आते हैं। यहाँ ४३ शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाएँ हैं। यहाँ पर शिक्षा बिलकुल मुफ्त दी जाती है। यहाँ एक हाई स्कूल है जिसका प्रयाग विश्व विद्यालय से सम्बन्ध है। गरीब विद्यार्थियों को पेन पेंसिल अध्ययन के लिये मुफ्त दिये जाते हैं। स्त्री-शिक्षा का भी यहाँ अच्छा प्रचार है। कहा जाता है कि राजपूताने में सब से अधिक पढ़ी-लिखी स्त्रियों का औसत यहीं पर है। यहाँ पाँच अस्पताल हैं।

झालावाड़ राज्य के वर्तमान महाराज राज-राणा महोदय झाला वंश के हैं। कोटे में जब महाराव भीम सिंह राज्य कर रहे थे, उस समय झाला-वाड़ राज-वंश के जनक भाऊसिंह के पुत्र माधवसिंह काठियावाड़ के हलवद नगर से राजपूताने को गये। उन्होंने अपने बल, विक्रम और प्रतिभा के बल पर कोटा राज्य के सेनापति का पद प्राप्त किया। इतना ही नहीं उन्हें नानता ग्राम की जागीर भी प्राप्त हो गई। इस पद और जागीर को कई वर्ष तक उनके वंशज भोगते रहे। माधव सिंह जी के प्रपौत्र जालिम सिंह जी झाला बड़े

हिज हाइनेस महाराज राना सर भवानी सिंह जी बहादुर K. C. S. I.

प्रतापी पुरुष हुए। ई० सन् १७५८ में १८ वर्ष की अवस्था में वे कोटे के प्रधान सेनापति के पद पर आसीन हो गये। उनके बल, बुद्धि और विक्रम का प्रकाश चारों ओर फैलने लगा। भारतवर्ष के राजनैतिक मञ्च पर उनकी प्रधानरूप से गणना होने लगी। ई० सन् १७६१ में उन्होंने भटवाड़ा में जयपुर की फौज पर बड़ी भारी विजय प्राप्त की। परन्तु इसके कुछ ही दिन बाद कोटा के तत्कालीन महाराव और आपमें मतभेद हो गया। इससे आप उदय-पुर चले गये। यहाँ यह कहना आवश्यक है कि महाराणा उदयपुर को जब मराहठों ने बहुत तंग किया था और वे आर्थिक दृष्टि से इतने निर्बल हो गये कि उन्हें अपनी रानियों के जेवर तक बेचने की नौबत आई, तब इन जालिमसिंह जी ने उनकी बड़ी आर्थिक सहायता की थी। महाराणा ने आपके साथ बहुत ही अच्छा व्यवहार किया और आपको राजराणा की उपाधि प्रदान की। इसके कुछ दिनों बाद कोटा के महाराणा और आपमें फिर मेल हो गया। ई० सन् १७७१ में जब महाराव भीम सिंह का देहान्त हो गया तब नवयुवक महाराव उम्मेद सिंह के आप संरक्षक बनाये गये। जालिमसिंह जी का प्रभाव लगभग आधी सदी तक अटल रहा। ई० सन् १८१७ में जब कोटा और ब्रिटिश सरकार के बीच संधी हुई, उसमें प्रधान हाथ आप ही का था। इसके दूसरे साल एक दूसरी उपसंधि के द्वारा कोटा राज्य का सम्पूर्ण शासन आपको और आपके वंशजों के लिये रक्षित कर दिया गया। किन्तु थोड़े ही दिनों के बाद यह पद्धति अव्यवहार्य्य मालूम हुई। इससे ब्रिटिश सरकार ने कोटे राज्य से १७ जिले निकाल कर जालिम-सिंह जी के पोते मदनसिंह जी को दे दिये। बस इसी समय आधुनिक झालावाड़ राज्य की उत्पत्ति हुई। ई० सन् १७३८ में यह राज्य ब्रिटिश संर-क्षिता में आया। यहाँ के नरेश को महाराज-राणा की पुश्तैनी उपाधि प्राप्त है; और उन्हें १५ तोपों की सलामी का मान है।

महाराज-राणा मदनसिंह जी के बाद पृथ्वीसिंह जी राज-सिंहासन पर बैठे। उस समय भारतवर्ष में ई० सन् १८५७ की भयंकर विद्रोहाग्नि फैल

रही थी। ऐसे समय में महाराज-राणा पृथ्वीसिंह जी ने अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए भी ब्रिटिश सरकार की बड़ी सहायता की। ब्रिटिश सरकार ने आपकी बहुमूल्य सहायता को मुक्त-कंठ से स्वीकार किया है।

महाराज मदनसिंह जी के बाद महाराज-राणा जालिमसिंह जी द्वितीय राज-सिंहासन पर बैठे। उस समय आपकी अवस्था केवल १० वर्ष की थी। ई० सन् १८८३ में आपको पूर्ण राज्याधिकार प्राप्त हुए। महाराज-राणा जालिम सिंह जी प्रजाप्रिय और दबंग महानुभाव थे। आप बड़ी स्वतन्त्र प्रकृति के थे। आपके मिजाज में बड़ी तेजी थी। आप ई० सन् १८९६ में राजगद्दी से अलग कर दिये गये। आप पर कुशासन करने का अभियोग लगाया गया था। यह अभियोग कहाँ तक ठीक था, इस पर समालोचनात्मक दृष्टि से विचार करने के लिये यह स्थान उपयुक्त नहीं है। आप काशी रहने के लिये बाध्य किये गये; जहाँ ई० सन् १९१२ में आपका देहान्त हो गया।

महाराज राणा जालिमसिंह जी के सिंहासनच्युत होने पर फतेह-पुर के ठाकुर छत्र-साल जी के पुत्र कुँवर भवानीसिंह जी झालावार के राज्य सिंहासन पर अधिष्ठित हुए। आप कोटा के प्रथम झाला वंशीय फौजदार माधो सिंह जी के वंशज थे। महाराज राणा भवानीसिंह जी का जन्म ई० सन् १८७४ की ४ सितम्बर को हुआ। आपने अजमेर के 'मेयो कालेज' में शिक्षा प्राप्त की। 'कालेज' में आपने अपनी प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया। ई० सन् १८९९ की ६ फरवरी को आपको पूर्ण राज्याधिकार प्राप्त हुए। अधिकार प्राप्त होते ही आपको एक भयानक प्राकृतिक विपत्ति का सामना करना पड़ा। ई० सन् १८९९-१९०० में हिन्दुस्तान में भयंकर अकाल पड़ा। ऐसे कठिन समय में प्रजाप्रिय महाराजा ने अपनी प्रजा की रक्षा के लिये कई गरीबखाने खोले, जहाँ भूख से तड़फते हुए हजारों मनुष्यों को भोजन और वस्त्र मिलते थे। सस्ता अनाज बेचने की व्यवस्था की गई; किसानों को ४ लाख का भूमिकर माफ कर दिया गया। और भी कई तरह से श्रीमान् ने प्रजा-रक्षक साधनों का अवलम्बन किया।

ई० सन् १९०४ में श्रीमान् स्वास्थ्य-सुधार के लिये युरोप-यात्रा के लिये पधारे; और उसी साल के नवम्बर मास में स्वदेश को वापस लौट आये। उस समय स्वर्गीय 'सम्राट् सप्तम एडवर्ड' ने अपने 'बकिंगहैम' राज-प्रासाद में आपका बड़ा आदर-आतिथ्य किया।

महाराज-राणा झालावार न केवल विद्यारसिक ही हैं, बल्कि बड़े विद्वान् हैं। विद्वानों के आप बड़े आश्रयदाता हैं। आप कई भाषाओं के अच्छे ज्ञाता और उच्च श्रेणी के लेखक हैं। बड़े २ गहन विषयों पर विद्वानों के साथ वार्तालाप करने में आप अपूर्व आनन्द का अनुभव करते हैं। सुविख्यात हिन्दी-लेखक पण्डित गिरिधर शर्म्मा जैसे विद्वानों को अपने पास रखना आपके विद्या-प्रेम का एक ज्वलन्त उदाहरण है। आप बड़े ही पुस्तक-प्रेमी हैं, और आपका पुस्तकालय इतना विशाल है कि उसके मुकाबले में राजपूताने में दूसरा कोई पुस्तकालय नहीं है। आप देशी और विदेशी कई विद्वत्-परिषदों के अध्यक्ष वा सदस्य हैं। इनमें नीचे लिखी हुई समितियों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं—

१ रायल एशियाटिक सोसाइटी।

२ दी रायल एस्ट्रानामिकल सोसाइटी।

३ दी रायल बोटानिकल सोसाइटी।

४ दी रायल जाग्रफिकल सोसाइटी।

५ दी रायल इन्टिट्यूशन आफ ग्रेट ब्रिटेन।

६ वाइस प्रेसिडेंट आफ दी एस्ट्रानामिकल सोसाइटी आफ इंडिया।

७ दी इन्टर नेशनल आर्बिट्रेशन एन्ड पीस असोसिएशन सोसाइटी।

खास झालावार नगर में भी आपने कुछ ऐसी संस्थाएँ खोल रखी हैं, जहाँ आप विद्वानों के साथ कई विषयों का वार्तालाप कर आनन्द का अनुभव करते हैं।

महाराज राणा को विद्या का एक प्रकार से व्यसन है। भारतवर्ष के वतमान विद्वान् नरेशों में आपका विद्या की दृष्टि से बहुत ऊँचा आसन है।

हिन्दी साहित्य से भी आपको विशेष लगन है। झालावर के सुप्रसिद्ध विद्या-प्रेमी सेठ लालचन्द जी ने जो ग्रन्थ माला-प्रकाशित की थी उसमें आपका विशेष प्रोत्साहन था।

ई० सन् ११०४ में आपने युरोप की जो यात्रा की थी, उसका सविस्तृत वर्णन अपनी Travel ptcture नामकग्रन्थ में किया है। एक राजपूत नरेश की दृष्टि से इस ग्रन्थ में स्पेन, पोर्चुगाल, फ्रांस, स्काटलैण्ड, आयर्लैंड, हालैंड, डेनमार्क, व्हायना, स्विट्झरलैंड, आस्ट्रिया आदि कई देशों के मनोहर स्थानों के वर्णन के साथ २ वहाँ के रीति रिवाजों पर भी समालोचनात्मक दृष्टि से विचार किया गया है। यह ग्रंथ श्रीमान् भारत सम्राट् को समर्पित किया गया है।

श्रीमान महाराज-राणा ने शासनकार्य्य में प्रजा का योग प्राप्त करने का स्तुत्य प्रयत्न किया है। आपने लोक-नियुक्त म्युनिसिपैलिटी स्थापित की है; और सब से बड़े गौरव की बात यह है कि आपने सम्पूर्ण स्त्री पुरुषों को वोट देने का अधिकार प्रदान कर दिया है। भारतवर्ष के उन्नतिशील नरेशों में महाराज-राणा साहब का बहुत ऊँचा आसन है।

भारत के देशी राज्य—

हिज़ हाइनेस महाराजा साहब रीवां
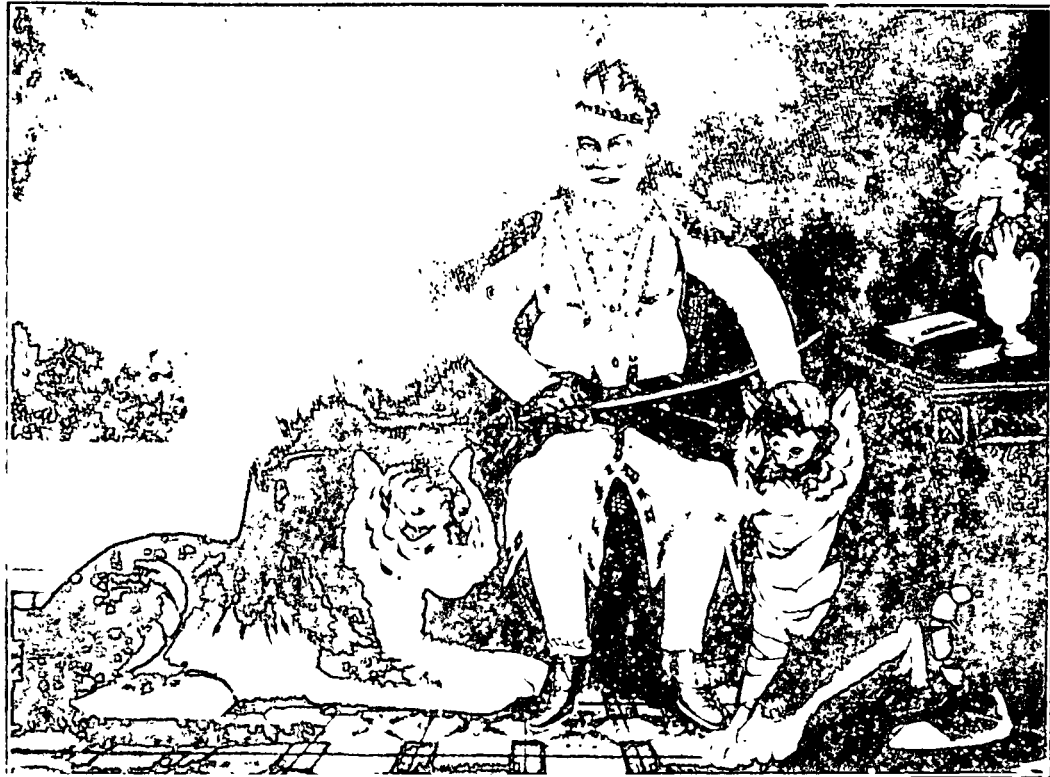
करौली राज्य का इतिहास

हाराजा करौली सुप्रख्यात यदुवंश के हैं। करौली का अति प्राचीन इतिहास अभी अंधकार में है। पौराणिक कथानक से पता चलता है कि महाराज यदु मथुरा के राजा थे; और जिन्द्रपाल नामक उनके एक पुत्र ने अपनी राजधानी ※ (बियाना) को परिवर्तित कर दिया। आपके बाद आपके पुत्र और प्रपौत्र राजगद्दी पर बैठे, और उन्हीं ने ई० सन् ९९५ में 'बियाना' का विशाल, सुविख्यात किला बनवाया। ई० सन् १३२७ में इसी राजवंश में महाराजा अर्जुनदेव हुए; और उन्होंने नीन्दार की सूबेदारी प्राप्त की। इसके २१ वर्ष बाद आस-पास के स्थानों पर आपका अधिकार होगया, और मथुरा जिले के २४ परगनों पर आपका विजयी झंडा फहराने लगा। बस इसी प्रकार ई० सन् १३४८ में करौली राज्य की नींव पड़ी। आपके कई पुश्तों बाद महाराजा गोपालसिंह हुए। आपने ई० सन १५३३ से १५६९ तक राज्य किया; आपको सम्राट् अकबर ने 'दाउद खाँ' से युद्ध करने के लिये दौलताबाद भेजा था। कहने की आवश्यकता नहीं कि आपको विजय प्राप्त हुई और सम्राट् अकबर ने प्रसन्न होकर 'रणजीत नगारा' भेट किया, जो अभी तक 'करौली' में मौजूद है। इतना ही नहीं सम्राट् अकबर ने आपको अजमेर की किलेदारी का कार्य्य-भार भी सौंपा। यह भी कहा जाता है कि आपने आगरा के किले की नई नींव लगाई थी। आप ही ने बहादुरपुर का किला बनवाया था। आपकी छठी पुश्त में महाराजा धर्मपाल हुए। आप बड़े बहादुर थे। करौली के आस पास रहनेवाले मीणों को तलवार के बल से आप वश में लाये थे; और आप ही ने

※ यह राजधानी अभी भरतपुर रियासत में है।

करौली को अपनी राजधानी बनाया। ई० सन् १७२४ में महाराजा गोपाल-सिंह राज-गद्दी पर बैठे। उस समय आप नाबालिग थे। आपने करौली शहर के आसपास शहर-पनाह बनवाई। गोबालमन्दिर, कल्याण जी का नया मन्दिर और मदनमोहन जी के मन्दिर आप ही के बनवाये हुए हैं। आपकी बहन का विवाह जयपुर के महाराजा जयसिंह जी के साथ हुआ था।

महाराजा गोपालसिंह जी ने सबलगढ़ का किला विजय कर उस पर अपनी विजय-पताका फहराई थी। आपने गवालियर के आसपास के मुल्कों पर भी अपने विजय-घोड़े दौड़ाते थे।

ई० सन् १७५३ में आप मुगल दर्बार में उपस्थित हुए; और मुगल सम्राट् की ओर से आपको 'महीमुरातिब' का पद प्राप्त हुआ। आपने करौली में कई अच्छे २ भवन बनवाये, जो अभी तक आपके नाम का स्मरण दिलाते हैं। ई० सन् १७५७ में आपका देहान्त हो गया। आपके स्मारक-रूप में करौली नगर में एक सुन्दर छत्री बनी हुई है। करौली के नरेशों में आपका नाम विशेष गौरवशाली माना जाता है।

आपके बाद महाराजा प्रतापपाल राज-सिंहासन पर बैठे। आपने ई० सन् १८३७ से १८५० तक राज्य किया। आपने अपनी बहन का विवाह महाराजा कोटा के साथ किया था। घरू झगड़े-बखेड़ों के कारण आप पर बड़ी २ विपत्तियाँ आईं; और ये विपत्तियाँ आपके उत्तराधिकारी महाराजा नरसिंह पाल के समय तक बनी रहीं। अखिर लेफ्टिनेन्ट मांकमेसन ने आकर अंग्रेजी फौज द्वारा शान्ति स्थापित की।

महाराजा प्रतापपाल के बाद महाराजा मदनपाल करौली के राज-सिंहासन पर बैठे। आप ब्रिटिश सरकार के बड़े सहायक थे। ई० सन् १८५७ में ब्रिटिश राज्य के खिलाफ जो तूफ़ान उठा था उसमें आपने ब्रिटिश सरकार की तन, मन और धन से सहायता की थी। इन सहायताओं के उपलक्ष्य में तत्कालीन ब्रिटिश अधिकारियों ने आपके राज्य को २५ हजार रुपये मासिक देने का वचन दिया था। तत्कालीन गवर्नर ज़नरल ने ई० सन् १८५७ की ५ वीं

जून के खरीते में आपकी बहुमूल्य सहायता को मुक्त-कंठ से स्वीकार किया है। इसी समय अर्थात् ई० सन् १८५७ में करौली सीमा के पास हिंडोन ग्राम में नव्वाब वजीर मोहम्मद खाँ की अधीनता में बलवाइयों का एक समूह उपस्थित हुआ, और उसने उस प्रदेश की पहाड़ियों पर अधिकार कर लिया। करौली की फौजों ने नव्वाब वजीर मुहम्मद पर हमला किया और उसे वहीं मार डाला। इतना ही नहीं उसके बहुत से अनुयायियों को कैद भी कर लिया। इस घटना की सूचना तत्कालीन लेफ्टिनेन्ट गवर्नर को दी गई; और उन्होंने करौली की फौज की बहादुरी की बड़ी तारीफ की। इस लड़ाई में जो कैदी गिरफ्तार हुए थे, वे सब अंग्रेजों को सौंप दिये गये।

इसी बीच में कोटे की फौज ने बलवे का झण्डा उठा कर कई ब्रिटिश अफसरों को मार डाला, उस समय भी करौली दरबार ने ब्रिटिश सरकार की बड़ी सहायता की थी। कहने का मतलब यह है कि कई कठिन और नाजुक अवसरों पर करौली दरबार ने ब्रिटिश सरकार को मदद दी थी।

ई० सन् १८५९ की २ दिसम्बर को तत्कालीन वाइसराय लार्ड केनिंग ने इनकी सेवाओं से प्रसन्न होकर २० हजार रुपये की एक खिलअत आपको उपहार-रूप में प्रदान की थी। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश गवर्नमेंट ने दरबार का सारा कर्ज भी माफ कर दिया था। आपकी तोपों की सलामी भी १७ कर दी गई। ई० सन् १८५९ में जो दरबार हुआ था उसमें आम तौर से गवर्नर जनरल ने आपको ब्रिटिश-सरकार की ओर से हार्दिक धन्यवाद दिया था। ई० सन् १८६२ में आपको गोद लेने की सनद भी ब्रिटिश-सरकार से प्राप्त हुई। ई० सन् १८६६ में जी० सी० एस० आई० की पदवी भी मिली।

महाराजा मदनपाल के स्वर्गवास के बाद महाराजा लछमनपाल करौली के राजसिंहासन पर बैठे। आप थोड़े ही दिनों तक इस संसार में रह सके; गद्दी-नशीनी के कुछ ही सप्ताह बाद कराल काल ने आपको उठा लिया। महाराजा लछमन पाल के बाद क्रम से महाराजा जयसिंह पाल और मराजा अर्जुनपाल राजसिंहासन पर बैठे।

महाराजा अर्जुनपाल के बाद महाराजाधिराज महाराज सर भँवरपाल देव बहादुर, यदुकुल चन्द्रभाल जी० सी० आइ० ई० करौली का शासन करने लगे। आपका जन्म ई० सन् १८६४ की २० फरवरी को हुआ। आपने अजमेर के 'मेयो' कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की। आप अंग्रेजी, उर्दू व संस्कृत जानते हैं। संस्कृत भाषा पर आपका अधिकार है। संस्कृत विद्वानों से आप बड़ा प्रेम रखते हैं। धार्म्मिक चर्चा में आपको बड़ी दिलचस्पी है।

शिकार का आपको बड़ा शौक है। कहा जाता है कि आपने लगभग ३०० शेरों को मारा। आपने मदनपुर और रूंडकपुर में तालाव बनवाये और उस नदी पर पुल बनवाया जो हिंडोन और करौली के बीच में है। इस कार्य्य में लगभग एक लाख रुपया खर्च हुआ। महाराजा को पूर्ण राज्याधिकार प्राप्त हैं। आपको फाँसी देने तक का अधिकार है।

ई० सन् १८९७ में करौली राज की फसल बिगड़ गई थी उस समय आपने कई लाख रुपया व्यय कर प्रजा की रक्षा का आयोजन किया था।

करौली राज्य में ७ स्कूल हैं, जिसमें एक हाइ स्कूल है। खास करौली नगर में एक कन्या-पाठशाला भी है। राज्य के अन्य जिलों में ५ पाठशालाएँ हैं। हाइस्कूल में मैट्रिक्यूलेशन तक की शिक्षा दी जाती है। राज्य में ५ अस्पताल हैं, जिनमें दो खास करौली नगर में है। करौली नगर में म्युनिसिपैलिटी भी है।
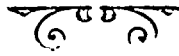
ध्रांगधरा और नवानगर-राज्यों का इतिहास

HISTORY OF THE DHRANGDHARA & NAVANAGAR STATES.

ध्रांगधरा-राज्य का इतिहास

ध्रांगधरा काठियावाड़ पोलिटिकल एजेंसी में प्रथम श्रेणी की रियासत है। यहाँ के महाराजा सुप्रसिद्ध झाला राजवंश के हैं। इस राजवंश के संस्थापक महाराजा हरपालदेव थे, जिन्होंने काठियावाड़ प्रायद्वीप का बहुतसा हिस्सा अपने अधीन कर लिया था। अपने वंश के नाम पर आपने अपने विजय किये हुए प्रदेश का नाम झालावाड़ रक्खा। ई० स० की सोलहवीं शताब्दी में आपके अधिकार में कठियावाड़ का बहुतसा हिस्सा तथा विपुल सम्पत्ति थी। आपके पश्चात् आपके भाई सिधोजी ने भी इस राज्य का उपभोग किया। किन्तु आपके पश्चात् यह राज्य कई भागों में विभाजित हो गया और वांकानेर, वधवान, झालरापाटन आदि बहुत से छोटे २ राज्य स्थापित हो गये।

ई० स० की अठारहवीं शताब्दी के शुरू में यहाँ राजा रायसिंहजी राज्य करते थे। उन्होंने ध्रांगधरा में एक किला बनवाया। इनके पश्चात् राजा जसवन्तसिंहजी राज्य-गद्दी पर बैठे। इन्होंने इस किले में रहना पसन्द किया और ई० स० १८०० के लगभग ध्रांगधरा को अपने राज्य का मुख्य नगर बनाया था। ई० स० १८०० के कुछ ही वर्ष बाद सारा काठियावाड़ प्रायद्वीप अंग्रेजों के अधीन हो गया। इस समय काठियावाड़ प्रायद्वीप में अव्यवस्था फैली हुई थी और किसान लोग अपनी गरीबी हालत के कारण कृषि-व्यवसाय

चलाने में असमर्थ थे। अनुकूल परिस्थिति होने के कारण कुछ दिनों के पश्चात् इस प्रान्त की दशा सुधर गई और प्रजा में उन्नति के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे। इस राज्य में ई० स० १८४३ से १८६९ तक महाराणा श्री रणमल-सिंहजी राज्य करते थे। आप बड़े गौरवशाली और विद्वान् नरेश थे। आपको बृटिश सरकार की ओर से के० सी० एस० आई० की उपाधि भी प्राप्त हुई थी।

आपके पश्चात् महाराणा श्री मानसिंहजी ध्रांगधरा राज्य की गद्दी पर आसीन हुए। आपमें अपने आदर्श पिताजी के गुण विद्यमान थे। आपने ध्रांगधरा राज्य-शासन-प्रणाली में कई सुधार किये। इस राज्य की औद्योगिक उन्नति की ओर भी आपने खूब ध्यान दिया। आपकी प्रजा में आपने उद्योग धंधे सम्बन्धी नूतन जीवन का सञ्चार किया। आपने यहाँ बहुत सी पाठशालाएँ एवं चिकित्सालय स्थापित किए। आप ही ने ध्रांगधरा नगर में प्रिन्स ऑफ वेल्स नामक चिकित्सालय का उद्घाटन किया। ई० स० १९०० में आपकी मृत्यु हो गई।

आपके बाद आपके पौत्र महाराजा श्री अजीतसिंहजी राज्यारूढ़ हुए। आप अपने पूज्य पिता ही की तरह योग्य थे। पर दुष्ट काल ने आपको इस संसार में अधिक दिनों तक नहीं रहने दिया। आपको ई० स० १९११ में शीतला ने आ घेरा और उसी वर्ष की ९ वीं फरवरी को आपने अपनी इहलोक-यात्रा संवरण की। आपके स्वर्गवास का समाचार विद्युत् वेग से सारे राज्य में फैल गया। प्रजा पर मानो अकस्मात् वज्राघात हुआ। चारों तरफ शोक का समुद्र उमड़ आया !!!

आपके बाद वर्तमान महाराणा श्री सर घनश्यामसिंहजी साहब बहादुर राज्य-सिंहासन पर विराजे। आपका ध्रांगधरा में ई० स० १८८९ में जन्म हुआ। शरीर से दुर्बल होने के कारण आपकी शिक्षा का प्रबन्ध शुरू २ में एक खानगी अध्यापक के द्वारा राजधानी ही में किया गया। इसके बाद आप राज-कुमार कॉलेज, राजकोट में भर्ती हुए। ध्रांगधरा के वर्तमान सुयोग्य दीवान

मानसिंहजी झाला भी आप ही के साथ उक्त कॉलेज में भर्ती हुए थे। मान-सिंहजी साहब ने वहाँ अपनी जिस अपूर्व प्रतिभा और बुद्धि का परिचय दिया था, उससे कॉलेज के प्रिन्सिपल पर गहरा प्रभाव पड़ा था। सोलह वर्ष की उम्र में श्रीमान् महाराना साहब ने विलायत की यात्रा की। ज्ञानप्राप्ति और अंग्रेजों के सामाजिक जीवन से परिचय प्राप्त करना ही आपकी इस यात्रा का मुख्य उद्देश्य था। विलायत की आब-हवा का आपके स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ा। वहाँ आपने पाँच वर्ष तक निवास कर अपने ज्ञान का विकास किया। आप सन् १९०९ में अपनी राजधानी को वापस पधारे। विलायत से लौटने के बाद आप अपनी सेना के कमांडर का काम बड़ी योग्यता से करने लगे। इसके बाद आपने पुलिस कमिश्नर का काम किया। धीरे २ आपको अन्य कार्य भी मिलते रहे।

सन् १९११ की ३ मार्च को बम्बई के गवर्नर की ओर से काठियावाड़ के बृटिश एजेन्ट के द्वारा आपको राज्य-शासन के पूरे अधिकार प्राप्त हुए। पूर्ण अधिकार प्राप्त होते ही आपने राज्य-शासन में योग्य सुधार करना शुरू कर दिया। आपका ध्यान पहले पहल किसानों के सुधार की ओर गया। आप ने किसानों को जमीन का स्थायी Tenure कर दिया। इससे किसान लोग जमीन को अपनी समझने लगे और इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि किसान लोग खेती की तरक्की में स्वाभाविक दिलचस्पी दिखलाने लगे। इससे बहुत परती जमीन भी आबाद हो गई। राज्य की आमदानी भी बढ़ी। किसानों का हित भी बढ़ा और राज्य में खेती की भी खासी उन्नति हो गई। श्रीमान् महाराणा साहब के इस कार्य्य को प्रजा ने बहुत पसन्द किया। आपकी राज्य में चारों ओर वाहवाही होने लगी। गरीब और अमीर दोनों के वे प्रेम-भाजन बने।

श्रीमान् को केवल इसी सुधार से सन्तोष नहीं हुआ। आपने अपने राज्य में खेती की उन्नति के लिये और भी अनेक साधनों का अवलम्बन किया। आपने खेती के लिए निरोग और विशुद्ध बीज के भण्डार खोले। आपने रूई आदि

के ऐसे बीज मँगवाये जो राज्य की भूमि के लिए विशेष अनुकूल हों। इसका स्वाभाविक परिमाण यह हुआ कि ध्रांगधरा की रूई भारतीय और विदेशी बाजारों में अपना विशेष महत्त्व रखने लगी। पैदायश भी बहुत बढ़ गई। वैज्ञानिक साधनों का उपयोग करने के कारण पहले एक एकड़ में जितनी रूई पैदा होती थी उससे दुगुनी होने लगी। अन्य पदार्थों की खेती ने भी खूब तरक्की की।

इसके सिवाय श्रीमान् के शासन-काल में और भी कई प्रजा-हितकारी कार्य्य हुए। गत दस बारह वर्षों में विविध जन-हितकारी कार्य्यों में श्रीमान् ने ११२०६४० रुपये व्यय किये।

आपने कई अस्पताल, स्कूल, बाजार, फेक्टरीज़ और वर्कशाप बनवाये। कई नई सड़कें बनवाईं। आबपाशी के काम को बढ़ाया। ध्रांगधरा रेलवे लाइन को हलवद तक बढ़ाया। आपका विचार है कि इस रेल्वे लाइन को कच्छ की खाड़ी पर आये हुए मलीया स्थान तक बढ़ा दी जावे। इसके लिए बम्बई सरकार की ओर से मंजूरी भी मिल गई है।

मतलब यह श्रीमान् बड़े ही उन्नतिप्रिय नरेश हैं। आपका आदर्श—आपका ध्येय—प्रजा की—राज्य की—विविध शाखाओं में उन्नति करना है। आपको दीवान भी बड़े सुयोग्य मिले हैं। महाराना साहब की तरह दीवान साहब के विचार भी बड़े ऊँचे और दिव्य हैं। आप बड़े ही प्रजा-प्रिय हैं।

गत महायुद्ध में श्रीमान् महाराणा साहब ने बृटिश सरकार की भरसक सहायता की। जब सन् १९१४ में श्रीमान् महाराणा साहब ने महायुद्ध के छिड़ने का समाचार सुना तो आपने सरकार को तार देकर भरसक सहायता करने का अभिवचन दिया। महायुद्ध में आपने भारत सरकार की इस प्रकार सहायत की ४,७५०००) सन् १९१७ में युद्ध-कर्ज में प्रदान किये। ५०००००) सन् १९१८ में युद्ध-कर्ज में दिये। १९२०५०) सन् १९१७ में युद्ध-कर्ज में प्रजा से दिलवाये और ३१७९५५) सन् १९१८ में युद्ध-कर्ज में प्रजा से दिलवाये।

ध्रांगधरा की ओर से कुल १४८४३०५ रुपये युद्ध-कर्ज में दिये गये। इसके अलावा इम्पीरियल वार फण्ड में २०००००, इम्पीरियल वार रिलीफ फंड को ४३००० दिये गये। और भी अनेक युद्ध फण्डों में काफी सहायता की गई। सब मिलाकर ४५३६९५) रुपये विविध फण्डों में सहायतार्थ दिये गये।

भारत सरकार ने श्रीमान् महाराणा साहब के शासन और सेवाओं से प्रसन्न होकर सन् १९१७ की १ जनवरी को के० सी० एस० आई० की उपाधि प्रदान की। सन् १९१८ में श्रीमान् 'महाराज' की उपाधि से विभूषित किये और आपकी तोपों की सलामी ११ से बढ़ाकर १३ कर दी गई। सन् १९१८ में श्रीमान् के सुयोग्य दीवान श्री राना मानसिंहजी साहब झाला भी सी० आई० ई० की पदवी से विभूषित किये गये।

श्रीमान् महाराणा साहब को राज्य के पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं। आप प्रथम श्रेणी के नरेश हैं। श्रीमान महाराना साहब की निगरानी में दीवान साहब राज्य-शासन का काम करते हैं। रेव्हेन्यू और ज्युडिशियल असिस्टेन्ट्स तथा प्राइवेट तथा हुजूर सेक्रेटरी शासन-कार्य्य में आपकी सहायता करते हैं।

धांगधरा की पुलिस में ७८३ आदमी हैं। पुलिस के महकमे पर श्रीमान् महाराणा साहब की खूब देख-रेख रहती है। पैदल और घुड़सवारों की फौज भी काफी है।

रियासत के अपने ५ काटन प्रेस, और ८ जिनिंग फेक्टरियाँ हैं। रियासत की आमदानी सन् १९२१ में ४६७७९७६ थी। उसी साल ३७६९१२३ खर्च हुए थे। धांगधरा में एक हाइ स्कूल है। हलवद आदि कुछ स्थानों में मिडिल स्कूल्स हैं। सब मिलाकर सारी रियासत में सरकार की ओर से ४९ स्कूल्स हैं। रेल्वे लाइन के बनाने का काम बी० बी० एण्ड० सी० आई० रेलवे कंपनी को सौंपा गया है।

यह रियासत बृटिश सरकार को ४०६७१ रुपये खिराज के देती है।

नवानगर राज्य का इतिहास

नवानगर काठियावाड़ प्रायद्वीप में एक समृद्धिशाली एवं उन्नतिशील रियासत है। यहाँ के नरेश—महाराजा जाम साहब, चंद्रवंशीय जाड़ेजा राजपूतों के वंशज हैं। इनके पूर्वज कच्छ से काठियावाड़ में आये, और घुमली नामक स्थान में उस समय राज्य करने वाले प्राचीन जेथवास वंश के राजा को पराजित किया। कई पीढ़ियाँ गुज़रने पर इस वंश में जाम रावल नामक राजा उत्पन्न हुए। इनके अधिकार में उस समय घुमली के आसपास का बहुतसा प्रदेश था। ई० स० १५४० में इन्होंने जामनगर बसाया। इन्होंने छबड़ा, देड़ा और बाघेला राजाओं से नवानगर के पश्चिम और पूर्व का बहुतसा प्रान्त हस्तगत कर लिया और उनका अच्छा प्रबंध किया। ई० स० १५६२ में इनकी मृत्यु हो गई। इस समय से ई० स० १७४३ तक के इस राज्य के इतिहास का पता नहीं चलता। केवल इतनी ही बात माल्हम होती है कि, यहाँ के राजा समय २ पर होने वाले भिन्न २ आक्रमणों से अपने राज्य की रक्षा करते रहे और समीपस्थ राजाओं को भी सहायता देते रहे।

ई० स० १७४३ में नवानगर राज्य की गद्दी पर जाम लाखाजी आसीन हुए। आपने हलवद्—ध्रांगधरा के परिवार की कन्या के साथ विवाह किया। इस कन्या के साथ ध्रांगधरा राज्य से एक परिचारक दिया गया था। उसका नाम मेहरामन था, वह खवास जाति का था। यह खवास इतना कर्तृत्वशाली था कि शीघ्र ही वह राज्य में एक सर्व-श्रेष्ठ अधिकार प्राप्त करने

में सफलीभूत हुआ। तत्कालीन जाम साहब उसके हाथ के खिलौने बन गये थे। ई० स० १७६८ में जाम लाखा जी की मृत्यु हो गई। आपके पश्चात् जाम जस्साजी सिंहासनारूढ़ हुए। इस समय भी राज्य-कार्य खवास मेहरामन के हाथ में था। जाम लाखाजी की पत्नी जाबुबा मेहरामन की बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत हुई। उन्होंने अपने भाई हलवद-धांगधरा के राजा से, अपने पुत्र को दुष्ट दीवान मेहरामन के भयावह कृत्यों से बचाने के लिये सहायता माँगी। इस समय उक्त खवास की शक्ति इतनी प्रबल हो गई थी कि वह राज्य के तीन परगने आमरान, जोड़िया और बालम्बा का शासन स्वच्छन्दतापूर्वक करने लगा था। उसने बड़ी निर्दयता-पूर्वक उक्त जाबुबा रानी का वध करवा डाला। वह अपनी मृत्यु तक (ई० स० १८००) सारे नवानगर राज्य का शासन करता रहा। उसकी मृत्यु के पश्चात् जाम जस्साजी राज्य कार्य करने लगे परन्तु उसके वंशज समय पाकर इनके राज्य की जमीन को हड़प करने लगे। वे इन्हें बहुत तकलीफ देने लगे। अतएव जाम साहब ने बड़ौदा नरेश और भारत सरकार की मदद से उन्हें नवानगर राज्य के उपरोक्त तीनों परगनों से निकाल दिया। बाद में इन खवास लोगों को आमरान परगना कुछ शर्तों पर दिया गया। परन्तु इन्होंने उन शर्तों का पालन नहीं किया, अतएव वर्तमान जाम साहब ने यह परगना उनसे वापस छीन लिया।

जाम जस्साजी साहब के शासन-काल में नवानगर राज्य में उनके भाई सत्ताजी को जागीर देने के संबंध में झगड़ा चला। इसी समय बड़ौदा, कच्छ और पोरबन्दर रियासतों ने भी नवानगर राज्य के विरुद्ध अपने पुराने दावे पेश किये। इससे यह सारा मामला अन्तिम निर्णय के लिये बृटिश सरकार के हाथ सौंपा गया।

ई० स० १८०७ के अन्त में नवानगर राज्य और साम्राज्य सरकार के बीच एक सुलहनामा हुआ। जाम सरकार ने इस सुलहनामे में साम्राज्य सरकार को योग्य समय पर खिराज देना, राज्य में शान्ति रखना और आसपास की रियासतों को तकलीफ न देना आदि बातों की शर्तें तय कीं। इसके कुछ

ही समय बाद आपने अपने राज्य में शिशु-हत्या की क्रूर प्रथा बन्द कर दी।

ई० स० १८१४ में जाम जस्साजी का देहान्त हो गया। आपको पुत्र न था। अतएव आपके बाद आपके भाई जाम सत्ताजी गद्दी पर बैठे। जाम सत्ताजी ने अधिक दिनों तक राज्य-कार्य नहीं किया। इनके राज्य-काल में कोई उल्लेखनीय घटना भी नहीं हुई। आपको भी कोई पुत्र न था अतएव रणमलजी दत्तक लिये गये और नवानगर राज्य के शासक बनाये गये।

आपके शासन-काल में राज्य में अमन चैन रहा। ई० स० १८३४, १८३९ और १८४६ में तीन बार भयंकर दुष्काल पड़े। महाराजा जाम साहब ने अपनी प्रजा को इस समय बहुत सहायता दी। आपने इस समय गरीबों की रक्षा करने के लिये कई प्रकार के अकाल-रक्षक कार्यों को आरंभ किया। इसके लिये आपने नवानगर के समीप एक विशाल तालाब खुदवाने का और जामनगर में कोठा और लखोठा नामक दो राजप्रसाद बनवाने का काम शुरू किया, जिससे कि हजारों गरीबों को काम मिला और वे अकाल से अपनी रक्षा कर सकें।

जाम रणमलजी का ईसवी सन् १८५२ में देहान्त हो गया। आपके बाद श्रीमान् श्री सर विभाजी राज्य-सिंहासन पर बिराजे। आपने बड़ी ही योग्यता से शासन किया। आपके शासन-कार्य्य से प्रसन्न होकर बृटिश सरकार ने आपको वारिस न होने के हालत में दत्तक लेने का अधिकार दे दिया। सन् १८८४ में श्रीमान् ने अपने राज्य में दीवानी और फौजदारी कोर्ट स्थापित किया। शासन में और भी कई आवश्यकीय सुधार किये। ईसवी सन् १८७६ में श्रीमान् तत्कालीन प्रिन्स ऑफवेल्स (किंग एडवर्ड) से बम्बई में जाकर मिले। सन् १८८७ में दिल्ली में जो दरबार हुआ था, उसमें भी श्रीमान् पधारे थे। इस वक्त तत्कालीन वाइसराय लॉर्ड लिटन ने आपको एक झण्डा भेंट किया था और आपकी तोपों की सलामी ११ से १५ कर दी गई थी। सन् १८७८ में भारत सम्राज्ञी की ओर से आपको के० सी० एस० आई० की उपाधि प्राप्त हुई थी। दर असल सर श्री विभाजी बड़े प्रजा-प्रिय नरेश थे। आपने

प्रजा-हितकारी कई कार्य किये। प्रजा की कल्याण कामना ही आपका उद्देश था। आपने उन सब रीति-रिवाजों को उठा दिया जिनसे जमींदार किसानों को सताया करते थे। आपने राज्य के कानून में भी बहुत सुधार किये। पुलिस, शिक्षा-विभाग, म्युनिसिपल विभाग आदि कई प्रजा-हितकारी कार्य खोले। आपने कई स्कूल्स, पुस्तकालय, डिस्पेन्सरियां, पुल और बगीचे बनवाये। आपके कोई पुत्र न होने से आपने सन् १८७८ में काठियावाड़ के सरदार-कुटुम्ब से कुमार श्री रणजीतसिंहजी (वर्तमान नरेश) को दत्तक लिया। पर सन् १८८२ में आपकी मुसलमान पत्नी से आपको एक पुत्र हुआ। इनका नाम जसवन्तसिंह रक्खा गया। सन् १८९५ में श्री विभाजी की मृत्यु होने के पश्चात जसवन्तसिंहजी गद्दी पर बैठे। पर इनका उसी साल देहान्त हो गया। आपके कोई पुत्र न था। अतएव आपके बाद वर्तमान नरेश सर श्री रणजीतसिंहजी विभाजी बहादुर राज्य-सिंहासन पर बिराजे।

नवानगर के वर्तमान नरेश श्रीमान् महाराजा सर श्री रणजीतसिंहजी विभाजी बहादुर का जन्म ई० सन् १८७२ में सरोदा नामक स्थान में हुआ था। आपने प्रारम्भ में राजकुमार कॉलेज, राजकोट में शिक्षा प्राप्त की। इसके बाद ऊँची शिक्षा प्राप्त करने के लिये आप केम्ब्रिज पधारे और वहाँ के ट्रिनिटी कालेज में दाखिल हुए। यहाँ आपको अपनी प्रतिभाशक्ति के विकास का अपूर्व अवसर मिला। आपने अपनी प्रतिभा और अपूर्व शक्ति का परिचय दिया। आप यहाँ अध्यापकों और सहपाठियों में खूब हिलमिल गये। कई विद्वान् और सुयोग्य अंग्रेजों से आपकी मित्रता हो गई। जीवन के हर एक विभाग में आपने अपनी प्रतिभा का प्रकाश दिखलाया।

ई० स० १९०७ के मार्च मास की ११ वीं तारीख को आपको राज्य-शासन के अधिकार मिले। आपने राज्य-शासन में कई प्रकार के सुधार करना शुरू किया। इसी बीच ई० सन् १९१४ में युरोप का महायुद्ध छिड़ गया। आपने भारत सरकार की सेवा में अपना जान-माल देने का वचन दिया। आपने जंग के मैदान में बहादुरी के दो हाथ बतलाने के लिए भारत-सरकार

की अनुमति माँगी। पश्चिमीय रणक्षेत्र पर आपने जनरल कुकसन की ९ वीं डिविजन में काम किया। इसके बाद आप पश्चिमीय युद्ध-क्षेत्र के प्रधान सेनापति लॉर्ड फ्रेन्च के ए० डी० सी० नियुक्त हुए। बाद में आप भारत लौट आये। यहाँ आने के बाद आपको फील्ड मार्शल सर डगलस हेग के स्टाफ में दाखिल होने के लिये निमन्त्रण मिला। पर राज्य-शासन के जरूरी कामों की वजह से आपने दुःख के साथ इस निमन्त्रण को अस्वीकार कर दिया। श्रीमान् के तीन भतीजे भी रण-मैदान में अपनी वीरता दिखा रहे थे। आपके एक भतीजे लेफ्टिनेण्ट कुँवर साहब सवाईसिंहजी अफ्रीका के रणक्षेत्र में घायल हुए। दूसरे भतीजे लेफ्टिनेण्ट कुँवर साहब दाजीराजजी जो १८ मास फ्रान्स के युद्ध-क्षेत्र में थे। युद्ध करते २ वीरगति को प्राप्त हो गये। आपके तीसरे भतीजे ने भी मेसोपोटेमियाँ रण-मैदान में बड़ा काम किया। नवानगर ने युद्ध के लिये भी खूब मदद दी। आपने विविध प्रकार के रिलीफ और रेड क्रॉस फण्ड में २१०५३१), युद्ध के लिये वायुवान खरीदने के लिये १०००००) रुपये भारत सरकार को प्रदान किये। ३०००००) युद्ध-फन्ड में दिया। इसके अतिरिक्त आपने कई मोटर गाड़ियाँ, और कई प्रकार का सिपाहियों को सुभीता देनेवाला सामान सरकार को प्रदान किया। आपका इंग्लैण्ड के स्टेन स्थान में एक मकान है। उसे आपने केंट घायलों के लिये अस्पताल में परिवर्तित कर दिया।। सन् १९१८ में बम्बई सरकार की ओर से आप को युद्ध कान्फ्रेन्स के लिये निमन्त्रित किया गया। वहाँ आपने एक प्रभावशाली भाषण दिया।

ई० स० १९१७ में भारत-सरकार की ओर से श्रीमान् जाम साहब को के० सी० एस० आई० की उपाधि मिली। सलामी की तोपें भी बढ़ाकर १५ कर दी गईं। आपको पुश्त दरपुश्त के लिए "महाराजा" की उपाधि से विभूषित किया गया। ई० सन् १९२० में आप "नाइट ग्रेन्ड कमांडर ऑफ बृटिश एम्पायर" की उच्च फौजी उपाधि से विभूषित किये गये।

नवानगर की अधिकांश प्रजा कृषि-प्रधान है। श्रीमान् जाम साहब

खेती और उद्योग धन्धों की उन्नति के लिये खूब प्रयत्न कर रहे हैं। रियासत में खेती की तरक्की के लिए नये वैज्ञानिक साधन काम में लाये जा रहे हैं। कृषि-विद्या का भी समुचित प्रबन्ध किया जा रहा है। जङ्गलों की तरक्की भी खूब तेजी से की जा रही है। मुसाफिरों के आराम के लिए योग्य और पक्की सड़कें बनवाई गई हैं।

यह रियासत शिक्षा के लिये प्रति साल १०८२०५ रुपये खर्च करती है।

सन १९२० में इस राज्य की कुल आमदनी ४६९०३८७) थी, इनमें से ३१७०३३०) भूमि कर में वसूल हुए थे।

यह रियासत बृटिश सरकार को ५०३९२), बड़ौदा को ६४५२४) और जूनागढ़ रियासत को ४०१७) बतौर खिराज के देती है।

जाम साहब को अपने राज्य के पूर्ण अधिकार हैं। केवल बृटिश प्रजा पर फौजदारी मामला चलाने के लिये एजन्ट टू दी गवर्नर ऑफ बाम्बे की अनुमति लेना पड़ती है। जामनगर राजधानी की लोक-संख्या लगभग ५०००० है।

लींबड़ी और लूनावाड़ा-राज्यों का इतिहास

HISTORY OF THE LIMBDI & LUNAWADA STATES.

हिज़ हाइनेस श्री ठाकुर साहिब, लिम्बड़ी

लींबड़ी राज्य का इतिहास
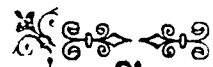
लींबड़ी बंबई प्रेसिडेंसी की दूसरी श्रेणी की रियासत है। यह काठियावाड़ प्रायद्वीप के पूर्वीय भाग में स्थित है। इस राज्य के उत्तर में लखतर रियासत और बृटिश सरकार का विरमग्राम परगना, पूर्व में ढोलका प्रान्त, दक्षिण में भावनगर राज्य और धन्धुक जिला और पश्चिम में बढ़वान और चुला राज्य हैं।

लींबड़ी के ठाकुर साहब सुप्रसिद्ध झाला राजपूतों के वंशज हैं। यहाँ के वर्तमान शासक महाराना श्री दौलतसिंहजी हैं। इस राज्य के संस्थापक हरपाल देवजी के पुत्र माँगूजी थे। माँगूजी गुजरात के अन्तिम राजपूत राजा करण बाघेलो के समय उत्पन्न हुए थे। करण बघेलो ने आपकी प्रशंसनीय सेवाओं से मुग्ध होकर आपको १८०० गाँव जागीर में दिये थे।

ई० स० १७८४ में इस वंश के राजा हरभमजी (प्रथम) ने वर्तमान लींबड़ी नगर बसाकर इसे अपने राज्य की राजधानी बनाया। आपका ई० स० १७८६ में स्वर्गवास हो गया। आपके पश्चात् हरसिंहजी गद्दीनशीन हुए। आप बड़े योग्य शासक थे। आपने ई० स० १८०७ में कर्नल वाकर के साथ सुलह कर ली। इस सुलह के अनुसार बृटिश सरकार ने आपके तत्कालीन सब अधिकार स्वीकृत किये। ठाकुर साहब हरसिंहजी ने भी कर्नल वाकर की निश्चित की हुई खिराज बृटिश सरकार

को देने का अभिवचन दिया। आपके पश्चात् इस वंश में तीन राजा और हुए। चौथे राजा स्वर्गीय सर जसवन्तसिंहजी ई० स० १८६२ में राज-गद्दी पर बैठे। आपके पिता का नाम फतहसिंहजी था, जिनकी मृत्यु ई० स० १८६२ में हो गई थी। जसवन्तसिंहजी की आयु गद्दी पर बैठते समय कम थी। इसलिये राज्य-व्यवस्था उनकी माता के हाथ सौंपी गयी। आगे चलकर जब उनकी माता इस कार्य्य में असफल हुई तो एक असिस्टेंट पोलिटिकल एजेन्ट इस कार्य पर नियुक्त कर दिया गया।

राजकुमार जसवन्तसिंहजी राजकोट के राजकुमार कॉलेज में विद्याध्ययन करने लगे। थोड़े ही समय में आपने अंग्रेजी और गुजराती का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। ई० स० १८१७ में जब आप बालिग हो गये तो आपको राज्य के तमाम अधिकार सौंप दिये गये। आपने इंग्लैंड आदि देशों में भी भ्रमण किया है। ई० स० १८८४ में सरकार की ओर से आप बम्बई की लेजिस्लेटिव कौंसिल से सभासद नियुक्त किये गये।

ई० स० १९०७ में जसवन्तसिंहजी परलोकवासी हो गये। आपके इच्छानुसार नवानगर की इम्पीरियल सर्विस कोर के कमांडर-इन-चीफ् कर्नल दादभा लींबड़ी की गद्दी पर बिठाये गये। कर्नल दादभा ने गद्दी पर बैठने के बाद अपना नाम दौलतसिंह रक्खा। दौलतसिंहजी ने अपने बचपन ही से युद्ध-विद्या में अच्छी तालीम प्राप्त की थी। ई० स० १९०१ में आप आस्ट्रेलिया की फीडरल पार्लमेन्ट के उद्घाटनोत्सव में सम्मिलित होने के लिये आस्ट्रेलिया पधारे थे। आस्ट्रेलिया से आप न्यूजीलेंड पधारे। यहाँ राइट आनरेबुल आर० एफ० सेडन से आपकी मुलाकात हुई।

ई० स० १९०८ के अप्रेल मास की चौदहवीं तारीख के दिन ठाकुर साहब को राज्य के तमाम अधिकार मिल गये।

ई० स० १९१० में ईडर के स्वर्गीय महाराजा साहब केसरीसिंहजी की पुत्री के साथ लींबड़ी के ठाकुर साहब के युवराज दिग्विजयसिंहजी का शुभ विवाह सम्पन्न हुआ।

श्रीमान् ठाकुर साहब शिक्षा-प्रचार के बड़े पक्षपाती हैं। युवराज दिग्विजयसिंहजी के ब्याह की खुशी में आपने कई विद्यार्थियों के लिये छात्र वृत्तियाँ निर्धारित कर दीं।

ई० स० १९१२ में राजकुमार दिग्विजयसिंहजी को स्कूल में भरती कराने के लिये श्रीमान् ठाकुर साहब इंगलंड पधारे थे। वहाँ से आपने फ्रांस, जर्मनी, बेल्जियम, स्विट्जरलैंड और इटली प्रभृति देशों मेंभी भ्रमण किया था।

ठाकुर साहब का जन्म ई० स० १८६८ के जुलाई मास की ११ वीं तारीख को हुआ था। आप राज्य-व्यवस्था में बड़े निपुण हैं। प्रतिदिन आप हुजूर ऑफिस में बैठकर अपने हाथों से काम देखते हैं।

इस राज्य का कुल विस्तार ३५० वर्गमील है। इसमें से २०४६०७ एकड़ जमीन में कपास, २२८२५ एकड़ में गेहूँ, ३२०० एकड़ में चने, १५९८५ एकड़ में जुआर, ८५४८ एकड़ में बाजरी और ९००३८ एकड़ में शाक-तरकारी आदि बोयी जाती हैं।

राज्य में बहुत से स्थान ऐसे हैं जहाँ पानी बहुत ही कम गिरता है। अतएव श्रीमान् ठाकुर साहब ने मशीन द्वारा कुओं से पानी निकलवाने का आयोजन किया है।

इस रियासत का कपास बड़ा उत्तम होता है। हाल ही में लींबड़ी में एक कॉटन-प्रेस खोल दिया गया है। ई० स० १९१७-१८ में इस फेक्टरी में २३०८० गाँठें बाँधी गईं। ठाकुर साहब ने लींबड़ी में एक कॉटन मार्केट भी खोल दिया है। यहाँ पर किसान लोग बिना किसी आदमी के हस्तक्षेप के अपना माल बम्बई, अहमदाबाद और भावनगर आदि स्थानों के व्यापारियों के हाथ बेच सकते हैं। इस प्रकार किसानों को अपने माल के पूरे दाम मिलते हैं।

रियासत में इस समय कुल मिलाकर तीन जीनिंग फेक्टरियाँ, एक कॉटन प्रेस और एक चांवल आटा आदि का कारखाना है।

रियासत के व्यापारियों और किसानों की सहायता के लिये ठाकुर

साहब ने एक बेंक ई० स० १९१० से खोल रखा है। इस बेंक का नाम "लींबड़ी स्टेट बेंक" है।

श्रीमान ठाकुर साहब शिक्षा-प्रचार के बड़े पक्षपाती हैं। आप समय २ पर अपने राज्य की पाठशालाओं का निरीक्षण करने जाया करते हैं एवं पाठकों और विद्यार्थियों का उत्साह बढ़ाया करते हैं। रियासत के विद्यार्थियों को प्रायमरी और सेकन्डरी शिक्षा निःशुल्क दी जाती है। दीगर रियासत के विद्यार्थियों से भी केवल नाम मात्र की फीस ली जाती है। इस समय लींबड़ी में एक जसवन्त हाइ स्कूल, एक तालुका स्कूल, एक लड़कियों की पाठशाला और दो दूसरे मदरसे हैं। इसके अतिरिक्त रियासत के भिन्न गाँवों में २० प्राइमरी स्कूल, एक लड़कियों की पाठशाला और एक अंग्रेजी शाला है।

यूरोपीय महा-युद्ध के छिड़ते ही श्रीमान् ठाकुर साहब ने बम्बई के गवर्नर और काठियावाड़ के एजेन्ट को अच्छी सहायता देने का अभिवचन दिया। इतना ही नहीं आपने एक सभा बुलवाई और उसमें लोगों से सहायता के लिये अपील की। ई० स० १९१७ और १९१८ की Administration Reports को देखने से पता चलता है कि १९१८ के मार्च मास के अन्त तक राज्य की ओर से ४७००० रु० की रकम युद्ध-सहायक फंड में दी जा चुकी थी। वार-लोन फंड में ३००००० रु० रियासत के अधिकारीवर्ग और प्रजा की ओर से, २१५००० रु० दरबार के कुटुम्ब से और ४३९५० रु० बरवाला डिविजन के लोगों की ओर से दिया गया। युद्ध में जानेवाले लोगों के लिये भी ठाकुर साहब ने बड़े २ सुभीते कर दिये थे।

लींबड़ी यह इस राज्य की राजधानी है और भोगवा नदी के किनारे बसी हुई है। इस गांव की आबादी ११००० है। दरबार महल, कचहरियाँ, भाजी मार्केट, नया अतिथि-गृह (New Guest house), क्लॉक टॉवर आदि यहाँ के देखने लायक स्थान हैं। ई० स० १९०६ में यहाँ का प्राचीन महल आग लगने से जल गया। अतएव स्टेशन के रास्ते पर एक नया महल बनवाया गया है। लींबड़ी में बिजली की रोशनी का प्रबन्ध भी है।

ई० स० १९२० के फरवरी मास में श्रीमान् ठाकुर साहब की ज्येष्ठ पुत्री कुंवरी श्री रूपाणी बाई का शुभ विवाह पोरबन्दर के महाराज राना साहब के साथ सम्पन्न हुआ। इस समय राज्य भर में बड़ी खुशी मनाई गई।

श्रीमान् ठाकुर साहब दौलतसिंहजी एक आदर्श नरेश हैं। आप समय २ पर राज्य के तमाम गाँवों में दौरा किया करते हैं। और लोगों से खुले दिल से मिलते हैं, उनकी सुनते हैं और जहाँ तक हो सकता है, न्याय देने की कोशिश करते हैं। इन्हीं कई कारणों की वजह से आपकी प्रजा आप से बड़ी सन्तुष्ट रहती है।

लूनावाड़ा राज्य का इतिहास

लूनावाड़ा रेवाकाँठा पोलिटिकल एजेंसी की द्वितीय श्रेणी की राजपूत रियासत है। उत्तर में डूंगरपुर-राज्य, पूर्व में कड़ाना और संूठ—रामपुर; दक्षिण में गोदरा (पंचमहाल) और दक्षिण में बाला-सिनोर और ईडर की रियासत है। इस राज्य का क्षेत्रफल ३८८ वर्ग मील है।

लूनावाड़ा नरेश सोलंकी राजपूतों की विरपुर शाखा से उत्पन्न हुए हैं, जोकि रेवा के बाघेलों की बड़ी शाखा है। ई० स० १२२३ में आपके पूर्वज विरपुर में आकर बसे थे। इसके दो सौ वर्ष बाद यह राज्य-वंश लूना-वाड़ा में आया। यहां पर राना भीमसिंहजी ने लूनावाड़ा रियासत की स्थापना की।

भीमसिंहजी के बाद उनके कई वंशजों ने लूनावाड़ा में राज्य किया। इस वंश के अन्तिम राजा अखेराजजी हुए। अखेराजजी का स्वर्गवास हो जाने पर यह शृंखला टूट गई। अतएव गांधारी नामक गाँव से इसी नामकी दूसरी शाखा के राणा कुम्भोजी नामक व्यक्ति बुलाये गये और लूनावाड़ा की गद्दी पर बिठा दिये गये। कुम्भोजी के बाद जीतसिंहजी हुए। आपके समय के कुछ दानपत्र मिले हैं जिनसे मालूम होता है कि ई० स० १६१८ में आप राज्य करते थे। आपसे कुछ पुश्तें बाद नरसिंहजी हुए। नरसिंहजीने ई० स० १७१२ से १७३३ तक राज्य

हिज हाइनेस महाराणा सर बखतसिंहजी के० सी० आई० ई० लुनावाड़ा।

किया। ई० स० १७१८ में आपने लूनावाड़ा की शहर-पनाह बनवाना शुरू किया। ई० स० १८१२ में महिकाँठा के पोलटिकल एजेंट की मार्फत गायकवाड़ सरकार के साथ आपका एक तहनामा हुआ। इस तहनामे के अनुसार आप ६००० बड़ौदे शाही रुपये प्रतिवर्ष गायकवाड़ सरकार को देने लगे।

ई० स० १८१९ में सिंधिया सरकार और लुनावाड़ा राज्य के बीच एक और तहनामा हुआ। इस बार भी बृटिश सरकार ने इस शर्त पर सिंधिया को खिराज दिलवाई कि वे लूनावाड़ा के राज-कार्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करते हुए केवल अपनी चढ़ी हुई खिराज प्रतिवर्ष ले लिया करें। ई० स० १८२२ में सिंधिया और गायकवाड़ को दी जाने वाली खिराज की शर्तों में पुनः परिवर्तन किया गया। इसी समय से यह रियासत बृटिश आधिपत्य में आ गई।

ई० स० १८२५ में यह राज्य महिकाँठा एजेंसी के चार्ज से निकाल कर रेवाकांठा पोलिटिकल एजेंसी के चार्ज में रख दिया गया।

नरसिंहजी के बाद उनके तृतीय पुत्र उम्मेदसिंहजी गद्दी पर बिराजे। उम्मेदसिंहजी के बाद दलेलसिंहजी राज्य के अधिकारी हुए।

वर्तमान महाराजा श्री सर बखतसिंहजी साहब के० सी० आई० ई०, स्वर्गीय महाराजा दलेलसिंहजी की विधवा रानी मोतीकुंवर द्वारा ई० स० १८६७ में दत्तक लिये गये थे। श्रीमान् ने अहमदाबाद के तालुक्केदारी स्कूल में अपनी प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की थी। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये आपने राजकोट के राजकुमार कालेज में विद्याध्ययन किया था। ई० स० १८६७ के जून मास से लेकर ई० स० १८७९ के मई मास तक रियासत का इन्तिजाम एक असिसटेन्ट पोलिटिकल एजेंट के द्वारा किया गया था। ई० स० १८८० के अगस्त मास की २९ वीं तारीख को श्रीमान् महाराना का राज्यारोहण उत्सव हुआ।

आपके राज्य-काल में शिक्षा की बड़ी ही अच्छी उन्नति हुई है। ई० स० १९१८ के जुलाई मास में आपने रेवाकांठा के पोलिटिकल एजंट मि०

डब्ल्यू० स्मार्ट के हाथों से 'सज्जन कुँवर हाईस्कूल, नामक एक विद्यालय, खोलकर अपने विद्या-प्रेम का परिचय दिया है।

आपके राज्य-काल में निम्न-लिखित सार्वजनिक संस्थाएं और लोकोपयोगी मकानात राज्य की ओर से बनवाये गये।

१ जेल, २ पोलनस्कूल, ३ बार्टन लायब्रेरी, ४ म्युनिसिपल हाल, ५ लेडीरेज गर्ल्स स्कूल ६, डायमंड जुबिली रेस्ट, हाल, ७ दो क्लॉक टावर्स, ८ पब्लिकपार्क, ९ धर्मशालाएं, १० भाजी मार्केट, ११ फतेहबाग, १२ महल, १३ सज्जनकुँवर संस्कृत पाठशाला, १४ सज्जनकुँवर हाइ स्कूल, १५ दौलतकुँवर औषधालय आदि २।

महाराना साहब को बृटिश सरकार की ओर से कई सम्मान-सूचक पदवियाँ प्राप्त हुई हैं। ई० स० १८८९ में आपको के० सी० एस० आई० की पदवी प्राप्त हुई। ई० स० १८९० में आपको दत्तक लेने की सनद भी मिल गई।

ई० स० १९११ की मर्दुमशुमारी के अनुसार इस राज्य की मनुष्य-गणना ७५९९८ थी। इसमें ७२००० हिन्दू, तथा ४००० मुसलमान थे।

इस राज्य की मुख्य पैदावार गेहूँ, बाजरी, मकई, कपास, तिल और अफीम का दाना है।

राज्य का जंगल विभाग एक योग्य अधिकारी के अधीन कर दिया गया है। इस विभाग की वार्षिक आमदनी ११५००० रु० के करीब है। महुआ के फूलों से भी राज्य को काफ़ी आमदनी होती है। राज्य में करीब ९००० महुए के पेड़ हैं।

गत १०, १५ वर्षों से इस राज्य के नागरिकों का ध्यान शिक्षा की उन्नति की ओर बढ़ गया है। राज्य की ओर से भी इस समय लूनावाड़ा में एक हाइ स्कूल, एक गुजराती स्कूल, और एक लड़कियों की पाठशाला स्थापित है। राज्य के दूसरे हिस्सों में १० छोटी २ पाठशालाएँ और हैं। ई० स० १९१८ में राज्य की कुल पाठशालाओं में १४५५ विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे, जिनकी औसतन दैनिक हाजिरी ११९३ थी।

कॉलेज तथा हाइस्कूल में विद्याध्ययन करने वाले कई विद्यार्थियों को राज्य की ओर से छात्रवृत्तियाँ भी मिलती हैं। राज्य की ई० स० १९१७, १८ की शासन-रिपोर्ट को पढ़ने से मालूम होता है कि उस वर्ष राज्य की ओर से शिक्षा विभाग में ८९५८ रु० खर्च किये गये। इसके अतिरिक्त ५४०) रु० छात्र-वृत्तियों में दिया गया।

दरबार ने महाराज-कुमार की स्त्री और युवराज रणजीतसिंह जी के नाम से क्रमशः एक एलोपेथिक और एक आयुर्वेदिक औषधालय खोल रखा है। इन औषधालयों में प्रति वर्ष राज्य के ६०००) रु० खर्च होते हैं।

इस राज्य के न्यायालयों में वे ही कानून उपयोग में लाये जाते हैं, जो कि बृटिश भारत के राज्य में। दो दीवानी अदालतें हैं, एक में दीवान और दूसरी में एक न्यायाधीश कार्य करते हैं। ५०००) से कम का दावा न्यायाधीश और उसके ऊपर का दीवान साहब ले सकते हैं। फौजदारी न्यायालयों में प्रथम और द्वितीय श्रेणी के मेजिस्ट्रेट नियुक्त हैं। सेशन-कोर्ट के प्रधान दीवान साहब हैं।

राज्य की ओर से ४३ सवार, एक छोटा सा तोपखाना और कुछ पैदल सिपाही नियुक्त हैं। अमनचैन कायम रखने के लिये सब मिलाकर १५५ पुलिस के आदमी रखे गये हैं। इस विभाग का वर्षिक खर्च १६०००) है।

राज्य की औसतन आमदनी ३१२९५४ रु० है। राज्य की ओर से प्रतिवर्ष ९२३०) बृटिश सरकार को और ५०००) गायकवाड़ सरकार को बतौर खिराज के दिये जाते हैं।

श्रीमान् महाराजा वखतसिंहजी के० सी० आई० ई० एक योग्य नरेश हैं। लूनावाड़ा राज्य की प्रजा आपको हृदय से चाहती है। आप भी प्रजा के विकास के लिये समय २ पर अपने राज्य में उचित सुधार करते रहते हैं।

श्रीमान् का विवाह बाँसवाड़ा नरेश की सुपुत्री के साथ हुआ है। आपको राजकुमार रणजीतसिंहजी और राजकुमार रघुनाथसिंहजी नामक दो पुत्र थे, पर दुर्भाग्य से छोटे पुत्र रघुनाथसिंहजी का ई० स० १९१६ के

सितम्बर मास में देहान्त हो गया। युवराज श्री रणजीतसिंहजी का विवाह श्रीमान् सीतामऊ नरेश की भगिनी के साथ हुआ है। ई० स० १९१७ के जनवरी मास में स्वर्गीय राजकुमार रघुनाथसिंहजी की कन्या का विवाह और युवराज महाराज के जेष्ठ पुत्र भंवरलालजी का यज्ञोपवीत-संस्कार किया गया। इन उत्सवों में दूर २ से ४००० के करीब मेहमान आकर सम्मिलित हुए थे।
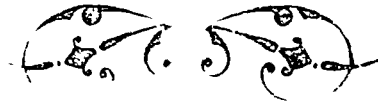
राजकोट राज्य का इतिहास

HISTORY OF THE RAJKOT STATE.

हिज हाइनेस सर लाखाजी राज के० सी० आई० ई० ठाकुर साहब राजकोट

रा जकोट के महाराजा जाड़ेजा राजपूत हैं। नवानगर के राज्य-वंश से आपकी उत्पत्ति है। नवानगर के इतिहास को देखने से मालूम होता है कि ई० स० १६०८ में वहाँ जाम सत्ताजी राज्य करते थे। आपको अजाजी, जसाजी और विभाजी नामक तीन पुत्र थे। इनमें से अजाजी को फिर से दो पुत्र थे, जिनका नाम लखाजी और विभाजी था। अजाजी ध्रोल की लड़ाई में मारे गये। अजाजी के बाद जसाजी राज-गद्दी पर बैठ गये। पर वास्तव में देखा जाय तो राज्य के असली हक़दार अजाजी के दोनों पुत्र थे।

अजाजी के पुत्र विभाजी बाल्यावस्था ही में अपनी माता के साथ अपने मामा के यहाँ चले गये थे। इस समय सरधार के बाघेला राजा बड़े शक्तिशाली होते चले थे। उन्होंने चूड़ासमा राजपूतों से गोंडल के दक्षिण तक का मुल्क जीत लिया था।

कर्नल वाकर ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि उस समय बाघेला लोग आस पास के मुल्क में खूब लूट-खसोट मचाते थे। इनसे लोग बड़े त्रस्त हो गये थे। अतएव विभाजी ने इनका नाश करने का बीड़ा उठाया। उन्होंने तत्कालीन मुगल सूबेदार से सहायता माँगी। उसने उन्हें पूरी सहायता दी और कहा कि जिस तरह हो सके बाघेलों को दबाया जाय। एक समय विभाजी ने सब बघेले सरदारों को अपने यहाँ भोजन के लिये निमंत्रित किया। जब वे भोजन करने आये तो विश्वासघात द्वारा मार डाले गये। इस प्रकार सरधार प्रान्त पर विभाजी का अधिकार हो गया। पर मुगलों की ओर से वहाँ

एक थानेदार रहने लग गया। विभाजी ने धीरे २ उस थानेदार को भी मिला लिया। कुछ ही समय बाद काठी लोगों ने पूर्व की ओर के प्रान्तों पर हमला कर दिया। विभाजी ने बड़ी बहादुरी के साथ उन्हें पीछा हटा दिया। इस कार्य के लिये मुगल सम्राट् की ओर से आपको कई गाँव इनाम में मिले।

ई० स० १६३५ में विभाजी का देहान्त हो गया। अब विभाजी के पुत्र महेरामणजी गद्दी पर बिराजे। आपने ई० स० १६४० में मुगल सूबेदार आजिम खाँ को काठी लोगों के विरूद्ध अच्छी सहायता दी थी। इस सहायता के बदले में आपको कई गाँव जागीर में प्राप्त हुए थे। महेरामणजी के बाद उनके पुत्र साहबजी राज्यासन पर आरूढ़ हुए। ई० स० १६६४ में आपने सोरठ के फौजदार कुतुबुद्दीन को नवानगर पर चढ़ाई करने में सहायता दी थी। ई० स० १६७५ में साहबजी का स्वर्गवास हो गया। इनके बाद उनके पुत्र बामणियाजी गद्दी पर बिराजे। आपको भी सरधार के थानेदार द्वारा कई गाँव जागीर में प्राप्त हुए। बामणियाजी के बाद महेरामणजी (द्वितीय) गद्दी पर बिराजे। आपने जूनागढ़वालों के बहुत से गाँव अपने राज्य में मिला लिये। अतएव ई० स० १७२० में जूनागढ़ के नायब फौजदार मोसम खाँ ने इसका बदला लेने के लिये राजकोट पर अधिकार कर लिया। इस लड़ाई में मेहरामणजी काम आये। मोसिम खाँ राजकोट और सरधार का फौजदार नियुक्त हो गया। कुछ समय बाद राजकोट का अधिकार मसुम कुली खाँ को मिला। इसने ई० स० १७२२ में राजकोट का किला बँधवाया। राजकोट का नाम बदल कर 'मुसुमाबाद' रखा गया। ई० स० १७३२ तक राजकोट पर मुसुम कुलीखाँ का अधिकार रहा।

महेरामणजी के सात पुत्र थे। इन सातों में से सब से जेष्ठ पुत्र रणमलजी ने अपने पिता के राज्य का मुसलमानों के हाथ से उद्धार करने का निश्चय किया। इन्होंने ई० स० १७३२ में मोसमकुली खाँ को मार डाला और राजकोट जीत लिया। इसके बाद आपने सरधार पर हमला करने के लिये गोंड्ल नरेश हालाजी से सहायता माँगी। हालाजी ने सहायता देने से इनकार

कर दिया। इसके बाद आपने कोरड़ा-सांगणी के राजमलजी की सहायता से सरधार पर हमला कर दिया। पर इस कार्य में आप सफल नहीं हो सके। आपको हार कर वापस लौटना पड़ा। एक समय सरधार का थानेदार बाकर खाँ घोड़े पर सवार होकर कालीपाट की ओर जा रहा था। रणमलजी को यह बात मालूम हो गई। इन्होंने झट उसे जा घेरा और उसका काम तमाम कर डाला। इसी बीच लाखा खाचर ने एक बड़ी भारी सेना एकत्रित करके सरधार पर अपना अधिकार कर लिया। पर रणमलजी ने कोरड़ा-सांगणी वालों की सहायता से उसे वहाँ से निकाल दिया और वहाँ अपना आधिपत्य जमा लिया। अभी तक सरधार राजकोट वालों ही के अधिकार में चला आता है।

ई० स० १७४६ में रणमलजी का स्वर्गवास हो गया। आपके बाद राजकुमार लाखाजी गद्दी पर बिराजे। इनके पाटवी कुंवर मेहरामणजी (तृतीय) थे। लाखाजी की उपस्थिति में भी राजकार्य कुंवर मेहरामणजी ही देखते थे। मेहरामणजी को विसोजी नामक एक भाई थे। ये विसोजी काठी लोगों के साथ होनेवाली लड़ाई में मारे गये। बरजा तीर्थ के पास इनका एक स्मारक बना हुआ है। आज भी राजकोट की गद्दी पर जो बैठते हैं वे पहले इस स्थान पर दर्शनार्थ जाते हैं।

लाखाजी को अशक्त जान उनके दूसरे पुत्र विरोजी ने सरधार पर हमला कर दिया। शीघ्र ही सरधार इनके अधिकार में आ गया। कर्नल वाकर साहब के कथनानुसार इस समय राजकोट का राज्य बहुत घट गया था। काठियों के लूट मार से तंग आकर मेहरामणजी ने उनसे संधि कर ली। इसके फल स्वरूप जसदण, भाड़ला, आनंदपुर, सेवासा आदि एक के बाद एक एक करके कई गाँव उन्हें दे दिये गये। इसके सिवा और भी कई गाँव भाई बेटे दबा बैठे। गोंडल नरेश कुंभाजी ने भी जबरन इस राज्य का दसवाँ भाग ले लिया।

कुंवर मेहरामणजी बड़े विद्या-व्यसनी थे। ई० स० १७८२ में आपने

हिन्दी भाषा में "प्रवीण सागर" नामक एक पद्य ग्रन्थ बनाया था। अपने पिताजी के जीते जी आप कुंवर रणमलजी नामक एक पुत्र को छोड़कर ई० स० १७९४ में स्वर्गवासी हो गये।

मेहरामणजी की मृत्यु हो जाने के कारण लाखाजी को पुनः शासन-सूत्र अपने हाथ में लेना पड़ा। डेढ़ ही साल बाद इनके पौत्र रणमलजी ने राज्य-भार अपने हाथ में ले लिया और इन्हें निकाल दिया। कुछ ही समय बाद ये वापस बुला लिये गये। इस घटना के कुछ अर्से बाद एक समय लाखा जी किसी कार्य वश सरधार गये। पीछे से कुंवर रणमलजी ने राज्य-भार फिर अपने हाथों में ले लिया और अपने छोटे भाई देहाजी को प्रधान मंत्री नियुक्त किया। ई० स० १७९६ में नवानगर में लाखाजी ने अपनी इहलोक यात्रा संवरण की।

लाखाजी का स्वर्गवास हो जाने पर रणमलजी स्वतंत्र हो गये। अब इन्होंने अपने चाचा विरोजी से सरधार वापस लेना चाहा। इन्होंने कई कोशिशें भी कीं पर कर्नल वाकर ने यह फैसाला दे दिया कि, सरधार विरोजी ही के अधिकार में रहेगा। अन्त में कप्तान वेलेन्टाईन ने सरधार प्रान्त विरोजी से लेकर रणमलजी को दे दिया।

ई० स० १८२५ में रणमलजी परलोकवासी हो गये। आपके बाद आपके पुत्र सुराजी और सुराजी के बाद उनके पुत्र मेहरामणजी (चतुर्थ) राजकोट की गद्दी पर बिराजे।

ई० स० १८६२ में श्रीमान् ठाकुर साहब मेहरामणजी (चतुर्थ) का स्वर्गवास हो गया। आपके बाद आपके पुत्र श्रीमान् ठाकुर साहब बाबाजीराव राज्य सिंहासन पर बिराजे। इस समय आपकी अवस्था केवल ६ वर्ष की थी। आपकी ना-बालिग अवस्था में आपकी पूज्य दादी साहबा और पोलिटिकल एजेंट केप्टन लॉयड महोदय ने राज्य-सूत्र का संचालन किया। ई० सन् १८६७ में श्रीमान् ठाकुर साहब को नियमित रूप से राज्याधिकार दिये गये। आपने राजकुमार कालेज राजकोट में शिक्षा प्राप्त की थी। आप बड़े प्रताप-

शाली थे। आपकी कुशाग्र बुद्धि से आपके पाठकगण और सहपाठी राज-कुमार मोहित थे। मतलब यह है कि आपने वह योग्यता प्राप्त कर ली थी, जो एक शासक के लिये आवश्यक थी।

श्रीमान् ठाकुर साहब बाबाजीराव बड़े बहादुर और विद्वान् नरेश थे। आप बड़े लोक-प्रिय भी थे। आपने कानून के ज्ञान में भी पूरी पारदर्शिता प्राप्त कर ली थी। आपने रियासत की उन्नति के लिये, अपनी प्रिय प्रजा के विकास के लिए जी जान से प्रयत्न किया था। यह आप ही के प्रयत्नों का फल था कि, आज राजकोट रियासत की गिनती भारत की आदर्श रियासतों (Ideal States) में की जाती है। पर दुःख है कि आप इस संसार में अधिक दिनों तक न रह सके। ३३ वर्ष की अल्पायु में इन विद्वान् बहादुर और लोक-प्रिय नरेश का ईसवी सन् १८८९ में स्वर्गवास हो गया। आपके स्वर्गवास का समाचार विद्युत् वेग से सारे राज्य में फैल गया। प्रजा पर मानों अकस्मात् वज्र टूट पड़ा! चारों ओर हाहाकार मच गया!!

आपके बाद आपके सुयोग्य राजकुमार श्रीमान् ठाकुर साहब सर लखाजीराज बहादुर राज्य-सिंहासन पर विराजे। आप ही वर्तमान में राज-कोट के नरेश हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि, आप अपने आदर्श पिता जी के आदर्श पुत्र हैं। जब आप राज्य-सिंहासन पर विराजे, उस समय आप की अवस्था केवल छः वर्ष की थी। आपकी नाबालिग अवस्था में आपके पिताजी के दीवान ने पोलिटिकल एजेन्ट की देखरेख में शासन-सूत्र सञ्चालित किया था।

श्रीमान् ठाकुर साहब ने राजकुमार कॉलेज राजकोट में शिक्षा ग्रहण की थी। आपकी असाधारण प्रतिभा और अलौकिक बुद्धि का आपके अध्यापकों और सह-पाठियों पर बड़ा ही अच्छा प्रभाव पड़ा था। आपकी बड़ी ही प्रशंसा हुई थी।

ईसवी सन् १९०७ की २१ अक्तूबर को श्रीमान् को पूर्ण राज्या-धिकार प्राप्त हुए। ईसवी सन् १९०७—८ में आप इंग्लैण्ड पधारे। वहाँ आप पाँच मास तक ठहरे। इस अल्पकाल में भी आपने इंग्लैण्ड की शासन पद्धति,

वहाँ की सामाजिक और आर्थिक स्थिति का अच्छा अध्ययन कर लिया। जब आप इंग्लैण्ड से लौट कर अपनी राजधानी में वापस पधारे, तब आपकी प्रिय प्रजा ने आपका हार्दिक स्वागत किया। प्रजा में बड़ा आनन्द छा गया। ईसवी सन् १९१० की ५ मार्च को आपके युवराज का जन्म हुआ। इन युवराज महोदय का नाम राजकुमार धर्मेन्द्रसिंह रखा गया। पुत्र उत्पन्न होने की खुशी में श्रीमान् ठाकुर साहब ने प्रजाजनों को बहुत सी रिआयतें (Concessions) प्रदान कीं। प्रजा को बहुत सी बाकी माफ कर दी। म्युनिसिपल टेक्स भी माफ कर दिया गया। खेती और औद्योगिक शिक्षा के लिये जानेवाले विद्यार्थियों को छात्र-वृत्तियाँ दी गईं। जिन विद्यार्थियों ने अच्छे चाल-चलन का परिचय दिया उन्हें पारितोषक दिया गया। प्रारंभिक शिक्षा बिलकुल मुफ्त कर दी गई।

ईसवी सन् १९१० में श्रीमान् ने अपने राज्य में एक कौन्सिल स्थापित की। हरएक डिपार्टमेन्ट के सर्वोच्च अधिकारी इसके सदस्य रखे गये। कौन्सिल की बैठक हरमास में होती है। इसमें यह विचार किया जाता है कि राज्य-शासन को किस प्रकार सर्वाङ्गपूर्ण और आदर्श बनाया जावे। ईसवी सन् १९१० के जुलाई मास में आपने स्टेट बैंक कायम किया। इस बैंक ने राज्य के औद्योगिक और व्यापारिक विकास में बड़ी ही सहायता पहुँचाई।

ईसवी सन् १९११ में आप दिल्ली दरबार में पधारे और वहाँ आपने कई उत्सवों में भाग लिया।

श्रीमान् को अपने राज्य में राज्य-सत्ता के पूर्णाधिकार प्राप्त हैं। आपको ९ तोपों की सलामी का सम्मान है। ईसवी सन् १९१८ में आपको भारत सम्राट् की ओर से के० सी० आई० ई० की उपाधि प्राप्त हुई।

शासन-सम्बन्धी योग्यता की दृष्टि से, देश-भक्ति और आत्म-बल की दृष्टि से, वर्तमान भारतीय नरेशों में आप का आसन बहुत ऊँचा है। आप ही की आदर्श शासन-पद्धति का प्रताप है कि आज राजकोट एक आदर्श और अनुकरणीय राज्य समझा जाता है। जो लोग कहते हैं कि भारतीयों को शासन करने

की समता नहीं, वे कृपाकर एक वक्त राजकोट के शासन को जाकर देखें। उनकी आँखें खुल जावेंगी। वहाँ शासन के प्रत्येक विभाग में आपको उन्नति मिलेगी। शासन में प्रजा का भी काफी सहयोग है। ठाकुर साहब की प्रजा एक सजीव प्रजा है। उसमें मनुष्यत्व और अपने अधिकारों के लिये आवाज़ उठाने की ताक़त है। खुद ठाकुर साहब पाँच घण्टे तक राज्य-शासन-कार्य करते हैं। जैसे आप योग्य हैं, वैसे ही आपके दीवान मि० हरजीव भवान भाई कोटक बी० ए० भी योग्य और प्रजा-प्रिय हैं। दीवान साहब गत बारह वर्षों से बड़ी ही योग्यता के साथ कार्य्य कर रहे हैं। आप बड़े दूरदर्शी, राजनीतिज्ञ और समय की आवश्यकता को समझने वाले हैं।

ठाकुर साहब राजकोट और स्वदेश-भक्ति

श्रीमान् ठाकुर साहब राजकोट बड़े निर्भीक स्वदेशभक्त हैं। दुःखी और निर्धन देश के लिये उनके विशाल हृदय में बड़ा स्थान है। संसार पूज्य महात्मा गांधी के आप बड़े भक्त हैं। निर्भयता और आत्म-सम्मान आप में कूट कूट कर भरा हुआ है। अगर हमें कोई पूछे कि प्रजा-हित की दृष्टि से आत्म-सम्मान और स्वदेश-भक्ति की दृष्टि से भारतीय नृपतियों में किसका आसन सब से ऊँचा है तो हमारी उँगली एक दम ठाकुर साहब राजकोट की ओर उठेगी। उन्होंने भारतीय नृपतियों के लिये दिव्य आदर्श उपस्थित किया है। जिस दिन हमारे भारतीय नृपतिगण प्रजा के कठिन कमाई के धन को विलासप्रियता में बर्बाद न कर ठाकुर साहब राजकोट की तरह प्रजा-कल्याण में खर्च करना सीखेंगे, जिस दिन वे अपने समय को बुरे व्यसनों में न खोकर प्रजा के हित और कल्याण के विचार में प्रवृत होंगे, जिस दिन वे प्रजा को अपनी गुलाम नहीं, वरन् मालिक मानने लगेंगे, जिस दिन वे ठाकुर साहब की तरह आत्म-सम्मान का ऊँचा पाठ पढ़ेंगे, उसी दिन हम समझेंगे कि अब देश के उद्धार के दिन निकट आ रहे हैं। देशी राज्यों में इस समय जो प्रकाश मान सितारे हैं उनमें राजकोट ठाकुर साहब का आसन बहुत ऊँचा

है। हम आपकी गणना न केवल आदर्श नृपतियों ही में करते हैं, वरन् हम आपको एक ऊँचे दर्जे के स्वदेश-भक्त भी मानते हैं। आप ही के प्रताप से राजकोट एक छोटी सी रियासत होते हुए भी भारतीय राज्य-मण्डल में सूर्य की तरह चमक रही है।

रियासत का विस्तार २८२ वर्ग मील है। ईसवी सन् ११७-१८ में १०७,७४५ एकड़ जमीन में खेती होती थी। इनमें ३२८७४ में गन्ना की खेती हुई थी।

किसानों में मितव्ययिता की आदत पड़े, उन्हें खेती के लिये कर्ज मिलने में सुभीता हो, इस उद्देश्य को सामने रख कर आपने ग्राम सहकारी कृषि-बेंक (Village Co-operative agriculture banks) खोले हैं। इन सब बैंकों का सम्बन्ध राजकोट की स्टेट बेंक से है। इस प्रकार की विभिन्न ग्रामों में करीब २५ बैंक हैं। इनमें विशेष रूप से किसानों ही की पूँजी रहती है।

काठियावाड़ में राजकोट व्यापार के लिये भी बहुत प्रसिद्ध है। इसे अगर काठियावाड़ के व्यापार का केन्द्र-स्थल कहा जाय तो, हमारी राय में, कुछ भी अत्युक्ति न होगी।

ईसवी सन् १९११ की मर्दुमशुमारी के अनुसार इस राज्य में ६०९९३ मनुष्यों की बस्ती थी।

प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास

HISTORY OF THE PRATAPGARH STATE.

हिज़ हाईनेस महारावत सर रघुनाथसिंह जी बहादुर (G. C. I. E.) प्रताप गढ़ ।

वर्तमान प्रतापगढ़ राज्य पहले कन्थाल के नाम से प्रसिद्ध था। इसकी लम्बाई उत्तर से दक्षिण तक ६७ माइल और चौड़ाई पूर्व से पश्चिम तक ३३ माइल है। यह रियासत पश्चिमोत्तर में मेवाड़ से, पूर्वोत्तर में सिन्धिया के जिले नीमच व मन्दसोर से; पूर्व–दक्षिण में जावरा व पीपलोद से; तथा दक्षिण-पश्चिम में बांसवाड़ा की रियासत से घिरी हुई है।

इस राज्य के मूल संस्थापक बीकाजी थे। ये मेवाड़ के राणा मोकल के वंशज थे। बीकाजी को पहले सादड़ी की जागीर प्राप्त हुई थी, परंतु जब महाराणा उदयसिंहजी बनवीर को निकाल कर चित्तौड़ की गद्दी पर बैठे तब उन्होंने रावत बीकाजी को भी सादड़ी से निकाल दिया। इसका कारण यह था कि जब महाराणा उदयसिंहजी बनवीर के डरसे भागकर अपनी धाय के साथ सादड़ी गये थे, तब रावत बीकाजी ने उनको किसी प्रकार की मदद नहीं दी थी।

बीकाजी बड़े बहादुर राजपूत थे। सादड़ी से निकाल दिये जाने पर वे गयासपुर और बसार में जा ठहरे। उस समय मीणों लोगों का बड़ा प्राधान्य था। बीकाजी ने एक एक करके सब को परास्त कर दिया, तथा उनके मुखिया को मारडाला। इस मुखिया की स्त्री का नाम देव था। यह उसके साथ सती हो गई। मरते समय वह बीकाजी से कह गई कि मेरा नाम चिरकाल तक रहना चाहिये। इस पर बीकाजी ने ई० स० १५६० में उसी स्थान पर अपनी राजधानी की नींव डाली तथा उक्त मीणी के नाम पर से उसका नाम देवलिया रखा। इसके बाद धीरे धीरे बीकाजी ने अपने पूर्व और दक्षिण की तरफ

के तमाम राजपूत सरदारों को अपने अधीन कर लिया। इस समय तक बीकाजी के अधिकार में ७०० गाँव आ गये थे।

इतने प्रान्त पर अधिकार कर लेने पर बीकाजी ने अपने भाई कान्थलजी को धामोतर परगने की जागीर दी। ई० स० १५७६ में महाराणा प्रताप और अकबर के बीच हल्दीघाटी पर जो युद्ध हुआ, उसमें कान्थलजी महाराणा की तरफ से युद्ध करते करते मारे गये। ई० स० १५७८ में बीकाजी का भी स्वर्गवास हो गया।

बीकाजी के बाद उनके ज्येष्ठ पुत्र भवानीसिंहजी गद्दी-नशीन हुए। इसी समय महाराणा अमरसिंहजी (प्रथम) ने जीरण और नीमच जोधसिंह शाखावत को जागीर में दी थी। जोधसिंह अत्यन्त लड़ाकू और बहादुर राजपूत था। वह मन्दसोर के तत्कालीन सूबेदार मक्खनमियाँ और देवलिया के रावत उपरोक्त भवानीसिंहजी से दुश्मनी रखता था। एक समय महाराणा अमरसिंहजी के सामने भवानीसिंहजी और जोधसिंहजी की किसी बात पर कटाछनी हो गई। उस समय तो महाराणा ने इन्हें किसी तरह समझा दिया परन्तु भवानीसिंहजी ने अपनी राजधानी में आकर जोधसिंह के खिलाफ़ मक्खनमियाँ को भड़काया। मक्खनमियाँ भी इस पर राजी हो गया। दोनों ने मिलकर १५०० सवारों के साथ जोधसिंह पर चढ़ाई कर दी। जोधसिंह भी १००० सवार और २०० पैदल सेना इकट्ठी कर मुकाबले पर आ डटा। ई० स० १६०३ में चिताखेड़ा नामक स्थान के पास लड़ाई हुई, जिसमें रावत भवानीसिंहजी, मक्खनमियाँ और जोधसिंहजी तीनों काम आये।

रावत भवानीसिंहजी को कोई औलाद नहीं थी इसलिये उनके छोटे भाई सिंहाजी तेजावत गद्दी-नशीन हुए। ई० स० १६२२ में सिंहाजी का भी स्वर्गवास हो गया, अतएव उनके पुत्र जसवन्तसिंहजी गद्दी-नशीन हुए। इसी अर्से में उदयपुर के महाराणा कर्णसिंह तथा दिल्ली से सम्राट् जहाँगीर का देहान्त हो गया उनकी जगह अनुक्रम से महाराणा जगतसिंह और शाहजहाँ

तख्त नशीन हुए । इधर सम्राट् का सात हजारी मन्सबदार और सिपहसालार महाबतखाँ उदयपुर के पहाड़ों में होता हुआ देवलिया आया । जसवन्तसिंहजी ने उसकी बड़ी खातिर की और उसे अपने यहाँ ठहराया । इस प्रकार बादशाह के सिपहसालार के कृपा-पात्र बनकर जसवन्तसिंहजी ने महाराणा से स्वतन्त्र होने की घोषणा कर दी । थोड़े ही समय बाद किसी के बहकाने में आकर मन्दसोर का हाकिम जानसीरखाँ बसार के परगने को बादशाह से अपनी जागीर में लिखवा लाया परन्तु वीरवर जसवन्तसिंहजी ने उसे उस परगने पर अधिकार नहीं करने दिया। इस पर क्रोधित हो जानसरखाँ ने जसवन्तसिंहजी पर चढ़ाई की । भयंकर युद्ध हुआ जिसमें दोनों तरफ से कई आदमी मारे गये । यह खबर जब शाहजहाँ के पास पहुँची तो उसने महाराणा जगतसिंह को निम्न आशय का पत्र लिखा ।

"हमें मालूम नहीं था कि बसार का प्रान्त आपने जसवन्तसिंह को दे रखा है इसलिये भूल से हमने उसे जानसीरखाँ को जागीर में दे दिया था । हम वह परगना अब वापस जसवन्तसिंह को देते हैं"। उपरोक्त पत्र लिखने का कारण यह था कि बादशाह इस समय महाराणा से युद्ध छेड़ने के लिये तैय्यार न थे ।

इस प्रकार बसार का प्रान्त तो जसवन्तसिंहजी के अधिकार में रह गया परन्तु महाराणा की नाराजी उनसे दिन पर दिन बढ़ती ही गई । हम ऊपर कह आये हैं कि जसवन्तसिंहजी पर महाबतखाँ की कृपा थी । इसलिए महाराणा देवलिया पर चढ़ाई नहीं कर सके, तथापि भीतर ही भीतर वे जसवन्तसिंहजी से बदला लेने की युक्तियाँ सोचने लगे । निदान ई० स० १६३३ में उन्होंने जसवन्तसिंहजी को अपने पुत्र सहित उदयपुर निमन्त्रित किये । जसवन्तसिंहजी को महाराणा पर विश्वास नहीं था इसलिए वे १००० चुने हुए राजपूतों को अपने साथ ले गये । उन्होंने चम्पाबाग में डेरा डाला । रात के समय महाराणा ने अपने भतीजे को फौज के साथ चम्पाबाग पर घेरा डालने के लिए भेजा । जब जसवन्तसिंहजी को यह बात मालूम हुई तो ये भी लड़ाई के लिये तैयार हो गये । घमासान युद्ध हुआ । जसवन्तसिंहजी

ने बड़े वीरत्व का परिचय दिया पर तोपों के गोलों के सामने उनकी एक न चली और वे अपने पुत्र तथा १००० वीर राजपूतों के साथ धराशायी हुए। इस प्रकार कन्थाल परगने पर महाराणा का अधिकार हो गया।

ई० स० १६३४ में जसवन्तसिंहजी के दूसरे पुत्र हरिसिंहजी दिल्ली के तत्कालीन सम्राट् के पास पहुँचे। वहाँ वे महाबतखाँ की सिफारिश से उदयपुर से स्वतन्त्र कर दिये गये। इतनाही नहीं वे मन्सब और इज्जत से विभूषित किये गये। जब वे वापस आने लगे तो बादशाह ने अपनी फौज उनके साथ भेजी। इससे महाराणा जगतसिंहजी ने उनके राज्य पर से अपनी फौज वापस हटा ली। ई० स० १६७३ में रावत हरिसिंहजी परलोकवासी हो गये। आपको प्रतापसिंहजी, अगरसिंहजी, मुहकमसिंहजी और माधवसिंहजी नामक चार पुत्र थे, जिनमें से सब से ज्येष्ठ प्रतापसिंहजी गद्दीनशीन हुए। प्रतापसिंहजी होशियार और बहादुर थे। इन्होंने ई० स० १६९७ में प्रतापगढ़ नामक शहर बसाया तथा जयपुर, जोधपुर, और बीकानेर वालों से अपना सम्बन्ध बढ़ाया। इन्होंने उदयपुर के महाराणाजी से भी अच्छा व्यवहार बढ़ा लिया था। आपका विवाह बीकानेर हुआ था। आपने अपनी पुत्री का विवाह जोधपुर के महाराजा अजितसिंहजी के साथ किया था। ई० स० १७०७ में आपका स्वर्गवास हो गया।

प्रतापसिंहजी के बाद महारावत पृथ्वीसिंहजी गद्दी नशीन हुए। पृथ्वीसिंहजी भी अपने पिताजी के समय अच्छे सरदार थे। बादशाह फर्रुखशियर ने खुश होकर आपको "रावत राव" का खिताब प्रदान किया था। आपने अपने राजकुमार पहाड़सिंहजी को उदयपुर के महाराणा संग्रामसिंहजी के पास भेजा था। महाराणा ने खुश होकर उन्हें धरियावद परगना जागीर में देने का हुक्म दिया था परन्तु दुर्भाग्य से उदयपुर ही में पहाड़सिंहजी का देहान्त हो गया। ई० स० १७१६ में रावत पृथ्वीसिंहजी का भी देहान्त हो गया। आपको पहाड़सिंहजी, उम्मेदसिंहजी, पद्मसिंहजी, कल्याणसिंहजी और गोपालसिंहजी नामक पाँच पुत्र थे।

पृथ्वीसिंहजी के बाद उनके पौत्र रामसिंहजी (पहाड़सिंहजी के पुत्र) गद्दी नशीन हुए, परन्तु ६ मास बाद ही उनका देहान्त हो गया। इसलिये ई० स० १७१७ में पृथ्वीसिंहजी के दूसरे पुत्र उम्मेदसिंहजी गद्दी नशीन हुए। ई० स० १७२२ में आप भी परलोकवासी हो गये इसलिये आपके छोटे भाई गोपालसिंहजी राज्यासन पर बिराजे।

गोपालसिंहजी बड़े समझदार नरेश थे। आपने अपने युवराज सालिम-सिंहजी को महाराणा संग्रामसिंहजी (द्वितीय) की खिदमत में भेज दिया था एवं प्रसिद्ध बाजीराव पेशवा से मैत्री कर ली थी। एक समय बाजीराव पेशवा और महाराणा की सेना ने मिलकर डूँगरपुर पर घेरा डाल दिया था। इस समय गोपालसिंहजी ने बीच में पड़कर यह घेरा उठवाया था। आपने अपने नाम से गोपालगंज नामक नगर बसाया था। ई० स० १७५७ में आप परलोकवासी हो गये। आपके बाद आपके पुत्र सालिमसिंहजी ने बादशाह से आज्ञा लेकर अपने यहाँ रुपया ढालना शुरू किया। उस रुपये का नाम सालिमशाही रुपया रखा। इसी समय से उदयपुर को छोड़कर राजपूताने की तमाम रियासतों में टकसालें खुलीं। सालिमशाही रुपया तमाम मालवे तथा मेवाड़ के कुछ हिस्से में चलता था। सालिमसिंहजी ने प्रतापगढ़ नगर में अपने नाम पर सालमगंज बसाया तथा शहरपनाह को मजबूत बनाई। ई० स० १७६८ में माधवराव सिंधिया ने उदयपुर को घेर लिया था। इस समय सालिमसिंहजी ने महाराणा अरिसिंहजी की बड़ी सहायता की थी। इस उपकार के बदले में महाराणा अरिसिंहजी ने आपको भरियाबाद का परगना जागीर में दिया तथा बादशाह द्वारा प्राप्त "रावत राव" का खिताब भी आपको फिर से प्रदान कर दिया। ई० स० १७७४ में सालिमसिंहजी का देहान्त हो गया। आपको दो पुत्र थे जिनमें से छोटे भाई लालसिंहजी को अर्णोद की जागीर मिली और बड़े भाई सावन्तसिंहजी गद्दी पर बिराजे। महारावत सावन्तसिंहजी के राज्य-काल में मरहठे लोग बड़े शक्तिशाली हो गये थे। हर एक रियासत से वे कर वसूल करने लगे थे। सावन्तसिंहजी भी नसे नहीं बचने

पाये। इन्हें भी मल्हारराव होल्कर की मार्फत ७२०००) रुपये प्रति मास पेशवा को देना कबूल करना पड़ा। महारावत सावन्तसिंहजी बड़े फैयाज आदमी थे। कवियों ने आपकी तारीफ में कई कविताएँ बनाई थीं। धर्म के भी आप बड़े पाबन्द थे। अपने मातहतों के साथ आप बड़े प्रेम का बर्ताव करते थे। आपके समय में धामोतर परगना जो कि महाराणा अमरसिंहजी ने आपके पिता को दिया था, आपके अधिकार से निकल गया। आपके पुत्र दीपसिंहजी तेरह वर्ष की उम्र में बतौर जामिन के मल्हारराव होलकर को सौंप दिये गये थे परन्तु तीन वर्ष अपने पास रखकर होलकर ने उनको मुक्त कर दिया। फिर जग्गू बापू की आधीनता में सिन्धिया की फौज ने प्रतापगढ़ पर घेरा डाला। इस समय राजकुमार दीपसिंहजी ने बड़ी बहादुरी के साथ महाराष्ट्र सेना का मुकाबला किया। इसमें महाराष्ट्र सेना की बड़ी क्षति हुई और उसे निराश होकर वापस लौट जाना पड़ा।

मन्दसोर के अहदनामे के अनुसार प्रतापगढ़ की खिराज वसूल करने का अधिकार बृटिश गवर्नमेंट को मिल गया। ई० स० १८०४ में अंग्रेजों का प्रतापगढ़वालों से सम्बन्ध हुआ पर यह सम्बन्ध बहुत दिनों तक नहीं टिका। लार्ड कार्नवालिस के समय में यह सम्बंध टूट गया। ई० स० १८१८ में एक अहदनामा हुआ जिसके अनुसार यह रियासत फिर अंग्रेजों के आधिपत्य में आ गई।

महारावत सावन्तसिंहजी के जीते जी हो उनके पुत्र दीपसिंहजी का स्वर्गवास हो गया था। दीपसिंहजी के दो पुत्र थे। केसरीसिंहजी और दलपत सिंहजी। इनमें से केसरीसिंहजी का तो ई० स० १८३३ में देहान्त हो गया था और दलपतसिंहजी को डूंगरपुर के रावल जसवन्तसिंहजी ने दत्तक ले लिया। महारावत सावंतसिंहजी ई० स० १८४३ में परलोकवासी हो गये अतएव उनके बाद दीपसिंहजी के पुत्र दलपतसिंहजी प्रतापगढ़ की गद्दी पर बिराजे। इन्होंने डूंगरपुर को अपने अधीन करना चाहा पर वहाँ के सरदारों को यह बात नागवार गुजरी। उन्होंने बृटिश गवर्नमेंट की सहायता से

अपना दूसरा राज्य बनाना चाहा। यह देख गवर्नमेंट ने सामली के महा-रावत उदयसिंहजी को दलपतसिंहकी के हाथ से डूंगरपुर की गद्दी पर बैठा दिया।

महारावत दलपतसिंहजी भी अपने पूर्वजों के समान ही बुद्धिमान थे। आपके राज्य-काल में प्रतापगढ़ रियासत में अमनचैन रहा। बृटिश गवर्नमेंटने आपकी तख्त-नशीनी के समय निम्नलिखित खिलअत भेजी थी।

चाँदी के हौदे सहित एक हथनी, जेवर समेत एक घोड़ा, मोतियों की माला, सरपेंच, मंदील, शालजोड़ी, गोंशवाड़ा, तलवार मय पर्तले के, दुनाली बन्दूक और एक तमंचे की जोड़ी। ई० स० १८६३ में महारावत दलपतसिंहजी का स्वर्गवास हो गया। आपके बाद आपके पुत्र महारावत उदयसिंहजी प्रतापगढ़ की गद्दी पर बैठे।

महारावत उदयसिंहजी अपनी फैयाज़ी और बहादुरी के लिये प्रसिद्ध हैं। आप इतने मिलनसार थे कि एक वक्त किसी से मिले कि उसे अपना बनालेते थे। प्रतापगढ़ और बांसवाड़ा के पहाड़ी जिलों के भील डकैती के लिये मशहूर थे। वे हमेशा मैदान के गाँवों को लूटकर जानवर घेर ले जाया करते थे। आपने इन लोगों का बड़ा अच्छा इन्तजाम कर दिया था। जहाँ कहीं भीलों के फँसाद की खबर मिलती तो आप खुद जाकर उनको सजा देते थे। आपका नाम सुनकर डकैत और बदमाश डरते थे। रियासत के भाई बेटे व सरदार आदि सब आपसे खुश थे। आपने ई० स० १८९० तक प्रतापगढ़-राज्यासन सुशोभित किया।

प्रतापगढ़-राज्य के वर्तमान् नरेश का नाम महाराजाधिराज महा-रावत श्री सर रघुनाथसिंहजी साहब हैं। आप सुप्रसिद्ध सिसोदिया वंश के राजपूत हैं। महाराणा साहब उदयपुर भी आपके सम्बन्धी हैं। डूंगरपुर, बाँसवाड़ा, खेतरा, सेमलिया तथा सैलाना इत्यादि रियासत के नरेश भी आपके रिश्तेदार हैं।

आपको अपने राज्य के अभियुक्तों को प्राण-दण्ड देने का अधिकार

है। बृटिश सरकार को आप प्रति वर्ष ३६,३५०) रुपये खिराज देते हैं। आपके राज्य के जागीरदार आपको प्रति वर्ष २००००) 'कर' देते हैं।

ई० सन् १८८९-९० में राजपूताने में सबसे अधिक भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा। इससे प्रतापगढ़ राज्य की प्रजा अत्यन्त दीन स्थिति को पहुँच गई। श्रीमान् वर्तमान नरेश ने दुर्भिक्ष के समय कई उपायों की योजना करके प्रजा की स्थिति को उन्नत बना दिया। आपने पीड़ित जनसमुदाय को सहायता पहुँचाई तथा गरीब कृषकों को कई प्रकार की सहूलियतें दीं।

ई० सन् १९११ के राज्यारोहण दरबार में आपकी ओर से स्वर्गीय महाराज कुमार मानसिंहजी साहब देहली पधारे थे। इसी साल अक्टूबर मास में मानसिंहजी साहब का विवाह तेहरी-गढ़वाल राज्य के नरेश की कन्या के साथ हुआ था। आपके कनिष्ठ पुत्र महाराज कुमार गोरधनसिंहजी का विवाह ई० स० १९१७ के फरवरी मास में जयपुर राज्यान्तर्गत महान्सेर संस्थान के ठाकुर साहब की पुत्री से हुआ है।

स्वर्गीय महाराज कुमार मानसिंहजी के समय में राज्य-कार्य उन्हीं की देखरेख में होता था। आपको राज्य-कार्य तथा शिक्षा-प्रचार में विशेष अभि-रुचि थी। प्रजा को सुखी बनाने के हेतु आपने राज्य में बहुत से सुधारों की योजनाएँ की थीं।

श्रीमान् महाराजा साहब को १५ तोपों की सलामी का सम्मान है। आपके कनिष्ठ पुत्र गोरधनसिंहजी "अरणोद" के महाराज हैं।

प्रतापगढ़-राज्य का क्षेत्रफल ८७६ वर्गमील है। इसकी मनुष्य संख्या ६७,११० है। इस राज्य के उत्तर तथा उत्तर-पूर्व में उदयपुर, इन्दौर तथा गवालियर-राज्य; दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्व में गवालियर राज्य तथा संस्थान पिपलोदा; पूर्व में गवालियर और जावरा की रियासतें; और पश्चिम में बाँसवाडा और रियासत उदयपुर हैं। राज्य का अधिक हिस्सा समतल है किन्तु उत्तर पश्चिमीय भाग अधिक पहाड़ी है। इसी प्रकार पश्चिमी सीमा में भी कई पहाड़ियाँ हैं।

खेद का विषय है कि राज्य में आसपास कहीं भी रेल्वे स्टेशन नहीं है। यहां से ७ मील की दूरी पर सिर्फ एक मनसोर स्टेशन है जो कि राजपूताना मालवा लाइन पर बना हुआ है। प्रतापगढ़ से मन्दसोर तक एक पक्की सड़क बनी हुई है। यहां शीशे पर सोने की नक़शी का काम अच्छा किया जाता है। यहाँ काले ऊनी ब्लॅंकेट्स भी अच्छे बनते हैं।

न्याय-विभाग की सब से ऊँची अदालत स्टेट कौंसिल अथवा राजसभा है। इस सभा के अध्यक्ष राज्य के दीवान हैं। इसमें सात दूसरे सभासद् भी हैं। इस सभा को दीवानी तथा फौजदारी के पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं। कायदे कानून बनाना भी इसी सभा का काम है। नये कानून जारी करने के लिये महाराजा महारावत साहब की मंजूरी प्राप्त करनी पड़ती है। राजसभा के अतिरिक्त राज्य में फर्स्ट क्लास और सेकंड क्लास मजिस्ट्रेट भी नियुक्त हैं।

राज्य के मुख्य २ जागीरदारों को अपने २ संस्थान की व्यवस्था के लिये सेकंडक्लास मैजिस्ट्रेटों के अख्तियारात दिये गये हैं।

राज्य में लगभग १२ पाठशालाएं हैं। इनमें पिन्हेय नोबल्सस्कूल, राज्यवर्ण स्कूल, तथा देवगढ़ वर्ण स्कूल मुख्य हैं। इन सरकारी पाठशालाओं के अतिरिक्त ७ पाठशालाएं और भी हैं। इनमें हिन्दी की पढ़ाई होती है। "पिन्हेय" स्कूल में राजपूताना स्कूल्स के मिडिल क्लास तक की शिक्षा दी जाती है। अलाहाबाद यूनिवर्सिटी की मॅट्रिक्यूलेशन परीक्षा में भी यहां के विद्यार्थी सम्मिलित होते हैं। जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं स्वर्गीय महाराज कुमार को शिक्षा सम्बन्धी बातों में विशेष शौक था।

राज्य की वार्षिक आय लगभग ६,००००० रुपया है।

पालनपुर राज्य का इतिहास

HISTORY OF THE PALANPUR STATE.

यह राज्य पालनपुर अथवा 'दीवान का राज्य' के नाम से मशहूर है। यहां के राज्य-कर्ता पठान हैं और वे दीवान कहलाते हैं।

प्राचीन काल में पालनपुर नगर चन्द्रावती नगरी के परमार राजा धारावर्ष के भाई प्रह्लाद देव द्वारा बसाया गया था। उस समय इस नगर का नाम 'प्रह्लाद पट्टन' रखा गया था। वि० सं० की पहिली और दूसरी शताब्दी में यह नगर उजाड़ पड़ा रहा, परन्तु पालणसी नामक चौहान राजा ने इसका फिर से उद्धार किया और इसका नाम पालनपुर रखा। कुछ लोगों का यह भी मत है कि जिन जगदेव ने जगाण नामक नगर बसाया था उन्हीं के भाई पाल परमार के नाम पर से इस नगर का नाम पालनपुर पड़ा। कुछ भी हो पर यह सत्य है कि जिस समय देवर नामक चौहान वंशीय राजा ने आबू और चन्द्रावती पर अपना अधिकार कर लिया था। उस समय पालनपुर भग्नावस्था में मौजूद था। इससे यह साफ़ मालूम होता है कि पालणसी ही ने इस नगर का पहिले पहल जीर्णोद्धार करवाया था।

चौदहवीं सदी के मध्यतक पालनपुर और इसके आसपास के प्रदेश पर चौहानों का राज्य था। इसके बाद ज्यों २ मुसलमान लोग विजय प्राप्त करते हुए आगे बढ़ने लगे त्यों २ चौहानों की सत्ता कमजोर होने लगी और अन्त में वह उठ ही गई। जिन मुसलमान सरदारों ने पालनपुर और डीसा नामक परगनों पर अपना अधिकार कर लिया था वे झालोरी-वंश के थे। झालोरी यह अफगान जाति का एक फ़िरका है। ये मुसलमान सरदार बिहार

के सूबे तथा वजीर कहलाते थे। ई० सन् १३७० के करीब इस वंश का मुख्य पुरुष मल्लिक युसुफ अपने कुटुम्बी तथा आश्रितों के साथ अपना राज्य दूसरी जगह स्थापित करने के विचार से बिहार प्रान्त से रवाना हुआ। चलते समय उसने प्रतिज्ञा कर ली थी कि यदि मैं कहीं भी अपना राज्य स्थापित न कर सकूँगा तो मक्के शरीफ चला जाऊँगा। इस प्रकार घूमता २ वह सोनगढ़ अथवा झालोर के पास आ पहुँचा। यह शहर इस समय सोनगढ़ के चौहान राजपूतों का मुख्य स्थान था। कानडदेव इन सब राजपूतों के सरदार थे। मल्लिक युसुफ ने ई० स० १७७३ में इस कान्हड़ देव से सोनगढ़ जीत लिया। कई विद्वानों का मत है कि सोनगढ़ विरमदेव के पास से लिया गया था और इसके विपरीत दूसरों का यह मत है कि यह शहर बीसलदेव के पास से लिया गया था। इसके अतिरिक्त कुछ इतिहासवेत्ता तो इससे भी सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि मलिक युसुफ ने सोनगढ़ बीसलदेव की विधवा रानी पोपाँबाई के पास से जीता था। जो कुछ भी हो, ई० स० १३७३ में सोनगढ़ युसुफखां के हाथ में आ गया।

२२ वर्ष राज्य करके ई० स० १३९५ में मलिक यूसुफ का देहान्त हो गया। आप के बाद आप के पुत्र मलिक हुसेन गद्दी पर बैठे। इन्होंने अपने राज्यकाल में अपने राज्य को बहुत बढ़ाया। इन्होंने दिल्ली के बादशाह की अधीनता स्वीकार कर ली। परन्तु तैमूर के हमले के बाद दिल्ली के बादशाह अपने दूर के प्रान्तों पर निगरानी नहीं रख सके, इससे ये भी फिर स्वतंत्र हो गये। ई० स० १४१२ में अहमदाबाद के शासक ने इन झालोर ही राजाओं पर अपना आधिपत्य जमा लिया। इसलिये इन लोगों को ७००० सात हजार घुड़ सवारों के साथ उसकी मदद करनी पड़ती थी।

ई० स० १४४० में मालिक हुसेन ४५ वर्ष राज्य कर परलोकवासी हो गये। आपको मलिक सालार, मलिक उस्मान और मलिक हेतमखाँ नामक तीन पुत्र थे। इन तीनों में से पाटवी कुँवर मलिक सालार अपने पिताजी की मृत्यु के बाद तख्तनशीन हुए। ई० स० १४६१ में आपका भी

देहान्त हो गया। आपने २१ वर्ष तक राज्य किया था। आपके बाद आपके भाई मलिक उस्मान ऊर्फ मलिक जबदल गद्दी पर बैठे। आप बड़े श्रृंगार प्रिय और शौकीन थे। आप मेघावी पंथ के अनुयायी थे। आप के समय से आजतक आपका वंश इसी पंथ का अनुयायी है। आपके राज्य-काल में मेघावी पंथ के प्रवर्तक चारमास तक झालोर में रहे थे और इसी अर्से में आपकी इस पंथ की ओर आसक्ति हुई। ई० स० १४८३ में आपका देहान्त हो गया। आपके बाद आपके भतीजे मलिक बुधन गद्दी पर बैठे पर ई० स० १५०५ में आपका भी देहान्त हो गया। आपके बाद आपके पुत्र मलिक मुजाहिदखाँ तख्तनशीन हुए। एक समय आप शिकार खेलने गये हुए थे कि सिरोही राज्य की सेना ने आपको कैद कर लिया। कैद कर लिये जाने पर आप अच्छे महल में रखे गये और साथ ही आप की खातिर तवज्जो भी खूब की गई। यह खबर जब आपके मलिक मीना और मलिक प्यारा नामक दो सरदारों को लगी तो उन्होंने सिरोही राज्य को लूटना शुरू किया। इसी समय में एक दिन ये दोनों ही सरदार चुपके से उस महल में जा घुसे जिसमें की मुजाहिदखाँ कैद थे। वहाँ जाकर क्या देखते हैं कि मुजाहिदखाँ एक सुन्दरी के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं। यह दृश्य देख उपरोक्त सरदारों ने मुजाहिदखाँ को बहुत समझाया कि वे वापस लौट चलें, परन्तु जब उन्होंने इन्कार कर दिया तो उक्त सरदार वापस लौट आये। थोड़े ही समय बाद इन सरदारों ने सिरोही के पाटवी कुँवर मांडल को जोकि शिकार खेलने निकला हुआ था कैद कर लिया और यह समाचार फैला दिया कि "हम कुँवर को मुसलमान बना डालेंगे।" यह समाचार जब सिरोही के रावजी ने सुना तो वे बहुत डरे और उन्होंने मुजाहिदखाँ को छोड़ दिया। साथ ही वीरमगाँव नामक परगना भी उन्हें दे डाला। इसके बाद पाँच वर्ष राज्य कर मुजाहिदखाँ ई० स० १५०९ में परलोकवासी हो गये। जब तक आप सिरोही में कैद रहे तब तक झालोर का राज्य आपके पिताजी के चाचा मलिक हेतमखाँ चलाते रहे।

मुजाहिदखाँ की मृत्यु के बाद सांचोर तथा झालोर का राज्य सुलतान महमद ने बल्लूखाँ के पुत्र शाहजीव को सौंपा। परन्तु इसवी सन् १५१२ में उनका देहान्त हो गया। इसलिये उनके बाद बुधखाँ झालोरी के पुत्र मलिक अलिशेर गद्दी पर बैठे। आपके राज्य-काल में मंडोवर के राठोड़ लोग राजधानी पर चढ़ आये, परन्तु भयंकर लड़ाई के बाद वे पीछे हटा दिये गये।

ई० स० १५२५ में अलीशेर खाँ का स्वर्गवास हो गया। आपके पुत्र मलिक सिकंदर खाँ गद्दी पर बैठे। आपके समय में भी पड़ोस के राजाओं ने झालोर पर हमला किया। जोधपुर के राव मालदेवजी ने ई० स० १५४२ में झालोर को लूटा। इसके दूसरे ही वर्ष सांचोर की भी यही दशा हुई।

ई० स० १५४८ में सिकंदरखाँ परलोकवासी हो गये। आपकी मृत्यु के बाद के बाद आपका कोई वारिस न होने से राजगद्दी इस कुटुम्ब के मूल-पुरुष मलिक यूसुफ के तृतीय पौत्र हेमत खाँ के पुत्र गजनीखाँ को मिली। आपने सिर्फ दो वर्ष राज्य किया, परन्तु इस थोड़े ही राज्यकाल में आपने झालोरी वंश की दई हुई सत्ता फिरसे प्राप्त कर ली। ई० स० १५५० मलिक गजनीखाँ ने अपनी इहलोक की यात्रा समाप्त की। आपके बाद आपके भाई मलिक नजीरखाँ को राज-गद्दी मिली। आप शरीर के हट्टेकट्टे और महान् शूरवीर थे। गजनीखाँ की मृत्यु के बाद राधनपुरवाला फतेमहमद बलोची गुजरात के सब राजाओं में शक्तिशाली माना जाता था। इसी फतेह महमदखाँ ने झालोर पर चढ़ाई की। खानजीखाँ और खुरमखाँ ने भी इसका सामना किया। इस लड़ाई में खानजीखाँ की सेना बड़ी बहादुरी के साथ लड़ी पर फिर भी झालोर फतेह महमदखाँ के अधिकार में चला गया। झालोर १५ वर्ष तक इसी के अधिकार में रहा। ई० स० १५७० में मलिक खानजीखाँ ने झालोर पर चढ़ाई करके इसे फिर से वापस जीत लिया।

ई० स० १५७६ में मलिक खाँनजीखाँ का स्वर्गवास हो गया। आपके गजनीखाँ और फिरोजखाँ नामक दो पुत्र और ताराबाई नामक एक पुत्री थी।

इनमें से गज़नीखाँ तख़्तनशीन हुए। इन गज़नीखाँ के पास ७००० घुड़सवार थे। राज्य की पैदावार भी १० लाख रुपया सालाना थी। इन्होंने सुलतान मुजफ्फर का पक्ष ग्रहण करके उत्तर गुजरात के लोगों को अकबर बादशाह के खिलाफ़ भड़काना शुरू किया। इसलिये अकबर के हुक्म से ये कैद कर लिये गये, पर पीछे जाकर ई० स० १५९९ में इनको झालोर का राज्य वापस मिल गया। ई० स० १५९७ में आपने एक अफ़गान टोली को मार भगाई, इससे आपको 'दीवान' की पदवी मिली। इसी समय से अभी तक आपके वंशज 'दीवान' कहलाते हैं। आपके राज्य-काल में आपके भाई फ़िरोजखाँ ने पालनपुर तथा डीसा पर अपना अधिकार कर लिया।

ई० स० १६१४ में दीवान गज़नीखाँ परलोकवासी हो गये। आपके बाद आपके पुत्र पहाड़खाँ राज्यासन पर विराजे। आपने अपनी माता का खून कर डाला था इसलिये ई० स० १६१६ में बादशाह के हुक्म से आप अपने सरदारों द्वारा हाथी के पैर तले कुचल डाले गये। आपके बाद आपके चाचा मलिक फिरोजखाँ ऊर्फ कमालखाँ तख्तनशीन हुए आपने अपने राज्य की खूब अभिवृद्धि की। आपने 'नवाब' की उपाधि भी प्राप्त की। आपके बाद आपके पुत्र मुजाहिदखाँ गद्दी पर बैठे। कुछ वर्ष बाद झालोर और साँचोर का राज्य बादशाह द्वारा इनके पास से छीना जाकर जोधपुर के महाराज अजितसिंहजी को दे दिया गया। इसी समय से राज-कुटुम्ब पालनपुर में रहने लगा। इसलिये यह नगर राजधानी बन गया।

इस प्रकार दीवान मुजाहिदखाँ ई० स० १६९९ में पालनपुर आ गये। इसी साल आप निस्संतानावस्था ही में परलोकवासी हो गये। आपके बाद आपके भाई सलीम खाँ राज्यासन पर बैठे। परन्तु एक ही साल राज्य करने के बाद ई० स० १७०० में आपका भी देहान्त हो गया। आपके बाद आपके पुत्र कमालखाँ गद्दी पर बैठे। ई० स० १७०८ में आपका भी स्वर्गवास हो गया। आपकी मृत्यु के बाद आपके पुत्र फिरोजखाँ तख्तनशीन हुए। आपका दूसरा नाम गजनीखाँ भी था।

ई० स० १७१६ में दिल्ली के बादशाह फरुखशियर ने जोधपुर के महाराज अजितसिंहजी को गुजरात के सूबे के पद पर नियुक्त किया। ये अजितसिंहजी जब झालोर से अहमदाबाद जा रहे थे उस समय रास्ते में फिरोजखाँ से उनकी मुलाकात हो गई। इस समय फिरोजखाँ ने उनसे प्रार्थना की कि "आप जो सेवा मुझे सौंपेंगे उसे बजाने के लिये मैं तैयार हूँ।" इससे खुश होकर अजितसिंहजी ने उन्हें दाँतावाड़ा परगना दे दिया। ई० स० १७२० में, जब कि सारे भारत में अंधा-धुन्धी फैल रही थी, उस समय झालोरी राजा ने भी स्वतंत्र होने का विचार किया; परन्तु इसी अर्से में ई० स० १७२२ में उनका देहान्त हो गया, इसलिये यह विचार स्थगित रहा।

दीवान फिरोजखाँजी को चार पुत्र थे। (१) करीमदादखाँ (२) बहादुरखाँ (३) कमालखाँ और (४) मीरखाँ। इनमें से करीमदादखाँ और कमालखाँ के बीच गद्दी के लिये झगड़ा खड़ा हुआ, जिसमें करीमदादखाँ ने कमालखाँ को मारडाला। इसलिये अन्त में करीमदादखाँ ही गद्दी के वारिस हुए। इस समय गुजरात की हाकिमी महाराजा अभयसिंहजी के हाथ में थी। इन्होंने जिस समय सिरोही पर चढ़ाई की थी उस समय करीमदादखाँ भी इनके साथ थे। ई० स० १७३० में करीमदादखाँ इस संसार से विदा हो गये। आपके बाद आपके पुत्र पहाड़खाँ तख्तनशीन हुए। आपके समय में कंथाजी कदम और मल्हारराव होलकर ने उत्तर गुजरात पर चढ़ाई करके पालनपुर को लूटा था। इस समय पहाड़खाँ ने १ लाख रुपये बतौर चौथ के कबूल करके उनको वापस लौटा दिया। ई० स० १७४४ में दीवान पहाड़खाँ का स्वर्गवास हो गया। आपके बाद आपके चचेरे भाई बहादुरखाँ गद्दी पर बैठे। ई० स० १७५३ में पटेल विट्ठलसकदेव ने आप पर १००००) वार्षिक की चौथ बिठाई और इसके पाँच वर्ष बाद अर्थात् सन १७५८ में पेशवा के सरदार सदाशिव रामचन्द्र ने पालनपुर पर चढ़ाई करके आपके पास से ३५ हजार रुपये बतौर चौथ के वसूल किये।

ई० स० १७६८ में दीवान बहादुरखाँ का स्वर्गवास हो गया। आपके

बाद आपके पुत्र सलीमखाँ गद्दी पर बैठे। आपने थमावाले जेतमलजी चौहान को थराद नामक गाँव से निकाल दिया। पीछे जाकर कमालउद्दीनखाँ उर्फ जमासदखाँ ने इनके पास से थराद ले लिया। ई० स० १७८१ में नवाब सलीमखाँ परलोकवासी हो गये। आपके बाद आपके पुत्र शेखखाँ पालनपुर की गद्दी पर बैठे। आपने अपने सब भाइयों को इस डर से मरवा डाला कि कहीं वे राजगद्दी न छीन लें। परन्तु ई० स० १७८८ में आपका भी देहान्त हो गया। आपके कोई सन्तान न थी इसलिये आपकी बहिन सोनाबुबू ने अपने पुत्र मुबारिकखाँ को पालनपुर की गद्दी पर बिठा दिया। यह बात अमीर उमरावों को पसंद नहीं आई और उन्होंने बलवा खड़ा करके मुबारिकखाँ को गद्दी से उतार दिया। फिर स्वर्गीय दीवान शेरखाँ के चचेरे भाई शमशेरखाँ को सिंहासन पर बिठाया। शमशेरखाँ भी इस पद के लिये अयोग्य सिद्ध हुए। इसी बीच नवाब फिरोजखाँ के पौत्र फतेहखाँ के पुत्र फिरोजखाँ ने भी गद्दी के लिये अपना हक पेश किया। इधर सरदार लोग तो शमशेरखाँ से रुष्ट थे ही, इसलिये झट उन्होंने इस अवसर का फायदा उठाकर शमशेरखाँ को गद्दी से च्युत करके उसकी जगह पर फिरोजशाह को ई० स० १७९४ में गद्दी पर बिठा दिया।

ई० स० १८०९ में पालनपुर के राज्य का भारत-सरकार के साथ पहले पहल सम्बन्ध हुआ। इस समय से पालनपुर-राज्य ने प्रतिवर्ष श्रीमंत गायकवाड़ सरकार को ५०००१ रुपये बतौर खिराज के देना कबूल किया। इस अर्से में राज्य की वास्तविक सत्ता कई वर्षों से सिंधी जमादारों के हाथ में थी। इन सिंधी जमादारों को ऐसी शंका हुई कि फिरोजशाह हमारी सत्ता को छीनना चाहते हैं इसलिये उन्होंने एक समय जब कि वे शिकार खेलने गये हुए थे उनको मार डाला। इसके बाद इन सरदारों ने फिरोजखाँ के एक मात्र पुत्र फतेहखाँ को पालनपुर की गद्दी पर बिठाना चाहा। पर यह बात फतेहखाँ की माता ने स्वीकार नहीं की। उसने समझा कि ये जमादार लोग मेरे पुत्र को गद्दी पर बिठाकर अपने हाथ की कठ पुतली बना लेंगे। इस प्रकार के बंधन में रहकर तो राज्य

करने के बजाय गद्दी पर न बैठना ही उचित है। यह सोचकर राजमाता ने अपने पुत्र को गद्दी पर नहीं बैठने दिया। उन्होंने गायकवाड़ तथा अंग्रेज सरकार से अर्ज की कि बाल राजा की उसके पिताजी का खून करने वाले जमादारों से रक्षा की जाय। जब उपरोक्त सिंधी जमादारों ने फतेहखाँ की यह हरकत देखी तो उन्होंने इन्हें कैद कर लिया और इनकी जगह इनके चाचा शमशेरखाँ को पालनपुर की गद्दी पर बिठा दिया। पर अंग्रेज सरकार ने यह बात स्वीकार नहीं की। उसने कप्तान जनरल होलिवस की अधीनता में गद्दी के खरे हक़दार फतेहखाँ को गद्दी पर बिठाने के लिये एक सेना पालनपुर की तरफ भेजी। इस सेना को रास्ते में खबर लगी कि जमादार लोग फतेहखाँ को लेकर जा रहे हैं। तब तो रास्ते में इनको रोकने के लिये जनरल होल्विस एकदम पालनपुर गये। वहाँ जाकर उन्होंने जमादारों से कहा कि "जो तुम फतेहखाँ को हमें नहीं सौंप दोगे तो हम शहर पर हमला करेंगे।" इस पर जमादारों ने फतेहखाँ को सौंप दिया, इसके थोड़ी ही देर बाद शमशेरखाँ भी अंग्रेजों की शरण में आ गया और जमादार लोग जंगल में भाग गये, जिससे शहर भी अधिकार में आ गया। निदान ई० स० १८१२ के दिसम्बर मास की २२ वीं तारीख के दिन फतेहखाँ को पालनपुर का राज्याधिकार सौंपा गया और शमशेरखाँ अपनी लड़की का विवाह फतेहखाँ के साथ कर देने की शर्त पर उनके प्रतिनिधि नियुक्त किये गये। इसके बाद ई० स० १८१६ तक का सारा समय चाचा और भतीजे के बीच की लड़ाइयों में व्यतीत हुआ। निदान ई० स० १८१६ में फतेहखाँ ने बड़ौदे के रेसिडेन्ट से फरियाद की कि "मेरे चाचा राज्य की सब पैदावार को धूलधानी कर रहे हैं और राज्य में बड़ी अव्यवस्था फैली हुई है।" इस पर जांच करने के लिये अंग्रेज सरकार की तरफ से लेफ्टिनेन्ट रॉबर्टसन पालनपुर भेजे गये। आपने दोनों पक्षकारों को सिद्ध-पुर नामक स्थान पर बुलवाए। वहाँ पर दोनों के बयानों से मालूम हुआ कि शमशेरखाँ ने अपनी शर्तों का पूर्ण रीति से पालन नहीं किया, उनके हाथ में जब से राज-कारभार आया तब से राज्य के सिर पर कर्जा भी बहुत होगया है। इसके

सिवाय फतेहखाँ की बिना आज्ञा के उन्होंने अपने रिश्तेदारों को भी १०० गाँव दे दिये थे, जिससे राज्य की आमदनी में प्रतिवर्ष ५० हजार रुपयों का घाटा पड़ता था। इन उपरोक्त कारणों से अन्त में लेफ्टिनेन्ट राबर्टसन ने अंग्रेज सरकार की ओर से शमशेरखाँ को एक पत्र इस आशय का लिख भेजा कि "तुमने अपनी शर्तों के मुआफिक राज्य-कारभार नहीं किया इसलिये फतेहखाँ के हक्कों की रक्षा के लिये तुम अपने अधिकारों से वंचित किये जाते हो।" इसके अतिरिक्त उनसे यह भी कहा गया था कि "जो इस निर्णय का तुम किसी भी तरह विरोध करोगे तो तुम्हारे साथ किसी भी प्रकार की रियायत नहीं की जायगी और साथ ही तुम्हारी डीसा की जागीर भी छीन ली जायगी।" अब तो शमशेरखाँ घबराये। उन्होंने कई प्रकार से समझा बुझाकर फतेह-खाँ को अपनी तरफ मिला लिया। फतेहखाँ चुपचाप शमशेरखाँ के साथ अंग्रेज एजेन्ट की छावनी छोड़कर पालनपुर जा रहे। इससे लेफ्टिनेन्ट राबर्टसन वापस बड़ौदा चले गये और उन्होंने कर्नल अलिंगटन की आधीनता में एक सेना पालनपुर भेजी। इस सेना के साथ कप्तान माइल्स भी भेजे गये थे। १० वीं अक्टूबर १८१७ के दिन यह सेना पालनपुर आ पहुँची। शमशेरखाँ ने पहले कई घुड़सवारों को लेकर इस अंग्रेजी सेना का सामना किया परन्तु बाद में वे शहर में जा घुसे। अंग्रेजी सेना ने शहर पर हमला करके उसे जीत लिया। शमशेरखाँ अपने आदमियों और फतेहखाँ को लेकर जंगल में जा छिपे। अंग्रेजी सेना ने वहाँ भी उनका पीछा किया। तब शमशेरखाँ ने नीमच में जाकर आश्रय ग्रहण किया। थोड़े ही समय बाद फतेहखाँ अंग्रेजों के आश्रय में आ गये। इस समय ये कम उम्र और अनुभवहीन थे इस-लिये अंग्रेज सरकार ने इनके साथ किसी प्रकार का अनुचित व्यवहार नहीं किया। फतेहखाँ राज्य की बागडोर अपने हाथ में लेने में असमर्थ थे। इसलिये उन्होंने अंग्रेज सरकार से एक अंग्रेज अमलदार तथा एक देशी हाकिम को जो कि वसूलात के काम में होशियार हो, अपने यहाँ भेजने की प्रार्थना की। बृटिश गवर्नमेंट ने फतहखाँ की प्रार्थना स्वीकार की और

मि० माइल्स वहाँ के पोलिटिकल एजन्ट के पद पर नियुक्त किये गये। शमशेरखाँ ने जो गाँव अपने रिश्तेदारों को दे दिये थे वे वापस ले लिये गये। नवाब फतेहखाँ के चार शाहजादे थे। (१) जोरावरखाँ (२) अहमदखाँ (३) उस्मानखाँ (४) सिकंदरखाँ । इनमें से जोरावरखाँ और अहमदखाँ ये दो शमशेरखाँ की लड़की से पैदा हुए थे। इन चारों लड़कों में से बड़े शाहजादे जोरावरखाँ अपने पिताजी की मृत्यु के बाद तख्तनशीन हुए। ई० स० १८५७ के बलवे में आपने अंग्रेज सरकार की सहायता की थी, जिसके उपलक्ष्य में आपको बिना नजराना दिये ही दत्तक लेने की सनद प्राप्त हो गई थी।

आपका स्वर्गवास हो जाने पर आपके शाहजादे शेर महम्मदखाँ साहब पालनपुर की गद्दी पर बैठे। आप अत्यंत लोक-प्रिय शासक थे। अपनी प्रजा की उन्नति पर आपका विशेष ध्यान था। आपने अपने राज्य में कृषि की उन्नति के लिये बहुत से कुए खुदवाये। इतना ही नहीं, आपने गरीब किसानों को बैल और खेती के उपयोग में आने वाली दूसरी आवश्यक चीजें खरीद ने के लिये बहुतसा रुपया कर्ज दिया। आपकी इस बहुमूल्य सहायता से खेती की इतनी वृद्धि हो गई कि ६७ गाँव जो कि आपके शासन-काल के पहले उजड़े पड़े हुए थे वे फिर से आबाद हो गये। इस प्रकार किसानों को सहायता देकर आपने अपने राज्य की आय में भी बहुत वृद्धि की। आपने अपने राज्य की शासनप्रणाली में भी बहुत से सुधार किये तथा कई चिकित्सालय और पाठशालाएं स्थापित कीं। ई० स० १८९९—१९०० के भयंकर दुष्काल में अपनी प्रजा को सहायता पहुँचाने में आपने बहुतसा रुपया खर्च किया। गत यूरोपीय युद्ध में भी आपने धन तथा जन से भारत सरकार की बहुत सहायता की। आप बड़े चतुर शासक थे। आपको के० सी० आय० ई०, तथा जी० सी० आय० ई० की उपाधियाँ भी प्राप्त थीं। इसी समय से भारत-सरकार ने आपका नवाबी का खिताब भी पुश्तैनी कर दिया तथा आपकी सलामी ११ से बढ़ाकर १३ तोपें कर दी।

ई० स० १९१८ की २८ वीं सितंबर को आप इस लोक से चल बसे। आपके पश्चात् आपके पुत्र दीवान नवाब सरतलय महम्मदखाँ साहब बहादुर तख्तनशीन हुए। आपका राज्यारोहण उत्सव ई० स० १८१८ की १४ वीं अक्टुबर को मनाया गया। आपही पालनपुर के वर्तमान नरेश हैं। आपका जन्म ई० स० १८८३ की ७ वीं जुलाई को हुआ है। आपके छोटे भाई साहब का नाम अमीरउल्-मुल्क, नवाबजादा यावर हुसेनखाँ साहब है। आप दोनों भ्राता बड़े सुशिक्षित और योग्य हैं। आपको विद्या और विद्वानों से विशेष प्रेम है। आप एक अच्छे लेखक और इतिहासज्ञ भी हैं। बड़े हर्ष की बात है कि आप बड़े परिश्रम के साथ पालनपुर-राज्य का इतिहास संकलन कर रहे हैं। आपने अपने पूर्वजों के प्रशंसनीय कार्यों का पता लगाने में बहुत प्रयत्न किया है।

आप शासन-कार्य में भी बड़े निपुण हैं। ई० स० १९१२ में अपने पिताजी की रुग्णावस्था में आपने राज्य-शासन भार सँभाला था। आपकी प्रजा का उसी समय से आप पर बड़ा प्रेम है। आपके भाई साहब भी आपको राज्य-कार्य में योग्य सहायता देते हैं। दोनों भाइयों में असीम प्रेम है। भारतीय नरेशों के इतिहास में ऐसे उत्कृष्ट प्रेमका वर्णन बहुत थोड़े अंश में पाया जाता है। आप उन्नत विचारों के नरेश हैं और अपनी प्रजा को सुखी बनाने का आपका प्रथम ध्येय है। आपके शासन-काल में आपके सद्भावों का अनुकरण करने से पालनपुर-राज्य की प्रजा नैतिक, सामाजिक और साम्पत्तिक स्थिति में बहुत उन्नत हो गई है।

पालनपुर राज्य का क्षेत्रफल १७५० वर्गमील है। यहाँकी जन-संख्या २,३६,६९४ है। राज्य में एक हाइस्कूल, एक एंग्लो-व्हर्नाक्यूलर स्कूल, २ कन्या पाठशालायें, २५ देहाती स्कूल और २४ दूसरे स्कूल हैं। यहाँ कुल २३७० विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं। नवाब साहब समय २ पर अपने राज्य की पाठशालाओं का निरीक्षण करते रहते हैं। इससे शिक्षकों का उत्साह बहुत बढ़ गया है। यहाँ खेती तथा चित्रकला की भी शिक्षा दी जाती है।

पालनपुर राज्य की आय दस लाख रुपयों के लगभग है। यह राज्य बड़ौदा के गायकवाड़ सरकार को प्रति वर्ष ३८४६० रुपये बतौर खिराज के देता है। इस राज्य का मुख्य नगर पालनपुर है। यह बॉम्बे-बड़ौदा-सेंट्रल इंडिया रेल्वे लाइन पर बसा हुआ है।

राज्य के सब विभागों का कार्य सुनियंत्रित रूप से चलता है। नवाब साहब खुद राज्य-कार्य देखते हैं। यहाँ के न्याय विभाग में बृटिश भारत के कानून का अनुकरण किया जाता है।
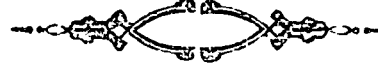
बीजावर, चरखारी, छतरपूर और झाबुआ राज्यों का इतिहास

HISTORY OF BIJAWAR, CHARKHARI, CHATARPUR & JHABUA STATES.

हिज हाइनेस सवाई महाराजा सावंत सिंहजी साहब बीजावर।

बीजावर राज्य का इतिहास

बीजावर की रियासत बुन्देलखण्ड पोलिटिकल एजन्सी में है। इस राज्य के वर्तमान नरेश श्रीमान् सवाई महाराजा सावन्तसिंहजी बहादुर हैं। आप बुन्देला राजपूत हैं। आप बनारस के गहड़वाल (गहरवार) राज-घराने के वंशज हैं। कहा जाता है कि एक समय बनारस, महोबा और उसके आसपास का तमाम प्रदेश इसी राज्यवंश के अधिकार में था। ई० स० ६०० के करीब ये लोग परमार राजपूतों द्वारा वहाँ से हटा दिये गये। इसके बाद कई सदियों तक ये लोग इधर उधर रहे। निदान ई० स० १५ वीं शताब्दी में इस राज्य-वंश ने पुनः इस प्रदेश में आकर नवीन राज्य की स्थापना की। १७वीं शताब्दी के अन्त में वर्तमान बीजावर राज्य पन्ना-नरेश महाराजा छत्रसिंह जी के हाथ में आया और छत्रसालजी का स्वर्गवास हो जाने पर यह राज्य उनके भाई के पुत्र नारायणदासजी के हिस्से में गया। ई० स० १७८० तक बीजावर प्रान्त नारायणदासजी के वंशजों ही के अधिकार में रहा, पर इसके बाद वह ६००००० पर जगतराजजी के पुत्र सवाई दूबन बीरसिंहदेव को दे दिया गया। बीरसिंह देवजी ने इस राज्य को खूब विस्तृत कर दिया। ई० स० १७९३ में अली बहादुर ने बुन्देलखंड पर आक्रमण किया। इसी समय बीरसिंहदेवजी युद्ध-भूमि में वीर-गति को प्राप्त हुए।

बीरसिंहदेव को धोकलसिंहजी और केसरीसिंहजी नामक दो पुत्र थ। धोकलसिंह बड़े थे, पर वे अपने पिताजी के पहले ही स्वर्गवासी हो चुके

थे। अतएव विजेता अलीबहादुर ने केसरीसिंहजी को गद्दी पर बिठाया। केसरीसिंहजी के राज्य-काल में बुन्देलखंड ब्रिटिश आधिपत्य में आ गया। बुन्देलखंड के अन्य नरेशों की तरह केसरीसिंहजी ने भी बृटिश आधिपत्य स्वीकार कर लिया। पर चरखारी और छतरपुर रियासतों के कुछ गाँव और पर्गनों के सम्बन्ध में झगड़ा होने के कारण उस समय केसरीसिंहजी को ब्रिटिश सरकार की ओर से राज्य की सनद प्राप्त नहीं हुई। ई० स० १८१० के दिसम्बर मास में केसरीसिंहजी का स्वर्गवास होगया। आपके बाद आपके ज्येष्ठ पुत्र रतनसिंहजी बीजावर की गद्दी पर बिराजे। आपके राज्य-काल में चरखारी और छतरपुर की रियासतों के बीच के झगड़ों का फैसला हो गया। अतएव ब्रिटिश सरकार की ओर से आपको सनद भी प्राप्त हो गई। ई० स० १८३२ में रतनसिंहजी का स्वर्गवास होगया। आपको कोई पुत्र नहीं था, अतएव राज्य-गद्दी के लिये झगड़े उत्पन्न हुए। आपके साले जालिमसिंहजी ने राज्य को हड़प कर लेना चाहा, पर राज्य के कर्मचारियों और जागीरदारों ने आपके भाई खेतसिंहजी के पुत्र लछमनसिंहजी का पक्ष लिया। बात यहाँ तक बढ़ गई कि दोनों पक्षों में युद्ध छिड़ गया। जालिमसिंहजी मारे गये और लछमनसिंहजी गद्दी पर बिठा दिये गये। भारत-सरकार ने भी लछमनसिंहजी को ही राज्य का अधिकारी ठहराया। लछमनसिंहजी ने ई० स० १८४० तक राज्य किया। आपके बाद आपके नाबालिग पुत्र भानुप्रतापसिंहजी राज्यासन पर आरूढ़ हुए। स्वर्गीय खेतसिंहजी की विधवा रानी रीजेन्ट नियुक्त हुई। राज्य का बहुत सा कारोबार रीजेन्ट महाराणी की पुत्री नन्ने राजा भी करती थीं। इसी समय हमीरपुर जिले के कबरई नामक स्थान में बाँदा के नवाब ने बलवा खड़ा किया। इस बलवे का दमन करने में ब्रिटिश सरकार को नन्ने राजा की ओर से काफी सहायता मिली। इन सेवाओं के उपलक्ष्य में नाबालिग महाराजा को भारत सरकार की ओर से खिलत और ११ तोपों की पुश्तैनी सलामी का सम्मान प्राप्त हुआ। ई० स० १८६२ में राजा भानुप्रतापजी को दत्तक

लेने का अधिकार प्राप्त होगया और ई० सं० १८६६ में उन्हें महाराजा की पदवी भी मिल गई। इसके कुछ ही दिनों बाद आपको केवल थोड़ी सी शर्तों पर राज्य के तमाम फौजदारी मामलों पर फैसला देने का अधिकार प्राप्त हो गया। ई० स० १८७७ के दिल्ली दरबार में आपको "महाराजा" के साथ ही 'सवाई' की पदवी भी प्राप्त हो गई।

कई कारणों की वजह से महाराजा भानुप्रतापसिंहजी शासनसूत्र को व्यवस्थित रूप से सञ्चालित न कर सके। अतएव ई० स० १८८७ में रियासत की शासन-व्यवस्था का कार्य्य भारत सरकार द्वारा नियुक्त कुछ उच्चाधिकारियों के सिपुर्द कर दिया गया। महाराजा भानुप्रतापसिंहजी को कोई संतति न थी और न उनकी अपने रिश्तेदारों ही से पटती थी। अतएव उन्होंने ई० स० १८९९ में ओरछा नरेश के द्वितीय राजकुमार सवाई महाराज सावन्तसिंहजी को दत्तक ले लिया। इसी वर्ष भानुप्रतापसिंहजी का देहान्त हो गया। इसी समय राज्य के संस्थापक वीरसिंहदेवजी के एक वंशज ने गद्दी पर अपना हक बतला कर झगड़ा खड़ा किया। कई जागीरदार और ठाकुरों ने भी उसके पक्ष का समर्थन किया। पर भारत सरकार ने महाराजा सावन्तसिंहजी का ही अधिकार क़ायम रखा। वे ई० स० १९०० की २६ वीं जून को राजगद्दी पर बिठा दिये गये।

बीजावर रियासत का क्षेत्रफल ९७३ वर्ग मील है। यह रियासत मध्य-भारत में है। विन्ध्याचल पर्वत ने इस राज्य को दो विषम भागों में विभक्त कर दिया है। रियासत की राजधानी बीजावर शहर इसी पर्वत की सतह में बसा हुआ है।

इस राज्य में बहुत विस्तृत जंगल है। इस जंगल में बहुत सी इमारती लकड़ी पैदा होती है, पर विगत वर्षों में यहाँ नागरिकों द्वारा बहुत सी लकड़ी लोहा साफ करने में जला दी गई। इस कारण इस जंगल से इस राज्य को विशेष लाभ नहीं होता। राज्य के जंगल का कुल विस्तार २७००० एकड़ है।

ई० स० १९११ की मर्दुमशुमारी के अनुसार राज्य की जन-संख्या

१२५२०२ थी। इस राज्य के प्रति वर्गमील में १२९ आदमी रहते हैं। कुल आबादी में से प्रतिशत ९६ हिन्दू हैं। हिन्दुओं में से भी प्रतिशत ११ ब्राह्मण, १६ चमार, ७ लोध, ६ राजपूत, ४ धीमर हैं और बाकी के अन्य लोग हैं। राज्य के प्रतिशत ७८ आदमी कृषक हैं, १२ कला-कौशल से आजिविका चलाने वाले, ६ व्यापारी और १ अन्य व्यवसायी और बाकी के मजदूरपेशा हैं।

इस राज्य की ई० स० १९१६–१७ की शासन-रिपोर्ट देखने से मालूम होता है कि उस वर्ष राज्य की ३४८७५२ रुपये की आमदनी और ३३४७७२ रुपये का खर्च हुआ।

राज्य में कुल मिलाकर ७ फौजदारी और दीवानी अदालते हैं। राज्य की शासन-व्यवस्था के सब से उच्च अधिकारी श्रीमान् महाराजा साहब हैं। आप अपने दीवान की सहायता से राज्य-व्यवस्था चलाते हैं।

ई० स० १८६४ में इस राज्य में पहली सार्वजनिक पाठशाला खुली। तब से अब तक इस विभाग ने बहुत तरक्की कर ली है।

इ० स० १९०५ में श्रीमान् महाराजा साहब को सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गये। इस साल के नवम्बर मास में तत्कालीन प्रिन्स आफ वेल्स की अध्यक्षता में इन्दौर में दरबार हुआ था। इस दरबार में श्रीमान् महाराजा साहब सावन्तसिंहजी भी उपस्थित हुए थे।

ई० स० १९११ के दिसम्बर में वर्तमान सम्राट् के राज्याभिषेक-उत्सव के उपलक्ष्य में दिल्ली में बड़ा भारी दरबार हुआ। इस अवसर पर भी श्रीमान् बीजावर-नरेश दिल्ली पधारे थे। ९ वीं तारीख के प्रातःकाल श्रीमान् सम्राट् पञ्चम जार्ज ने सब राजाओं का स्वागत किया। इसी दिन तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन ने श्रीमान् को वापसी मुलाकात दी।

श्रीमान् सम्राट् की ओर से महाराजा साहब को के० सी० आई०ई० की पदवी मिली हुई है।

ई. स. १९१२ में श्रीमान् महाराजा साहब डेली कालेज के उद्घाटनोत्सव में सम्मिलित होने के लिये इन्दौर पधारे थे।

जब से श्रीमान महाराज साहब सवाई सर सावन्तसिंहजी बहादुर के० सी० आई० ई० ने शासन-सूत्र अपने हाथों में लिया है, राज्य में कई सुधार हो गये हैं। आप स्वतः प्रत्येक विभाग के कार्यों की जाँच करते रहते हैं। जंगल विभाग बृटिश सरकार द्वारा दिये गये एक अधिकारी के सिपुर्द कर दिया गया है और भूमि-कर में भी बहुत से सुधार कर दिये गये हैं। महाराजा साहब ने राज्य में कई सामाजिक सुधार भी किये हैं।

चरखारी राज्य का इतिहास

यह रियासत मध्यभारत की बुन्देलखण्ड पोलिटिकल एजंसी में है। इसका विस्तार ८९७ वर्गमील है। इस राज्य के शासक उस प्रसिद्ध बुन्देला राजवंश के हैं, जिसने ई० स० की १३ वीं शताब्दी में बड़ी ख्याति प्राप्त की थी।

ई० स० १७३२ में पन्ना की राजगद्दी पर सुप्रसिद्ध छत्रसालजी बिराजते थे। आपने अपने राज्य को कई हिस्सों में विभक्त कर दिया था। इनमें से एक भाग आप के द्वितीय पुत्र जगतराजजी को मिला। ई० स० १७६४ में जगतराजजी के पुत्र पहाड़सिंहजी ने सारे प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया और चरखारी जिला अपने भतीजे खुमानसिंहजी को प्रदान कर दिया। आगे चलकर दूसरे नरेशों के साथ इस रियासत के शासकों से सीमा संबंधी कई झगड़े हुए। पर ई० स० १८०४ में तत्कालीन चरखारी नरेश विजय-बहादुरजी ने बृटिश सरकार का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। इससे सीमा संबंधी सब झगड़ों का अन्त हो गया। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें चरखारी राज्य का मालिक स्वीकृत किया। ई० स० १८५७ में सिपाही-विद्रोह के समय चरखारी में रतनसिंहजी राज्य करते थे। आपने इस समय भारत सरकार की अच्छी सहायता की। इस सहायता से प्रसन्न होकर साम्राज्य सरकार ने आपको ११ तोपों की पुश्तैनी सलामी का सम्मान और कुछ जमीन जागीर में प्रदान की।

महाराजा श्रीराज अरि मर्दन सिंह जू देव बहादुर चरखारी।

रतनसिंहजी के बाद जयसिंहदेवजी चरखारी की गद्दी पर बिराजे। आपने ई० स० १८७४ से १८८० तक राज्य किया। आपको राज्य-कारबार चलाने में बड़ी कठिनता पड़ती थी, अतएव आप राज्य के अधिकारों से च्युत कर दिये गये। आपके बाद मलखानसिंहजी गद्दी पर बैठे। मलखान सिंहजी नाबालिग थे, अतएव शासनभार उनके पिताजी दीवान जूंझारसिंहजू देव सी० आइ० ई० के हाथों में सौंपा गया। ई० स० १९०२ में श्रीमान् महाराजा साहब मलखानसिंहजी को के० सी० आई० ई० की पदवी प्राप्त हुइ। ई० स० १९०८ में आप निःसन्तान अवस्था में ही स्वर्गवासी हो गये। अतएव आपके बाद आपके उक्त पिताजी श्रीमान् जूंझारसिंहजी राज्यासन पर बैठे।

ई० स० १८९५ में श्रीमान् जूझारसिंहजी सी० आई० ई० हो गये। फिर सन् १९११ में आप सम्राट् द्वारा के० सी० आई० ई० भी बना दिये गये। ई० स० १९१४ में आपका स्वर्गवास हो गया। आपके बाद आपके छोटे बन्धु राव बहादुर दीवान गंगासिंहजूदेव राजगद्दी पर आरूढ़ हुए। आपका पूरा नाम निम्न प्रकार का है:—

हिज़ हाईनेस महाराजाधिराज, सिपहदारुलमुल्क गंगासिंहजू देव बहादुर।

श्रीमान् महाराजा गंगासिंहजूदेव एक सुयोग्य नरेश हैं। आपने गद्दी पर बिराजने के पहले और बाद में भी राज्य के प्रत्येक विभाग में कई उपयोगी सुधार किये। ई० स० १८९५ में आपको सी० आइ० ई० की पदवी प्राप्त हुई। ई० स० १९११ में सम्राट् द्वारा आपको के० सी० आइ० ई० की उपाधि प्रदान की गई।

ई० स० १९११ की मर्दुमशुमारी के अनुसार चरखारी राज्य की मनुष्य-गणना १३२५०० थी। इनमें से ९० प्रतिशत से अधिक हिन्दू थे।

इस राज्य के निवासियों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। राज्य के सब स्थानों में जल एकसा नहीं बरसता, इसलिये भिन्न २ स्थानों में भिन्न २ तरह

से खेती की जाती है। राज्य में प्रतिवर्ष औसतन १६०००० एकड़ भूमि बोई जाती है। यहाँ की मुख्य पैदावार जुवार, कपास, गेहू, तिल, अलसी और जौ है।

चरखारी शहर में गवर्नमेंट पोस्ट आफिस कायम किये गये हैं। सरकारी कागजों पर टिकट लगाने की आवश्यकता नहीं होती।

खास राजधानी में एक औषधालय है, जिसमें बीमारों का इलाज किया जाता है। इस औषधालय में प्रतिवर्ष करीब १०००० बीमारों का इलाज किया जाता है।

महाराज नगर में एक हाईस्कूल भी है। इसका संबंध अलाहाबाद के विश्वविद्यालय के साथ है। इसमें मेट्रिक्यूलेशन तक की पढ़ाई होती है। इसके अतिरिक्त यहाँ पर एक कन्या-पाठशाला भी है। जूझारनगर, चान्दला, महेवा, ईसानगर, रिवाई और बरोली आदि रियासत के दूसरे गाँवों में एक२ हिन्दी की पाठशाला है। रायनपुर नामक स्थान में एक आर्ट स्कूल भी है जिसमें चटाइयाँ और पगड़ियाँ बुनना सिखाया जाता है।

सारा राज्य मलखानपुर, खतवाड़ा, बलरामपुर, ईसानगर और रानीपुर माईरा नामक ५ तहसीलों में विभक्त है। प्रत्येक तहसील में क्रमशः ८७, ९२, ४२, ५९, और २६ गाँव हैं।

रानीपुरा माईरा की तहसील में कुछ हीरे की खानें हैं। दीवानी और फौजदारी मामलों में बृटिश भारत में चलनेवाले कानून ही थोड़े से फेरफार के साथ उपयोग में लाये जाते हैं। फाँसी या काले पानी की सजा के लिये ए० जी० जी० की आज्ञा लेनी पड़ती है।

चरखारी एक छोटासा पर सुन्दर शहर है। यहाँ पर करीब १०००० मनुष्य बसते हैं। यह शहर ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेल्वे की झाँसी मानिकपुर ब्राँच पर की महोबा नामक स्टेशन से ९ माईल के अन्तर पर स्थित है।

राज्य की वार्षिक आमदनी ६०००००) है।

छतरपुर राज्य का इतिहास
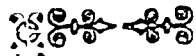
छतरपुर राज्य सेन्ट्रल इंडिया की बुन्देलखण्ड पोलिटिकल एजन्सी में है। राज्य के उत्तर में चरखारी राज्य व हमीरपुर जिला; पूर्व में चरखारी, अजयगढ़, और पन्ना की रियासत; दक्षिण में केन नदी; और पश्चिम में बीजावर और चरखारी की रियासतें हैं। इस राज्य का क्षेत्रफल ११३० वर्गमील है। उत्तर से दक्षिण तक की राज्य की सबसे अधिक लम्बाई ६० मील और चौड़ाई ४५ मील है। राज्य की तमाम जमीन समतल और समुद्र की सतह से ६०० फीट ऊंची है। हाँ, देवड़ा पर्गने में विन्ध्याचल श्रेणी से मिली हुई कुछ पहाड़ियाँ हैं। ये पहाड़ियाँ समुद्र की सतह से १६०० फीट ऊंची हैं। रियासत की प्रमुख नदी केन है। यह नदी मीलों तक राज्य की पूर्वीय सीमा के किनारे बही है। इसके अतिरिक्त उरमाल और कातनी आदि इस नदी की सहायक नदियाँ हैं जो कि राज्य में बहती हैं।

छत्रपुर जाने के लिये हरपालपुर या महोबा इन दोनों स्टेशनों में से एक पर उतरना पड़ता है। दोनों स्टेशनों से छतरपुर चौंतीस मील पर है। ये दोनों स्टेशन जी० आई० पी० रेलवे के झांसी-मानिकपुर सेक्शन पर स्थित हैं।

इस राज्य में घी, तिल, खानेके पान, साबुन, पीतल के बर्तन, महुआ के पत्ते, फल (Fruits) और गोंद आदि चीजें बाहर भेजी जाती हैं।

बाहर से मँगाई जाने वाली चीजों में कपड़ा, धातु, नामक, शक्कर, तम्बाकू मिट्टी का तेल, चाँवल और पन्सारी का समान आदि हैं।

राज्य में कुल मिलकर ३२३ गाँव हैं। ये सब गाँव छतरपुर, राजनगर, लौंडी और देवड़ा नामक चार तहसीलों में विभक्त हैं। रामगढ़ और कुतरो नामक दो और गाँव भी इस राज्य के अधिकार में हैं। ये गाँव राज्य की सीमा से एक तरफ हैं। ये क्रमशः छतरपुर और देवड़ा के तहसीलदारों के अधिकार में है।

राज्य को तमाम विभागों से कुल मिलकर ५५०००० रु० की वार्षिक आमदनी होती है।

छतरपुर रियासत में ८६००० एकड़ जंगल है। यह विभाग एक योग्य अधिकारी के सिपुर्द है। इस विभाग में कुल मिलाकर ८० रेंजर और गार्ड हैं। राज्य में कच्चे लोहे की खानें हैं और अनुमान किया जाता है कि वहाँ के जंगलों में कोशिश करने से हीरे और दूसरे पदार्थ भी मिल सकते हैं।

श्रीमान् महाराजा साहब ने अपने राज्य के शिक्षा-विभाग को बहुत अच्छी उन्नति पर पहुँचा दिया है। यहाँ पर शिक्षा करीब करीब मुफ्त दी जाती है। राज्य के कुछ हिस्सों में तो वह अनिवार्य है। राज्य के सब विद्यालयों में कुल मिलकर १९०० विद्यार्थी ज्ञान-लाभ करते हैं। पाठशाला में जाने योग्य उम्र के कुल लड़कों में से प्रतिशत ७·३३ विद्यार्थी हैं।

राज्य की मनुष्य-संख्या-१७९९४० है। ब्राह्मण, चमार और काछी इस राज्य की प्रमुख जातियाँ हैं।

महाराजा हिन्दुपति के राज्य-काल तक छतरपुर पन्ना रियासत में शामिल था। हिन्दुपति के दो पुत्र थे, जिनमें से ज्येष्ठ पुत्र सरनेतसिंह को लौंडी पर्गने की जागीर दी गई और कनिष्ठ पुत्र राज्यगद्दी का अधिकारी माना गया। ई. स. १७८५ में सरनेतसिंहजी का स्वर्गवास हो गया और उनके रिश्तेदार कुंवर सोनशाह लौंड़ी पर्गने के जागीरदार के पद पर नियुक्त हुए। सोनसिंहजी ने पन्ना राज्य के सैनिकों का सामना करके कई बार उन्हें हराया

और अपने राज्य की सीमा को बढ़ा लिया। ई. स. १८२६ में वृटिश सरकार ने आपको इस विजित प्रदेश का अधिकारी स्वीकृत किया। ई. स. १८१६ में सोनशाह का देहान्त होगया और राज प्रतापसिंहजी बहादुर उनके उत्तराधिकारी हुए। आपको भारत-सरकार की ओर से अपने राज्य की सनद प्राप्त हो गई। प्रतापसिंहजी निःसन्तान अवस्था में स्वर्गवासी हुए। अतएव उनके बाद रियासत वृटिश राज्य में मिला ली गई, पर ई० स० १८५४ में स्वर्गीय प्रतापसिंहजी के दत्तक पुत्र जगतराजजी भारत सरकार द्वारा छतरपुर राज्य के शासक माने गये। ई० स० १८५४ से १८६३ तक रियासत का शासन-सूत्र स्वर्गीय प्रतापसिंहजी की द्वितीय रानी के हाथों में रखा गया और १८६३ से १८६७ तक वृटिश अधिकारियों के सिपुर्द रहा। ई० स० १८६७ में जगतराजजी २१ वर्ष के हो जाने पर राज्याधिकार उनके सिपुर्द कर दिया गया। दुर्भाग्य से ५ ही मास में आपका स्वर्गवास हो गया। आपके बाद वर्तमान नरेश महाराजा विश्वनाथ सिंह बहादुर राज्य-गद्दी पर बिराजे। महाराजा विश्वनाथसिंहजी का जन्म १८६६ के अगस्त मास की २९ वीं तारीख को हुआ था। आपने राजकुमार कालेज नौगांव में शिक्षा ग्रहण की है। ई० स० १६६७ से १८८७ तक रियासत पुनः वृटिश सरकार की देख-रेख में रही। ई० स० १८८७ में श्रीमान् महाराजा विश्वनाथसिंहजी बालिग हो गये। अतएव उन्हें राज्य के सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गये। श्रीमान् का विवाह ओरछा नरेश की सुकन्या के साथ हुआ है। श्रीमान् एक सुशिक्षित नरेश हैं। शिक्षा-प्रचार के आप बड़े ही पक्षपाती हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि आपने अपने राज्य में शिक्षा को काफी महत्व दे रखा है। अपनी प्रजा की उन्नति के लिये आप सर्वदा प्रयत्नशील रहते हैं। भारत सरकार की ओर से आपको हिज हाईनेस और राजाबहादुर की पदवियाँ पुश्त दरपुश्त के लिये मिली हुई हैं। आपको व्यक्तिगत महाराजा की पदवी और ११ तोपों की सलामी का अधिकार भी प्राप्त है।

ई० स० १९११ के दिसम्बर मास में दिल्ली में सम्राट् के राज्याभिषे-

कोत्सव के उपलक्ष में दरबार भरा उस समय श्रीमान् विश्वनाथसिंहजी भी दिल्ली पधारे थे। यहाँ पर आपको सम्राट् से मिलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

छतरपुर राज्य के प्रत्येक हिस्से में कई मनोहर प्राकृतिक दृश्य हैं। सतधारा, जटा शंकर और केन नदी का जल-प्रपात आदि इस राज्य के उल्लेख-नीय और दर्शनीय स्थान हैं।

हिज लेट हाइनेस राजा गोपाल सिंह जी बहादुर झाबुआ।

झाबुआ राज्य का इतिहास
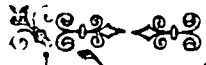
सेन्ट्रल इण्डिया की दक्षिण की रियासतों में से झाबुआ भी एक है। इस राज्य का क्षेत्रफल १३३६ वर्गमील है। यह राज्य मालवा प्लेटो (Plateau) के राघ नामक पहाड़ी भाग पर फैला हुआ है। इस राज्य के उत्तर में कुशलगढ़ और सैलाना की रियासतें, पूर्व में धार और ग्वालियर, दक्षिण में अलीराजपुर, जोबत तथा धार और पश्चिम में बम्बई इलाके का पंचमहल पर्गना है इस राज्य की आब हवा अति शीतोष्ण है।

इस राज्य में जंगल बहुत है जिसमें सागवान और खैर की कीमती इमारती लकड़ी होती है। ई० स० १९२१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार इस राज्य की मनुष्य-गणना १२३९३२ है। आधे से ज्यादा आदमी खेती द्वारा अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। साधारणतया यहाँ की जमीन उपजाऊ है। हाँ, कहीं २ अत्यन्त उपजाऊ जमीन भी है परन्तु बहुत थोड़ी। यहाँ की मुख्य पैदावार चावल अफीम, कपास, गेहूँ, जौ और मकई है।

झाबुआ के शासक राठौड़ राजपूत हैं। ये जोधपुर की रियासत के संस्थापक सुप्रसिद्ध जोधाजी के पाँचवें पुत्र वीरसिंहजी के वंशज हैं वीरसिंहजी को अपने पिताजी की तरफ से रीवाँ की जागीर मिली थी परन्तु आप ई० स० १४१५ में स्वर्गवासी हो गये। आपके बाद आपके पुत्र सूयाजी उत्तराधिकारी हुए। आपने ई० स० १४९५ से १५२२ तक राज्य

किया। ई० सन् १४९७ में आपको अजमेर जिले के अन्दर भिनाई नामक स्थान की जागीर भी मिल गई। आपके बाद जसवन्तसिंहजी गद्दी पर बैठे। आपने ई० स० १५४८ तक राज्य किया। आपके बाद रामसिंहजी (१५४८–६७) और रामसिंहजी के बाद भीमाजी ई० स० १५६७ में गद्दी पर बिराजे। इन भीमाजी ने अकबर को कई युद्धों में सहायता दी। इन युद्धों में आपने अपनी अलौकिक वीरता और अद्भुत पराक्रम का परिचय दिया। जिससे खुश होकर, सम्राट् ने आपको मालवे के ५२ जिले इनाम में दे दिये। ई० स० १५८४ में जब भीमाजी का स्वर्गवास हो गया तो केशवदासजी राज्यसिंहासन पर आरूढ़ हुए। येही केशवदासजी झाबुआ राज्य के संस्थापक हुए।

ई० स० १५७२ में केशवदासजी युवराज सलीम के बेड़े में भरती कर दिये गये थे, जिससे ई० स० १५८४ में होनेवाले बंगाल के युद्ध में आप अपने दो दो हाथ दिखा सके थे। जब सलीम दिल्ली के तख्त पर बैठे तो उन्होंने केशवदासजी को एक बड़ी भारी जिम्मेदारी का काम सौंपा। वह काम था, झब्बू नायक, धाना नायक, और लाखानायक को गिरफ्तार करना। ये तीनों इस समय मालवा के दक्षिण-पश्चिम के हिस्से में लूट खसोट मचा रहे थे। इन्होंने गुजरात के सूबेदार के लड़के को बुरी तरह मार डाला था। परन्तु इससे केशवदासजी तनिक भी विचलित नहीं हुए। उन्होंने इन लोगों को बड़ी बहादुरी के साथ हरा दिया और उनका झाबुआ, ठाडला, भागोर और रामगढ़ का प्रदेश छीन लिया। इस कृत्य से सम्राट् बहुत ही खुश हुए और उन्होंने केशवदासजी को ई० स० १६०७ में राज्यभक्ति सूचक बादशाही तकमा दिया। परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि केशवदासजी इन उपरोक्त सम्मानों का उपभोग बहुत दिनों तक नहीं कर सके। आप अपने पुत्र करनसिंहजी द्वारा जहर देकर मार डाले गये। आपकी इस अचानक मृत्यु से राज्य की स्थिति कुछ डावाँडोल सी हो गई। करीब सारी सत्रहवीं शताब्दि भर इस राज्य की यही स्थिति रही।

दूसरी शताब्दि के आरम्भ में इस प्रदेश पर मरहठे लोगों के हमले शुरू हो गये। यह समय झाबुआ के इतिहास में बड़ा ही नाजुक रहा। निदान जब सर जॉन मालकम साहब के हाथों में मालवा की बागडोर आई तब फिर से इस राज्य में शान्ति का प्रादुर्भाव हुआ।

केशवदासजी के बाद क्रमशः करणसिंहजी (१६०७–१०) माहसिंहजी (१६१०–७७), कुशलसिंहजी (१६७७–१७२३), अनूपसिंहजी (१७२३–२७), शिवसिंहजी (१७२७–५८), बहादुरसिंहजी (१७५८–७०), भीमसिंहजी (१७७०–१८२९), प्रतापसिंहजी (१८२९–३२) और रतनसिंहजी (१८३२–४०) राज्यगद्दी पर विराजे।

ई० स० १८४० में झाबुआ की गद्दी पर गोपालसिंहजी बिराजे। ई० स० १८५७ में होनेवाले सिपाही विद्रोह के समय आपने बृटिश सरकार की जी जानसे सहायता की। आपने भोपावर नामक स्थान से भागकर आये हुए बहुत से अंग्रेजों को अपने महल में आश्रय दिया और स्थानीय अरब लोगों के जुल्म से उनको बचाया। इस सहायता के बदले में अंगरेज सरकार ने श्रीमान् महाराजा साहब को १२५०० रु० की खिलत प्रदान करके मालवा-भील-कोर के खर्च के लिए ली जानेवाली रकम में भी कमी कर दी। तत्कालीन गवर्नर जनरल साहब लार्ड केनिंग ने भी अपने एक खरीते में महाराजा साहब की सहायताओं को कबूल किया था।

ई० स० १८९५ में राजा गोपालसिंहजी का स्वर्गवास हो गया। आपके बाद आपके दत्तक पुत्र हिज हाईनेस राजा उदयसिंह बहादुर तख्त नशीन हुए। झाबुआ के वर्तमान नरेश आप ही हैं। ई० सन् १८९८ में आपको राज्य के सम्पूर्ण अधिकार मिले। आपकी सलामी ११ तोपों से ली जाती है और आप नरेन्द्र-मण्डल के (Chamber of Princes) सदस्य भी हैं। ई० स० १९०५ में हिज हाईनेस दी प्रिन्स ऑफ वेल्स (वर्तमान सम्राट्) ने इन्दौर में जो दरबार किया था उसमें आप सम्मिलित हुए थे।

श्रीमान् ने अपने राज्य में बहुत सुधार कर दिये हैं। आपके शासन-काल

में राज्य की आमदनी में भी खूब वृद्धि हुई है। आपने अपने राज्य में न्यायालय भी स्थापित किये हैं। इन न्ययालयों में बृटिश भारतीय कानून काम में लाये जाते हैं। श्रीमान् ने अस्पताल, स्कूल, सड़कें और पुलें बनवाने में भी काफी रकम खर्च की है। राज्य में नया बन्दोबस्त भी कायम कर दिया गया है। आबकारी विभाग का बन्दोबस्त मद्रास की सिस्टम के अनुसार किया गया है। रियासत में म्युनिसिपल और लोकल बोर्ड भी स्थापित कर दिये गये हैं। इन संस्थाओं से जनता का बहुत उपकार हुआ है।

रेव्हेन्यू के बन्दोवस्त के लिए राज्य—झाबुआ, रानापुर, टांडला और रम्भापुर नामक चार तहसीलों में विभक्त है। प्रत्येक तहसील एक २ तहसीलदार के अधिकार में है। मजिस्ट्रेट कोर्ट, डिस्ट्रिक्ट कोर्ट और सेशन जज कोर्ट झाबुआ शहर में है।

जमीन का लगान तहसीलदारों के मार्फत खजाने में जमा होता है। कुल बोई जाने वाली जमीन का $\frac{6}{10}$ हिस्सा उमरावों के अधिकार में है। इन उमरावों की संख्या १८ है। ये उमराव रियासत को खिराज देते हैं। झाबुआ राज्य की सीमा पर नाहरगढ़, मेघनगर, उदयगढ़, बजरंगगढ़, अमरगढ़ और भैरवगढ़ आदि के बहुत से रेलवे स्टेशन हैं। ये सब स्टेशन बम्बई बरोदा एन्ड सेन्ट्रल इण्डिया रेलवे की रतलाम गोधरा सेक्शन पर स्थित हैं। राज्य के बहुत से स्थानों में पोस्ट ऑफिस खोल दिये गये हैं। और खास झाबुआ शहर में तो तार ऑफिस भी है। कचहरियों में हिन्दी भाषा काम में लाई जाती है।

यूरोपीय महासमर के समय भी इस रियासत ने बहुतसी रकम, सिपाही और घोड़े भेजकर सम्राट् के प्रति अपनी असीम राज्य-भक्ति प्रदर्शित की थी।

सांगली, सावंतवाड़ी, बाँकानेर, बलरामपुर सूँठ, और सिरमूर राज्यों का इतिहास

HISTORY OF THE SANGLI, SAWANTWADI, BANKANER, BALRAMPUR, SUNTH, & SIRMOOR STATES.

सांगली राज्य का इतिहास

सांगली रियासत का क्षेत्रफल ११११२ वर्गमील है। यह रियासत कोल्हापुर के पोलिटिकल एजेंट की आधीनता में है। ई० स० १९११ की मर्दुमशुमारी के अनुसार यहां की मनुष्य संख्या २२८००० थी।

सांगली नरेश चितपावन ब्राह्मण हैं। आप सुप्रसिद्ध पटवर्धन घराने के हैं। आपके पूर्वज ई० स० की १८ वीं शताब्दी में पेशवा के साथ कोकण से यहाँ आये थे। साँगली राज्य के संस्थापक हरभट्ट थे। आपका जन्म ई० स० १६५५ में रत्नागिरि जिले के कोटावाड़ा नामक ग्राम में हुआ था। हरभट्टजी अपने दयाभाव एवम् वैदिक साहित्य की जानकारी के लिये प्रसिद्ध थे। अपने इन गुणों के कारण आप इचलकरंजी रियासत के महाराजा नारो नरेश के कुल-गुरु हो गये। धीरे २ पूना के प्रथम पेशवा बालाजी विश्वनाथ प्रथम की दृष्टि आप पर पड़ी। पेशवा के कृपा-पात्र हो जाने के कारण मरहठा साम्राज्य में आप एक प्रतिष्ठित पद पर आरूढ़ हो गये। ई० स० १७५० में हरभट्ट जी का पूना में स्वर्गवास हो गया। आपके बाद आपके पुत्र गोविन्दहरिजी आपके उत्तराधिकारी हुए। गोविन्दहरिजी ने कृष्णा नदी के तीर पर सांगली के समीप हरिपुर नामक गाँव बसाया। आपको सात पुत्र हुए, जिनमें से तीन ने मरहठी सेना में बड़ी नामवरी प्राप्त की। गोविन्दहरिजी भी ई० स० १७१९ से ही मरहठी सेना में भरती हो गये थे। अपने वीरोचित गुणों के कारण ई० स० १७४१ में आप बालाजी बाजीराव प्रथम के घुड़सवारों के

सेना-नायक के पद पर पहुँच गये थे। गोविन्दहरिजी ने हैदरअली और निजाम हैदराबाद आदि पेशवा के भयंकर शत्रुओं के विरुद्ध कई युद्धों में बड़ी रणचातुरी का परिचय दिया था। आपके पुत्र गोपालरावजी ने भी कई युद्धों में अपने पिताजी के समान वीरता प्रदर्शित की थी। इन सेवाओं से प्रसन्न होकर पेशवा ने आपको मंगलवेध, मिराज, दोदवाड़ आदि कई गाँव जागीर में प्रदान किये थे। गोविन्दहरिजी ने मिराज नामक स्थान को अपने जागीर के गाँवों की राजधानी बनाया। आप मृत्यु पर्यन्त इसी स्थान में रहे। ई० स० १७७१ में आपका स्वर्गवास हो गया। आपके बाद आपके जेष्ठ पुत्र वामनरावजी उत्तराधिकारी हुए। गद्दी पर बैठते समय पेशवा की ओर से वामनरावजी को सिरोपाव मिला। वामनरावजी भी अपने पूर्वजों के समान बड़े शूरवीर थे। आपने एक समय हैदरअली को बड़ी बुरी तरह पराजित किया था। दुर्भाग्य से आप बहुत दिनों तक जीवित न रह सके। ई० स० १७७५ में बारगाँव में आपका स्वर्गवास हो गया। आपके बाद पाण्डुरंगराव उत्तराधिकारी हुए। इसी समय हैदरअली ने कृष्णा नदी के दक्षिण के मरहठी मुल्क पर अधिकार करने के लिये चढ़ाई की। पांण्डुरंगराव उसका सामना करने के लिये भेजे गये। सबाशी नामक स्थान के पास युद्ध हुआ। इसमें हैदरअली की चालाकी के कारण पांडुरंगराव को हारना पड़ा। वे हैदरअली द्वारा कैद कर लिये गये। अब पूना कोर्ट के मंत्रियों ने पांडुरंगराव के जेष्ठ पुत्र हरिहरराव को उक्त जागीर का उत्तराधिकारी नियुक्त किया। ई० स० १७७८ की १ अक्टुबर को पेशवा की ओर से हरिहरराव को सम्मान सूचक सिरोपाव मिला। हरिहरराव इस समय नाबालिग थे। अतएव जागीर का इन्तज़ाम परसराम भाऊ नामक एक सज्जन के सुपुर्द किया गया। परसराम भाऊ ने बड़ी ही उत्तमता के साथ इस कार्य को संभाला, पर ई० स० १७८२ में हरिहरराव का बीमारी के कारण स्वर्गवास हो गया। पूना कोर्ट में पुनः वारिस के लिये प्रश्न उपस्थित हुआ। अबकी बार पांडुरंगराव के द्वितीय पुत्र चिन्तामणराव जागीर के अधिकारी

नियुक्त हुए। चिन्तामणराव भी नाबालिग थे अतएव जागीर के इन्तिजाम का कार्य फिर भी परशराम भाऊ ही के पास रहा। बालिग हो जाने पर चिन्तामण-राव ने अच्छी नामवरी प्राप्त की। सांगली रियासत के वास्तविक जन्म-दाता आप ही थे। आप ही के राज्य-काल से इस रियासत का इतिहास आरंभ होता है।

ई० स० १७९१ में टीपू सुल्तान की बढ़ती हुई शक्ति का नाश करने के लिये निजाम, मरहठे और बृटिश सरकार के बीच एक तहनामा हुआ। तीनों की संयुक्त शक्ति ने टीपू पर हमला कर दिया। इस अवसर पर पटवर्धन घराने ने बृटिश जनरल मिडोज़ और लार्ड कार्नवालिस को जो बहुमूल्य सहायताएँ पहुँचाईं वे प्रशंसनीय हैं। टीपू सुल्तान ने विपक्षियों को ३३००००००) रु० नगद और आधा राज्य देकर सुलह कर ली।

ई० स० १८०० में ढोंढिया बाघ नामक व्यक्ति ने बलवा खड़ा किया पर जनरल वेलेस्ली ने उसे शान्त कर दिया। अब विजित प्रदेश के बटवारे के विषय में झगड़ा उत्पन्न हुआ। ढोंढिया ने जिस प्रदेश में उपद्रव मचाया था वह मूलतः पेशवा के अधिकार में था पर मैसूर-युद्ध के समय वह पटवर्धन-वंश को दे दिया गया था। अतएव सिंधिया सरकार के विरोध करते रहने पर भी लार्ड वेलेस्ली ने उक्त प्रदेश पटवर्धन-वंश ही के अधिकार में रखा। जिस समय ढोंढिया-उपद्रव के कारण चिन्तामणराव बाहर गये हुए थे, उस समय उनके चाचा गंगाधरराव राज-कार्य संभालते थे। गंगाधरराव ने राज्य के बहुत से हिस्से पर अपना स्वतंत्र अधिकार कर लिया। इससे राज-कुटुम्ब में बड़ा झगड़ा हो गया। इस झगड़े को शांत करने के लिये ई० स० १८०१ में एक तहनामा हुआ। इस तहनामे के अनुसार गंगाधरराव को कुछ जागीर दे दी गई। बाकी का सारा राज्य चिन्तामणराव के आधीन रहा। चिन्तामणराव ने कृष्णानदी के तटवर्ती सांगली नामक ग्राम को अपनी राजधानी बनाकर राज्य-कार्य शुरू कर दिया। यह सांगली गाँव धीरे २ एक शहर के रूप में परिणित हो गया और इसी के नाम से रियासत का नाम भी सांगली पड़ा।

ई० स० १८०२ में सिंधिया और होलकर के बीच भयंकर वैमनस्य हो गया। यह मनोमालिन्य यहाँ तक बढ़ गया कि पेशवा को गद्दी छोड़कर बम्बई सरकार की सहायता लेनी पड़ी। जनरल वेलेस्ली ने पटवर्धन-सेना की सहायता से पेशवा को पुनः गद्दी पर बिठाया। इसके कुछ ही समय बाद दक्षिण के जागीरदारों ने पेशवा के खिलाफ शिकायतें करना शुरू कीं। इसके लिये पूना के तत्कालीन रेसिडेन्ट ने पेशवा को सन्देश भेजा कि वे उक्त जागीरदारों के साथ न्याय करें। कुछ ही समय में एक तहनामा भी हुआ। इस तहनामे के अनुसार पटवर्धन-वंश शान्तिपूर्वक राज-काज करने लगा पर पेशवा को यह बात नहीं रुची। अपने आधिनस्त जागीरदारों के मामलों में बृटिश सरकार हस्तक्षेप करे यह उन्हें अच्छा न लगा। अतएव ई० स० १८१७ में उन्होंने बृटिश सरकार से अपनी मैत्री का संबंध तोड़ लिया। उन्होंने पूना की रेसिडेन्सी पर एकदम हमला कर दिया। इस समय बृटिश सरकार ने पटवर्धन-वंश को अश्वासन दिया और कहा कि यदि वे इस झगड़े में तटस्थ रहेंगे और पेशवा की सहायता न करेंगे तो उनकी स्थिति पहले से बहुत अच्छी बना दी जायगी। पटवर्धन ने यह बात मान ली और अंग्रेज सरकार की अच्छी सहायता की। इस झगड़े में अंग्रेजों की विजय हुई और दक्षिण बृटिश आधिपत्य में आया। पर इससे चिन्तामणराव को फायदा नहीं हुआ। चिन्तामणराव पहले इस युद्ध में अंग्रेजों के मित्र समझे जाते थे पर अब वे अंग्रेजों के मातहत नरेश समझे जाने लगे। पहले तो चिन्तामण-राव ने इसका विरोध किया पर पीछे जाकर बृटिश अधिकारियों द्वारा सम-झाये जाने पर उन्होंने बृटिश आधिपत्य स्वीकार कर लिया।

साम्राज्य-सरकार के प्रति अपनी राजभक्ति प्रदर्शित करने के हेतु से श्रीमान् चिन्तामणराव ने कोल्हापुर राज्य में उत्पन्न हुए उपद्रव के समय बृटिश सरकार को सबसे बहुमूल्य सहायता दी थी। इस सहायता के लिये वहाँ के तत्कालीन रेसिडेन्ट साहब ने आपकी बड़ी प्रशंसा की थी। समय २ पर बृटिश साम्राज्य के प्रति बतलाई गई आपकी भक्ति से प्रसन्न

होकर बृटिश सरकार ने आपको एक सम्मान सूचक तलवार प्रदान की थी।

श्रीमान् चिन्तामणरावजी ने बृटिश आधिपत्य में रहकर ई० स० १८१८ से १८५१ तक सांगली रियासत पर राज्य किया। ई० स० १८५१ के जुलाई मास की १५ वीं तारीख के दिन आपका स्वर्गवास हो गया। साँगली राज्य की प्रजा आपके नाम को अभी भी बड़े आदर के साथ स्मरण करती है।

श्रीमान् चिन्तामणरावजी के पुत्र गणपतराव जी ई० स० १८३६ ही में स्वर्गवासी हो चुके थे। अतएव उनकी (गणपतरावजी) विधवा रानी ने विनायकराव भाऊ साहब नामक व्यक्ति को दत्तक ले लिया था। ये ही विनायकराव राजा चिन्तामणरावजी का स्वर्गवास हो जाने पर सांगली की गद्दी पर बिराजे। ई० स० १८३८ में स्वर्गीय गणपतरावजी की पत्नि के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। अब विनायकरावजी गद्दी के अधिकार से च्युत कर दिये गये और नवजात राजा धुन्दीराव तांतियां साहब राजगद्दी पर बिठा दिये गये। श्रीमान् राजा धुन्दीराव ई० स० १८५७ में बालिग हुए। इसी साल प्रसिद्ध सिपाही-विद्रोह हुआ। इस विद्रोह के समय श्रीमान् ने बृटिश सरकार की तन, मन, धन, से सहायता की। आपने ४० वर्ष तक बड़ी ही योग्यता के साथ कारभार चलाया। ई० स० १९०१ के दिसम्बर मास में आपका देहान्त हो गया। आपको कोई पुत्र न होने के कारण सांगली राज्य अंग्रेज सरकार की देखरेख में आ गया। अब स्वर्गीय महाराज विनायक रावजी के प्रपौत्र विनायकरावजी (द्वितीय) सांगली के उत्तराधिकारी नियुक्त किये गये। आपका नाम बदल कर चिन्तामणराव आप्पा साहब रक्खा गया। ई० स० १९१० की २ री जून को आपको राज्य के सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गये। आपने राजकोट के राजकुमार कालेज में शिक्षा प्राप्त की है। आप एक सुसभ्य और विद्वान् नरेश हैं। राज्य के प्रत्येक विभाग के कार्य की देखरेख आप स्वयं करते हैं। आपका ध्यान हमेशा राज्य और प्रजा के हित में लगा रहता है।

सांगली राज्य ४ बड़े २ जिलों में विभक्त है। कुछ इनाम के गाँवों को छोड़कर बाकी के राज्य की सारी जमीन का हाल ही में नया बन्दोबस्त किया गया है। इस बन्दोबस्त के अनुसार राज्य की रेव्हेन्यू ८००००० के करीब है। यहाँ के मनुष्यों का खास व्यवसाय कृषि है। राज्य की ओर से नवीन वैज्ञानिक ढंग की कृषि संबंधी शिक्षा देने का प्रबंध हो रहा है। राज्य में कई बड़े २ बाग हैं। इनमें नारियल और आम आदि काफी तादाद में पैदा होते हैं। रियासत की पशुशाला (Cattle farm) के जानवर हृष्ट पुष्ट रहते हैं। बम्बई के गवर्नर लार्ड वेलिंगटन ने जो कि उस प्रान्त के एग्रिकलचर डायरेक्टर भी हैं उक्त पशु-शाला को देखकर बड़ा संतोष प्रगट किया था।

पहले इस रियासत का जंगल-विभाग बड़ी बुरी दशा में था। अब उसमें कई उचित सुधार कर दिये गये हैं। इससे जंगल की दशा बहुत अच्छी हो गई है। इस समय राज्य में एक फारेस्ट आफिसर, एक हेड़ असिस्टेन्ट एक सव्हेंअर और ३० गार्ड हैं।

गत २०,२५ वर्षों से राज्य का व्यापार भी तरक्की पर आ गया है। इस समय राज्य में घी, तम्बाखू कपास और मिर्च आदि का व्यापार तरक्की पर है। रेल्वे और स्टेट बेंक खुल जाने के कारण भी सांगली रियासत के व्यापार की अभिवृद्धि हुई है। सांगली आजकल दक्षिणीय मराठा कंट्री स्टेट्स के व्यापार का केन्द्र स्थान समझा जाता है।

शाहपुरा और रबकावी नामक स्थान कपास और रेशम की चीजों की रंगाई के लिये प्रसिद्ध हैं। सांगली शहर में ताँबे, पीतल और अन्य धातुओं के बढ़िया बर्तन और गहने बनाये जाते हैं। सिरहट्टी और उसके आसपास के गाँवों में कम्बल बुने जाते हैं। बेलहट्टी स्थान में पत्थर के बर्तन और कुछ स्थानों में काँच की चुड़ियाँ बनाई जाती हैं। राज्य में कई पुतली-घर, आटा पीसने की चक्कीयाँ और गूंथने आदि के कारखाने हैं।

ई० स० १८५१,५२ के पहले इस राज्य का न्याय-विभाग बहुत ही खराब हालत में था। उसमें न तो कोई कानून नियुक्त थे और न किसी

मुकद्दमे की जाँच करने का तरीका ही था। पर अब इस विभाग में गजब का परिवर्तन हो गया है। बृटिश भारत में जो कानून काम में लाये जाते हैं वही यहां पर भी उपयोग में आते हैं। इस समय राज्य में २५ फौजदारी, सेशन और अपिलेन्ट कोर्टें हैं। इसमें हुजूर, न्यायाधीश और डिस्ट्रिक्ट मेजिस्ट्रेट कोर्टें भी शामिल हैं। रियासत में ६ दीवानी कोर्टें हैं। राजा साहब को अपने राज्य के सर्व प्रकार के मामलों में फैसला देने का अधिकार है।

इस राज्य के शिक्षा-विभाग की उन्नति ई० स० १८५७ में हुई है। इसके पहले रियासत की ओर से सांगली में कोई पाठशाला स्थापित नहीं थी, पर थोड़े ही अर्से में दूसरे विभागों की तरह इस विभाग में भी खासी उन्नति हो गई। ई० स० १९१८, १९१९ में राज्य की ओर से १७६ पाठशालाएँ स्थापित हो चुकी हैं। इन सब पाठशालाओं में करीब १०००० विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते हैं।

रियासत ने ई० स० १८२१ में १३५०००) का मुल्क एक साथ देकर हमेशा के लिये खिराज देने से मुक्ति प्राप्त कर ली है। ई० स० १८९३ में राज्य के व्यापार की अभिवृद्धि और किसानों के फायदे के लिये एक बेंक स्थापित किया गया था। इस समय राज्य के छहों तालुकों में इस बेंक की शाखाएँ स्थापित हैं। राज्य और प्रजा के लिये यह बेंक अत्यंत उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके अतिरिक्त राज्य में करीब २२५ को-आपरेटिव-क्रेडिट सोसाइटियाँ भी कार्य कर रही हैं।

सावंतवाड़ी राज्य का इतिहास

सावंतवाड़ी यह पश्चिमी-भारत की एक प्राचीन मरहठा रियासत है। यहाँ के शासक सुप्रसिद्ध भोंसले परिवार के हैं। यह राज्य अब बंबई प्रेसिडेन्सी में स्थित है। इस राज्य के मूल पुरुष माँगूजी सावँत थे। जिस समय माँगूजी सावंत यहाँ राज्य करते थे, उस समय बिजापुर के आदिलशाही घराने का दक्षिणी भारत पर अधिपत्य था तथा माँगूजी सावंत ने भी उनकी आधीनता स्वीकार की थी। कहा जाता है कि बिजापुर के राजाओं ने इन्हें "सर देसाई" की उपाधि प्रदान की थी। माँगूजी सावंत के वंशजों ने समय २ पर बिजापुर राज्य से स्वतंत्र होने का प्रयत्न किया, किन्तु इस प्रयास में वे तब तक पूर्णरूप से सफल न हो सके जब तक कि बिजापुर की सल्तनत का मिटियामेट न हो गया। जिस समय बिजापुर की सल्तनत का विध्वंस हुआ, उस समय यहाँ खेम सावंत (प्रथम) राज्य करते थे। सत्रहवीं शताब्दी के शुरू में इनके पौत्र खेम सावंत (द्वितीय) के शासन-काल में महाराष्ट्र कुल भूषण छत्रपति शिवाजी के पौत्र शाहू महाराज ने उन्हें राज्य-शासन के पूर्ण अधिकार प्रदान किये।

इनके पश्चात् ई० स० १७०९ में फोंद सावंत राज्य-गद्दी पर बैठे। ई० स० १७३० में इन्होंने कोलाबा के राजा कानोजी आंगरे के उपद्रव से तंग होकर अंग्रेज सरकार से संधि कर ली।

ई० स० १७३८ में फोंद सावँत की मृत्यु होने पर उनके पौत्र रामचन्द्र सावँत ने राज्य-सूत्र धारण किया। इनकी मृत्यु के पश्चात् ई० स० १७५५ में उनके पुत्र खेम सावँत (तृतीय) सिंहासनारूढ़ हुए। ये इतिहास में 'महान् खेम सावंत' के नाम से प्रसिद्ध हैं। ई० स० १७६३ में आपका जयाजी सिंधिया की पुत्री लक्ष्मीबाई के साथ विवाह हुआ। इसके कुछ ही समय पश्चात् आपको तत्कालीन मुगल सम्राट् की ओर से राजे बहादुर की उपाधि प्राप्त हुई। यह उपाधि भारत सरकार ने भी स्वीकार की है। आपका सारा शासन-काल कोल्हापुर के राजा, पोर्तगीज लोग तथा अन्य दूसरे छोटे राजाओं से युद्ध करने में बीता। इन युद्धों में आप अपने बहुत से महत्वपूर्ण जिलों से हाथ धो बैठे। ४८ वर्ष राज्य करने के पश्चात् ई० स० १८०३ में आपको कोई पुत्र न था, अतएव राज्यगद्दी के लिये झगड़ा खड़ा हुआ। लगातार दो वर्ष तक यह झगड़ा चलता रहा। अन्त में आपकी पत्नी लक्ष्मीबाई ने इसी राज्यवंश के रामचन्द्र सावँत ऊर्फ भाऊ सावँत नामक लड़के को दत्तक लिया। किन्तु ४ ही वर्ष के पश्चात् किसी ने आपको मार डाला। आपके पश्चात् फोंद सावँत राजगद्दी पर बैठे। आपके शासन-काल में कोई विशेष महत्वपूर्ण घटना नहीं हुई। हाँ, आपकी प्रजा द्वारा जल मार्ग में विशेष लूट खसोट किये जाने से वेंगुरला का किला आपके पास से छीन लिया गया। ई० स० १८१२ में आप इहलोक से कूच कर गये। आप एक नाबालिग पुत्र छोड़ गये थे, जिन्होंने ई० स० १८२२ में खेम सावँत (चतुर्थ) के नाम से राज्यसूत्र धारण किया। ई० स० १८३८ में भारत-सरकार ने एक निश्चित रकम देने की शर्त पर आपसे आपके राज्य के जल तथा थल मार्ग की जकात वसूली का हक्क प्राप्त कर लिया। इसी वर्ष राज्य में अव्यवस्था फैल गई, इसलिये भारत-सरकार ने आपकी अनुमति से इस राज्य का शासनकार्य अपने हाथ में ले लिया। ई० स० १८४४ में भी कुछ लोगों ने बलवा खड़ा किया, किन्तु बृटिश कर्मचारियों ने उसे शान्त कर दिया।

राज्य में चारों ओर शान्ति हो जाने पर ई० स० १८६१ में आपको

शासनाधिकार फिर से प्राप्त हो गये। आपने शासन-सूत्र धारण करते समय बृटिश सरकार के साथ निम्न लिखित शर्तें मंजूर कीं:—

(१) "अंग्रेज सरकार द्वारा ई० स० १८४४ का बलवा शान्त करने में खर्च की हुई रकम अर्थात् ५,५०,००० रुपये वापस उन्हें दे दिये जावे।

(२) राज्याधिकार प्राप्त होने के उपलक्ष्य में बृटिश सरकार को अपने राज्य की एक वर्ष की आमदनी दें।

(३) आप अपनी प्रजा के संरक्षण का समुचित-प्रबंध करें।

(४) बृटिश रेसिडेंट तथा उनके अमले के लिये होनेवाला कुल खर्च आप भुगतें।"

यहाँ यह भी कह देना उचित होगा कि आपके पुत्र अप्पा साहब भी उपरोक्त बलवे में शरीक थे, किन्तु इस कर्म के लिये उन्हें माफी दी गई और वे राज्य के भावी अधिपति स्वीकृत किये गये। इस समय भी फिर खेम सावँत (चतुर्थ) राजकार्य सुव्यवस्थित तौर पर न चला सके। बृटिश सरकार द्वारा नियुक्त किये हुए पोलिटिकल सुपरिन्टेन्डेंट ने आपको अपनी प्रजा के हित की ओर विशेष ध्यान देने के लिये कई वक्त कहा-सुना, किन्तु आप की शासन प्रणाली में कुछ भी अन्तर न हुआ। अन्त में बृटिश सरकार को राज्य-शासन में फिर से हस्तक्षेप करना पड़ा। ई० स० १८६७ में आपकी मृत्यु हो गई।

आपके पश्चात् युवराज अप्पा साहब फोंद सावंत (चतुर्थ) के नाम से गद्दीनशीन हुए। मदिरा-सेवी होने के कारण आप राजकार्य न सँभाल सके, अतएव बृटिश सरकार ने आपके शासनाधिकार नियमबद्ध कर, केवल नाम मात्र के लिये आपको राजा बना रखने की योजना की। यह योजना पूरी तौर पर कार्य रूप में परिणित भी न होने पाई थी कि आप इस लोक से चल बसे। आपके पश्चात् ई० स० १८७० की २९ वीं अगस्त को आपके पुत्र रघुनाथ सावंत 'सावंतवाड़ी के सर देसाई' के नाम से राज्यासन पर बैठाये गये। आपकी उम्र इस समय केवल ६ वर्ष की थी, अतएव शासन-भार पोलिटिकल

सुपरिटेंडेंट के हाथों में रहा। आपने अपनी प्राथमिक शिक्षा कोल्हापुर रेसिडेंट की देखरेख में प्राप्त की। इसके पश्चात् आपने राजकोट के राजकुमार कॉलेज में शिक्षा ग्रहण की।

ई० स० १८७८ में राजधानी में एक भव्य दरबार हुआ, जिसमें स्वर्गीय विक्टोरिया महारानी के भारत-सम्राज्ञी पद धारण करने की स्मृति स्वरूप वाइसराय साहब द्वारा भेजा हुआ "देहली बॅनर" आपको अर्पण किया गया। आप अभी राज्य-सूत्र धारण करने योग्य भी न हुए थे कि, आपका ई० स० १८९९ में स्वर्गवास हो गया। आपके पश्चात् आपके चचेरे भाई श्रीराम सावंत ई० स० १९०० की २३ वीं जुलाई को राज्यारूढ़ हुए। आप की देखरेख में केवल पागा, दरबार और देवस्थान विभागों का कार्य दिया गया। बाकी सब राज्य-कार्य आपके नाम से पोलिटिकल एजेंट करते रहे।

ई० स० १९१३ की २४ वीं अप्रेल को आपका देहान्त हो गया। आपके पश्चात् आपके पुत्र राजे बहादुर खेम सावंत भोंसले सिंहासनासीन हुए। आप ही वर्तमान सावंतवाड़ी नरेश हैं। आपका जन्म ई० स० १८९७ की २० वीं अगस्त को हुआ था। छः वर्ष की उम्र हो जाने पर आप पूना में मिस एल० सी० मोक्सन के पास रखे गये। इनके पास आपने अपनी प्राथमिक शिक्षा सम्पूर्ण की। इसके पश्चात् २ वर्ष तक आपने कोल्हापुर में लेफ्टनेन्ट ताता के पास विद्याध्ययन किया। ई० स० १९१२ के जनवरी मास में आपने मिस मोक्सन के साथ इंगलैंड के लिये प्रयाण किया। वहाँ पहुँच कर आपने मालवर्न के कॉलेज में शिक्षा ग्रहण की। कॉलेज की शिक्षा समाप्त होने पर आपने श्रीमान् भारत सम्राट् से गत यूरोपीय महायुद्ध में स्वतः सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की, तदनुसार आप द्वितीय श्रेणी के लेफ्टनेन्ट नियुक्त किये गये। आप ई० स० १९१७ में इंग्लैंड से वापस लौटे, किन्तु यहाँ कुछ ही दिन रहकर आप उसी वर्ष की ६ वीं अक्टूबर को मेसोपोटामिया पधारे और वहाँ युद्ध-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। वहाँ से आप ई० स० १९१९ की ४ थी मार्च को सावंतवाड़ी वापस आये, उस समय आपकी प्रजा ने आपका

शानदार स्वागत किया। इसी वर्ष की २१ वीं जुलाई को भारत सम्राट् ने आपको कॅप्टिन की उपाधि से विभूषित किया।

यह राज्य भारत सरकार या कोई दूसरी रियासत को खिराज नहीं देता। इसका विस्तार ९२५ वर्ग मील है और वार्षिक आमदनी लगभग ७,००००० रुपये है। यह राज्य समुद्र के किनारे के नजदीक ही बसा हुआ है। यहां सह्याद्रि पर्वत की श्रेणियाँ चारों ओर फैली हुई हैं, जिनकी ऊंचाई ३०० फीट से लगाकर ३००० फीट तक है। वर्षा अच्छी होने के कारण यह भाग अत्यंत उपजाऊ है और यहाँ की भूमि भी उपज के लिहाज से बहुत अच्छी है। उपजाऊ भूमि और जल की विपुलता के कारण प्रकृति-देवी ने इस राज्य को वन-श्री तथा सुन्दर बगीचों से विभूषित कर रक्खा है। सह्याद्रि पर्वत की पृथक् २ ऊंची चोटियों पर इतिहास प्रसिद्ध कई किले स्थित हैं। इनमें से एक किला तो महाभारत के समय का बना हुआ है। ये पर्वत-श्रेणियाँ बहुतसी छोटी २ नदियों के उद्गम-स्थान हैं। ये नदियाँ राज्य के विभिन्न हिस्सों में बहकर अरब समुद्र में मिलती हैं।

इस राज्य में बृटिश भारत में चलने वाले कानून का व्यवहार होता है। न्याय-विभाग भी उक्त कानूनों के अनुसार सुसंगठित किया गया है।

ई० स० १८३९ के पहिले राज्य में सरकार की ओर से प्रजा के विद्याध्ययन के लिये कुछ भी प्रबंध न था। जब मिस्टर रिचार्ड स्पूनर इस राज्य के पोलिटिकल सुपरिंटेडेंट नियुक्त किये, तब उन्होंने सबसे पहले वाड़ी में एक पाठशाला स्थापित की। पाठशालाओं की संख्या प्रतिवर्ष बढ़ती गई। ई० स० १८७९ में यहाँ कुल १८६९ विद्यार्थी विद्या-लाभ करते थे। ई० स० १९१२-१३ से इन पाठशालाओं की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है और अब हम यहाँ देखते हैं कि राज्य के प्रत्येक गाँव में बालक विद्याध्ययन करते हैं। कुछ मुख्य गांवों में अंग्रेजी स्कूल भी खोले गये हैं। तथा वाड़ी में कन्याओं की शिक्षा का भी प्रबन्ध है। इन सब विद्यालयों में प्रतिवर्ष ५६००० रुपया खर्च होता है।

वाड़ी, कुडल और बांदा में सर्व साधारण के लिये पुस्तकालय हैं, जिनमें पुस्तकों की संख्या अच्छी है। राज्य के पृथक् २ भागों में औषधालय खोल कर औषधियां तथा चिकित्सा की व्यवस्था की गई है।

गत १०० वर्षों से इस राज्य ने धीरे २ उन्नति की ओर कदम बढ़ाया है। यहाँ के प्रजा-जनों को अब कई प्रकार की सुविधाएं प्राप्त हो गई हैं। राज्य में कृषि, शिक्षा, व्यापार के उपयोग में आनेवाली सड़कें, पोस्ट ऑफिसें आदि बातों का प्रबंध अच्छा हो गया है। यहाँ की आर्थिक स्थिति भी अब बहुत कुछ सुधर गई है और इस समय सरकारी खजाने में ७,००:०० रुपया बतौर अमानत के जमा है। यहां यह कहना अनुचित न होगा कि, जिस समय ई० स० १८३८ की १७ वीं सितम्बर को इस का शासन-भार पहले पहल भारत सरकार ने अपने हाथों में लिया था उस समय खजाने में केवल ५३) रुपये शेष थे और राज्य में अव्यवस्था भी फैली हुई थी।

बाँकानेर राज्य का इतिहास

यह राज्य काठियावाड़ पोलिटिकल एजंसी के हालर विभाग में बसा हुआ है। इसके अधिष्ठाता राज श्री सरतनजी हैं। आप हलवद्-ध्रांगधरा के राजा चन्द्रसिंहजी के पौत्र थे। आपने ई० स० १६०५ में इस राज्य की स्थापना की। आपके पश्चात् आपके वंशजों का शासन बड़ा उज्वल रहा। ई० स० १७४९ से १७८३ तक यहाँ का राज्य-शासन भाराजी ने किया। आपने अपने शासन-काल में बहुतसा मुल्क जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। दूसरे प्रतापशाली राजा चन्द्रसिंहजी उर्फ दोसाजी हुए। आपने ई० स० १७८७ में शासन-सूत्र धारण किया। आप बड़े बलवान एवं साहसी नरेश थे। आपके शासन-काल में बहुत से राजाओं ने झगड़े बखेड़ उठाये किन्तु आपने अपने राज्य का बड़ी चतुराई से संरक्षण किया। ई० स० १८०७ में राजा चन्द्रसिंहजी ने ईस्ट इडिया कंपनी के प्रतिनिधि कर्नल वॉकर और गायकवाड़ सरकार के प्रतिनिधि बाबाजी के साथ सन्धि करली। इसी संधि-पत्र के अनुसार साम्राज्य सरकार इस राज्य से अबतक व्यवहार रखती है। ई० स० १८३९ में आपका देहान्त होगया। आपके पश्चात् आपके पाटवी कुँवर राजा बखतसिंहजी तख्तनशीन हुए। आप बड़े धर्मशील एवं उदार नरेश थे। आपने अपने शासन-काल में हिन्दुओं के सुप्रसिद्ध देवस्थानों की यात्रा की। ई० स० १८६१ में आप स्वर्गवासी होगये। आपके पश्चात् आपके पौत्र विनयसिंहजी राज्याधिकारी हुए। आपने ई० स० १८६१ से

हिज हाइनेस सर अमर सिंह जी के० सी० आई० ई०
महाराना राज साहब बीकानेर ।

१८८१ तक शासनभार सँभाला। आपकी मृत्यु के अनन्तर वर्तमान महाराजा साहब गद्दीनशीन हुए हैं। आपका शुभ नाम केप्टन महाराना राज साहब सर अमरसिंहजी है। आपको के० सी० आई० ई० की उपाधि प्राप्त है। आपका जन्म ई० स० १८७९ की ४ जनवरी को हुआ था। ई० स० १८८१ की १५ वीं जून को झालावाड़ के तत्कालीन असिस्टेंट पोलिटिकल एजेंट कर्नल नट की उपस्थिति में आपका राज्याभिषेक हुआ। आपकी उम्र इस समय २ वर्ष की थी, अतएव भारत सरकार ने शासन-शकट चलाने के लिये एक शासक (Administrator) नियुक्त किया। ई० स० १८८७ में आप राजकोट के राजकुमार कॉलेज में शिक्षा प्राप्त करने लगे। इस कॉलेज के प्रिन्सिपाल मि० मॅकनॉटन और उनके पश्चात् मि० वाडिंगटन की आप पर खास तौर से देख रेख थी। कॉलेज की शिक्षा समाप्त हो जाने पर आपने ई० स० १८९८ में भारत के मुख्य २ नगरों की यात्रा की। आप सीलोन द्वीप भी गये और उसी वर्ष के मई मास में आपने मेजर हॅकॉक के साथ यूरोप को प्रयाण किया। चार मास में इग्लैंड के विभिन्न दर्शनीय स्थान देखकर आप वापिस भारत लौटे। मार्ग में आप पेरिस शहर में कुछ दिन ठहरे। ई० स० १८९८ की २२ वीं अक्तूबर को आप बाँकानेर तशरीफ़ लाये। भारत लौट आने पर ई० स० १८९९ की १८ वीं मार्च को काठिया-वाड़ के तत्कालीन पोलिटिकल एजेन्ट कर्नल जे० एम० हन्टर की उपस्थिति में आपको शासनाधिकार प्रदान किये गये।

आपके शासन के पहले ही वर्ष भारत में भयंकर दुष्काल पड़ा। इस दुष्काल की कराल दाढ़ों से यह राज्य भी न निकल सका। ऐसे कठिन प्रसंग में आपने अपनी प्रजा की जो सहायता की, वह प्रशंसनीय है। आपने मालवा प्रान्त से अन्न और बैल मँगवाकर अपनी प्रजा में बाँट दिया। जल की कमी की पूर्ति करने के लिये आपने तकावी के रूप में बहुतसा रुपया कर्ज दिया। दुष्काल पीड़ित गरीबों के उदर निर्वाह के लिये आपने जसवन्त-सर और विनयसागर नामक दो तालाब खुदवाये। इन सब कार्यों में राज्यका

बहुत सा रुपया खर्च हो गया। अतएव आपने ५,००,००० रुपये कर्ज लिया। यह कर्ज चुका देने के लिये आपको अपनी शासन शैली में बड़ी मितव्ययिता के साथ काम लेना पड़ा। इस प्रकार आपने शीघ्र ही सारा कर्ज चुका दिया। इस अकाल में आप की प्रजा को जो कष्ट हुआ, उसका आपके सहृदय चित्त पर बड़ा ही असर हुआ। इसी वर्ष से आपने अपने राज्य में प्रतिवर्ष सस्ता अनाज और घास इकट्ठा कर रखने की व्यवस्था कर रक्खी है। ई० स० १८९९ से अबतक यहाँ तीन बार अकाल पड़े, किन्तु आपकी दूरदर्शिता के कारण प्रजा को भयंकर आपत्तियों का सामना न करना पड़ा।

ई० स० १९११ के देहली दरबार के समय भारत सम्राट् ने आपकी शासन-पटुता से प्रसन्न होकर आपको के० सी० आई० ई० की उपाधि प्रदान की। गत यूरोपीय महासमर की घोषणा होते ही आपने भारत सरकार को अपने राज्य के धन तथा जन से सहायता देने का अभिवचन दिया और साम्राज्य सरकार की ओर से युद्ध में स्वयं अवतीर्ण होने के लिये अपनी इच्छा प्रदर्शित की। आपकी इच्छा प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार की गई और आपको केप्टन का स्थायी खिताब दिया गया। आपके साथ के दूसरे ऑफिसरों की भी सेकन्ड लेफ्टनेन्ट के पद पर नियुक्ति की गई। ई० स० १९१५ की १४ वीं नवंबर को आपने फ्रान्स की यात्रा की ई० स० १९१६ की १४ वीं मार्च को आपकी भारत सम्राट् एवं सम्राज्ञी महोदया से लंदन में भेंट हुई। फ्रान्स के रणक्षेत्र से आप इसी साल के जुलाई मास में आपकी राजकुमारी तख्त-कुँअरबा साहिबा के विवाहोत्सव में सम्मिलित होने के लिये भारत लौट आये। ई० स० १९१७ की २७ वीं जनवरी को उक्त राजकुमारी का विवाह मयूरभञ्ज के महाराजा पूर्णचन्द्र भञ्जदेव के साथ हुआ। इस उत्सव में बहुत से भारतीय और यूरोपियन मेहमान सम्मिलित हुए थे।

विवाह हो जाने के कुछ दिनों बाद आपके मुख्य कारभारी राय बहादुर नाथाभाई ए० देसाई ने अपने अस्वास्थ्य के कारण राजकार्य से अवसर ग्रहण करने के लिये आप से अनुमति माँगी। आपने लगातार अठारह वर्षों तक

इस राज्य की बड़ी ईमानदारी के साथ सेवा की थी। महाराजा साहब का आप पर पूर्ण विश्वास था। अतएव महाराजा साहब ने आपका इस्तीफ़ा स्वीकार कर लिया। पर आपकी प्रशंसनीय सेवाओं के लिये महाराजा ने आपको अपना सलाहकार बनाये रखा। पश्चात् मि० देवशंकर जे० दवे, जो कि आपके समय में चार वर्ष तक नायब कारभारी का कार्य कर चुके थे, राज्य के मुख्य कारभारी नियुक्त किये गये।

ई० स० १९१८ में महाराजा साहब को ११ तोपों की पर्सनल सलामी का सम्मान और भारत सम्राट् की सेना के केप्टन का स्थायी खिताब भी प्राप्त हो गया। यह सन्मान आपने युद्ध में दी हुई बहुमूल्य सहायताओं के उपलक्ष में प्रदान किया गया था। आपके व्यक्तिगत सन्मान की हैसियत से आपकी गणना काठियावाड़ के प्रथम श्रेणी के राजाओं में की जा सकती है और आपके कारभारी भी राजा कहे जा सकते हैं।

आपको तीन कुमार और तीन कन्याएँ हैं। आपके पाटवी कुँवर साहब का नाम प्रतापसिंहजी है। आप राजकोट के राजकुमार कॉलेज में शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं।

राज्य-शासन के लिये यह स्टेट चार महालों में विभाजित की गई है। यहाँ के कुछ गाँवों से तौजी नगद रुपयों में, और कुछ गावों-से पैदावार के एक निश्चित हिस्से के मान से ली जाती है। रेव्हेन्यू वसूली की इस द्वितीय-पद्धति को यहाँ भाग बटाई कहते हैं।

किसानों को मितव्ययी बनाने तथा आवश्यकता के समय उन्हें कर्ज़ देने के हेतु आपने ई० स० १९१० में एक कोऑपरेटिव बँक की स्थापना की है। इस बँक में प्रत्येक तीस एकड़ ज़मीन हाँकनेवाले किसान से १० रुपये के हिसाब से चन्दा लिया गया है। चन्दे में जितनी रकम इकट्ठी हुई, उतनी ही और रकम आपने अपने खज़ाने से इस बँक में दी है। इस बंक का कार्य संतोषप्रद है। कहने का मतलब यह कि यह राज्य कृषि में धीरे २ उन्नति कर रहा है। राज्याधिकारियों का इस ओर विशेष ध्यान है।

बाँकानेर में एक चिकित्सालय तथा रिथवा में एक डिस्पेंसरी खोली गई है।

राज्य में एक हाइ स्कूल, १४ वर्नाक्यूलर स्कूल, एक कन्या पाठशाला और एक उर्दू मदरसा है। इनके अतिरिक्त एक संस्कृत पाठशाला और है तथा बोहरा जाति के बालकों के लिये भी एक पाठशाला खोली गई है। यहाँ प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क दी जाती है।

दीवानी और फौजदारी मुआमलों में बृटिश कानून के अनुसार कार्यवाही की जाती है। इन सब मुआमलों में "हुजूर कोर्ट" को सब से अधिक सत्ता है। हुजूर कोर्ट के अध्यक्ष श्रीमान् महाराजा साहब हैं।

गृह-उद्योग का कुछ ही दिन हुए, पुनर्जीवन किया गया है और उसके लक्षणों से प्रतीत होता है कि यह उद्योग अच्छी उन्नति करेगा। यहाँ कई प्रकार की मिट्टी होती है। इस मिट्टी के बर्तन बनाने के लिये १,००,००० रुपये लगाकर एक कारखाना खोला गया है।

इस राज्य के उत्तर में मोरवी और ध्रांगधरा राज्य; दक्षिण में राजकोट, बमनबोर और चोटिला रियासत; पश्चिम में मोरवी और कोठड़ा; और पूर्व में थान-लख्तर हैं। इसका क्षेत्रफल ४१७ वर्गमील है। यहाँ की भूमि हलके दर्जे की है, जिसमें पहाड़ियाँ भी अधिक हैं। वार्षिक आय लगभग ७,५०,००० रुपयों की है। जनसंख्या ई० स० १९२१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार ३६,८२४ है।

महाराजा बहादुर बलरामपुर ।

बलरामपुर राज्य का इतिहास

बलरामपुर राज्य का क्षेत्रफल १३०० वर्गमील है। इस राज्य में १००० के करीब गाँव हैं, जिनकी मनुष्य गणना ५००००० है। यह राज्य युनाइटेड प्राविन्सेस (संयुक्त प्रान्त) के गौंड़ा, बहराइच और लखनऊ नामक जिलों में फैला हुआ है।

बलरामपुर के राजवंश की उत्पत्ति सुप्रसिद्ध वीर अर्जुन से है। ईसी वंश में पाँवागढ़ के सोमबंशी नरेश मनसुख देव हुए। मनसुखदेव के कनिष्ठ पुत्र का नाम बरियारशाह था। चौदहवीं शताब्दी के अन्त में बरियारशाह ने दिल्ली के मुसलमान सम्राट् के दरबार में नौकरी कर ली। आपकी कार्य्य-कुशलता पर मुग्ध होकर सम्राट् ने आपको कानपुर नामक नगर दे दिया। इसके कुछ ही समय बाद आप रिसालदार हो गये थे। ई० स० १४१४ में बरियारशाह इकौन (बहराइच जिला) नामक गाँव में रहने लगे। आपके उत्तराधिकारियों में से एक का नाम गणेशसिंह था। गणेशसिंहजी को राजा की पदवी प्राप्त थी। गणेशसिंहजी के भाई माधोसिंहजी बड़े प्रतापशाली थे। ई० स० की १६ वीं शताब्दी के मध्य में उन्होंने रापती और कुआना नामक नदियों के बीच में एक विशाल प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया। माधो-सिंहजी के बाद उनके पुत्र बलरामशाह उक्त राज्य के उत्तराधिकारी हुए। इस समय दिल्ली के तख्त पर सम्राट् जहांगीर आसीन थे। बलरामशाहजी ने बलरामपुर नामक शहर बसाया। १७ वीं शताब्दी में इस राज्य में कोई विशेष

उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। हाँ, इस अवधि में इस राज्य में अपनी सत्ता खूब बढ़ा ली। अवध के वजीरों ने इस राज्य पर अनुचित टेक्स लगाना चाहा, पर वे कृतकार्य न हो सके। ई० स० १७७७ में नवलसिंहजी बलरामपुर की गद्दी पर बिराजे। इतिहास बतलाता है कि यह नरेश अपने वंश के सर्वोच्च श्रेणी के राजाओं में एक थे। नवलसिंहजी के बाद उनके पौत्र जयनारायण-सिंहजी उत्तराधिकारी हुए। ई० स० १८३६ में आपका स्वर्गवास हो गया। आपके बाद राजगद्दी पर राजा दिग्विजयसिंहजी बिराजे, गद्दी पर बैठते समय दिग्विजयसिंहजी की आयु १८ साल की थी। कुछ समय बाद प्रसिद्ध सिपाही-विद्रोह हुआ। ई० स० १८५६ के फरवरी मास में अवध राज्य बृटिश राज्य में मिला लिया गया। बलरामपुर नरेश ने इस नये शासन का यथोचित स्वागत किया। गदर के समय बहराइच डिविजन के कमिश्नर के पद पर मि० विंगफिल्ड नियुक्त थे। आप कर्नलगंज में रहते थे। जब कर्नलगंज की सेना के बागी होने के लक्षण दिखाई देने लगे तब कमिश्नर साहब गोंडा चले गये। वहाँ भी उन्होंने जब यही हाल देखा तो अन्त में वे बलरामपुर नरेश के आश्रय में आ गये। श्रीमान् बलरामपुर नरेश ने आपका यथोचित स्वागत किया और आपके जान माल की पूरी पूरी हिफाजत की।

१० वीं जून के दिन सिकरोरा और गोंडा नामक स्थानों की सेनाओं ने खुल्लम खुल्ला बग़ावत शुरू कर दी। उन्होंने सरकारी खजाना लूट लिया और लोगों पर जुल्म करना शुरू कर दिया। इस समय सारा अवध प्रान्त विद्रोह का क्षेत्र बन गया था। इस नाजुक समय में भी बलरामपुर नरेश ने बृटिश सरकार का साथ न छोड़ा। जब बलरामपुर पर भी बागियों के हमले की संभावना मालूम होने लगी तो कमिश्नर साहब ५०० विश्वस्त सिपाहियों के साथ बंसी नामक स्थान पर पहुँचा दिये गये। २६ वीं जून को वे गोरख-पुर सकुशल पहुँच गये।

ई० स० १८५८ के दिसम्बर मास में ट्रांस-घाघरा युद्ध में बागी लोग पूर्णरूप से परास्त हुए। इस युद्ध में भी बलरामपुर नरेश ने बृटिश सरकार

को सैनिक सहायता पहुँचाई। बृटिश सरकार ने आपकी उक्त बहुमूल्य सहायता के उपलक्ष में आपको ७००० की खिलत जप्तशुदा तुलसीपुर परगना और इकौना चार्डी तथा भींगा आदि जिलों के कुछ हिस्से प्रदान किये। इसके अतिरिक्त आपके पूर्वजों की मिल्कियत पर ली जानेवाली रेव्हेन्यु में १० रु० सैकड़े की कमी कर दी गई। आपको "महाराजा बहादुर" की पदवी प्रदान की गई। ईसवी स० १८६६ के नवम्बर मास में आगरे के दरबार में आप के० सी० एस० आई० की उपाधि से विभूषित किये गये। श्रीमती महारानी विक्टोरिया ने भारत-सम्राज्ञी की पदवी धारण करने की खुशी में श्रीमान् बलरामपुर नरेश को ९ तोपों की सलामो से सम्मानित किया। यह सम्मान Ruling chief से नीचे दर्जे के किसी भी सरदार को प्राप्त नहीं होता है। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में महाराजा दिग्विजयसिंहजी ने कई प्रजा हितैषी कार्य किये। ई० स० १८९२ में महाराजा साहब शिकार खेलने अलाहाबाद गये हुए थे, वहाँ हाथी पर से गिर जाने के कारण एकाएक आपका स्वर्गवास हो गया। आपके स्वर्गवास के बाद राज्य की बागडोर बड़ी महाराणी साहबा श्रीमती इन्द्रकुँवर बाई के हाथों में आई। स्वर्गीय महाराजा की अन्तिम इच्छा के अनुसार श्रीमती महारानी साहबा ने वर्तमान महाराजा को दत्तक लेकर गद्दी पर बिठाया। महाराजा दिग्विजयसिंहजी की पवित्र स्मृति में बलरामपुर में उनकी एक पाषाण-प्रतिमा निर्माण की गई है।

ई० स० १८९२ के नवम्बर मास में बलरामपुर के एजेन्ट ने भारत सरकार को लिखा कि महारानी इन्द्रकुँवर साहबा ने बड़ी ही योग्यता के साथ राज्य कारभार को सञ्चालित किया है अतएव उनके स्वर्गीय पति के समान उनकी भी नौ तोपों की सलामी कर दी जाय। इसके उत्तर में गवर्नमेंट आफ इंडिया के अन्डर सेक्रेटरी ने निम्नलिखित आशय का जवाब भेजा।

"यद्यपि जमींदारों अथवा नरेशों (Ruling chief) से नीचे दर्जे के सरदारों को तोपों की सलामी का सम्मान प्रदान करना सरकार की नीति के

विरुद्ध है तथापि बलरामपुर राज्य द्वारा की गई विशेष सेवाओं से उपकृत होकर श्रीमती भारत सम्राज्ञी महारानी साहबा को आजीवन के लिए ९ तोपों की सलामी का अधिकार प्रदान करती हैं।"

खेद है कि उक्त सम्मान प्राप्त होने के कुछ ही दिन पश्चात् ई० स० १८९३ के जून मास की २९ वीं तारीख को महारानी साहबा का देहान्त हो गया।

श्रीमती इन्द्रकुँवर साहबा के बाद उनके दत्तक पुत्र महाराजा सर भगवती प्रसादसिंहजी के० सी० आई० ई० राज्य-गद्दी पर बिराजे। ई० स० १९०० में उक्त महाराजा साहब बालिग हो जाने पर राज्य के सम्पूर्ण अधिकार आपको प्राप्त हो गये। इसके उपलक्ष में इसी साल के नवम्बर मास में एक दरबार हुआ। इसमें सर एण्टनी मेकडोनल ने श्रीमान् महाराजा साहब के पूर्वजों की प्रशंसा करते हुए यह प्रकट किया, कि गदर के नाजुक जमाने में भी स्वर्गीय महाराजा ने बड़ी ही वीरता और साहस के साथ भारत-सरकार का साथ दिया था। अपने भाषण को समाप्त करते समय आपने वाइसराय की आज्ञानुसार श्रीमान् राजा साहब को "महाराजा" की सनद प्रदान की।

ई० स० १९०६ के जून मास में श्रीमान् महाराजा साहब के० सी० आई० ई० की उपाधि से विभूषित किये गये।

ई० स० १९०७–८ में बालमपुर-राज्य में भयंकर अकाल पड़ा। इस अवसर पर श्रीमान् महाराजा साहब ने अपनी प्रजा-वत्सलता का पूर्ण परिचय दिया। आपने २ अनाथालय (Poor houses) तथा ७० दूसरी संस्थाएँ खोलकर हजारों अकाल-पीड़ितों के प्राण बचाये।

श्रीमान् महाराजा साहब की प्रजावत्सलता एवं राज्यकार्य-कुशलता से प्रसन्न होकर ई० स० १९०९ के जनवरी मास में भारत सरकार ने आपकी पूर्व प्राप्त महाराजा की पदवी को पुश्तैनी (Hereditary) कर दिया।

श्रीमान् स्वर्गीय महाराजा सर दिग्विजयसिंहजी ने लखनऊ में बृटिश

इंडियन असोसियेशन (British Indian Association) नामक एक संस्था स्थापित की थी। ई० स० १९०९ में इस संस्था के तत्कालीन सदस्यों ने अपने संस्थापक की एक मूर्ति लखनऊ में स्थापित की।

श्रीमान् वर्तमान महाराजा साहब ने हिन्दुस्थानी और यूरोपीय शिक्षकों द्वारा घर ही पर विद्याध्ययन किया था। आप धारा प्रवाहित अंग्रेजी बोलते हैं। हिन्दी, उर्दू तथा फ़ारसी भाषाओं का भी ज्ञान रखते हैं। आपको एक पुत्र है जिनकी आयु लगभग १४ साल की है।

श्रीमान् महाराजा साहब बड़ी शान्त-प्रकृति के नरेश हैं। आप सदा-सर्वदा अपनी प्रजा की मंगल-कामना की ओर ध्यान रखते हैं। आप अवध के ताल्लुकेदार असोसियेशन (Talluqedar's Association of Oudh) के प्रधान, यू० पी० की लेजिस्लेटिव कौन्सिल के मेम्बर, अलाहाबाद विश्व-विद्यालय के अवैतनिक फेलो (Honorary Fellow), बलरामपुर म्युनिसिपेलिटी के Chairman और Magistrate हैं। आपने अपने राज्य में विद्या और कृषि की अच्छी उन्नति की है।

सूंठ राज्य का इतिहास

सूंठ बम्बई प्रेसिडेन्सी की रेवाकाँठा पोलिटिकल एजंसी में द्वितीय श्रेणी की रियासत है। यहाँ का राजवंश अत्यंत प्राचीन है। यहां के शासक अपने आपको धार के सुविख्यात् विद्या-प्रेमी महाराजा भोज तथा उज्जैन के चक्रवर्ती महाराजा वीर विक्रमादित्य के वंशज बतलाते हैं। राजपूतों के सुप्रसिद्ध परमार वंश की महिपावत शाखा में इस राज्य के संस्थापक जालिमसिंह जी उत्पन्न हुए, जिन्होंने ई० स० की १० वीं या ११ वीं शताब्दी के लगभग आबू के जंगली प्रदेश से अपने अनुयायियों सहित गुजरात प्रान्त में प्रवेश किया। गुजरात पहुँचने पर आपने कुछ प्रदेश विजय किये और झालोद नामक नगर बसाया। इस नगर में आपने अपने राज्य की राजधानी स्थापित की। आपकी मृत्यु के पश्चात् आपके वंशज चार राजा और हुए, जिन्होंने आपके विजय किये हुए राज्य का सुख पूर्वक उपभोग किया। इन चारों राजाओं के समय में इस राज्य में मुसलमानों ने विशेष उपद्रव नहीं मचाया, किन्तु ई० स० १२४७ में इस वंश के पञ्चम राजा जालिमसिंहजी (द्वितीय) के शासन-काल में मुसलमानों ने राज्य को विध्वंस कर डाला। इतना ही नहीं, उन्होंने इस राज्यवंश के अधिकांश कुटुम्बियों को कत्ल कर डाला। केवल, जालिमसिंहजी के संत नामक पुत्र तथा उसके काका को छोड़ कर कोई न बचा। ये दोनों पुरुष झालोद छोड़कर पास के जंगलों में जा छिपे। वहाँ के भीलों की सहायता से कुमार संत ने ई० स० १२५५ में

एक छोटासा राज्य विजय कर सूंठ नामक गाँव को अपनी राजधानी बनाया। कुमार संत के वंशज बहुत से राजा सूंठ तथा उसके आसपास के प्रदेश पर शासन करते रहे। ई० स० १७५३ के पहले यहाँ राजा रतनसिंहजी (द्वितीय) राज्य करते थे। आप अपने चार पुत्र छोड़कर इसी वर्ष स्वर्गवासी होगये। आपकी मृत्यु हो जाने पर बाँसवाड़ा राज्य के तत्कालीन नरेश ने आपके तीन पुत्रों को निर्दयता-पूर्वक मार डाला और राज्य-गद्दी पर अपना अधिकार कर लिया। आपके चौथे बाल पुत्र को, जो कि बाँसवाड़ा के नरेश की दुर्वासना की शिकार होने से अब तक बच गये थे, आपके राज्य के कोली लोगों ने छिपा रक्खा। ये कोली लोग बांसवाड़ा नरेश के अन्यायपूर्ण व्यवहार से बहुत चिढ़ गये थे। अतएव उन्होंने बाँसवाड़ा की फौज को, जो कि सूंठ में अपना डेरा डाले हुए था, मार भगाया और आपके चतुर्थ पुत्र को, जो कि अब तक गुप्त रूप से उन्हीं लोगों के संरक्षण में थे, इस राज्य की गद्दी पर बैठाया। आपका नाम बदनसिंहजी था। आपने ई० स० १७७४ तक शासन किया। आपके पश्चात् आपके पुत्र शिवसिंहजी गद्दीनशीन हुए। आपने ई० स० १८०३ में भारत सरकार के साथ सन्धि कर ली। ई० स० १८१९ में यहाँ राजा कल्याणसिंहजी राज्य करते थे, उस समय ग्वालियर रियासत की अश्वारोही सेना ने सूँठ पर आक्रमण करना शुरू किया, किन्तु सर मालकम के अधीनस्थ ब्रिटिश फौज ने उन्हें यहाँ से भगा दिया। ई० स० १८२५ से यह रियासत रेवाकाठा पोलिटिकल एजंसी के चार्ज में रक्खी गई है।

राजा कल्याणसिंहजी तीन वर्षीय पाटवी कुँवर भवानीसिंहजी को छोड़कर ई० स० १८३५ में स्वर्गवासी हो गये। अतएव आपके पश्चात् आपकी विधवा रानी रिजंट का कार्य करने लगीं। रानीजी प्रजा के साथ क्रोधोद्दीपक व्यवहार करने लगीं, जिससे कोली लोगों ने ई० स० १८५४ में बलवा खड़ा कर दिया। इतना ही नहीं, इन लोगों ने राज्य के दूसरे शांतिप्रिय किसानों को लूटना शुरू कर दिया। इस समय भवानीसिंहजी गद्दी पर बैठा दिये गये थे, किन्तु वे विद्रोहियों का दमन करने में असमर्थ थे। अतएव उन्होंने

बृटिश सरकार से सहायता माँगी। तदनुसार पोलिटिकल एजंट साहब स्वयं सूँठ गये और विद्रोहियों को आक्रमण करने से रोका। इतना ही नहीं, इन विद्रोहियों द्वारा सूंठ राज्य की जो हानि हुई थी, उसकी क्षति की पूर्ति करने के लिये भी आपने उन्हें बाध्य किया। ई० स० १८६० में बृटिश सरकार और गवालियर सरकार के राज्य की सीमा निर्धारित की गई, उस समय यह राज्य भारत सरकार के संरक्षण में आया। इसी वर्ष से यहाँ प्रतिवर्ष शियाशाई ७००० रुपया भारत सरकार को बतौर खिराज़ के दिया जाने लगा।

राजा भवानीसिंहजी का शासन-काल अच्छा बीता, किन्तु कराल काल ने चालीस वर्ष की अल्पायु में ही आपको उठा लिया। आपको कोई पुत्र न था। अतएव आपके वंश का एक १२ वर्षीय लड़का राज्यसिंहासन पर बैठाया गया। इनका नाम प्रतापसिंहजी था। आपकी नाबालिगी में राज्यकार्य भारत सरकार के हाथों में रहा। बालिग होने पर ई० स० १८८० में आपको पूर्ण शासनाधिकार प्राप्त हो गये। आपने इस अवधि में राजकोट के राजकुमार कॉलेज में हिन्दी तथा अंग्रेज़ी की उच्च श्रेणी की शिक्षा प्राप्त की। राज्याधिकार प्राप्त होने पर आपने बड़ी बुद्धिमानी से राज्यकार्य किया। प्रजा की दृष्टि में आपका शासन सहानुभूतिपूर्ण था। प्रजा की उन्नति और उसका विकास करना यही एक मात्र आपके शासन का ध्येय था। ई० स० १८५० में इस राज्यवंश को दत्तक लेने की सनद प्राप्त हो गई।

आपके उन्नतिशील शासन का सुख प्रजा अधिक दिन तक न देख सकी। आप अपनी प्रजा को रोती बिलखती छोड़कर ई० स० १८९६ में इहलोक से कूच कर गये। आपको कोई पुत्र न था। अतएव वर्तमान महाराज जोरावरसिंहजी राज्य-सिंहासन पर बैठाये गये। आपका जन्म ई० स० १८८० में हुआ था। ई० स० १९०२ की १० वीं मई को पोलिटिकल एजेंट की उपस्थिति में राज्य के मुख्य नगर रामपुर में एक विशाल दरबार हुआ, जिसमें आपको राज्य-शासन के सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त होने की घोषणा की गई।

ई० स० १९०५ में आप तत्कालीन प्रिन्स ऑफ वेल्स के स्वागतार्थ बम्बई पधारे थे तथा वहाँ के बहुत से उत्सवों में सम्मिलित हुए थे। ई० स० १९११ में होनेवाले देहली दरबार में आप अपने अस्वास्थ्य के कारण सम्मिलित न हो सके, किन्तु यह उत्सव आपके राज्य में बड़ी चहल पहल के साथ मनाया गया। ई० स० १९१३ में आपकी भील-प्रजा ने बलवा किया, परन्तु वह शीघ्र ही शान्त कर दिया गया।

आप राज्य-कार्य बड़े उत्साह के साथ करते हैं। आपके दीवान साहब ने भी बुद्धिमत्तापूर्वक राज्य के सब विभागों को सुसंगठित किया है। यहाँ निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। आपने अपनी राजधानी में एक अंग्रेजी पाठ-शाला भी स्थापित की है। गत यूरोपीय युद्ध में भी आपने उचित सहायता दी थी।

इस राज्य के भावी अधिपति का नाम महाराज कुँवर श्री प्रवणसिंहजी है। आप अभी विद्याध्ययन कर रहे हैं।

इस राज्य का क्षेत्रफल ३९४ वर्गमील है। इसके उत्तर में कदना, डुंगरपुर और बाँसवाड़ा की रियासतें; पूर्व में भारत सरकार का पञ्चमहाल ज़िला; दक्षिण में साँगली रियासत और गोदरा तालुका और पश्चिम में लूनावाड़ा राज्य है। राज्य की वार्षिक आय लगभग ३,५७,००० रुपये है।
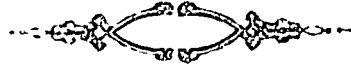
सिरमूर राज्य का इतिहास

सिरमूर शब्द सिरमौर का अपभ्रंश है। सिरमौर का अर्थ हिन्दी में मस्तक का मुकुट होता है। सम्भव है कि इस राज्य का यह नाम इसके अन्य सब पहाड़ी रियासतों से अधिक शक्तिशाली होने के कारण पड़ा हो। इसके लिये एक दूसरा कारण भी माना जाता है। वह इस प्रकार है। जयसलमेर के रावल शालिवाहन के पौत्र का नाम सरमौर था। राजा सरमौर इस राज्य के संस्थापक राजा रसालू के चचेरे भाई थे। अतएव यह भी सम्भव है कि राजा रसालू ने अपने भाई के नाम पर इस राज्य का नाम सरमौर रखा हो।

इस राज्य के उत्तर में जब्बन और बलसान राज्य, पूर्व में देहरादून जिला, उत्तर-पश्चिम में पटियाला और केओन्थाल राज्य और दक्षिण-पश्चिम में अम्बाला और कलसिया की रियासतें हैं।

सिरमूर राज्य हिमालय के दक्षिण भाग में स्थित है। इसका क्षेत्रफल ११६० वर्गमील है। मनुष्य-गणना १३८५२३ है। यह सारा राज्य पहाड़ी प्रदेश पर स्थित है। हाँ, शिवालिक और हिमालय के बीच की जमीन कुछ ठीक है। गत ३०० वर्षों से नहान नामक शहर इस राज्य की राजधानी रहती आयी है।

यह राज्य उत्तरीय, मध्यस्थ और दक्षिणीय इस प्रकार तीन हिस्सों में विभक्त है। तीनों हिस्सों की पैदावार और आब-हवा एक दूसरे से भिन्न है।

बड़ौदा राज्य का इतिहास

HISTORY OF THE BARODA STATE.

हिज हाइनेस महाराजा सर सयाजीराव गायकवाड़ G. C. S. I., G. C. I. E. बड़ौदा

विषय-सूची

(२५) नवा नगर राज्य का इतिहास
(२६) लीम्बडी राज्य का इतिहास
(२७) लूनावाड़ा राज्य का इतिहास
(२८) राजकोट राज्य का इतिहास
(२९) प्रतापगढ़ राज्य का इतिहास
(३०) पालनपुर राज्य का इतिहास
(३१) बीजावर राज्य का इतिहास
(३२) धरमपुरी राज्य का इतिहास
(३३) छतरपुर राज्य का इतिहास
(३४) झाबुआ राज्य का इतिहास
(३५) सांगली राज्य का इतिहास
(३६) सावंतवाड़ी राज्य का इतिहास
(३७) बाँकानेर राज्य का इतिहास
(३८) बलरामपुर राज्य का इतिहास
(३९) सूंठ राज्य का इतिहास
(४०) सिरमोर राज्य का इतिहास
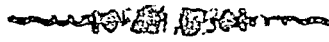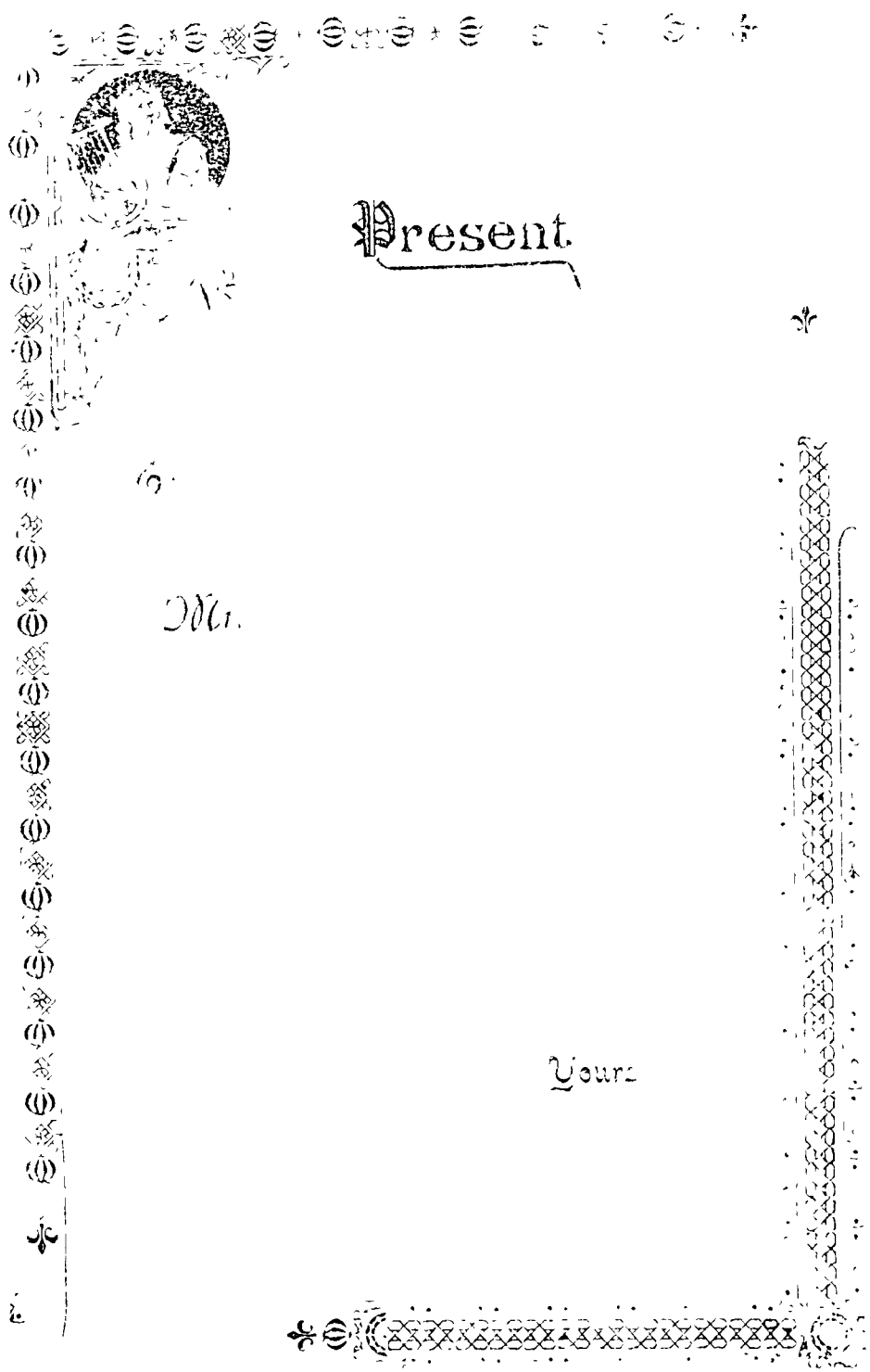
Present
Your
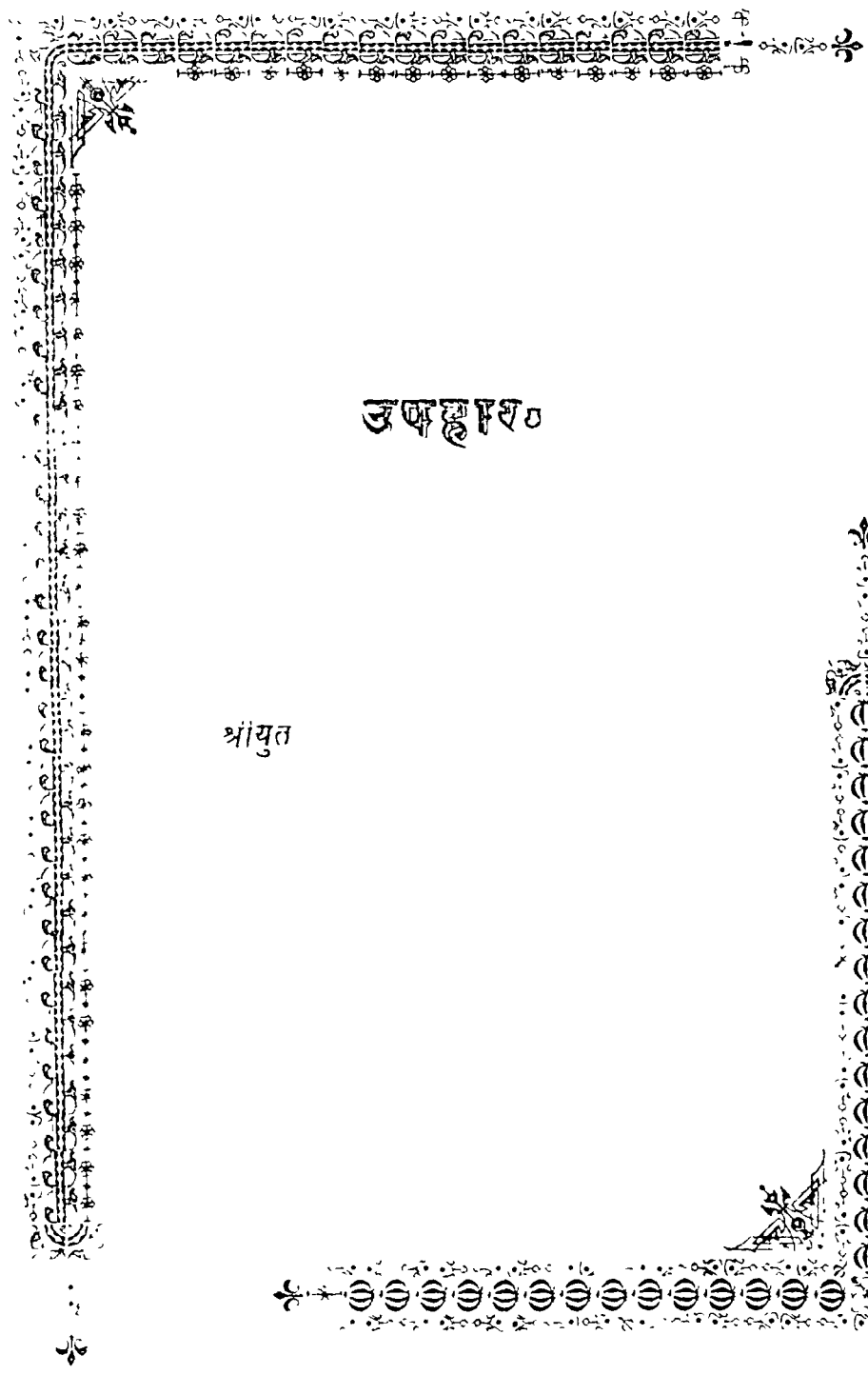
उपहार

श्रीयुत
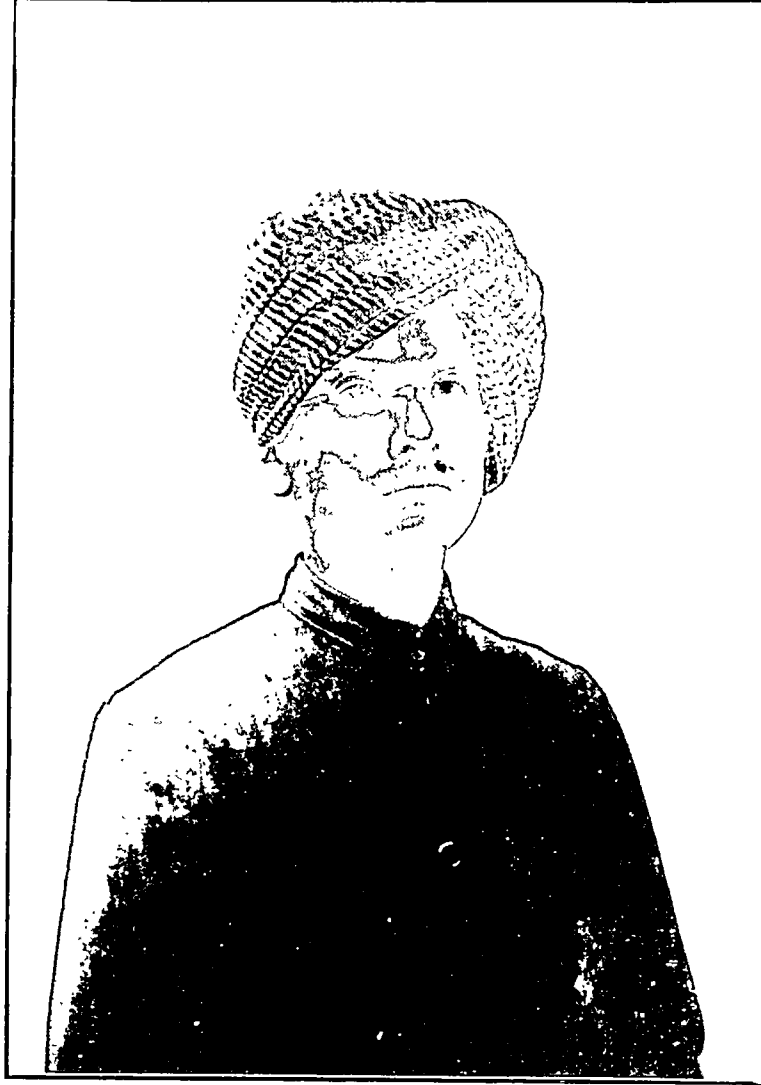
ग्रन्थकार—श्री सुखसम्पत्तिराय भण्डारी

१—गिरी नामक नदी से उत्तर का प्रदेश उत्तरीय विभाग अथवा ट्रांस-गिरी-प्रदेश कहलाता है। इस भाग की आब-हवा अत्यन्त सर्द है। सर्दी की मौसिम में यहाँ बर्फ गिरता रहता है। रबी की अपेक्षा खरीफ की फसल यहाँ ठीक होती है। यहाँ के मनुष्य बलिष्ठ और सादे होते हैं। हाँ, हठ की मात्रा उनमें विशेष प्रमाण में रहती है।

२—गिरी और मार्कण्ड नदी के बीच का प्रदेश मध्यस्थ विभाग कहलाता है। इस भाग में सेन, धात्री और खोलस नामक पहाड़ियाँ हैं। यहाँ की आब-हवा समशीतोष्ण है। इस प्रदेश में रबी और खरीफ दोनों ही फसलें साधारणतया ठीक होती हैं।

३—मार्कण्ड और यमुना नदी के बीच का हिस्सा दक्षिणीय भाग 'अथवा 'उन' कहलाता है। यहाँ की आब-हवा उष्ण है। यहाँ भी दोनों ही फसलें ठीक होती हैं, पर रबी की फसल विशेष अच्छी होती है।

इस राज्य में चार पर्वत श्रेणियाँ हैं। ये पर्वत श्रेणीयाँ धार, कहलाती हैं। चुर-धार राज्य के उत्तरीय हिस्से में है। यह धार समुद्र की सतह से ११९८२ फीट ऊंची है। सेन और धात्री नामक धाराएं मध्यभाग में और लायादेवी नामक धार दक्षिणीय भाग में है।

यमुना, गिरी, जलाल, टोंस, मार्कण्ड और बानर इस राज्य की मुख्य नदियाँ हैं। इनमें से यमुना, गिरी और टोंस नामक नदियों में इमारती लकड़ियाँ बहाकर नीचे लाई जाती हैं। गिरी और उसकी सहायक जलाल नामक नदी में बहुत मछलियां पाई जाती हैं।

उत्तरीय भाग में १॥ मील लम्बा और ११०० फीट चौड़ा एक तालाब है। इस तालाब का नाम 'रेन का ताल' है। यह स्थान हिन्दुओं का तीर्थ-स्थान है। इसके पास ही जमदग्नि ऋषि की पहाड़ी और परशराम नामक एक छोटासा तालाब है। इसके दक्षिण में परशुरामजी का एक मन्दिर है। यहाँ पर नवम्बर मास में एक मेला लगता है।

इस राज्य में उर्दू, हिन्दी, हिन्दी मिश्रित-पहाड़ी और सिरमौरी नामक

चार भाषाएं बोली जाती हैं। विवाह-संस्कार और अन्त्येष्टि क्रिया मनु महाराज प्रणीत धर्म-शास्त्र के अनुसार होती है।

सिरमूर राज्य के पहाड़ों में कई प्रकार की कच्ची धातुएं पाई जाती हैं। नाहन से २० मील के अन्तर पर चेहटा नामक स्थान है। यहाँ पर चुम्बक धातु पाई जाती है। चाँदनी नामक स्थान के पास ताँबा और नाराग नामक स्थान में एलम धातु पाई जाती है। जगहार और नाहरा धार में संगमरमर के पत्थर की खानें हैं। राज्य के कई नालों में शुद्ध सोना मिलता है और चूने का पत्थर (Lime-stone) तो करीब करीब राज्य भर में बहुतायत से पाया जाता है।

ई० स० १८६७ में राज्य की ओर से एक लोहे का कारखाना (Iron foundary) स्थापित किया गया था पर नुकसान होने के कारण वह बन्द कर दिया गया।

सारे सिरमूर राज्य का ⅓ हिस्सा जंगल है जिसमें तरह तरह के वृक्ष और वनस्पतियाँ पाई जाती हैं। २० मील लम्बा और ४ मील चौड़ा एक ऐसा जंगल है जो oak के वृक्षों से भरा हुआ है। कई वृक्षों से गोंद और फल उत्पन्न होते हैं और कई रंग तथा औषधियाँ बनाने के काम में आते हैं।

१९ वीं शताब्दी के आरंभ में बृटिश सरकार का नेपाल राज्य के साथ जो झगड़ा हुआ था उसमें सिरमूर राज्य का भी हाथ था। ई० स० १८१५ में बृटिश सरकार और नेपाल नरेश के बीच सन्धि हो गई। इस सन्धि के अनुसार नेपाली लोग सिरमूर राज्य से निकाल दिये गये। गद्दी-च्युत राजा के पुत्र फतेहप्रकाश गद्दी पर बिठाये गये। आपकी माता रानी गुलेरिजी रिजेंट के पद पर नियुक्त की गई। ई० स० १८२७ में श्रीमान् राजा साहब फतहप्रकाशजी के बालिग हो जाने से भारत सरकार की ओर से आपको राज्य के सम्पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गये। अधिकार मिलते ही आपने राज्य में सुधार करना शुरू किया। आपके राज्य-काल में रियासत की उत्तरोत्तर तरक्की होती रही। ई० स० १८३८ में पहला अफगान युद्ध हुआ। इस युद्ध के समय

श्रीमान् महाराजा साहब ने बृटिश सरकार की अच्छी सहायता की। ई० स० १८४५ में बृटिश गवर्नमेंट ने सिक्खों के विरूद्ध युद्ध की घोषणा की। इस बार भी श्रीमान् फतेहप्रकाशजी ने अपनी साम्राज्य-भक्ति का परिचय दिया।

श्रीमान् फतेहप्रकाशजी के बाद उनके पुत्र रघुवीरप्रकाशजी राज्य-सिंहासन पर विराजे। आप बड़े सादे मिजाज के रईस थे। आप के बाद सुप्रसिद्ध सर समशेरप्रसादजी अपनी दस वर्ष की अवस्था में राज्य-गद्दी पर विराजे। आपकी नाबालिग अवस्था में राज्य का कारोबार आपके चचा कुँवर सरजनसिंहजी संभालते थे। समशेरप्रकाशजी आरम्भ ही से होनहार युवक मालूम होते थे। यद्यपि अंग्रेजी भाषा पर आपका अच्छा अधिकार (Command) नहीं था तथापि राज्योचित गुणों की आप में कमी नहीं थी।

ई० स० १८५७ के सिपाही-विद्रोह के समय आपने एक कानिन्जन्ट भेजकर बृटिश सरकार की सहायता करने की इच्छा प्रदर्शित की थी। राज्याधिकार प्राप्त होने के बाद आपने सारे हिन्दुस्तान में भ्रमण किया। सफ़र से लौटकर आपने करीब करीब प्रत्येक विभाग का पुनर्संगठन किया। आपने कई नई सड़कें और डाक-बँगले बनवाये, जमीन का नया बन्दोबस्त कायम किया और वैज्ञानिक तरीकों से जंगलों का इन्तजाम किया। नहान नामक स्थान में आपने एक लोहे का कारखाना, कुछ गन्ने पेरने की मशीनें और कुछ आटा पीसने की मशीनें खोलीं। थोड़े शब्दों में यों कह लीजिये कि आपका राज्य-काल सिरमूर राज्य के लिये सुधारों का युग हो गया था। भारत सरकार के आप हमेशा भक्त रहे। १८५७ के गदर के समय की हुई सहायता के उपलक्ष में गवर्नमेंट की ओर से आपको बहुत सम्मान और ७ तोपों की सलामी का अधिकार मिला। ई० स० १८६७ में यह सलामी बढ़ाकर ११ तोपों की कर दी गई। वाइसराय लॉर्ड लिटन साहब के समय में आप इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के मेम्बर बनाये गये थे। ई० स० १८७६ में आपको के० सी० आई० की महत्वपूर्ण पदवी मिली। ई० स० १८८० में आपने तृतीय अफ़गान-युद्ध में बृटिश सरकार की सहायता के लिये अपनी 'सिरमूर-कोर' नामक फौज को

टुकड़ी भेजी। इस सहायता के उपलक्ष्य में आपको वाइसराय की रिटर्न विजिट का अधिकार प्राप्त हुआ। ई० स० १८९६ में आपको जी० सी० एस० आई० की उपाधि भी प्राप्त हुई। ई० स० १८८९ में आपने इम्पीरियल सर्विस कोर स्थापित की थी। इस कोर ने राजकुमार वीर विक्रमसिंहजी की अधीनता में तिराह आक्रमण के समय बृटिश सरकार की अच्छी सहायता की। इस सहायता के उपलक्ष्य में आपको भारत सरकार की ओर से सी० आई० ई० की पदवी प्राप्त हुई। आगे चलकर आप सी० एस० आई० और लेफ्टिनंट कर्नल की पदवियों से विभूषित हुए। श्रीमान् सर समशेरप्रकाश जी ने ४२ वर्ष राज्य किया। आप ई० स० १८९८ के अक्तूबर मास में स्वर्गवासी हुए।

श्रीमान् समशेरप्रकाशजी के बाद उनके पुत्र सर सुरेन्द्रविक्रम प्रकाशजी राज्यासन पर विराजे। आप बड़े खूबसूरत, बुद्धिमान, मिहनती, नियमित, दयालु, दूरदर्शी, और सफाई-पसन्द नरेश थे। अपने पिताजी के समान परशियन तथा अंग्रेजी भाषा के अच्छे जानकार न होते हुए भी आप एक योग्य शासक थे। अपने पिताजी की जीवितावस्था में आपने कई दिनों तक मेजिस्ट्रेटी और कलक्टरी का काम किया था। इसके बाद अपने पिताजी की बीमारी के कारण आपने दो वर्ष तक रिजेन्ट का पद भी सुशोभित किया था। इन कारणों से राज्य-शासन सम्बन्धी कार्यों का आपको खासा अनुभव प्राप्त हो गया था। पूर्व शासन-व्यवस्था में आपको कई दोष मालूम होते थे, जिन्हें आपने गद्दी पर बैठते ही निकाल दिया। आपने राज्य के समस्त न्याया-लयों तथा कचहरियों को बृटिश ढंग से सुसङ्गठित किया। कानून में आपकी विशेष प्रगति थी, अतएव आपने कई प्रजा-हितकारी कानून बनाये। आप हमेशा अपनी प्रजा की कल्याण-कामना में प्रवृत रहते थे। प्रजा को प्लेग से बचाने के लिये आपने स्थान स्थान पर क्वारन्टाईन बिठवा दीं। नहान शहर में पानी की बड़ी कमी थी। इस कमी को पूरी करने के लिये आपने कई आयोजन किये। हिन्दुस्तानी अधिकारी वर्ग के मनोविनोद के लिये

आपने एक 'सुरेन्द्र-क्लब' स्थापित किया। रिश्वतखोरी को आपने अपने राज्य से बिलकुल उठा दिया। यात्रियों के सुभीते के लिये नहान और बरारा नामक स्थान के बीच में आपने एक मेल ताँगा सर्विस कायम कर दी। कहने का तात्पर्य यह है कि आपने अदम्य उत्साह के साथ राज्य की शासन-व्यवस्था को सुसङ्गठित कर राज्य और प्रजा का कल्याण किया। आपकी शासनपटुता के उपलक्ष्य में भारत सरकार की ओर से आपको ई० स० १९०१ में के० सी० एस० आई० की पदवी मिली। इसके दूसरे साल आप इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के मेम्बर के पद पर नियुक्त हुए।

सर सुरेन्द्र विक्रम प्रकाशजी का स्वर्गवास हो जाने पर उनके पुत्र सर अमरप्रकाश बहादुर के० सी० एस० आई सिरमूर की राज्यगद्दी पर बिराजे। आप फारसी और अंग्रेजी भाषा के अच्छे जानकार हैं। राज्य-कार्य में भी बड़े दक्ष हैं। आपने भी अपने पिताजी की बिमारी के समय बड़ी योग्यता के साथ राज्य-कारभार सँभाला था। प्रजा-हितकारी कार्यों की ओर आपकी बड़ी रुचि है। लिखते हर्ष होता है कि राज्य के प्रत्येक गृह को विद्या-सम्पन्न बनाने के लिये आपने अपने राज्य में अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध किया है। विद्यार्थी-वर्ग के रहने के लिये आपने एक विशाल होस्टल बनवाया है। बड़ी भारी रकम खर्च करके आपने नहान शहर को जल की कमी से मुक्त कर दिया है। इस समय सिरमूर राज्यका शासन बड़ा ही व्यवस्थित है। प्रजा महाराजा साहब को जी जान से चाहती है। भारत-सरकार ने भी आपको अपनी योग्यता का उचित पुरस्कार दिया। ई० स० १९१५ में उसने आपको के० सी० एस० आई० की पदवी प्रदान की और १९१८ में लेफ्टिनंट कर्नल की व्यक्तिगत (Personal) पदवी तथा महाराजा का पुश्तैनी खिताब दिया।

ई० स० १९१० में श्रीमान् महाराजा साहब का विवाह नेपाल के भूतपूर्व दीवान श्रीमान् देव समशेरजंग बहादुर की कन्या के साथ हुआ। विवाह के चार वर्ष बाद उक्त रानीजी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजकुमार का नाम राजेन्द्रसिंह रखा गया। श्रीमती महारानी साहबा एक सुशिक्षित

महिला हैं। आप अंग्रेजी का भी अच्छा ज्ञान रखती हैं। ई० स० १९११ में होनेवाले दिल्ली दरबार में श्रीमती सम्राज्ञी से आपकी मुलाकात हुई थी।

महाराजा साहब सुशिक्षित नरेश हैं और प्रजा के कल्याण की ओर आपका समुचित ध्यान है। आपके राज्य-कार्य में प्रजा की उन्नति होने की अच्छी आशा है।